स्व० पूज्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामीश्री आत्मानंदजी महाराज.
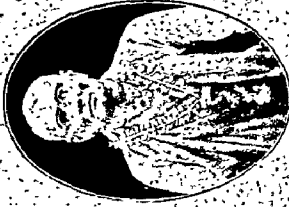
स्व० पूज्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामीश्री भास्करानंदजी महाराज.

ग्रन्थप्रकाशनमें सहानुभूति.

गुरुदेव भास्करानंदजी गुरु स्वामी आत्मानंदजीका अनन्य भक्त था गुरुदेवको गुरु स्वामी आत्मानंदजीका प्रथम परिचय पूर्वाश्रममें हुवा था. गुरु स्वामी आत्मानंदजीका व्यवहारदर्शन, भ्रमनाशक, अद्वैतादर्श इत्यादिका प्रकाशन गुरुदेव द्वारा पूर्वाश्रममें हुवा था. गुरुदेवने सन्यास ग्रहण किये पश्चात् सांख्ययोग-कर्मयोग—का हिंदी और अंग्रेजी प्रकाशन कीया था. गुरुदेव पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ थे उनका सत्संगसे सद्गत राजकोट नरेश लाखाजीराज इत्यादि अनेक शिष्योंको शांति मिली हे. गुरु स्वामी आत्मानंदजीकी अंतिम अवस्थामें गुरुदेवने उनकी सेवा सुश्रुषा पूर्ण भक्तिसे की थी. गुरु स्वामी उनकी सेवासे बहुत प्रसन्न हुआ था. और पूर्ण शांतिपूर्वक अपनी जीवन कला समाप्त की थी. गुरु स्वामीकी अंतिम इच्छा ब्रह्मसिद्धांत प्रकाशनके वास्ते थी. वह इच्छा कराचीके गुरुभक्त श्रीमती माणेकबाई और दादाभाई दरोगाका अति आग्रहपूर्वक आमंत्रणसे भावनगर त्याग करके कराचीमें आकर पूर्ण करनेका संकल्प कीया किंतु दैव गतिने वह कार्य पूर्ण नहि करने दिया और अचानक व्याधिग्रस्त हुए और देहविलय हो गया. शेष कार्य पूर्ण करने वास्ते गुरु देवको कराचीके अनन्य गुरु भक्तों भाई गौरीशंकर झवेरीलाल अंजारीया भाई बलवंतराय हरिलाल वोरा और श्रीमती माणेकदेवी और श्रीयुत दादाभाईने प्रार्थना करके आज्ञा मागी थी. गुरुदेवने प्रार्थनाका स्वीकार कीया था. हमको विश्वास हे कि गुरु कृपासे वोह सज्जनो शेष कार्य पूर्ण करेंगे. गुरुदेव पूर्ण निवृत्ति परायण होने परभी लोकहित तरफ उनकी दृष्टि रहती थी; जेसेके ब्रह्मसिद्धांत इत्यादि अनेक ग्रन्थ प्रकाशनकी प्रवृत्ति करनेके सिवाय, उदार वृत्तिसे अनेक भक्तोंको आर्थिक सहायता देते थे, वैद्यक द्वारा व्याधिपीडितोंको मफत औषधिदान करते थे और ब्राह्मणोंके गुरुभक्ति, सुखार्थ लिये और सनातन धर्मकी रक्षा वास्ते चंडीयाग, रुद्रयाग, और ब्रह्मभोजन तथा कुमारिका—बटुक भोजन वारंवार कराते थे. उनके यह सत्र दैवी गुणो गुरु भक्तोंको अनुकरणीय हे. इत्योम्।

पूज्य गुरुदेवका देहोत्सर्ग ता. २६–२–१९३४ के दिन रातको १०॥ घंटेके हुआ था. परमात्मास्वरुप गुरुदेवको नमस्कार. ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

गुरुदेवका कृपाकांक्षी

सु. १३ आषाढ १९९०.
ता. २९–७–१९३४.

श्री भूमानंद तीर्थ स्वामी
अध्यक्षः श्री जगन्हित आश्रम,
सुंदरी भवानी—हळवद.

प्रासंगिक दो शब्द.

॥ ॐ ॥

शुक्लां ब्रह्म विचार सार परमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्।
वीणा पुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यांधकारा पहाम्॥
हस्ते स्फाटिक मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्।
वन्दे तां परमेश्वरी भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

शुक्ल वर्ण है जिनका, ब्रह्म विचारके साररूप है, जगतमें व्यापी हुई परम आद्य शक्ति है, वीणा और पुस्तकको धारण कीया है, अभय देनेवाली है, अज्ञानरूप अन्धकारको नाश करनेवाली, हस्तमें स्फाटिक माला धारण की है, पद्मासनपर स्थित है, वो बुद्धि देनेवाली परमेश्वरी भगवती शारदाको नमन करता हूं.

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य वित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्य हृत्तापहारकम्॥

शिष्यका धन हरन करनेवाले गुरुओ बहुतही होते है लेकीन शिष्य हृदयका त्रिविधताप हरन करनेवाले गुरु एकभी दुर्लभ होता है.

जीवनकी आखिर दशा मृत्यु सिद्धही हो चुका,
फिर परार्थे समर्पणमें हम जीवनमे मोह क्यूं ?
खिली कली सुकर्ताही है फिर छोडती नहि वास उनकी
वोही नर जानो अमर जो दिव्य करते वासना.
परमात्म मेरे आप हो और मैंही आत्मा आपका,
परमात्म शरण लीया हुआ, कृतकृत्य यही जीवात्मा.

गिरनारके भव्य प्रकाशमान भास्कर, साक्षरोंकी सभाओंके शिरोमणि, ब्रह्मवेत्ताओंमें जाज्वल्यमान तारे, साहित्य बागके अमर कमल, वैद्योंकी सभाओंके धन्वंतरी, सायन्स–रसायन–तत्त्वज्ञानके अस्खलित प्रवाह, धर्मके स्तंभ, गुर्जर देशके सत्पुत्र श्री स्वामीजी भास्करानंदजी अपनी सिंध भूमिके आंगनमें आये और वहांही अस्त हुए.

भास्करके प्रचंड तापका यत्किंचित दर्शनभी अद्यापि इधरके गुजराती और सिंधी विद्वानोंको हुवा न हुवा, अद्यापि पर्यंत उनका आगमनका भी समाचार किसीको विदित हुवा, किसीको न हुवा, किसीको उनका लाभ मिला न मिला, हम जैसे सेवक

गणोंको उनका यत्किंचित् सेवाका दुर्लभ मौका मिला न मिला इतनेमें हा! दुर्दैव! कालके क्रूर पंजे! किसलिये तूने उनको पकड लिया? शरीर नाशवान है इसलिये तूने उनका स्थूलका नाश किया लेकीन कालकामी महाकालको जाननेवाला वो स्वयं आत्म साक्षात्कारही था. उनका महान आत्माका स्पर्शभी करनेका रंच मात्र अधिकारभी तुझको है क्या? आप स्थूल रूपसे मृत होनेपरभी, अपने ज्ञान, विज्ञान, तत्त्व ज्ञानमें अजरामर जीवन्तही है. स्वामीजी और उनका पूज्य गुरुश्रीका प्रसाद उनका लिखित पुस्तकोंके अंदर ज्ञान स्वरूप आत्माको प्रवेश कराके परिवेषण करके गया है. उनका नाश तुझसे कभी हो सकेगा? कभी नहि. इसलिये संत पुरुषो अमरही है.

परम पूज्यपाद स्वामीजी भास्करानंदजीका परिचय हमारे पिताजीका दमका व्याधिका औषधोपचार निमित्तसे आजसे पचीस वर्ष पर हुआथा. उनका सहवासमें दीर्घकाल व्यतीत करनेसे उनका लौकिक और पारलौकिक अपार ज्ञानका सत्संग हमको मिला था. इसका परिणाम यह हुवा कि उनका श्रेयस् विषयक बहूतही वार्तालापसे हमारा परिचय विशेष दृढ होते रहा. स्वामीजीका पूज्य गुरुदेव श्री आत्मानंदजीका जीवन वृत्तांत इस "ब्रह्मसिद्धान्त" में अन्यत्र दिया गया है. वो त्रिकाल ज्ञानी थे. उसने. अपनी योगदृष्टिसे वे जान लिया था की लोगोंके भावि जीवनमें इतना बडा परिवर्तन हो जायगा जिसे वर्णाश्रम धर्म शिथिल होगा. उच्च और नीचका अभाव होगा. सर्वत्र सत्य समदृष्टि भावका प्रचार होगा. अखिल मानव जातिका संगठन होगा. भिन्न भिन्न जातियोंकी प्रजामे ऐक्य होगा. यही सब आजकल अर्थात् इतना समीप कालमे न होगा लेकीन प्रायः एक सदीके बाद होना संभव है. सभी मानव जातियोंमेंसे जाति-मर्यादा, पंथ, संप्रदाय जैसे मन्तव्योंकी आधार शिला निर्बल होती जायगी. एकताका पाया मजबूत होगा. परस्परमें झगडनेसे और इर्ष्या असूयासे बहूतही खोफ होगा. आखिर—जगतको सची शांति या सुख मिलेंगे. बुद्धिके अंतिम शिखर पर व्यवहारिक पूर्ण उन्नति पर पहूंचनेसेभी मनुष्य जाति देख लेंगी की वहांभी सत्य सुख शांति नहि है. तभी मानव स्वभाव मूलसेही सुखाभिलाषी होनेसे यही मालूम हो जायगा की अभी ऐसा धर्म होना चाहिये जो प्रत्येक जातिको अनुकूल हो सके और वो धर्म मनुष्य रचित नहि लेकीन कुदरतकाही नीति नियमानुसार सहज—स्वाभाविक होवे. (दृष्टांत-निद्रा यह प्रत्येक मनुष्यका स्वभावही है) ऐसा धर्म कुदरतके नीति नियमोंसे रचित, सृष्टिका आदि कालमे प्रचलित है और इनमें प्रकृतिका सर्वके लिये समान, अचल नियम काम कर

रहा है. ऐसा समानताके धर्मका सार–रहस्य रूपमें पूज्य स्वामीजी आत्मानंदजीने इ. स. १९२२ में अपने "तत्त्व दर्शन" ग्रन्थका चार भाग प्रकट करके जनताके समक्ष रख दीये हैं यह पुस्तक मुंबईका दैनिक "हिन्दुस्थान" का मालिक शेठ रणछोड़दास भवानदास लोटवालाने छपाके प्रसिद्ध किया था वही तत्त्वसिद्धान्तके फलरूप शेष रहे हुवे चार भागोंमेंसे "ब्रह्मसिद्धान्त" का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध अभी छपाया हुवा प्रकाशित होता है. पूज्य स्वामीजी भास्करानंदजीने वो पुस्तक छपानेका आरंभ कीये बाद तीन मासमेंही उनका देहोत्सर्ग हुवा है (ब्रह्मीभूत स्वामिजी इन पुस्तकोंको छपानेके लिये ही इस भूमिमें आये थे). 'ब्रह्म सिद्धान्त' का दो भाग और 'दर्शन संग्रह' का दो भाग इधर छपनेका था. 'ब्रह्मसिद्धान्त' का आशय यही है की मनुष्य कोईभी मत पंथ अगर संप्रदायका आश्रयके विनाभी सृष्टि नियमोंके और योगका अभ्यास करके आत्मकल्याण साध्य कर सकता है. इस दोनों पुस्तकमें तत्त्व निरूपण अनेक प्रकारसे समझाया है. भाषा शैलीभी बन सके इतनी सुगम और सरल रखी हुई है. इनमें दर्शाया हुवा मूत्र सिद्धान्त वांचकोंको सहज रीतिसे समझमें आवे ऐसी–भिन्न भिन्न पद्धतिसे समझाया गया है. ब्रह्मसिद्धांतका उत्तरार्द्धमें सार-रहस्य-होनेसे वांचकों उपरोक्त चारों भाग साथ साथ बांच लेंगे, तभी उनका मुख्य आशय समझमें आ जायगा. क्योंकि 'ब्रह्मसिद्धान्त' का पूर्वार्द्ध त्रिवादरूप कर्म उपासनाके मंडनसे पूर्ण होता है. और उत्तरार्द्ध ज्ञानकांडसे भरा हुवा है.

इस जगतमें तत्त्वज्ञानकी अभिरुची बहुत कम मनुष्योंमें होती है. लेकीन इस आर्य भूमिने यही ज्ञानमें सर्व खंड और देशोंमे उच्च स्थान प्राप्त कीया है. मैं कौन? यह जगत क्या? परमात्मा कीसको कहते है? इस विषयमें छोटेसे छोटे जीवभी कुछ न कुछ जानताही है. आर्य प्रजाने यही दुनियाका भोगोंको आदि कालसे नाशवान माना है. और आत्माही केवल सत्य, प्रिय और शाश्वत है ऐसा मानकर आर्योंने सदाकालसे सत्यकाही स्वीकार कीया है. इसलिये यह आर्य भूमि केवल भोग भूमिही नहि है लेकीन धर्मके साथ कर्म भूमिही है. इस कारणसे इस भूमिपर प्रत्येक युगमें धर्मके अंशरूप महान् दैवी व्यक्तियें जन्म धारण करके धर्मको पुनः पुनः जागृतिमें लाया करती है. इस नियमसे ब्रह्मीभूत स्वामीजी आत्मानंदजी और उनके विद्वान शिष्य पूज्य गुरु महाराज स्वामीजी भास्करानंदजी जैसे लाखोंमेंसे एक व्यक्ति, दिव्य संस्कारके साथ धीमान अगर श्रीमान् कुलमें पैदा होती है और अज्ञान अंधकारमेंसे धर्मका ज्ञान प्रकाशमें लाकर धर्मकी पुनर्जागृति करती है.

हिन्दु, मुस्लीम, पारसी, खिस्ती वगेरे तत्त्ववेत्ताओंका अनुभव ज्ञानको बराबर देखेंगे तभी यही मालूम होगा की प्रत्येक धर्मका सत्य एकही है. जो परम सत्य मनुष्यकी पांच स्थिति–स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्ति, तुर्या और तुर्यातीत–और तीन काल–भूत, वर्तमान और भविष्यमें नहि बदलता है वही सच्चा सत्य है. लेकीन सत्य वैसी छोटीसी चीझ नहि है जो विना प्रयत्नसे मील सके. एक बडे राजाके पास जानेवालेकोभी अनेक सुख दुःखका भोग देनाही पडता है. प्रत्येक पदे संकट उपाधियोमेंसे मार्ग करना पडता है. और अनेक पुरुषार्थके अंतमें भौतिक लाभ मीलता है. फिर इस जगतमें त्रिविध तापोंकी निवृत्ति और परम सुखकी प्राप्ति मनुष्योंको जो सत्यसे होती है उनके लिये कीतना बडा भोग देनेकी आवश्यकता है ? इसलिये विद्वानोंसे कहा गया है कि "**कभी शिरके बदलेभी इच्छित मूल्यवान चीझ मीलना बडा कठीन होता है**" इतनी दुर्लभ वस्तुकी प्राप्तिके लिये अवश्य बडा प्रयत्न करना चाहिये. इस कारणसे यही पुस्तकोंका पाठक गण अभ्यासपूर्वक वाचन करे यही योग्य है इस पुस्तकका पुनः पुनः वाचन और मनन किया जावे तभी इनका गूढ गंभीर रहस्य समझमें आवे.

विशेष, 'तत्त्व दर्शन' में बुद्धिवाद भरा है. इसलिये इनमें वेदांतका सिद्धान्तोका तर्क–युक्ति प्रयुक्ति–पूर्वक बताके कहां कहां खंडन मंडनभी कीया है. लेकीन 'ब्रह्म सिद्धान्त' में सत्य प्राप्ति किस प्रकारसे हो सके इनकी चावी दिखाई गई है. इसलिये जिसने 'तत्त्व दर्शन' नहि बांचा होवे वोभी 'ब्रह्मसिद्धान्त' मेंसे सार ग्रहण कर सकेंगे. 'तत्त्वदर्शन' तर्क–बुद्धिवादका विषय है और 'ब्रह्मसिद्धान्त' अनुभव गम्य है. इस कारणसे इसको फल–साररूप समझना उचित है. 'तत्त्वदर्शन' समझनेमें सुगमता होनेके लिये पुज्य स्वामीजी भास्करानंदजीने गुजरातीमें 'स्फुरणा' नामका पुस्तक 'तत्त्वदर्शन' का साररूप लिखके रखा है. उनकोभी छपाकर प्रकट करनेकी आखीर समयकी स्वामीजीकी इच्छा थी किंतु आर्थिक मंदी और संयोगोंकी प्रतिकूलतासे वो बृहद् पुस्तक छपानेकी योग्य स्थितिमें तेयार नहि हो सका है. फिरभी उनको तेयार करनेका प्रयास चलता है. परम पू. स्वामीजीकी दैवी आशिष होगी और परमात्माकी कृपा होगी तभी वो ग्रन्थभी प्रकट करके पूज्य गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करेंगे. इस ग्रन्थमें प्रायः हजारों पृष्ट हो जानेका संभव है. दश वर्षके सतत लिखनेका परिणाम रूप है और सरल भाषाके साथ सुगम रीतिसे समझ दी गई है. इसलिये 'तत्त्वदर्शन' नहि समझ सके उसके लिये अच्छा साहित्य मील सकेगा.'

उनको प्रकट करनेके लिये कुछ दीर्घकाल हो जायगा ऐसा लगता है और स्वाभाविक है इसलिये हम यहांही ठहरेंगे.

यहां लिखनेमें संतोष होता है कि पूज्य स्वामीश्री भास्करानंदजीका अनन्य शिष्यों रा. रा. भाई गौरीशंकर झवेरीलाल अंजारिया और भाई बलवंतराय हरिलाल वोराने यह ग्रन्थके प्रूफ संभाल पूर्वक तपासके छापनेके कार्यमें अति सहाय और सुगमता की है. उनके लिये वो दोनों भाईओंका और स्वामीश्री आत्मानंदजीका जीवन चरित्रका अनुवाद गुजराती परसे हिंदीमें करनेका लिया हुवा परिश्रमके वास्ते भाई सूर्यशंकर वृजदास शुक्कका अंतःकरणसे आभार प्रदर्शित करते हैं.

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

अज्ञानरूप अंधकारसे अंध शिष्यका नेत्र ज्ञानरूप अंजनकी शलाकासे खोला हैं ऐसा गुरुदेवको नमस्कार.

गुरुचरणरज,
माणेकबाई दादाभाई जे. दरोगा.
तथा
दादाभाई जे. दरोगाना
श्री ईष्टगुरुवंदन.

अनुक्रमणिका.

पूर्वार्द्ध.

उत्तरार्द्ध.

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध.	शुद्ध.
४–१०	करता हूं	करते हैं.
८–१६	दरोगाना	दरोगाका
७७–१८	जानरोंका	जानवरोंका
१२१–२७	इसमिये	इसलिये
१२६–१८	अंतःकरणरण	अंतःकरण.
१२९–६	स्यूल	स्थूल
१४७–१	ज़र्प	कर्प
१७९–१५	निष्कामककर्मी	निष्कामकर्मी
२१७–२३	नही सकता	नहीं जान सकता
२२४–	गुरुत्वाकर्पणविवेक	जीववर्णन.
२९१–२	अमाव	अभाव
४२८–२७	नहा	नहीं
४४०–११	यदवा प्नोति	यदवाप्नोति
४९३–१	....ति	श्रुति.
४७२	प्रमाणोपसंहार.	श्रुति विरोध-आचार्यमत.

पूज्य स्वामी श्री आत्मानंदजीका जीवनचरित्र.

परम पूज्यपाद स्वामी श्री आत्मानंदजी महाराजका जन्म विक्रम संवत १९११ में पतीयाला स्टेटमें नारनोल जिल्लाका महेन्द्रगढ (कानोड–फईजाबाद) में भार्गव ब्राह्मण ज्ञातिमें हुआ था. स्वामीजीके पिताका नाम बलदेवसहाय भार्गव और पितामहका नाम दिवान दोलतराम भार्गव था. स्वामीजीका अपना पूर्वाश्रमका नाम मुनशी हीरा-लाल था. स्वामीजीका पिता और पितामह देशी राज्यमें नौकरी करते थे. स्वामीजीके पितामह झझरकी रियासतका दिवान था और पिता उदेपुरकी रियासत तरफसे खेर-वाडा रेसीडन्सीमें वकील था. स्वामीजी अपनी युवावस्थामें उदेपूर (मेवाड) राज्यमें नौकरी करते थे. वि. सं. १९४० में पांच सात वर्ष एकान्त जंगलमें बीताये थे. स्वामीजीका देहोत्सर्ग ७८ वर्षकी वयमें हुआ.

स्वामीजीका बाल्यकाल और विद्यार्थी जीवन.

स्वामीजीका शिक्षणकी शुरुआत उनका घरसेही हुई थी. ५ वर्षकी वयमें नीति–धर्मका सूत्र वाक्यों कंठस्थ करवाया था. ६ वर्षकी वयमें भार्गव खानगी स्कूलमें दाखल कीया था. प्रथम हिंदी भाषा लिखने पढने सिख लीया, फिर पर्शियन (फारसी) भाषामें तालीम लीया. मगज तैयार होवे और व्यवहारमें उपयोगी होवे इस प्रकारका संस्कृत शिक्षणका आरंभ हुआ. जिसका संक्षिप्त हकीकत इस मुजब है:– प्रथम पुस्तक लघु कोश कंठ, नीतिके छंद कंठ, चिठ्ठी पत्र लिखनेकी पद्धतिका गद्य ग्रंथ, अंक संख्या, व्याकरण–नाम, विभक्ति, शब्द रूपावली, धातु रूपावली, क्रियापद,–गृह, राज्य और अन्य सामान्य विषयका कोश, अंकगणित, काव्यशास्त्र, निबंधरचना, विविध विषयोंका कठीन ग्रंथ, इतिहास भूगोल, सामान्य खगोल, अलंकार नीति और वर्तनका ग्रंथ, भूमिति, अक्षरगणित, काव्यरचना इत्यादिका शिक्षण प्राप्त कीया था. दरम्यानमें ८ वर्षकी वयमे उपनयन संस्कार कीया था जिसके पीछे कितनेक धर्म ग्रंथका अभ्यास कीया था.

स्वामीजी विद्याभ्यासमें बहुत नियमित थे. साथ साथ कसरत व्यायामभी करते थे. जो जो अभ्यास करते थे उनकी परीक्षा स्वामीजीके वडील वर्ग करते थे. स्वामी-जीके आहार विहार परभी बहुत निरीक्षण रहता था. इस प्रकार १६ वर्षकी वय तक अभ्यास करने पीछे स्कूल छोड दीया. इसके बाद ३ वर्ष, जो अभ्यास कीया था उनका व्यवहारमें उपयोग करनेमें व्यतीत कीया. दृष्टांतके लिये भूमितिका सिद्धान्तका

पिताजीने अपने साथ वैराग्यवान वृद्ध पंडित पाकशास्त्री रक्खा था. इनके संगसे स्वामीजी पर बहुत असर हुई थी. ऐसे ऐसे २० कारण उनका सन्यासी बननेमें सहायभूत थे. स्वामीजीको बाल्यवयमें कुरुड–खांसी हुई थी, जिनकी असर १४ वर्ष पर्यंत रही थी और जिसलिये सख्त पथ्यका पालन करना पडता था, जो उनका साधु स्वभाव बनानेमें सहायक हुआ. स्वामीजीको छोटी वयसेही जगतका रंगराग, खान पान, गान तान, हिलना मिलना, सुंदर वस्त्र वगैरेमें प्रीति नहि थी. इस कारणसे उनके घरमें रहनेवाले सबको यही निश्चय हो चूका था कि स्वामीजी कीसी समय संसर्ग छोडकर अपने पितामहके समान साधु हो जायँगे. स्वामीजीका माता पिताका देहांत वि. सं. १९३९ में हुआ था और गृह व्यवहारका कार्य स्वामीजीके ज्येष्ठ बंधु करते थे. स्वामीजी मात्र अपनी कमाईका जो द्रव्य संपादन करते थे वो सब अपने भाईको देते थे, और आप घरकी सब प्रवृत्तिमें उदासीन रहते थे. पूर्वके संस्कार, संगति, इतिहास, वैराग्यका ग्रंथ और अभ्यासका वो परिणाम आया कि वि. सं. १९५० में आप सन्यास ग्रहण करके गृहस्थ जीवनसे अलग हो गये. उनका सन्यास ग्रहण करनेका हेतु सन्यास लेने तक नहि मालुम हुआ, लेकीन पीछेसे बतलाया की इस कारणसे सन्यास ग्रहण कीया है. " संसार दुःखमय और नाशवान है, शरीरभी नाशवान है. दूसरी बाजुसे मैं कौन, कैसा और किस तरहसे ? मेरा आखिर क्या ? वो स्पष्ट नहि जाना जाता है. इनका निर्णयमें ग्रंथोंमें जो लीखा है उनका प्रमाण क्या? इसलिये विना परीक्षा नहि माना जाता है. सुनता है और ग्रंथोमें देखता है की कर्म, उपासना, विवेक वैराग्यके विना–अध्यात्म विद्या संपादन किये विना–उपरोक्त प्रश्नोका निर्णय–ज्ञान विज्ञान (अनुभव) वगैरेकी परीक्षा नहि हो सकती. इसप्रकारकी विद्या विशेषतः सन्यासीओंमें मिल सकती है. गृहस्थकी प्रपंच प्रवृत्तिमें इस विद्याकी प्राप्ति कठीन है. कोई विरलही प्राप्त कर सकते है. मैं वैसा नहि हूं." इस गूढ आशयके लिये उनको साधन संपत्ति कुछ न कुछ थी. विशेषतः वैराग्यकी अग्नि प्रचंड थी. अत एव सन्यास लेकर अपने गुरुके पास खेराड देशके पहाडोमें स्वामीजीने वास किया. स्वामीजीका गुरु महाराज स्वामीश्री ब्रह्मानंदजी जो अष्टांग योगी था वो उस समय खेराडके पहाडोमें निवास करते थे. स्वामीजीका उनका प्रथम मिलन गृहस्थाश्रममें उस पहाडमें हुआ था. स्वामीजी कितनेक समय पहाडोमें गुरुके पास रहा और वहां अभ्यास करते रहा.

पीछेसे गुरुदेवकी आज्ञा लेकर आप एकान्त अकीले जंगलोमें और पहाडोमेंर हने

लगा. स्वामीजीका वैराग्यकी कथा विस्तृत है. जिसलिये स्वामीजीने सन्यास लिया वोही जिज्ञासा पूर्ण होने परभी उनको निर्जन स्थान प्रिय था. गिरनारके उपर और इनकी परिक्रमाके पहाडोमें विशेष रहा था. और वहां दैवयोगसे किसी न किसी उनके पास शिष्य वृत्तिसे मनुष्य आते रहते थे और सेवा करते थे. एक समय स्वामीजीको विचार हुआ कि कुदरत पर रहनेसे जीवन व्यापार हो सकता है कि नहि ? इस परीक्षाके लिये ६ मास पर्यंत वनवास जीवनके लिये कुदरतका प्रयोग कीया. एक कौपीन (लंगोट) से दुसरा वस्त्र नहि, बरतन- पात्र साधनमें अपने हाथका उपयोग किया, कंद, मूल, फल अग्निमें पकाके खाना और जबी पानीकी तृषा होवे तबी नदीका बंध पर जाकर जल पान करते थे. वट वृक्षकी नीचे सागके पत्तोंका मंडप करके कुटीर जैसा बनाके रहा था. इस प्रकार छ मासके प्रयोगसे सिद्ध किया कि मनुष्यको जीतना जरुरत ज्यादा होता है उतनाही विशेष बंधन होता है मनुष्यकृत वस्तुके विना कुदरत परभी जीवन निर्वाह हो सकता है. इतना कहना वास्तविक है कि छ मास पूर्व तन मनका जो चांचल्य था वो छ मासके बाद न रहा.

जो कि निवृत्तिमें आपकी स्थिति थी लेकिन प्रवृत्तिका इसलिये ख्याल किया कि नाना धर्म-मत-पंथोकी परीक्षा होवे और आध्यात्मिक विद्या अल्प प्रयाससे सत्वर प्राप्त होवे वेसी पद्धतिकी योजना करना. इसलिये सृष्टि नियमोंका विचार करने लगा. उसी तप कालमें यहभी ख्याल उत्पन्न हुआ कि "अब तूं किस लिये जीवन रखते है ? यदि तन मनका योग्य उपयोग न होवे तभी जीवन व्यर्थ है." इस प्रकारके विचारोंसे पहाडोंका त्याग किया. और स्वतंत्र विचार हो सके वेसा निर्जन स्थान धांधलेश्वर जो जेतपूरसे चार कोस दूर है वहां निवास किया. यथाबुद्धि सृष्टि नियमोंके पर मनन किया. जितना प्रचलित धर्म-मत-पंथ ज्ञात थे उन सबका सृष्टि नियमोंसे तोल किया और विद्यार्थीओंको पढाता रहा. देशाटनमें प्रीति नहि थी. फिरभी अदृष्टवश प्रवृत्ति हुई. वि. सं. १९४५ से १९४९ तक देशाटन किया. इस समयमें लघु कौमुदी साधारण देख लिया. इस पांच वर्षमें सिंध, कच्छ, पंजाब, रजपूताना, गुजरात, मुंबई और काठीयावाडमें भ्रमण किया. कितनेक स्थलमें वैदिक रीतिसे संस्कार करवाया, धर्म कर्म उपासना और सामाजिक नीति विषयक व्याख्यान दीया. और जब जब फुरसद और साधन मिला तब तब फिरसे अनेक धर्म-मत-पंथोका ग्रंथ, वेदांत, न्याय, सांख्य, उपनिषद् वगैरे ग्रंथोका अभ्यास किया. तोरेत, इंजील (बाईबल) अवस्ता, वंदीदाद, कुरान, थीओसोफी, ज्ञान संहिता, जैन तत्त्वादर्श, संहान सूत्र,

उपयोग जमीन, खेत वगैरे माप करनेमें जाकर हिसाबी काम करना, व्यापारकी सरल परीक्षामें उत्तीर्ण होना, कोर्टमें वाद विवाद करना, वैद्य, हकीमके पास जाकर वैद्यकका ज्ञान लेना, पाकशास्त्र जानना और फारसीमें लिखने बोलनेका काम करना.

स्वामीजीका गृहस्थ जीवन.

उपर बताये हुए प्रकारका शिक्षण संपादन करनेके पहिले १९ वर्षकी वयमें गृहस्थ जीवनका आरंभ कीया. नव वर्षकी वयमें एक सुविख्यात गृहस्थकी पुत्रीके साथ लग्न हुआ था और १९ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कीया था. इस लग्नमे उनको चार संतति पैदा हुआ जिनमें एक पुत्री जीवन्त था. बाल्यकालमेंही त्यागीजीको दुसरें कोई विषयोंका शौख-रुचि नहीं थी लेकिन मात्र गणित विद्या, तत्त्व विद्या और अन्य कोई विद्याका खोज करनेका शौख था. अपने पिताकी लायब्रेरी (पुस्तकालय) में फारसी और हिंदी भाषाके बहूत ग्रंथ थे, वो सब स्वामीजीने वांचा था. उनमेंमे कितनेक ग्रंथके नाम इधर दीये जाते हैं, जैसे कि महाभारत, वाल्मिकी रामायण, पूर्वमिमांसा और पांच दर्शन शास्त्र (न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत) भगवद्गीता, श्रीमद् भागवत वगैरे पुराण, मनुस्मृति, उपनिषदों, पंचतंत्र, विदूर नीति, चाणक्य नीति, तवारीख फिरस्ता हिंद, मिसर और इरानका इतिहास, शंकराचार्य, सीकंदर, महम्मद साहेब वगैरोंका जीवनवृत्तांत, आयने अकबरी, और अद्भूत कोश जैसे बहूत ग्रंथका वाचन कीया था. इस ग्रन्थोंमें जो उपयोगका विषय समजमें नहि आता था वो दुसरेसे पुछ लेते थे. "मुसले अल अलुम जामे उल फनुन" नामे एक बडा ग्रंथ था जो धर्मके साथ प्रचलित अनेक प्रकारकी विद्या और प्रचलित अनेक प्रकारका हुन्नर उद्योगका समुचय था. इनका अच्छी रीतिसे मनन कीया और इनका वाचन करनेसे स्वामीजीकी बुद्धि अनेक विषयोमें दौडने लगी. वायु सागर (उसमें इथरका वर्णन है), सिद्ध पदार्थ विज्ञान, कला विज्ञान वगैरे ग्रन्थ देख लीया. टोमसन रुडकी कॉलेजमें दाखल होनेके लिये इंग्लिश प्राइमर और ग्रामर पढा. लेकीन किसी कारणसे उधर जा सका नहि. २० वर्षकी वयमें उदेपूर (मेवाड) राज्यकी नोकरीमें दाखल हुआ. प्रथम सरस्वती भंडार (विद्या खाता) में काम कीया. फिर रेवन्यु खातामें काम कीया. इ. स. १८७७ का दिल्ही दरबारके समयमें स्टेट तरफसे प्रबंधकके काम पर नियोजित होकर गये थे. उनके बाद उदेपूर राज्यका खेराड जिल्लाके गांवोंकी दरबंदी करनेका काम कीया और मेवाडका इतिहासमें दाखल करनेके लिये उस जिल्लाका इतिहास तैयार करके भेजा. इन दोनों

कार्यमें इस पहाडी प्रदेशमें अनेक प्रशस्ति प्राप्त की और जो इतिहास लिखनेमें और समय जाननेमें सहायक हुई. इस प्रकार करते हुऐ उत्तरोत्तर पदवी बढते बढते आखिर ज्युडीशीयल न्यायाधीश (नायब हाकीम) का पद प्राप्त कीया था. उस जिल्लामें मियाणेकी जाति ज्यादा होने परभी स्वामीजीके समयमें चोरी होना बंध हो गया था, क्यों कि पुराणे कायदेसे दंड नहिं करके केदकी शिक्षा करते थे. ऐसे कार्य करते हुए गृहस्थाश्रमके सुख दुःखका अनुभवभी कर रहे थे. ईश्वर स्मरण और संध्या वंदनमें स्वामीजीका प्यार था. कोई कोई समय पर हिंदी और उर्दुमें काव्यभी करते थे. व्यवहार विद्याके साथ स्वामीजीने प्रचलित विद्याकाभी मन्थन कीया था. जैसेकि ज्योतिष, रमल, केरल, जफर, मंत्र, जंत्र कीमीया वगैरेका अभ्यास कीया था.लेकीन इन सब विद्याओंमें कुछ ठीक सार या उपयोग है ऐसा स्वामीजीके दीलमें नहि आया. सायन्स शून्य होनेके सबबसे भावनाके विना उनका दुसरा कोई सत्य मूल्य नहीं देखनेमें आया. मात्र ज्योतिषमें, गणितमें सत्य मालूम हुआ. इस मन्थनका परिश्रममें वोभी जान लीया कि विश्वास और मानसिक शक्ति बहुत काम करते है. कयाफा–(सामुद्रिक–मस्तिष्क विद्या–अर्थात् मनुष्यका अंग परसे उनकी प्रकृति–योग्यता जाननेकी विद्या) स्वरोदय (शरीररक्षक विद्या–वर्त्तमान भविष्यका अनुमान) योग पद्धतिसे चक्र साधन, तैजस् विद्या. (मेस्मेरीझम) वगैरे विद्याकाभी अभ्यास करके योग्यताकी परीक्षा की थी. इन विद्याओंके लिये जैसा लोकमें कहा जाता है वैसी खुबी देखनेमें नहि आई तथापि सृष्टि नियमानुकूल तत्त्वोंका कुछ मूल इस विद्यामें है. और कितनेक अंशमें लोकोपयोगी हैं, ऐसा प्रतीत हुआ. सूक्ष्म सृष्टिका स्वरूपभी कुछ समझनेमें आया. थोडीसी वैद्य विद्याभी जान लिया. इन सब विद्याओंकी परीक्षा स्वामीजीने गृहस्थाश्रममें की थी.

स्वामीजीका सन्यास जीवन.

जब स्वामीजीकी वय १४ वर्षकी थी तब उनके ९० वर्षकी पितामही गुजर गये. इस मृत्युकी परीक्षाने उनकी मनोभूमिमें वैराग्यका बीजारोपण कीया. उनके पिताजी साधु संग करते थे जिस लिये उनको आंतरिक विचारोंमें उत्तेजन मिलता था. उनका पितामहभी युवावस्थामें साधु हो गये थे, जिसका वैराग्यबोधक वाक्यों का वारंवार मनन होते थे. उनका ज्ञातिबंधु रणजित भार्गव जो 'बाबा चरणदास' नामसे महम्मदशाह नादीरशाह बादशाहोंके समयमें सिद्ध ज्ञानयोगी भक्त हो गये थे, इनका वचनोका अभ्यास स्वामीजीनेकीया था. जब स्वामीजी परदेशमें नौकरीमें था, तब उनका

धर्म सूत्र, सत्यार्थप्रकाश, वेदभूमिका, सर्वदर्शन संग्रह, समुच्चय वगैरे शुमारसे १०००) ग्रंथ पढे थे. अंग्रेजी साहित्यवालेका संगमेंभी लाभ लिया जनरल सायन्स भी देख लिया और पेपरो (वर्तमान पत्र) काभी स्वाध्याय चालु रक्खा. देशकी दुर्दशा परभी ख्याल हुआ. दूसरे खंडोमें जाते हुए मित्रोंके साथ सोबत हुई और प्राचीन कालकी स्थितिभी ध्यानमें ली. तपकालमें जो नियमादि मगजमें उपस्थित हुए थे उसीके साथ फिरभी धर्म-मत-पंथोकी तुलना की और नोट करके रक्खा.

वि. सं. १८५० में एक दो गृहस्थको दुःखी देखकर उनको द्रव्य लाभ होवे इस हेतुसे "मानसिक योग (मेस्मेरीझम) का पूर्वार्द्ध लिखके प्रसिद्ध किया. इसकी दो आवृत्तिसे उन तंग हालतवाले गृहस्थोंको सहायता मिली. फिर एक गृहस्थका उत्तेजनसे "भ्रमनाशक" पूर्वार्द्ध ग्रंथकी रचना की और विना मूल्य बांट दिया. यहांसे स्वामीजी की परार्थ प्रवृत्तिका स्वरूप स्पष्ट होने लगा. स्वामीजीको मुसलमानी समाजका परिचय प्रथम (गृहस्थाश्रममें) हुआ था, और अभी आर्य समाज, जैन समाज, थीओसोफीकल सोसायटी वगैरे संस्थाओंके परिचयमें आये. उपदेश, व्याख्यान और ग्रंथ रचना निमित्तसे अपनी यथाशक्ति जन समाजकी सेवा करने लगे. ४७ वर्ष तक स्वामीजीकी शारीरिक स्थिति उत्तम प्रकारकी थी लेकिन पिछे तबियत खराब होने लगी. कोई समय सख्त बिमारी आती थी. फिरभी इस हालतमें कितनेक ग्रंथ तैयार किया. जैसाकी "भ्रम नाशक" उत्तरार्द्ध (परमार्थ दर्शन) वगैरे. धर्म प्रचारके कार्यमें कोई समय मुश्केलीभी आती थी वोभी सहन करके अपने कर्तव्य कर रहे थे. स्वामीजी कीसीके पास अपनी शरीर यात्राके लिये धनादिककी याचना नहि करते थे. अनायास जो कुछ प्राप्त हुआ, उसीसे संतुष्ट रहते थे. वि. सं. १९६० तक अपने पास द्रव्यभी नहि रखना वेसा वृत धारण किया था. लेकिन शरीरकी बिमारी, अशक्ति और किसी समय ग्रंथ रचनाका उद्देश वैसे अनेक कारणवशात् कुछ द्रव्य अपने पास रखनेकी जरुरत पडी थी. वि. सं. १९५२ से १९६८ तक स्वामीजीका ज्यादा निवास काठियावाडमें थे, इसलिये उधर विशेष प्रसिद्ध थे. फिरभी अप्रसिद्ध जैसे रहते थे, क्योंकि नामकी प्रसिद्धिसे ज्यादा अपना विचारकी प्रसिद्धि होवे वोही उनको विशेष इष्ट था. इसके लिये कितनेक ग्रंथमें अपने नामभी प्रसिद्ध नहि किया था. अध्यात्म विद्याका अधिकारीको एकान्तमे उस विद्याका उपदेश करते थे और जिज्ञासुके साथ इस विषय पर संवादभी करते थे. कितनेक पर धर्ममें गये हुए हिंदुओंको प्रायश्चित कराके फिर हिंदु बनाये थे. काठियावाडके साक्षर मणिशंकर रत्नजी भट्ट बी. ए.

को प्रायश्चित देकर स्वामीजीने पावन किया था. तटस्थ सारग्राही दृष्टि होनेसे और पक्षपात पर आग्रह न होनेसे स्वामीजीके विचारवाले अनुयायी मुसलमान, जैन, थीओसोफीस्ट, सनातनी और आर्य समाजीभी थे. स्वामीजी प्रचलित कोई संस्थाका, समाजका और सोसायटीका मेम्बर नहि हुआ. स्वतंत्र रहकर जो कुछ सेवा बन सकती थी वो की है. इ. स. १९०६ से कोई कारणवशात् उपदेश, कथा, व्याख्यान वगेरे प्रवृत्ति पर कुछ उपेक्षा हुई थी; इ. स. १९१२ से १९१४ तक मारवाड तरफ एकान्त सेवनके लिये इसलिये गये थे. वहां रहनेसे अपना अपूर्ण विशेषतः प्रिय ग्रंथ "तत्त्व दर्शन" "ब्रह्मसिद्धांत" सार रूपसे पूर्ण किया. जो अभी इधर करांचीमें छपाकर प्रसिद्ध होता है (१९३४). इ. स. १९१९ में कितनेक गृहस्थोंका आग्रहसे एकान्तवास छोडकर स्वामीजी पुनः काठियावाडमें आये थे. स्वामीजीने तत्त्व विद्याका बहुत अभ्यास कीया था. और तत्संबंधमें बहुत अन्वेषण कीया था. साथ साथ दूसरी विद्याओंका अभ्यासभी परीक्षा पूर्वक किया था. और प्रत्येक विषयका रहस्य बहुत अच्छी रीतिसे ज्ञात था. संक्षेपमें व्यवहार और परमार्थ दोनों रहस्यमें कुशल होनेसे कितनेक मनुष्यों स्वामीजीको आर्य तत्त्वज्ञ नामसे जानते थे. कितनेक गृहस्थ स्वामीजीको गुरु मानते थे. मर्हुम लींबडी ठाकोर साहेब सर यशवंतसिंहजी अध्यात्म विद्यामें स्वामीजीको गुरु मानते थे. वीरपूर ठाकोर साहेब सुरसिंहजी वर्माभी स्वामीजीको गुरु मानते थे. सन्यासीओंमें स्वामी शंकरानंदजी ३९ वर्षसे स्वामी भास्करानंदजी ३४ वर्षसे और स्वामीजी भूमानंदजी २१ वर्षसे स्वामीजीके परिचयमें थे और स्वामीजीको गुरु मानते थे और मानते है.

स्वामीजी जबसे जन समाजके संसर्गमें आया तबसे उनका वर्तन इसी प्रकारका मालुम होता था कि उनका आंतरिक हृदयको जानना मुश्कील था. बहुत दिनोंके सहवासके पीछे उनकी पहेचान हो सकती थी. कोई नहि समझनेवाले उनके बारेमें भूलसे अपना मत बांधके उनको कुछ ऐसा तैसा कहते थे. लेकिन स्वामीजी अपने सिद्धांतानुसार वर्तन करते थे. आप व्यवहारके लियेही व्यवहार करते थे, नहि कि उस कार्यसे बंधन पाते थे. इसलिये और अपने आपसे इत्थम् (ऐसाही) का भाव नहि आता था इसी कारणसे उनका आशय समझनेमें मुश्कील होता था. भाव बदलनेसे हर किसीकी कृति या शब्द आगे देखनेमें आते थे उससे दूसरे स्वरूपमें प्रतीत होते थे. असली रूपसे दूसरे रूपमें देखनेमें आते थे. इसलिये मात्र भावनाही उपयोगमें नहि आती इस बात पर उनका लक्ष्य था. और इसलिये

कोई उनको श्रद्धा भावना शून्य कहते थे इधर तक स्वामीजीके बारेमें जो कुछ लिखा गया है उस परसे उनकी प्रकृति, विचार और उनका रचा हुआ ग्रंथोंका वाचकोंको दिग्दर्शन कराके इस संक्षिप्त चरित्रको समाप्त करेंगे.

स्वामीजीकी प्रकृति.

(१) किसीका बहुत सहवासमें आनेसे उनकी प्रकृति जानी जाती है वो स्वाभाविक है. हरएककी प्रकृति सत्व, रज, तम युक्त होती है. स्वामीजीका मुख्य कफ प्रकृति होनेसे उनका तन, मन और वर्तन सामान्य (मध्यस्थ) दिखता था सत्त्व रज प्रधान था व्यवहार प्रवृत्ति कालमें रज और संतोष, शांति और ज्ञान प्रसंगमें सत्त्व गुण प्राधान्य होते थे.

(२) भावना सबमें होती है. भावना रहित जीवन हो सकता नहि है. फिरभी स्वामीजीकी भावनाका मूल स्वमहत्ताका उपयोग पर आधार रखते थे. वेसी स्थिति उनकी श्रद्धा की थी. उसीसे उनका रागादिकका विवेचन हो जाता है. इसलिये कह सकता है की उनकी हृदय भूमि लौकिक प्रेमसे शून्य होनी चाहिये क्योंकि प्रेमसे उपयोगकी परवा होती नहि है. निदान वेसा तो लौकिक प्रेम, दया, करुणा वा उपयोगके आकारमें परिणाम पाते है. इस प्रकारके प्रेमका उनका जीवनमें बहुत दृष्टांत है. तंग हालतवाले खानदान गृहस्थों, निराश्रित विधवा, गरीब विद्यार्थीओं और अनाथोंको अपने तरफसे दूसरेसे याचना करके सहायता की है. स्वामीजीमें दया इतनी बहुत थी की कोईभी उसके पाससे निराश होकर नहि जाते थे. एक समय छप्पनका दुष्कालमें जब स्वामीजी वीरपूर (काठियावाड) में थे, तब कोई भूखसे पीडित आदमी मध्य रात्रीके समय पर करुण रुदन करता था वो सुननेमें आया. उस रुदनसे स्वामीजीके मन पर बहुत असर हुई और उस वख्त आप रोटी पकाके वो क्षुधित आदमीको खिलाया और उनकी क्षुधा शांत की. अन्यका दुःख निवारणमेंभी ज्यादा संकट उनको अनेकशः (उपदेश और लेखनमे) आया था. लेकिन अपने निश्चयसे कभी चलित नहि होते थे.

(३) स्वामीजीकी व्यावहारिक प्रकृति विश्राम रखनेवाली थी लेकिन पारमार्थिक विषयमें शब्द प्रमाणमें विश्वास नहि रखनेवाली थी. क्योंकि उनका विषय तत्त्व ज्ञानका था, और सृष्टि नियम और उपयोगीताके भक्त थे.

(४) कामादि षड् शत्रुओं स्वभावतः मनुष्य मात्रको दमते हैं, उनमेंसे क्रोधादि पांच उनको वश करनेके लिये समर्थ नहि थे. लेकिन मध्यमें तीन वर्ष तक काम

वृत्तिका भय रखते थे, तथापि अंतिम कामादिक विश्वासपात्र नहि है ऐसा मानते थे.

(५) पिता और गुरुसे माताका विशेष भक्त थे.

(६) उनका व्यायाम और शरीर देखके राजसी और मगज देखके सात्विक भाव प्रतीत होता था जो पुराणी प्रथा चली आती है, उनका आग्रह नहि रखते थे. देशकालके अनुसार परिवर्तन करनेका और आगे बढनेका मतवाले थे.

(७) उनका संयम और नीतिकी प्रकृतिका आधार देशकाल और स्थिति पर थे.

(८) दुराग्रही और पक्षपाती नहि थे.

(९) खुशामत इष्ट नहि थी और करनेका स्वभाव नहि था. फिरभी वो एक मूल्यवान वस्तु है वेसा मानकर दूसरेका मन भंग नहि करनेकी कोशीश करते थे. इसलिये उनको नहि समझनेवाले कभी ऐसा मान लेते थे की जैसे खुशामत करते है.

(१०) किसी समयके लिये मनके संकल्प बंध हो जावे और क्षुधाके वश नहि होवे इन दो गुणकी उनमें कुदरती बक्षीस थी. यदि भूख लगनेसे अशक्ति और अनुत्साह होते थे फिरभी इसलिये उनको दीनता वा व्याकुलता होवे ऐसा कभी नहि बनता था. वेसा आप कहते थे.

स्वामीजीके विचार.

(१) धर्म-मत-पंथकी चर्चा विना पुछे स्वामीजी नहि करते थे. जब पुछनेमें आवे तब अंतमें ऐसा कहते थे कि "मेराही सत्य है, वेसा नहि लेकिन जो सत्य है वो मेरा है. इसलिये विना परीक्षा मेरा कथनको इत्थम्भावसे माननेका जरुरत नहि है." फिर अपने संगमे रहनेवालेकोभी ऐसा कहते थे की "जो कुछ मेरे पाससे शिक्षा ली होवे वो मेरी है वेसा नहि मान लेना. लेकिन जब वो सिद्ध मालुम होवे और परीक्षाकी त्राजुमे तुले तब उनको अपना करके मानना, और "मै ऐसा मानता हूं और समझता हूं." ऐसा कहना केवल मेरे पर विश्वास नहि रखना, क्योंकि "मुझे पंथ-संप्रदाय भाव इष्ट नहि है." इस कारणसे उनका सब शागीर्द स्वतंत्र होते थे.

(२) स्वामीजी शब्द प्रमाणको स्वतंत्र प्रमाण नहि मानते. इसलिये उन्होंने अपने कोई ग्रंथमें शब्द प्रमाणका आश्रय नहि लिया. फिरभी योग्य शब्दको उन्नति और व्यवहारका बडा साधन मानते थे और आर्य ऋषि मुनीओं और दूसरे खंडके धर्म मतवाले विद्वान् बुद्धिमानोंका अपनेको आभारी मानते थे.

(३) कार्यमे कारणपर पहुंचना वो उनकी पद्धति थी. बहुधा प्रत्येकको कुछ न

कुछ मानना पडता है, इसलिये कुछ न कुछ मान लेना चाहिये. वेसा उनका मन्तव्य नहि था. लेकिन जो सृष्टि नियमानुकूल परीक्षासे सिद्ध न होवे वो माननेमें नहि मानना ठीक है ऐसा उनका अभिप्राय था.

(४) अपनी व्यक्ति या वृत्तिको सर्वांगसे नई नहि मानते लेकिन अपनेको मनुष्य मंडलका परिणाम मानते थे, और इसको एक प्रकारके विकासवाद कहते थे.

(५) मनुष्यकी सीमा तक उनका मध्यस्थ एक नहि किंतु सृष्टि नियम संयुक्त प्रमाण और उपयोगके साथ अनुभव वो सच है, इसलिये केवल प्रत्यक्ष या अनुमान परही आधार नहि रखते थे.

(६) साध्य विषयका समाधान कार्य कारण भाव और उपयोगके साथ करते थे, उनके विना नहि स्वीकारते थे.

(७) उनको जब यह प्रश्न करते थे की सामान्य शिक्षणसे इतर विशेष शिक्षण कैसे प्राप्त हुआ तब वो नीचे बतलाया हुआ उत्तर देते थे.

" (१) कुदरतका दृश्य परसे. (२) अज्ञ (अज्ञान मनुष्य जीवों वगैरे) और बालकसे (३) जो नहि जानते है वा अल्प जानते है फिरभी अपनेको उस विषयका ज्ञाता मानते है उसकी पाससे. (४) किसी एकका उत्तम वा मध्यम आचार, विचार वा उच्चारसे उनका सब उत्तम वा मध्यम नहि मान लेनेसे (५) प्रथम मेरी दृष्टि प्रत्येककी सफेद बाजु पर जाती है ऐसी मेरी प्रकृति है उनकी काली बाजुपर पीछे जाती है. इस प्रकारका प्रकृतिका वहनसे मुझे बहुत समयपर नुकसानी सहन करनी पडी है लेकिन इस प्रकारकी प्रकृतिने मुझको बहुत बोध किया है. (६) ६ वर्षको वयसे मेरा जो आचार, विचार और उच्चार था, और मनुष्य स्वभावानुसार उनमे परिवर्तन होते थे उनमेंसे बहुत स्मरणमें होनेसे उनका हररोज मुकाबला करते रहा हूं और आजतक करता हूं. (७) इस तुलनासे अपनी और दुसरेकी अनुकूलता और प्रतिकूलताका यथा प्रसंग मुकाबला किया करनेसे. (८) मैं अपनी कमजोरीको दोष रूपमे नहि जानता था, उनका स्वरूप और लाभ हानि दुसरे सुमित्रोंको पुछनेसे अथवा उन्होंका कहनेसे. (९) कभी कभी अपना अंतरात्मा (कोन्स्यन्स) विरुद्ध करनी पडनेसे. (१०) तिरस्कार और हठ किये विना हर एक प्रकारकी संगत सविवेक करनेसे. (११) अपनी अपूर्णता, अज्ञान और कमजोरी सिद्ध होती जाननेसे, " सामान्यसे इतर विशेष शिक्षण मिलते है.

(८) सत्य एकही शुद्ध और कुदरतकी नीति है. दूसरी सब नीति जीव रचित है. और वो सब व्यवस्थापिका (प्रवर्तिका) है. मनुष्यने अपनी सोसायटीको सुख करनेके लिये और व्यवस्था रखनेके लिये बनाई और वो भिन्न भिन्न प्रकारकी है, बदलती रहती है वेसा अनुभवमें आता है.

(९) "जीने दे" "और जीव" 'कर, भर' "प्रत्युपकार कर" इन चार बातों व्यवहार दशामें स्वीकारते थे. इनका सार यही है कि मनुष्य अपना जानके लिये व्यवहारमें स्वतंत्र है. उनका तन, मनको नुकसानी न हो ऐसा वर्तन करे, लेकिन दूसरे का तन, मन, धनको नुकसान न पहुंचे वेसा वर्तन रक्खें क्योंकि (१) सृष्टिमें अपने माफिक दूसरेकाभी हक है (२) कर्मका फल अवश्य होना इसलिये जैसी करनी वैसी भरनी अवश्य है. (३) जन समाजकी सहायसे उन्नति प्राप्त हुई है, इसलिये उनका बदला देना चाहिये. अर्थात् यथा शक्ति जन समाजकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये. इनमें स्वामीजीका आग्रह था.

(१०) जो प्रचलित बनाई हुई रूढ रीतिका भंग करनेसे विशेष हानि होती हो उनका विरोधी नहि बनना चाहिये. किंतु क्रमशः उन्होंमें सुधारणा करना और न्यूनाधिकता करनेका कोशीश करना ठीक है.

(११) "माइट इझ राइट" यह नियम है; लेकिन उनकीभी सीमा है. और व्यवस्था होना उनका किनारा है क्योंकि उद्योग कालमें "राइट इझ माइट" का जय होता है. इसलिये शक्तिवादकी प्रवृत्तिसे पीछे शांतिवाद साम्राज्य होता है.

(१२) निवृत्ति यहभी एक प्रकारकी प्रवृत्ति है. प्रवृत्ति किये विना जीवन हो सकता नहि. योगी, ज्ञानी, राजा और रंककोभी कुछ न कुछ करनाही पडता है ऐसा कुदरतका नियम है. इसलिये यदि जीवन पर्यंत निष्काम (कर्तव्य रूपमें) परोपकार कर्म होवे तो विशेष उत्तम है. वेसा न हो सके तब उत्तम सकाम कर्म करना चाहिये और यहभी न हो सके तब तो अपनी अगर परको हानि होवे एसा कर्ममें प्रवृत्ति होगी और इसलिये दुःखमय जीवन होगा वेसा बोध होता है.

(१३) मनुष्यको जितनी योग्यता-शक्ति मिली है उनका परिणाममें मनुष्य क्या नहि कर सके ? सब कर सकता है. अत एव जीवन पर्यंत शिक्षण लेते और कर्म करते रहना चाहिये एसी उनकी मान्यता थी.

(१४) जो कुछ किया जाता है (अर्थात् जितना जीवन संग्राममें किया जाता

है) वो लौकिक सुख (प्रेयस्) किंवा पारमार्थिक सुख (श्रेयस्) के लिये किया जाता है. इस कारणसे मंतव्य सत्य और कर्तव्य हित विशेष ठीक है.

(१५) सामाजिक सुखमें अपना हितकामी समावेश होता है, इसलिये सामाजिक हित करते रहना चाहिये ऐसा स्वामीजीका मंतव्य था.

(१६) विना राजसत्ता प्रजाकी उन्नति नहि होती इसलिये राजा प्रजाकी एकवाक्यता होनी चाहिये, वैसा न होनेसे राजा प्रजाका और प्रजा राजाका हित साध्य कर सकेगाही नहि.

(१७) प्रमादवश किंवा अज्ञानवश किंवा संयोगके लिये भूल होवे तब पश्चाताप पूर्वक उनका स्वीकार करके फिर वैसा न होवे ऐसी कोशीश करते रहना यह बोध हमेश करते थे.

(१८) मनुष्य स्वभावानुसार उनका व्यावहारिक विचार यथा देश, काल, स्थिति बदलते रहने पर था परंतु सृष्टि नियमानुकूल होनेसे पारमार्थिक ख्याल अनुभूतिवश वर्षोतक बदला नहिं था, तथापि उनका वर्णन करनेकी शैलिमें कुछ परिवर्तन हुआ था.

(१९) अपनी जाति और कुलकी रीति प्रकृतिवशही नहि लेकिन देशकाल स्थितिके आधीन ऐसा मानते थे की साधु किंवा ब्राह्मण वा हरकोई जातिको अपनी कमाई खाना योग्य होवे, उनको भीख मांगना उचित नहि. मान लेवे की भीख मांगनेसे कुछ मामुली लाभ मीलता होगा तथापि वर्तमान कालमें भिक्षावृत्ति हानिकारक है.

(२०) समयका मूल्यको पीछाननेसे उनका पालन करते थे.

(२१) विस्मृति अगर आपत्तिकालके अपवादको छोडकर प्रतिज्ञा पालन करनेमे तत्पर रहते थे. लेकिन जब तन मन और मगज कमजोर हो गया तब अपनी प्रतिज्ञा पर आधार नहि रखनेका बोध देते थे.

(२२) साम–दाम–दंड और भेद–यह चारोमेंसे सामको भेदका भेदक कहते थे.

(२३) सोनेका समयको बाद करके आप निरुद्यमी कभी नहि बैठते थे. लेकिन कुछ न कुछ कार्यमें प्रवृत्त रहते थे.

(२४) प्रत्येक कथन, उपदेश वा ग्रंथ यथा देशकाल स्थिति वा व्यक्तिका उद्देशानुसार कहा जाता है या लिखा जाता है. इस कारणसे वक्ताकी दृष्टि और आशयको समझकर उन पर विचार करना चाहिये. और इनके पीछे वर्तमान देशकाल

स्थिति और व्यक्तिका अधिकार विषयमें त्याग ग्रहण करना कर्तव्य है. मात्र जल्पवाद वा वितंडावाद करके खंडन मंडन करना हानिकारक और द्वेषवर्धक हो जाता है.

(२५) स्वामीजीका कुल रामानुज (विशिष्टाद्वैत) संप्रदाय था और वर्तन स्मार्त संप्रदाय था. लेकिन स्वामीजी उनका अनुयायी नहि हुआ. किंतु जबसे समझ पैदा हुई तबसे नीचे बताया हुवा वैसा धर्मका लक्षण मानते थेः—

"कर्तव्य, ज्ञातव्य और प्राप्तव्यके लिये जो वर्तन किया जाता है उनका नाम सामान्य धर्म है (अर्थात् डयुटी—फर्ज). यह सबके लिये समान है किंतु विशेष धर्म सबके लिये समान नहि है, इतनाही नहि लेकिन एक व्यक्तिके लियेभी हमेश अनुकूल होवे ऐसा नहि है. धर्मका आधार सृष्टि नियम है और सुख उनका परिणाम है. कर्ता उनके लिये जवाबदार है."

(२६) वस्तुतः मनुष्य मात्र परतंत्र है. कुदरतकी परतंत्रतासे कोई बच सकता नहि है. पारमार्थिक स्वतंत्रता और सुख आध्यात्म विद्या याने विवेक ख्यातिसे प्राप्त किया जा सकते है.

(२७) स्वामीजीका सिद्धांत विलक्षणवाद है, अर्थात् पुरुष प्रकृति (शिवशक्ति,) चिदचित्, ब्रह्म माया, आत्मा अनात्मा, जीव अजीव, अधिष्ठानाध्यस्त, आधाराधेय, निमित्तोपादान, चेतन जड, द्रष्टा दृश्य, प्रकाश प्रकाश्य, ज्ञाताज्ञेय, उर्ध्वमूल—प्रथम कारण, शक्तिमान (एनरजीवाले) यह दोनो अनादि अनंत है. दोनोंका संबंधसे इस नाम रूपात्मक दृश्य जगतका उपचयापचय (क्रमशः बनना विगडजाना) रूप प्रवाह है, नाम रूप प्रवाह है, नामरूप (फोर्म, का विकासाविकास (उत्क्रांति अनुत्क्रांति–) समुद्रकी लहरीके समान होता रहता है षड् विकारके समान उत्पत्ति नाश होता जाता है. इन दोनोंका अस्तित्व प्रकार (सत्ता—हस्ती) में विलक्षणता है. इसलिये दोनोंका व्यवहारभी विलक्षणही है. शक्ति परिणामी है. शक्तिका अस्तित्व और उपयोग शक्तिवानके लिये होता है. पुरुषका अस्तित्वसे शक्तिका अस्तित्व भिन्न नहि है. लेकिन शक्ति अस्तित्वही पुरुषकाही अस्तित्व है (उपरोक्त सिद्धांतमें स्वप्न सृष्टि (द्रष्टा दृश्य) की व्यक्ति बतलाता है). जीव यथा कर्म पुनर्जन्मका पालन करते आया है—आता है और विकासाविकासका चक्रमें आता हुआ आखिर मुक्त होता है. मुक्तिका मुख्य साधन प्रकृति पुरुषका ज्ञान अर्थात् विवेकख्याति है. वासना (इच्छा) का अभाव वो उन्नति याने मुक्ति (श्रेयम्) है. मुक्त होनेके बाद मुक्त जीवकी

पुनरावृत्ति होती नहि है. श्रेयस्के लिये कर्म उपासना और ज्ञानकी अपेक्षा है. प्रेयस् (व्यावहारिक सुख) के लिये सत्यादि १० की और अच्छे अच्छे आचार विचारकी अपेक्षा है. लेकिन वर्तमानमें व्यष्टि (व्यक्ति) की ऐसी दुर्दशा है कि राजकिय, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक उन्नतिके विना प्रेयस्की वा श्रेयस्की प्राप्ति नहि होगी. ओर पूर्व प्रकारकी उन्नति स्वराजके विना नहि हो सकती. इसलिये किसी प्रकारसे प्रथम स्वराज प्राप्त करना अनिवार्य ओर आवश्यक है. विशेप करके परस्परके धर्म आचार और धंधे रोजगारमें विरोध दृष्टि नहि रखके सुधारणा .वृद्धि करना चाहिये. इससे प्रेयस्की प्राप्ति होगी प्रेयस् प्राप्त होनेसे, श्रेयस् प्राप्तिके लिये प्रथम कर्म उपासनाकी जरुरत है. इनकी प्राप्तिके लिये दूसरी भावनासे ज्यादा त्रिवाद (जीवेश्वर, प्रकृतिवाद, द्वैतवाद) उत्तम भावना है. उनके पीछे ज्ञानकांड–विवेकख्याति संपादन हो सकेगी.

(२८) पूर्व संस्कार और विकास क्रमको अनुमति देनेसे स्वामीजीका मुख्य मंतव्योंका किसीके साथ विरोध नहि है. किंतु सुधारणामें मत भिन्नता रखते है. इतना बराबर है की स्थिति और व्यक्ति अधिकारकी दृष्टिसे कथनकी शैलिमें अंतर बताता है, और इसलिये उनका लेख दूसरे रूपमें प्रतीत होता है.

(२९) जीव और मुक्तिकी दृष्टिसे सब धर्म–मतोंका एक संतोपकारक परिणाम नीकल आया है. (सांख्य योगमे उनका नमुना है). स्वामीजीका सूक्ष्म निरीक्षण और फिलोसोफीका नमुना सांख्य कर्मयोगमें है. इस ग्रंथकी अनेक बंगाली विद्वान, बंगाली पेपर और आर्य समाजके लीडरोने पेपरमें प्रशंसा की है. (बंगालीओंका अभिप्रायकी छपी हुई नकल कलकत्तामें मिलती है). स्वामीजीकी तर्क शक्ति और कल्पना असाधारण थे, इसबात आपके संसर्गसे और आपके रचे हुए ग्रंथोसे जाना जा सकता है.

स्वामीजीकी जीवन दशा और साधन संपत्तिका विचार करें तब आपने अपनी शक्तिसे ज्यादा कार्य किया है. इस बातभी आपका ग्रंथोंसे और पूर्ण जीवनचरित्र देखनेसे जाना जाता है.

स्वामीजीके व्याख्यानों हजारों मनुष्योंने सुना होगा. लेकीन उनका मुख्य विचार रीति सुमार १२५ मनुष्योंमें प्रचार पायी होगी ऐसा जान पडता है. तथापि उन्होका बनाया हुवा ग्रंथोंसे जन मंडकको बहूत लाभ हुआ है.

श्री स्वामीजी विरचित लेख और पुस्तकें.

स्वामीजीने छोटे वडे सब मिलके ३० लेख और पुस्तकें रचे हैं. इन सबका विस्तारसे वर्णन न करते यहांपर नाम मात्र विगतसे लिखते हैं. इन ग्रंथोंमेंसे कितनेक हिन्दी, कितनेक गुजराती, कितनेक उर्दु और कितनेक संस्कृत और एक अंग्रेजी है. स्वामीजीके मूल ग्रंथोंपरसे अंग्रेजी और गुजराती दूसरेने भाषांतर कीया है. नीचे दीये गये टीप्पणमे ग्रंथोंकी संक्षिप्त विगत दी है. सब पुस्तकोंमेंसे जो अभी मिलते नहि है वो और जो मिल सकते है वो टीप्पणमें वताया है. हजुन कितनेक ग्रन्थ छपाये विना पडा है.

१. मानसिक योग (पूर्वार्द्ध)—विना औषधी रोग दूर करनेकी कला सिखाता है. योग्य विद्याका कितनेक चमत्कार, विश्वदृष्टि वगैरेका वर्णन करता है. वैद्य डॉक्टर जो चमत्कार जाननेकी इच्छा रखते हैं, और जो मेस्मेरीझम वगैरे जानता है उन्होंके लिये अति उपयोगी है. २३ फॉर्म, भाषा हिंदी, आवृत्ति दूसरी मूल्य रु. २) अभी मिलता नहि है.

२. भ्रमनाशक (पूर्वार्द्ध) धर्म जिज्ञासुओके लिये वहुत कामका है. इनमें प्रथम प्रश्नोत्तर, पीछे उपदेश लक्षण, वगैरेसे धर्मका वहुत अच्छी रीतिसे निर्णय कीया है. ५६ फॅार्म, भाषा गुजराती, आवृत्ति ४ थी, मूल्य आने १२) मिलनेका पत्ता—शेठ रणछोडदास भवानदास लोटवाला, डंकनरोड, फलावर मील–मुंबई.

३. भिक्षुक निबंध—इसमें प्रथम भिक्षावृत्ति कैसे उत्पन्न हुई वो और सच्चे भिक्षुकका लक्षण वताया है. प्रचलित कितने प्रकारके भिक्षुक है वो वताया है. उनका किस प्रकार प्रबंध करना उसकामी सूचन किया है. देश हितेच्छुओके लिये वहुत उपयोगी है. १६ फॅार्म, भाषा हिन्दी, प्रथम आवृत्ति, अभी नहि मिलता. मूल्य रु. ०–८–०

४. अद्वैत दर्शन—पूर्व पक्ष रूपसे प्रचलित वेदांत और अन्य मतोंका दिग्दर्शन. ४० फॅार्म, भाषा हिन्दी, प्रथम आवृत्ति, मिलनेका पत्ता–मुलचंद जीवन शेठ, वीरपूर स्टेशन,–काठियावाड. मूल्य रु. २)

५. व्यवहार दर्शन—जन्मसे मरण पर्यंत वर्णाश्रम वगैरेका व्यवहार, भाषा

गुजराती. इसकी भाषा स्वामी भास्करानंदजीने सुधार दींहै. और वेद मंत्रोकी नोटभी उसके तरफसे शामिल की गई है. फॉर्म ४१, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति, मूल्य रु. २-८-०

६. रामरटण—मन वशीकरणका उपाय-मनको स्थिर और समतोल बनानेकी कला. फॉर्म २, भाषा गुजराती, आवृत्ति दूसरी, मिलनेका पत्ता—दवे अनंतराय माधवजी, हाल कराची. मूल्य आ. २)

७. ज्योति दर्शन—चित्त निरोध उपाय २ फॉर्म, भाषा गुजराती आवृत्ति दूसरी, मिलनेका पत्ता—दवे अनंतराय माधवजी, हाल कराची. मूल्य आ. २

८. प्रकृति विचारणा—व्यवहार दर्शनका ४३ प्रकरण. उत्तम मनुष्य बननेका उपाय. फॉर्म १०, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति, मिलनेका पत्ता—दवे अनंतराय माधवजी, हाल कराची, मूल्य आ. १२)

९. आर्य कर्तव्य—नित्य और व्यवहारोपयोगी बोध. ३ फॉर्म, भाषा गुजराती, आवृत्ति ४ थी, मिलनेका पत्ता—दिवान साहेब, लींबडी (काठीयावाड) मूल्य रु. १)

१०. भ्रमनाशक (उत्तरार्द्ध)—जिज्ञासु और मुमुक्षुके लिये अति उपयोगी. अध्यात्म विद्या, प्रकृति पुरुषका विलक्षणवादको गतिमे वर्णन. फॉर्म ६०, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति, मिलनेका पत्ता—दिवान साहेब, लींबडी (काठीयावाड) मूल्य रु. १)

११. बलदेव माला—आर्य कर्तव्यका मूल. फॉर्म ५, भाषा उर्दु, प्रथम आवृत्ति, मिलनेका पत्ता—बी. बी. भार्गव महेन्द्रगढ पतीयाला स्टेट.

१२. रमुज हकीकत—जीव विवेक. फॉर्म १, भाषा उर्दु, प्रथम आवृत्ति मिलनेका पत्ता—बी. बी. भार्गव, महेन्द्रगढ पतीयाला स्टेट.

१३. तत्व निर्णायक—सृष्टि नियमोंका संग्रह. फॉर्म १॥, भाषा हिन्दी, प्रथम आवृत्ति, मिलनेका पत्ता—बी. बी. भार्गव, महेन्द्रगढ, पतीयाला स्टेट, मूल्य आ. ४

१४. सांख्य-कर्मयोग—सृष्टि नियमों-धर्म और फिलोसोफीका परिणाम. हिंदी भाषा प्रथम आवृत्ति फॉर्म ५, उसका अंग्रेजी भाषांतर स्वामीजी भास्करानंदजीने प्रसिद्ध कराया है. फॉर्म ७, भाषा हिन्दी

अंग्रेजी, प्रथम आवृत्ति, ठक्कर शिवदास चांपसी मजगाम, अंजीरबाग माउंट रोड–मुंबई

१५ थीओसोफी तंत्र—थीओसोफीका मंतव्यकी पीछान कराता है. स्वामी शंकरानंदजीने विशेष विस्तारके साथ प्रसिद्ध कीया है. फॉर्म १६, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति.

१६ मूर्ति परीक्षा—मूर्तिपूजा संबंधमें समालोचना. फॉर्म २३ भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति, पुस्तकाध्यक्ष आर्य प्रतिनीधि सभा काकडवाडी, गीरगाम–मुंबई. मूल्य आने ६)

१७. स्त्री शिक्षा—स्त्रीओंके लिये कर्तव्यका उपदेश. व्यवहार दर्शनका एक प्रकरण. फॉर्म २, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति.

१८. अनार्य आर्य—जो अनार्य होवे वो आर्य हो सकते, तत्संबंधी विवेचन है. फॉर्म २, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति.

१९. अमर आशा—सद्गत मणिलाल नभुभाईका अंतिम काव्यकी टीका फॉर्म २, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति.

२०. आर्य संवत—मानव मंडलके संवतो और सृष्टि उत्पत्तिकालका निर्णय. फॉर्म ३, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति.

२१. भारत चिकित्सा—शोध. फॉर्म १, भाषा हिन्दी, प्रथम आवृत्ति.

२२. तत्त्वदर्शन (चार अध्याय, संक्षेप साररूप)—सृष्टि नियमोंसे सब मत–पंथोका शोधक. फॉर्म ६ भाषा संस्कृत, प्रथम आवृत्ति

२३. ब्रह्म सिद्धांत (संक्षेप साररूप)—अध्यात्म विद्याका जिज्ञासुओंके लिये उपयोगी. फॉर्म १॥, भाषा संस्कृत, प्रथम आवृत्ति.

} अ. ब. जी. स्वामी, विरपूर स्टेशन, (काठीयावाड) मूल्य आ. ८

२४. व्यवहार शिक्षक—शंकाओको दूर करके सत्य धर्म बतानेवाला, यथा नाम. फॉर्म २, भाषा गुजराती, प्रथम आवृत्ति.

२५. कर्ममिमांसा—कर्तव्य कर्म विषयका निर्णय. फॉर्म २०, भाषा हिन्दी.

२६. जाति मिमांसा—जातिका सिद्धांतोका निर्णय. „ „

२७. मानसिक योग—(उत्तरार्द्ध)—सूक्ष्म मानसिक सृष्टि संबंधमें विवचन, फॉर्म ४० भाषा हिन्दी.

२८. तक़्दीम गणेश—सूर्य, चंद्र, तीथि, वार अंग्रेजी मुसलमानी फॉर्म २०, भाषा उर्दु.

२९. तत्त्वदर्शन (४ अध्याय)—अलग अलग २ पुस्तकोंमें, दरेक भाग रॉयल अष्टपत्री शुमार ७२+६४ फॉर्म (५७६+५०० पृष्टसे उपर) प्रथम आवृत्ति. हिंदुस्थान पत्रके मालिक-मुंबई. अभी नहि मिलता.

३०. ब्रह्मसिद्धांत—(पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध कठ्ठा बंधेला), रॉयल अष्टपत्री फॉर्म ६५, (पृष्ट ५२०) प्रथमावृत्ति. मूल्य ग्लेइड कागज कपडेकी. बंधाई रु. ५), अनग्लेइड कागज सादी बंधाई रु. ४) जो जो विद्वानोंने तत्त्व दर्शन तथा इस ब्रह्म-सिद्धांत दोनों ग्रन्थका विवेचन स्वामिजीके मुखसे सुना है वो कहते है कि भविष्यमें यह सप्तम दर्शन शास्त्र गीना जायगा. और उसकी कदर ५० वर्ष पीछे होगी. इस ग्रन्थोंके पढनेसे दुनियाके सब धर्मोंका सत्य सिद्धांतका निर्णय और सब सिद्धांतोंका ज्ञान हो जाता है. जो विद्वान है, तर्कवादी है और संशयात्मक है उनका समाधानके लिये यह दोनों तत्त्व विद्याके उत्तम ग्रन्थ हैं. मिलनेका ठिकाना—

दादाभाई जे. दरोगा, नं. १९, पारसी कोलोनी, न्यु बंदर रोड—कराची. अथवा

गौरीशंकर झवेरीलाल अंजारिया, नं. ८ स्वामीनारायण चाल,—कराची.

ॐ

ब्रह्मसिद्धान्तः

पूर्वार्द्ध.

भूमिका.

मङ्गल–शालिनी.

तत्त्वज्ञानां सज्जनानां समानं, सत्यं लक्ष्यं चैकमस्मात्प्रणौमि ।
इष्टस्यैषां सद्गुणानां निधीनाम्, सत्कारोऽतः स्यादयोग्यो विचारः॥१॥

भाषार्थ–दोहा—

तत्त्वदर्शि सज्जनों का, लक्ष्य समान निदान;
नमस्कार उनको करूं, सद्गुणकी हैं खान ॥१॥
हो गया उनके इष्टका, नमनेसे सत्कार;
नहिं आवश्यकता यहां करना शोध विचार ॥२॥

शालिनी और दोहे का भावार्थ.—तत्त्वज्ञानी सज्जनो का समान, सत्य और एक लक्ष्य होता है; इसलिये मैं उनको नमस्कार करता हूं; इस नमनसे उन सद्गुणो की खान के इष्टका भी सत्कार हो जाता है. अन्य * शोध विचार करने की इस प्रसंगमें आवश्यकता नहीं है ॥ (उत्तर सूत्र संस्कृतमे जुदा हैं) ॥१॥

नामी का अनुभव होनेसे "ब्रह्मसिद्धांत" ॥२॥ ब्रह्मज्ञान का प्रापक होने से "ब्रह्मदर्शन" ॥३॥ पूज्य गुरुका प्रसाद होनेसे उनके नाम से सुशोभित ॥४॥ भाषा-सूत्र-वृत्ति और विवेचनसे (सूत्रका) आशय ॥५॥ संस्कारके अनुशासनकी दृष्टि ॥६॥ उपयोग अनुपयोग यथारुची ॥७॥ विवेकादि साधनसंपन्न मनो-अभ्यासी, मुख्यअधिकारी ॥८॥ चिद्-अचिद्-विवेक, विषय ॥९॥ आत्मज्ञानजन्य परमशांति (श्रेय) प्राप्ति, परमप्रयोजन (१०) प्राप्य-प्रापकादि, संबंध ॥११॥ दुःख दोष अदर्शीको 'अग्राह्य' ॥१२॥ पामर विपर्यीकोभी, अनुकुल न होनेसे ॥१३॥ शब्द मात्रके विश्वासीकोभी, शब्दका ग्रहण न होनेसे ॥१४॥ तज्ञकोभी, अपेक्षा न होने

* ईश्वर, शक्ति या उनके अवतार या देव या दूत या वेदादि पवित्र ग्रंथों को या श्री गुरु-वर्य को नमस्कार क्यों न किया? समसम्प्रदाय या समधर्ममतनवाला तत्त्ववेत्ता हो तो? इत्यादि.

से ॥१५॥ पूर्वार्द्धमें,–कर्म उपासनाका अधिकार ॥१६॥ अधिकारी होनेमें परंपरा साधन होनेसे ॥१७॥ उत्तरार्द्ध में,–मनअभ्याससे आत्म-अनुभव ॥१८॥ और प्रकाश-प्रकाश्यका संबंध तथा व्यवहार ॥१९॥ विश्वासादि १४ प्रकारभी ॥२०॥ आरंभमें 'संज्ञाप्रकरण' अकारादि क्रमसे ॥२१॥ उसका अर्थ और उपयोग विवेचनमें ॥२२॥ मनुष्य क्षमापात्र, अपूर्ण होनेसे ॥२३॥ और सत्य मेरा,–न मेरा सत्य ऐसी भावना होनेसे ॥ २४॥ आर्याभेदः ॥ रुच्यल्पताऽपवादा विचित्रता भावने वापि ॥ एकान्तमनेकान्तमिव संदर्शयंति चैतानि ॥ २५ ॥ मुम्यार्थाः गम्यागम्यमनिश्चितमगम्यमथवाऽनिर्वचनीयमपि । एषामादरकरणं मतत्वल्पमतेर्हि तत्कार्यम् ॥ २६ ॥ भावार्थ— (दोहा.)—रुची, भावना, अल्पता, विचित्रता, अपवाद । अनेकांत एकांत को दरसावत कर वाद ॥ २५ ॥ गम्यागम्य अगम्य वा अनिर्वचनीय नाम । कहे अनिश्चित वा किसे मुझ लघु मतिका काम ॥ २६ ॥

संक्षेपमें सूत्रार्थ और भावार्थ–पहले छंद रूप सूत्रका अर्थ उपर कहा गया॥१॥ इस ग्रंथमे पूज्य स्वामी श्री ब्रह्मानंदजी महाराज का अनुभव है, इस लिये इस ग्रंथका नाम "ब्रह्मसिद्धांत" रखा गया है ॥२॥ जिसको इस ग्रंथ मे विचार अभ्यासद्वारा ब्रह्मज्ञान (आत्मानुभव) की प्राप्ति हो उसकी दृष्टिसे ब्रह्मप्रापक होने से इसका नाम "ब्रह्मदर्शन" कह सकते है ॥३॥ प्रकर्षेणापयति प्रापकः (विशेष करके जो प्राप्त कराने उसको 'प्रापक'+ कहते हैं.) दृश्यते अनेन स दर्शनं (देखा जाय जिस से सो 'दर्शन'.– अध्यात्मज्ञानका साधनवाला शास्त्र–'दर्शन'.) ॥३॥ इस ग्रंथमें जो कुछ लिखा गया है वोह पूज्य गुरु महाराजका 'प्रसाद' है इस लिये इस ग्रंथको उनके नामसे सुशोभित किया गया है–ऐसाही उचित था (इस लिये भी 'ब्रह्मदर्शन' है) ॥४॥ इस ग्रंथके मूल वाक्य आर्य (हिंदी) भाषामें हैं, उनका अनुवाद संस्कृतमें है, उनका आशय भाषा सूत्र वृत्ति और विवेचन से जाना जाता है ॥५॥ क्यों कि सूत्र तो सूत्ररूप* होते हैं. इस जये आर्यभाषा (हिंदी) के सूत्र और उनका अर्थ तथा विवेचन हैं. संस्कृत अनुवाद जुदा है ॥५॥ जो संस्कार (वा अनुभव) प्राप्त हुवा उसके 'अनुशासन' की दृष्टिसे यह ग्रंथ गूंथा गया है × ॥६॥

+ 'प्रापक' शब्दके कई अर्थ हो जाते हैं यहा लक्षक–लक्ष करानेवाले भावमें अर्थ है

* सूक्ष्म, गूढ़ेतुय, अनेक तरफ जानेवाले, पूर्वापरसे सघटित और लघु वाक्य

× मैं कौन, क्यों, कहांसे आया, क्या आया, मेरा परिणाम (result) क्या, मेरा और इस दृश्य का संबंध क्या? दृश्य क्या? और क्यों, कहांसे और कैसे? इसकी रचना कैसे? रची वा अथ कारा?

अर्थात् सो वर्तमान देश काल स्थितिकी दृष्टिमे गुंथा गया होनेसे उपयोगी हो पडे इतना ही माना गया है, इससे इतर अन्य कोई उद्देश नहीं है. क्योंकि प्राचीन उपनिपद् और दर्शन ग्रंथोमें इस विषयमें जितना कुछ कहा गया है वोह अल्प नहिं है. उनसे नवीन ज्यादा हम अल्प क्या लिख सकते हैं (ग्रंथके सू० १से १० तक देखो) ॥ ६ ॥ इस ग्रंथका उपयोग-अनुपयोग यथारुची है अर्थात् अधिकारी और पाठककी रुची-अरुचीपर आधार रखता है ॥७॥ (पाठक को इस ग्रंथके अवलोकनमें अपना समय देना चाहिये वा नहीं, यह पहेलेही ज्ञात हो जावे, इसलिये इस ग्रंथके ४ अनुबंध और क्रम लिखते हे)—जो विवेक, वैराग्य, शमादिषट्क् और मुमुक्षुता, इन चार (प्रसिद्ध) साधनसंपन्न हो और जिसने मनका अभ्यास किया हो वोह जिज्ञासु इस ग्रंथ का मुख्य अधिकारी [¶] है (२४७ सूत्रमें विवेचन है). इस अधिकार प्राप्ति के पूर्व जो कर्म वा उपासनाका अधिकारी हो उसके लिये "पूर्वार्द्ध" है और उसके उत्तराधिकारी के लिये "उत्तरार्द्ध" है ॥८॥ इस ग्रंथमें चिद् और अचिद् (चेतन-जड, आत्मा-अनात्मा, पुरुष-प्रकृति, जीव-अजीव)का विवेक यह मुख्य विषय (मजमून—सब्जेक्ट) है: ॥ ९ ॥ आत्मज्ञानसे जो परमशांति (श्रेय) होती है उस परमशांतिकी उसके अधिकारी को प्राप्ति हो, यह इस ग्रंथका मुख्य प्रयोजन है. (इस संबंधी शंका समाधान ग्रंथमें हैं) ॥ १० ॥ फल (परमशांति) और अधिकारी का प्राप्य (प्राप्त करनें योग्य) प्रापक (विशेष करके प्राप्त करे सो) भाव संबंध है: अधिकारी विचार करने योग्य होनेसे विचारक (विचारकर्ता) और विषय विचारणीय है इस लिये अधिकारी और विषयका विचारक-विचारणीयभाव संबंध है. ग्रंथ और विषयका प्रतिपादक-प्रतिपाद्यभाव संबंध है. विचारद्वारा ग्रंथ ज्ञानका जनक है इस लिये ग्रंथ और ज्ञानका जन्य-जनकभाव संबंध है: इत्यादि संबंध हैं ॥ ११ ॥ जिसकी संसार के दुःख और उसके गुह्य दोषों पर कभी खास दृष्टि न गई हो उसको यह ग्रंथ अग्राह्य है (उसको अवलोकन करनेकी जरुरत नही है) क्योंकि उसकी रुचि के अनुकुल नही होगा ॥ १२ ॥ जो सर्वथा अशिक्षित हैं किंवा संसारी विषयों मेंही रचा-पुचा—विषयासक्त है उसको भी अग्राह्य है, क्योंकि उसके अनुकुल नही है ॥ १३ ॥

कोई अधिष्ठान है वा स्वयं है? इतना जान्ने पीछे भी हमारा कर्तव्य क्या? इनका भान होना और परिणाम निकलने पर तदनुसार वर्तना, यह इस ग्रंथका उद्देश है; सो यथानिश्चय उन संस्कारों की प्रसिद्धि ही दृष्टि है.

[¶] इसी ग्रंथका "पूर्वार्द्ध" कर्म उपासनाके अधिकारी वास्ते है अर्थात् अधिकार प्राप्ति का अंतरंग साधन पूर्वार्द्धमें है, इसलिये 'मुख्यअधिकारी' पद लिखा है. अतः अनुबंधसंबधमें शंकाको अवसर नहिं है.

जो केवल स्वमान्य शब्दप्रमाण (अनुकुलात-ऑथॉरिटी) × मात्र पर ही विश्वास रखते हैं अर्थात् अपने वा परके स्वतंत्र विचार के अवसर नहीं देते वा नहीं दे सकते उनको भी यह ग्रंथ अग्राह्य है, क्योंकि इसमें कहीं भी प्रमाणरूप में शब्दकी साक्षी नही ली है ॥ १४ ॥ यद्यपि ग्रंथ का पहिला सूत्र ही अनुशासन पद द्वारा 'शब्दप्रमाण' का ग्रहण बता रहा है; अथवा यूं कहो कि इसमें जो कुछ लिखा है वो कहां से सीखा?' 'उत्तर'—यही मिलेगा कि पूज्य प्राचीन महात्मा मुनि और ऋषियोंके शब्दसे ही सीखा है (जिसका नमूना मात्र ग्रंथके अंतमें क. संज्ञासे अ. संज्ञा तक जुदा है) इसलिये "शब्दका अग्रहण," यह कथन नहिं भी बनता; तथापि विषयसिद्धि प्रसंगमें 'शब्दप्रमाण' बीचमें नहिं लिया है इतना ही (अपूर्वता) है. (उसका कारण ग्रं० सू. नं २ भू. सू. नं. १ में है) इसलिये शब्द अग्रहणका प्रयोग है. ॥ १५ ॥ जो विद्वान विवेकी अनुभवी हैं उनकोभी अग्राह्य है, क्योंकि उनको इसकी अपेक्षा नहिं है ॥ १६ ॥

यह ग्रंथ दो विभाग में विभक्त है. दोनों भागोंके सूत्र ५०८ हैं. उनमें शंकासूत्र एक भी नहिं है. तदंतरगत पूर्वार्द्ध (सू. १ से १८९ तक) में कर्म उपासना का अधिकार है; इस लिये जिनकी कर्म या उपासना वा उभयमें रुची है किंवा जो उसके योग्य हैं उनके लिये उपयोगी होना माना गया है ॥ १६ ॥ पूर्वार्द्ध याने आरंभ में 'कर्म-उपासना' प्रसंग रखनेका यह कारण है कि कर्म उपासना, ज्ञानके अधिकारी होने में साधन हैं (सू. ७०-२-३ का विवेचन देखो) ॥ १७ ॥ यद्यपि विज्ञानदृष्टिसे तीनों परस्पर के सहकारी हैं, एक दुसरेमें एक दुसरे का उपयोग है, तथापि अंतरंग (समीप) फलदृष्टिसे उनका क्रम है. अतः उनको साधन कहा है ॥ १७ ॥ उत्तरार्द्धमें मनके अभ्यास द्वारा आत्मानुभव हो, एसा विषय है, अर्थात् ज्ञान (सांख्य) योग है ॥ १८ ॥ औरभी (उत्तरार्द्ध में) प्रकाश (ज्ञानप्रकाश—पुरुष) और प्रकाश्य (अव्यक्त-प्रकृति) इन देनों के संबंध तथा व्यवहारका वर्णन है ॥ अंतमें सू. ३२७ से उत्तर फिलोसोफी वा उत्तर तत्त्वज्ञान है ॥ १९ ॥

इस ग्रंथ में विश्वासाद चौदा १३ क्रम हैं:– (१) विश्वास (भावनासे मानने में आया सो) वाद (२) आरंभवाद (उक्त त्रिवादको परतःवादकी युक्तिमें तोला गया सो) (३) अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद वा परिणामवाद अर्थात् कर्म उपासना सिद्ध हुये पीछे अनुभवी परीक्षकके समागमसे त्रिवाद के दूपण भूपण जानने

× Believer of the *Divine Revelation, Testimony, or the Prophecy*, or mear Verbal Authority, etc.

पीछे जो स्वतःवादद्वारा अनुभवमें आया सो) (५) ब्रह्मवाद–अभिन्ननिमित्तोपादानवाद (५) क्षणिकाद्वैतवाद (६) अभावजवाद (७) शक्तिवाद (८) भ्रमवाद (९) अध्यासवाद (१०) अध्यासवत्वाद (११) विलक्षणवाद (१२) मायावाद (१३) दृष्टिसृष्टिवाद (१४) बाधवाद (अवभासवाद)–ऐसे "सत्कार्यवाद" और "अध्यस्तवाद" रूप १४ का वर्णन है. ॥२०॥ सूत्रो में "ईश्वरादि" इस प्रकारके जो "गण-संज्ञा" सूचक शब्द हैं उनकी संज्ञाका विस्तार अर्थात् "गण प्रकरण" ग्रंथके आरंभके पहिले, और भूमिका के अंत विषे 'असंधि' रूप में लगा दिया गया है ताके वाचकवृंदको सुगमता हो ॥ २१ ॥ उस संज्ञा प्रकरण के अर्थ (अनुवाद) और उसका उपयोग हिंदी भाषाके सूत्रार्थ और उसके विवेचन में हैं ॥ २२॥

मनुष्य क्षमाका पात्र (योग्य) है क्योंकि अपूर्ण है–अल्प है (सू. २०० में विवेचन); में भी मनुष्य हूं, इस लिये विद्वान, बुद्धिमान, अनुभवी, तत्त्ववित्, सज्जन और परीक्षकों से क्षमा मांगने का अधिकारी हो सकता हूं ॥ २३ ॥ और "जो सत्य हो सो मेरा है" मुझको इष्ट है–ग्राह्य है.–नहिं कि " जो में मान बैठा हूं वोह मेरा सत्य है, "–ऐसी मेरी भावना है, इस लिये भी क्षमाका अधिकारी हूं ॥२४॥ आर्या और दोहा छंद रूप सूत्रका अर्थ यह है कि :— जो विषय 'एकांत' (निश्चित-सिद्ध-ठीक-सत्य) हो वोह भी जो अपनी रुची वा भावनाके प्रतिकुल हो वा अनुकुल न हो तो बुद्धिकी रुची वा भावना उसकी प्रतिपक्षी बनके यथा सामर्थ्य उसको, 'अनेकांत' (अनिश्चित-असिद्ध-असमीचीन-सत्य नहीं ऐसा) बतानेकी कोशिश करती है; इसी प्रकार, बुद्धिकी अल्पज्ञता वा अल्पता भी करती है ! (क्योंकि अधूरापनही अपनेको पूर्ण बताता है–खाली चना बजे घना–अधुरा घडा छिलके घना, ऐसा प्रसिद्ध है!) ओर विषयोकी विचित्रताभी एकांतको अनेकांत दरसनेमें निमित्त हो जाती है! अर्थात् दृश्य विचित्र! और साधन अपूर्ण ! इसलिये कुछका कुछ मान लिया जाता है! और हरेक विषयके साथ अपवाद भी लगा हुवा देखते हैं. सो यह अपवाद भी एकांतको बाद करके अनेकांत रूप दरसनेमें निमित्त होजाता है! इस प्रकार रुची, भावनादि, एकांत को भी अनेकांत दरसानेमें हेतु हो जाते हैं। तो फेर अन्यके लिये तो क्या कहना हे !!! (इसके विवेचनकी आवश्यकता नहीं समझते, क्योंकि बुद्धिमान व्यवहारानुभवी स्वयं जान सकते हैं) ॥२५॥ किसी विषयको 'अनिश्चित' बताना, वा 'अगम्य' समझना, वा 'गम्यागम्य' कहना वा, 'अनिर्वचनीय' (युक्ति और वाणीका विषय नहीं) है, एसा दरसाना, –अर्थात् अनिश्चित, अगम्य, गम्यागम्य वा अनिर्वचनीयत्वका आदर करना,–वोह मेरी

थोडी बुद्धिका ही काम है अर्थात् घटित है, क्योंकि अल्प है ॥२६॥ अन्य कोई इन शब्दोंको किसी विषय वास्ते हर कोइ दृष्टि से कहता है, परंतु मेरी तो उक्त दृष्टि है ॥२६॥ और ऊपर कहे हुये भावमभान क्षमा करना, अल्पताको सुधारना, विद्वानोंका काम है; इस लिये जिन ज्ञात विद्वानोंके संगमे और जिन ज्ञात वा अज्ञात विद्वान, बुद्धिमान अनुभवीयोंके बनाये हुये ग्रंथोंमे मुझे सहायता मिली है, उनके अनुग्रह का उपकृत हुवा हुं, उनको धन्यवाद देता हुवा अंतःकरणपूर्वक उनका उपकार मानता हूं, और अब जो क्षमादृष्टि रखके सुधारनेकी कृपा करेंगे अर्थात् अपनी अनुग्रह का पात्र बनावेंगे तो अपनेको उपकृत मानुंगा ॥

(शंका) शब्दप्रमाण का आसरा न लेनेगे तुम्हारा कथन भी अग्राह्य होगा तथा शब्दप्रमाणके विश्वासी इसका खंटन करेंगे तो यह लेख निष्फळ हो जायगा ॥

(उत्तर) पक्षपाती दुराग्रही ऐसा करे यह स्वाभाविक है, होता आया है; और असत् का खंडन प्रशंसनीय है. जो अन्यथा भी कोई खंडन करे तो भी मुझे उसका आदर करना उचित है क्योंकि शोधका उत्तेजक है. त्याग-ग्रहणमें शोधक की इच्छा; अतः मुझे उत्तर देनेकी आवश्यकता हो ऐसा में नहीं धारता; तो भी पूर्वार्द्धगत विवाद बोधक तथा उत्तरार्द्धगत विषयबोधक वेद उपनिषदादि के प्रमाण ग्रंथके अंत में टांक दिये हैं ताके शब्दप्रमाण के भगतको (भी) अनुकुल पडे ॥

ग्रंथगत हिंदी सूत्रोंका संस्कृतानुवाद है. उसकी हकीकत उसके साथ लिखेंगे. यहां इतना जनाना ठीक जान पडता है कि,—प्राचीन पद्धतिका हिंदीभाषावालोंको आभास हो, प्राचीन सूत्रकारोंकी महिमाका मान हो, उन्होने विद्याके रक्षणमें कैसा अदभुत प्रयास किया है, और रक्षणकी केसी उत्तम शैली निकाली है—इसका चितार सामने आवे; इस हेतुसे संस्कृतमें अनुवाद किया गया है. इसके सिवाय अन्य कारण वा लाभ नहीं है: क्योंकि वर्तमानमें संस्कृत भाषाका अति अल्प प्रत्युत नाममात्र प्रचार है. सूत्ररूपमें जो 'अनुवाद' है वोह सरल रूपमें है,—मानो ग्रंथकी "अनुक्रमणिका" होय नहीं? और भी अनुवादको सूत्रकी उपमा नहीं दे सकते. संस्कृत अनुवादकी पहिली आवृत्ति छप चुकी है; उसमें सू. १९०से १९६ तक जो हैं उनमें क्रमका और शैलीका फेरफार करना पडा है और भी कितनेक सूत्रोंकी कमी वेशी की गइ है; उसका कारण सुगमतार्थ सुधारना है; तथाहि इस मूल लिखित ग्रंथकी दो मोटी बुक थी, वे दूसरी जगे पडी थी (यह बात प्रथमावृत्ति संस्कृतके साथ जो हिंदी में नमुना छपा था उसमें जनाइ है) वे दोनो बुक (पूरा ग्रंथ) मुझे मिलनेपर कुछ फेरफार (सुधारा) करना पडा है. औरभी सुधारा या रचना करनेका

मुख्य सत्र आरण्यक अधिकारमें वांचोगे. परंतु इतना करनेपर भी आशय वा सिद्धांत में कहींभी न्यूनाधिकता नही है,-पूर्व आवृत्तिवत् ही है. तथापि क्रममें फेरफार करनेसे सूत्रों के वाक्योमे शब्दका फेरफार करना पडे यह स्पष्ट ही हैं. अतः संस्कृत और हिंदी सूत्र मिलानेवाले पाठक परीक्षकको 'आवृत्यांतर' संबंधी शंकामें उतरने की अपेक्षा नही है.

इस ग्रंथकी मूल रचना की दो बुक है. यहां साधनाभाव से (यह) उसका संक्षेपमे "सार" है याने थोडा विवेचन लिखा है. साधन सामग्री मिलने पर समग्र छप सकेगी.

वस्तुका लक्षण कथन श्रवणमात्र, उपयोगी नहीं होता, और जिसको लक्ष्य का बोध है उसको लक्षण जाननेकी अपेक्षा नहीं होती इस लिये-तथा इस ग्रंथोक्त कितनेक पदार्थोंका वर्णन प्रसिद्ध *भ्रमनाशक ग्रंथमें लिखा गया है और मूल बुकमे है इसलिये कितनेक प्रसिद्ध पदार्थोंके लक्षण इस जगे नहीं लिखे हैं. इच्छा हो तो उक्त ग्रंथोंमें देख सकते हो.

इस ग्रंथमें यथाधिकार शैली है, † इसलिये इसका मुख्यसिद्धांत तमाम ग्रंथ अवलोकन करने पर स्पष्ट हो जाता है अर्थात् विलक्षणवाद है. इस ग्रंथमें जहां 'भ्रप.' पद आवे वहां "भ्रमनाशक ग्रंथका पूर्वार्द्ध." जहां 'भु.' आवे वहां "उत्तरार्द्ध". जहां 'तद.' आवे वहां "तत्त्वदर्शन"-ग्रंथ, अर्थ कर लेना चाहिये.

गणसूत्र (संज्ञा-प्रकरण.)

अकारादिः—अक्षरके क्रमसे नामकथनः— (असधि रूपमे.)

अनवस्थादिः—अनवस्था. आत्माश्रय, अन्योऽन्याश्रय, चक्रिका, अव्याप्ति, असंभव, अपरिणामत्व यह सप्त. (सूत्र १३८).

अधिकारादि—अधिकार, देश, काल, स्थिति. यह चार (सूत्र ७१८).

आध्यात्मिकादि—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक.यहतीन.(सू ३२)

इच्छादि—इच्छा, प्रयत्न, न्याय, दया. यह चार. (सूत्र २०६).

---

† इस ब्रह्म सिद्धातसे पूर्व में इस विषयके जितने ग्रथ बनाये गये हैं उनमें यद्यपि परस्परमें मुख्य सिद्धांतका विरोध नही है, तथापि जो कहीं उपसिद्धांत वा शैली में भेद जान पडे, तो उन ग्रथोंके लेखको अधिकारी प्रति जानके बोह भेद उपेक्षणीय है; जैसे कि इसी एक ग्रथ में भी ऐसी पद्धति है. * यह ग्रथ गुर्जरभाषामें है.

इच्छितादि—इच्छित, अनिच्छित, परेच्छित. यह तीन. (सूत्र ४०२).

ईशादि—ईश्वर, जीव, प्रकृति. यह तीन. (सूत्र १२).

ईशांशादि—ईशांश-(उपहितांश, विशिष्टांश,) ईशशक्ति, ईशगुण, ईशधर्म, ईशज्ञान, ईशस्फुरण, ईशश्वास, ईशस्वभाव, ईशआज्ञा, ईश्वरावतार, और तिसका परिणाम. यह चार. (सू. ११०).

उत्पत्त्यादि—उत्पत्ति, स्थिति, लय. यह तीन. (सूत्र २७।१४४।२६७).

एषणादि—ईषणा, संस्कार, दृश्यबल, चेतन. यह चार. (सू. ३२२। ४०५).

ओपजनादि—ओपजन, उदजन, नाइट्रोजन, कनकादि ७२ तत्त्व. (सू ८).

कार्यकारणादि—कार्य-कारण, अंग-अंगी, अवयव-अवयवी, उपादेय-उपादान, परिणाम-परिणामी, साधन-साध्य, व्याप्य-व्यापक, तादात्म्य, समवाय, यह नौ. (सू. १४४).

कर्मादि—कर्म, ज्ञान, स्मृति, भोग. यह चार. (सू. २८४).

कृत्यादि—कृति, नृति, वृत्ति, स्वरति. यह चार. (सू. २९९).

काम्यादि—काम्य, निषिद्ध, प्रारब्ध, संचित, नैमित्तिक, नित्य, निष्काम. यह ७.

ग्रहादि—ग्रह, उपग्रह. यह दो. (सू. १९३).

चित्तादि—चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार. यह चार. (सू २९४-३००).

त्रिकालज्ञत्वादि—त्रिकालज्ञत्व, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमानत्व.यहतीन.(सू.२०७).

तदाकारतादि—तदाकारता, विषयस्वरूपता, राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, संस्कार, स्मरण, प्रज्ञा, अहंकार, कृत्यादि (चार), विषयग्रहण, प्रतिक्रम, करण, इंद्रियविनाभी ज्ञान, स्थूल शरीरविना भी त्यागग्रहण, शेषोपयोग, परशरीरोपयोग, परचित्ताकर्षण, परचित्तप्रतिबिंबग्रहण, और निरोध. यह चोवीस. (सू. २८८).

त्रिवाद—ईश्वर, जीव, प्रकृति, (तीनो अनादि अनंत). (सू. ३९८).

देवादि—सुर, असुर, यह दो. (सू. १६०).

निर्वाणादि—निर्वाण, व्यवहार, यह दो. (सू. ९०१).

प्रतिबंध—भूत, भावि, वर्तमान, यह तीन. (सू. २४९).

प्राप्य प्रापकादि—प्राप्य-प्रापक, विचारक-विचारणीय, प्रतिपाद्य-प्रतिपादक, कर्तृ-कर्तव्य. यह चार. (भू. सू. ११).

प्रभावादि—प्रभाव, असर, फोर्स, (force,) इम्प्रेशन, (impression,) इफेक्ट, (effect,) वायेब्रेशन (viobration). यह छ. (सू. २३३).

बीजादि—बीजरचना, वनस्पतिमें जीव, शाखामे उत्पत्ति, अमैथुनि सृष्टि, वीर्यमे जीव-प्रवेश प्रकार, जनक जननीसे तिनमे अन्यथा उत्पत्ति, दृश्यसे भिन्न आकृतिकी उत्पत्ति, सूक्ष्म शरीर क्या? एक स्त्रीके जोडीये, अंग वियोगपर उभय अंगका हिलना, मूर्च्छामें शरीरके ज्ञानका अभाव, कीट भृंगी होना. बीजमे गति, वृद्धि और स्वरूप बनानेकी योग्यता. यह तेरा. (सू. १२४).

भावनादि—भावना, प्रेम, वासना, कामना, स्फुरणा, तृष्णा, इच्छा. यह ७–२०३

भेद-ग्रहणादि—भेदग्रहण, पूर्वोत्तर करण-(कथन), तारतम्य, तोलन, योजन, वर्गीकरण, निषेध, विवेचन, चरमस्मृति, नियमन, व्याप्तिग्रहण, अनुमानकरण. १२

ममत्वादि—(प्रतिबंधक अंतरगत) ममत्व, मंदता, कायरता, कुतर्क, शंका, भय, आसक्ति, कुसंग, सिद्धिमोह, दुराग्रह. यह दश (वर्तमान प्रतिबंध.) (सूत्र २४९ गत).

योगादि—योगसाधन, नित्य-नैमित्तिक कर्म, निष्काम-परोपकार. यह तीन.

योग्यतादि—योग्यता, संस्कार, उपयोग, यह तीन. (सू. ४१७).

रागादि—राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, सुख, दुःख संस्कार, ज्ञान. यह अष्ट. (सू. १४ । १०० । १३१ । २९८ । १७१).

रचनादि—रचना, उपयोग, उपादानमें लय. यह तीन. (सू. १९९).

विश्वासादि — विश्वास, आरंभ, विशिष्ट, ब्रह्म—(अभिन्ननिमित्तोपादान), क्षणिक, अभावज, शक्ति, भ्रम, अध्यास, अध्यासवत्, विलक्षण, माया, दृष्टिसृष्टि, और बाधवाद. यह १४. (सू. ११ भू० २०).

विवेकादि—विवेक, वैराग्य, शमादिषटक्, मुमुक्षुता यह चार. (सू. २४७, भू. ८)

विश्वविराडादि— विश्व, तैजस्, प्राज्ञ, आत्मा, विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, परमात्मा, यह अष्ट. (सू. ३९६).

शब्दादि—शब्दादि पंचविषय, आकर्षण, ऊष्णत्व (गरमी), विद्युत्, तम, प्रकाश, गुरुत्व, देश, काल, व्यक्ति, जाति, अभाव, किरण और मन. यह अठारा. (सू. २१४).

शब्दादि पंचविषय— शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध.

शरीरादि—शरीर, तेजस्, ऊष्णता, विद्युत्, प्रकाश. यह पांच. (सू. ३०८).

शमादिषटक्—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान. (सू २४७).

शुद्धतादि—शुद्धता, निष्कामता, अपरवैराग्य, मलनाश, विक्षेपाभाव, एकाग्रता,

सिद्धि, विवेकबुद्धि. यह अष्ट. (सू. १९१–२०४)

सत्वादि—सत्व, रज, तम. यह तीन (सू. १४३).

सदादि—सत्, असत्, अभाव. यह तीन. (सू. १३१).

सर्वज्ञत्वादि—सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमत, सर्वोपरि, सर्वाधार, असीम, अमूर्त्त, निराकार, अखंड, अज, अमर, निरवयव, निर्लेप, निर्विकार, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु, इच्छाज्ञान प्रयत्नवान्, जगतकर्ता धर्ता हर्ता, अद्वितीय, सच्चिदानंदस्वरूप. यह बीस. (सू. १२).

सामान्यादि—सामान्य, विशेष, अभाव. यह तीन. (सू. १२७).

सालोक्यादि—सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य. यहचार. (सू. १९).

संयोगादि—संयोग, विभाग, द्रवत्व, कोमल, कठोर, गति, स्थैर्य, प्रभाव, परिणाम. यह नो. (सू. १३०).

संस्कारादि—संस्कार, स्वभाव, रज-वीर्य, आहार, संग, संबंध, परिस्थिति, आवश्यकता. यह अष्ट. (सू. ३२०)

स्वकृपादि—(अनुग्रह) *स्वकृपा, गुरुकृपा, विद्याबुद्धिकृपा, दैवकृपा. ४–२४६*

स्मरणादि—इष्टस्मरण, तदनुवर्तन, तत्प्रसादार्थ कृति. यह तीन. (सू. १७६).

स्वयंभ्वादि—स्वयंभू, सम, नित्य, निर्गुण, पर, पूर्ण. यह षट्. (सू. ४७९).

सभेद—इंद्रियोका भेद, शब्दादि विषयभेद, इंद्रिय और विषयका भेद. यह ३.

संस्कारउद्भावक—प्रणिधान, निबंध, अभ्यास, लिंग, लक्षण, सादृश्य, परिग्रह; आश्रय,–आश्रित; संबंध; आनंतर्य; वियोग; एककार्य, विरोध, अतिशय, व्याप्ति, व्यवधान, सुख, दुःख; इच्छा, भय, द्वेष; अर्थित्व, क्रिया, राग, धर्म, अधर्म, संख्या २७. (सू. २०७ के विवेचनमें).

ज्ञानादि—ज्ञान, दर्शन, भोग, करण, अहं, यह पंचवृत्ति. (सू. ३७९–८३).

ज्ञानत्वादि—ज्ञानत्व, दर्शनत्व, भोगत्व, करणत्व, प्रमाणत्व, अहंत्व, यह षट् (३७९ के विवेचनमें लगने वास्ते).

ज्ञातादि—ज्ञाता, द्रष्टा, भोक्ता, कर्ता, प्रमाता. यह पंच. (सू. ३७९-३८४).

ज्ञातृत्वादि—ज्ञातृत्व, द्रष्टृत्व, भोक्तृत्व, कर्तृत्व, प्रमातृत्व. यह पंच. (सू. ३७९).

ज्ञेयत्वादि—ज्ञेयत्व, ज्ञानत्व, ज्ञातृत्व, दृश्यत्व, दर्शनत्व, द्रष्टृत्व, भोग्यत्व, भोगत्व, भोक्तृत्व, करणत्व, कर्मत्व, कर्तृत्व, प्रमेयत्व, प्रमाणत्व, प्रमातृत्व, यह पंदर.

अथ ग्रंथारंभः (ब्रह्मसिद्धान्तारंभः)

अथ तत्त्वका अनुशासन ॥ भाषासूत्र * ॥१॥

सूत्रवृत्ति-वर्तमान कालविषे तत्त्वविद्याके बोध करनेकी आवश्यकता हो जानेसे उसका 'अनुशासन' करते हैं॥१॥ विवेचनः—× 'अथ' शब्दका, मंगलवाचक होनेसे और शिष्टाचार होनेसे भी प्रयोग है. "तत्त्व" अर्थात् जिज्ञासुको जो इष्ट-ज्ञातव्य-प्राप्तव्य माना गया है याने परमात्मा-ब्रह्म-मोक्षस्वरूप,-पूर्वके यथार्थ तत्त्ववेत्ताओंके बोधका "अनुकरण" है इसलिये "अनुशासन" † पदका प्रयोग है. (शंका) पिष्टपेषण क्यों? 'अशब्द' अर्थात् 'तर्कवाद' विद्यमान है इसलिये 'अनु' पदकी अपेक्षा नहीं, और यथामति मानने दो. इस लिये भी 'अनुशासन' की अपेक्षा नहीं ॥ (उत्तर ४ सूत्रमें):—

* अब याने शिष्यको 'जिज्ञासा' होने पर पूज्य बोधक (गुरु) की तरफसे "तत्त्वानुशासन" इसके जिज्ञासु श्रद्धालु विश्वासु शिष्य (अर्थात् प्रयोजक) के वास्ते शिष्यके अधिकारानुसार और उस दृष्टिसे है क्योंकि सू. २ से १० तकमें जो हेतु दिये हैं वैसी शिष्यकी वृत्ति है. (सू. ३६४ और प्रयोजककी भूमिका अंक २१४ देखो.) इसलिये दूसरेको उपयोगी अनुपयोगी, अन्यकी रुचीका पात्र वा अपात्र और अन्यकी दृष्टिसे दूषण भूषण, इन विकल्पोंको अनुत्पत्ति है. प्रयोजकने अपने प्राप्तसंस्कार प्रसारके अर्थ ग्रंथरूपमें उसको गुंथा है यह प्रयोजकका (पेटा-अन्तरगत) आशय है. भूमिकामें कहा गया है.

× "अथ" शब्दके परिभाषा और परिपाटिमें अनेक अर्थ लिये जाते हैं, यथा. अब,-वर्तमान, मंगलसूचक संकेत, आरंभमें शिष्टाचार, अधिकार प्राप्तिकाल कोश, वृद्धव्यवहार, परिभाषा इत्यादिपर ध्यान दिया जाय तो शब्द-तकरारको अवसर नहीं मिलता.

† "अनुशासन" के अनेक भावार्थ हो सकते हैं. प्रसंगमें यह आशय है कि,-ईश, केन, मांडुक्य जो उपनिषद् है उनके कर्त्ताको, उनके आशयके बोधक जो शास्त्र उन शास्त्रोंके बनानेवाले जो तत्त्ववेत्ता हुए हैं उनको तथा यति-भूप-यतिवर्यश्रीकी प्रसादीका प्रकाशवाला बोध इस ग्रंथमें है, और उस पूर्वसिद्ध तत्त्वविद्याका इस नवीन वर्तमान पद्धतिके अनुयायीओं (प्रयोजकादि)-को भी यत्किंचित् लाभ हो, ऐसी 'शैली'से इस ग्रंथमें कथन है, इसलिये 'अनुशासन' पदका प्रयोग है.

आर्यभाषामें (हिंदी जुबानमें) मूलसूत्र हैं जिनका अनुवाद सूत्ररूपमें संस्कृत भाषा विषे जुदा है यहां भाषा सूत्र लिखे जाने पीछे उसकी वृत्ति (अर्थ) है. उसके पीछे उसका विवेचन है. परंतु कहीं तो एक सूत्रकी वृत्ति लिखके अर्थ समाप्तिसूचक " " ऐसा चिह्न करके आगे विवेचन चलाया है और विवेचन समाप्तिपर सूत्रांक लिखा है और कहीं तो अनेक सूत्रोंकी वृत्तिके आगे सूत्रवृत्ति प्रति सूत्रांक लिखके इस समूह पीछे उनका क्रमशः विवेचन है. हरेक सूत्रके विवेचन पीछे उस सूत्रका अंकभी लिख दिया है. कहीं कहीं संगति निमित्तवश वा सुगमतार्थ सूत्रकी वृत्तीमें सूत्रार्थसे इतर शब्द लिखने पडे हैं. उनको ( ) कपाल चिह्नमें लिखा है. वे सूत्र वृत्तिके संबंधी-"सहकारी" है, ऐसा जानना चाहिये. ह्रस्व, दीर्घ और पद मिश्रित प्रचलित जैसे है यह टीका वा भाष्य या वृत्ति रूपभी नहीं है किंतु संग्रह रूपमें सार है.

'शब्द' विवादित हो जानेसे ॥२॥ 'अशब्द'में कोई लाभ न होनेसे ॥३॥ और स्वमतिमान्य होनेमें भी ॥४॥ नाना विभुवादवत् ॥५॥ (चारों सूत्रका अर्थ-वृत्ति—) तत्त्वविद्याके बोधक प्राचीन ग्रंथोंके अर्थमें अधिकारादि दृष्टिके कारण एक दूसरेसे 'विरोधी' वा 'अन्यथा' बोध होनेसे अथवा अन्य निमित्तोंसे तत्त्व संबंधी 'विवाद' हो पडा है; उस कारणसे जिज्ञासुको 'भ्रम' हो जाता है वा 'संशय' रहता है; इसलिये 'अनुशासनकी अपेक्षा' है ॥२॥ केवल 'अशब्द' (तर्कवाद) में युक्तिओंके बलाबलकी आपत्ति रहनेसे इष्टफल (तत्त्वलाभ) की प्राप्ति देखनेमें नहीं आती (और पूर्वमें यह विद्या प्रकाशमान हो चुकी है), इस लिये 'अनु' पदकी अपेक्षा है ॥३॥ तथाहि 'अशब्द' (मतिवाद) अर्थात् अपनी अपनी मतिमें जैसा जैसा आवे वैसा वैसा मान लेना, ऐसे मतवाद (बुध्धिवाद) में भी 'विवाद' वा 'अनेकांत' प्राप्तिसे इष्ट फल नहिं मिलता ॥ क्योंकि स्वमति अनुकुलही ग्रहण हुवा है; नहीं के अन्योंके सत्याशय या सृष्टिनियमोंको साक्षीमें लिया गया. इसलिये वोह मत, सत्यशोधक जिज्ञासुकी प्रवत्तिका विषय न होनेसे, अन्य प्रकारेण अनुशासनकी अपेक्षा है ॥४॥ उपरोक्त तीनों हेतुओंमें एक सूत्रसे उदाहरण देते हैं:— जैसेकि जीव, ईश्वर, देश, कालादि "नाना और विभु" हैं ऐसा पक्ष, शब्द, युक्ति और मतिमान्यताका विषय हो रहा है ॥ अर्थात् वस्तुतः "एक स्वरूपमें दुसरे स्वरुपका प्रवेश नहीं हो सकता" तो भी वैसा माना जाता है. सूत्र ४२७ के पूर्व स्वरूपाप्रवेशमें इसका विस्तार है॥५॥*

---

* अनादि, अविनाशी, स्वयंभू, अमिश्रित, अखंड, निरवयव, अपने आपमें असंयोगी, निर्विकार (अबदल), ऐसे पदार्थको 'तत्त्व' कहते हैं॥ तत्त्वज्ञान से परम शांति होती है इसलिये प्राचीन महर्षि उसका बोध करते आये हैं. ईश्वर (ब्रह्म-परमात्मा) जीव और प्रकृति यह तत्त्व माने जाते हैं. कोई एक ईश्वर को ही तत्त्व मानता हैं.

अभीतक तत्त्व विद्यामें वेद, उपनिषद, सबसे उंचे और उत्तम माने जाते हैं॥ दुसरे खंडों (योरोपादि) के निवासी जो विद्वान् फिलोसोफर-तत्त्ववेत्ता हैं उनमेंसे बहुधा वेद, उपनिषदोंको (वेदांत को) मान से याद करते हैं.

शब्दगतविवादका नमूना—वेदांतमें ४ महावाक्यों के नाम से प्रसिद्ध है उसमेंसे एक 'तत्त्वमसि' वाक्यको, जीव ब्रह्मकी एकताका बोधक, दूसरा अर्थवादरूप, तीसरा जीव ईश्वरका दासबोधक ऐसा त्रिविध अर्थ करता है. एक ब्रह्म स्वयं ही जगत् रूप हो गया, दूसरा मायासे जगत् रूप भासता है, वस्तुत. केवल कैवल्य-अद्वैत शुद्ध है, तीसरा ब्रह्म जीव प्रकृति तीनों जुदा जुदा हैं और ईश्वर जीवोंके कर्मानुसार प्रकृतिमेंसे जगत् बनाता है ऐसा अर्थात् अनेक प्रकारके भावार्थ हो रहे हैं॥ वैसेही अन्य (कुरान, पुरान, इंजिल, तौरेत, बाइबल वगेरे) ग्रंथोंके वाक्यार्थमें विवाद हो रहा है; यावत दिन जितना मतभेद है॥

(शं.) योरोप (Europe) अमेरिका (America) खंडोंकी प्रचलित सायन्स (Science) केमिस्ट्रि (Chemistry) से तत्त्वका बोध होने योग्य है. अतः 'अनु' पदकी अपेक्षा नही. (उत्तर ३ सूत्रोंसे):—**नूतन प्रवृत्तिमें भी ॥ ६ ॥ उसका विषय न होनेसें ॥७॥ ओपजनादि** (Oxygen, etc.) **वत् ॥ ८॥** वर्तमानमे जो सायन्सविद्या प्रचलित है उस प्रवृत्तिमेंभी वोह 'फल' (तत्त्वविद्याकी प्राप्ति और तज्जन्य शान्ति) नही मिल सकता ॥ ६ ॥ क्योंकि उसका विषय प्रस्तुत तत्त्व बोध नहीं है ॥ ७ ॥ जेसेके उसका विषय व्यावहारिक 'ऑक्सिजनादि' तत्त्व हैं. प्रस्तुत तत्त्व नहीं ॥ ८ ॥ रसायनीय प्रयोगसे जिसमें 'पृथक्करण' न पाया जावे उसे सायन्सविद्या 'तत्त्व' कहती है, यथा गंधकादि. तथाहि लोकोपयोगी जलके उपादान ओक्सिजन और उदजन (हाइड्रोजन) मेंसे ओक्सिजनको 'तत्त्व' मानती है, यह व्यवहारोपयोग दृष्टिसे है. अन्यथा ओक्सिजनका 'ओजन' बननेसे स्वरूपतः मूलतत्त्व' (Original substance or entity) नहीं कहा जा सकता. सोना वगेरे कोभी 'तत्त्व' मानती है. जोकि वस्तुतः अनूकंपौंड (Uncompound or unmixed) नहीं है. ॥ ८ ॥ (शं.) प्रचलित अनेक "संप्रदायें (Sects) तत्त्वका बोध करती हैं अतः अनुशासनकी अपेक्षा नही. (उत्तर) **प्रचलित संप्रदायोंमेंभी ॥९॥ परंपराकी आधीन होनेसे॥१०॥** वर्तमानमें जो अनेक संप्रदायें (पंथ-रीलीजीयन—मजहब—तरीके) हैं उनके मंतव्य वा शैलीमेंभी वोह 'फल' (प्रकृत-तत्त्वबोध) और शान्ति नही मिल सकता ॥९॥ क्योंकि वे परंपराकी आधीन है. ॥१०॥ संप्रदायके अनुयायी प्रचारक (आचार्य के कथन मात्रमे ही विश्वास रखते चले आते हैं. उसी विश्वासकी परंपरा होनेसे विश्वासके आधीन हैं. मूलके उद्देश, हेतु, देशकाल, स्थितिपर ध्यान नही देते. सायन्स, फीलोसोफी (Philosophy) वा सृष्टिनियमों को तो सुनना ही नहीं चहाते, तीनोंमे दूर भागते हैं. इसलिये शोध वा परीक्षा करनेकी तरफ नही चल सकते. इसी कारणसे विरोधी पक्ष मंतव्य—भावनावाली अनेक संप्रदाय हो रही हैं. अतएव उनसे तत्त्वबोध मिलनेकी आशा न रहनेसे अनुशासनकी अपेक्षा है. ॥ ९ ॥ (शं) वर्तमानका कालांतरकी शोधका 'परिवर्तन' होगा. (उ) इस विषयको आर्य ऋषिमुनि खूब शोध गये हैं, इसलिये "शैली मात्रके" सिवाय परिवर्तन हो ऐसा नहीं जान पडता; और उसीकी दूसरी शैलीमें अनुशासन है. कदापि 'अपूर्णता' निकले तो भविष्य सत्शोधके ग्रहण करनेमें आनाकानी करना, परीक्षकोंको उचित नहीं होगा और संप्रदायोंके संबंधमे उनका मतभेद ही उनमे "उपेक्षा" कराता है! क्योंकि सत्य एकही होता है.

है. यह भी 'उक्त' ओंकी वृत्ति है क्योंकि क्रियावान् परिच्छिन्न होता है; इसलिये 'परिच्छिन्नत्व'की, और जीवको ऊपर अनादि अनत कहा है उससे 'अणुत्व'की और वर्तमानमे जन्मधारी है; इसलिये 'आवागमन' पद की और ज्ञान लक्षण कहा है उमसे 'चेतन' पद की आवृत्ति होती है. ऐसे जीव नाना है.

राग=रुची; द्वेष=अरुची; इच्छा=अप्राप्तार्थस्फुरण. प्रयत्न=प्रवृत्ति वा निवृत्ति अर्थ चेष्टा. सुख=आराम, अनुकुल ज्ञानका विषय. दुःख=पीडा, प्रतिकुल ज्ञानका विषय. सस्कार=बोध तदाकारता जो उत्तरमें स्मृतिका हेतु होती है. ज्ञान=सुख दुःखादिकी प्रतीति. कर्ता=इच्छा पूर्वक क्रिया करनेवाला. भोक्ता=दुःख सुखादिकी असर (फिलिंग—Feelings-emotions etc , लागनी) जिसमें होती हो ॥१४॥*

ज्ञात और अज्ञात का समूह "प्रकृति" ॥१५॥ जीव मंडलमें जितना अभी तक जाना गया ओर जितना अभी जानना बाकी है इस तमाम समूहका नाम प्रकृति है॥ आकाशादि पंच भूत काल और शब्दादि गुण वा तन्मात्रा, सृष्टिके उपादान कारण ओर आकर्षण और अनादि 'ज्ञात' हैं और इनसे इतरके तत्त्व 'अज्ञात' भी हो ऐसी सभावना है॥ यह सब 'प्रकृति' (उत्कृष्ट गतिवाली) है और वोह जड वा अजड है, क्योंकि सूत्रमें जीवेश्वर समान उसकेलिये ज्ञान पदका उल्लख नहीं है॥ इसीको .कोई 'ईश्वर की शक्ति' (कुदरत का मेला) वा स्वभाव मानके उस शक्तिसे (शक्तिमेंसे वा शक्ति करके) सर्व जगत् रचा, ऐसा मानता है इसीको

अपेक्षा नहीं किंवा सर्व शक्ति जिसकी शक्ति द्वारा उपयोगमें आती है किंवा स्वतत्र शक्तिमान् ३ सर्वका स्वामी ४ जिसके परे कुछभी नहीं ५-६ जिसके लबाई चोडाई नहीं जो दीर्घ (स्थूल) ह्रस्व (सूक्ष्म) वा गुरु लघु नहीं, जिसके रग रूप नहीं, जो मनेन्द्रियका विषय नहीं, ७ जिसके टुकडे नहीं होने ऐसे अच्छेद्य, ८ अजन्मा ९ मर रहित अविनाशी १० जिसके अश वा भाग नहीं ११ जो आकाशवत् किसीसे लेपायमान नहि होता १२ पवित्र-स्वच्छ १३ जिसका परिणाम व रूपांतर नहीं होता १४ सुखानुसार यथायोग्य कर्म फलका देनेवाला १५ जीव यदि पुरुषार्थ करे तो तुममें चढके सुख पावे ऐसे साधन सृष्टी रचनेवाला १६ स्वच्छ ज्ञान स्पष्ट १७ लोहाकर्षक चुबकवत गति बिना गति करानेकी जो दक्षता सो योग्यता १८-१९ 'सत्' याने अबाधित स्वरूप, चेतन वा 'चित्' अर्थात ज्ञानस्वरूप, 'आनद' याने सुखस्वरूप,-ऐसे सच्चिदानद एक स्वरूप २० नमने, पूजने, भक्तिमग्न होने योग्य, ध्यान धरने योग्य ॥ सर्वाधार, सर्वव्यापक, स्वयभु, अनादिअनत, सम (एकरस) अनुपम, अचिंत्य, गम्यागम्य, अकार्य,.. इत्यादि अनेक 'विशेषण' तदंतरगत् आ जाते है ॥ (स) 'निराकार' और 'कर्ता' -व्यापकताका विरोध है (उ) खुलासा उत्तरार्द्धमें आवेगा उपासकके मनमें ऐसा शका नहीं हो सकती क्योंकि उसके भावमें सर्वशक्तिमानत्व है ॥

* १३-१४ सर्वज्ञत्वादि और रागादि गुण वा अवस्था वा स्वभाव वा धर्म है-इसका खुलासा उत्तरार्द्ध समझने पीछे स्वय कर सकोगे

कोईएक ऐसी शक्ति मानता हैकि जिसकी अनेकप्रकारकी लहरें (effects, vibratio वा अनेक प्रकारकी गति (Forces) ही यह नाना विचित्ररूप जगत् है, वा स्वयं ही परमाणु–द्रव्य–गुण रूप होके जगत् रूप होती है, ऐसा कहता है, इसी कोई परमाणुओंका समूह 'कोई' सत्व रज–तम (त्रि) 'गुणात्मक' वा 'त्रिभागात्मक' नता है । कोई इसको ईश्वरके सच्चिदानन्द स्वरूपका 'सत् अंश' मानता है. कोई को "पंचप्रकारी' (देश, काल, पुद्गल, धर्म, अधर्म रूप) अजीव नाम देता इसीको अजा,१ माया,२ अज्ञान,३ अविद्या,४ अव्यक्त,५ अव्याकृत,६ शक्ति योनी,८ सत्ता,९ तुच्छा,१० मूला.११ तूला,१२ अचिद्,१३ जडाजडात्मक,१ अनादि,१५ स्वभाव,१६ अध्यास१७ वाधरुप,१८ विलक्षण,१९ इत्यादि न लेके बोलते हैं ॥ अंतमें सबको इसे अनिर्णय २०. अनिर्वचनीयरूप कहके पी छुडाना पडता है ॥१५॥+

भाव वा अभावरूपा मुक्ति यथा साधन ॥१६॥ श्रेय परमाभ्युदय, अपव वा नित्यसुख प्राप्तिरुप ॥ १७॥

अर्थः—मुक्तिके "दो रूप" माने जा सकते हैं. "भावरूपा" (परमानन्द प्रा वा उत्कृष्ट उत्क्रांति, वैभव–विभूति, वा नित्यसुखप्राप्ति १अथवा "अभावरूपा" (दु बंधकी आत्यंतिक निवृत्ति) २ और वोह जेसे साधन किये जावें उस अनुसार प्रा होती है ॥१६॥ अभावप्राप्तिपूर्वक भावरुप अर्थात् बंधनिवृत्ति पूर्वक परमा प्राप्ति–मोक्ष इसका समावेश भावपक्षके अंतरगत् हो जाता है ॥१६॥ मुक्तिको 'श्रेय' (कल्याण–मुख्य इष्ट-परमानंद प्राप्ति) उत्कृष्ट उत्क्रांति, अपवर्ग (बंधकी आ तिक निवृत्ति) और नित्यसुखप्राप्ति कहते हैं ॥१७॥ आगे साधनप्रकार कहते हैं

+ १ अनुत्पन्न अनादि. २ अकल वा जो नहीं और होने समान ! ३ ज्ञानरुप नहीं वा अज्ञ समान अकथ्य स्वरुप ४ ज्ञान होनेपर वर्तमान समान (पूर्व समान) ५ साक्षे ! ५ मनेंद्रि अगोचर सूक्ष्म ६ आकृति धारण करने वाली ७ ताकत, ८ जगतकी उपादान ९ सत्य ज्ञानीको तुच्छ, ११ सर्वकार्यका मूल, १२ स्वप्नसमान तमाशा (अभिज्ञावत्) १३ चेतन नहीं जड अजड, १५ आरंभरहित १७ स्वप्नवत् दृश्य १८ प्रतियोगिता रहिता भावरुप १९ अ और प्रकारकी २० शब्दसे निर्णय न होने वा न कथन होने योग्य

सू. १६, १७–भाव और अभावरूप इनका विवाद निरर्थक है क्यों कि दोनोंका एक परिणाम निकल आता है, कारण के अप्राप्तकी प्राप्तिका परिणाम पुनः 'अप्राप्ति' होना है

१७ बंधसे छुटनेका नाम 'मुक्ति' (यथा सालोक्यादि) और नित्यानंद प्राप्ति 'मोक्ष ' पदार्थमें भेद करते है !

विश्वासादि क्रमसे ॥११॥ अर्थ (अनुवाद):—उपरोक्त दृष्टिको लेके आगे विश्वासादि क्रमसे 'अनुशासन' लिखेंगे ॥ ११ ॥ वक्ष्यमाणमे जो वर्णन विवेचन होगा उसका 'क्रम' यह है :—(१) विश्वास (२) आरंभ (३) विशिष्ट (अवच्छेद वा परिणामवाद) (४) ब्रह्म (५) क्षणिक् (६) अभावजा (७) शक्ति (८) भ्रम (९) अध्यास (१०) अध्यासवत् (११) विलक्षण (१२) मायाविवर्त्त (१३) दृष्टिसृष्टि (एकजीववाद) (१४) बाध (अवभासवाद) इस प्रकार १४ प्रकार वा १४ वाद कहे जायंगे. तदंतरगत् पहेलेके ८ वाद 'सत्कार्य' वाद हैं. उत्तरके ६ 'अध्यस्तवाद' रूप है. विश्वासवाद 'त्रिवाद' है उसकी परतःवादसे सिद्धि 'आरंभवाद' है; प्रकृति—पुरुष विशिष्ट ब्रह्मांड है यह 'विशिष्ट वा अवच्छेदवाद' है; जगत् ब्रह्मरूप है यह 'ब्रह्मवाद' है. जगत् विज्ञानका क्षणिक् परिणाम है यह 'क्षणिकवाद' है; ईश्वरने सृष्टि (जीव जगत्) अभावसे (अनुपादान) बनाई यह 'अभावजवाद' है; जगत् जीव एक शक्ति का ही परिणाम है यह 'शक्तिवाद' है. जगत् अर्थशून्य, भ्रमरूप है यह 'भ्रमवाद' है; जगत् स्वप्नरूप है यह 'अध्यासवाद' है. अथवा 'तद्वत्' है यह 'अध्यासवत्वाद' है; ब्रह्मसे इतर समस्त (तमाम) तद्विलक्षण यह 'विलक्षणवाद' है; नाम रूपात्मक जगत् ब्रह्मका विवर्त्त है—'ब्रह्म विवर्त्तोपादान' है यह 'मायावाद' है. ब्रह्ममें जगत् बाधरूप अवभास है यह 'बाधवाद' है. *ब्रह्ममें जगत् दृष्टिमात्र है यह 'दृष्टिसृष्टिवाद' है. ऐसे १४ 'प्रकार' कहेंगे ॥ ११ ॥

यहांसे आगे कर्मयोग, भक्तियोग, क्रियायोग, और ध्यान (उपासना) योग के जो अधिकारी हैं उनकी दृष्टिसे सूत्र ६८ तक उपदेश होगा. जिसमें शुष्क तर्कको अवसर नहीं मिलता. किंतु योग्य श्रद्धा—भावना—विश्वासके आधीन अनुष्ठनीय-उपासनीय होते हैं. उसके पीछे परीक्षाकी सामग्री (प्रमाणादि), पश्चात् सूत्र ९० से पदार्थवर्णन और १२४ से आरंभवाद लिखा जाके लिखित विषयकी सिद्धि व निरीक्षा की जायगी. इस प्रकार "पूर्वार्द्ध"के सूत्र १८९ तकका क्रम है. फेर १८९ तक उपसंहार है. ॥ तथाहि प्रथम पदार्थ (ईश्वर, जीव, प्रकृति, मुक्ति, कर्म, उपासनादि) का उद्देश, पीछे लक्षण, और प्रकार; पीछे उसका फल फेर उनकी सिद्धिकी युक्ति इस प्रकारका क्रम है. इसलिये तमाम 'पूर्वार्द्ध' वांचने तक मनमें धैर्य रखनेकी आवश्यकता है ॥ †

---

*इसको वेदान्तीओ "स्वभाववाद-अजातवाद-अभाववाद" वगेरे नामनेभी कहते हैं ॥ (प्रकाशक.)

† प्रथ प्रयोजनको कर्म उपासनाका अधिकारी जानके उसके शिक्षणमें जैसा उपदेश

"ईशादि" सधर्म नित्य और मोक्ष से अनावृत्ति अनेकमें से ॥ १२ ॥

मानव मंडलमें ईश्वरादिके विषयमे अनेक प्रकारकी भावना (श्रद्धा विश्वास Faith) प्रचलित हैं. उनमेंसे यहभी एक है; अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति, यह तिनो तत्व अपने 'धर्म' 'अर्थात्' अपने गुण, कर्म और स्वभाव सहित और तीनोंका व्यापक-व्याप्य भाव 'संबंध' और 'भेद' यह सब अनादि अनंत हैं. और जीवकी जब 'मुक्ति' हो जाती है तब मोक्षावस्थासे पीछा संसार दशामें नहीं आता याने पुनर्जन्म नहीं लेता ; किंतु नित्य मोक्षावस्थामें ही रहता है ॥ १२ ॥ ¶

सर्वज्ञत्वादि विशेषणवान् अद्वितीय चेतन "ईश्वर" ॥ १३ ॥

ईश्वर—सर्वज्ञ,१ सर्वशक्तिमान,२ सर्वोपरी,३ असीम,४ अमूर्त्त,५ निराकार,६ अखंड,७ अज,८ अमर,९ निरवयव,१० निर्लेप,११ शुद्ध,१२ निर्विकार,१३ न्यायकारी,१४ दयालु,१५ इच्छा ज्ञान,१६ और प्रयत्नवाला,१७ जगत् कर्ता-धर्ता और हर्ता अर्थात 'व्यवस्थापक' और 'अद्वितीय' अर्थात् उसके समान और उससे अधिक अन्य कोई नहीं—ऐसे विशेषणवाला चेतन स्वरूप१८ है.॥ यहीं सच्चिदानंद स्वरूप;१९ "परमेश्वर" परमात्मा—(ब्रह्म) उपास्य २० है अन्य-नहीं ॥१३॥×

जीव रागादि लिंगवान् नाना ॥१४॥ राग, द्वेष, इच्छा. प्रयत्न (क्रियाका हेतु) दुःख, सुख, संस्कार और ज्ञान जिसके लिंग हैं, ऐसे लक्षणवाले 'जीव' असंख्य है. ॥ १४ ॥ यह जीव आवागमन (जन्मधारण) वाला, कर्ता—भोक्ता, परिच्छिन्न अणु चेतन

क्रिया वेसा श्रद्धा विश्वाससे मानके उस अनुसार वर्तन किया, ऐसा परिचित लेखमें पाया जाता है (नोट १ देखिये) तथापि वोह विश्वास अंध विश्वास नहि, किंतु पक्षान्तरको ज्ञानवीनके माना हो यह बात आगे वाचनेसे जान लोगे.

¶ यह भावना,-पारसी, यहूदी, ख्रिस्ति, मुसलमान, ब्रह्म, (ब्रह्मसमाजी,) आर्यसमाज ईश्वरावतारवादी (पुराणी), जैन, बौद्ध, प्रकृतिवादी (जडवादी) इनके मन्तव्य पक्षके साथ नहिं मिलती न्यायादि शास्त्रोंके साथ और यूनानी (Greek) फिलोसोफर फीसागोरस के साथ मिल सकती है और श्वेताश्वतर उपनिषद के अनुकूल है

सृष्टिमें जितने मत पक्ष है उनमें कोई न कोई दोष-अपूर्णता अवश्य है. ऐसा देखते हैं, तथा सबमें कुछ न कुछ अपने विश्वाससे मान लिया जाता है. फेर चाहे वोह परीक्षामें पास हो सके वा न हो सके, परंतु माननेवाले का विश्वास-भावना-श्रद्धा-बुद्धिमान होता है. इस प्रकारमें अनिश्चित-वादिसे इतर सब शामिल है. तो फेर इस भावनाका प्रति पक्ष होना भी अनुचित है, क्योंकि मानव मंडलमें सब भावनाओंसे अल्प दोषवाली यह भावना और जगत् व्यवहारमें टिक सके ऐसा यह विश्वास है. इसलिये इस को प्रथम विश्वास पदवी दी जाती है.

×१ सबका ज्ञाता अंतर्यामी २ सर्व शक्ति वाला अर्थात् अपने कार्य में जिसको अन्य [illegible]

बंधाभाव कर्मसे ॥१८॥ सालोक्यादि उपासनासे ॥१९॥ योग्य स्वातंत्र्य योगसे ॥२०॥ विधिपूर्वक 'कर्मानुष्ठानसे' बंध, (वारंवार जन्ममरण) का अभाव हो जाता है ॥१८॥सालोक्य (इष्टके लोक-स्वर्ग वा ब्रह्म लोककी प्राप्ति). 'सामीप्य' (इष्टके समीप रहना) 'सायुज्य' (इष्टके साथ युक्त रहना-उसके आनंदादि स्वरुपका भोगना-तादात्म्यवत् हो जाना) और 'सारूप्य' (इष्टके जैसा रूप प्राप्त हो जाना याने तद्धर्मापत्ति हो जाना) यह चारों प्रकार की "मुक्ति" उपासना करने से होती है ॥१९॥ और मुक्ति में योग्य (जीवकी मर्यादामें यथासंभव) स्वातंत्र्य, (सत्संकल्पादि) योग साधनसे होता है ॥ २० ॥

दोनों प्रकारकी दोनों से ॥ २१ ॥ ज्ञान मात्र उपयोगी न होनेसे ॥ २२ ॥ दोनें में तीनोंकी आपत्ति ॥ २३ ॥ मुख्यता पहिलोंकी ॥ २४ ॥ (वि०—) पूर्वोक्त भाव और अभाव रूप याने बंधनिवृत्ति और परमानंद प्राप्ति रूप मोक्ष (मुक्ति) कर्म और उपासनासे प्राप्त होती हैं ॥२१॥ क्योंकि अकेला "ज्ञान मात्र" उपयोगी नहिं होता ॥ किंतु 'उपयोग' तो कर्म उपासनासे होता है ॥२२॥ (यद्यपि) व्यवहार और परमार्थ दोनोंमें तीनों की अर्थात् 'कर्म' (गति) 'उपासना' (इष्टाकार स्थिति) और 'ज्ञान' (प्रतीति) इन तीनोंकी, अपेक्षा है॥२३॥(तथापि) परमार्थ-मोक्षकी प्राप्तिमें मुख्यता कर्म उपासनाकी है. अर्थात् यह दोनों मुख्य साधन हैं ॥२४॥ मन वा जीवकी गति (कर्म) के विना, पदार्थ (ज्ञेय वा ध्येय वा उपास्य) के साथ 'सन्निकर्ष' (अत्यंत समीप और तदाकार संबंध—उपासना) नहीं होता. इस तदाकार संबंधके विना 'ज्ञान' नहीं होता. और ज्ञानके विना पदार्थका 'उपयोग'—लाभ नहीं होता,—इस प्रकार तीनों उपयोगी हैं तथापि 'उपयोग' कर्म (गति) और उपासना (निकट स्थिर संबंध के विना नहीं होता; इसलिये कर्म और उपासनाकी ही मुख्यता है—'ज्ञान गौण साधन है'. ईश्वर निराकार, विभु है, इसलिये परिछिन्न जीवको उसका ज्ञान नहीं हो सकता. परंतु हठवशात् ज्ञान होना मानभी लेवें तोभी क्या हुवा? अर्थात् उसके दर्शन बाद भी जब तक यथासंभव उसके गुण स्वभावका धारण न करेंगे याने 'तद्धर्मापत्ति' न होगी किंवा तिसके साथ 'सायुज्य' (तादात्म्य) हो के उसके आनंद स्वरूपका उपभोग न करेंगे तब तक दर्शन मात्रसे कुछ विशेष लाभ नहीं होता. और यदि उसके ज्ञान हुवे विना विश्वास मात्रसे 'तद्धर्मापत्ति' और 'पराभक्ति' करगे तोभी लाभ होगा! एतदृष्टि इस प्रसंगमें कर्मोपासनाही मुक्तिके साधन हैं. यथासंभव ईश्वरके गुण कर्म स्वभाव अपने (जीव) में (प्राप्त) हो जानेका नाम 'तद्धर्मापत्ति' है. यथा,—सत्य, न्याय, पापशून्यता,

निष्कामता, परोपकार, समानता, इत्यादि उत्तम शुभ गुणप्राप्ति 'तद्धर्मापत्ति' है.-नहीं के (केवलमात्र) जगत्कर्ता धर्ता हर्ता-सर्वज्ञ-सर्व शक्तिमान् और विभुचेतन, हो जाना!! ॥२४॥

जीव कर्ममें स्वतंत्र, फलमें परतंत्र ॥२५॥ तत्अनुसार प्रवाह ॥२६॥ जीवकी जितनी सामर्थ्य है उतनी योग्यता तक वोह कर्म करने में 'स्वतंत्र' है; अर्थात् अमुक 'कर्म' करे वा न करे यह उसकी इच्छाके आधीन है. परंतु किये हुये कर्मके 'फल' भोगनेमें स्वतंत्र नहीं किंतु परतंत्र है,-अर्थात सृष्टि नियमानुकुल भोगना ही पडता है ॥२५॥ यथा,-मद्यका सेवन न सेवन वा तीरका चलाना न चलाना स्वाधीन है; परंतु सेवित मद्य और चलाये हुये तीरका फल स्वाधीन नहीं है ॥ २५ ॥ इस प्रकार यथा कर्म, जीवके आवागमनका (शरीर साथ संबंध होना, शरीरसे जुदा हो जाना) प्रवाह है॥ अर्थात् अनादिसे कर्म करना और तद्अनुसार 'फल भोगता' हुवा चला आ रहा है ॥ २६ ॥

और ईश्वरद्वारा उपादानसे उत्पत्त्यादि ॥२७॥ और जीवोंके कर्म फल भोगार्थ जीवोंके कर्म अनुसार (पूर्वोक्त) ईश्वरद्वारा (पूर्वोक्त) उपादान (प्रकृति) मेंसे सृष्टि-की 'उत्पत्ति' होती है, और 'स्थिति' (उपयोग) होती है, तथा उपादानमें 'लय' होती है-उसकी 'प्रलय' होती है, ऐसा अनादि 'प्रवाह' है ॥ २७ ॥ (आगे कर्म योगका वर्णन वि. है)

प्रस्तुत वक्ष्यमाण **कर्मयोग** प्रसंगमें यह ज्ञातव्य है कि:-**देश स्पर्शास्पर्श अवस्था** का नाम (लक्षण) गति-क्रिया वा कर्म है जो वायु आदि परिच्छिन्न पदार्थोंमें भी (क्रिया) होती रहती है. तथापि इस प्रसंगमें **क्रियाविशेषका नाम कर्म है**. याने जीवकी इच्छा से जो क्रिया हो और जिस क्रियाका 'फल' जीवको दुःख वा सुख हो॥ कर्म दो प्रकारके होते हैं: **सामान्य** (जो स्वभावतः सबसे होते हैं यथा आहारादि) १ **विशेष** (जो अन्यनिमित्तसे प्राप्त हों-यथा,-शिष्टाचार, नीति वगैरे उपदेश द्वारा जाने जाके कीये जाते हैं) २ **विशेष कर्मके चार विभाग हैं १ व्यावहारिक** (अपर), जैसे लेन देन वगैरे कर्म है. २ **पारमार्थिक**, जैसे के,-ईश्वर उपासना-भक्ति ३ **मिश्रित**, जैसेके,-धर्म नामककर्तव्य, व्यवहार और परमार्थ दोनोंमें उपयोगी हैं, और ४ **निषिद्ध** जिसका उभय प्रसंगमें निषेध है, यथा,-अधर्म-खून-चोरी आदि.

यद्यपि **निषिद्धको** छोडके उपरोक्त सामान्यादि सर्व कर्म और विद्याभ्यास तथा स्त्री पुत्र धनादि सर्व पदार्थ परंपरासे मुक्तिके बहिरंग साधन हैं इसलिये

"जीवनमत" (तत्त्व दर्शन अ. ४ देखो) अनुसार कर्तव्य हैं तथापि यहां समीप समीपके 'अंतरंग' साधनोंकी चर्चाका प्रसंग है ऐसा जानना चाहिये.

कर्म अपर और पर ॥२८॥ जीवनमतानुसारी अपर ॥२९॥ पारमार्थिक पर ॥३०॥ सामान्य धर्म उभय में उपयोगी ॥३१॥ उससे अप्रतिकूल यथा योग्य विशेष भी ॥३२॥ (वि.-) कर्म दो प्रकार के हैं. १ अपर, २ पर. ॥२९॥ जो जीवनमत के अनुसारी (जीवनमतके विषय) हैं उनका नाम 'अपर' कर्म (व्यावहारिक कर्म) हैं ॥२९॥ जो परलोक-मोक्ष संबंधको विषय करते है उनका नाम 'पर' (पारमार्थिक) कर्म हैं. ॥३०॥ जिसे "सामान्य कर्म धर्म" कहते हैं वो व्यवहार और परमार्थ दोनोंमें उपयोगी हैं. (इसी वास्ते इनकी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष क्रमशः यह चार संज्ञा हैं) ॥३१॥ मनुष्यका सामान्य धर्म यह है: —

(१) सत्य–जैसा देखा;सुना,समझा और माना वैसा कहना,मानना, और वर्तना. (२) अस्तेय–अनुचित किंवा अनधिकारावस्थामें दुसरेके पदार्थ का अग्रहण वा किसीके हकको नाहक न करना याने किसीके तन मन धनको न दुःखाना यथा,-चोरी न करना, रिशवत न लेना, अन्याय न करना, जार कर्म वर्जित रहना इ. (३) शौच–बाह्य पदार्थ; मकान, वस्त्रादि और शरीरको साफ रखना-मेला न रखना, वाणीको सत्य भाषण द्वारा शुद्ध रखना याने सत्य प्रिय और हित बोलना,–कटु, कटाक्ष न बोलना. (४) दम–इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना,–उनके आधीन न होना (५) शम–मनको स्वाधीन रखना,–उसके आधीन न होना. (६) क्षमा–किसीसे अजाने अपराध हो गया हो और माफीका पात्र हो तो उसको माफ करना. (चोर दुष्टको माफ करना क्षमा नहीं है.) (७) धृति–विपत्कालमेंभी मन विषे धैर्य (धीरज) रखना, किंवा धारणाशक्ति की उन्नति करना (८) बुद्धिवृद्धि–ऐसा सतो गुनी निरोगी भोजन खाना और ऐसे बुद्धिमानोंका संग करना तथा ऐसे ग्रंथोंका पठन वा श्रवण करना के जिसमे बुद्धि की वृद्धि हो,–बुद्धि शक्ति विकासको प्राप्त हो (९) विद्यावृद्धि–ऐसे प्रतिष्ठित जितेंद्रिय विद्वानोंका संग करना और ऐसे उपयोगी ग्रंथोंका पठन वा श्रवण करना कि जिससे अनेक प्रकारकी विद्या कला प्राप्त हों, ज्ञान शक्ति बढे. (१०) अक्रोध–गुस्सा–वैरभाव न करना क्योंकि इससे लोही, वीर्य, बुद्धिको हानी होती है, पश्चात्ताप करना (पछताना) पडता हैं. और अविवेककी प्राप्तिसे अनेक शत्रु हो जाते हैं॥ इन दस बातोंके व्याख्यानमें "सब कर्तव्य" (अर्थ-काम-मोक्ष) आ जाता है॥

धर्म-(कर्तव्य) उसे कहते हैं कि-(१) जो स्वआत्मा के प्रिय हो. (२) जिसका

परिणाम दुःख न हो किंतु सुख हो. (३) सृष्टि नियमानुकुल हो. (४) और सर्व तंत्र हो ॥ यथा,–' सत्य. ' अपनके साथ जो असत्य-झूठा-मिथ्या व्यवहार करे तो अपनेको 'अप्रिय' और सत्य करे तो 'प्रिय' लगता है. अतः सत्य सबको प्रिय है. सत्यका परिणाम दुःख नहीं होता किंतु सुख ही होता है, यह सर्व को ज्ञात है. लोक में जहां असत्याचारियोंको सुखी देखते हो वहांभी असत्यने सत्यका प्रतिनिधि होके काम किया है, नहीं के असत्यने. असत्याचारिको चिंता रहती है उससे प्रीति और उसकी प्रतीति नहीं होती; इत्यादि दोष हैं. और सत्य निर्दोष होता है. सत्य सृष्टि नियमानुकुल है–बालक सत्य परही होते हैं. बडे होनेपर भी माता पितादिके संग विना झूठ नहीं जानते. सत्य स्वयंसिद्ध होता है. झूठ बनावटी (कृत्रिम) होता है; इस लिये सत्य सृष्टि नियमानुकुल है जो प्रसिद्ध असत्याचारी है उससेभी पचास आदमियोंमें पूछोगे तो सत्यका स्वीकार और झूठका अनादर करेगा; अतः मानव मंडलमें सत्य सर्व तंत्र है. इसी प्रकार अस्तेयादिमें विवेक कर लेना ॥ २१ ॥ उक्त सामान्य धर्म के अप्रतिकूल (अविरुद्ध) जो व्यक्ति परत्वे यथायोग्य कर्तव्य हैं उनका नाम विशेष धर्म है ॥ और वोह यथा देश काल व्यक्ति परिस्थिति अधिकार परत्वे जुदा जुदा होते हैं इसलिये उनको विशेष धर्म कहते हैं ॥ २२ ॥ यथा;–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण के खास धर्म हैं. उन उन व्यक्तिके गुण कर्म स्वभावानुसार उनका विवेचन होता है. तद्वत् **ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास** आश्रम (स्थिति) के जुदा जुदा विशेष धर्म होते हैं. यह विशेष धर्म भी उभय मार्गमें उपयोगी होते हैं. विशेष धर्म 'प्रसंग' में एक को जो 'धर्म' वही दुसरे को 'अधर्म' हो जाता है; यथा-गृहस्थको स्त्रीसेवन धर्मः ब्रह्मचारीको अधर्म–इ. तथा एकको 'एक काल'में जो धर्म उसीको दूसरे कालमें अधर्म हो जाता है. यथा–ब्रह्मचर्यावस्थामें स्त्री अस्पर्श धर्म और गृहस्थाश्रममें अधर्म. संन्यासाश्रममें अस्पर्श धर्म; इत्यादि प्रकारसे अनेक ऐसे गुण कर्म विशेष हैं कि जिनका 'परिवर्तन' धर्म वा अधर्म कहा जाता है संतानको चाहिये कि कुशल–दक्ष (होशियार) होनेतक **माता पिता गुरुको** देव मानके उनकी आज्ञा मानें और उनका **'अनुकरण'** करें. यह संतान का विशेष धर्म है; अन्यथा उसको हानी होगी. पति पत्निका, राजा प्रधानका स्वामी सेवकका भोक्ता भोग्यका इत्यादिका विलक्षण विशेष धर्म होता है. स्वामीकी आज्ञाका पालन अनुचरका विशेष धर्म है. तद्वत् राजा प्रजाका पिता पुत्रवत् विशेष धर्म है; संतान माता पिताकी सेवा करे यह (प्रत्युपकाररूप) विशेष धर्म है. जिसमें

स्थैर्य, शम, दम, तप, शौच, शांति, क्षमा, आर्जव, ज्ञान विज्ञान और परलोक बुद्धि ऐसे विशेष धर्म हों उसे 'ब्राह्मण' (वर्ण) कहते हैं. जिस शरीरमें शौर्य, साहस, वीर्य, चातुरी, युद्धमें अकंपता, उदारता, (दान परोपकारता) सामर्थ्य, प्रजारक्षा इत्यादि विशेषधर्म हों उसे 'क्षत्रिय' (वर्ण) कहते हैं जिसमें खेती, पशुपालन, व्यापार हुनर इत्यादि की योग्यता हो याने विशेष धर्म हों उसे 'वैश्य' (वर्ण) कहते हैं. जिस शरीरमें परकी सेवा करनेकी योग्यता (विशेषधर्म गुण-कर्म-स्वभाव) हो उसे 'शुद्र' (वर्ण) कहेते हैं विद्याभ्यास करना, वीर्यवृद्धि और वीर्यपालन, यह ब्रह्मचारी के विशेष धर्म हैं. संतानोत्पत्ति-पालन, सीखी हुइ विद्या हुनर कला का उपयोग, दान, परोपकार, मत्युपकार, इत्यादि गृहस्थके विशेष धर्म हैं. इंद्रियोंके जयार्थ एकांतमें रहके अभ्यास करना वानप्रस्थका विशेष धर्म है. विवेक, वैराग्यसंपन्न होना, जितेंद्रियपणा, गुप्तपणा, भयत्याग करना, निःस्वार्थ परहितबोध करना, राग द्वेष और इच्छा रहित होना, निष्काम आत्माराम रहना, इत्यादि संन्यासीके विशेष धर्म हैं. इत्यादि विशेष धर्म भी उभय मार्गमें उपयोगी होते हैं ॥

धर्मसे उलटा अधर्म कहाता है. यथा,—असत्य, अन्याय, विश्वासघात इत्यादि. उपरोक्त सामान्य—विशेष धर्मसे विपरीत यथायोग्य अधर्मकी व्याख्या है सो बुद्धिमान स्वयं कर ले. और आपत् धर्मका विवेचन भी इसीसे हो जाता है. उभयका यह प्रसंग नहीं इसलिये विशेष नहीं लिखा (कर्म विवेक ग्रंथमें विस्तार किया है.)

यहां मुख्य विषय यह है कि सूत्रमें "उभयमें उपयोगी" लिखा है. इसका आशय यह है कि इनमें से कितनेक व्यवहार मात्रमें और कितनेक उभय मार्गमें भी उपयोगी हैं. इसलिये परमार्थके जिज्ञासुको वैसे सामान्य—विशेष धर्म उपयोगी हैं, जो वे न हों तो "कर्मयोगी" नहीं. यथा—सत्य, अस्तेय, शम, दम, शौच, अक्रोध, धैर्य इत्यादि, और ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अपरिग्रह, इत्यादि उपयोगी हैं. ॥ १२ ॥

प्रसिद्ध उपायोंसे आध्यात्मिकादिकी निवृत्ति ॥१३॥ लोक प्रसिद्ध उपायों करके आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक, इन तीनों तापोंकी निवृत्ति होती है॥ १३॥ आध्यात्मिक दुःख=ज्वरादि रोग या कामक्रोधादिसे जो दुःख हो सो. आधिभौतिक=चोर, सर्पादिसे जो दुःख हो सो (वा परकी वाणि द्वारा जो हो सो) आधिदैविक=बिजली, जल वगैरेसे जो दुःख हो सो. शारीरिक और मानसिक तमाम दुःख-तापोंका इन तीनों में समावेश हो जाता है. इन तीनों तापोंका नाम बंध है. उनकी अत्यंत निवृत्ति परम-पुरुषार्थ याने मोक्ष है. क्षुधादि ताप आहारादिसे, ज्वरादि रोग दवाईसे, कामादि ताप

विवेकादिसे. चोरादिका ताप राज्यरक्षादिसे. सर्पादिका ताप दवाई कलादिसे, सरदी गरमीका ताप गरमी सरदीके सेवनसे, विद्युतादिका ताप सायंस केमिस्टरीके प्रयोगसे, मानसिक दुःख विचारादिसे दूर हो जाते हैं, ऐसा लोकमें देखने हैं. तथापि ताप पुनः उत्पन्न होके बंधरूप हो जाते हैं. इसका कारण भोक्ता जीवको स्थूल सूक्ष्म शरीर (मन-चित) का संबंध है. यह संबंध बीजवृक्षके प्रवाह समान अनादिसे चला आ रहा है. कर्मसे शरीर फल शरीरसे कर्म ऐसा पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर प्रवाह है. निदान शरीरप्राप्ति कर्माधीन है यदि कर्म बीजका अभाव हो जाय तो उसके फलप्राप्ति अर्थ शरीर संबंध भी न हो. शरीरके असंबंधसे तीनों तापकी अत्यंत निवृत्ति हो जाती है- इसीका नाम मोक्ष है. कर्मसे कर्मका अभाव होता है. कर्मके बीजका नाशक कर्म योग है, यही प्रस्तुत प्रसंगका विषय है. ॥२३॥

संगति—वर्तमानसे जानपड़ता है कि कर्म ३ प्रकारके हैं. प्रारब्ध, संचित, क्रियमाण. वर्तमान शरीर मिलने और तद्द्वारा दुःख सुख भोगनेके कारण पूर्व जन्मके वे कर्म हैं कि जिनके एवज दुःख सुख भोगने का हेतु जो वर्त्तमान शरीर तिस शरीरका आरंभ हुवा है. उन कर्मोंका नाम प्रारब्ध है. पूर्वजन्मके वे कर्म कि जिनके फलका भोग पूर्वजन्ममें नहीं हुवा है. वर्त्तमान जन्ममें वा उत्तर जन्ममें वा उभयमें होनेवाला होता है उनका नाम संचित है. जैसे किसी निमित्तसे गर्भ में रक्तविकारका संचय होता है और जन्म पीछे कालांतरमें उस अदृष्टका फल शीतला नाम दुःख होता है. इस प्रकार चितमें रहा हुवा अदृष्ट कालांतरमें भी फलका हेतु होता है. ॥ इस जन्ममें कामनापूर्णार्थ इच्छापूर्वक जो कर्म किये जाते हैं उनका नाम क्रियमाण है. इनका फल तुरत भी हो जाता है. यथा—गमनसे ग्राम प्राप्ति. चोरीसे शंका भय लज्जादि. और किसी कर्मका फल कालांतरमें होता है यथा—कुसंगसे जो असत् कर्मका संस्कार चितमें हुवा है. उस वासनाके वश कालांतरमें अनिष्ट कर्म होके दुःख फल मिलता है.

स्वाभाविक कर्म (अहार, आंख बंद उघाड इत्यादि) यद्यपि प्रारब्ध और इच्छा केही वश हैं, तथापि सर्वसामान्य होनेसे उनको दरमीयानमें लेनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि प्रारब्धजन्य शरीरद्वारा प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण तीनोंका उपयोग हो जाता है यह कर्मोंकी गहन अगम्य खूबी (गति) है.

इच्छा विना भी खास शरीर द्वारा दुःखसुखके हेतु; यह प्रारब्ध का सूचक सामान्य लक्षण है ॥ इच्छा हो वा न हो परंतु पूर्ण सामग्री हुयेभी कार्य (फल) न हो किंवा सामग्री अपूर्ण हुयेभी कार्य सहेजमें हो जावे यह संचित सूचक

सामान्य लक्षण है ॥ इच्छित फल हो वा न हो परंतु संबंधजन्य कामना पैदा होने पर इच्छा पूर्वक जिसका आरंभ हो वोह क्रियमाण कर्म माना जा सकता है ॥ तीनो के विशेष लक्षण और उनके विभाग निश्चित बताना मनुष्यकी गतिसे बाहिर है. अमुक कर्म पूर्व कर्मके बदले हैं वा नवीन हैं इसका स्पष्ट निर्णय योगीको भी नहीं होता कारण के अदृष्ट अनेक जन्मके अज्ञात होते है और कर्मोकी गहन गति है.

वर्तमान प्रारब्ध भोगके पश्चात् (शरीरत्यागकालमें) पूर्व जन्मके समान कर्म विभाग होगा अर्थात् पूर्व जन्मके वे संचित कि जिनका वर्तमान जन्म मे भोग न हुवा और वर्तमान जन्मके वे क्रियमाण कि जिनका फल नहीं हुवा है इन सब संचितोंके दो विभाग होंगे (१) जिनके फलमें उत्तर जन्म (योनी) मिलेगा उनका नाम प्रारब्ध (२) और जिनका फल या पुनः आगे मिलनेवाला है उनका नाम संचित ॥ कोनसे किस प्रकारके प्रारब्ध और कोनसे किस प्रकारके संचित होंगे यह बात और गाय को सिंह, सज्जन को दुष्ट मारता है यह पूर्वकर्मका बदला है वा नवीन कर्म है इत्यादि बातें यथावत् मनुष्य नहीं जान सकता परंतु यह निश्चित है कि प्रारब्ध और संचित हमारे क्रियमाणसेही बना और बनता है इसलिये क्रियमाण (पुरुषार्थ) से ही इष्ट सिद्ध करना बन सकता है अन्यथा नहीं.

जो भोग चुके उनकी निवृत्तिकी अपेक्षा नहीं. वर्तमान, भोगसे निवृत्त होंगे. अत. भावी (अनागत) दुःखोंकी निवृत्ति अपेक्षित है. इस जन्ममें उत्तर जन्मके भावी भोग पूर्वोक्त संचित शेष न रहें तो जन्म रूप बंध भी न हो और कर्म शेष न रहनेसे जीवकी मुक्ति हो जानी चाहिये यह स्पष्ट है क्योंकि कर्म प्रवाहही अनादि बंधका हेतु है. यदि कोई महान रोग संचित प्रतिबंधक न हो तो विशेष प्रयोग याने कर्म योगसे तीन तापकी आत्यंतिक निवृत्ति (याने मोक्ष) हो सकती है यह अगले सूत्र में कहते है.

विशेषसे आत्यंतिक ॥३४॥ उक्त प्रसिद्ध उपायोंसे इतर विशेष उपाय (कर्म-योग) से तीनो तापोंकी आत्यंतिक निवृत्ति हो जाती है ॥३४॥ पूर्वोक्त कारणसे क्रियमाणकोही पुरुषार्थकी संज्ञा दे सकते है. क्रियमाण के दो विभाग करने आ सकते हैं १ विधि २ निषिद्ध. ॥ पुरुषकी प्रवृत्ति (लाभ) अर्थ जो कर्म उसका नाम विधि कर्म और पुरुषकी निवृत्ति (हानी) अर्थ जो कर्म उसका नाम निषिद्ध कर्म है. व्यावहारिक, पारमार्थिक कर्मका समावेश विधिमें होता है.

विधि कर्म ४ प्रकारके हैं —नित्य १, नैमित्तक २ प्रायश्चित ३, और काम्य ४॥ इस सिवाय निषिद्ध (जिसका त्याग विधान है) ५, स्वाभाविक (इसकी चर्चाका यह प्रसंग नहीं) ६, आपत (इसका पूर्वमें समावेश हो जाता है) ७, आठवां निष्काम कर्म है ८ * अब सात सूत्रोंमें आत्यंतिक निवृत्ति याने मुक्तिके साधन विशेषका बयान होगा.

नित्य नैमित्तक भावीके प्रतिबंधक ॥३५॥ प्रायश्चित्तसे ज्ञाताज्ञात संचितका अभाव ॥३६॥ शुभ फलसे उपरती ॥३७॥ काम्य और निषिद्धका त्याग ॥३८॥ प्रारब्ध का भोगसे अंत ॥३९॥ निष्कामोंसे बंध नहीं ॥४०॥ उक्त शुद्धि होनेसे विदेहीको नित्य स्वर्ग ॥४१॥

नित्य और नैमित्तक कर्म नहीं करनेसे भावीमें जो दुःख (बंध) होनेवाला होता है वोह उनके करनेसे नहीं होगा, इसलिये नित्यादि कर्मका प्रयोग उस भावी दुःखका प्रतिबंधक है ॥३५॥ और पूर्व जन्मके अज्ञात निषिद्ध संचित और वर्त्तमानके ज्ञात अज्ञात निषिद्ध संचित इन दोनोंका प्रायश्चित कर्म करनेसे अभाव हो जाता है अर्थात् वे फल देनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥३६॥ पूर्व और वर्तमानके जो शुभ) संचित हैं उनके फल मिलनेसे उपरति-उपेक्षा करनेसे उनके शुभ फल होनेकी अपेक्षा नहीं रहती. ॥३७॥ इच्छापूर्वक जो काम्य (अर्थ भोगके लिये स्वार्थी कर्म) कर्म हैं उनको न करे और निषिद्ध कर्म न करे. ॥३८॥ वर्त्तमान प्रारब्ध, भोगसे नाश हो जायगा ॥३९॥ और उक्त कर्मोंसे इतर जो उत्तम निष्काम करे तो उनमें स्वार्थ न होनेसे वे बंधके हेतु नहीं हो सकते. ॥४०॥ इस प्रकार करनेसे शरीर त्यागकी पूर्व क्षणतक मुमुक्षु शुद्ध हो जाता है अर्थात् भावी जन्मका हेतु कोइ प्रकारका अदृष्ट (कर्म संस्कार) शेष नहीं रहता इसलिये ऐसे विदेही (शरीर त्याग पीछे मुक्त) जीवको नित्यस्वर्ग प्राप्त हो जाता है अर्थात् निरुपाध स्थानको प्राप्त होके दुःख (बंध) रहित हुवा स्वस्वरूपमें स्थित होता है. सारांश मोक्षको प्राप्त हो गया क्योंकि तीन तापका हेतु जो स्थूल सूक्ष्म शरीरका संबंध याने जन्म होना उसकी प्राप्तिका हेतु) न रहा ॥४१॥

३५ से ४१ तक का विवेचन—हरकोइ ऐसा कर्म कि जिसके नित्य न करनेसे भावीमें दुःख (पाप) होना चाहिये और यदि किया जाय तो वोह

* निष्काम कर्मको कोई प्रत्युपकार होनेसे विधिमें मानता है. कोई परउपकारक भावसे विधि में वा विधि निषेध से इतर मान लेता है.

दुःख न हो उसे नित्य कर्म कहते हैं. यथा शौचादि (काया वाचा मनकी शुद्धि)॥ हर कोई ऐसा कर्म कि निमित्त प्राप्ति समय करना चाहिये यदि उस समय न करें तो भावी में दुःख होना चाहिये और जो किया जाय तो दुःख न होगा. ऐसे कर्मको नैमित्तिक कहते हैं. यथा बालकको टीका लगा देना (भावी में शीतलाका दुःख न होगा) किंवा सत्ताधारी राजाके आगमनपर उसका सत्कार करना. ॥ प्रायश्चित उन कर्मों का नाम है कि जिससे निषिद्ध पूर्व अदृष्ट संचितोंका निवारण हो सके यथा बने हुये अपराधकी माफी मांगना, पश्चाताप होना उपवास जुल्लाब, इत्यादि ॥ भोग (अर्थ) प्राप्ति वास्ते इच्छापूर्वक जो कर्म किये जांय उनको काम्य कर्म कहते हैं. यथा नौकरी, खेती, व्यापार, हुनर इत्यादि कर्म हैं ॥ जिन कर्मोंका फल परिणाममें दुःख हो उन कर्मोंकी निषिद्ध (त्याज्य—बुरे—अम संज्ञद) है. यथा चोरी, व्यभिचार, असत्य, अन्याय, खून, विश्वासघात, कपट इत्यादि ॥

जिन कर्मोके फलमें साक्षात वा परंपरासे अपना किंचित भी स्वार्थ न हो किंतु परार्थ हों और धर्मानुकुल हों उनको उत्तम निष्काम कर्म कहते हैं (फलकी इच्छा रहित जो कर्म किया जाय उसे भी निष्काम कर्म कहते हैं. एक ही आशय है.) यथा प्रजाको जिसमें लाभहो ऐसे काम करना औषधालय, विद्यालय, हुनरालय, अनाथालय, अशक्तालय कराके तिनके अधिकारियोंको मदद देना इत्यादि ॥

निषिद्ध और काम्यसे इतर जो चार प्रकारके व्यावहारिक कर्म वे भी कर्तव्य हैं तथापि यहां परमार्थ संबंधी प्रसंग है इसलिये उस रूपमें वर्णन होगा.

भोग्य यानी जैसे पामर (मूढ) और वैसे विषयी (विषयासक्त) पुरुषोंको और जिन्होंको पूर्वजन्ममें कर्मयोगका किंचित अभ्यास और संस्कार होनेसे वर्तमान में उसकी सिद्धि के सहेज पात्र हैं उनको छोडके यह कहा जा सकता है कि जो नित्य नैमित्तिक कर्मका अभ्यास न करें किंवा उत्तम कर्म करनेकी टेव न डालें वे बंध-दुःखके पात्र ही बने रहेंगे. यथा कर्म फलसे प्राप्त जो शरीर (स्थूल सूक्ष्म शरीर) उसका मोह और उसकी वासना स्वाभाविक रूपमें हो जाते हैं. चालीस वर्ष की उमर पीछे सूक्ष्म शरीरका मोह और वासना पुष्ट हो जाती है किंतु उनका बल ज्यादे होता है और शरीर पतन कालमें देखते हैं कि ऐसे जीवोंको उस समय महान कष्ट होता है और शरीर त्याग पीछे भी नीच (भूत प्रेतादि) योनीको प्राप्त होते हैं. यह तेजस विद्याके प्रयोगसे जाना गया है. और परीक्षक परीक्षा कर सकते हैं, कर रहे हैं. बहुधा करके चवालीस वर्षकी उमर पीछे शरीरकी शिथिलता क्षीणताका आरंभ

हो जाता है उस समय जेसे साधन होने चाहिये वेसे नहीं हो सकने इसलिये जो अधिकार प्राप्त होने पर प्रथमसे ही नित्यादिका अभ्यास रखे तो उस समय यह अभ्यास दुःख देने वाले स्थूल सूक्ष्म शरीरके मोह ओर संबंधको दृढ न होने देगा याने उनका अभाव रहेगा. ऐसा नहीं करेगा तो इनका भाव होनेसे बंध (भावी जन्म) होगा. इस प्रकार नित्यादि कर्म भावीके प्रतिबंध हो जाते हैं. ऐसे ही प्रायश्चित प्रयोगके काल वास्ते घटित अधिकार योज लेना चाहिये. ॥

सु॰ ३९ (नित्यादि) से ४० तकके सूत्रोंका विवेचन अनेक प्रकारसे हो सकता है. क्योंकि नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित कर्म अनेक प्रकारके होते हैं. इसलिये नित्यादि विशेष कर्मोंका उदाहरण देते हैं.

१–नित्य–निराभिमान होके यथाशक्ति यथाविधि श्रद्धा कर्तव्य पूर्वक नित्य (सुप्रसिद्ध) संध्या करे. फल=गायत्रीके जप करनेसे भविष्यमें मिथ्याभिमानकी अनुत्पत्ति रहती है. विशेषाभ्यास हो तो मनकी अनेक निष्फल दुष्टगति न होने देने में आड है. अघमर्षण करनेसे भावी निषिद्धमें प्रवृत्ति का अभाव होता है. उपस्थान करनेसे शुद्ध विद्युतकी प्राप्ति रहनेसे भावी रोगोंकी प्रतिबंधकता होती है. गुरुद्वारा प्राणायाम सीखके उसका अभ्यास करे तो मनके रुकनेका अभ्यास होता है. यह अभ्यास भावी वासना संकल्प विकल्प वा अदृष्ट स्फुरणको शिथल कर देता है बल्के भावीमें दुःखप्रद न हों वेसा बना देता है.

तथाहि मुमुक्षु नित्य सत्सग करे. उत्तम ग्रंथोंका पठन श्रवण मनन और जितेंद्रिय विद्वान बुद्धिमान अनुभवीके संगका नाम सतसंग है. सत्संगकी महिमा प्रसिद्ध है. अनेक भावी दुःखोंका प्रतिबंधक होता है. इस कर्मकी तिथि याने समयका नियम नहीं हे जब बन सके तब करे परंतु थोडा बहुत नित्य करे.

नित्य संध्या नहीं करे तो करनेसे जिनका अभाव उनकी भावीमे उत्पत्ति होगी. और सत्सग न करे तो मनुष्य पशुवत् रहता है. भावीमे अज्ञान मोहवश अनेक दुःखों का भोग हो पडता है.

(शं॰) जो सध्या न करे और दूसरी प्रकारके वेसे नित्य करे तो क्या कहते हो (उ॰) मतलबसे मतलब है. कुछ भी करे परंतु जिनके न करने मे भावीमे दुःख हों वेही अवश्य करे. इतना ही सार है. यथा नित्य हवन याने अग्निहोत्र जिस मकानमे नहीं होता वहां भावीमे रोगोत्पादक हेतु उत्पन्न हो जाते हैं जो करे तो वे हेतु न हों. अब

जो कोई मकान स्वच्छ साफ रखे जिसे सरदी गरमी हवा धूप यथायोग्य प्राप्त हों और जो भोजन पानी साफ रख सकता हो और हवन करने से सर्दनमें शरीरको जो लाभ हो सकते हैं वे हवन बिना प्राप्त कर सकता हो तो उसको हवनकी जरूरत नहीं परंतु ऐसा क्वचित होता है क्योंकि विद्वान, बुधिमान, वैद्य और श्रीमंत विरले होते हैं इसलिये सर्व साधारण वाले नित्यहवनकी सुगम रीति निकाली गई है. जो जंगल विषे उत्तम आब हवा वाले स्थलमें रहते हैं वे अग्निहोत्र न करें तो भी चले. इसी प्रकार संध्या की रीति है. क्योंकि थोडे श्रमसे जितने बडे लाभ संध्यासे होते हैं उतने बडे श्रमसे भी क्वचित होंगे. (इसका व्याख्यान संध्या मिमांसामें लिखा गया है।

प्राणीकी रक्षाको यदि नित्य कर्ममें माने तो मान सकते हैं. यथा उसकी रीति छूटनेसे वर्त्तमानमें लाखों मनुष्य भूखके ग्रास होके दुःखी हो रहे हैं और गोरक्षा न होनेसे अन्न दूध घी कम मिलता है.

इसलिये हिंदु प्रजा अशक्त रोगी हो रही है, निस्तेज पुरुषार्थहीन हो गई है. कर्मयोग तो कहां काम्य कर्म करने योग्य भी नहीं रही है. हिंसाख्त मांससेवनका समय समीप आ लगा है. यदि प्राणीरक्षा (भूतयज्ञ) व्यष्टिका नित्यकर्म हो जाता तो ऐसा न होता. पितृयज्ञ याने माता पिता गुरुकी श्रद्धा पूर्वक तृप्ति और सेवा यह भी नित्य कर्म मान सकते हैं परंतु माता पिता न हों तो नहीं होता. तथा यह ऋणका बदला याने प्रत्युपकार है, इसलिये नित्य कर्म में नहीं गिनते. तथापि यह कर्म प्राप्त हो याने माता पिता गुरु सेवाके योग्य हों और न करे तो भार निवारणार्थ बंध को प्राप्त होगा.

इसी प्रकार अपने अपने देश, काल और व्यक्ति स्थिति अनुसार नित्य कर्म का विधान है. हिंदमें स्नान नित्य कर्म है, इंग्लेंडमें नैमित्तक है (सातवें दिन या जब मेल सतावे तब) नित्य निषेध है क्यों कि रोग और मरण फल निबडता है.

उपरोक्त ब्रह्मयज्ञ (संध्या स्वाध्याय) देवयज्ञ (नित्य हवन) पितृ यज्ञ (माता पिता और गुरुजनोंकी सेवा तथा पराक्रमी महात्मा और पूर्वजोंके गुण कर्मका श्रवण मनन) अतिथियज्ञ (अनायासप्राप्त विद्वान् महात्मा बुद्धिमानका संग सत्कार) और भूतयज्ञ (गो वगेरे जानवरोंकी रक्षा) इन पंच महायज्ञ करनेका बडा फल है. विधि जानने वास्ते संस्कार विधि देखो.

मुसलमानोंके कुरान ग्रंथमें आरंभ विषे "सूरे अलहम्द" (ईश्वर प्रार्थना स्तुति) उपांतमें सूरे इखलास (ईश्वरके गुण) बहुत उमदा है. भगति प्रसंगमें उस कूरके नमाज उनका नित्य कर्म है. एवं अन्य धर्मोमें भी है. बात यह है के उपरोक्त प्रयोजन जिससे सिद्ध होता हो वही नित्य कर्म उमदा है.

२–नैमित्तक—जब कभी लोकप्रसंगमें हर्ष वा शोक होनेका प्रसंग प्राप्त होनेवाला हो तब किंवा स्वयंही अपने मनमें एसा हो तब ही हर्ष शोक, सुख दुःख, राग द्वेष न होने के लिये नैमित्तक कर्म करे–अर्थात् उस संबंधी विवेक करे. जिससे वैराग्य हो, दुराग्रह वा ममत्वका त्याग हो, ऐसी कथाओंका श्रवण मनन करे, सत्य संग करे और यज्ञ करे. जो हर्ष प्रसंगमें देव कर्म करे तो हर्ष शोक मोह नही कर सकेगा. मरण शोक प्रसंगमें शुद्धि अर्थ यज्ञ करे तो भावी दुःखोत्पादक अशुद्ध निमित्तोंका अभाव रहेगा. एवं सूतक (संतानोत्पत्ति) और ग्रहण प्रसंगमें शुद्धि हवनादि तथा पातक प्रसंगमें प्रायश्चित; शुद्धि और हवन करना इत्यादि नैमित्तक कर्म हैं. जो ऐसे प्रसंगोंमें नैमित्तक कर्म नहीं करेगा तो राग, द्वेष, हर्ष, शोकका परिणाम दुःख हो जायगा. अमावश और पूर्णमासीको प्रजापति इष्टि (यज्ञ) भी नैमित्तक है और कुटंब शरीरोंको लाभकारी है.

गर्भाधानादि षोडष संस्कार भी नैमित्तक कर्म है. परंतु उनमें कितनेक तो ऐसे हैं कि जो मुमुक्षुके लिये अप्राप्त हैं यथा गर्भाधान, गर्भ संस्कार, बाल संस्कार इत्यादि. और कितनेक मुमुक्षुसे होनेके योग्य हैं यथा विद्याभ्यासादि. और संन्यास संस्कारमें द्रव्य न होनेसे कितनेक कर्म नहीं हो सकते यथा अग्नि होत्रादि, और अंतेष्टि संस्कार पराधीन हैं इस लिये उन संस्कारोंको बीचमें नहीं लिया.

(शंका) हवनमें जीव हिंसा होती है अतः त्याज्य है क्यों कि परको दुःख न हो ऐसे कर्म करनेका विधान है. (उ.) बुहारी देने, पीसने, चोका देने, रसोइ करने, खाने, पीने, चलने फिरने, प्राण लेने देने, औषधी करने, जुलाब लेने, गाय बकरीका दूध लेना, खेत खेडना, बेलके कंधे पर और अश्वादिकी पीठ पर भार डालना, इत्यादि कर्मोमें जीवहिंसा और अनीति होती है इसका क्या निवारण? सारांश मनुष्य यह कर्मयोनी है. अतः जिस कर्ममें अपनेको और दूसरे को विशेष लाभ हो और दोष न्यून होवे कर्म करना चाहिये क्यों कि कर्म मात्र सर्वथा निर्दोष नहीं मान सकते.

३–प्रायश्चित—पूर्व और वर्त्तमानके कितनेक संचित, तो भोग होनेसे नष्ट हो जाते हैं. यथा साधारण अनिष्ट संचितका, भोग होना सर्वको ज्ञात है. अकस्मात आपत्ति आके भोगना. चोरीकी शिक्षा मिलना इत्यादि कर्म अनुष्ठानमें जो कष्ट अथवा निष्काम करनेमें जो कष्ट होता है सोभी संचित भोग है. कर्मयोगीकी झुंटी निंदा होना वोहभी संचितका भोग है. इत्यादि ॥ शुभ संचित के फल मिलनेमे उपरति (उपेक्षा) होती है उससे उनका फल न मिलना इससे भी संचितका अंत होता है. तथा कर्मयोगीकी सेवामे सेवकको किंवा उस सेवासे कर्मयोगीको जो सुख मिले सो भी शुभ संचित भोगका चिह्न है. और अंतःकरण शुद्ध हुवा वा होता जाता है, यह भी शुभ संचितका भोग है. इत्यादि ज्ञात अज्ञात रीतिसे संचितका भोग होता है. इसके सिवायके संचित, प्रायश्चित कर्म करनेसे नष्ट हो जाते हैं. यथा वर्तमान जन्म विषे जो कोइ निषिद्ध संचित हो गया या और वोह ज्ञात हो तो उसका तदनुसार प्रायश्चित कर्तव्य है. यथा कोइका बुरा हो गया हो तो उससे अपराध क्षमा करा ले. किंवा विद्वान मंडल के समक्ष उनकी आज्ञानुसार प्रायश्चित कर दे विद्वान वास्ते लोक समक्ष माफी मांगना और पश्चाताप करना बडा भारी प्रायश्चित होता है. और पूर्वजन्म तथा वर्तमानके अज्ञात निषिद्ध संचित निवारणार्थ साधारण प्रायश्चित करे. अर्थात् निर्दोष के वाचकके जपका अभ्यास करे. यथा ओंकार वा राम नामका पूरा अभ्यास करे, कि जिससे अदृष्ट संचितका बल शिथल किंतु नष्ट हो जाय.

जेसे कोई वैराग्यवश गत संस्कारोंको स्मरण नहिं करता अथवा स्मृति के विषय नहीं होते, माता पिताकी स्मृति हुये भी उनकी छवी अंतरमें नहीं बनती. उस कारण तदनुकुल वृत्ति (कर्म-गति) नहीं होनेसे तत्संबंधी कर्म नहीं होते. जिस भाषाका अभ्यास हो वही स्वप्नमें भी अनिच्छित फुरती है. इसी प्रकार ओंकारादिके अभ्यास होनेसे मनोगत अदृष्ट; कार्य करनेमें असमर्थ किंवा नष्ट हो जायगे. और स्वप्न आने लगेगा तब भी अभ्यासवश ओंकारादिका जप होने लग जायगा. निदान खास जरुरी कार्य विना (अहार निद्रा वा जरुरी इच्छित व्यवहारके विना) मनोवृत्तिमें वही रटन रहेगा. (इसकी रीति राम रटन ग्रंथमें लिख दी है, वहां देख ले.)

जब तक पूर्व अदृष्ट (अभ्यासोत्पादक संचित) न फुरे वहां तक उसके अनुसार बुरा भला भोग (फल) नहीं होता. उपरोक्त अभ्यास उसको फुरने देगा नहीं, यह उसकी एक प्रकारकी निवृत्ति है तथा ईश्वर स्मरण संचित भोगका प्रतिबंधक हो

जाता है यथा ओंकारका जप विघ्नोंका प्रतिबंधक माना जाता है वेसे ईश्वर स्मरण भी संचितोंके भोगनेका प्रतिबंधक है. 'इत्यादि साधारण प्रायश्चित कहाते हैं.

जो इच्छा हुये भी इस जन्मके ज्ञात निषिद्ध संचितका कोई कारणसे प्रायश्चित न बन सके तो वोह भी साधारण प्रायश्चितसे निवृत्त हो जायगा.

यदि कोई महा घोर संचित होगा तो वेसा पापी इस कर्मयोगका अधिकारी नही होगा. अर्थात् उसकी वृत्ति ऐसी नही हो सकेगी. यद्यपि पुरुषार्थकी सत्ता बलवान है तथापि कालांतरमें फल होगा, याने घोर पापी यदि पुरुषार्थ करे तो इस जन्ममें फलिभूत न होगा तो भी भविष्यमें इष्टप्राप्ति कर सकेगा.

उपर कहे अनुसार जो नित्य नैमित्तक और प्रायश्चित नहीं करे तो भविष्यमें दुःख होगा वोह क्या? नित्य नैमित्तक के अभावसे स्थूल सूक्ष्म शरीरका मोह (राग) उससे पदार्थका संबंध, उससे संस्कार, उससे तदप्राप्ति अर्थ अनेक काम्य क्रियमाण, उनसे धर्म अधर्मरूप अदृष्ट, उनसे उत्तम मध्यम अनेक जन्म होंगे. इस लिये उनकी उत्पत्तिके निषेधार्थ नित्य नैमित्तक करे. और जो प्रायश्चित न किया तो संचित (पूर्वादृष्ट) बलसे धर्माधर्ममें प्रवृत्ति होहीगी. उसकी शाखा फूल फल अनेक ताप होंगे. अतः प्रायश्चितका विधान है.

४-५—काम्य और निषिद्ध—मुमुक्षुको काम्य और निषिद्ध कर्मोंका निषेध है याने न करे. निषिद्ध कर्मोंमें विवाद है तथापि कर्मयोग प्रसंगमें विवाद नहीं हो सकता. अर्थात् जिससे अनुचित रीतिकर परके तन मन धनको अनधिकारावस्थामें हानी पहोंचे वा अपनेको परिणाममें हानीप्रद और भावि जन्मके हेतु हों उनकोही निषिद्ध जाना यस हैं. यद्यपि नित्य और नैमित्तक भी काम्य मान सकते हैं (तथापि उनके न करनेसे बंधका हेतु पेदा होता है. नहिं के व अन्य फल. अतः कर्तव्य है. (निषिद्ध और काम्यका विस्तार "कर्म विवेक" ग्रंथमें लिखा है.)

६—प्रारब्ध—प्रारब्धभोग अनिवार्य हैं. वे भोगनेसे स्वयं नाश हो जानेवाले हैं.

इसप्रकार मुमुक्षताके अधिकार प्राप्त होने पीछे जो अधिकारी उपरोक्त प्रयोग करे तो शरीर त्याग पीछे त्रितापका अर्थात् दुःखका याने बंधका अभाव हो जाता है, क्यों कि कर्मके ३ भेद हैं. (१) करनेसे फलके हेतु. न करनेसे नहि. (२) नित्तका अभाव भावि फलोत्पादक, और भाव भावी प्रतिबंधक. (३) करने न करनेसे फलके हेतु नहीं ॥ पूर्व वर्तमान संचित (किये हुये कर्मजन्यादृष्ट) का उक्त कर्मयोगसे अभाव

इसलिये उत्तर जन्मका हेतु नहीं और किये हुये प्रारब्धका भोगमे अभाव, अतः वोह भी उत्तर जन्मका हेतु नहीं हो सकता. और काम्य निषिद्ध करनेका अभाव होनेसे वे भी उत्तर जन्मके हेतु नहीं और जिनके न करनेसे उत्तर जन्मके लिये हेतु उत्पन्न हों उनकी उत्पत्ति न हो इसलिये नित्य नैमित्तक किये गये, अतः उनके न करनेसे जो भावी हेतु पेदा होते उनका अभाव है और करने न करनेसे कर्त्ताका विशेष फल नहीं ऐसे निष्काम कर्म बंधके हेतु नहीं हो सकते. एवं कर्मयोग साधनद्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीरका असंबंध होनेसे जीव शुद्ध शेष रहा. उसको नित्य स्वर्ग (दुःखाभाव रूप आनंद स्थिति) प्राप्त हो यह स्पष्ट है.

परीक्षा—प्रायश्चित करनेसे संचितका अभाव और कर्म योगमे बंधका अभाव हुवा या नहीं, इसकी परीक्षके साधारण लिंग यह हैं. (१) मनमे स्वाभाविकमे इतर 'शंका, भय और लज्जा पेदा न हो (इसका विस्तार बुद्धिमान स्वयं कर सकता है.) (२) स्वाभाविक कर्ममे विशेपका स्फूरण न हो. (३) प्रसंग प्राप्त होने पर स्वाभाविकमे इतर राग द्वेष हर्ष शोक न हो. (४) स्वप्न वा लोकके विशेष प्रसंग समय साधारण प्रायश्चितवाला अभ्यास फुरजाया करे. (५) काम्य वा निषिद्ध कर्म करनेकी वासना न फुरे (६) यदि कर्म फुरे ते। भी निष्काम (७) नित्यादि और निष्काम कर्म प्रसंगमेंभी हर्ष शोक और अभिमान पेदा न हो.

(सूत्र संक्षेपमें)-सूत्रोंमे कर्म के लक्षण और नाम नहीं लिखनेमें कारण है. वोह यह है के-प्रारब्ध, काम्य, निषिद्ध और प्रायश्चित यह पदही उनके लक्षण बता रहे हैं. याने होनेमे (उनके करनेमे) वे फलवाले, और निष्काम न करने. वा करनेमे कर्त्ताको फलवाले नहीं. शेष नित्य नैमित्तक के लक्षण अर्थापत्ति से हो गये याने जिनके न करनेमे भावी बंध होवे. नित्यादि के नाम इसलिये नहीं लिखे के उनका ऐसा विशेष नियम नहीं है कि जो सबको समान हों किंतु यथा देश काल स्थिति अनेक प्रकारके हो सकते हैं. तथाहि नित्यादि के लक्षण ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है अतःविवेचनमें लिखना वा समझाना आवश्यक नहीं.

(कर्मोंका संक्षेपसे विभाग)-जीवको शरीरसे भिन्न मानेवाले जो हैं उनमें प्रारब्ध, प्रायश्चित, काम्य, निषिद्ध और निष्काम कर्ममें विशेष विवाद नहीं है. जितना विवाद है वोह और जडवादि जो विवाद करते हैं वोह सृष्टि नियम

विचारनेसे निवृत्त हो जाता है क्यों कि जडवादि भी उनको प्रकारांतरसे मानते हैं ॥१॥ बालक, उन्मत्त, पामर, विषयी, विषयासक्त, अतिरोगी, अशक्त, आपत्ति सहित (आपत धर्मवाला) इस कर्मयोगके अधिकारी नहीं और तज्ञको तो स्वयंसिद्ध है, इसलिये उनकी चर्चाका प्रसंग नहीं. ॥२॥ प्रत्युपकार- माता पिता गुरु आदिका जो ऋण हो तो पूरा ही करना चाहिये. उसका विशेष संबंध प्रारब्ध के साथ है. इससे इतर प्रत्युपकार (ऋण) का क्रियमाणके साथभी समावेश होनेकी संभावना है ॥३॥ शरीरयात्रा अनिवार्य है. उसका प्रारब्धके साथ संबंध है. ॥४॥ वैसेही दवाई वगेरे करनेकामी ॥५॥ काम्य और निषिद्धका प्रसंग नहीं क्योंकि वे त्याज्य हैं ॥६॥ योग्य निष्काम कर्मका अंत नहीं, जिससे जितना हो सके करे परंतु फर्जरूप नही माना जा सकता. यदि फर्ज मानें तो सृष्टिका प्रत्युपकार है• याने उभय प्रकारमें भावी जन्मका हेतु नहीं है ॥७॥ निष्फल प्रवृत्तिके जनक जो भ्रम, संशय, आसुरी, विपरीत बुध्धिवाले (चोपड, वहेमादि) कर्म वे इस प्रसंगके विषय नही ॥८॥ अधिकारी जिसके सिर ३ ऋण. (पितृ-देव-लोकऋण) हों ओर जो तीन एषणा (लोक, वित्त,कान्ता) मे आसक्त-ग्रस्त हो वोह कर्मयोगका पूरा अधिकारी नहीं ॥११॥ प्रायश्चित भोगमेंभी विवाद नहीं है. कारण के संचित कर्मजन्य अदृष्टका अंत उपरानुसार होना सयुक्त है. एकके कर्मका फल दूसरेकोभी मिलनेकी व्याप्ति है. यथा पाचकके कर्मका फल महिमान वा भिखारीको मिलता है. और दवाई दानसे रोगीको फल मिलता है ॥९॥ अधिकारी जिसके स्वपर संबंधी संचित शेष न हों और यदि हों तो अल्प हो वोह कर्मयोगका पूरा अधिकारी हो सकता है ॥१०॥ अनधिकारी-परसंबंधी स्वसंबंधी यदि घोर संचित शेष हों तो ऐसेकी इस योगमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी. इसलिये प्रसंगका विषय नही ॥१२॥ नित्य नैमित्तिक कर्म कोइभी हों किसी मत संप्रदायके हों परंतु उपर कहे हुये लक्षणके विषय सिद्ध होने चाहिये. कर्मयोग गृहस्थाश्रमी नहीही कर सकता, ऐसा सर्वांशमें नहीं है. तथापि वर्तमान कालमें काम्य कर्मका त्याग मुशकिल है. इसलिये गृहस्थाश्रमीको साधना मुशकिल तो है ॥

(नित्यादि कर्म कोनसे ?) किसीके कथनमात्रसे ही कर्मविधि मान लेना भूल है. (आगे परीक्षा प्रसंगका विषय आवेगा वहांका यह विषय है. अधिकारीकी सुगमता वास्ते यहां ही लिख देते हैं.) यथा कोइ "इष्टार्थ नित्य बलीदान न होगा वा निमित्त पर न होगा तो उसका कोप होगा." ऐसा नित्य कर्म बतावे. किसी ब्रह्मचारीसे यतिव्रत भंग हुवा हो तो वोह गर्धव इष्टि (गधा मारके होमे) करे यह प्रायश्चित है,

ऐसा कहे. प्रसंग प्राप्त होनेपर सौत्रामणि (जिसमें मदिराका ग्रहण बताते हैं.) यज्ञ करे. नहीं करे तो प्रत्यवाय हो इत्यादि नित्य नैमित्तक कर्म कहे.

यदि प्रत्यक्ष प्रमाण वा प्रत्यक्ष व्याप्तिसे तदाभावद्वारा दुःख फल सिद्ध होता हो तो वैसे कर्म व्यावहारिक हों वा परमार्थिक हों अवश्य कर्तव्य है. इस प्रकार परीक्षा करनेसे अमुकके नित्य नैमित्तक मानना अमुकके नहीं यह सवाल ही नहीं रहेता. अन्यथा जो कोइ विश्वाससे मान लेवे यह उसकी इच्छा है.

उपर जो संध्यादि नित्य नैमित्तक लिखे हैं, वेही सर्वतंत्र वा माननीय हैं, ऐसा आग्रह नहीं है. द्रव्यरहित ब्रह्मचारी वा संन्यासी अग्निहोत्रका अधिकारी कैसे हो सकता है? नहीं. और न उनको इस अभावसे प्रत्यवाय होता है. और जो सामग्री सहेजमें प्राप्त होने पर करें तो निषिद्धभी नही है.

हमारे विचारमें तो इस—वर्तमान आपतकालमें कर्मसिद्धि की सामग्रीका यथावत् अवसर न मिलनेसे संक्षेपमें इतनाही कहना पडता है कि जहांतक बन सके. (नित्य) तीन प्रकारके. शौच (तन मन वाणीकी शुध्धि) यथाविधि, शम, दम, सत्य संध्या, जो हो सके तो नित्य अग्निहोत्र और सत समागम करे और कुसंगसे वर्जित रहे, जरूरत और तृष्णाको कम करे. तथा सत् शास्त्रोमें जो नित्य कर्म बताये हैं वे जितने बन सके उतने नित्य करे. (नैमित्तिक) उपर कहे हुयेसे इतर अर्थात् सत् शास्त्रोंमें जो नैमित्तक कर्म कहे हैं वे जितने बन सके उतने करे. यथा अतिथिका सत्कार और उसका सत्संग, तथा जो करना प्राप्त हो जाय सो करे (मिश्रित) जो नित्य और नैमित्तक प्रसंगमेंभी प्राप्त हो सके वे. यथा ब्रह्मचर्य, विवेक, सफल पुरुषार्थ वा नित्य नैमित्तक कर्म न कर सकें ऐसे तन मनके रोगोके प्रतिबंधक वा नाशक कर्म. (यथा पूर्वोक्त धर्म) करे.

उपरोक्तमे जिस जिसको जिन जिनका जब जब अधिकार प्राप्त हो सो सो उन उनको तब तबही करे. परंतु कर्तव्यभावसे करे. नहीं के लोकैषणाकी दृष्टिसे. जो वर्तमान आपतकालमें न बन सके वे न करे. यथा, यज्ञ कोई श्रीमानही कर सकता है. वा सत्ताधारी कर सकता है. तथापि तन मनसे किसका बुरा न करे और अपने तन मनको दुःख हो ऐसे कर्म न करे.

प्रायश्चित कर्मका जितना भेद उपर कहा उतनाभी बने तो ठीक है. (प्रारब्ध

(निष्काम) यह कर्म महान लाभकारी है. इस वृत्तिवाला कर्मकी किचडमें लिपायमान नही होता. व्यष्टि समष्टिके हितकारक कामोंका इसमें समावेश हो जाता है.

दृष्टांत—स और प. पुरुषने सडक पर योग्य भूमी पाके आम्रके वृक्ष लगाये. स की निष्ठा फल खाने और वेचके टके पेदा करनेकी है. इस लिये उसको पानी रक्षक मनुष्य, वाड. संभाल, पंथाइओंके साथ तकरार, फल पकनेपर मुखाको भेट, सरकारी हासिल, राज्यकामकारी और संबंधिओंको तोहफा, वेचनेका प्रबंध इत्यादि खटपटमें उतरना पडता है. यदि प्रबंधमें खामी पडी, वृक्षके फल न आये, वा आंधीसे नष्ट हुयें और दृष्ट फल न मिला तो चिंता और दुःख होता है ॥ प. ने इस निष्ठासे लगाये थे कि पंथाईको छायाका सुख मिले, भूखेको फल मिले. इस लिये उसको वृक्ष तैयार होनेतक पानी देने और वाड करनेका काम करना पडता है. स जितनी खटपट वा चिंता नही करनी पडती है. किंतु उपकार जानके दूसरेभी रक्षक बन जाते हैं. किसी नीचके सिवाय कोइ पंथाइभी अनुचित उपयोग नहीं करेगा. किंतु आराम पाके कर्ताको शुभाशीर्वाद देंगे. जो फल वचेगा तो योग्य पुरुषको भेट भी देगा. वृक्ष फलको हानी हो जाय तो चिंता वा दुःख न होगा. प्रकार सकाम और निष्कामकर्मोमें अंतर है.

किसी भूले हुये पंथाईने मार्ग पूछा उसको मार्ग बताना निष्काम कर्म है. युद्धगत् घायल हुये मनुष्योंकी सेवा करनेवाले निष्काम कर्म कर रहे हैं.

निदान साक्षात् वा परंपरा—करके अपनी नीयतमें जराभी अपना स्वार्थ (कीर्ति-मोक्ष—स्वरक्षा) न हो और परार्थ हो वोह निष्काम है इसके अन्तरगत् स्वभावतः अपनेको लाभ हानी हो जाना यह जुदी बात है. यद्यपि निष्काम होना आकाशकी माला समान कहोगे, तथापि सर्वथा असंभवभी नहीं है. इसलिये उपरोक्त निष्ठासे परार्थ उपयोगी शरीरकी रक्षा और उत्तम योग्य परोपकार निष्काम करे तो वेसे कर्म बंधनके हेतु नहीं होते. किंचित सहेज कष्ट होना (वाड लगाने जेसा) कष्ट नहीं कयोंकि कर्म किये विना जीवन नहीं होता.×

× प्रवृत्तिवादि वा जडवादिका यह कथन कि "स्वार्थ रहित कोई नहीं होता. अंदरमें कुछ न कुछ स्वार्थ होगा तब ही कर्म होगा. इसलिये जो काम करना वा कराना हो उसमें कर्ताके स्वार्थ सिद्धिका मार्ग अवश्य रखना चाहिये. नहीं तो यथायोग्य काम न होगा." उपेक्षणीय नहीं है तथापि निष्कामतासे मनकी शुद्धि और भावि विघ्नोंका प्रतिबंध होता है यही फल वा स्वार्थ मान लीजे. अंतर इतना है कि चितमें स्वार्थकी कल्पना कर लेना और कल्पना विना परार्थ करना. सारांश कर्मका फल तो होहीगा परंतु निष्ठामें अंतर है.

अधिकार—कहे हुयेसे देश, काल, और स्थिति तथा वर्णाश्रमका निर्णय हो सकता है. संक्षेपमें—योग्य देशमें स्थिति हो, नहीं के दुष्टता अन्यायग्रस्त देशमें ॥ बालकादि कालमें नहीं किंतु प्राणायामादि कर सकें ऐसे काल और बलवान स्थितिमें. नैष्टिक ब्रह्मचारीको जबसे संध्यादि करनेका ठीक अधिकार प्राप्त हो तबसेही वोह करे. गृहस्थको जब संकामताका अभाव पेदा हो, तीनो ऋण तीनुं एषणासे मुक्त हो तबहींसे गृहस्थमें रहकेभी अधिकार प्राप्त होजाता है, परंतु ऐसा किरोडोंमेंसे विरल होगा. ॥ वानप्रस्थाश्रम तो कर्मयोगका साधन ही है. ॥ संन्यासाश्रमी कर्मयोगी बन जावे वा होही, यह स्पष्ट ही है. द्विजातिय वर्ण कर्म योगका अधिकारी हो सकता है, परंतु जबके उपरोक्त अधिकार प्राप्त हो और उसके देशकाल स्थितिका निर्णय हो जावे. शूद्र अर्थात मूढ—पामर है तो लाचार ही है. कर्मयोगमें ईश्वरको दरमियानमें लेनेकी जरूरत नहीं रहती क्योंकि वोह सनियम न्यायी है. जिससे दूसरे अनपराधीके मनको दुःख पहोंचे वोह कर्म कर्मयोगका विषय नहीं है, ऐसा जांन्ना चाहिये.

इसप्रकार कर्मयोगका संक्षेपमेंही व्याख्यान किया गया है कारण के दूसरे ग्रंथमें* बहुत विस्तारसे सयुक्त वर्णन किया है.

(शंका) उपासना योगसें विशेष फल होने योग्य है ऐसा वक्ष्यमाण उपासना प्रसंगसे जान पडता है तो जो उक्त एक भविक मुक्तिके अधिकारीने कर्मयोग आरंभके पूर्व यदि उपासना योग (वक्ष्यमाण संयमयोग) किया होतो मुक्तिकालमें भविक मुक्तिसे कुछ विशेष (सिद्धि—वैभवी मुक्ति) फल होगा वा नहीं ? (उ.) प्रसिद्ध अष्टांग योगके ३ परिणाम हैं. (१) जिस साधकको विवेक विद्या न हो उसको निरुध्य परिणामकी याने शून्य समाधिकी सिद्धि होती है. इस समाधिमें यद्यपि अविद्यादि उद्भव नहीं होते तथापि उनका बीज होता है, इस लिये उत्थान पीछे होते हैं. सारांश अंधेरी कोटडीमें स्वत्वाभिमान सहित बेठने जैसा है. स्थिर होनेसे देश कालादि वहां नहीं जान पडते. किंवा जिसने ज्योतिषमती आदि साधन किये हों तो जैसे सूर्यके प्रकाशमें शरीर विना सचेत बेठे हों ऐसी स्थित होती है. (२)—समाधि सिद्धिके पीछे जो संयमका अभ्यास कर लिया हो तो चितका पदार्थाकार हो जानेसे कोइ कोइ प्रकारकी सिद्धियें वा मानसिक शक्तियें प्राप्त होती हैं. और इसलोक और परलोकमेंभी यह अभ्यास का रामद होता है. ॥ जेसे पश्चमके सायंसवालोंने अग्नि, जल, विजली, इथरकी उपासना

* लिखित "कर्म विवेक" बांचो, जिसमें प्रारब्धादि क्रियादि भूत भावी भावक अभावक अनेक कर्मोके लक्षण उपयोग और भविक कर्मयोगका विस्तार है.

(तदाकारता) की तो तार, रेल, फेनोग्राफ इत्यादि सिद्धि मिली, जोके व्यवहारमे सर्वको उपयोगी हो पडी. (२) जो विवेक विद्या सीखी हो और पुरुष (आत्म) ज्ञान तथा मोक्ष की इच्छा हो तो समाधि सिद्ध होने पीछे विवेक ख्याति होजाती है. योगविद्या इसे कैवल्यका मुख्य साधन कहति है. और द्दष्टा द्दश्यभिन्न होनेसे अपना ज्ञान अपनेको नहीं हो सकता, ऐसे कर्मयोगी मानता है. ॥

अब विचारना चाहिये-विवेकरहित शून्य समाधिमे विदेही कर्मयोगी उत्तमही है. यदि कर्मयोग आरंभके पहेले संयम सिद्ध होजानेसे प्राप्त हुई है तो विदेह मुक्तिमें उस अभ्यासद्वारा सत् संकल्प बलसे बंधनकारक न हों ऐसे स्वतंत्र भोग स्वप्न समान भोग सकता है इतनी कर्मयोगकी मुक्तिसे विशेषता हो सकती है. (शरीर त्याग पीछे सिद्धि सुख मिलनेकी व्याप्ति हेपनोटिज़म और वर्तमान अल्पश्रमवाले योगी द्वारा मिल सकती है) परंतु कर्मयोगीका यह निश्चय होता है के केसेभी हो, चित और भोग्यका उपादान प्रकृति. इसलिये भोगका पर्यवसान रोग (बंध) इस लिये भोगसे उपेक्षा रखता है. ॥ यदि कर्मयोगारंभ पूर्व संयमसिद्धिद्वारा अथवा अन्य ज्योतिष मति आदि क्रियायोग द्वारा तदाकारता याने उपासनाका अधिकार प्राप्त हो गया है तो विदेह होने पीछे ईश्वराकार अपनेको कर सकता है याने ईश्वर तो अविषय है परंतु जेसे शब्द स्पर्शादिके खास स्वरूपको नही जानते हैं तोभी तदाकार वृत्ति हुई. उसका आनंद भोगा जाता है यह तदाकारता आकाश जेसी अज्ञात परोक्षकी तदाकारता समान है. इसी प्रकार कर्मयोगी ईश्वरको विषय न करता हुवाभी उसका आनंद भोग सकता है. यह विशेषता हो सकती है परंतु कर्मयोगीका यह निश्चय होता है कि ईश्वर आनंद स्वरूप याने भोग्य है. और जीव परिछिन्न उसका भोक्ता है अर्थात् आनंदांश भोग्य है तोभी अंतको बंध है क्योंकि जो अणु परिमाणु वाले जीवके साथ मोक्षमें मध्यम परिमाणुवाला चित वा बुद्धि नहीं तो अणुमें वेसा नहो सकनेसे तदाकारता असंभव. स्वप्नवत भोग भोगना भी कल्पना मात्र है जो चितादि साथ हैं तो अंतमे बंधके हेतु हैं. इसलिये उपेक्षा करता है. तथापि जो उपासना सिद्ध की हो तो ईश्वरमे सायुज्य हुवा आनंद भोग सकता है. सू. ६६ वांचो ॥४१॥ अब कर्म योग पीछे उपासनाका साधन याने भक्तियोग कहते हैं:-

भक्तियोग धर्म रत ॥४२॥ दर्शन और चारित्रसे प्राप्त ॥४३॥ जेसे पूर्वोक्त धर्म, व्यवहार और परमार्थमें उपयोगी है वैसे भक्तिभी उभयमें उपयोगी है.

॥४३॥ और भक्ति, दर्शन और चारित्र्यसे प्राप्त होती है ॥४३॥ माता पिता और गुरु आदिकी भगति व्यवहारमें और ईश्वर भगति परमार्थमें उपयोगी है. दृश्य पदार्थोंकी भगति अपरोक्षकी भगति कहाती है यथा. माता; पिता, गुरु अवतारी महापुरुषोंकी और अदृश्यकी भगति परोक्षकी भगति कहाती है. यह दोनों प्रकारकी भगति, दर्शन चारित्रसे प्राप्त होती है (१) अपरोक्षके दर्शन और उनके गुण कर्म स्वभावके आभाससे अपरोक्ष भगति प्राप्त होती है. (२) ईश्वरके दर्शन चारित्रका भावार्थ दूसरा है:— सृष्टि सौंदर्य और शास्त्र दर्शनसे ईश्वरसे अस्तित्वमें श्रद्धा होती है. यथा, नाना प्रकारके विचित्र दरखत फूल फल, मंदिर मकान तारागण और शरीरकी आंतरीय रचना (सनियम उपयोगी हिकमतभरी हुई अति गंभीर और सुंदर कौशल्यतासूचक मगज, गर्भ, चक्षु, हृदयादिकी रचना) देखनेपर ईश्वर प्रति श्रद्धा अवश्य हो जाती है ततपश्चात् उनके सूक्ष्म भावकी मनमें तसवीर खेंचते हैं तो विशेष मानसिक भगतीका प्रादुर्भाव होता है उस पीछे कथासे ईश्वरके गुणमें पिछे भाव (याने मनमें उनका आकार होना उस) में भगति होती है. ऐसा करनेसे अपरिछिन्न (निराकार) भावका आविर्भाव हो जाता है. उसमें प्रवेशके वास्ते शब्द या अमूर्त्ताकाशमें वृत्ति लगानी पडती है. उसपीछ चारित्रमें उतरना पडता है. याने कर्तव्य भावसे (हमारा फर्ज है उस परम पिताकी भगती करना) कर्तव्य करना पडता है तब निराकारकी उपासना (तदाकारताका भाव) होती है. उसमें इश्वरमें महवीयत याने तल्लीनता (स्वभावरहित, तादात्म्यवत् तदाकारता) हो जाती है.

इस प्रसंगमें यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि प्रस्तुत लेख आजीविका, वैभव, लोकाकर्षक, रोचक, विषय भोग संबंध मूर्तिपूजाको वा तदर्थ यात्राका सूचक संकेत नहीं है किंतु ईश्वरीय भाव उद्भवकी सामग्रीका क्रम कह रहा है. यदि किसी सूक्ष्म वृत्ति वालेको दर्शनवाला भाव प्राप्त हो तो वोह उस क्रममें न पडे किंतु चारित्रमेही आरंभ करे.* ॥४३॥

---

* अब आगे सू. ४४ से ६८ तक भक्ति उपासनाका प्रसंग है. उन सूत्रोंका अर्थ ईश्वरसे इतर परोक्ष देवता वा प्रकृतिकी भक्ति उपासनामें किंवा अपरोक्ष मनुष्य प्राणीकी भक्ति उपासनामें वा जड देव अग्नि विद्युतादिकी भक्ति उपासनामेंभी लग जाता है परंतु यहां परमानंद प्राप्ति रूप मोक्षमें तात्पर्य है इसलिये असंभूति वा संभूतिकी भक्ति उपासनामें अर्थ नहीं करना किंतु पूर्वोक्त ईश्वरकी भक्ति उपासनामें ही अर्थ करना चाहिये.

अब भक्तिके लक्षण और भेद वगैरे कहते हैं:—

†. परमें अनुरक्ति भक्ति ॥४४॥ वोह अपरा और परा ॥४५॥ इष्ट स्मरण, अनुवर्तन और उसका प्रसादार्थ कृति सो अपरा भक्ति ॥४६॥ उसके प्रेममें भान रहित होजाना परा ॥४७॥ उभयका बीज श्रद्धा ॥४८॥ अलौकिकि, परोक्ष विषयकी होनेसे ॥४९॥ दोनोंका सदाचारी अधिकारी ॥५०॥ क्रमशः उपासनाका साधन ॥५१॥ दोनों लौकिकिभी अपरोक्ष विषयकी होनेसे ॥५२॥

दूसरेमें अनुराग होना यह भक्तिका सामान्य लक्षण है. ॥४४॥ (चेष्टाभावसे उसके विशेष भेद होते हैं सो कहेते हैं) भक्तिके दो भेद हैं. अपरा भक्ति और परा भक्ति ॥४५॥ (इनके लक्षण कहते हैं) इष्टके गुणकर्म-चारित्र और स्वभावके स्मरण वास्ते, यथासंभव तदनुसार तद्धर्मापत्ति के वास्ते और उसकी प्रसन्नताके वास्ते, जो चेष्टा की जाय उसका नाम अपरा भक्ति है ॥४६॥ इसके प्रेममें इतना मग्न हो जाना कि अपने आपे (स्वत्व) का भान न रहे इसको परा भक्ति कहेते हैं. ॥४७॥ दोनों याने अपरा और पराभक्ति होनेमें श्रद्धा (भावना विश्वास) बीज है अर्थात् श्रद्धा होनेपर होती है. ॥४८॥ पूर्वोक्त दर्शन और चारित्रमे श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है यदि श्रद्धा भावना न हो तो भक्तिका अंकुरभी नहीं फूटता. ॥४८॥ परोक्ष विषयकी भक्ति होनेमे वो अलौकिकि (अपरा अलौकिकि, परा अलौकिकि) कहाती हैं ॥४९॥ इन दोनों भक्ति का अधिकारी सदाचारीही हो सकता है ॥ दुराचारी भक्ति नही कर सकता ॥५०॥ अपरा और परा दोनों भक्ति इष्टकी उपासनाका साधन हैं. अपरासे परा और परासे इष्टकी उपासना होतीहै इस प्रकार क्रमशः अपरा बहिरंग और परा अंतरंग साधन है ॥५१॥ अपरोक्ष विषयकी भक्ति होनेसे वे दोनों लौकिकी (अपरालौकिकि और परालौकिकि) भी कहाती हैं. ॥५२॥

विवेचन-सू. ४४ से ५२ तक। —(शंका) जबके ईश्वर न्यायकारी है तो उसकी प्रसन्नता अप्रसन्नता नहीं मानी जानी अतः ईश्वर स्तुति वगरे व्यर्थ हैं. (उ.) अपरोक्ष प्राणीकी प्रसन्नता तथा जड देवोंकी उपयोग रूप प्रसन्नता स्पष्ट है. ईश्वरकी प्रसन्नताका भावार्थ यह है कि भक्तिद्वारा यथासंभव तद्धर्मापत्ति (सत्य. न्याय, दया

† पर परमेश्वरकोभी कहते हैं ॥ भगवताऽऽरता वृत्ति भक्ति।१। आराध्यत्वेन शानभक्ति।२। कथाऽधितिगर्गः।३। आत्मरत्य विरोधेनेति शाण्डिल्य।४। यह दूसरोंने लक्षण किये हैं.

प्रेम, समानता, अतिरस्कार, पुरुषार्थ इत्यादि) होजाती है. अपनी प्रजामें तद्धर्मापत्तिको जानके सौम्यभाव जान पडता है यही प्रसन्नता है. सच्चा अच्छा राजा सदाचारियोंकी दृष्टिमे सौम्य दयालु और प्रसन्न जान पडता है. दुष्टोंकी दृष्टिमें यमराज, रुद्र, काल और क्रूर भान होता है जो ईश्वरके भक्त हैं उनके हृदयमे सौम्य दयालु कृपालु भावका आभास होता है उसमे भगत आगे बढता है क्योंकि भक्तोंका कल्याणकारी ईश्वरही है यह उनका विश्वास होता है. ईश्वरसे प्रार्थना करना, उसकी स्तुति करना, और उसका ध्यान धरना इन तीनों कर्म करनेमे ईश्वरमें न्यूनाधिकता नहीं होती क्योंकि उसका न्याय नियम अटल है किंतु तीनों प्रकार करनेमे कर्ताको महान फल होता है. प्रार्थनामे अभिमानकी निवृत्ति, नम्रताकी प्राप्ति, स्तुतिमे उत्तम गुण कर्मकी प्राप्ति याने तद्धर्मापत्ति, ध्यान करनेमे चित्तकी निर्मलता–शुधताकी प्राप्ति होती है. तथा सूक्ष्म हो जाता है. (विशेष मूलमें और भपमें) इत्यादि शुभ फल है अतः कर्तव्य है.

परोक्ष ईष्टके स्मरणादि अपरा भक्ति है, इसका फल मल (पाप) नाश और मनकी शुद्धि है और उपासनाका अधिकारी बन जाना यह अंतिम फल है. स्मरणमे अन्य मलिन संस्कारोंका शनै शनैः नाश होना यही पाप नाश है मलिन वासना न फुरना यह उसकी परीक्षा है. और अनुवर्तनमे चित्तकी शुद्धि हो यह स्पष्ट ही है. ॥८६॥

अपरा भक्तिके ९ प्रकार माने गये हैं (१) श्रवण–इष्टकी योग्यता याने इष्टके गुण कर्म शक्ति और स्वभावका सद्गुरु वा सद्ग्रंथोद्वारा श्रवण करना (२) कीर्तन–इष्टकी योग्यताका रटन अभ्यास करना कराना (३) स्मरण–इष्टकी योग्यताका वारंवार याद–जप करना समय समय पर फुरना (४) पादसेवन–इष्टकी प्राप्ति अर्थ तद्धर्म आपति वालेको उसका स्वरूप मानके उनकी सेवा करना. जो सदाचरी विद्वान ज्ञानवान इष्टके प्रिय भगत हैं वे तद्धर्मापत्तिवाले होनेमे उसके तुल्य कहाते हैं (५) अर्चन अनुवर्तन प्राप्ति वास्ते तद् धर्मापति वाले महात्मा भगत जनोंका आदर सत्कार पूजन करना (६) वंदन–शरीर पर्यंतकी ममता और मेपना (अभिमान) त्यागके परमात्मा और तद्धर्मापत्तिवाले महात्मा तथा (सद्गुरु) को नमस्कार करना. (७) दास्य–परमेश्वरको तमाम ब्रह्मांडकी चावी किंवा स्वामी मानके अपनेको उसका दास जानके उसकी आज्ञाका पालन करना अर्थात् सृष्टि नियमानुकुल वर्तना. जिस कर्ममें शंका भय लज्जा हो वोह काम न करना (तथा तद्धर्मापत्तिबोधक सद्ग्रंथोंकी आज्ञा पालना) (८) सख्य–हमारी वृत्तिओंके साथ रहा हुवा अंतरजामी परमात्मा हमारा सहायक है

ऐसी दृढता होना (८) आत्मनिवेदन—सविवेक ममत्व अहंत्वका त्याग होके चित्तका परमात्मामें लगा रहना—सब विचार उसीमें ही देखना. जहां जहां मन जावे तहां तहां उसीको खोजना. ॥ इस प्रकार नोधा अपरा भगति कहाती है जो परा भक्तिकी साधनभूत है [*].

(१०) पराभक्ति (प्रेमाभक्ति) सूत्रमें लक्षण कहे हैं.

अपरा भक्ति परपक्व होनेपर इष्ट अर्थात् परमात्माके प्रेममें अहंत्व भूल जाना प्रेममग्न होना पराभक्ति है. परंतु जो राग वा स्वार्थभाव हो तो वोह प्रेमाभक्ति नहीं है किंतु रागी है. राग, मोह और प्रेममें सूक्ष्म अंतर है. प्रेममें विरोधाभासमें तुं यह इत्यादि भाव नहीं होते. राग और मोहमें होतेभी हैं.

पराभक्तिमें भावनाको मुख्यता है. जेसे सोना अग्निद्वारा द्रवत्वको पाता है वेसे इष्टके प्रेमसे चित्त द्रवीभूत याने रसरुप हो जाता है इस समय अहंत्वका भान नहीं होता इष्टमें लीन हुवा होता है. में नहीं वोह ही होता है. वोह में रूप हो जाता है. सारांशमें तु यह वोह भाव नहीं होता. प्रेम यह चित्तका भाव है और रस चित्तका द्रवत्व है. यह दोनों जीव वृत्तिकी ही अवस्था विशेष हैं. प्रेम और रसके लक्षण अद्यापि कोई नहीं कर सका है जिसने तुर्याका अनुभव किया है या जिसने अपनेको लेले मजनूं बनाया है वोह प्रेम रसको जान सकता है. सारांश स्व वेद्य है. ईश्वरकी परा भक्तिका फल लौकिक भक्ति समान नहीं है किंवा देवोंकी भक्ति समान नही है किंतु विलक्षण है अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापी होनेसे जीव चित्तमें ओत प्रोत है. जब जीव वृत्तिकी परा रूप अवस्था होती है तब परमात्माकी उस पर कृपा हो जाती है याने प्रेमी भक्त उस सूक्ष्मको ग्रहण करनेमें असमर्थ है, इस लिये वहां बुध्धिके पर (पक्ष) टूट जाते हैं और स्थित होना पडता है और जीव वृत्ति (बुध्धि) शुध्ध निर्मल है और उसमें इष्टाकारताका भाव है इस लिये प्रेम बलसे रसरूप हुवा जो स्थिर चित्त उसमें अकथ्य अद्भुत प्रकारसे आनंदरुप परमात्माका भोग होता है यदि पराभक्तिरूप साधन न होता तो यह फल (उपासना) न होता. ऐसे अभ्यास हुये यह संस्कारी जीव ईश्वरकी उपासना (तदाकारता) करने योग्य हो जाता है याने जब चाहे तब तदाकार हुवा आनंद भोगता है. इस परमानंदके लक्षण नही हो सकते. मन वाणीसे पर है ॥४७॥ ॥९१॥

[*] दूसरोंने वा अवतारवादिओंने जो नोधा भक्तिके लक्षण किये हैं उनसे यह लक्षण कहीं कहीं भेदवाले हैं.

प्रेम, समानता, अतिरस्कार, पुरुषार्थ इत्यादि) होजाती है. अपनी प्रजामें तद्धर्मापत्तिको जानके सौम्यभाव जान पडता है यही प्रसन्नता है. सच्चा अच्छा राजा सदाचारियोंकी दृष्टिमें सौम्य दयालु और प्रसन्न जान पडता है. दुष्टोंकी दृष्टिमें यमराज, रुद्र, काल और क्रूर भान होता है जो ईश्वरके भक्त हैं उनके हृदयमें सौम्य दयालु कृपालु भावका आभास होता है उससे भगत आगे बढता है क्योंकि भक्तोंका कल्याणकारी ईश्वरही है यह उनका विश्वास होता है. ईश्वरसे प्रार्थना करना, उसकी स्तुति करना, और उसका ध्यान धरना इन तीनों कर्म करनेसे ईश्वरमें न्यूनाधिकता नहीं होती क्योंकि उसका न्याय नियम अटल है किंतु तीनों प्रकार करनेसे कर्ताको महान फल होता है. प्रार्थनासे अभिमानकी निवृत्ति, नम्रताकी प्राप्ति, स्तुतिसे उत्तम गुण कर्मकी प्राप्ति याने तद्धर्मापत्ति, ध्यान करनेसे चित्तकी निर्मलता—शुध्धताकी प्राप्ति होती है. तथा सूक्ष्म हो जाता है. (विशेष मूलमें और भपमें) इत्यादि शुभ फल हैं अतः कर्तव्य है.

परोक्ष इष्टके स्मरणादि अपरा भक्ति है, इसका फल मल (पाप) नाश और मनकी शुद्धि है और उपासनाका अधिकारी बन जाना यह अंतिम फल है. स्मरणसे अन्य मलिन संस्कारोंका शनै शनैः नाश होना यही पाप नाश है मलिन वासना न फुरना यह उसकी परीक्षा है. और अनुवर्तनसे चित्तकी शुद्धि हो यह स्पष्ट ही है. ॥८१॥

अपरा भक्तिके ९ प्रकार माने गये हैं (१) श्रवण—इष्टकी योग्यता याने इष्टके गुण कर्म शक्ति और स्वभावका सदगुरु वा सद्ग्रंथोद्वारा श्रवण करना (२) कीर्तन—इष्टकी योग्यताका रटन अभ्यास करना कराना (३) स्मरण—इष्टकी योग्यताका वारंवार याद—जप करना. समय समय पर फुरना (४) पादसेवन—इष्टकी प्राप्ति अर्थ तद्धर्म आपति वालेको उसका स्वरूप मानके उनकी सेवा करना. जो सदाचरी विद्वान ज्ञानवान इष्टके प्रिय भगत हैं वे तद्धर्मापत्तिवाले होनेसे उसके तुल्य कहाते हैं. (५) अर्चन अनुवर्तन प्राप्ति वास्ते तद् धर्मापति वाले महात्मा भगत जनोंका आदर सत्कार पूजन करना (६) वंदन—शरीर पर्यंतकी ममता और मैंपना (अभिमान) त्यागके परमात्मा और तद्धर्मापत्तिवाले महात्मा तथा (सदगुरु) को नमस्कार करना. (७) दास्य—परमेश्वरको तमाम ब्रह्मांडकी चावी किंवा स्वामी मानके अपनेको उसका दास मानके उसकी आज्ञाका पालन करना अर्थात् सृष्टि नियमानुकूल वर्तना. जिस कर्ममें शंका भय लज्जा हो वोह काम न करना (तथा तद्धर्मापत्तिबोधक सद्ग्रंथोंकी आज्ञा पालना) (८) सख्य—हमारी वृत्तिओंके साथ रहा हुवा अंतरजामी परमात्मा हमारा सहायक है

ऐसी दृढता होना (८) आत्मनिवेदन–सविवेक ममत्व अहंत्वका त्याग होके चित्तका परमात्मामें लगा रहना–सब विचार उसीमें ही देखना. जहां जहां मन जावे तहां तहां उसीको खोजना.॥ इस प्रकार नोधा अपरा भगति कहाती है जो परा भक्तिकी साधनभूत है [१]

(१०) पराभक्ति (प्रेमाभक्ति) सूत्रमें लक्षण कहे हैं.

अपरा भक्ति परपक्व होनेपर इष्ट अर्थात् परमात्माके प्रेममें अहंत्व भूल जाना प्रेममग्न होना पराभक्ति है. परंतु जो राग वा स्वार्थभाव हो तो वोह प्रेमाभक्ति नही है किंतु रागी है. राग, मोह और प्रेममें सूक्ष्म अंतर है. प्रेममें विरोधाभासमें तुं यह इत्यादि भाव नही होते. राग और मोहमें होतेभी हैं.

पराभक्तिमें भावनाकी मुख्यता है. जेसे सोना अग्निद्वारा द्रवत्वको पाता है वेसे इष्टके प्रेमसे चित्त द्रवीभूत याने रसरुप हो जाता है इस समय अहंत्वका भान नहीं होता इष्टमें लीन हुवा होता है. में नहीं वोह ही होता है. वोह में रूप हो जाता है. सारांशमें तु यह वोह भाव नहीं होता. प्रेम यह चित्तका भाव है और रस चित्तका द्रवत्व है. यह दोनों जीव वृत्तिकी ही अवस्था विशेष हैं. प्रेम और रसके लक्षण अद्यापि कोई नहीं कर सका है जिसने तुर्याका अनुभव किया है या जिसने अपनेको लेले मजनू बनाया है वोह प्रेम रसको जान सकता है. सारांश स्व वेद्य है. ईश्वरकी परा भक्तिका फल लौकिक भक्ति समान नहीं है किंवा देवोंकी भक्ति समान नही है किंतु विलक्षण है अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापी होनेसे जीव चित्तमें ओत प्रोत है. जब जीव वृत्तिकी परा रूप अवस्था होती है तब परमात्माकी उस पर कृपा हो जाती है याने प्रेमी भक्त उस सूक्ष्मको ग्रहण करनेमें असमर्थ है, इस लिये वहां बुध्धिके पर (पक्ष) टूट जाते हैं और स्थित होना पडता है और जीव वृत्ति (बुध्धि) शुध्ध निर्मल है और उसमें इष्टाकारताका भाव है इस लिये प्रेम बलसे रसरूप हुवा जो स्थिर चित्त उसमें अकथ्य अद्भुत प्रकारसे आनंदरुप परमात्माका भोग होता है यदि पराभक्तिरूप साधन न होता तो यह फल (उपासना) न होता. ऐसे अभ्यास हुये यह संस्कारी जीव ईश्वरकी उपासना (तदाकारता) करने योग्य हो जाता है याने जब चाहे तब तदाकार हुवा आनंद भोगता है. इस परमानंदके लक्षण नही हो सकते. मन वाणीसे पर है ॥४७॥ ॥९१॥.

[१] दूसरोंने या अवतारवादिओंने जो नोधा भक्तिके लक्षण किये हैं उनसे यह लक्षण कहीं कहीं भेदवाले हैं.

हरकोईमें निष्ठा, भावना श्रध्धा हुये विना नही होती. विश्वास श्रध्धाके विना नहीं होता. लोकव्यवहारभी भावना श्रध्धा और विश्वासके आधीन हो तो, फेर भक्ति श्रध्धा भावना विना कैसे हो सकती है. देखके वा सुनकेभी भावना श्रध्धा हो जाती है. श्रवण वा विचार यही परोक्षकी भक्तिका मूल है. जो भक्ति तर्कके आधीन हो जाती है उसमें भावना श्रध्धा और विश्वास शुध्ध नहीं होते, किंतु हीरे समान काले हैं. स्फटक समान शुध्ध नहीं रहेते इसलिये तर्क रहित श्रध्धा भावनाको बीज कहा है. ॥४८॥

अपरा और परा दोनों भक्तिका अधिकारी सदाचारीही होगा. दुराचारी नहीं हो सकता. क्योंकि भक्तिमें अपना तन मन इष्टके समर्पण करना पडता है. दुराचारीका तनमन विषयार्पण होता है. सच्चा अच्छा विचार, सच्चा अच्छा उच्चार और सच्चा अच्छा आचार यह सदाचारका सामान्य लक्षण हुवा. तद्वान सदाचारी है. सत्यादि उपर कहे है. संक्षेपमें आसुरी भाव रहित दैवी संपतिवाला पुरुष भक्तिका अधिकारी हो सकता है. जिसको ससारमें वैराग्य नही किंतु आसक्ति हैं उसे ईश्वरकी भक्ति प्राप्त होना दुर्लभ है. ॥५०॥

अपरा और परा क्रमशः उपासनाके साधन हैं यह उपर कहा गया है. दर्शन वा श्रवण विना श्रध्धा भावना नहीं होती, श्रध्धा भावना विना अपरा भक्ति नही हो सकती और अपरा विना परा नहीं हो सकती. परा यह उपासनाका अच्छा साधन है ॥५१॥

दृश्याकारके साथही संबंध हो एसा नियम नही है. अलवत्ते प्रस्तुत पराभक्ति कष्ट साध्य है वा विर्लेकोही होती हैं. शृंगारी साकारकी भक्ति स्थूल बुध्धिके अनुकुल हैं परंतु उपर कहे अनुसार सर्वांशमे ग्राह्य नही है.

(शं.) पराभक्ति तो मुख्य फल है. उसको उपासनाका साधन कैसे माना जाय ? (उ.) प्रेम भक्ति श्रवणमेंभी होती है अर्थात् परोक्षकीभी होती है और उपासनामें तो इष्टके आकार होना फल है, उपासनासिध्धि पिछे वही पराभक्ति कुछ विलक्षण अद्भुत अवश्य फल लाती है.

प्रसिध्ध माता पिता गुरु आदि अनरागी याने पराक्रमी पुरुषकी भक्ति लौकिकि कहाती है उनके उत्तम गुणादिका श्रवण, तदनुसार वर्तन और उनकी प्रसन्नताके वास्ते जो दृति (पादसेवन, अर्चन, सेवादि क्रिया) की जाय वोह अपरोक्ष अपरा भक्ति है इसका फल प्रसिध्ध है. इसके कितनेही प्रकार हैं. यथा सख्याभाव, अर्धांगभिभाव,

वात्सल्यभाव, दाससामीभाव इत्यादि मुख्य उपर कहे हुये श्रवणादि नो प्रकारकी अपरा भक्ति है.

अपरोक्ष पदार्थके दर्शन श्रवण और चारित्रको लेके उसमें वा उसके आकार चित्तमें द्रवत्व भाव (रसभाव) होता है जेसे सोना अग्निसे द्रवत्व भावको पाता है वेसे प्रेमसे चित्त रसरुप हो जाता है. इस समय मेंपनेका भान नहीं होता. इष्टमें लीन हुवा होता है. प्रेम, चित्तका भाव और रस, चित्तका द्रवत्व है यह दोनों अवस्था अंतःकरण (चित्त मन) की ही हैं. किसी किसी कवि वा भक्तोने इन दोनोंके समीप समीप लक्षण किये हैं तथापि इन दोनों स्ववैद्य अवस्थाओंके लक्षण नहीं हो सकते. जिसने गोपिका, लेले मजनूं, फरहाद शीरीं, हीर रांझा समान ईशक मजाजी (लौकिक चाह) की लज्जत चखी होगी वोह प्रेमरसके भावका अनुभव कर सकता है. इस अपरोक्ष परा भक्तिका अपरोक्ष फल होता है जैसा कि देखते हैं अर्थात् ऐसे अवस्थावाले चित्तका सूक्ष्मा (इथर-शेपा) द्वारा इष्टके हृदयपर असर होता है और उसका परिणाम इष्ट कृपा, इष्टमिलाप और मनको शांति सुख संतोष होता है. प्रेम भक्तिमें जाति, स्वार्थ, भेद भाव नहीं होता. हरकोईमें हरकोइको हो सकती है.

जड पदार्थोंकी अपरा भक्ति हो सकती है. और उससे उनके गुण तथा उपयोग विदित होनेसे उनमे यथेच्छा काम लेते हैं यही उनकी प्रसन्नता मान लो. जो जितेंद्रिय उत्साहीं हैं वेही लौकिकि भगति कर सकते हैं अर्थात् सदाचारी ही माता पिता गुरु आदिकोंकी भक्ति कर सकता है. ॥६२॥

(नोट) भक्ति यह अन्य उत्तम मार्गोंमें श्रेष्ट मार्ग है जिसकरके प्रेयस् (संसारी सुख) और श्रेयस् (परलोक) की सिध्धि हो सकती है. कोन ऐसा देव दनुज वा मनुष्य हुवा है कि जिसको अपने सच्चे अच्छे भक्तके आधीन नहीं होना पडा ? कोई नहीं हुवा. कोनसे ऐसी वस्तु है कि योग्य इष्टसे उसके योग्य भक्तको न मिल सके ? कोई नहीं. ज्ञानी जवान और भक्त वालक पुत्र है जिसकी रक्षा मातारूप ईश्वर कोई न कोइ प्रकारसे अवश्य करता हैं (शं) ऐसे ऐसे निरर्थक विश्वासों ने प्रजाको आलसी बनाके नाश किया है अतः ऐसा विश्वास हैयहै (उ.) योग्यमें तद्योग्य विश्वासकी सिध्धि होती है. ईश्वर रोटी बनाके खिलाने वास्ते नहीं आता. अयोग्य व्यक्ति राजा वा योगी नही बन सकती. इंद्रिय बुध्धिवालेको पुरुषार्थके विना मिलना सृष्टि नियम नहीं. सार यह निकला के जितनी जरुरत है उसको पूरी करने वास्ते पुरुष प्रयत्न

करें. नतीजा यह निकलेगा कि कोई न कोई युक्ति वा प्रकार ऐसा हो जायगा कि भक्तकी जरुरत सुखेन मिटजायगी; विशेष दुःख न होगा. जो अनीश्वरवादि हैं उनका प्रयत्न निष्फल जानेपर उनको महा कष्ट होता है और भक्तको ऐसा नही होता क्योंकि संतोष और ईश्वरका धन्यवाद उस पास बडी सामग्री होती है. और वक्ष्यमाणवत् निष्काम हो जाता है. तथा ऐसा भक्त किरोडोंमेंसे एक निकलता है अतः ईश्वरका विश्वास प्रजाके प्रयत्नमें बाधक नहीं हो सकता (शं.) जहांतक दृष्ट साकार सशृंगार विषय न हो वहां तक प्रेमा (परा) भक्ति नही हो सकती. शुष्क निरस होती है (उ.) इस प्रकारकी भक्ति संभूति असंभूति रूप है. ईश्वर भक्ति नहीं. हां इस लौकिकी भक्ति को भक्तिका बहिरंग साधन माना जा सकता है परंतु उसमें लौकिक वैभव और विषय होनेसे बहुधा उसका परिणाम अनिष्ट होता है, जैसाके देख रहे हैं. अतः सर्वांशमें सेवनीय नही है. परोक्ष वा निराकार शृंगार वर्जितमे प्रेम न होना गलत बात है क्योंकि प्रेमका संबंध गुण और चित्तके साथ है भावना उसका मूल है. ॥९२॥

कर्मयोगके अपर वैराग्य और निष्कामता दो पुष्प ॥९३॥ मलनाश और शुद्रता फल ॥९४॥ भक्तकोभी उसकी उपलब्धि काम्यादिकी व्यवस्था पूर्ववत् होनेसे ॥९५॥

अर्थ—(उपरोक्त एक भविकवाद और प्रस्तुत भक्तिवाद यह दोनो कर्मयोग कहाते हैं.) इस कर्मयोगके निष्कामता (फलकी कामना छोडके कर्म करना) और अपर वैराग्य (दुःख दोष जानके त्रिलोकीके पदार्थोंमें अरुची होजाना) यह दो फ़ल लगते हैं ॥९३॥ उसके मल (पाप वासना) नाश और चित्तकी शुद्धि यह फल आते हैं ॥९४॥ उसकी प्राप्ति भक्तियोग करनेवाले भक्तकोभी हो जाती है; क्योंकि इसके काम्यादि (काम्य, निषिध, प्रारब्ध, निष्काम कर्म) की व्यवस्था पूर्ववत् (३८।३९।४०) हो जाती है और भक्तियोगभी एक प्रकारका कर्मयोग ही है. ॥९५॥

वि.—कर्मयोगके अभ्यासीको संसारके पदार्थोंमे उपरति होना स्वाभाविक है क्योंकि उसको उससे इतरकी इच्छा नहीं बनती बंध निवृत्ति उसका लक्ष्य है. इसलिये अपर वैराग्यका फ़ूल खिलता है और कर्मयोग करते करते निष्कामता होजाती है क्योंकि उसकी इच्छाका विषय कुछ नही होता * नित्यादि वा भक्ति करनेसे उसके कर्म

* कर्मयोगीको निष्काम प्राप्त होनेमें अनेक कारण हैं (१) संसार और उसका व्यवहार इसके नियमानुसार स्वाभाविक होता चला आ रहा है ऐसी दृष्टि होजाती है (२) धर्मानुसार चलना

निर्जराको प्राप्त होते हैं. इस प्रकार अभ्यास होनेसे कर्मयोगीके चित्तमें जो मल उसका नाश हो जाता है. अर्थात् उसको पापवासना नही होती. और चित्त शुद्ध हो जाता है. मलका अभाव होना और चित्तकी शुद्धि होना यह दो कुछ अंतरवाले हैं. जेसाके कपट रहित होना और फेर वेसे बाह्यांतरमें स्वाभाविक वर्तन होना; इसमें अंतर है वेसे इस प्रसंगमें है. इस प्रकार कर्मयोगके दो फल होते हैं सो प्रस्तुत कर्मयोगी याने भक्तियोगके करनेवालेकोभी प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि भविकयोगी समान वोह काम्य और निषिद्ध नही करता. उसके प्रारब्ध भोगसे नाश होनेवाले हैं. दूसरे निष्काम बंधके हेतु नही होते. कर्म विना जीवन नही होता और कर्ताको फलकी इच्छा नही इसलिये निष्काम कर्म बंधके हेतु नही होते इस प्रकार वर्तनेसे मल नाश ओर चित्तकी शुद्धता हो जाती है.

(शं.) जो नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित नही करेगा तो भक्तको बंध शेष रहेगा. (उ.) भक्तियोगीके हमेशे ईश्वर भक्तिही नित्यादिक कर्म हैं ईश्वरभक्ति भावि बंधको उत्पन्न होने नही देती. और सोही साधारण प्रायश्चित होनेसे कुसंचित नाश हो जाते हैं और सुसंचित उपर कहे अनुसार वा वक्ष्यमाण (१६९। से १७४ तक) अनुसार नहीं रहते. इसलिये भूत भावी बंधके होनेका अभाव हो जाता है.

यहां इतना विशेष कहना पडता है कि जो भक्तियोगी पराभक्तिकी अंतिम स्थितिपर पहोंच गया होगा तो उसको उपासनाभी सिद्ध हो जाती है वोह इष्टसे इतर मोक्ष तकको भी नहीं चाहता. इस प्रकार विदेह होने पीछे यह पराभक्तिसिद्ध भविक योगी समान मोक्षको प्राप्त हो जाता है परंतु इतना अंतर है कि भविक योगीकी अभाव रूपा मुक्ति है ओर भक्तकी भावरूपा याने इष्ट प्राप्ति रुप मुक्ति है. इसी वास्ते कर्म-योग और भक्तियोग मोक्ष प्रसंगमें समान हैं.

जो अपरा भक्तिवाला है वोह पराभक्तिको पाके उपासना सिद्ध हुवा विदेह मुक्तिको पाता है. इतना हुये विना मोक्षका भागी नही हो सकता. किंवा यह (अपरा भक्तिवाला) ओर अन्य (जिज्ञासु) जो हैं अर्थात् जिनको उपासना सिद्ध करना शेष है वा ईश्वर उपासनाकी इच्छा रखने हैं उनका प्रकार आगे लिखते हैं.

पढनेसे आवश्यकता या तृष्णा कम हो जाती है (३) प्रारब्ध या कुदरत वश फर्ज (कर्तव्य–ड्यूटि) प्राप्त है इसका पूरा करना हमारी फर्ज है याने प्रयत्न करें फल हमारे आधीन नहीं है किंतु ईश्वर वा कुदरतके आधीन है. ऐसी भावना हो जाती है (४) ऐसी दृष्टि होनेसे याने ममता न रहेनेसे सब पर समानता, प्रेमभाव और भ्रातृभाववाली वृत्ति रहती है. अंतमें सर्वात्मभाव हो जाता है क्योंकि सर्व समान हक्दार हैं ॥८३॥

करें. नतीजा यह निकलेगा कि कोई न कोई युक्ति वा प्रकार ऐसा हो जायगा कि भक्तकी जरुरत सुखेन मिटजायगी; विशेष दुःख न होगा. जो अनीश्वरवादि हैं उनका प्रयत्न निष्फल जानेपर उनको महा कष्ट होता है और भक्तको ऐसा नही होता क्योंकि संतोष और ईश्वरका धन्यवाद उस पास बडी सामग्री होती है. और वक्ष्यमाणवत् निष्काम हो जाता है. तथा ऐसा भक्त किरोडोंमेंसे एक निकलता है अतः ईश्वरका विश्वास प्रजाके प्रयत्नमें बाधक नहीं हो सकता (शं.) जहांतक दृष्ट साकार सशृंगार विषय न हो वहां तक प्रेमा (परा) भक्ति नहीं हो सकती. शुष्क निरस होती है (उ.) इस प्रकारकी भक्ति संभृति असंभृति रूप है. ईश्वर भक्ति नहीं. हां इस लौकिकी भक्ति को भक्तिका बहिरंग साधन माना जा सकता है परंतु उसमें लौकिक वैभव और विषय होनेसे बहुधा उसका परिणाम अनिष्ट होता है, जैसाके देख रहे हैं. अतः सर्वांशमें सेवनीय नही है. परोक्ष वा निराकार शृंगार वर्जितमें प्रेम न होना गलत बात है क्योंकि प्रेमका संबंध गुण और चित्तके साथ है भावना उसका मूल है. ॥५२॥

कर्मयोगके अपर वैराग्य और निष्कामता दो पुष्प ॥५३॥ मलनाश और शुद्धता फल ॥५४॥ भक्तकोभी उसकी उपलब्धि काम्यादिकी व्यवस्था पूर्ववत् होनेसे ॥५५॥

अर्थ—(उपरोक्त एक भविकवाद और प्रस्तुत भक्तिवाद यह दोनो कर्मयोग कहाते हैं.) इस कर्मयोगके निष्कामता (फलकी कामना छोडके कर्म करना) और अपर वैराग्य (दुःख दोष जानके त्रिलोकीके पदार्थोंमें अरुची होजाना) यह दो फूल लगते हैं ॥५३॥ उसके मल (पाप वासना) नाश और चित्तकी शुद्धि यह फल आते हैं ॥५४॥ उसकी प्राप्ति भक्तियोग करनेवाले भक्तकोभी हो जाती है; क्योंकि इसके काम्यादि (काम्य, निषिध, प्रारब्ध, निष्काम कर्म) की व्यवस्था पूर्ववत् (३८।३९।४०) हो जाती है और भक्तियोगभी एक प्रकारका कर्मयोग ही है. ॥५५॥

वि. —कर्मयोगके अभ्यासीको संसारके पदार्थोंसे उपरति होना स्वाभाविक है क्योंकि उसको उससे इतरकी इच्छा नहीं बनती बंध निवृत्ति उसका लक्ष्य है. इसलिये अपर वैराग्यका फूल खिलता है और कर्मयोग करते करते निष्कामता होजाती है क्योंकि उसकी इच्छाका विषय कुछ नही होता * नित्यादि वा भक्ति करनेसे उसके कर्म

* कर्मयोगीको निष्काम प्राप्त होनेमें अनेक कारण है (१) संसार और उसका व्यवहार उसके नियमानुसार स्वाभाविक होता चला आ रहा है ऐसी दृष्टि होजाती है (२) धर्मानुसार वर्तना

निर्जराको प्राप्त होते हैं. इस प्रकार अभ्यास होनेसे कर्मयोगीके चित्तमें जो मल उसका नाश हो जाता है. अर्थात् उसको पापवासना नही होती. और चित्त शुद्ध हो जाता है. मलका अभाव होना और चित्तकी शुद्धि होना यह दो कुछ अंतरवाले हैं. जेमा के कपट रहित होना ओर फेर वैसे बाह्यांतरमें स्वाभाविक वर्तन होना; इसमें अंतर है वैसे इस प्रसंगमें है. इस प्रकार कर्मयोगके दो फल होते हैं सो प्रस्तुत कर्मयोगी याने भक्तियोगके करनेवालेकोभी प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि भक्तियोगी समान वोह काम्य और निषिद्ध नही करता. उसके प्रारब्ध भोगमे नाश होनेवाले हैं. दूसरे निष्काम बंधके हेतु नही होते. कर्म विना जीवन नही होना और कर्ताको फलकी इच्छा नही इसलिये निष्काम कर्म बंधके हेतु नही होने इस प्रकार वर्तनेसे मल नाश ओर चित्तकी शुद्धता हो जाती है.

(शं.) जो नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित नही करेगा तो भक्तको बंध शेष रहेगा. (उ.) भक्तियोगीके हमेशे ईश्वर भक्तिही नित्यादिक कर्म हैं ईश्वरभक्ति भावि बंधको उत्पन्न होने नही देती. ओर सोही साधारण प्रायश्चित होनेसे कुसंचित नाश हो जाते हैं और सुसंचित उपर कहे अनुसार वा वक्ष्यमाण (१६९। से १७४ तक) अनुसार नहीं रहते. इसलिये भक्त भावी बंधके होनेका अभाव हो जाता है.

यहां इतना विशेष कहना पडता है कि जो भक्तियोगी पराभक्तिकी [illegible] स्थितिपर पहोंच गया होगा तो उसको उपासनाभी सिद्ध हो जाती है वोह इष्टसे [illegible] मोक्ष तककोभी नहीं चाहता. इस प्रकार विदेह होने पीछे यह पराभक्तिसिद्ध [illegible] योगी समान मोक्षको प्राप्त हो जाता है परंतु इतना अंतर है कि भक्तिक योगीकी [illegible] रूपा मुक्ति है ओर भक्तकी भावरूपा याने इष्ट प्राप्ति रुप मुक्ति है. [illegible] योग और भक्तियोग मोक्ष प्रसंगमें समान हैं.

जो अपरा भक्तिवाला है वोह पराभक्तिको पाके उपासना [illegible] विदेह मुक्तिको पाता है. इतना हुये विना मोक्षका भागी नही हो सकता. [illegible] (निराग भक्तिवाला) ओर अन्य (जिज्ञासु) जो हैं अर्थात् जिनको उपासना [illegible] नेर है वा इश्वर उपासनाकी इच्छा रखते हैं उनका प्रकार आगे लिखते हैं.

पढनेसे आवश्यकता या तृष्णा कम हो जाती है (३) प्रारब्ध या कुदरत [illegible] (ईश्वर-दृष्टि) प्राप्त है उसका पूरा करना हमारी फर्ज है याने प्रयत्न करें फल [illegible] है किंतु ईश्वर वा कुदरतके आधीन है, ऐसी भावना हो जाती है (४) ऐसी दृष्टि [illegible] होनेसे सब पर समानता, प्रेमभाव और भ्रातृभाववाली वृत्ति रहती है. [illegible] सर्व समान हकदार हैं ॥५३॥

करें. नतीजा यह निकलेगा कि कोई न कोई युक्ति वा प्रकार ऐसा हो जायगा कि भक्तकी जरूरत सुखेन मिटजायगी; विशेष दुःख न होगा. जो अनीश्वरवादि हैं उनका प्रयत्न निष्फल जानेपर उनको महा कष्ट होता है और भक्तको ऐसा नही होता क्योंकि संतोष और ईश्वरका धन्यवाद उस पास बडी सामग्री होती है. और वक्ष्यमाणवत् निष्काम हो जाता है. तथा ऐसा भक्त किरोडोंमेंसे एक निकलता है अतः ईश्वरका विश्वास प्रजाके प्रयत्नमें बाधक नहीं हो सकता (शं.) जहांतक दृष्ट साकार सशृंगार विषय न हो वहां तक प्रेमा (परा) भक्ति नहीं हो सकती. शुष्क निरस होती है (उ.) इस प्रकारकी भक्ति संभृति असंभृति रूप है. ईश्वर भक्ति नहीं. हां इस लौकिकी भक्ति को भक्तिका बहिरंग साधन माना जा सकता है परंतु उसमें लौकिक वैभव और विषय होनेमें बहुधा उसका परिणाम अनिष्ट होता है, जैसाके देख रहे हैं. अतः सर्वांगमें सेवनीय नही है. परोक्ष वा निराकार शृंगार वर्जितमे प्रेम न होना गलत वात है क्योंकि प्रेमका संबंध गुण और चित्तके साथ है भावना उसका मूल है. ॥५२॥

कर्मयोगके अपर वैराग्य और निष्कामता दो पुष्प ॥५३॥ मलनाश और शुद्धता फल ॥५४॥ भक्तकोभी उसकी उपलब्धि काम्यादिकी व्यवस्था पूर्ववत् होनेसे ॥५५॥

अर्थ—(उपरोक्त एक भविकवाद और प्रस्तुत भक्तिवाद यह दोनो कर्मयोग कहाते हैं.) इस कर्मयोगके निष्कामता (फलकी कामना छोडके कर्म करना) और अपर वैराग्य (दुःख दोष जानके त्रिलोकीके पदार्थोंमें अरुची होजाना) यह दो फ़ल लगते हैं ॥५३॥ उसके मल (पाप वासना) नाश और चित्तकी शुद्धि यह फल आते हैं ॥५४॥ उसकी प्राप्ति भक्तियोग करनेवाले भक्तकोभी हो जाती है; क्योंकि इसके काम्यादि (काम्य, निषिध, प्रारब्ध, निष्काम कर्म) की व्यवस्था पूर्ववत् (३८।३९।४०) हो जाती है और *भक्तियोगभी एक प्रकारका कर्मयोग ही है.* ॥५५॥

वि. —कर्मयोगके अभ्यासीको संसारके पदार्थोंमे उपरति होना स्वाभाविक है क्योंकि उसको उससे इतरकी इच्छा नहीं बनती बंध निवृत्ति उसका लक्ष्य है. इसलिये अपर वैराग्यका फूल खिलता है और कर्मयोग करते करते निष्कामता होजाती है क्योंकि उसकी इच्छाका विषय कुछ नही होता * नित्यादि वा भक्ति करनेमे उसके कर्म

* कर्मयोगीको निष्काम प्राप्त होनेमें अनेक कारन हैं (१) संसार और उसका व्यवहार उसके निदमानुसार स्वाभाविक होता चला आ रहा है ऐसी दृष्टि होजाती है (२) धर्मानुसार चलना

निर्जराको प्राप्त होते हैं. इस प्रकार अभ्यास होनेसे कर्मयोगीके चित्तमें जो मल उसका नाश हो जाता है. अर्थात् उसको पापवासना नही होती. और चित्त शुद्ध हो जाता है. मलका अभाव होना और चित्तकी शुद्धि होना यह दो कुछ अंतरवाले हैं. जेमाके कपट रहित होना और फेर वेसे बाह्यांतरमें स्वाभाविक वर्तन होना; इसमें अंतर है वेसे इस प्रसंगमें है. इस प्रकार कर्मयोगके दो फल होते हैं सो प्रस्तुत कर्मयोगी याने भक्तियोगके करनेवालेकोभी प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि भविकयोगी समान वोह काम्य और निषिद्ध नही करता. उसके प्रारब्ध भोगसे नाश होनेवाले हैं. दूसरे निष्काम बंधके हेतु नही होते. कर्म विना जीवन नही होता और कर्ताको फलकी इच्छा नही इसलिये निष्काम कर्म बंधके हेतु नही होते इस प्रकार वर्तनेसे मल नाश और चित्तकी शुद्धता हो जाती है.

(शं.) जो नित्यनैमित्तिक प्रायश्चित नही करेगा तो भक्तको बंध शेष रहेगा. (उ.) भक्तियोगीके हमेशे ईश्वर भक्तिही नित्यादिक कर्म हैं ईश्वरभक्ति भावि बंधको उत्पन्न होने नही देती. ओर सोही साधारण प्रायश्चित होनेसे कुसंचित नाश हो जाते हैं और सुसंचित उपर कहे अनुसार वा वक्ष्यमाण (१६९। से १७४ तक) अनुसार नहीं रहते. इसलिये भक्त भावी बंधके होनेका अभाव हो जाता है.

यहां इतना विशेष कहना पडता है कि जो भक्तियोगी पराभक्तिकी अंतिम स्थितिपर पहोंच गया होगा तो उसको उपासनाभी सिद्ध हो जाती है सोह इष्टसे इतर मोक्ष तककोभी नहीं चाहता. इस प्रकार विदेह होने पीछे यह पराभक्तिसिद्ध भविक योगी समान मोक्षको प्राप्त हो जाता है परंतु इतना अंतर है कि भविक योगीकी अभाव रूपा मुक्ति है ओर भक्तकी भावरूपा याने इष्ट प्राप्ति रुप मुक्ति है. इसी वास्ते कर्म-योग और भक्तियोग मोक्ष प्रसंगमें समान हैं.

जो अपरा भक्तिवाला है वोह पराभक्तिको पाके उपासना सिद्ध हुवा विदेह मुक्तिको पाता है. इतना हुये विना मोक्षका भागी नही हो सकता. किंवा यह (अपरा भक्तिवाला) ओर अन्य (जिज्ञासु) जो हैं अर्थात् जिनको उपासना सिद्ध करना शेष है वा इश्वर उपासनाकी इच्छा रखते हैं उनका प्रकार आगे लिखते हैं.

पढनेसे आवश्यकता या तृष्णा कम हो जाती है (३) प्रारब्ध वा कुदरत वश फर्ज (कर्तव्य–ड्यूटि) प्राप्त है उसका पूरा करना हमारी फर्ज है याने प्रयत्न करें फल हमारे आधीन नहीं है किंतु ईश्वर वा कुदरतके आधीन है. ऐसी भावना हो जाती है (४) ऐसी दृष्टि होनेसे याने ममता न रहेनेसे सब पर समानता, प्रेमभाव और भ्रातृभाववाली वृत्ति रहती है. अंतमें मर्यादाभाव हो जाता है क्योंकि सर्व समान हकदार हैं ॥८३॥

इष्टाकारता उपासना ॥५६॥ सो ध्यान वा योगज संयमसे ॥५७॥ अजपा वा ज्योतिषमतिसे ॥५८॥ विक्षेपाभाव फल ॥५९॥ संयमीको सिद्धियाँ ॥६०॥ तज्जन्य योग्यता मोक्षकी अंतरंग साधन ॥६१॥ उससे विदेह मोक्ष ॥६२॥.

उपासककी वृत्ति उपास्यके तदाकार हो ऐसी स्थिति–अवस्थाका नाम उपासना है. ॥५६॥ उपासना ध्यानयोगसे अथवा अष्टांग योग साधने पीछे हरकोई विषयके साथ वृत्तिका संयम कर लेनेकी जो योग्यता हो जाती है उस संयमसे होती है. इस प्रकारके संयममें उपासक उपास्यभाव विना एकतानता हो जाती है इसलिये उपासनाका साधन कहा है ॥५७॥ अथवा नासिका मार्गसे प्राण आवजाव करता है उसमें स, ह, की ध्वनि याने सोहं स्वयं होता रहता है इसे अजपा जप कहते हैं इस अजपाके अभ्यासमे इष्टाकारता याने उपासना हो जाती है अथवा शरीरके अंदर छ चक्र हैं उनका अभ्यास करनेसे वहां ज्योति प्रतीत होती है उसमें वृत्ति जोडनेसे इष्ट उपासना करनेकी योग्यता हो जाती अर्थात् ज्योतिषमतिके साधनेमे उपासना होती है. ॥५८॥ उपासनाके अभ्याससे जीववृत्तिकी चंचलताका अभाव होजाता है याने संस्कारोंका निरोध करके स्थिर होजाना यह उसका फल है ॥५९॥ यदि पूर्वोक्त संयम समाधिका अभ्यास हो तो उपासकको सिद्धि फलमी होता है ॥६०॥ उपासनाके अभ्याससे उपासकमें एक प्रकारकी विशेष योग्यता हो जाती है वो योग्यता मोक्ष होनेमे मुख्य (अंतरंग–समीप) साधन है. वोह योग्यता यह है कि उपा-सक जब चाहे तब वृत्तिको संस्काररहित करके याने वृत्तिका निरोध करके स्थिल कर सकना है अथवा इष्टाकार स्थित कर लेता है. यही योग्यता याने निर्वासन इष्टाकार होना मुक्तिका साधन है. ॥६१॥ इस योग्यतासे विदेह मुक्ति (याने शरीर त्यागने पीछे इष्टाकार (आनंद भोगमें) रहेना, निर्वासन रहेनेसे पुनः जन्म मरणके चक्रमें न आना ऐसी स्थिति) को प्राप्त होता है. इसीको श्रेय कहते है. ॥६२॥ सार यह निकला कि वृत्तिको ठेरानेका अभ्यास करके वैराग्यवान हुये कामना वासनाके त्यागपूर्वक ईश्वराकार वृत्ति की जावे तो विदेह मुक्ति प्राप्त होती है. और परा प्रसंगमे कहे ममान परमानंद (चिदानंद) भोगता है. ॥६२॥

वि. उपासना (चित्तवृत्तिको किसीके साथ अंतराय रहित तदाकार स्थित करना) व्यवहार और परमार्थ इन उभयमें उपयोगी है. व्यवहारमें देखो–योरोपीय किसीकिसी विद्वानने वरुण, अग्नि, विद्युत, वायु और ईथर (हिरण्य गर्भ–शेषाका एक भाग) की थोडी थोडी उपासना की तो रेल्वे, तार, स्थंभविनाके तार, फोनोग्राफ इत्यादि उपयोगी

फल संपादन किये, जो वर्त्तमानमें संसारको सुख दे रहे हैं. तैजस् विद्यासे जो चमत्कारी फल देख रहे हैं सो विद्या (मेसमेरेझम) भी उपासना योगका निष्कृष्ट भाग है. संयम-सिद्ध योगीकी सिद्धिभी किसी व्यक्तिको फलप्रद हो जाती है इत्यादि लौकिक फल उपासनासे होते हैं. यहां प्रसंग श्रेय–परमार्थका है इस लिये उसीकी चर्चा कर्तव्य है.

ईश्वर अति सूक्ष्म निराकार है. परिच्छिन्न अल्पज्ञ जीवको उसकी उपासना होना आकाशको स्पर्श करने समान दुस्तर है. इसलिये उसकी उपासनाके लिये जीव वृत्तिको स्थिरता, एकाग्रता, शुद्धता और सूक्ष्मताकी आवश्यकता है. उसीकी चर्चा करते हैं.

किसी साकार बाह्य वा अंतरकी वस्तुपर ध्यान जमाके त्राटक करनेसे उपासनाकी सिद्धि हो जाती है. याने मन किसीके आकार होके ठेर सके ऐसा अभ्यास हो जाता है. अथवा पतंजली महाराजने चित निरोधकी जो विधि लिखी है. उस प्रकार अभ्यास करनेसे चितके निरोध परिणाम करनेका अभ्यास हो जाता है. ऐसा अभ्यासी चाहे जिसके आकार चित्तको करके ठेरा सकता है. किंवा पातंजल योगमें समाधिसिध्धि पीछे संयम प्रकार लिखा है वैसे संयमाभ्यासी उपासना कर सकता है. किंवा विषयवृति करनेसे उपासना सिद्धि हो जाती है यथा नासिकाके अग्र भाग पर दृष्टि जमाके ध्यान करना. किंवा नासिका द्वारा जो श्वास जाता आता है और उसमें स. ह. की ध्वनि होती है इस ध्वनि पर ध्यान रखनेसे उपासनाके योग्य होता है. किंवा आंतरीय चक्रों पर ध्यान जमानेसे चित्त उपासना सिद्धिके योग्य हो जाता है. शरीर अंदर ऐसे ७ स्थान हैं. के जहां नसें इकटी होकर विभाग पाती हैं. मूल, मणि, नाभि, हृदय, कंठ, भ्रकूटी. ब्रह्मरंध्र (ब्रेमेटरका मुख्य भाग) इन स्थानोमें लोहीकी गति और गरमीके कारण विद्युत प्रकाश भी होता रहता है. मूल और मणिका वर्णन आर्य शास्त्रोंमें है तथापि ख्रिस्ति धर्मके एक प्रसिद्ध रीफारमर "स्वेडनबोर्ग" ने भी अपने बनाये हुये "स्वर्ग नरक" ग्रंथमें लिखा है. नाभीमें सवेरके सूर्यके आकार समान, हृदयमें जेठके दो पहेरके सूर्यके आकार समान चक्रवाला ससीम प्रकाश मालूम पडता है भ्रकूटीमें पूर्णमाके चंद्र जेसा जान पडता है. और ब्रह्मरंध्रमें सूर्य बिनाका अनेक सूर्योका जैसा असीम प्रकाश जान पडता है. हृदय और ब्रह्मरंध्रमें दिव्य मूर्तिभी नजर आती हैं. स्वेडनबोर्ग नितंब चक्रोंमेंभी इन मूर्तिका दर्शन होना लिखता है जिनको स्वर्गीय देव बताता है. और आर्य ग्रंथ सिद्ध दर्शन कहता है. वे मूर्ति सूक्ष्म सृष्टिकी हैं किंवा संस्कारद्वारा हिरण्यगर्भ (रिटल लाईट) मे होती हैं वा क्या हैं, तथा यह प्रकाश क्या है, इसकी

चर्चाका यह प्रसंग नहीं है. यहां आंतरीय ज्योति दर्शनका प्रसंग है. यदि शोर्टसाइट न हो, रोगी न हो सत्वगुणी वृत्तिवाला हो और चिंता रहित जिज्ञासु हो तो बताये हुये साधनद्वारा अंदरमें ज्योति मालूम पडती है. उसके आकार चित्त हो जाता है और प्रसन्न रहता है. इस प्रकारके अभ्याससे चित्त स्थिर और दृष्टाकार होनेके योग्य हो जाता है. इसके अभ्यासकी तरकीब "ज्योति दर्शन" ग्रंथमें लिखी गई है.

अष्टांग योगमे ध्यानके पीछे समाधि याने विना अवलंबन, चित्तका निरोध परिणाम होता है उसको समाधि योग कहेते हैं और उससे इतर उपर बताये हुये तमाम साधन ध्यानयोग कहाते हैं. इसीका नाम उपासना योग पडता है, पराभक्तिभी ध्यानका उत्तर परिणाम है. ध्याता ध्येयकी एकतानताका नाम ध्यान है. कर्मयोगमे शुद्धता हो जाती है यह उपर कहा है.

ध्यान योग या योग करनेमे दृष्टाकारता होनेकी योग्यता हो जाती हैं क्योंकि चित्तकी चंचलताका अभ्यास नष्ट पर्याय हो जाता है यदि पातंजल योग दर्शनोक्त यम नियमादि सहित समाधि सिद्ध होने पीछे पदार्थमें संयमका अभ्यास हो जावे तो योग दर्शन लिखित सिद्धियेंभी प्राप्त हो जाती हैं. यह नहीं कह सकते कि उसमें जितना कुछ लिखा है वोह सब कुछ होता है या क्या. परंतु यहभी नहीं कह सकते के उसका तमाम कथन सृष्टि नियम विरुद्ध है. उसमें लिखा है के सूर्यमें संयमसे भवनका ज्ञान होता है यह सृष्टि नियमानुकूल है. क्योंकि जहां जहां सूर्य प्रकाश है वहा वहांके पदार्थोंकी किरणें अंतरक्षमें घूमती हैं योगीके चित्तको उनका भान होता है इसलिये उन भवनोंके अमुक पदार्थोंका ज्ञान होना संभव है. ग्रहोंका ज्ञान इसी प्रकार हो रहा है. शरीरके अंदरकी स्थितिका ज्ञान इस रोशनीद्वारा करने लगे हैं. तैजस (हिपनोटीज़म) विद्याके प्रयोगमें सबजेक्ट (विधेय) जो दूरस्थ शब्द स्पर्श रूप रस गंधादिका ज्ञान करता है वहांभी किरण और ईथरके द्वारा होता है. योग दर्शनमें वीर्य संयमकी सिद्धि लिखी है उसका यत्किंचित् नमूना मि. सेंडे ओर रामतीर्थादि मोजूद हैं. सत्यकी सिद्धिभी स्पष्ट है. इसी प्रकार अन्य प्रसंग यानेभी विचार कर सकते हैं. इस व्याप्तिसे मुक्तिमें विशेष उत्तम वैभव होना मान सकते हैं (जिस विषयको मेरी बुद्धि न जान सकी उसको छोडके योग ग्रंथ वर्णित विषय जितना सृष्टि नियमानुकूल जान पडा उसका बयान यथामति किया गया है) ॥६०॥

योग सिद्धिको छोडके जान्ना चाहिये के जेसे पराभक्तिवालेको उपास्याकार होनेकी योग्यता हो जाती है ऐसे उक्त योग साधनवालेकोभी आकाशाकार वृत्तिवत् ईश्वराकार होनेकी योग्यता हो जाती है. उससे उपासक उपर कहे अनुसार ईश्वरका आनंद भोगने योग्य होता है. ॥६१॥* और शरीर त्याग पीछे मोक्ष हो जाता है पुनर्जन्म होनेका हेतु नही रहता. हमेशे चिदानंदमें मग्न रहता है ॥६२॥

यहां यहभी जनाना ठीक जान पडता है कि कोइ योगाभ्यासी उक्त प्रकाशके गोले वा प्रकाशकोही ब्रह्मरूप मान लेते हैं. 'हृदय गुफामें अंगुष्ट मात्र निर्धूमज्योति" इत्यादि वाक्य बोल देते हैं. दर असल यूं है कि उनको विवेक ख्यातिकी सिद्धि नही होनेसे ऐसा विश्वास हो जाता है. जो शरीरको चीरके देखा जाता है तो वेसा प्रकाश नहीं जान पडता किंतु पृष्ट भागकी तरफ मीर दंड तक नसोंके गुच्छे चक्राकार मालूम होते हैं. हृदयमे मगजमे खाली स्थान जान पडते हैं. इससे यूं मान्ना पडता है कि जब तक नियमानुकुल केमीकल (रसायणीय) संयोग है तबही तक उस विजलीका उद्भव होता हो. (शंका) प्रस्तुत ज्योतिपमति साधनवालेको ब्रह्मानंदका भोग होना चाहिये क्योंकि ईश्वरसे अत्यंत समीप हुवा स्थित है (उ.) पानी वरसता है तब जोके प्रथम आकाशके साथ संबंध है तोभी जल मालूम होता है आकाश नहीं. इसी प्रकार अभ्यासीकी वृत्तिमे प्रकाशाकार होनेसे ईश्वरके आनंदका आभास नहीं होता. जब वोह अभ्यासी अन्यसे वृत्ति उठाके ईश्वर आकार करेगा तब वोह आनंद भोग होगा ॥६३॥ (शं.) - मोक्षमें क्या होता है ? (उ)—

विदेहीको स्वप्नसमान इष्टभोगभी ॥६३॥ योगके विना सालोक्यादि॥६४॥ ध्यानत्याका वरू होनेसे ॥६५॥ शेषमें वृत्ति व्याप्ति अविषय होनेसे ॥६६॥ जेसे स्वप्नमें इष्टभोग होते हैं वेसे योग रीत्या उपासनासिद्ध मुक्तको इष्ट भोगभी होते हैं. ॥६३॥ स्वप्नमें पूर्व संस्कार वश अनिच्छित इष्टानिष्टकी भासि होती है क्योंकि जीव परतंत्र है. और मुक्त परतंत्र नही किंतु अपनी योग्यता—मर्यादामें स्वतंत्र होता है. इसलिये यथेच्छा सूक्ष्मा (सू. १९६ का विवेचन देखो) में से पदार्थ वनते हैं सो भोगता है. सत्संकल्प होनेसे ऐसा हो सकता है (प्रकृतिरूप वा अन्य उपादान विना बनाके या आप भोग्यरूप होके भोगता है यह मंतव्य तथा अनेक शरीर वा अनेक चित्त धारण करके भोगता है यह कल्पना सृष्टि नियमके विरुद्ध है) भोग जाग्रत जेसे हैं

*६१-योगलहरी.

परंतु सूक्ष्म होते हैं. और जब ईश्वरानंद लेना चाहता है, तब तदाकार होके आनंद भोग भोगता है. इसलिये मुक्त है. योगी उपासकका कोई स्थान विशेष नहीं है. यथेच्छा ब्रह्मलोक, ब्रह्मसामीप, ब्रह्मयुक्त रहता है. और यथासंभव तद्धर्मापत्ति होनेसे सारुप्यकी उपमा योग्य होता है. सृष्टि कर्ता धरता हरता इत्यादि सामर्थ परिच्छिन्न जीवमे नहीं हो सकता इसलिये दूसरा ईश्वर नहीं बनता. ॥६४॥ जिसने अष्टांग योगसिद्ध समाधीजन्य संयमरूप उपासना नहीं की है किंतु चित्त निरोध और तदाकारताका ही अभ्यास किया है जेसे के परावालेका लिखा है वेसा है, तो ऐसे वदेहोंको सालोक्यादि प्राप्त होते है ॥६४॥ क्योंकि उसमें योगका नहीं किंतु भावनाका बल बढ जाता है. ॥६५॥ प्रकृतिउपासक प्रकृतिमें लय होते हैं क्योंकि उनकी रुची उसमें और अभ्यास वेसाही है. किसी देवकी उपासनासे उस देवका स्थान वा उस देवकी समीपता वा उस देवके साथ युक्त होना अथवा यथासभव वेसी योग्यता—तद्धर्मापत्तिको प्राप्त होते हैं. कारणकि जिनको देव मानते हैं वेभी पूर्वमे जीव थे. कर्णाके प्रतापसे कुछ विशेपता को प्राप्त होते हैं. उनकी कमाईके फलकी अवधि समाप्त होने पर पुनः चार खानमे आते हैं. जेसे राजाके उपासक उक्त (सालोक्यादि) चारों फल लेते है. वेसे देव उपासकभी भोगते हैं. यहां मुक्तोंका प्रसंग है. इस लिये उनकी चर्चा करनी चाहिये.

उपासकको उपर लिखे अनुसार बंधका कोई हेतु नही है, यह उपर कह आये है. ईश्वरानंदाकारताका अभ्यास है और यही इष्ट है. इस लिये शरीर त्याग पीछे ऐसे स्थानको प्राप्त होना चाहिये के जहा तदाकारता रहनेमें विघ्न न आवे इसीका नाम सालोक्य (वा स्वर्ग स्थान विशेष) प्राप्ति कहते है. वोह स्थान कहां और कैसा ? यह नहीं कहा जा सकता. परंतु निवृत्तिवाला और सुखकारी होना चाहिये † जो हर समय उपर कहे समान अभ्यास है तो इष्ट समीपता (सामीप्य) यह नाम है. क्योंकि ईश्वर अन्य देवों समान परिच्छिन्न नही है. और यदि उसी आनंदमें स्वत्व विना रहे तो सायुज्य भाव है ओर तध्धर्मापत्ति हो जानेसे जो अधिकारी पदार्थमे उपयोगी हो तोभी ओर उपयोगी न हो तोभी उपाधि विना स्वतंत्र रहे, यह सारुप्य मुक्ति है. यद्यपि सालोक्यादि तीन स्थिति पशुपक्षीओंकोभी प्राप्त है तथापि यहां आशय विशेप होनेसे उनकी स्थितिमें अति व्याप्ति नहीं होती है ॥६४॥ ॥६५॥

† धर्म मत पथके मान्य ग्रंथोमें स्वर्गके लक्षण वर्णन किये हैं परंतु उनमें अंतर है-मतभेद है. तथा स्वर्गसे किसीने समाचार नहीं दिये और न आके कहा है..

उपासक भक्तको शेष (ईश्वर) में वृत्ति व्याप्ति होती है. फलव्याप्ति नही होती क्योंकि परमात्मा देव किसीका विषय नहीं है ॥६६॥ भविक कर्मयोगीको मोक्ष अपेक्षा रहित है याने स्वरूप स्थिति मात्र है, यदि वोह उपासना वा योग सिध्धमी होता तो उसकी मुक्ति सापेक्ष होती. योगद्वारा उपासक अथवा अन्य उपासक सापेक्ष है याने ईश्वर आनंदका भोग होना. यही मोक्षावस्था है. जेसे लोकमें कितनेक ऐसे पदार्थ हैं कि मनुष्य उनके स्वरूपको जानता तोभी वे भोग्य होते हैं जेसे के मूल द्रव्य और उनकी शक्ति है. इसी प्रकार वहां है अर्थात् परिच्छिन्न अल्पज्ञ जीव ईश्वरके स्वरूपको नहीं जान सकता तोभी शुद्धभाव वृत्तिवाले उपासककी वृत्तिमें उपर कहे अनुसार ईश्वरानंदका भोग होता है. वाह्यवाला रूप चक्षुका विषय नहीं कारणके वृत्ति वाह्य नही जाती. किंतु किरणे रूपाकार हुई मगजमें प्रवेश करती है तब रूपका भोग होता है. इसी प्रकार ईश्वर जीव वृत्तिका विषय नही किंतु अकथ्य स्व वेद्य प्रकारसे भोग होता है. ईश्वरका प्रतिबिंब या आभास होता हो ऐसा नही है तथा हि जीव सारुप्य याने ईश्वराकार विभु हो जाता हो ऐसाभी नहीं है और जेसे परोक्ष अग्निका अनुमान धूम व्याप्तिसे होता हे ऐसाभी नहीं है किंतु जेसे स्व बिंब परोक्ष है तोभी काच द्वारा अपरोक्ष जेसा भान होता है. वेसे ईश्वर अविषय है तोभी उसका आनंद साक्षात्वत् विषय होता है—इसको वृत्ति व्याप्ति कहेते हैं नहीं के नेतिनेतिका शेष जो परमेश्वर उसका ज्ञान याने विषय व्याप्ति नहीं होती. इसी वास्ते सूत्रमें लिखा शेष (ब्रह्म) में वृत्ति व्याप्ति होती है न कि शेष विषय होता है॥६६॥ (शं.) किस प्रकार? (उ.) जब पूछोगे तब अकथ्य स्ववेद्य प्रकार यहांतक भाव रूपा और अभाव रूपा इन दोनों मुक्तिका बयान हुवा ६६॥

उपरके प्रसंगमे कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, उपासना योग, संयमयोग और क्रियायोगका भेद है मुख्य फलका अभेद याने समानता है यह वात समझलि होगी.

(१) भविका याने कर्मयोग (प्रथम क्रिया विदेह) पीछे क्रियाका अभाव (२) अपरा भक्ति (क्रिया) (३) पराभक्तिमें क्रियाका सावलंबनाभाव. (४) ध्यानयोग-मेंभी सावलंबन क्रियाका अभाव (५) अष्टांगयोग (विना अवलंबन क्रियाका अभाव) (६) संयमयोग (सावलंबन क्रियाका अभाव) (७) उपासना योग (ध्यानयोग समान) (८) (ज्ञानयोग ईष्ट पदार्थकी प्रतीति जिसका इस प्रसंगमें अंगीकार नहीं है.)

औरभी उपरोक्त मुक्तकी स्थिति-अवस्थाका ध्यान आया होगा. अर्थात् (१) भाविक मुक्तिमें स्वरूप स्थिति है. नही के वैभव. और जो वोह उपासनासिद्ध हो तो

उपासक मुक्ति समानभी स्थिति होगी (२) उपासक मुक्तिमें शेषमें वृत्ति व्याप्ति है नहीं के शेष विषय और वैभवका त्याग है. (३) यदि योगके विना उपासना हो तो उपासककों सालोक्यादिकी प्राप्ति और शेषमें वृति व्याप्ति है. नही के शेष विषय. (४) यदि संयमयोगी उपासक है तो मुक्तिमें वैभवभी भोक्ता है और शेषमें वृत्ति व्याप्तिभी होती है और स्वरूप स्थितिभी हो सकती है. (५) पराभक्तिका फल उपासक मुक्ति समान हैं (नं. २ याद करो.) ॥ इन स्थितिमें भविक मुक्ति अभावरूपा याने दुःखका अभाव ऐसी है. बाकी सब आनंद भोग होनेसे भावरूपा हैं. संयमयोगीकी मुक्ति उभयरूपा है तथापि उसका समावेश भावरूपामेंही होता है.

(शं) मुक्तोमें राग द्वेष होते हैं वा नहीं (उ.) नही. क्योंकि भविक मुक्तिमें राग द्वेषका अवसर नहीं. तद्वत् विभु ईश्वरके आनंद भोगमेंभी राग द्वेष होनेका अवसर नहीं क्योंकि सर्वको प्राप्त है. संयमयोगी अपनी इच्छानुसार संकल्पद्वारा अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं ईसलिये उनको राग द्वेष करनेकी आवश्यकता नहीं है.

(शं.) उपरोक्त योगोंकी सिद्धि इसी जन्ममें हो सकती है वा क्या ? (उ.) **अनेक जन्ममें संसिद्धि ॥६७॥ अतः यथा अधिकार कर्तव्य भावसे कर्तव्य ॥६८॥**

उपरोक्त योगोंकी यथावत् फलप्रद सिद्धि अनेक जन्ममें होती है ॥६७॥ जिसके पूर्व संस्कार, माता पिताका रजवीर्य, खुराक और संग (संबंध सत्संग) उत्तम हो उसको इसी जन्ममें उक्त योगोंकी सिध्धि होजाती है. याने इसी जन्ममें मोक्ष हो जाता है. उनमें न्यूनता हो तो अन्य जन्ममें सिध्धि होती है. जिस अंतिम जन्ममें सिध्धि होनेकी है वोह अनेक जन्मोके अभ्यासका फल है इसलिये अनेक जन्ममें सिध्धि होना कहा जाता है ॥६७॥ इस लिये जिसको जैसा अधिकार हो वैसे कर्तव्य भावसे करे ॥६८॥ याने कर्मयोगका अधिकारी हो तो कर्मयोग करे. भक्ति योगका अधिकारी हो तो भक्तियोग करे. ध्यानयोगका अधिकारी हो तो ध्यानयोग करे. और उक्त योगोंका अधिकारी न हो तो उत्तम सकाम करे निषिद्ध न करे. और यहभी न हो सके तो जन्मे और मरे ॥६८॥ (शं) उपरोक्त विदेहमोक्ष होनेमें प्रमाण क्या ? उसको कल्पना मात्र क्यों न माना जाय ?

(उ.) व्याप्ति उपर कह आये हैं, कुछ आगे वांचोगे. इस सिवाय कर्म उपासना श्रद्धा विश्वासके आधीन है उसका आधार तर्क मात्र पर नहीं है. व्याप्ति मिलना बस है. इतना होनेपरभी अनीश्वरवादि या अपुनर्जन्मवादि हठसे न माने तो उससे कहना चाहिये के जीव सृष्टिके असंख्य व्यवहार कल्पित हैं यथा भाषा, संगीत, सिक्का, माप,

यह उसकी स्त्री यह उसका पति, वारसा इत्यादि हैं. उनका फल जीवोंकी व्यवस्था और सुख है. आप उक्त थीयरीको कल्पितही मान लीजे परंतु थोडी मुद्दत सवेरमें एकांतमें बेठके आधा घंटा मनको स्थिर करें ऐसे कमसे कम ३ महीना करके देखे आपकी बुद्धि स्मृति शक्ति और विचार शक्ति खिली हुई उत्तम पाओगे. ६ महीना निष्काम कर्म करके देखिये. अंतःकरण कैसा शुद्ध, पवित्र निर्लेप होने लग जायेगा. उससे आपको खातरी हो जायगी कि कर्म उपासनाका व्यवहारमेंभी उत्तम फल हे. शरीरकी आरोग्यता, मनकी शुद्धता, एकाग्रता, उससे उत्तमाचार विचार, बुराईसे बचना, और पुरुषार्थमें उत्साह इत्यादि प्रसिद्ध फल हैं. अतः कर्तव्य हैं. इस उपरांत परलोक संबंधी फल आप मत मानों, आस्तिक परीक्षको वास्ते छोड दीजे.

(शं) उपरोक्त भविक कर्म, उपासना वा योगमें प्रवृत्त रहे तो उदरपूर्णता केसे कर सकेगा. भीख मांगनेका कोई हक नहीं, धंधेमें प्रवृत्त रहेनेसे हरकोई योगकी यथावत् सिध्धि नहीं हो सकती. अतः उक्त कर्मयोग उपासनायोग निष्फल है. वा असाध्य हैं. (उ.) मुमुक्षुके प्रसंगमें यह शंका नही बनती. वोह तबही जिज्ञासु होगा कि मोक्ष साधक कर्मयोग करनेकी सामग्री प्राप्त होगी अन्यथा इसमें प्रवृत्त होनाही कठिन हैं. इसी वास्ते अनेक जन्ममें सिद्धि मानी हैं. जिसका पूर्व संस्कार उत्तम होगा और प्रयत्न शिथल न होगा उसको सामग्री प्राप्त होगी. पूर्व प्रयत्नमें जितनी न्यूनता उतनाही न्यून साधन होगा और पुरुष प्रयत्नसे ज्यादा होते होते अंतिम जन्ममें वोह सामग्री प्राप्त हो जायगी. उसको उदरपूर्णता इत्यादिकी विशेष चिंता न होगी वा लघु प्रयत्न से प्राप्त होगी जो ऐसा न हो तो याने न कर सके तो अन्य प्रकार ग्रहण करे याने सकाम उत्तम कर्म करे जन्मांतरमें अधिकारी हो जायगा और जो ऐसाभी न कर सके तो कर्मके विना जीवन नही हो सकता अर्थात् निषिद्धमें प्रवृत्ति होगी याने जन्मे और मरे.

अधिकार, संस्कारी चित्तकी रुचिसेभी जान लिया जाता हैं. यथा जिसकी रुचि विशेष व्यवहारिक कर्ममें हैं वोह उक्त कर्म उपासनामें चित्त न देगा. भविकवादमें जिसकी रुचि होगी उसको उपासनामें प्रियता न होगी. उपासनाके रुचि वालेको भविकवादमे रुचि न आवेगी इत्यादि प्रकारसे जानके जो जिसका अधिकारी हो उसको वेसा उपदेश किया जाता हैं. किसीको उसके अधिकारसे डिगाना विवेकीका काम नहीं है. किंतु यथायोग्य बोध देने योग्य है. यथा जडवादिको उत्तम सकाम कर्म करनेका उपदेश उसको लाभकारी होता हुवा परोपकार पर ले आवेगा वेसे ही उक्ताधिकारीकी उन्नतिका क्रम है ॥१८॥ विश्वासवाद समाप्त ॥

उक्तसे उपयोगी विवेक बुद्धिश्च ॥६९॥ परोक्षकी परीक्षा अर्थ सामग्रीकी अपेक्षा ॥७०॥

अर्थ—कर्मयोग—भक्तियोग वा ध्यान योगसे उसके अभ्यासीका उपयोगी विवेक बुद्धि हो जाती है ॥६९॥ एसी बुद्धिको अपने उपयोगी श्रध्धामान्य उपरोक्त परोक्ष विषयोंकी * परीक्षा अर्थ उनके परीक्षाकी सामग्री (प्रमाण) की अपेक्षा हो जाती है. अर्थात् प्रमाण सिध्ध करनेकी जिज्ञासा होती है ॥७०॥ सो (सामग्री) कहेंगे.

प्रत्यक्ष ज्ञान बाह्य और अंतर ॥७१॥ उसका करण उभयका योग्य संबंध ॥७२॥ शेष तदंतरगत् ॥७३॥ ज्ञान करण होनेसे ॥७४॥

अर्थ—प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकारका है. घटादिका ज्ञान बाह्य प्रत्यक्ष ज्ञान और दुःखादिका ज्ञान आंतर प्रत्यक्ष ज्ञान है॥७१॥ प्रत्यक्ष ज्ञान (प्रमा)का असाधारण करण (साधन) विषय विषयी इन उभयका योग्य संबंध है. (नहीं के कोई प्रकारका ज्ञान) ॥७२॥ ज्ञानके करणको प्रमाण कहते हैं. असाधारण कारणको करण कहेते हैं योग्य विषयी (जिसको ज्ञान हो सके याने जीव-प्रमाता) योग्य विषय (जिसका ज्ञान हो सकता है याने ज्ञेय—प्रमेय)इन उभयके संबंधको योग्य संबंध कहते हैं. ऐसे योग्य सन्निकर्ष (समीप संबंध) से प्रत्यक्ष ज्ञान होता है. इसलिये इस संबंधको प्रत्यक्ष प्रमाण कहेते हैं. योग्य विषयी अर्थात् दोषरहित और विषय करने योग्य. और योग्य विषय अर्थात् प्रमेय दोषरहित विषय होने योग्य। पांच ज्ञान इंद्रिय और मनके विना विषयीके साथ विषयका संबध नहीं होता इसलिये इंद्रिय और मनको भी प्रत्यक्ष ज्ञानका करण (प्रमाण) कहेते हैं. × रूपकी किरणे चक्षुद्वारा मन संयुक्त आत्माके साथ जब संबंध पाती हैं, तब रूपका ज्ञान होता है. इसलिये रूप ज्ञानमें चक्षु प्रमाण. शब्दकी लहेरे श्रोत्रद्वारा मन संयुक्त आत्माके साथ जब संबंध पाती हैं तब शब्द (ध्वनि—पद) का ज्ञान होता हैं इसलिये शब्दके ज्ञान होनेमें श्रोत्र प्रमाण है. इसी प्रकार गंध रस, शीत, उष्ण, कोमल, कठोर भाववाले पदार्थ जब उक्त संबंध घ्राण, रसना, त्वचाके साथ संबंध पाते हैं तब उन गंधादि विषयका ज्ञान होता है. इसलिये घ्राणादिकी प्रमाण संज्ञा है. अंदरमें प्रतिकुलावस्था साथ जब मनके द्वारा प्रमाता (जीव) का संबंध होता है तब दुःखादिका ज्ञान होता है. इसलिये मन अंतर प्रमाण है. इस प्रकार छ सहकारी कारण होनेसे उनकी प्रमाण संज्ञा है. प्रत्यक्ष ज्ञान अव्यपदेश और अबाधित (परीक्षाकालमें पूर्ववत् हो) होता है. इसलिये मान्य है ॥ वर्त्तमान सायंस

* ईश्वरादि. मोक्षादि. × स्वस्थ निरोगी योग्य मन इंद्रियोंको कुदरती यंत्रमी कहते हैं.

गंधादिको पदार्थ वा गुण नहीं मानती किंतु अमुक द्रव्य जब ज्ञानतंतु द्वारा 'मगज (ग्रेमेटर) के साथ संबंध पाता है तब मगजमें ऐसा इम्प्रेशन (ईफेक्ट–संस्कार–प्रभाव) होता है जिसे गंधादि कहेते हैं. परंतु यह बात तव्ही तक है कि सायंस मानस शास्त्र, हेपनोटेज़मके प्रयोग स्वाधीन न करे. जो विषयी ज्ञान करने योग्य न हो किंवा जो विषय अपरोक्ष–ज्ञेय होने योग्य न हो उनको, योग्य विषयी वा योग्य विषय ओर उन दोनोंके संबंधको योग्य संबंध नहीं कहेंगे, यह आशय (सू. ,७२ का आशय) ध्यानमें रहना चाहिये ॥७२॥ शेष अर्थात् अनुमानादि जितने प्रमाण हैं वे सब प्रत्यक्षके अंतरगत् है याने उन सबका समावेश प्रत्यक्षके अंतरगत् हो जाता है ॥७३॥ क्योंकि उन अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव ऐतिह्य, चेष्टा, संभव, और मान इन सब प्रमाणोमें प्रत्यक्ष ज्ञान करण होता है ओर प्रत्यक्ष ज्ञानद्वारा उनकी उपपत्ति होती है. इसलिये प्रत्यक्ष के अंतरगत् माने जा सकते हैं. ॥७३॥ स्मृतिभी प्रत्यक्षसे भिन्न प्रमाण भी लेना यथा गंगा निवासी. यहां गंगाका प्रवाह गंगापदका शक्य, गंगाका किनारा शक्य संबंधी और तीरमें जो गांव वोह शक्य संबंधीका संबंधी (लक्ष्यार्थ) है. (५) व्यंजना, इत्यादि अन्यभी भेद हैं सो इनके अंतरगत् हैं.

व्यवहारमें सेंकडों प्रसंगमें लक्षणासे काम चलता है और ग्रंथोमेंभी लक्षणाका उपयोग होता है. शक्ति वृत्ति ओर लक्षणा वृत्तिके उपयोगके नियम हैं यथा (१) आकांक्षा, योग्यता, आसति और प्रयोजन इन चारों पर ध्यान देना चाहिये. उसके विरुद्ध पदवृत्ति वा लक्षणा वृत्तिका उपयोग भूलमें डालता है. ॥ आकांक्षा=अपने बोधककी अपेक्षा. योग्यता=पदार्थका उत्तरोत्तर संबंध आसति=सबंधीकी व्यवधान रहित स्थिति. तात्पर्य=वक्ताका आशय ॥ जेसे जलको सींच. इस वाक्यमें जलको नहीं माना जाता क्योंकि स्मृति ज्ञान स्मृतिसे भिन्न नहीं है तथा प्रत्यक्ष (अनुभव) के पीछे संस्कार जन्य है अतः उसका समावेशभी प्रत्यक्षके अंतरगत् हो सकता है ॥ ईश्वरके मन वा इंद्रिय नहीं होते तथा उसे अपरोक्ष ज्ञान होना चाहिये इसलिये उसका ज्ञान प्रमाण अजन्य अन्य प्रकारसे होना चाहिये जिस प्रकारको मनुष्य नहीं जान सकता तथा उसके वर्णनका यहां प्रसंग नही है क्योंकि यहां तो जीव प्रमाणका प्रसंग है ॥७४॥ सू. ७३ ७४ में कहे हुये अनुमानादिके उदाहरण अगले सूत्रोंमें कहते हैं.—

यथा व्याप्य लिंग ज्ञान अनुमान ॥७५॥ व्याप्य धूम ज्ञानवत् ॥७६॥ सत्यबोधक वाक्य ज्ञान शब्द ॥७७॥ दशम पुरुषवत् ॥७८॥ और रोग

निवृत्ति बोधरू आयुर्वेदवत् ॥७९॥ साधर्म्य वैधर्म्य ज्ञान उपमान ॥८०॥ खिजूर छुवारावत् ॥८१॥ ओर अभाव ज्ञान अभाव ॥८२॥ घटानुपलब्धिवत् ॥८३॥ अर्थापत्ति अनुमानांतरगत् ॥८४॥ अलौकिक प्रमाणभी विशेष होनेसे ॥८५॥

अर्थः—यथा-साध्यका व्याप्य जो लिंग उस लिंगका जो ज्ञान सो ज्ञान अनुमिति प्रमा (अटकली ज्ञान)का साधन-करण होनेसे अनुमान प्रमाण कहाता है. सो ज्ञानांतर होनेसे प्रत्यक्ष प्रमाणके अंतरगत् है. ॥७४॥ उदाहरणमें जेसेकि परोक्ष अग्निके अनुमान करनेमें साध्य अग्निका जो व्याप्य धूम उस धूमका जो ज्ञान सो ज्ञान करण है ॥७५॥

वि. व्याप्ति ज्ञानवश लिंग दर्शनसे जो ज्ञान हो उसको अर्थात् परोक्ष पदार्थके ज्ञानको **अनुमितिप्रमा** कहते हैं. जिसका अनुमान होता है उसे **साध्य** (लिंगी, व्यापक) जिसके द्वारा अनुमान हो उसे **साधन** (लिंग, व्याप्य, हेतु, असाधारण करण) कहते हैं. यथा परोक्षाग्नि साध्य. धूम दर्शन साधन. व्याप्ति ज्ञानके विना अनुमान नहीं होता. जिसके (अग्निके) विना जो (धूम) न हो उसका (अग्निका) उसमे (धूममें) जो संबंध उसको **अविनाभाव संबंध** कहेते हैं. इस संबंधका नाम ही व्याप्ति है. सो संबंध व्यभिचार रहित सहचारी होना चाहिये.— कारण कार्य, उपादानोपादेय, परिणामी परिणाम, अंगाअंगी, अवयवावयवी, साध्य साधन, व्यापक व्याप्य प्रसंगमें कारणादिकी व्याप्ति होती है, और तादात्म्य समवायमें परस्परका संबंध होता है. इसलिये व्याप्ति वश एक दूसरे (कारणसे कार्यका कार्यसे कारणका-ई.) का अनुमान हो जाता है क्योंकि साध्य साधनका स्वाभाविक संबंधभी हो जाता है. ईसलिये यथाप्रसंग यथायोग्य योज लेना चाहिये. जिसमे हेतुद्वारा साध्यको साधा जाय उसे **पक्ष** कहेते हैं (जेसेके परबतमें धूम देखके यह पहाड अग्निवाला है. इस पहाडमें अग्नि है-यहां पहाड पक्ष है) जिसमें हेतु सिद्ध, साध्य न हो उसका नाम **विपक्ष** है. (यथा तालाब. उसमें अग्नि नहीं होती) पक्षसे इतर जिसमें हेतु सिद्ध साध्य हो उसे **सपक्ष** कहते है (जेसे अग्निवाले पहाडका सपक्ष रसोइ घर है) सारांश साध्य और हेतुकी हाजरी न हाजरीपर पक्षादि संज्ञा हैं.

जिस हेतुसे झूठा अनुमान हो जावे उसे **हेत्वाभास** कहते हैं. जिस पदार्थमें लौकिक और परीक्षक पुरुषकी समान बुद्धि पाई जावे और साध्यके साधर्म्य वैधर्म्य-वाला हो उसे **दृष्टांत** कहते हैं और केवल साधर्म्य हो तो **उदाहरण** नाम पडता है.

ईश्वर विभु आकाशवत् यहां आकाश दृष्टांत है. यह धूम अग्निका व्याप्य है. जैसे महानसकी धूम ।। यहां धूम अग्निकी व्याप्ति उदाहरण है. निर्णय प्रसंगमें हेतु, दृष्टांत और उदाहरणका उपयोग होता है. । छल जाति रहित निर्णयार्थ ,जो संवाद, उसको वाद कहते हैं. हरकोई प्रकारसे पर पक्षका खंडन करना इसका नाम वितंडावाद है. हारजीतकी दृष्टिसे स्वपक्ष स्थापन परपक्ष खंडन जल्पवाद कहाता है. वक्ताके आशयसे विरुद्ध अर्थकी कल्पना द्वारा उसका खंडन करना छल कहाता है सो ३ प्रकारका होता है. साधर्म्य और वैधर्म्यसे होने वाले निषेध याने असत उत्तरका नाम जाति है. सो २४ प्रकारकी होती है. विपरीत ज्ञानको और कथन किये हुयेको न समझनेको या उत्तर न दे सकनेको निग्रहस्थान (हार) कहते हैं उसके १२ भेद हैं.

कारणसे कार्यके अनुमानको पूर्ववत् कहते हैं (यथा मेघसे वर्षाका अनुमान) कार्य दर्शनसे कारणके अनुमानको शेषवत् कहते हैं (जैसेके धूली नदी आना जानके पूर्ववर्षा होनेका अनुमान) पहेले अनुमेयको कभी देखा हो उसके लिंगसे पूर्ववत् अनुमान होता है. परंतु जहां पूर्वमें अनुमेय न देखा हो किंतु इन्द्रिय गोचर न हो उसका अनुमान स्वमान्यतोदृष्टसे होता है. लिंगके प्रत्यक्ष होने परभी लिंगीके प्रत्यक्ष न होनेसे लिंग लिंगीकी सामान्य व्याप्तिद्वारा जिससे परोक्ष लिंगीका सामान्य रूपसे ज्ञान हो उसे सामान्यतोदृष्ट कहते हैं—यथा गुण, गुणीके आश्रित होता है उस विना नही होता इस व्याप्तिसे गुणी (आत्मादि) की सिद्धिमें इच्छा ज्ञानादि सामान्यतोदृष्ट अनुमान है. परगामसे आयेहुयेको देखके चलके आनेका अनुमान. गुरुत्वसे आकर्षणका अनुमान संतानसे माता पिताके रजवीर्यका अनुमान, विषयभिन्नग्रहणसे जुदा जुदा—अनेक इंद्रियोका अनुमान, जगतके विचित्र सनियम कार्य दर्शनसे बुद्धिमान, शक्ति (ईश्वर—चतुरा) का अनुमान, इत्यादि सामान्यतोदृष्टानुमान हैं. पत्ता वगेरे अवयव देखके वृक्षका कटा हुवा हस्तादि अंग देखके मनुष्यवधका, दहीसे दूध परिणामीका, धूम साधन देखके साध्य अग्निका और गुण आदिका समवाय देखनेसे गुणी आदिका अनुमान हो जाता है।। जिस हेतुका विपक्ष न हो वोह केवलान्वय, जिस हेतुका सपक्ष न हो वोह केवलव्यतिरेकी और जिसके सपक्ष विपक्ष दोनो हों वोह अन्वय व्यतिरेकी अनुमानका उत्पादक है. तीनों अनुमानमेंसे अन्वय व्यतिरेकी उपयोगी होता है. इस प्रकार अनुमान प्रमाणके भेद हैं यह पर्वत अग्निवाला है, धूम होनेसे, जहां जहां धूम वहां वहां अग्नि, जैसे रसोई घरमे, तैसे यहा ।। जहां अग्निका अभाव हो वहां धूम नहीं होता यथा सरोवरमें ।। यहां सांप नही है, सरवा (वनस्पति) होनेसे, जहां जहां

मरोंकी गंध, वहां वहां सर्पका अभाव होता है. इस प्रकार वाक्य योजना होती है. (विशेष देखना हो तो हिंदी न्यायप्रकाश और आर्यन्याय तथा आर्यवैशेपकभाष्य देखो) अनुमान प्रमाण न मानें तो भोजनादिमेंभी प्रवृत्ति न हो, क्योंकि पहेले विश्वास और तृप्ति व्याप्तिका अभ्यासही कारण है. इस परवतमें अग्नि है, ऐसा ज्ञान अनुमिति (ज्ञान) है. इसको अनुमान (अटकल) भी कहते हैं. यह अनुमान ग्रहण होता है इसलिये अपरोक्ष है और इसका विषय (अग्नि) परोक्ष है. लिंगद्वारा अनुमान होनेसे लिंगकोभी अनुमानप्रमाण कहते हैं. इस विषयमें अनेक विवाद हैं, परंतु जो शुद्ध हेतु और शुद्ध बुद्धि हो तो विवादको विशेष अवसर नहीं मिलता ॥७६॥ (न्याय वैशेषिक मेंसेभी लिया गया है.)

जिस वाक्यमे सत्यबोध हो उसे सत्यबोधक वाक्य कहते हैं; ऐसे वाक्यका जो ज्ञान तो शाब्द प्रमाण कहाता है ॥७७॥ जेसेंके दशम तु है इस वाक्यके ज्ञानसे दशम पुरुषका अपरोक्ष ज्ञान होता है ॥७८॥ अथवा आयुर्वेदमें रोग निवृत्तिबोधक वाक्य ज्ञानसे परोक्षका ज्ञान होता है ॥७९॥ इसलिये उभयके ज्ञानको शाब्दप्रमाण कहेते हैं. उसका समावेशभी प्रत्यक्षमें हो जाता है ॥८०॥ जिसको वाक्य ज्ञान न हो उसको वोह वाक्य प्रमाणताका काम नहीं देता. अतः वाक्य ज्ञानको प्रमाण कहा. पशु, तोता, उन्मत्त, स्वार्थी, बालक, आतुर, असतवक्ता और अविद्वानके वेसे वाक्य नहीं होते किंवा व्यभिचारी होते हैं. इस लिये प्रमाण प्रसंगके विषय नहीं. परंतु जो अनुभवी परीक्षक, सत्यवक्ता आप्त है उसका सत्यबोधक वाक्य होता है सो प्रमाण प्रसंगका विषय है. सर्वज्ञने वा अन्य आप्तने जो अपरोक्ष किया उसीको शब्द संकेतमें बयान किया है, इसलिये शब्द स्वतंत्र नहीं किंतु परतः प्रमाणरूप है. शब्दसंकेत द्वारा ज्ञान होनेसे वाक्यकोभी शब्द प्रमाण कहते हैं. रेलमें वा मेलेमें वा नदीपार १० लडके गये हों पीछे आनेपर अपनेको गिनें; गिननेवाला अपनेको गिनना भूल जाता है; इसलिये ९ होते हैं; तब उनको क्लेश होता है. कोइ आनेवाला कहे के दशम तु है, तब दशवेंका अपरोक्ष भान होता है. इसे दशम पुरुष कहते हैं. जो शब्द प्रमाण न माना जाय तो यह मेरा पिता पुत्र इत्यादि व्यवहार न चल सके. राज्य, और व्यापारादि व्यवहार शब्द संकेतमेंही चलते हैं. नाडी परीक्षा, दवाई देना लेना यह शब्द प्रमाण नहीं हो तो क्या? परंतु उस शब्दानुसार परीक्षामें जान पडा इसलिये प्रमाण पद लगा परंतु नासिकाद्वारा उपर होके प्राण गगन (ब्रह्मरंध्र) में जाते हैं. सुषुम्णा

नाडी है, इत्यादि बोधक वाक्यानुसार परीक्षामें नही मिलता इसलिये यह वाक्य प्रमाणका वाक्य नही. इत्यादि रीतिसे विचारणीय है.

शब्द वोह है के जिसका बोध श्रोत्र द्वारा होता है. वे सब ध्वनिआत्मक हैं जैसेके स्वर, वर्ण और पद हैं. तोता, फोनोग्राफ ओर कुवेमेंसे जो प्रतिध्वनि होती है वोह कंठ तालु आदि विनाभी वर्णात्मक होती है परंतु वस्तुतः वोहभी ध्वनिआ मकही है. बंसरीमेंसे जो खर्जादि स्वर नीकलते हैं, पशु पक्षी मनुष्य तोता वगेरेकी जिव्हा वा अवयवकी गतिसे जो शब्द होते हैं वे सब ध्वनिआत्मकही हैं. सब शब्द हवाके धक्केसे उद्भव होते हैं. इस प्रकार सब (उदगार अनुदगाररूप सब) ध्वनि स्वरूप हैं. परंतु लोक व्यवहारमें ध्वनि दो प्रकारकी मानी है. उनमेंसे जो मनुष्यके कंठ तालव्यादि उपाधिस्थान द्वारा सप्रयत्न नाना प्रकारकी होती है उनको वर्णात्मक कहते हैं. उनके स्वर और व्यंजन दो रूप कल्पे हैं. और अ ई उ क च इत्यादि संकेताकृति बनाई हैं. उन वर्णात्मक ध्वनियोंको जोडके पदार्थके संकेत माने हैं. यथा घटः पद, कलस अर्थका संकेत है. सारांश पदमें अर्थ जनानेकी शक्ति नहीं है किंतु संकेतभानवाली बुद्धिमें उसके उपयोगकी शक्ति है जो यह शक्ति पदमें होती तो एकके अनेक वा अनेकके विरोधी अर्थ न होते, एक अर्थके लिये अनेक पद न होते. जो होते तो भी पदकी शक्ति बलसे उनके अर्थमें झघडे नहीं होते. (सू. ११७ के विवेचनमें शब्द प्रसंग देखो) तो वोह शक्ति किसमें ? संकेत भानमें. (सू. ११७ और १३३ में शब्द विवेचन देखो)

(१) एक अर्थके लिये अनेक पद हैं. (२) एक पदके अनेक अर्थ हैं (३) कोइ ऐसा अर्थ होता है के जो पदसे मालूम न हो किंतु भाव (लक्षणा) से मालूम हो (४) और कोई एसा अर्थ तथा भाव है कि जिसके लिये अभीतक मानव मंडलमें कोई शब्द नहीं है ऐसे प्रसंगमें :अनिर्वचनीय—अवाच्यादि शब्द बोले जाते हैं ॥ इससे जान पडता हैं कि शब्द संकेत बनाये हुये हैं. जो कुदरती ऐसे पद होते तो ऐसी अपूर्णता वा ऐसे भेद न होते. मनुष्यकृत शब्दोंमें अर्थ जनानेकी शक्ति मानते हैं सो संकेतभानमें है. यह कहा गया है. उससे अर्थका व्यवहार होता है. और नयेनये शब्द बने, बन रहे हैं, और बनेंगे. इसलिये संकेतभानवाली बुद्धिकी दो वृत्ति मान सकते हैं. संकेतवाली बुद्धिका पदार्थके साथ जो संबंध वा शब्दबोधका हेतु जो पदार्थ स्मृतिके अनुकूल पद पदार्थका संबंध उसे वृत्ति (शब्दवृत्ति) कहा जा सकता है. यह वृत्ति दो प्रकारकी है (१) जब संकेतद्वारा अथवा संकेतकी स्मृतिद्वारा पदके अर्थपर

आवे (परिणाम धरे) उसको शक्ति (शब्दकी शक्ति) वृत्ति कहते हैं. उसको व्यवहारकी स्थूल दृष्टिसे यूं कहा जाता है कि जिस पदसे जो अर्थ मालूम हो उस अर्थ जनानेकी वृत्तिका नाम पदकी शक्ति वृत्ति है उससे जो अर्थ जाना जाय उस अर्थको शक्य कहते हैं. जैसे ताल पद है. पानीवाला खड्डा (तालाव) इस पदका शक्य (वाच्यार्थ) है. ऐसे संकेत ३ प्रकारके जान पडते हैं (१) रूढ–कुदरती स्वाभाविक संयोगोंसे बन बनाके लोकमें परम्परासे चल रहे हों यथा कृ वगेरे धातु उसके लिये अर्थात् क्रियाके प्रत्यय प्रचलित नाम, उसके लिये विभक्तिके प्रत्यय, अव्यय, उपसर्ग तद्धित प्रत्यय और वे नामका जो धातु प्रत्ययसे न बनाये गये हों किंतु लोकमें परंपरासे चल रहे हों यह सब रूढ हैं यथा गौ (गाय) (२) यौगिक–जो व्याकरण (भाषाके उपजे हुये नियम) की रीतिसे बने हों. जैसे कर्त्ता, पच+अक्=पाचक. (३) योगरुढ. जो व्याकरणके नियमसे बने हों और लोकमें विशेष अर्थमें प्रवृत्त हों यथा पंक+ज=पंकज अर्थात् जो कीचडमेंसे उत्पन्न हो उसे पंकज कहते हैं जैसेके रुद्रवंती, कमोद, कमल. परंतु लोकमें पंकजको कमल कहते हैं. पदरक्षी (जूता) अंगरक्षी (अंगरखी), (४) यौगिक रुढ–नं. १, २ के अंतरगत् है. ॥ (२) जब संकेतद्वारा वा संकेत (पद) की स्मृति द्वारा जो वृत्ति पदके शक्य संबंध पर आवे उसको लक्षणा (भाव) वृत्ति कहते हैं और उससे जो मालूम हो उसको लक्ष्य (लक्ष्यार्थ) कहते हैं. जैसे कोई कहे कि 'तालमेंसे जवासा ले आ' परंतु ताल (पानी) में जवासा नहीं होता, इसलिये तालके किनारेका ग्रहण है. तालपद, तालाव शक्य, तालाव और किनारेका जो संबंध सो शक्य संबंध. किनारा शक्यका संबंधी, और यही तीर (कीनारा) लक्ष्य है. लक्षणावृत्ति कई प्रकारकी होती है. उनमें मुख्य ३ प्रकारकी हैं. (१) जहत=शक्यको त्यागके शक्य संबंधीका ग्रहण करना. जैसाके उपर कहा. किंवा मोरी वा छप्पर चूता है. यहां शक्य संबंधी पानीका ग्रहण है (२) अजहत् शक्यको न छोडके शक्य संबंधीभी लेना. यथा कागसे दूधकी रक्षा करना. यहां शक्य संबंधि दूधनाशक बिल्ली वगेरे और कागका ग्रहण है (३) जहताजहत (भागत्याग) शक्यका कोई भाग त्यागना कोई भाग लेना. यथा यह (वर्त्तमान में वभूति लगाये हुये साधु) वही (हाथीपर बेठनेवाला क्षत्रधारी उज्जैनका राजा है.) यहां दोनों उपाधि अर्थात् साधु चिन्ह राज चिन्ह छोडके शरीर मात्रमें लक्षणा हैं. परंतु सो तु हैं ऐसा कहें तो वहां लक्षणाकी अपेक्षा नहीं होती क्योंकि जेसे "शरीर अनित्य है" वा यह यति स्त्रीवर्जित है इत्यादि प्रसंगमें 'अनित्य' 'स्त्रीवर्जित' इन पदोंका अन्वय न हो तोभी शरीर व्यक्तिके साथ अनित्य तत्वका और यति पदके साथ

र्त्रीवर्जितका अन्वय स्वयं हो जाता है क्योंकि उन शरीरादिका अनित्यत्वादिके साथ अभेद है. इसी प्रकार "सो तु" पदके साथ (भाग त्याग न करें तोभी) शरीर मात्रके साथ स्वयं अन्वय हो जाता है क्योंकि शरीरके साथ अभेद है अर्थात् क्षत्र विभूतिके भाग त्यागकी अपेक्षा नहीं है. ईसीप्रकार 'यहवही' ईस प्रसंगमेंभी हो सकता है क्योंकि जहां एक देश विशेषण रूप हो वहां लक्षणाका स्वीकार है. अभेद स्थितिमे लक्षणाकी आवश्यक्ता नहीं है. यथा औषधिमें बादाम, नारीयल डालना. यहां छालका त्याग और गर्भका ग्रहण ऐसे भाग त्याग स्वयंलक्षणा है. (४) लक्षित लक्षणा.— शक्यके संबंधिके संबंधिका प्रत्ययकी ओर सीचनेकी अपेक्षा है. जल+को+सींच यह संबंध योग्यता. जलको सुन वा निकाल, ऐसा हो तो अयोग्यता है. जल + राजा भोज पर खंडमें + को + जापान हो सींच, ऐसे न होना चाहिये किंतु संबंधी समीप हों यथा जलको सींच. ऐसे होना चाहिये. जलको सींच, यहां जकार (ज) ओर लकार (ल) को सींचना नहीं बनता वक्ताका आशय पानीमें है. किंवा सेंधव ला, ऐसा जो भोजन समय उचार है तो वक्ताका आशय नमकमें ओर जो हवामें जानेका समय है तो अश्वमें आशय ग्रहण होता है. (२) व्याकरण, कोश, पिंगल, वृद्ध व्यवहार संगति (पूर्वापर प्रसंगका संबंध) और वक्ताका अभिप्राय इन पर ध्यान देना चाहिये. मनमाना अर्थ वा मनमानी (इच्छित) लक्षणा काममें नहीं आती. (३) जबके शक्यार्थसे काम न चले तब लक्षणा करना (भाग त्यागका उदाहरण याद कीजे) और लक्षणामें वक्ताका अभिप्राय बीज होता है इस पर ध्यान रहना चाहिये. यथा कागसे दहीकी रक्षा, यहां दधिघातक बिल्ली वगेरेका पदान्वय नहीं होता तोभी आशय वश उसका ग्रहण है (४) जिस पद -वा वाक्यका अर्थ वक्ताने स्वयं कर दिया हो उस पदका (उसका किया हुवा ठीक हो वा न हो उस पदका) व्याकरणके बलसे दूसरा अर्थ वा दूसरी लक्षणाका ग्रहण न करना चाहिये. जेसेकि "जीव ब्रह्म एक" ऐसा वाक्य है इसके दो अर्थ है; ब्रह्मांड जिससे जीता है सो जीव व्यापक ब्रह्म—एक है. अथवा शरीरमें जो जीव (लक्ष्य चेतन) है सो ब्रह्म (व्यापक चेतन) है. इसी प्रकार "सो तू" इसके दो भावार्थ हो जाते हैं. ऐसे प्रसंगोमें वक्ताने जो भाव जनाया है वोही लेना चाहिये. दूसरे अर्थ वा भाव न लेना चाहिये. यहां तकके वक्ताने जो जनाया वोह ठीक है या नही, इसकी तकरार जुदा है. परंतु अर्थ वा भाव तो वही लिया जायगा. (५) जहां शब्दके अर्थमें तकरार हो वा दूसरे अर्थ हो सकते हो (अर्थात् संगति व्याकरणादिकी रीतिसे भी ऐसा हो सकता हो) और वक्ताका प्रयोजन क्या है, ऐसा स्पष्ट

होनेकी मान्य सामग्री न हो, किंवा जो अर्थ माना जाय उसकी परीक्षा न हो सकती हो, अथवा पदका अर्थ न मालूम हो सकता हो और वक्ताकी हाजरी न हो, तो ऐसे प्रसंगमें उस पद वाक्यको छोडके किसी ओर प्रकारसे निर्णय करना चाहिये. उसमें समय न गुमाना चाहिये. उसके भरोसे अपनी उन्नतिके प्रवाहको न रोकना चाहिये. मानोके निर्णयकी दूसरी सामग्री न मिलती हो तोभी उस शब्द पर तकरार करके तन मन और कालको निष्फल न करना चाहिये.

शब्द प्रमाण (शक्यार्थ लक्ष्यार्थ) प्रसंगमें अनेक नियम और अपवाद हैं, जिसको लेके शब्द प्रमाणताकी मान्यता अमान्यतामें संशय और किसका शब्द प्रमाण मान्ना न मान्ना इसमें तकरार हैं इस ग्रंथमें शब्द प्रमाणका उपयोग नहीं लिया गया है, इसलिये ज्यादा विस्तार नहीं लिखा. पाठकको शब्द पद्धतिका जरा ध्यान आवे इत-नाही लिखा है. विशेष देखना हो तो न्याय वेदांतादि मतके ग्रंथोमें प्रसिद्ध है.

इतने विस्तारका भाव यह है कि शब्दार्थ जब लेना तब संभालके लेना. ओर परोक्ष अर्थके निर्णयमें किसका शब्द और किस प्रकार मान्ना चाहिये यह अति संभालने जैसा विषय है. आप्त निर्भ्रांति और सर्वज्ञका शब्द है, ऐसा भावनामें मानके उस वाक्यको स्वतः प्रामाण्यका रूप दे देते हैं ॥ प्रत्यक्षादि समान शब्दप्रमाण नही क्योंकि उसमें परकी अपेक्षा रहती है. प्रत्यक्षादि स्वयं हो जाते है.

शब्द साक्षी प्रसंगमें यहभी ध्यानमें रखना चाहिये के वोह वाक्य किस कटाक्षका है. (१) रोचक=वस्तुकी श्वेत बाजु बतानेवाला. यथा अग्नि तेजस्वी पाचक, शरीरका जीवन, पाक करनेमें उपयोगी. (२) भयानक=वस्तुकी श्याम बाजु याने दोषदर्शक वाक्य. यथा अग्नि विश्वास पात्र नहीं क्योंकि अंगको जला देता है. सर्पनी अपने बच्चोंकोभी खा लेती है तो फेर दूसरे वास्ते तो क्या कहना ? (३) यथार्थ=वस्तुके दूषण भूषण बोधक वाक्य. जेसे अग्निके उभय रूप बयान कर दे. ॥ झूठे गुण वा दोष आरोप करके कहना. रोचक वा भयानक वाक्य, ऐसा आशय नही है. क्योकि आप्त पुरुष ऐसा नही करते. यथा "काशी मरणं मुक्ति." "एकादशी करनेसे स्वर्ग." "सूर्य सन्मुख लघुशंका करनेमे पाप." इन सबमे रहस्य है. रोचक भयानक हैं. काशी निवास करे तो वहां मरे. वहां रहे तो विद्वानोका संग होगा (क्योंकि काशी विद्यालय है) उससे ज्ञान होगा उससे मुक्ति होगी. नहीं के वर्तमान रूढी समान काशीमें देह त्यागसे गंगा स्नानसे मुक्ति जो ऐसा होता हो तो गर्धव और मछलीभी मोक्षके पात्र .

ठेरेंगे. १९ दिनमें एक व्रत हो तो जठरा साफ हो, दीपे, उससे पाचन होके उत्तम रस, उससे उत्तम लोही, उससे उत्तम वीर्य, उससे उत्तम बुद्धि. उससे उत्तम कर्म, उससे सुख प्राप्त होगा. नहीं के वर्तमानवत् रौढिक व्रतोंसे स्वर्ग लोक मिलेगा. सूर्य सन्मुख बेठके पेशाव करें तो यदि वहां कोई जहेरी जानवरकी अज्ञात रूपमें मिटी होगी तो पेशावमें किरणें पडके आंखमें आती हैं, और पेशाव तथा किरणें गरम हैं इसलिये विषयके अवयव चक्षुमें प्रवेश करनेसे आंखमें भयंकर रोग हो जायगा. यही वडा पाप (दुःख) होगा. नहीं के सूर्य चेतन और पूज्य है, इसलिये कष्ट देगा. इत्यादि प्रकारसे आर्य प्रजाके प्रमाणिक धर्म ग्रंथोंके वाक्योंमें रहस्य है. उसका मूल आशय बतानेवाले नहीं मिलते. काशी करोत लेनेसे, भैरव झपपर गिरनेसे, सती होनेसे मुक्ति मिलती है. यह सर्वथा अयथार्थ बोधक वाक्य हैं. रोचकादि और अयथार्थ वाक्योंका विशेष विस्तार भय और तत्त्व दर्शन ग्रंथमें है. यहां तो नमूना मात्र दिखाया है ।। (न्याय प्रकाश, वेदांत पदार्थ मंजुषामेंसे)

शब्द प्रमाण संबंधी मेरा निश्चय यह है—शब्द विना जीवन व्यवहार नहीं होता ऐसा मनुष्य सृष्टिमें अभ्यास हो गया है. इस विषे प्रमाण माना जाता है. दूसरें का कष्ट साध्य अनुभव और परीक्षा शब्द द्वारा हमको सुखेन मिल सकते हैं यह उससे वडा लाभ है. अपरोक्ष पदार्थबोधक वाक्येयोंमें शब्द विषे तकरार नहीं होती है यदि होभी तो उसका निवेडा प्रत्यक्षादिसे हो सकता है परंतु जहां परोक्ष विषयका बोधक वाक्य हो वहां तकरार होती है. यथा "अमुक यज्ञ करनेसे स्वर्ग मिलता है" "नमाज करनेसे वहिश्त मिलेगी" "बीपटस्मा लेनेसे और ईसुपर विश्वास करनेसे पाप क्षमा होके नित्यके लिये स्वर्ग मिलेगा" इत्यादि वाक्यको माननेमें विश्वासके सिवाय अन्य साधन नही है, और यह कथन ठीक है या नहीं अथवा ग्रंथके वाक्यका यही अर्थ यही आशय है अथवा अन्य, इसमें विवाद होता है. इसी वास्ते शब्द प्रमाण में झघडा है, विवाद है. संशयका विषय हो गया है. तथाहि एक शब्द पुनर्जन्मको मानता है दूसरा निषेध करता है. एक शब्द ईश्वरको जगत-कर्ता मानता है दूसरा नही- इत्यादि गरबड है. कुछभी हो परंतु अज्ञ मंडलको (जेसे अंधको लष्टिका वेसे) शब्दप्रमाण सहारा है. उसको उसे आधार मानाही पडेगा.

में वेद सोसाइटीका दास हुं. आर्य प्रजाको वेद स्वतः प्रमाण है, ऐसा विश्वास है. में वेदका स्वयं अर्थ करनेमें समर्थ नही हूं. दूसरेंाके किये हुये वेद भाष्य देखे तो उनमें शब्दार्थ भावार्थमें विवाद और मतभेद पाया. इस लिये वेद संबंधमें

में स्वयं कुछ नहीं कह सकता. क्योंकि फोनोग्राफ होनेकी मेरेमें योग्यता नहीं है.

परंतु मनु जैसे ऋषि और दर्शनकार जेसे फिलोसोफर उसको प्रमाणरूप मानते आये हैं. गीता जेसे ग्रंथमी उसको मानते हैं.

दुनियाके तमाम इतिहासकर्ता और विद्वान मंडल वेदको सबसे प्राचीन और आद्य ग्रंथ मानते हैं तथा मेरे पूर्वजमी उसीको स्वीकारते आये हैं. हिस्टरीसे जाना गया है के मनुष्य मंडलके तमाम धर्मोका मूल वेद ग्रंथ है. पारसी, यहुदी, खिस्ति, मुसलमानी यह धर्म उत्तरोत्तर उसकी शाखा उपशाखा हैं इत्यादि दृष्टिसे मेरा यह विश्वास है कि वोह अपूर्व ग्रंथ होना चाहिये. और माननीय होने योग्य है. वोह किसका बनाया हुवा है इस विषयमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं. केवल उपयोग और परिणाम पर दृष्टि है. इस वास्ते उसका वोह लेख जिसमें अर्थ वा भावार्थका विवाद–संशय नहीं हो, सृष्टि नियमानुकूल हो, उपयोगी और लोकमें हितकर हो वोह प्रमाणरूपमे ग्रहण कर लेना चाहिये. जो अर्थ वा भाव उपरोक्त जेसा न हो उसको अनुपयोगी जानके उससे उपेक्षा कर लेना चाहिये क्योंकि संभव है कि मूल वक्ताका आशय भाष्यकार नहीं पा सके हों और अन्यथा अर्थ मानके कोई प्रकारकी हानीमें उतरना पडे. ऐसे शब्दोमें जहां तक तमाम विद्वान मंडल सर्व संमत एक अर्थ निश्चय न करें वहां तक उपेक्षा योग्य है. और साध्य विषयको अन्य प्रकारसे निर्णय कर लेना चाहिये.

वेद इतर अवस्ता, बायबल, कुरान, जैन सूत्र बुद्ध सूत्र वा अन्य ग्रंथोके वाक्यों प्रतिभी मेरा यह निश्चय है कि जो वाक्य सृष्टि नियमानुकूल, उपयोगी, और हितका बोधक हो उसका स्वीकार करता हुं. अन्यथा विश्वास मात्रसे नही. जिस विषयको मे नही जानता उसमें अन्य ज्ञाताका विश्वास करना स्वभाविक बात है.

इस ग्रंथमें शब्द प्रमाणको बीचमें नहीं लिया है उसका यही कारण है अर्थात् शब्द विवादित जानेमें आया. और शब्द प्रमाणके विना अपने आशयको बता सकते है.

सूत्र ७७ में "सत्यबोधक" यह पद इस वास्ते लिखा है कि यथार्थ (कुदरतमें जो है जेसा है वेसा यथार्थ विषय उसका ज्ञान यथार्थ ज्ञान. इसको सत्यभी कहते हैं.) सत्य (याने जेसा जाना गया माना गया सो. अब यह ज्ञान यथार्थ हो वा न हो परंतु सत्य होना चाहिये) इन दोनोंमें अंतरभी है यथार्थ किसीने जाना, यह कहना मुशकिल है क्योंकि मनुष्य अपूर्ण है उसके साधनमी अल्प है इसी वास्ते शब्दबोधकी मान्यता परीक्षा और उपयोग पर आधार रखती है.

देवाना, बालक और शूकके वाक्यद्वारा बोध होता है परंतु उनका कथन ज्ञान पूर्वक नहीं इसलिये प्रमाणरूप नहीं मान सकते, फेनोग्राफके वाक्योंका उपयोग होता है परंतु उसकी प्रमाणता अप्रमाणता मुख्य वक्तापर आधार रखती है. क्योंकि देवाना वगैरे सवालका यथार्थ उत्तर नही दे सकते

उपर जो शब्दका विवेचन हुवा है ऐसा विभाग वा वर्णन संस्कृत वा हिंदी भाषामेंही है ऐसा नहीं मान लेना चाहिये किंतु अन्य प्रचलित भाषामेंभी हो सकता है और हैभी. सारांश, भाषाके ज्ञानवाला शब्द शास्त्री कहाता है. शब्दजाल महाजाल है. जो मनुष्यने स्वयं रच ली है और व्यवहारमें उपयोगी है इस लिये शब्दका त्याग-ग्रहण विचार किये विना ठीक नही. ॥७७॥७८॥७९॥

दो वस्तुके सादृश्य मिलते हुये धर्म, और न मिलते हुये धर्मका जो ज्ञान सो उपमितिप्रमा (उपमान ज्ञान) का करण (साधन) है उसे उपमान प्रमाण कहते हैं. ॥८०॥ जेसेके खिजुर और छुहारेका दरखत देखके (वा सुनके) खिजुर छुहारे वा छुहारा खिजुर जैसा, ऐसे उपमिति प्रमा होती है, यहां साधर्म्य ज्ञान उपमान प्रमाण है. उसके फलोंमें वैधर्म्य (असादृश्यता) पाया जाता है. यह वैधर्म्य ज्ञानभी उपमिति प्रमाका करण है. सोभी प्रत्यक्षके अंतरभूत है॥८१॥ जो ऐसा न माने तो सजातीयत्वकी उपपत्ति होती है. उपमितिकी नही. इसी प्रकार बिंब प्रतिबिंब, नीम और बकायन, गाय और नीलगाय, व्यापक आकाश और व्यापक ईश्वर इत्यादि प्रसंगोंमें यथायोग्य घटा लेना चाहिये. उपमान प्रमाण वक्ताके आंतरीय भाव समझने समझानेमें अत्युपयोगी होता है. काव्य ग्रंथोंमें इसका विशेष विस्तार होता है ॥८०॥८१॥

किसीकी अप्राप्ति जान पडनेसे उसके अभाव (देशवैलक्षण्य) का ज्ञानही उसके न होनेमें प्रमाण है इसे अभाव प्रमाण कहते है. यहभी प्रत्यक्षके अंतरगत् है ॥८२॥ जेसे के किसीको कहें कि अमुक मकानमेंसे घट ले आ. वहां न पाके आके कहे के वहां घट नहीं है. पूछेंकि तेरे कथनमें प्रमाण क्या ? जवाब दे कि उसकी अनुपलब्धिका ज्ञान, वा उसकी अनुपलब्धिही प्रमाण है ॥८३॥ ऐसेही मधुरत्वमें कटुत्वाभाव इत्यादिमें घटित योज लेना चाहिये ॥८३॥

एक सिद्ध विषयसे दूसरे विषयका अनुमान (कल्पना) हो जाना इसे अर्थापत्ति कहते हैं. यह प्रमाण अनुमान प्रमाणके अंतरगत् है ॥८४॥ उसके कई भेद हैं. दृष्टार्थापत्ति–कूवेका जल कांपता उछलता हुवा देखके भूकंपका अनुमान हो जाना १ ॥

अनुमानजार्थापत्ति—गर्भ धारणसे संतानोत्पत्ति और तत्संबन्धी अनेकानुमान होना २॥ श्रुतार्थापत्ति—फौज आना सुनके ग्रामकी क्षति आदिका अनुमान हो जाना किंवा दिवस अभोजी मोटा ताजा योगी है, ऐसा सुनके रात्री भोजनका अनुमान हो जाना ३॥ उपमानजार्थापत्ति—दोनोंकी सादृश्यता जानके एक जैसे दूसरेके उपयोगका अनुमान हो जाना (यथा नींब कर्मनाशक है बकायनभी वैसी होनी चाहिये इ.) ॥४॥

अभावमार्थापत्ति—अमुक स्थान वा खंड वा प्रदेशमें नैऋत दिशाकी पवन चलनेसे वर्षा ऋतुमेंभी वर्षा नहीं होती ऐसी व्याप्ति सिद्ध व्याप्ति जानके वर्षा न होनेसे दुष्काल और तत्संबंधिका अनुमान हो जाना ॥५॥ इस प्रकार कल्पना उत्पादक अर्थापत्ति होती है. भावबल दर्शनसे रेलने, बालकोंके डोरे द्वारा श्रवणसे तार, बलदार डोरीके हलनसे घडीयालका प्रकाश हुवा है. यह अर्थापत्तिकी माहिमा है इस प्रमाणको अनुमानसे भिन्न माना गौरव है ॥८४॥

अलौकि प्रमाणभी कहा जाता है, क्योंकि सर्व साधारणसे विशेष होता है ॥८५॥ जिसने तैजस् विद्या (मेस्मरिझम) का प्रयोग किया वा देखा होगा अथवा जिसने योग ज वृत्ति की होगी वा उसके प्रयोग देखें होंगे, उसे मालूम होगा कि विधेय और योगी का पदार्थ के साथ प्रत्यक्ष समान संबंध न होने परभी ईथर (सूक्ष्म) द्वारा दूरस्थ परोक्ष शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधका ज्ञान हो जाता है. आत्मसंयुक्त ऐसी वृत्ति और ईथर द्वारा विषय संबंधका किंवा वैसी वृत्तिको अलौकिक प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं. अमुक साधन विशेषसे अमुकको यह योग्यता प्राप्त होती है, इस लिये विशेष प्रमाण कहा जाता है. वस्तुतः प्रत्यक्ष प्रमाणके अंतरगत है.

धूमत्व दर्शनके पीछे धूमत्वका सब धूममें ज्ञान हो जाता है १, सुगंधी चंदन ज्ञानके पीछे सब चंदनोंमें सुगंधका ज्ञान हो जाता है २, यह दोनों और रज्जुआदिमें सर्पादिकी प्रतीति हो जाती है वहांभी स्मृति संस्कार द्वारा जो सर्प ज्ञान सो भी अलौकि प्रत्यक्ष है ३॥ इस प्रकारकोभी अलौकिक मानते हैं. परंतु वस्तुतः इन तीनोंको अलौकिक कहना उपचार मात्र है. जो यूंही माना जाय तो इंद्रिय तथा मन, विषय भेद ज्ञान और अपने भेदका ज्ञान तथा विषयका प्रतिक्रम नहीं करा सकते किंतु अनुभव में होता है, उसकोभी अलौकिक कहा चाहिये. इंद्रियोद्वारा जो ज्ञान नहीं होता किंतु दूर-र्बीनादि यंत्रद्वारा होता है तथा पृष्टस्थका प्रतिबिंबद्वारा ज्ञान होता है, उसकोभी अलौ-किक कहा चाहिये, परंतु ऐसा नहीं है. समानताके संस्कारसे धूमत्व और सुगंधीकी

कल्पना की जा सकती है, क्योंकि जाति कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता रज्जु आदिमे सर्पादि संस्कारी मनका परिणाम वा कल्पना है क्योंकि नष्ट सर्पादिका और तत् समीपस्थ पदार्थोंका दर्शन नहीं होता. ॥८९॥

ऐतिह्य, मान (तुला, माप) चेष्टा, आंक पल्ली, संभव, इत्यादि प्रमाणोंका उपरके प्रमाणोंमे समावेश हो जाता है ऐसा जान लेना चाहिये प्रमाणोंकी संख्या स्वरुपमें दर्शनकारोंका मतभेद है. विशेष उपयोगी न जानके चर्चा नहीं करते. देखना हो तो भाषाके न्यायप्रकाश और वेदांतपदार्थमंजूषा देखना चाहिये. ॥

न तिसमें तिसकी बुद्धि सो भ्रम॥८६॥ अयथार्थ अनुमितिका जनक हेत्वाभास ॥८७॥ जो जैसा पदार्थ है उसमें उस पदार्थकी बुद्धि (ज्ञान) न हो किंतु अन्यथा हो अर्थात् और प्रकारका अवभास हो उसे भ्रम ज्ञान कहते है॥८६॥ विपर्य, संशय, और असंभव इसीके पर्याय हैं. यथा जडमें चेतन, चेतनमें जड, पवित्रमें अपवित्र, अपवित्रमें पवित्र ऐसा विपर्य ज्ञान भ्रम है. अनादिशांत, सादि अनंत और अभावसे भावरूप होता है, ऐसा असंभव ज्ञान है. यह स्थाणु वा पुरुष ऐसे संशयमें एक भ्रम ज्ञान है. रज्जुमें सर्पका ज्ञान किंवा लाल वस्त्र विशिष्ट श्वेत काचमे लाल काचकी बुद्धि यह अन्यथा अर्थात भ्रम ज्ञानहै. भ्रम ज्ञानको ज्ञानाध्यास और इसके विषयको अर्थाध्यास कहते हैं. किसी वस्तु (रज्जुआदि) के सामान्य (इदं) ज्ञान और विशेष (वटादि) अज्ञान, वस्तु (सर्पादिके) संस्कार तथा प्रमाता दोष (भयादि दोष) प्रमाण दोष (इंद्रिय तिम्रादि करके अयोग्य) प्रमेय दोष (सादृश्य—लंबे सर्पनुमा) से भ्रम होता है. सर्प अर्थाध्यास, उसका ज्ञान ज्ञानाध्यास, कहाता है. भ्रम भ्रम कालमें भ्रम रूपसे ज्ञान नही होता. किंतु बाध पश्चात जान पडता है यथा स्वप्न. तद्वत् अन्य प्रसंगोमें योज लेना ॥८६॥ जिस हेतु (लिंग, साधन) से झूठा अनुमान हो जाता हो उसे हेत्वाभास कहते हैं ॥८७॥ जिस हेतुका पक्ष, सपक्ष, और विपक्ष हो तथा जो अबाधित हो, सत् प्रति पक्ष विनाका हो वोह यथार्थ हेतु है. और जो वस्तुतः हेतु न हो और हेतुवत् भासे याने अनुमितिका प्रतिबंधक हो अर्थात् अयथार्थ अनुमान हो जानेका निमित्त हो उसे हेत्वाभास कहते हैं. वे अनेक प्रकारके होते है. यथा १ अनेकांत (व्यभिचारी) तीन प्रकारका, २ विरुद्ध ३ प्रकरण सम (सत्प्रतिपक्ष) ४ असिद्ध (साध्यसम) तीन प्रकारका ५ बाधित (कालातीत) ॥ साध्यभाव और अभावमें जो वर्ते सो व्यभिचारी हेतु है. यथा मनुष्य तोते हैं, प्राणी होनेसे, तोतेवत् ॥ जो पक्ष विपक्ष दोनोंमे वर्ते वोह साधारणानेकान्त है यथा—शब्द नित्य है. अस्पर्श होनेसे. यहां अस्पर्शत्व हेतु अंतःकरण

और आत्मामेंभी वर्तता है ॥ केवल पक्षवर्ती **असाधारण अनेकान्त.** यथा–शब्द नित्य है, शब्दत्व होनेसे. शब्दत्व शब्दमें ही है. जिस हेतुका सर्वत्र अन्वय हो, व्यतिरेक न हो उसे **अनुपसंहारि अनेकांत** कहते हैं. यथा–सर्व नित्य, प्रमेय होनेसे यहां प्रमेयत्वा भाव कहींभी नहीं है ॥१॥ जो हेतु साध्यका विरोधी हो अथवा सपक्ष अवर्ती और विपक्षवर्ती हो, उसे **विरुद्ध** हेतु कहेते हैं. यथा-शब्द नित्य है कार्य होनेसे. यहां कार्यत्व हेतु शब्द नित्यत्वका विरोधी है. ॥२॥ जिस हेतुमे साध्य सिद्धिमें संदेह बना रहे किंवा जो हेतु साध्याभावका साधक हो उसे **प्रकरण सम** और किसी मतमें **सत्प्रतिपक्षभी** कहते हैं. यथा शब्द नित्य है, नित्यत्व धर्मकी अनुपलब्धिसे. घटवत् । शब्द नित्य है. अनित्यत्व धर्मकी उपलब्धि न होनेसे आकाशवत्. यह प्रकरण समका उदाहरण है क्योंकि साध्य संशयात्मक रहा है॥ शब्द नित्य है श्रोत्रका विषय होनेसे शब्दत्ववत्. शब्द अनित्य है. कार्यत्व होनेसे घटवत्. यह सत्प्रपक्षका रूप हुवा. ॥ जो हेतु साध्यकी सिद्धिमें दिया जाय वही साध्याभावकी सिद्धि करता है उसको किसी पक्षमें सत्प्रतिपक्ष माना है. शब्द नित्य है. श्रोत्रका विषय होनेसे शब्दत्ववत्. शब्द अनित्य है. श्रोत्र इंद्रियका विषय होनेसे घटवत् (याने इंद्रियोंके यावत विषय होते हैं वे सब कार्यरूप अनित्य होते हैं इसलिये सत्प्रतिपक्ष हुवा). शब्द नित्य है. आकाश व्याप्य होनेसे परमाणुवत शब्द अनित्य है. आकाश व्याप्य होनेसे घटवत्. स्वप्न सृष्टि सत्य है प्रतीत होनेसे, जाग्रतवत्. स्वप्न सृष्टि मिथ्या है, -प्रतीत होनेसे मृगजलवत्. जीव भोक्ता है, चेतन होनेसे, राम पुरुषके वाच्यवत् जीव अभोक्ता है, चेतन होनेसे ब्रह्मवत्. यह सब दूसरे प्रकारके सत्प्रतिपक्षके उदाहरण हैं ॥३॥ जो हेतु साध्य समान साध्य हो किंवा पक्ष अवर्ति हो अथवा जिसकी साध्यके साथ अव्याप्ति हो उसे **असिद्ध** हेतु कहते हैं. यथा-छाया द्रव्य है गतिमान होनेसे. जीव ब्रह्म है चेतन होनेसे. यहां छाया गतिमान और जीव चेतन यह दोनों विषय साध्य सम है. ॥ जिसका पक्ष, पक्ष धर्म रहित हो वोह **आश्रयासिद्ध** हेतु है यथा परवत कंचनमय है, धूम होनेसे ॥ पक्षमें व्याप्य अभाववाला हेतु **स्वरूप** असिद्ध कहाता है. यथा–घट पृथ्वी है. पटत्व होनेसे. यहां घटका पटत्व स्वरूप नहीं है. व्याप्ति असिद्ध वाले हेतुको व्याप्ति असिद्ध कहते हैं. यथा घट छणिक है. भाव रूप होनेसे. भावरूपमें क्षणिकत्वकी व्याप्ति नहीं होती ॥४॥ जो हेतु काल रहित होनेपरभी कहा जावे किंवा साध्यके अभाववाला हो उसे **बाधित** हेतु कहते हैं. यथा शब्द नित्य है, संयोगद्वारा व्यंग होनेसे. रूपवत्. यहां शब्द संयोग जन्य नहीं है. जहां ग्रामकी धूम पासकी झाडीमें अटकती है वहां झाडीमें अग्निका

अनुमान हो जावे तो वोह बाधित हेतु है ॥५॥ इसी प्रकार अन्वय दृष्टान्ताभास, २ प्रकारका, साधर्म्य दृष्टान्ताभास ९ प्रकारका, वैधर्म्य दृष्टान्ताभास ९ प्रकारका होता है. संक्षेपमें जिसजिस पक्ष, साध्य और हेतुमें जितने दोष हो सके उतनेही हेत्वाभास होते हैं. यथा वनमें अग्नि होनेसे धूम होती है. वृक्षोंमें पसरती है तोभी धुंध जानके अग्निका अनुमान नहीं कर सकते यहां विरुद्ध हेतु है. इस प्रकार कहे हुयेही हेत्वाभास है, ऐसा नहीं समझना चाहिये. विशेष देखना हो तो हिंदी न्यायप्रकाश आर्यन्यायवैशेषिकभाष्यमें देखो. यहां तो झूठा अनुमान न कर सके इतनाही संक्षेपमें लिखा है ॥८७॥ (न्याय प्रकाशमेंसे).

सृष्टि नियमानुकूल बुद्धिका उपयोग युक्ति ॥८८॥ साध्याभावके आरोपसे साध्याभावका आरोप तर्क ॥८९॥ किसी निर्णय प्रसंगमें बुद्धिका उपयोग सृष्टिनियमानुकूल करनेको युक्ति कहते हैं ॥८८॥ यथा—कोई कहे कि सर्व अनित्य है. तहां यह अनित्यता नित्य वा अनित्य? पहेला पक्ष माने तो सर्व अनित्य कथन नहीं बनेगा. दूसरा पक्ष मानें तो अनित्यताका बाधक हेतु नित्य होनेसे सब अनित्य नहीं हो सकते. सर्व मिथ्या हैं, तो तुमारा कथन मंतव्यभी मिथ्या ठेरेगा. इ. ॥८८॥ साध्याभावके आरोपसे साध्याभावका आरोप करना याने अनिष्टको सर्व प्रकार देखानेको तर्क कहते हैं ॥८९॥ कारणके आरोपद्वारा जो कार्यका आरोपन वा साध्याभावकी कल्पनासे साधना भावकी कल्पनाका आरोपन वादि प्रतिवादिको अनिष्ट है. यथा—उभय पक्षकार धूम मानते हैं परंतु प्रतिपक्षी वहां अग्नि नहीं मानता. तब यह कहें कि जो यहां अग्नि नहीं तो यह दृष्ट धूमभी नहीं. ऐसे उपयोगको तर्क कहते हैं. मिथ्या, छल, वा जाति (असद उत्तर) वाले कथनका नाम तर्क नहीं है ॥८९॥ अब साधन सामग्री लिखके उक्त विश्वासवादकी निरिक्षा करते हैं. इस प्रसंगमें जहां सूक्ष्मा (हिरण्य गर्भ —शेषा—इश्वर) पद आवे वहा सूत्र १९६ का विवेचन देखना चाहिये. उसके लक्षण वहां मिलेंगे.

स्वयंभू सम चेतनाधार ॥९०॥ गतिमत परिच्छिन्नैक दर्शनसे. ॥९१॥ अकाय, विभु होनेसे ॥९२॥ सोही कर्त्ता ॥९३॥ सनियम विचित्र कार्य दर्शनसे ॥९४॥ ज्ञान इच्छा शक्तिमान ॥९५॥ कर्त्ता होनेसे ॥९६॥ अर्थ—इस दृश्य ब्रह्मांडका कोइ स्वयंभू (स्वयं सिद्ध सत्तावाला) वा स्वतः सिद्ध अस्तित्ववाला अनपेक्ष अनादिसम एक समान रहनेवाला अपरिणामी) चेतन आधार (याने ईश्वर) होना चाहिये ॥९०॥ क्योंकि यह तमाम जगत् गतिवाला परिछिन्न जान पडता हैं ॥ परिछिन्न गतिमान होता

है, गतिमानको आधारकी अपेक्षा होती है, इस व्याप्तिसे उसकी सिद्धि होती है ॥९१॥ वोह अधिष्ठान (ईश्वर) शरीर रहित यानें अकाय (भारीनसरहित अनद्ध) होने योग्य है, क्योंकि विभु–असीम–निराकार है ॥ शरीर आवरणवाला परिछिन्न अविभु होता है ॥९२॥ जो विभु न होवे तो सर्वाधारमी न हो सके. जो अविभु हो तो परिछिन्न होनेसे आधेय होना चाहिये ॥९३॥ सोही ईश्वर जगतका (महत्) कर्त्ता है ॥९३॥ क्योंकि जगतके कार्य सनियम और विचित्र देखने है ॥९४॥ ऐसे विचित्र कार्य (किसी पूर्ण ज्ञानवान सर्व शक्तिमान के विना नहीं हो सकने याने) परिछिन्न जीव (देव मनुष्य वा जड) नहीं कर सकने ॥९४॥ वोह ईश्वर इच्छा ज्ञान और शक्तिवान होना चाहिये ॥९५॥ क्योंकि जगतका कर्त्ता है ॥ इच्छा ज्ञान और शक्तिके विना कर्त्ता नहीं हो सकता. ॥९६॥

(शं) एक सूर्य मंडलके ग्रह उपग्रह उसके सूर्यकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिके आधेय हैं. ऐसे अनेक सूर्यमंडल किसी महान सूर्य (केन्द्र) के आधेय है. इसलिये किसी ईश्वरादिको अधिष्ठान आधार माननेकी जरुरत नहीं है (उ.) जेसे दृश्य ग्रह सूर्य कार्यरूप परिच्छिन्न हैं, इससे सिद्ध होता है कि उनका आरंभ है ऐसेही वोह महान सूर्यभी सादी होना चाहिये. क्योंकि उसका गुरुत्व मात्राही उसकी कार्यरूपता सिद्ध करता है. अब उसकी उत्पत्तिका विचार करें तो आकर्षणवाद संतोषकारक उत्तर नहीं दे सकता. उत्पत्तिमें ३ पक्ष हो सकते हैं. प्रथमसे सब परमाणु पसरे हुये थे १ एक केंद्रमें गोलेरूप हुये परस्परमें अथडते रहे २ दोनो रूप नहीं किंतु मारधाटके टीवों समान ग्रह बनते बिगडते आते है याने उपचय अपचयका प्रवाह है. कभी एसा समय न हुवा के कोईभी गोला न रहा हो. ३. पहेले दोनो पक्षमे उत्पत्तिकी निमित्त किंवा उनको संग्रह करके ग्रहरूप बनानेकी निमित्त किंवा गोलकेंद्रमेंसे उनको जुदा करके गोले (ग्रह) बनें और दूर दूर जाते जाय इसकी निमित्त आकर्षण सिद्ध नहीं होती. क्योंकि गुरुत्वभाव तो गोले बनने पीछे सिद्ध होनेका है.

तीसरे पक्षमें जब अंतिम महान सूर्यका उपचय अपचय होगा तब तमाम आकर्षण प्रबंध नष्ट होनेसे प्रलय होना मानना पडेगा. अर्थात् यह पक्ष त्याग और पूर्वोक्त उभय पक्षका ग्रहण होनेसे उक्त दोष आयेंगे. (शं.) सूर्य मंडल अनंत हैं, इस लिये प्रलय न होगा. (उ) जितने हैं उतने है, अनंतत्व पद ही नहीं बनता और अनंत मानो तो भी उक्त दोषका परिहार नहीं होता इस प्रकार प्रथम तो गोलेकी उत्पत्ति स्थिति

और कक्षाकी गति ही आकर्षणवाद नहीं बता सकता, तो फेर आकर्षणकी तो चर्चाही क्या करना ?

जिसकी गुरुत्वाकर्षणके आधेय सब ग्रह है वोह परिछिन्न कंपोंड रूप महान सूर्य वा गोला किसके आधार रहता होगा ? किसी तरफ क्यों न चला जा रहा हो ? इसका संतोषकारक उत्तर अभी तक आकर्षणवाद नहीं दे सका है. वोह अपने आप स्वयं आधार रहने योग्य है, ऐसा आकर्षणवाद नहीं मान सकता क्योंकि उसके लिये अन्यकी गुरुत्वाकर्षणकी अपेक्षा रहती है. और उसका गुरुत्व उसका नियामक नहीं हो सकता. क्योंकि वोह शक्ति उसके आधीन–आश्रित है. इस प्रकार मूलेनास्ति कुतो शाखा समान मूलाधार आकर्षण है, यह सिद्ध न हुवा.

(शं.) एकही की नहीं किंतु तमाम सूर्य ग्रह उपग्रहोंकी गुरुत्वाकर्षण परस्परका आधार है. (उ.) प्रथम तो इनका मूलही नही बनता. जैसाके उपर उत्पत्ति स्थिति और कक्षा प्रसंगमें ईशारा किया है. जो अनादिसे उपचयापचय पक्षको लेके आपकी शंकाका आदर करें सो भी नहीं बनता क्योंकि किसी स्वतंत्र मूल आधार हुये विना अन्योऽन्याश्रय भावही सिद्ध नहीं होता इसी प्रसंगमें आगे वांचोगे. उपरांत वोह आकर्षण क्या ? गोलेकी शक्ति वा गुण ? जो शक्ति वा गुण हो तो शक्ति अपने शक्तिमानको और गुण अपने गुणिको छोडके बाहिर नही जाने, एसी व्याप्ति प्रसिद्ध है और युक्तिसेभी वैसेही सिद्ध होता है. जेसेके अग्निसे वस्त्र तपावें तो अग्निके परमाणु सहित गरमी वस्त्रमें जाती है. नहीं के अग्निको छोडके. क्योंकि अग्नि तुरंत बुझा देवें तोभी वोह गरमी वस्त्रमें मोजूद पाते हैं. यदि आकर्षणको स्वाधिष्ठानसे वा अन्य देशसे बाहिर जाना माना जाय तो जेसे चंबुककी बिजलीनामा रस्सी (किरण) लंबी होके लोहेको खेंचती है. वोह परमाणुरूप है ऐसे आकर्षणकोभी परमाणुरूप मानना पडेगा. जब यूं हो तो उसको आधारकी अपेक्षा होगी. और जो संकोच विकासवाली होनेसे उसे मध्यम परिमाण माना जाय तोभी परमाणुवत् आधेय होनेसे सर्वाधार न हो सकेगी. और जो विभु परिमाण माने तो किसीकी गुरुत्व शक्ति नहीं ठेरी किंतु जेसे ईश्वरवादि ईश्वरको जगदाधार और आकर्षक मानते हैं वेसी हुई अर्थात् ईश्वर और आकर्षण शक्तिमें भाषाका अंतर हुवा. जो आकर्षणको परिणाम रहित माना जाय तो अर्थशून्य ठेरेगी क्योंकि परिमाण रहित कोइ वस्तु नहीं होती. चंबुकने जब एक लोहा खेंचलिया फेर जो दूसरा लोहा उसी लेनमें रखें तो नहीं खेंच सकता और जो चंबुकके टुकडे करें तो पहेले जितना लोहा खेंच सकता था उतना नहीं खेंच सकता,

इससे स्पष्ट होता है कि बिजली परमाणुरूप है, नहीं तो प्रतिबंधसे नहीं अटकती और उसके टुकडे नहीं होते. इसी प्रकार आकर्षणको मानना पडता है क्योंकि बडे ज्यादे गुरुत्ववाली वस्तु अपनेसे छोटेको खैंचती है, इस रूप गुरुत्वके तारतम्यसे अणु रूप सिद्ध होगी अर्थात उसे शक्ति नाम नहीं दे सकेंगे.

तथाहि वोह शक्ति द्रव्य वा गुण वा शक्ति वा अन्य मूल वस्तु रूप मानो परंतु जब उसको स्वरूप संभावना (द्रव्यादि, गुणादि इत्यादि १३ सत्य तत्व दर्शन अ. २ ने अध्याय उस) के १२० तरह (प्रकार) में तोलोगे तो आकर्षण, किंवा किसीसे (अवस्था) इतर, स्वतंत्र कोई मूल वस्तु है ऐसा सिद्ध न होगा. आकर्षणवाद सब ग्रहोंकी आकर्षण जुदा जुदा बताता है तो यह भी मानना पडा कि अनंत ऐसी निर्जीव आकर्षण शक्तिका कोम है–परस्परसे अधर है. यथा, पृथ्वी और चंद्रके मध्य पृथ्वीके आकर्षणकी रस्सी है. उस रस्सीको काटती (सबंध पाती) हुई सूर्य और शनिके बीचमें सूर्याकर्षणकी रस्सी है. इसी प्रकार अन्य है. उस अधडाअथडीकी व्यवस्था नहीं होता. क्योंकि कल्याणके आधीन होनेसे एककोही मुख्य मानना होगा. इससे सार यह निकला के अन्य सब आकर्षण किसी एक बडे मुखियाकी आकर्षणके आधेय हैं अर्थात आकर्षण आधेय भी है. ऐसेही बडे गोलेकी आकर्षणभी आधेयही होनी चाहिये क्योंकि जब गोला परिछिन्न है तो उसकी आकर्षण शक्तिभी ससीम होगी. ससीम आधार बिना नहीं रह सकता यह उपर कहा है. निदान सर्व प्रकार यदि आकर्षण है तो आधेय वस्तु होगा

सूर्यादि ग्रह उपग्रह जितने हैं उतने हैं अनंत नहीं. इसलिये अंतके ग्रहोंका आकाश तरफवाला आधा भाग आकर्षणकी रस्साम नहीं आया है वा गृ क्योंकि जैसे दरमीयानी ग्रह परस्परकी चारो तरफकी आकर्षणसे नियममें रहते हैं वैसे अंतके ग्रहो पर चारो तरफकी आकर्षण नहीं है इस लिये अंतका ग्रह दरमीयानी ग्रहोंमें खिंचा जाना चाहिये अर्थात आकर्षण प्रबंध न रहेगा और अंतके ग्रहके चारो तरफ फिरके आकर्षण नियमसे रखती हो ऐसी उसमें योग्यता नहीं है अथात जड होनेसे यथायोग्य नियामक नहीं मानी जा सकती इस वास्ते चारो तरफ कोई महान आकर्षण शक्ति साधार (शक्ति) माननेकी जरूरत रहती है

गुरुत्वको शक्ति मानके उसका आकर्षण नाम दिया गया है, परंतु वोह क्या यह अभीतक बयान करनेमें नहीं आया है. इस संबंधमें सूत्र २१८ से २७१ तककी टीकामें एक मत लिखा है सो देखना चाहिये.

(शं.) ग्रहोंको अन्योऽन्याश्रय क्यों न माना जाय? (उ.) मुख्याधारके विना अन्योऽन्याश्रयकी व्याप्ति नहीं देखने और न उसकी सिद्धि होती है. होजरी (मेदा) यकृत (जिगर–लिवर) हृदय (हार्ट–दिल) फेफसा (लंग्स) तिल्ली, मगज, हाथ पांव वगेरे एक दूसरेके पोषक और आधार है परंतु यह परस्परके मूलाधार नहीं हैं किंतु इन सबके बीजका निमित्त और उपादान अन्य है. (विचारो-डाक्टरोंसे निश्चित करो). दो आदमी रस्सीके आश्रय परस्परके आधार हुये टेढे रह सकते हैं–नहीं पडते, परंतु उनका मूलाधार पृथ्वी है. इसी प्रकार हरेक ग्रह अन्योऽन्याश्रय मान्ना व्याघात है. असिद्ध है. किंतु इनका मूलाधार अन्य हो और उभयके संबंधकी रस्सी हो तब परस्परके आधार वा आधेय हो सकते हैं. अन्यथा नहीं. अन्योन्य दोष जान्नेका प्रकार मानोके च यह भू का और भू यह च का आधार होनेसे दोनों परस्परके आश्रय हैं. अब विचारो–जो च यह भू+च (भू आश्रित) का आधार हो तो च स्वयं अपना आप आधार सिद्ध होगा. और जो च यह भू–च का आधार है तो च का अन्य ग आधार मान्ना पडेगा अब जो ग का च मानोगे तो चक्रिका दोष आनेसे व ही दोष आवेगा क्योंकि ग का आधार च आवेगा. जो ग का घ मानें तो धारा दोष (अनवस्था दोष) आनेसे अव्यवस्था रहेगी क्योकि संख्यासे अनंत कोई नहीं है. इस लिये अन्योऽन्य आश्रय दोष होने वा असिद्ध रहेनेसे कोई स्वयंभू मूल आधार माने विना अन्योऽन्याश्रय सिद्ध न होगा.

(शंका) जेसे एक गेंदमें अनेक गांठ और दाने एक दूसरेसे गुंथे हुवे रहते हैं, गेंदको फेंके तो उस सहित गतिमें होते हैं. इसी प्रकार परस्परका आकर्षणसे गूंथा हुवा तमाम ब्रह्मांड रूपी गोला (गेंद) अनादिसे एक तरफ जा रहा है यानें नित्यगमनमें है क्योंकि आकाश अनंत है. इस लिये मूलाधार मान्नेकी आवश्यकता नहीं है.

(उ.) जो ऐसा होता तो सूर्य और गरगी पृथ्वीसे जुदा पड जाते. ग्रह सनियम वांकी टेढी गति न कर सकते. क्योंकि इतने वडे ब्रह्मांडकी गतिके वेगसे तमाम विषम पदार्थ समान कक्षामें नही रह सकते. संयोग वियोग जन्यका प्रवाह देखनेसे नित्यगमन, नियम और व्यवस्थाका बाधक है यह स्पष्ट है. हलके भारीका अन्तर अवश्य होता है. इसलिये भारी गोले और गरमीका नियम पूर्वक अंतर नही रह सकता. और व्यवस्था नहीं बनती परंतु व्यवस्था तो देख रहे हैं. आकाश जितना है उतना है अनंत नहीं कह सकते इसलियेभी अनादिसे नित्यगमन होना और रहना

नही बनता. ग्रह उपग्रह कार्य हैं उनका आरंभ होना चाहिये परंतु नित्यगमन माननेसे उनके आरंभ होनेका अवसर नहीं मिलता. जो ग्रह अनादिसे हैं और आकर्षण जाल भी अनादिसे है ऐसा मानें तो धूमकेतु वन रहे हैं एसा न होना चाहिये औरभी अंतके ग्रहोंका आकाश तरफवाला आधा भाग आकर्षणके रस्सेमें नही आ सकता अथवा यूं कहो कि जेसे मध्य भागके ग्रह चारों तरफकी आकर्षणसे बद्ध होनेसे नियममें रहते हैं वेसे अंत अंतके ग्रहों पर चारों तरफ आकर्षण नही है इसलिये तितड वितड हो जायंगे. इसलिये जिधरको ब्रह्मांडका गोला जा रहा हैं उसके विरुद्ध तरफके अंति -वाले ग्रह मध्यके ग्रहोंमें मिल जायंगे. और जानेवाले तरफके एकदम छूटे पड जायंगे. इस प्रकार ग्रह प्रबंध नाश हो जायगा. गेंदके चारों तरफ सूत है परंतु प्रसंगमें अंतके ग्रहोंकी आकाश तरफ उधरको खेंचनेवाला सूत नहीं है. इसलिये नित्य गमन हो और व्यवस्था रहे यह सिद्ध नहीं होता.

(शंका) सर्व चक्राकार अति गतिमें हैं इसलिये आधार माननेकी जरुरत नही क्योकि गतिका वेग ही इधर उधर नहीं होने देता. (उ.) जो ऐसा हो तो रासमंडल का समूह ही चक्राकार किसी तरफ गति करता हुवा जाना चाहिये और ऐसा हो तो नित्यगमनवाले दोष आवेंगे. अतः आधारकी अपेक्षा है.

इसी प्रकार पदार्थोंके गुण, जीवोंके कर्म (अदृष्ट) बिजली वगेरेको मूलाधार माननेमें दोष आते हैं क्योकि जिनको नित्य गुण मानते हैं वोभी गुणीके आधेय होते हैं और गुणीको छोडके अन्याधिकरणमें नहीं जाते. जो ऐसा न मानोगे तो पूर्वोक्ताकर्षणवाले दोष प्राप्त होंगे अतः जो अनित्य गुण वा अन्य अनित्य शक्तिको आधार न मानें तो कोई आश्चर्य नहीं. जीव जो गति कर्म करता है वोह ग्रह हवा वगेरेके आधार करता है. तथा कर्म जीवके आधीन हैं और अनित्य तथा जड हैं और परिछिन्न हैं. किंवा कर्म पदार्थ नहीं अवस्था हैं उनको ज्ञान नही कि केसे क्या होना, इसलिये उनको ब्रह्मांडका आधार नही मान सकते. बिजली परिछिन्न जड परमाणु रूप है. यथा जो चंबुक १ तोले लोहेको खेंचता है, उसके टुकडे करें तो उतने लोहेको नही खेंचता. इस प्रकार गतिवान परिछिन्न परमाणु रूप स्पष्ट है जब यूं है तो वोहभी किसीके आधेय माननी पडती है. हिरण्य गर्भ जिसको सूक्ष्मा (ईथर) कहेते हैं वोहभी सावयव, लचक-वाला, परिणामी है याने जिसमें लहरे उठती हैं, जिसके अनेक रूप होते हैं या उसकी गति और लहरोंकी सज्ञाके परिणाममें वोह अनेक रूपवाला जान पडता है. इसलिये

वोहभी किसीका आधेय होने योग्य है. मूलाधार नहीं माना जा सकता. अन्तमें सामान्यतोदृष्ट या परिशेषानुमानसे कोइ स्वयंभू मूलाधार मानना पडता है. जैसे मूल तत्त्वका अस्तित्व विना आधार स्वंभू है वैसे मूलाधार स्वयंभू (अनादिसे ऐसाही,स्वतः सिद्ध) होनेमे आत्माश्रय (अपना आप आधार होना) दोष नही मान सकने. किंतु आधेयकी अपेक्षासे आधारकी कल्पना है, इसलिये अपना आप आधार कहना नहीं बनता

परिछिन्न जगत आकाशमे है, ऐसे सूक्ष्म मूलाधारमे व्याप्य है. जो आकाशको आधार मान लेवें तो उसमें यह योग्यता नही जान पडती. उसमें केवल अवकाशकी याने गतिको अवसर मिल जानेकी योग्यता स्पष्ट होती है. परिछिन्न गतिमानको आधारकी अपेक्षा है. और देशके विना वोह नही रह सकता इन दोनों बातोंकी दृष्ट व्याप्ति है. स्टीमर पानीके आधार चलती है पक्षी वायुके आधार चलता है. दरीयामें जलके अंदर आदमी या जानवर चलता है वहा पानी आधार है और आकाश गति होनेका स्थान है. इसी प्रकार परमाणुसे लेके वडे सूर्यतक लगा लेना. इसलिये जैसे आकाश मोजूद है वैसे कोई सम, योग्य मूलाधारभी है उसके आश्रित सूक्ष्मा वगेरेको ग्रहोके आधार मान सकते है क्योकि वोह सक्रिय है. असम है. मूलाधार जैसा होना चाहिये वैसे नही है, इसलिये उनको पराधेयाधार कह सकेंगे ॥९०॥ ॥९१॥

(शङ्का) ईश्वरको अकाय मानने होतो वोह जगत कैसे रचता होगा? (उ.) स्वप्नमें इच्छा विना पूर्व संस्कारानुसार मन द्वारा सूक्ष्मा (शेषा) मे विचित्र जगत बनता है याने हाथ पैर शरीर विना होता है तो जो अकाय ईश्वरकी शक्ति द्वारा जगत रचना हो तो उममे क्या कहना है. ॥९२॥

इसलिये (पूर्वोक्त कारणात्) वही स्वयभु आधार चेतन जगतका कर्ता है क्योंकि जगतकी रचना सनियम देखते है जो ग्रह उपग्रहोंकी व्याप्तिकी चर्चा करे तो व्याप्तिकी प्रत्यक्ष परीक्षा न होनेसे संशयको अवसर मिलनेकी संभावना है; इसलिये किसी स्वतंत्र शोधक सारजन डाक्टर द्वारा शरीरगत् मगज, हृदय, गर्भस्थानादि यंत्र देखो, उनकी रचना किस प्रकारसे किस हेतुसे है और किस प्रकार सनियम कार्य करते है, ऐसी बनावटके विना वे काम नहीं हो सकते, इत्यादिको जाचनेसे कोई सर्वज्ञ व्यापक चतुर शक्ति इसकी प्रयोजक है यह मानाही पडेगा. (शं) अनादि प्रवाहसे ऐसे बीज है कि जो सत्रन्धसे अमुक प्रकारके परमाणु खेंचके वैसे रगरूपवाले फल फूल बीज बनाते है, ऐसेही शरीर वास्ते क्यो न मान लिया जाय? (उ.) बीज संयोगजन्य

प्रसिद्ध हैं. उनमें योग्य गति, दूसरे परमाणुका ग्रहण करण, और उसे अपने रूप करनेकी योग्यता याने उत्पत्ति वृद्धि करनेकी शक्ति है. ऐसे पदार्थ रसायणीय संयोगज स्वाभाविक नहीं माने जा सकते जैसेकि छोटोपलाझम* एमीवा प्राणि और वृक्षोंके बीज तथा वीर्यगत् जंतु उक्त योग्यतावाले देखते हैं उनमें किसी चतुरा शक्तिका हाथ होना चाहिये. जो ऐसा नहीं मानोगे तो अनेकांतत्वकी आपत्ति होती है. परंतु उनके और जगत्के कार्योंमें ऐसा नहीं है किंतु नियम पूर्वक एकांत देखते हैं. इसलिये कोई उनके मूलका कोई प्रयोजक है ऐसा मानाही पडता है - तथाहि उनके आद्य भेदका और अन्तीम भेदका कारण कोई बुद्धिवन्त शक्ति है, ऐसा माना पडता है. जो ऐसा न मानें तो दूसरी संतानमेंही इस्तविस्त हो जाय, परंतु ऐसा नहीं होता. जो स्वाभाविक होता तो भेद और अमुकसेही अमुक हो, अमुकसे अमुक संबंधमें ऐसा अमुक प्रसंगसे ऐसा ही हो, ऐसा नियम नहीं होता. किंतु अनेकान्त होता परंतु वैसा नहीं देखते. संयोग जन्यमें अनादि प्रवाहकी संभावना हो और है परंतु बुद्धिपूर्वक अनादि प्रवाह नहीं कह सकते. किंतु कार्य बुद्धि योजित स्पष्ट है. (शं) यदि ईश्वर है तो अपरोक्ष क्यों नहीं जान पडता? आजतक ईश्वर ईश्वर कहेते आते हैं परंतु देखा तो किसीने नहीं (उ.) जगत्मे अनेक वस्तु ऐसी हैं कि जिनका उपयोग हो रहा है और हैं परोक्ष. यथा पदार्थोंकी शक्ति—योग्यता. ऐसेही ईश्वर है याने मन इंद्रियका विषय नहीं, किंतु सामान्य तोदृष्ट अनुमान द्वारा माना जाता है. यद्यपि तत्त्ववेत्ता योगीको अकथ्य प्रकारसे ईश्वरका कुछ लक्ष-अनुभव होता है तथापि स्ववेद्य असाधारण व्याप्ति होनेसे यहां उदाहरण देना व्यर्थ है. (शं) जगत् बनानेमें क्या उसको दुःख नहीं होता होगा? जो हो तो सर्वज्ञ ईश्वर नहीं. दुःखप्रद काम ईश्वर नहीं करता. (उ.) सृष्टि रचनामें उसको कोई दुःख नहीं होता क्योंकि उसके ज्ञान बल क्रिया स्वाभाविक हैं उनद्वारा अनादि नियमानुसार सहेज कार्य होते है. जैसे स्वप्नद्रष्टा अभिमानीके संस्कारसे शेषमें सहेजसे स्वप्न सृष्टि हो जाती है. द्रष्टा साक्षीको किंचित दुःख वा सुख नहीं होता और न उसको कुछ अपेक्षा है ॥

वैसे वा उससे अन्य प्रकारसे ईश्वर द्वारा सृष्टि रची जाती हो तो उसमें क्या कहना है. (शं.) ईश्वरको क्या जरुरत के जो रचनाके प्रपंचमें पडे? (उ.) जैसे ब्रह्मांडमें अन्य पदार्थोंका उपयोग निष्फल नहीं, ऐसे ईश्वरका उपयोगभी निष्फल नहीं—याने उसकी योग्यता सफल होनी चाहिये. इसलिये क्यों बनाता है यह सवाल नहीं बनता

* तत्त्व दर्शनगत् विकासवादके अपवादमें इसका विस्तार किया है. ॥

किंतु जीवोंके कर्म और प्रकृतिकी योग्यता सफल होनेमें निमित्त हैं. यही उसकी स्वभाविक सफलता है. नहीं के उसकी इच्छा या कुछ स्वार्थ. इसके समाधानमें स्वप्न सृष्टिका दृष्टांत बस है.

(शं) ईश्वर जगतको कैसे बनाता और उसकी कैसे व्यवस्था करता होगा क्योंकि वोह तो एक है, जगत् असंख्य और विचित्र है. ईश्वरका हमेशे उपयोग होता है अथवा रचने बाद जगतमें उसका हाथ नहीं होता? (उ.) स्वप्नमें सृष्टि, दृष्टा (वा अभिमानी) रूप निमित्तसे कैसे बनती है और कैसे उसकी व्यवस्था होती है और अभिमानी या दृष्टाका हमेशे कितना और अमुक समय कितना वा कैसे और कैसा उपयोग होता है और स्वप्न कालमें ऐसा सवाल उठता है तब मनमें ज्ञात अज्ञात कैसा समाधान होता है. यह इस प्रसंगमें आपके सवालका स्थूल उत्तर है. वस्तुतः मनुष्य इस बातको नहीं जान सकता याने ईश्वरकी योग्यता उसके उपयोगका प्रकार मनुष्य नहीं पा सकता. (शं.) जगत् दुःखरूप और मलिन है इसलिये ईश्वर रचित नहीं मान सकते तथा ऐसी जगतमें ईश्वर नहीं रह सकता क्योंकि वोह पवित्र है. (उ.) जीवोंके कर्मफलानुसार दुःख होता है, यह न्याय है और वोहभी अच्छे वास्ते. यथा बालकको ताडनासे जो दुःख उसका फल सुख है. इसलिये वहां ईश्वरके होनेमें दोष नहीं आता दुर्गंधी सुगंधी, मलिनता स्वच्छता, यह अच्छा यह बुरा, यह सर्व बुद्धिके विकार हैं. सुवर श्वानादिको मल प्रिय, मनुष्यको अप्रिय सुगंधित हवन मनुष्यको इष्ट जहरी जानवरोंको अनिष्ट. शकर गर्धवको हानीकर, मनुष्यको लाभकारी. भंगी वा रह गरको असारके बजारमें प्रतिकूलता और कुंडीमें अनुकूलता भासती है, और राजकुमार को उससे विपरीत्. इत्यादि प्रकारसे मलिनतादि बुद्धिके विकार हैं और उसका अभ्यास है, वोह बुद्धि ऐसे सवाल आरोपती है. वस्तुतः मूलमे ऐसा नहीं है. इसलिये आपका सवाल व्यर्थ है ईश्वर आकाशवत् निर्लेप शुद्ध है. उसकी व्यापकतामें बुद्धिका आरोप बाधक नहीं हो सकता स्वप्नसृष्टि और दृष्टा चेतन पर ध्यान दीजिये. वहांके संभोग मलिनतादिको विचारिये. दृष्टाचेतन शुद्ध ही है.

(शं) मनुष्य अपने दर्शन वर्तन याने अपने खयालके अनुसार ईश्वरके लक्षण मानता है उसमें गलती होनेका संभव है. और इसी वास्ते यूं कह सकते हैं कि ईश्वर मान्ना आरोप मात्र है.

(उ.) अनीश्वरवादीभी दृश्य व्याप्तिको आधार मानके ईश्वर नहीं, ऐसा कहता है. कारणके उभयको अन्य साधन नहीं. अनीश्वरवादिको चाहिये के ऐसे विचित्र कार्यके

बीज बनाके देखा दे तो उसकी व्याप्तिका स्वीकार हो. और चेतनवादिको चाहिये की साधनद्वारा लक्ष्यका अनुभव करा दे तो उसकी व्याप्तिका स्वीकार हो. और अनुमान मात्रमें तो इतना कहा जा सकता है कि अपने खयालके अनुसार आरोप करनेमें गलतीकी संभावना है, परंतु सृष्टि नियमकी व्याप्तिसे जो माना जाय उसमें भूलकी संभावना नहीं. जेसे के उपर व्याप्ति दिखाई गई है. (शं.) ईश्वर पररहित विभु होनेसे गति करने योग्य नही तो क्रिया विना जगत्कर्ता केसे हो सकता है ? (उ.) अपनी दृष्टिमें जितना है उतना है, इसलिये उसमें गति हो तो दोष नहीं. विचारो—स्वप्न दृष्टा मात्र स्वप्न सृष्टिमें सर्वत्र अक्रिय है, तोभी स्वप्नसृष्टिका निमित्त कारण है. ऐसे ईश्वरभी मनुष्य नहीं जान सके ऐसी विचित्र शक्ति द्वारा अन्यथा कर्ता (याने मनुष्य देव—योगी के ध्यानमें न आवे ऐसी रीतिसे कर्ता) हो तो उसमें क्या आश्चर्य ? आकाश अक्रिय है तोभी गति अवकाशका निमित्त कारण है. ऐसे ईश्वरमेंभी अकल , प्रकार होगा. अतः शंका व्यर्थ है. ॥

(शं) यदि ईश्वर स्वतंत्र तो सृष्टिका उत्पत्ति पहले ज्ञान होना असंभव. यदि ज्ञान था तो परतंत्र ठेरी. १, वर्त्तमान दृश्यसे उत्तम सृष्टि हो सक्तीथी तो वेसी क्यों न की अर्थात् ईश्वर सर्व शक्तिमान नहीं २, देश उत्पत्ति पूर्व ईश्वर देश विना कैसे रहता होगा? ३. (उ.) जो जीव और उसके कर्म तथा प्रकृति (परमाणु देशकाल) को अनादि नहीं मानते अभाव जन्य मानते हैं उनके ईश्वर वास्ते यह शंका हो सकती है. प्रस्तुत ईश्वर संबधमें नही. क्योंकि अनादि जीवोके कर्मफलका भोग हो वेसी सृष्टि बनाइ है और पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर करता आ रहा है, करेगा. वोह स्वयंभू है. उसको देशकी अपेक्षा नहीं. स्वयंभू नहीं मानोगे तो देश वस्तुकोभी देशकी अपेक्षा होगी. ऐसे अनवस्था चलेगी. इसलिये ईश्वर स्वयंभू होनेसे उसे देशकी वा आधारकी अपेक्षा नहीं है. ॥

तकरारका बहुत गुंजायश है स्वतंत्र और तटस्थ विचारके विना निवेडा नहीं हो सकता. सारग्राहि दृष्टिसे और लाभ हानिकी दृष्टिसेभी विचार कर्तव्य है. ईश्वरके न माननेकी अपेक्षा उसके माननेसे जिंदगी और सोसाइटी पर कैसा उत्तम प्रभाव होता है. और उत्तम परिणाम निकलता है. उस व्यापक अंतरजामीके भयसे नीतिपर क्या असर पडता है और उसका परिणाम सुन्दर निकलता है या क्या; यह धर्म पोलिसमेन, राज्य और सोसाइटीके भयकी खटपट विना आडे रस्तेकी आड तथा सीधे मार्गका भोमिया हो जाता है. इसके सिवाय संतोष करनेका आधार न मिले वहा पूर्व कर्म और ईश्वर परहि सन्तोष आके

शांति–धैर्य और पुरुषार्थमेंही प्रवृत्ति हो जाती है. जीव शरीरसे भिन्न है, यह स्पष्ट व्याप्तिसे मानना पडता है. जब यूं है तो ईश्वरको व्यवस्थापक मानना ही पडेगा. ॥९३॥९४॥

ईश्वरमें—इच्छा—ज्ञान क्रिया होना चाहिये और सर्व शक्तिमान होने योग्य है, क्योंकि ऐसा न हो तो इतने बडे ब्रह्मांडका कर्ता धरता हर्ता नहीं हो सकता. संक्षेपमें १३ तेरवें सूत्रमें जो सर्वज्ञत्वादि विशेषण लिखे हैं वे ईश्वरमें सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि व्यवस्थापक है. इस प्रकार जिज्ञासु स्वयं विचार ले. ॥९५,९६॥

उपरोक्त आकर्षणादि आधार नहीं हो सकते, इसका विशेष बयान तत्त्वदर्शन अध्याय २ आधाराधिकरणके विवेचनमें है. और ईश्वर जगत्को कैसे रचता होगा? इत्यादि अनेक प्रकारके सवालोंका जवाब तत्त्वदर्शनके अध्याय ४ में स्वप्न प्रसंगके अंतमें लिखा है वहां विवेचन देखो; किंवा भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धगत प्रकृति विवेकका अंतिम प्रसंग देखो. ॥ (९० से ९६ तक) ॥ अब आगे जीवकी निरीक्षा करते हैं:—

जीव शरीरसे भिन्न ॥९७॥ उसका दृष्टा होनेसे ॥९८॥ ग्यारेके कार्य एकमें ग्रहण होनेसे ॥९९॥ और रागादि व्यावर्त्तक होनेसे ॥१००॥ आवागमनकी सिद्धि शरीर भिन्न होनेसे ॥१०१॥ अकारण संबंध असंबंध न होनेसे ॥१०२॥ कर्म जन्य अदृष्ट संस्कार फलके हेतु ॥१०३॥ अन्यथा असिद्धिसे ॥१०४॥ सादि नहीं कर्ता भोक्ता होनेसे ॥१०५॥ अन्यथा अव्यवस्था ॥१०६॥ उपादानवत् होनेसे ॥१०७॥ विभुभी नहीं कर्ता भोक्ता होनेसे ॥१०८॥ न परिणामी अमर होनेसे ॥१०९॥ ईशांशादि रुप नहीं भोक्ता होनेसे ॥११०॥

जीव, स्थूल सूक्ष्म शरीरसे जुदा पदार्थ है ॥ अर्थात् शरीर किंवा उसका अवयव याने मगज ब्रेमेटर आदि रूप नहीं है* ॥९७॥ क्योंकि शरीरका दृष्टा है ॥ और दृष्टा दृश्यसे भिन्न होता है, यह प्रत्यक्ष व्याप्ति है ॥९८॥ औरभी कर्म इंद्रिय ५, ज्ञान इंद्रिय ५, तथा मन इन ग्यारेके कार्य उनसे इतर किसी एकमें ग्रहण होते हैं, परस्परमें ग्रहण नहीं होते, इसलिये वोह ग्रहण कर्ता इनसे जुदा होने योग्य है ॥९९॥ अर्थात् जीव स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर (इंद्रिय १० मन, सूक्ष्म स्थूल प्राण) से जुदा है

---

*मगजको चीरके देखने पर उसमें स्मृति जनक नकशा (फोटो) नहीं जान पडते. और यदि हों तो अर्बुदों तक मोबत पहोंचे इतना देश सामग्री वहां नहीं है. ब्रे मेटरके विभाग होते हैं. ज्ञानके विभाग नहीं होते. अतः जीव ब्रेमेटर नहीं है.

इन्द्रियवादि (नरवससिस्टम–ज्ञानतंतु–कर्मतंतु–ग्रेमेटर–स्मृति स्थानादि तमाम) अप विषयोंके भेदको, एक इंद्रिय दूसरेसे जुदा है इस भेदको और इम्प्रेशन अपने नान फारमवाले रूपके भेदको नहीं बताते परंतु इनसे इतर कोइ इन भेदोंको जानता है. तथ मन इंद्रिय और प्राणोंको रोकता और प्रेरता है. सो जीवात्मा है. तथा जो विषय प्रथ देखा उसे प्रथम ही दूसरीवार जो जितना विषय हुवा उसे उतनाही उत्तरमें बयान किय जाय वा आगे पीछे वा न्यूनाधिक कर लिया जाय वा कहा जाय, वा अनुमान, निषेध योजन, वर्गीकरण इत्यादि कार्य मगज, इंद्रिय वा मन नहीं कर सकते हैं और न ऐस करना बताते हैं. परंतु इनसे इतर कोई ऐसी वस्तु है कि जो क्रम बदलके न्यूनाधिक करके कहे वा उपयोगमें ले, सोही जीव है. इसलिये जीव उभय शरीरसे जुदा वस्तु है अंधा, बहेरा, शून्य, गूंगा, लंगडा, लूला, वा नपुंसक होनेपर अर्थात् इंद्रिय वा अंग क्षीण होनेपर जीवका नाश नहीं होता इसलियेभी इंद्रियादिसे जुदा है. (विशेष प्रथक् करण वास्ते भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमें पुरुष विवेक ख्याति प्रकरण देखे) ॥९९॥ जीवमें राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान (बुद्धि) और संस्कार (इम्प्रेशन, इफेक्ट, स्मृति हेतुक आधाकारता) होते हैं. यह तमाम लिंग किसी दूसरे प्राकृत (प्रकृति वा मेटरजन्य) पदार्थमें (किंवा ईश्वरमें) नहीं हैं, इसलिये जीव प्राकृतक (प्रकृति वा शरीर जन्य) नहीं है (किंवा ईश्वर रूप नहीं है) किंतु उससे जुदा है ॥१००॥ जीवका एक शरीर वा योनीमें दूसरे शरीर वा योनीमें आना जाना–संयोग वियोग होता है. या यूं कहो कि जीव पुनर्जन्मको पाता है. इस विषयकी सिद्धि है. क्योंकि शरीरसे जुदा है (उपर कहा है). ॥१०१॥ जबके जीव शरीरसे भिन्न वस्तु है तो किसी पूर्वोक्त कारणके विना शरीरका संबंध वा असंबंध नहीं हो सकता और सबंध असंबंध तो वर्तमान शरीरमें देखते है अतः पुनर्जन्म सिद्ध होता है ॥१०२॥ वोह कारण क्या होगा? पूर्व कर्मजन्य अदृष्ट संस्कार है अर्थात् इस संबंध (असबंध) रूप फलका हेतु है ॥१०३॥ पूर्वमें जैसे कर्म किये वैसे फल भोगे और जिसका फल भोगना बाकी है उनका नाम अदृष्ट संस्कार है–याने तिस अनुसार वा तदनुकूल प्रवृत्तिके अदृष्ट अभ्यासका नाम अदृष्ट संस्कार है वोह वर्तमान शरीर सबंधका हेतु है. ॥१०३॥ इससे अन्य निमित्त सिद्ध नहीं होता ॥१०४॥ अपने आप कोइ बंधन नहीं चाहता इसलिये जीवने अपनी इच्छासे शरीरका बंधन लिया हो, ऐसा नहीं मान सकते. और इश्वरने अनुत्पन्न जीवोंको वा उत्पन्न कर्के यथेच्छा बधन दिया, ऐसा माने तो अन्याय है–ईश्वरमें विषमता दोष आता है. विना कारण एक अंधा, एक आंखवाला, एक रोगी,

एक सुखी, एक पुरुष रूपमें, एक स्त्री रूपमें, एक श्वान शरीरमें, एक पक्षी शरीरमें, एक मनुष्य शरीरमें, एक गर्म मुलकमें, एक सर्द मुलकमें, जन्मे इत्यादि अन्याय करना ईश्वरका कार्य नहीं, इसलिये ईश्वरेच्छा मात्रभी निमित्त नहीं मान सकते. प्रकृति जड है, जीवकी भोग्य है, इसलिये वोह बलात्कारसे जीवको बांधे, ऐसा नहीं मान सकते. अतः प्रकृति, स्वतंत्र बंध (संबंध) का हेतु नहीं. परिशेषसे अदृष्टको ही मुख्य कारण मानना पडता है अर्थात् उन अदृष्ट भोगार्थ ईश्वर, जीवको प्रकृति (शरीर-योनी) का संबंध कराता है, ऐसा सिद्ध होता है. वर्त्तमान जन्म प्रसिद्ध है इसलिये वर्त्तमान शरीरसे असंबंध याने उससे पूर्व और उत्तर जन्मकीभी सिद्धि हो गई. इसीका नाम पुनर्जन्म वा आवागमन है सो अनादिसे प्रवाहरूपमें चला आता है. इसका कोई आदिकाल नहीं है अर्थात् क्रियमाणोंके प्रवाहसे संचित प्रारब्ध कर्मोंका प्रवाह है.-याने जीवका स्वभाव कर्म करनेका है, इसलिये भोगार्थ जन्मकी प्राप्तिका प्रवाह है (शं.) पूर्व जन्मकी कोईभी बात याद नहीं पडती. और जब यूं है तो जिन कर्मकी शिक्षामें बन्ध हुवा उसका याद न रहना अन्याय है वा पुनर्जन्म होना व्यर्थ है. (उ.) जीवका भूल जानाभी स्वभाव है १ इसी उमरकी किंतु वर्त्तमान कालमें प्रथम तथा उच्चारण किया इतनाभी याद नही रहेता २ स्वप्नभी तमाम याद नहीं होता. तो पुनजन्ममें तो शरीरका बदल हो जाता है बडा भारी फेरफार होता है; इसलिये पूर्वकी तमाम स्मृति नहीं हो सकती. हा, जिसने योगाभ्यास वा तेजस् प्रयोग किया हो वोह थोडा बहुत जान सकता है और उसकी सिद्धि वा साक्षीके चिन्हभी मिल सकते हैं. ऐसी व्याप्ति देखते हैं. न याद रहेनेमें एक भेदभी है-याने याद रहता तो उसकी जिंदगी ही निरस होजाती. पूर्वके विचित्र (माता,स्त्री, पति, पशु पक्षी, आदि)के संस्कारोंसे विस्मयमें रहके शोकातुर रहेता. अतः न याद रहनेमें भेद है. याद न रहना अन्याय इसलिये नहीं है कि ईश्वर सृष्टि (सृष्टि नियम) का कानून सामने है. उसके विरुद्ध वर्तनसे दुःख होता है, और अनुकूल वर्तनसे सुख होता है, ऐसे दूसरोंके भोग देखते हैं, इसलिये पूर्व शिक्षाके स्मरणकी जरुरत नहीं है. हमारे पेटमें पीड है, हमको नहीं मालूम क्यों है. कभी पूर्वमें गरिष्ट भोजन किया उसके शेषसे किंवा नवीन क्रमी पेदा हुवा उससे किंवा वायु रुकी उससे किंवा अन्य कारणसे है, यह हम नही जानते. इतना मानते हैं कि किसी कुपथ्य वा सृष्टि नियम विरुद्ध वर्तनसे हुवा है. परंतु वैद्य जानता है और दवाई देता है उससे आराम होता है. हमको दवाइका भी भेद ज्ञात नहीं है, वैद्य जानता है.. वैद्य कह देता है कि गरिष्ट नहीं खाना इत्यादि नियमसे वर्तना. परंतु पुनः वैसा न

होनेमे अन्य पीडा होती है. इसी प्रकार कर्म और उसका फल क्या? यह ईश्वरको ही ज्ञात है, उसके कानून हम नहीं जान सक्ते परतु दुःख सुखादिके कारणका उपदेश कानून कुदरत कर रहा है. इसलिये हम जवाबदार है. सारांश पुनर्जन्मका याद न रहना अन्याय नहीं है. जो अन्याय होता तो बालक नहीं मरने, पश्वादिकोभी सर्व ज्ञान होता. परतु ऐसा नही देखते इसलिये दोष नही आता गर्भका किसीकोभी ज्ञान नही होता तो क्या जीव गर्भमें नहीं था ऐसा मान ले? (तद्वत् २ वर्ष तक के बालकपनका ज्ञान नहीं होता अथवा भूल जाता है तो मैं बालक नहीं था ऐसा मान ले? कभी नही.) जन्मे हुये बालकके मुखमें अंगली दी जाय तो होठ बध करके रोता है. स्तन या दूध दिया जाय तो होठ हलाके पीता है जगलमे व्याही हुई गायका वत्स स्वय उठके इधर उधर होता हुवा स्तनके लगके दूध पीने लगता है उसकी माता स्तन को उसकी तरफ करनेको कोशिश करती है, पक्षी अपने बालकको चुगा लाके देते है, मुरगी अंडोको सेवती है, कोयल अपने पर गदे जानके अपने अंडे कागडीके अंडे उठाके उनके बदले रख आती है, कागडी उसे सेवके फोडती है, जब बच्चे चलने लग जाते है तो कोयल उनको अपनी साथ ले आती है. चिटियाके बालक मनुष्यको देखके नहीं डरने, सांपको देखके साप उठते है 'सब मनुष्य, पशु, पक्षी अहार, निद्रा, भय और मैथुन स्वयं करते है उनको कोइ नहीं सिखाता.' मधुमाखीको प्रबंध (राणी रक्षक-भक्षक-मधुकर्ता इत्यादि प्रबंध) करना कोन सिखाता है? कीडीओको कतार करना, मुरदे गाडना, अनीती-यरी, दूतपना इत्यादि कोन सीखाता है? कहा तक लिखे सैंकडो दृष्टान्त-उदाहरण ऐसे मिलते है कि जीवोको सामान्य और कितनाक विशेष ज्ञान दूसरेके सिखाये बिना देखते है. वोह पूर्व पूर्वके अनेक जन्मोके सस्कारोको सिद्ध करता है. एक वीर्य, खुराक और मोहबतको मिलाने तोभी एक बापके दो जोडीले सतान उनके क्रियमाण, प्रकृति और ज्ञानमें अंतर होता है. एक गणितमे चलता है दूसरा नही, एक इतिहासमे चलता है दूसरा नहीं एक थोडा बतानेमे ज्यादे समझता है और स्वय उत्पादन कर लेता है, दूसरेमे ऐसी योग्यता नहीं. कभी अल्पश्रमसे वडा कार्य हो जाता है, कभी अतिश्रम क्रियेसी इष्ट सिद्ध नहीं होता दु:खको कोइ नही चाहता. परतु अनिच्छित कारण योग वा अकस्मात् प्राप्त होता है. यह सब पूर्वजन्मके अदृष्ट सस्कारोको सिद्ध करते है (श) जब पूर्व जन्मका फल तो दवाइ वगैरेका प्रयत्न क्यो? (उ) कर्म प्रसगमे इसका उत्तर आ चुका है याने प्रारब्ध, क्रियमाण, सचित तीन प्रकारके कर्म है. नहीं के पूर्वजन्मके प्रारब्ध ही अत. शका नहीं.

संबंधसे रागादि, रागादिसे क्रियमाण, क्रियमाणसे संचित प्रारब्ध कर्म, प्रारब्धसे शरीर संबंध, उससे पुनः रागादि क्रियमाणादि इसप्रकार पूर्व पूर्वसे उत्तरोत्तर प्रवाह चला आता है. अनेक जन्मोंमें अमुकाभ्यास हो के उसका उपयोग होता है, जिसे सामान्य ज्ञान विशेष ज्ञान संज्ञा देते हैं. दरमियानमें अभ्यास भूलना वा नवीन होना इत्यादि रूपभी होता है. इसी वास्ते कर्मकी गहन गति है. (पुनर्जन्मकी सिद्धि वास्ते "तजासुख" नामका प्रसिद्ध ग्रंथ देखो. पादरी, मोलवी, ब्रह्मसमाजी और आर्य समाजीयोंमें इस विषयमें शास्त्रार्थ हुये हैं वे और अनेक प्रजाने पुनर्जन्म माना है सो इत्यादि विषय सविस्तार लिखा है.(कु. आ. मु. ग्रंथ पृ. ३१ से १४२ तक देखो.)

पुनर्जन्म संबंधमें अनेक शंका और उनके समाधानभी अनेक हैं यथा-मरने पीछे मूर्छित वा सचेत, वहांसे अन्तरक्ष, सूर्यकिरण, चंद्रकिरण वा स्वर्ग नरक वा तुरत जन्म मिलता है वा क्या? जन्म कैसे मिलता है? मैथुनी वा अमैथुनी रज वीर्यमें कैसे आता है? भूत प्रेत होता है वा नहीं? जो होता है तो उसका व्यवहार व्यापार कैसे? स्त्री जीव स्त्री-पुरुष जीव पुरुष ही होता है वा बदलते हैं? वनस्पतिमें जन्म होता है वा नहीं? पशु पक्षीमें जन्म होता है वा नहीं? पशुआदिसे मनुष्य और मनुष्यसे पश्वादिक योनीको प्राप्त होता है वा नहीं? वर्त्तमानमें जो खून चोरी की जाती है वोह पूर्व कर्मका बदला वा नवीन क्रियमाण है, वा विकास-क्रमानुसार तालीम है. सिंह मांसाहारी गोभक्षण करता है, तहां गोसिंहके पूर्व कर्मका फल वा नवीन कर्म, पशुपक्षी भोग्य योनी वा कर्म योनी? मरने पीछे उसके नामसे कुछ किया जाय तो उसका फल उसको मिले वा नहीं? मुरदेकी कमाई द्वारा जो बुरा भला किया जाय तो उसका फल उसको मिलता है वा नहीं, मरने समय शरीरसे जाता हुवा और वीर्यमें प्रवेश समय क्यों नही जान पडता? इन सबके विस्तारका यहां प्रसंग नहीं. यहां तो केवल पुनर्जन्म है इतना ही बतानेका प्रसंग है. (विशेष भ्रम नाशक पूर्वार्द्धमें है.) पुनर्जन्म न माननेसे माननेमें लाभ है. पुरुषार्थका प्रेरक है. कमजोरी दूर करके इष्ट प्राप्तिकी आशा रहने ओर समय मिलनेसे कर्म करने और उन्नति होनेका अवसर मिलता है. अपुनर्जन्मवादकी तरह निराशाके दम भग्ने नहीं पडते. पूर्व ईश्वर प्रसंगमें कहे समान धर्मका पोलिसमेन है जिसके सबबसे उत्तम परिणाम निकलता है (ईश्वर प्रसंग याद करो) इसलियेभी स्वीकारने योग्य है संक्षेपसे न माननेसे जितना लाभ माने उससे ज्यादे माननेमें लाभ है और माननेसे जितना नुकसान माने उससे ज्यादा हानी न माननेमें है. क्योंकि पुरुषार्थसेही पूर्व संचित (पुनर्जन्म) होते हैं अन्यथा नहीं.

पूर्वके प्रारब्ध संचित अज्ञात होनेसे पुरुषार्थ (क्रियमाण) परही आधार रखना पडता है.

इस प्रकार सृष्टिनियम, युक्ति, परीक्षासे और लोक सोसायटीकी लाभ हानीकी दृष्टिसे पुनर्जन्म सिद्ध है. विशेष देखना हो तो भ्रमनाशकका पूर्वार्द्ध देखो. तत्त्वदर्शन के चिदचिद विवेकके विवेचनमें कुछ लिखा है. छांदोग्य बृहदारंण्यकोपनिषदमें देवयान पितृयान मार्ग प्रसंग वांचो. मानसिक योगका उत्तरार्द्ध अवलोकन करो. ॥१०४॥

जीव नवीन उत्पन्न होता हो, ऐसा नहीं है क्योंकि कर्मका कर्ता और भोक्ता देखते है जो परका कार्य होता तो स्वतंत्र कर्ता न होनेसे दुःखादिका भोक्ता न हो सकता क्योंकि परतंत्र था परंतु स्वतंत्र कर्ता और भोक्ता देखने हैं अतः सादि नहीं मान सकते ॥१०५॥ जो उत्पत्तिवाला माने तो अव्यवस्था होती है ॥१०६॥ क्योंकि उत्पन्न वस्तु अपने उपादान जैसी होने योग्य है ॥१०७॥ अर्थात् उसका मूल उपादान ईश्वर अथवा प्रकृति है. ऐसा मानना पडेगा. परंतु शुद्ध होनेसे ईश्वरमें रागद्वेष दुःखादि नहीं है और जीवमें हैं अतः ईश्वर उपादान नहीं और प्रकृतिमें जड होनेसे उसमें रागादि सिद्ध नहीं होने और न देखनेमें आने हैं. इसलिये वोहभी उपादान नहीं. और जो अभावमें भावरूप होना मानें तो व्याप्ति नहीं मिलती और अभावसे भावरूप मानना स्पष्ट असंभव दोष है ॥ इस प्रकार उपादानवत् होनेसे जीवका उपादान ईश्वर प्रकृति वा अभाव नहीं है ॥ परिशेषसे जीव अनादि है सादि नहीं है (शं.) जबके जीव अनादि है तो ईश्वरवत् स्वतंत्र होना चाहिये पुनर्जन्मादिमें स्वतंत्र क्यों नहीं (उ.) जैसे प्रकृति जड होनेसे परतंत्र है वैसे जीव अल्पज्ञ, विषयी, परिच्छिन्न, परहानी करने वाला होनेसे परतंत्र है. अनेक स्वतंत्र नहीं हो सकते. किंतु निस्पृही, शक्तिमान समदर्शी एकही स्वतंत्र होने योग्य है. नहीं तो परस्परमें झगडे ही हों और जीव सादि न होनेसे प्रतिबिंब वा आभास रूप वा भ्रम रूपभी नहीं मान सकते क्योंकि प्रतिबिंबादि सादि सांत हैं. ॥१०७॥ तथा जीव विभु परिमाण नहीं है. जो विभु होता तो एकरस होनेसे उसमें गति रागद्वेष कर्तापना भोक्तापना याने दुःख सुख न होते, परंतु जीवमें वे हैं. इसलिये जीव विभुरूप नहीं (वा विभु याने ईश्वररूप नहीं है) ॥१०८॥ जीव परिणामी (अर्थात् गले, सडे, बटबीज, दीपकजन्य दीपक समान वा जल बरफ वा दूध दही वा ओक्षजन हाईड्रोजन मिश्रित जल समान सजातीय मध्यम या विजातीय मध्यम परिणाम रूप) नहीं है क्योंकि अविनाशी है जो वस्तु परिणामी (रूपान्तर होनेवाली- फारम बदलनेवाली) होती है वोह जन्य मध्यम विनाशी

होती है. ॥१०९॥ परिशेषपने जीव अणु परिमाणवाला है. (शं.) जो अणु है तो शरीरमें एक जगे होनेसे तमाम शरीरका ज्ञान नहीं कर सकेगा. तमाम शरीरमें चेतनता नही होनी चाहिये परंतु इससे विरुद्ध देखते हैं. (उ.) दीपकके प्रकाश समान उसकी सत्ता शरीर व्यापक है. और मध्यम मन संयुक्त ज्ञानतंतु द्वारा उसे ज्ञान होता है १, किंवा रसायणीय संजोगजन्य होनेसे हड्डी, गरमी, विजली इत्यादि तत्त्वोंद्वारा शरीरकी स्थिति है और उसका डायीवर याने जीव तमाम शरीरमें दोरा करता रहेता है. परंतु मन संयुक्त ज्ञानतंतुद्वारा उसे ज्ञान होता है ऐसीभी किसी दूसरेकी मान्यता है २, उभय पक्षमें शरीर रथ है. जीव सार्थी है. रथवान मन है. वाग (रस्सी) ब्रह्मरंध्रमें जो गोली है (जहां तमाम ज्ञानतंतु कर्मतंतु सामिल होते हैं. याने सबका केंद्र है, जिसे फिजीकल सायंस ग्रेमेटर नाम देती है और उस पर हुकम चलानेवाला कोन है, उस पर अभीतक नहीं पहोंची है) वोह है और अश्व इंद्रियें (ज्ञानतंतु-कर्मतंतु, ज्ञानेंद्रिय, कर्मेंद्रिय) हैं जीवकी इच्छानुसार (जीवके स्फुरणकी) मनद्वारा गोली पर असर होती है उस गोलीद्वारा इंद्रियोंसे काम होता है. जब शरीरेंद्रियके विषयका संबंध होता है तब गोली पर असर होती है, उस द्वारा तुरत मन पर असर होती है, मन आत्माके समक्ष कर देता है, उसमें भोग होता है और पुनः जीवकी इच्छा संस्कारानुसार होती है. इस प्रकारसे व्यवहार चलता है. जीवकी मुख्य राजधानीका स्थान ब्रह्मरंध्र है. इसलिये उसके प्रधान मनकाभी विशेषतः वही स्थान है.. तथापि शरीररूपी जिल्लेके तमाम थाना तहसील (सेंटर अवयव) में फिरता रहता है चक्षु हृदयमें ज्यादा दोरा रहता है. प्रधान कहींभी हो. सर्व तंतु (इंद्रियादि) संबंधी तार पेटीरूप गोली द्वारा उस पास विषयोंकी खबर (असर) पहोंचती है और वहां ही तुरत आ जाता है (खिंच जाता है). उस पीछे पूर्वोक्त रीतिसे भोग होता है. मन किसी स्थानमेंभी हो, जीव जब इक्षणा करता है तब उसके पास हाजीर हो जाता है. और उसकी प्रेरणानुसार पूर्व कहे अनुसार गोलीद्वारा उपयोग होता है. मनेंद्रिय समान ब्रह्मरंध्रस्थित गोली ग्रेमेटर-दिमाग तदगत् अनेक सेंटरभी साधन हैं. जेसे मुखमें खानेसे चक्षुकी दवाई लोहीद्वारा चक्षुमें स्वाभाविक रचनावशं पहोंच जाती है, जेसे प्रसंग पर अनेच्छित यथायोग्य अभ्यासित शब्द बुला जाते हैं, जेसे दूसरे सुनें, ऐसे अभ्यासवश वाणी पाठ कर रही है और मन संकल्पमें है, जेसे शरीर चलता और मन संकल्पमें है, जेसे कलोराफार्म सुंघने पीछे अनेच्छित अज्ञात स्वाभावतः वाणीसे भाषण होता है, जेसे बालक अनुवृत्तिमें अज्ञात सब कार्य करते हैं, और स्वप्नमें स्थूल शरीरसे

दुसरा सुने ऐसे अनेच्छित और अज्ञात बोला जाता है इसीप्रकार मन वा गोली नहीं जानते के कानमे तंतु हलानेमे तंतु चलेगा, और कार्य हुवा तोभी तंतु हलाते है तब कार्य होता है. ऐसी उनकी योग्यता अभ्यास और शरीर रचना है कि जिसमें सनियम या अन्यथा अज्ञातभी अभ्यासित स्वाभाविक काम होते हैं. इसी प्रकार संस्कारी मनभी जीवको इक्षणा (इच्छा) होनेपर उपर कही रीति अनुसार जीव पास हाजीर हो जाता है अर्थात् उपर कही रीति अनुसार मन (प्रधान) उधर खिंच जाता है—आता है. मनको ज्ञान होता है तब हाजिर होता है, ऐसा नहीं है. किंतु उक्त रचना और तंतुके संबंध-वश खिंच आता है ऐसा जानना चाहिये (विशेष आगे).

द्रष्टा दृश्यसे भिन्न है, ऐसा उपरचोटी अर्थात् साधारण दृष्टिमे जान पडता है. वस्तुतः ऐसा नहीं है. ऐसा जो मानते है वे ठीक स्टेज पर नही हैं. जब सूक्ष्म सृष्टिकी परीक्षा पर उतरेंगे, वहांभी यही नियम देखेंगे (अनुभवेंगे). हां स्वतः प्रमाणवादमें द्रष्टा दर्शनका भेद नहीं माना गया है. क्योंकि वोह प्रमाणका प्रमाण नहीं मानता. तथापि जब द्रष्टा दृश्यके विवेकका व्यवहार वा उच्चार होगा वहां द्रष्टा दृश्यका भेदही आ खडा होता है. उस बिना द्रष्टत्व दृश्यत्वभावकी सिद्धि ही नहीं हो सकती. ॥ द्रष्टा दृश्यत्व भाव मगज (ब्रेमेटर) का इम्प्रेशन है, ऐसा मानें तोभी व्यवस्था नहीं होती, कारण के हस्तग्रहित दृश्य शरीरसे बाह्य है उसका उपयोग हो रहा है, उसको मगजका इम्प्रेशन नहीं मान सकते. और द्रष्टत्वभी मगजका इम्प्रेशन नहीं इसका भाव जीव शरीरसे भिन्न इस प्रसंगमें अभी उपर जनाया है. इस प्रकार द्रष्टा दृश्य परस्परमें भिन्न होनेसे द्रष्टा जीव, दृश्य शरीरसे भिन्न ही है एसा सिद्ध होता है. ॥९७से १०९ तक॥ जो जीवको ईश्वरका अंश (जल-बिंदु, गलो भाग, वा महाकाशके घटाकाशवत् अंश) अथवा धूमाकाश विशिष्ट (धूमावृतांश) किंवा ईश्वरका ज्ञान, वा हुकुम वा स्फुरण वा धर्म वा उसका गुण वा उसकी शक्ति वा उसका स्वभाव वा उसका श्वास वा जल बरफवत्—कनक कुंडलवत् ईश्वरका परिणाम मानें तो नहीं बनता क्योंकि दुःख—बंधका भोक्ता है. परंतु ईश्वरके अंशादि शुद्ध पवित्र होनेसे दुःखके भोक्ता और रागादि लिंगवाले नही हो सकते तथा अंशादि माननेमें ईश्वर सावयव, विकारी, रागादिवाला ठेरता है परंतु वोह तो निर्विकारी निरवयव है इसलिये जीव यह ईश्वरांशादि रूपभी नहीं है ॥११०॥

व्यवहार और सारग्राही दृष्टिमे जडवादि, देहात्मवादिको और उन जीववादियों को जो जीवको अनादि अणु चेतन नही मानते, इशारा करना पडता है कि जीवको शरीरसे भिन्न, अजन्मा, अणु परिमाण और कर्ता भोक्ता माननेसे जितने विशेष लाभ हैं

उनमे, ज्यादा हानी आप माहेवान के पक्षमें है. जीव ईश्वरका भेद होनेसे और जीव अनादि तत्त्व होनेसे जबावदार है अतः सदधर्मका अनुयायी रहेगा यथा कर्म फल भोगता आया है, ऐसी भावना रहनेसे उपर ईश्वर और पुनर्जन्म माननेमें जो लाभ दीखाये हैं, वे लाभ हैं. हानी नहीं है. कर्म उपासना और सदधर्म शास्त्रोंकी सफलता होती है. पुरुषार्थकी वृद्धि रहती है. नीति मर्यादा सत्कर्मकी स्थापना रहनेसे सबको सुख मिलता है. इसलियेभी उक्त जीव मंतव्य स्वीकारनीय है. ॥११०॥

अब आगे प्रकृतिकी निरिक्षा करेंगे. प्रकृति अर्थात् प्रकृष्ट गतिवाली वस्तु १. स्वभाव २. क्रिया और जिसकी गति इन दोनोंका ज्ञान इनका समूह ३. तत्त्वोंका समूह ४. वक्ष्यमाणमें यह अर्थ है कि जिस समूहमेंसे यह कार्यरूप सृष्टि बनी उस मूल उपादान (मेटर-माद्दा-शक्ति) का नाम प्रकृति है. ऐसा ज्ञातव्य है. यद्यपि देशकाल उपादान नहीं है. तथापि जड होनेसे प्रकृतिके अंतरगत् माने जाते हैं.

उनसे इतर प्रकृति ॥१११॥ उसकी योगतासे उसकी सिद्धि ॥११२॥ शक्ति गुण स्वभाव और गतिभाव योग्यता ॥११३॥ संयोग वियोग, रचना और कार्य परम्परके पर्याय ॥११४॥ अवस्था परिणाम और स्थितिभी ॥११५॥ कार्यमें कारणकी ही योग्यता ॥११६॥

उपरोक्त ईश्वर जीव चेतनसे इतर तीसरा पदार्थ जड प्रकृति (देशकाल सहित ब्रह्मांड समूह) है ॥१११॥ उसकी सिद्धि उसकी योग्यतासे होती है. ॥११२॥ अर्थात् उसका मूल स्वरूप उसके कार्य मन बुद्धि इन्द्रियका विषय नहीं है तथापि उसकी योग्यता और उसके स्थूल स्वरूपसे उसकी सिद्धि हो जाती है जेसेके दृश्य है ॥११२॥ पदार्थकी शक्ति, गुण, स्वभाव और गतिमें आना—इनका नाम योग्यता है ॥११३॥ यथा अग्निमें दाह (सयोगके विभाग वा पसार) करनेकी योग्यता (शक्ति) अग्निमें तेज (रूप) की योग्यता (गुण) अग्निमें उपर जानेकी योग्यता (स्वभाव) अग्निमें स्पर्शास्पर्शकी (याने गतिमें आनेकी) योग्यता है. ॥११३॥ मूल तत्त्वोंका सयोग वियोग कहो वा तत्त्वोंकी रचना कहो वा कार्य कहो (वा उपादेय कहो वा अवयवी कहो या अंगी कहो) एक ही आशय है. इसलिये सयोग विभागादि पद एक दूसरेके पर्याय हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥११४॥ कितनेक दर्शनकारोंकी इस विषयमें तकरार है. यथा उपादानसे उपादेय, अवयवसे अवयवी भिन्न नवीन है. ओक्षजन हाईड्रोजनके मिश्रणसे जो जल बना वोह उनसे इतर प्रकारवाला नवीन है. मृत पिंडसे घट नवीन है.* इत्यादि विवाद पांडित्य मात्र है.

*जो अवयवी सज्ञाको अवयवसे अभिन्न माने तो नाना अवयवी ठहरेंगे. और भिन्न मानो तो उपादानाभावसे असिद्धि है अवयवोका संबधी वहा नहीं है. अत. रचना मात्रका नाम है.

(न्याय भाष्य देखो) उसमें सार नहीं है: क्योंकि उपादानसे इतर अभावजन्य नवीन कुछभी नहीं होता. जो फॉरम बदला हुवा या नवीन योग्यता मालूम होती है वोह उपादानमें है. रचनाके फेरसे अन्यथा जान पडती है. उपादानके गुण सत्तासे इतर गुण सत्ता नहीं होते. तिरोभित उद्भव होनेसे अन्यथा जान पडता है. यथा परमाणु. मृत पिंडमें पानी रोकनेकी योग्यता और गोलाकारता नहीं. परंतु घटमें है. और अवयव रूपसे विषय व्यवहार नहीं होता किंतु एक अवयवी रूपसे होता है सो मूलकी रचना का फारमका भेद है. घट नवीन नहीं. पानीमें शीत स्वाद नवीन नहीं, किंतु ओक्षजन हाईड्रोजनके संबंधसे योग्यताका तिरोभाव उद्भवभाव और अन्य संसर्ग है, नवीन नहीं. ऐसेही अन्य स्थलमें घटित योज लेना चाहिये. ॥११४॥ तत्त्वजन्य पदार्थोंकी अवस्था वा उनका परिणाम वा उनकी स्थिति कहो (वा फारम बदलना—रूपान्तर होना कहो) एकही बात है. परस्परके पर्याय हैं.॥ कनकका कुंडल, जलका बरफ और दूधका दही होना, कनक जल और दूधकी अवस्था कहो, परिणाम कहो वा स्थिति कहो एकही बात है. क्योंकि अवस्थावानसे अवस्था, परिणामीसे परिणाम और स्थितिवानसे स्थिति भिन्न वस्तु नहीं होती. ॥११४॥ † ११४ सूत्रमें जो संयोगादिक है वे मूलतत्त्व और कार्य पदार्थोंमें भी कहे जा सकते हैं. और अवस्थान्तर होना, परिणाम पाना, स्थिति बदलना यह कार्य तत्त्व (कंपौंड)में ही कहे जाते हैं. मूलतत्त्व वास्ते नहीं. इतना अंतर है. एक परमाणु एक देशसे दूसरे देशमें हुवा ऐसे प्रसंगमें स्थिति बदलना कहोगे परंतु यह व्यवहारमें उपचार मात्र है क्योंकि उसकी स्थितिमें फेरफार दूसरेके संयोग विना नहीं होता. दूसरेके संयोगसे उसकी योग्यताका उद्भव तिरोभाव वा उपयोग होने पर स्थिति बदलना माना जाता है. ॥११४, ११५॥

कार्यमें जो योग्यता (शक्ति वगेरे) होती हैं, वे उसके कारणसे इतर नहीं होती. यह नियम है. ॥११६॥ क्योंकि नवीन अभावजन्य वस्तु नहीं होती, तथाहि जैसे के दृश्य सृष्टिमें जितने सजातीय विजातीय कंपौंड (मध्यम परिमाण) देखते हैं, उनमें जो योग्यता है वो उसके मूल तत्त्वोंकी है, ऐसा समझना चाहिये. घट जलादिका

---

†कार्य उत्पत्तिमें ६ पक्ष हैं (१) परमाणु समुदाय (२) परमाणु. द्विअणुक त्र्यणुक इत्यादि क्रम (३) पूर्व परिणामीका अन्य परिणाम (४) पूर्व परिणाम अभाव (नाश) से अन्य परिणाम (५) अभावसे नवीनोत्पत्ति. (६) अनेकोंके संबध होनेपर अन्य नवीनकी उत्पत्ति. इन सब पक्षोंमें पहेला पक्षही ठीक है पांचवा छटा पक्ष असंभव है. बाकी पक्ष पाहिले मान है स्वरूपाज्ञातावस्थामें परिणामवादसे व्यवहार ठीक होना है.

दृष्टांत उपर दिया है. ॥११६॥ प्रकृति यह व्यवहारमें एक समूहका नाम है यथा परमाणु वा सत रज तम मिश्रित और तम, देश, काल, योग्यता, इत्यादि हैं. अब आगे एक मतानुसार उसके विभाग कहते हैं—

गंध, रस, श्लेष, रंग, अग्नि, प्रकाश, विद्युत, शीत, स्पर्श, और शब्द यह दस अणु पदार्थ ॥११७॥ स्नेह, अस्नेह, और गुरुत्व उनकी योग्यता यथायोग्य ॥११८॥ पृथ्वीसे आद्य चारका व्याख्यान ॥११९॥ तेजससे तदुत्तर तीनका ॥१२०॥ अपसे शीतका ॥१२१॥ वायुसे स्पर्शका ॥१२२॥ शब्द तो पृथक् ही ॥१२३॥

अर्थ—गंधादि दस अणु परिमाणवाले साकार अर्थात् मूर्त्त पदार्थ हैं (या युं कहो के द्रव्य हैं यहां श्लेष नाम चेपका है और अग्नि नाम गरमीका है) ॥११७॥ स्नेह (मिलना खिंचना, खेंचाना) अस्नेह (दूसरेसे अलग हटना वा उसे हठाना याने द्रोहशक्ति) और गुरुत्व (भारीपन—वजन) यह पदार्थ नहीं किंतु पदार्थोंकी योग्यता हैं॥ इनमेंसे गंधादि दसोंमें यथायोग्य यह योग्यता हैं परंतु कुछ प्रकारमें किंचित् अंतर है ॥११८॥ गंध, रस, श्लेस, और रंग इन चारोंको पृथ्वी सज्ञाभी दीजाती है, क्योंकि उससेभी इनका व्याख्यान होजाता है. ॥११९॥ गरमी, प्रकाश, और विजली इन तीनोंको तेजस् संज्ञाभी दीजाती है, क्योंकि उससेभी इनका व्याख्यान होजाता है ॥१२०॥ शीतको जल संज्ञाभी दीजाती है क्योंकि ऐसी संज्ञासेभी उसका व्याख्यान होजाता है ॥१२१॥ स्पर्शको वायु संज्ञाभी दीजाती है, क्योंकि इस सज्ञासेभी उसका व्याख्यान हो जाता है ॥१२२॥ शब्द इन चारोंसे जुदा पदार्थ है ॥१२३॥ निदान पृथ्वी आदि चारसे गंधादि नो ९ का व्याख्यान* होजाता है. निरवयव, अमिश्रित, अखंट, अपरिणामी परिच्छिन्न तत्त्वका नाम **परमाणु** (छोटेमे छोटा अणु परिमाणवाला) है. जिसके आसपास अन्य हो उसका नाम **साकार** है. साकारका नामही **मूर्त्त** है. जिसमें वजन हो वा इंद्रियोंका विषय हो उसीका नाम मूर्त्त, इतनाही लक्षण समीचीन नही है. ॥११७ से १२३ तक॥

---

*नूतन रीतिमे यह अर्थ है कि जिन द्रव्यो से मनपर गध रूप असर हो उनका नाम पृथ्वी. ऐसेही रस श्लेस रंग रूप असरकारक पृथ्वी द्रव्य इसी प्रकार तीन असरकारककी तेजस् शीत असरकारककी जल किंवा ऑक्सिजन उदजन स्पर्श रूप असरकारककी वायु सज्ञा और शब्द असरकारकोंकी शब्द संज्ञा

विवेचन—उपरोक्त गंधादि दस और वक्ष्यमाण देशकाल तम यह शरीरसे बाहिर कोई पदार्थ नहीं है किंतु शरीरसे बाहिर ऐसे द्रव्य हैं कि जिनके स्वरूप और योग्यताको मनुष्य नहीं जान सकता. वे सब सजातीय हैं वा विजातीय हैं यहभी नहीं कहा जाता. जब उनका संबंध ज्ञानतंतु (इंद्रिय) द्वारा साक्षात् और किसीकी किरणे उठके उनका चक्षुद्वारा मगजके साथ वा मगजद्वारा चित (मन) के साथ होता है तब मगज वा मनमें एक प्रकारका असर प्रभाव (इम्प्रेशन) पैदा होता है (मगजका वा मनका एक प्रकारका सूक्ष्म परिणाम होता है उस प्रभावका नाम शब्द, गरमी, सरदी, रंग, आकार, मधुरतादि रस और गंध, देश काल वगैरे है और उस स्थितिका नाम ही जाना-ज्ञान होना अपरोक्ष होना है. ऐसा परंपरासे अभ्यास है उस अभ्याससे बाह्य पदार्थोंका उपयोग होता है. अर्थात् प्रत्यक्षवत् अनुमानसे उपयोग है. ।१। शब्द स्पर्श रूप रस और गंध यह पांच विषय और देश, काल, तम यह शरीरसे बाह्य पदार्थ हैं किंवा शब्दादि पांच विषय आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीके क्रमसे गुण हैं. सो गुणी गुण और देशकाल तम शरीरसे बाह्य पदार्थ है. बाहिरके द्रव्योंका यथार्थ स्वरूप नहीं जाना जाता परंतु जब वे इन्द्रियोंके द्वारा साक्षात् और रूपकी किरणे उठके उनका चक्षुद्वारा किंवा चक्षुवृत्ति बाहिर आके रूपका फोटो लेती है उसद्वारा मगजके साथ संबंध पाते हैं तब शरीरके अंदर जो मन सो मन संबंध स्थान पर संयुक्त हुवा उसका आकार धारण करता है, उस आकार सहित मन (विषय और तदाकार मन) और कोई प्रसंगमें तदाकारवाला मन (विषय बिना तदाकारवाला मन) आत्मामें ग्रहण होता है इसका नाम विषय ज्ञान है. इस प्रकार बाह्य पदार्थोंके गुण शक्तिका अनुभव होनेसे बाहिरके पदार्थोंका उपयोग होता है ।।२।। शरीर वा बुद्धिसे बाहिर कोई भी पदार्थ नही है किंतु अंदरमेंही क्षणिक परिणाम रूप हैं स्वप्नवत् स्फूर्ण होते हैं. पूर्व पूर्वका अभ्यास उसमें कारण है (३) अमुक पदार्थ बाह्य और अमुक अंदर है ।।४।। इस प्रकार पदार्थोंमें पक्ष हैं योरोपके फिलोसोफरोंमें चारो मतभेद हैं और आर्य फिलोसफरोंमें बौद्धोंके ३ पक्ष हैं. (१) नं. १ अनुसार (२) शरीरसे बाहिर हैं परंतु परोक्ष अनुमानके विषय हैं (३) शरीरसे बाहिर हैं प्रत्यक्षभी हैं. और शेष फिलोसोफर नं. २ अनुसार मानते है. हां वेदांतपक्ष इन सबको अनिर्वचनीय अव्यक्तके परिणाम कहता है (उत्तरार्द्धगत उत्तर फिलोसोफीमें तद्वत अन्यथा परिणाम निकाला है ऐसेही तत्त्व. अ. ४ में इस झघडे विना परिणाम निकाला है). यह ग्रंथ प्राकृत पदार्थ निर्णयके उद्देशसे नही है. किंतु कर्म उपासना और ज्ञान उद्देशसे है इसलिये प्राकृत पदार्थोंका संक्षेपमें वर्णन करेंगे.

जो नं. १ हो तो यह परिणाम आता है कि बाह्यके अमुक द्रव्योंमें ऐसी योग्यता है कि उनके संबंधमे मगजमें अमुक प्रकारका ईम्प्रेशन हो. मगजमें वेसा प्रभाव (ईम्प्रेशन) रूप होनेकी योग्यता है. परंतु स्वतंत्र नही अर्थात् उनको और इम्प्रेशनोंके भेद ग्रहणकी उसमें योग्यता नहीं इसलिये उन ईम्प्रेशन रूपको बाह्य पदार्थोंका गुण वा कुछभी कहा जायगा. और उनके प्रत्यय अंदर याने इम्प्रेशन हैं. तथा उनका (ईम्प्रेशन, बाह्य और ईम्प्रेशनका भेद, ईम्प्रेशनोंका भेद इ.) ग्राहक कोई अन्य है तथा ईम्प्रेशनका ज्ञान होता है इसलिये जेसा ज्ञेय (इम्प्रेशन) वेसा ज्ञान होता है. यह सिद्ध होगा. यही नं. २ का परिणाम है. परस्परकी भाषा और पद्धति नही जाननेसे अथडाअथडी है. अब बाह्य पदार्थकी योग्यताका ज्ञान बिलकुल नही ऐसा मान लेवें तो सर्व मान्य बाह्यके तमाम व्यवहार (रेल, तार, घडी, मकान, दरखत वगेरेका उपयोग) अनुमानिक ठेरेगा जोकि नित्यके अनुभवसे विरुद्ध है. सू. १३४ का विवेचनभी वांचो. किसीकी कल्पनामें गंधादिको गुण और पृथ्वी आदिको द्रव्य (परमाणु) (गुणि) संज्ञा देके व्यवस्था की है. कोई गंधादिको तन्मात्रा मानके पृथ्व्यादि इनके कार्य मानके व्यवस्था करता है. कोई इनको अजीब पद देके व्यवस्था करता है कोइ इनको उपर कहे अनुसार मगजका ईम्प्रेशन (प्रभाव) मानके व्यवस्था करता है. कोई ईनको एक शक्तिके रूपान्तर बताके व्यवस्था करता है. कोई एकके उत्तरोतर कार्य-परिणाम करके व्यवस्था बांधता है. यथा आकाशमे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीमे यह सब बने ऐसा मानता है. अन्य पृथ्व्यादि नित्य परमाणु है ऐसा मानता है इत्यादि मतभेद और प्रकार हैं. परस्पर थोडा थोडा विवाद है. परंतु यहा यह बात भूलने जेसी नहीं है कि-गंधादिको अणु द्रव्य मानो वा गुण मानो, वा बाह्य अमुक द्रव्यके संबंधमे मन वा मगजकी अवस्था विशेष (ईम्प्रेशन) मानो और पृथ्वी आदिको द्रव्य मानो वा गुण मानो वा अन्य, यह शैली मात्र भेद है. वस्तुतः यूं तो माननाही पडेगा कि जिसे गुण शक्ति कहेते हो उसको, जिसे गुणी वा शक्तिमान कहेते हो उसमेसे यदि निकालें तो गुणी वा शक्तिमान कुछ शेष नही रहता और जो गुणी वा शक्तिमानको गुण वा शक्तिसे जुदा करें तो गुण वा शक्ति कुछ शेष वस्तु नही रहती. (इसी प्रकार योग्यता वा स्वभाव वास्ते योज लेना) सारांश द्रव्य और उसकी योग्यताका स्वरूप उनके कार्य मनेन्द्रियका विषय नहीं है. उनके दो नाम व्यवहारमें रखनेही पडते हैं. वस्तुतः वे एक स्वरूप हैं ॥ जो ऐसा नहीं मानें तो यह सवाल उठता है के गुण गुणि, शक्ति शक्तिमान स्वरुपतः दो है.

समवाय वा तादात्म्य वा व्याप्यव्यापक वा अभेद वा संयोग संबन्धमे साथ रहते हैं. जब यूं है तो वे तत्त्व रूप नही किंतु मध्यम हैं. गुण वा शक्ति, गुणी शक्तिमानके अंदर हैं वा बाहिर चारुं तरफ लिपटे हुये हैं वा एक प्रदेशमें हैं वा क्या? इसका संतोषकारक जवाब नही मिलता. दो स्वरुपों (गुण गुणि, शक्ति शक्तिमान) का परस्परमे अप्रवेश होनेसे उनका समवायादि संबन्धही नही बनता, किंतु संयोग संबंध बनेगा. जो यूं हो तो दो द्रव्य समूह याने मध्यम हुये. वे दोनों जड वा चेतन वा क्या? यह नहीं कहा जायगा. उनका परिमाण क्या, इसका उत्तर नहीं मिलेगा. इत्यादि अनेक खामी रहती हैं. इसलिये एक स्वरूपही मानना पडता है और जो ठीक विचार पर जावो तो इस विषयको अनिर्वचनीय वा अगम्य ही कहना पडता है. जैसे यहां अणु वास्ते कहा वैसे ही विभु प्रसंगमेंभी योज लेना चाहिये.

कोइ वस्तुकाभी स्वरूप लक्षण वाणीका विषय नही. यथा गरमीका स्वरूप वाणीमे नही कहा जाता अनुभव गम्यही है. वैसे मूल द्रव्योंका स्वरुप उनके कार्य मन वाणीका विषय नही होता किंतु उनके कार्य, योग्यता वा तटस्थ लक्षण द्वारा अनुमान करके व्यवहारार्थ उनके विभाग मानके उनके विशेष उपयोगार्थ व्यवस्था बांधते हैं. इसलिये दर्शनकार विवाद या बुद्धि युद्धकी अपेक्षा नही रखते. पदार्थोंके उपयोग प्रकार पर ध्यान देना चाहिये यह बात पदार्थ विज्ञान शास्त्र (सायंस) को भी संमत है.

फिलोसोफीका विषय मूल स्वरूप होता है, इसलिये वोह वहां ही अपने कर्तव्यको करके प्रसंगको छोड देता है. प्रस्तुत प्रसंग मूलका है.

मनुष्यके पास ज्ञान होनेके कुदरती दो साधन हैं. ज्ञानेंद्रिय ५ (पांच प्रकारके ज्ञान तंतु) और मगजसे इतर सामान्य विशेष योग्यतावाला अंतःकरण (चित्त-मन-बुद्धि-अहंकार) इस सिवाय मनुष्यके बनाये हुये यंत्र और तंत्रभी हैं यथा सूक्ष्मदर्शी यंत्र, अमुक पदार्थ मिलाके पृथक्करण करनेके तंत्र. ऐसे साधनोंसेमी स्थूल दृश्य पदार्थोंके विभाग किये जाते हैं. योरोपके विद्वान शोधकोंके यंत्र तंत्र उत्तम सिद्ध हुये हैं. बनावटी से कुदरती साधनको गौरव हो, यह स्वभाविक है. तथापि कर्तवी अत्यंत सहायक हो पडनेसे हीनोपमानके योग्य नहीं हैं. मूल द्रव्य विषय न हो सकनेमे कार्य द्रव्योंद्वारा कारण द्रव्योका अनुमान और विभाग माना जा सकता है.

(१) घ्राण इंद्रियद्वारा जो विषय होता है उसका नाम गंध है. अनुकूल प्रति-कूल संबंध सामग्री भेदमे सुगंध दुर्गंध संज्ञा दी जाती है (२) रसना द्वारा जो विषय

होता है उसका नाम रस है, संबंध सामग्री भेदमे ६ प्रकारका है. (३) चक्षु इंद्रिय द्वारा जो विषय होते हैं वे तीन हैं. उनका नाम रंग, प्रकाश और विद्युत हैं. (पदार्थका आकारभी इसका विषय है) (४) त्वचाके द्वारा जो विषय होते हैं वे चार हैं उनका नाम स्पर्श; गरमी, शीत और ल्हेस है. (५) श्रोत्रेंद्रिय द्वारा जो विषय होता है उसका नाम शब्द है. स्नेह (खिचाना-मिलना) अस्नेह (अलग करना-फेंकना) और गुरुत्व शक्ति (वजन) यह तीनों अनुमान प्रमाणके विषय हैं. ॥

गंध (सुगंध दुर्गन्ध) यह द्रव्योंके संयोगमे मगज (वा मन) के असर (इम्प्रेशन) हैं वा द्रव्योंकी योग्यता है इसमें मतभेद है. परंतु पहेले कहे अनुसार कुदरती यंत्र और भंवरा वगेरे गंधको पदार्थ बताते हैं. और सुगंध दुर्गंध यह संज्ञा मन अपने अनुकूल प्रतिकूल प्रभावसे नाम देता है. ऐसा पाया जाता है. नकल है के एक ढेढ खंबोल शहेरके अत्तारवाले बाजारमें गया तो अतरकी वाससे मूर्छित हो गया, उसके भाइने हकीकत जानके श्वानका मल सुंघाया तो मूर्छा गई. आनंदमें आ गया. यहांभी रहगरोंको कच्चे नमडेकी वास अरुचीकारक नहीं होती. कोइ सदगृहस्थ वहां जावें तो मगज विगड जाता है. इस प्रकार मनका प्रभाव है.

रस विषयमेंभी गंधवत् मतभेद है. परंतु वस्तुतः द्रव्योके प्रकार हैं ऐसा कुदरती यंत्र बताता है. यथा मखी कीडीभी मधुरत्व पर दोडती है. द्रव्य और मगज वा मनके संबंधमे योग्यता अनुसार भेद पडते हैं, ऐसाभी होता है. यथा पित्त कोप कालमें मधुर भी कटु जान पडता है. रस, मधुर, कटु, क्षार, तीक्षण, अमल और करवाय ऐसे ६ हैं (६ प्रकारके अणु हैं)

ल्हेस—को रसायनीय संयोगजन्य स्थिति मानते हैं. परंतु यह स्थिति अमुककी होती है ऐसा होनेसे सिद्ध होता है के वे जुदा प्रकारके परमाणु हैं चिकनाईका जुदा मात्रा संभव है परंतु उसका रसायनीय संयोगमेभी अंतर भाव हो सकता है. इसलिये जुदा नहींभी माना जाता.

रंग क्या और कितने इसमेंभी मतभेद है. एक यू मानता है कि रंग वस्तु नहीं किंतु ईथर (वायु)की ल्हेरोंका फॉरम है. सूक्ष्म पतलि थोडी ल्हेरें हों तब नीलता जान पडती है संख्यामें ज्यादे और गहरी हों तब लाल श्याम इत्यादि. दूसरा यूं कहता है कि सूर्यकी किरण द्वारा रंग आते हैं. पदार्थ उनको चूसते हैं जो नहीं चूसा जाता वोह बाहिर मालूम होता है. तीसरेका यह पक्ष है कि रंग यह तेज वा पृथ्वीका गुण है. कोई

मुख्य रंग तीन, कोई ४ कोई ७ मानता है. श्वेतको ७ रंग मिश्रित प्रयोग करके बताया जाता है. परंतु कुदरती यंत्र रंगको एक प्रकारके स्वतंत्र परमाणु बताता है. बहुधा यह दूसरे पदार्थके साथ मिश्रित होते हैं. अंतरक्ष और सूर्य प्रकाशमें रंग फिरते रहते हैं. रस, गंध, शब्दादि रंग विनाके होते हैं इससे सिद्ध होता है कि रंग विनाकेभी पदार्थ होते हैं. रंग चक्षुका विषय है, अन्यका नहीं. जो रंगको इथरकी लहरें मानें तो त्वचाका विषय होना चाहिये क्योंकि हवा त्वचाका विषय है. परंतु रंग तो चक्षुका विषय है. जो ईथरकी लहेर रूप नहीं तो इथरका स्वरूप रंग नहीं बदलता इसलिये नीलपीत क्यों विषय होता है. जो ऐसा मानें के लहरोंका स्वभाव या प्रभाव है के मन या मगजके साथ लहरोंका संबंध होने पर ऐसाही इम्प्रेशन हो. तो यह सिद्ध हो जाता है कि कुदरती यंत्रमें जुदा विषय होनेवाला कोइ प्रकारका तत्त्व इथरमें है कि जो अमुक संयोगोंसे जान पडता है अथवा अन हुवा प्रतीत होनेसे अर्थशून्य और भ्रांतिका विषय है. वा ऐसी प्रतीति होना स्वभाव मात्र है, ऐसा मानना पडेगा. आंख बंद कर मसलनेपर शरीरके अंदर नीले पीले लाल रंगके अणु जान पडते हैं. यह प्रकारभी रंग वस्तु होनेमें सबूत है जबकि गंधक सुवरणादिको अमिश्रत तत्व (एलीमेन्ट) मानें तो उनमें ईथरकी लहेर क्यों ? जो है तो कंपौंट हुवा और जो वोह रंग लहेरसे जुदा तो गंधक रंगवाला एलीमेन्ट ठेरेगा. इससेभी रंग जुदा वस्तु जान पडती है. घोडी समान द्रव्य है, परंतु उसके शरीरमें अनेक रंग होते हैं. और एक रंगवाले की संतान अनेक रंगकी पाइ जाती है. अश्वके वीर्यमें जैसा रंग मिला दें वैसे रंगकी संतान होती है. एक फूलकी एक पैंखडीमें अनेक रंग होते हैं. मोरकी विचित्रता प्रसिद्ध है. लाल काचके द्वारा श्वेत वस्त्र लाल जान पडता है. अमुक रंगकी दवाई अमुक गुणवाली होती है, यह प्रसिद्ध बात है. बिंब या मुख पर जिस रंगकी बिंदी रख दें वैसाही रंग प्रतिबिंबमें जान पडता है अमुक पक्षी रंगका आशक होता है इत्यादि उदाहरणोंसे जान पडता है कि रंग कोई भिन्न प्रकारकी वस्तु है. मगजका इम्प्रेशन वा ईथरकी लहेर मात्र नहीं है. हां, रंगके उद्भव तिरोभाव होनेमें ईथर हेतु होभी, ऐसा मान सकते हैं. रंग किसीका गुण हो, ऐसाभी नहीं जान पडता क्योंकि जब अमुक काच द्वारा परीक्षा करोगे तब सूर्यकी किरणो द्वारा रंग के परमाणु आते हुये जान पडेंगे. जो तेजका गुण होता तो चूसनेमें न आता. जो पृथ्वीका गुण होता तो अपने गुणीके साथ रहता अर्थात् भारी होनेसे किरणोंके साथ इतने दूर नहीं आ सकता.

गुणवादिकी रीतिसेभी रंग द्रव्य ठेरता है क्योंकि शब्दादि गुणमेंसे रंगका प्रतिबिंब

होता है, अन्यका नहीं अतः द्रव्य है. जो यह कहेके द्रव्यका फोटो नहीं होता परंतु उसके आकार (रूप) का होता है इसलिये रंग आकार है. द्रव्य वा गुण नहीं, यह कहनाभी अयुक्त है. प्रतिबिंबमें यह बिंदु इतनी लंबी चोडी, गोल, ऐसा होता है तहां इस आकार के बीचमें जो अंश वोह द्रव्यका फोटो है. इसी प्रकार मुखादिके प्रतिबिंबमें विवेक कर्तव्य है. रूप अर्थात् रंग और आकार दो अर्थ लगा लेते हैं. इसलिये यथा प्रसंग अर्थ करना चाहिये. (शं.)शब्दादि द्रव्यका फोटो क्यों नहीं होता? (उ.) मूल प्रकृति (किरण) और चेतनसे इतर सर्वका फोटो हो सकता है. परंतु जबके वैसी सामग्री हो. स्वप्न क्या है? शेपा-ईथरका परिणाम-रूपांतर. प्रतिबिंब क्या है? शेपाका परिणाम. स्वप्नमें शब्दादि सर्व विषय होते हैं. प्रतिबिंब दशामें बिंब समक्ष और स्वप्नमें समक्ष संबंध नहीं इतना अंतर है. सच पूछो तो यह दृश्य तमाम और प्रतिबिंबका एक उपादान होनेसे उभय समान हैं. हेपनोटीजम (तैजस् विद्या) के प्रयोग करके परीक्षा करोगे तो जाग्रतमेंभी गंधादिके फोटो होते हैं. मगज-ग्रेमेटरके इम्प्रेशन नहीं है, ऐसा अनुभव होगे.

रंगके परमाणु कई प्रकारके होते हैं. जैसे लाल, श्याम, हरा, नीला, पीत, श्वेत. परंतु प्रकारकी संख्यामें मतभेद है कोई मुख्य ३, कोई ६, कोई ८ मानता है. उंटको नीम कटु नहीं लगता. बबुलके कांटे, कांटे रूप नहीं जान पडते तो क्या नीम कटु और कांटे कांटे नहीं हे? वोही नीम उंटके कीडे मारता है और कांटा त्वचामें लोही निकालता है. परंतु उंटके रसनाकी बनावट उसे ग्रहण नहीं कर सकती और मुखके भापसे कांटे तृणवत् हो जाते हैं, इसलिये वैसे नहीं जान पडते. काचकी बनावटसे मुख वांका टेढा, लाल पीत जान पडता है तो क्या मुख वैसा ही है? नहीं. इसी प्रकार गंध रस रंग वगैरे वास्ते जान लेना चाहिये, अर्थात् कुदरती यंत्र रंगको जुदा वस्तु बताता है.

जिसे गरमी कहते हैं उसका नाम अग्नि है यह क्या है, और जब अग्निकी ज्वाला उठती है तब एकदम प्रकाश होता है सो ज्वाला और लाल रंगवाला प्रकाश क्या है! और बिजली क्या है, यह अभी तक ठीक ठीक जाननेमें नहीं आया. तथापि कुदरती यंत्र यूं अनुमान कराता है के यह तैजस् शक्ति नामके पदार्थके रूपांतर होने चाहिये. बिजलीमें गरमी अग्निकी है और प्रकाश तैजसूका अंश है. प्रकाशमें गरमी अग्निकी है और प्रकाश तेजसूका अंश है गरमीमें गरमी अग्निका स्वरूप है और अनुद्भव है. सारांश गरमी बिजली और प्रकाश यह सब तेजस् के जुदा जुदा रूप हैं. क्योंकि गरमीका उष्णांश त्वचाका विषय होता है, चक्षुका विषय नहीं तथा अंधेरेमेभी होती है. प्रकाश तममें नहीं होता और उसका एक अंश चक्षुका, दूसरा-अंश त्वचाका

विजलीका एक अंश चक्षुका, दूसरा अंश त्वचाका विषय होता है. दीपक करतेही तुरत प्रकाश हो जाता है वहां आकाशमें जो तेजसके परमाणु पसरे हुये हैं वे × यकदम एकत्र होके प्रकाशित हो जाते हैं और दुर रहे हुये पसरित अवस्थामें प्रकाशित हो जाते है. अर्थात् सूक्ष्माद्वारा उनका प्रकाशांश उद्भव हो जाता है और दीपकसे जितने जितने दूर उतने उतने कम प्रकाशित होते है. प्रकाशमें अनुद्भव स्पर्श होता है याने गरम स्पर्श है परंतु त्वचाका विषय नहीभी होता. दीपककी ज्यादे ज्वाला हो तो पासके अक्षर नही जान पडते अर्थात् प्रकाशके घट्ट परमाणुका आवरण चक्षु और अक्षरोंपर हो जाता है. मेदानमें दीपक है परंतु उसकी रोशनी आकाशमें नही जान पडती जो दूर एक पट्टी खडी करें तो वहां प्रकाश जान पडेगा क्योंकि टकरानेमे जान पडता है. इत्यादि उदाहरणसे प्रकाश, गरमी, परमाणु रूप है यह स्पष्ट हो जाता है. दीपक गुल होने पर आकाशस्थ परमाणुओंका प्रकाशतिरोधित हो जाता है और तम उद्भव होता है. इसी प्रकार अग्नि बलनेके समय, सूर्य उदय होनेपर जो अनुद्भव स्पर्शवाला, प्रकाश होता है उसके वास्ते योज लेना चाहिये प्रकाश जेसा पास है वेसा दूर नहीं है और संकोचि विकासको पाता है, इसलिये दश्य प्रकाश मध्यम परिमाणवाला है और मूल परमाणु रूप है. चंबुककी सुई ध्रु तरफ क्यो रहती है, विजलीका क्या प्रभाव है, यह अभी पूरा स्पष्ट ज्ञात नहीं है तथापि विजली परमाणु रूप है यह उसके कार्यसे स्पष्ट हो जाता है. चंबुकके विभागसे विजली शक्तिके विभाग होनेमे पहिले जितने लोहेको नही खेंच सकती. आकाशकी विद्युत्का भाग लोहेद्वारा जमीनमें चला जाता है. गति विशेषसेभी गरमी, प्रकाश और विद्युत उद्भव हो जाती है.

इत्यादि उदाहरण बस हैं. जब विजलीका धक्का लगता है उस समय अपरोक्ष विषय नहीं होती तोभी अनुमानका विषय होती है. गरमी, विजली, प्रकाश किसी एक शक्ति के फारम–रूपांतर है. ऐसा मानें तोभी वोह अनेक योग्यतावाली शक्ति अर्थात तेजस् रूप है, ऐसा सिद्ध होनेको जाता है. वोह शक्ति या गरमी, विजली और प्रकाश, आकाशमें समुद्रवत् भरपूर है याने सब जगे है. बहुत और समीपका प्रकाश लाल और दूरका श्वेत जान पडता है जेसेके सूर्य, चंद्र, तारागनका देखते हैं. उसका कारण ईथर, चक्षु फासला और रोशनीका प्रसंग है. जलमें हवा रोकें तो उपरको आती है क्योंकि वजनमे जलमे हलकी है. वेसे अग्निभी जलने उपरको आती है इससे स्पष्ट होता है कि गरमींमें वजन है जोकि अभी ज्ञात नही हुवा है.

×फास्फोरस, कार्बोन, हाईड्रोजनादिसे इतर.

शीत यह किसीके पक्षमें जल द्रव्यका गुण माना है. किसी पक्षमें शीत कोई वस्तु नहीं किंतु गरमीका अभावही शीत है, ऐसा माना है. और द्रश्य जल, तत्त्व नहीं किंतु मिश्रित है इससे इतर अन्य जल तत्त्व जान नहीं पडता. द्रश्यमें स्वाद-रस, पृथ्वीका, रूप तेजसका, और स्पर्श वायुका भाग हैं. और जलका जो द्रवत्व लक्षण माने तो द्रवत्व तो सर्व मध्यम पदार्थोंमें होता है; यथा कनक, पत्थर, मिटीके खंखर यह अग्निमें द्रवत्व भावको प्राप्त होते हैं. सूवर्णमें यद्यपि पानी है परंतु अग्निमें जब द्रवीभावको प्राप्त होता है तब पानी नहीं रहना चाहिये और द्रवत्व भाव तो होता है, इसलिये जलका द्रवत्व लक्षण नहीं. शेषमें शीतको ही जल कहना पडता है. वोह स्वयं द्रव्य है. त्वचाके द्वारा विषय होता है. जो उष्णताके अभावको शीत माने सो भी नहीं बनता, क्योंकि अभाव किसी वाह्येंद्रियका विषय नहीं है और शीत तो त्वचाका विषय है. अभाव जो इंद्रिय का विषय होता तो जन्मांधको रूपाभाव और वधिरको शब्दाभावका ज्ञान होना चाहिये अथवा वधिरको शब्दाभाव जान पडता. परंतु ऐसा नहीं होता: अभावके ज्ञानमें प्रति योगीके ज्ञानकी अपेक्षा होती है. शीत वास्ते ऐसा नहीं होता. शीत गरमीकी लडाई होती है. शीत अकडा देता है. बलवान हो तो गरमीको हटाता है. अभावमें ऐसा नहीं होता क्योंकि बुद्धिका संकेत है. इत्यादि हेतुसे गरमीका अभाव शीत है, ऐसा नहीं मान सकते.

ओपजन और उदजन मिलके पानी बनता है और अन्य क्षार मिल जानेसे द्रश्य-उपयोगी जल होता है. ओपजन उदजनमें शीत स्वाद नहीं जान पडता परंतु जिसे उष्णाभाव शीत कहते हैं सो तो है. सारांश उसमें शीतपना तिरोभित है. उभय मिलनेमे गुणोंका उद्भव तिरोधान होनेसे विलक्षणरूप याने जलरूप बनता है क्योंकि अभावसे भाव रूप वस्तु (गुण वा द्रव्य) नहीं बनता. जलमें जो स्वाद है वोह उनमें जो मिश्रण हुवा है उन तत्त्वोंका है. जल ४ इंद्रिय (ज्ञान तंतु) का विषय है इससे जान पडता है कि उसमें चार प्रकारकी वस्तु हैं. इसी प्रकार गंधक सुवर्णादिमें ४ तत्त्व मान सकते हैं. जो वर्तमान केमिस्तरीकी रीतिसे जुदा नहीं होते.

स्पर्श-कोमल, कठोर, वा शीतोष्णके विना जो स्पर्श होता है उसका नाम स्पर्श अणु है क्योंकि जहां शीत उष्ण स्पर्श है वहां वायु मिश्रित जल और गरमी है. जहां कोमल कठोरपना है वहां वायु मिश्रित पृथ्वीमी है स्पर्शको कोई वायुका गुण मानता है, और कोई पक्ष मगजका ईम्प्रेशन कहता है; परंतु विचारके देखें तो कुदरती यंत्र उसे अन्योंसे जुदा तत्त्व बताता है. या तो वायु कोई वस्तु नहीं है और यदि है तो

अकथनीय वस्तु है. ऑक्षजनादि गेसिस पदार्थोंमे मिश्रित रहती है. उन सहित होनेमें उसका वजन ज्ञात होता है; अन्यथा अग्नि समान अद्भुत पदार्थ है.

शब्द—को किसी पक्षने आकाशका गुण मानके उसे उत्पत्ति नाशवान बताया है. परंतु एसा नहीं जान पडता, कारणके शब्दमें क्रिया है. आकाश और गुणमें गति नहीं होती. अथवा गुणिकी गति विना गुणमें गति नहीं होती. शब्दकी उत्पत्ति मानी तो उसका उपादान चाहिये. आकाशमें उपादानताकी योग्यता नहीं. अन्योपादान जान नहीं पडता. आकाश श्रोत्रका विषय नही तो उसका गुण शब्द श्रोत्र तंतुका कैसे विषय हो सकता है. करण कुंटलीमें जो आकाश इसका नाम श्रोत्रेंद्रिय नही है किंतु इसके अंदर त्वचामें परदा है उसमें जो ज्ञान तंतु हैं उसका नाम श्रोत्रेंद्रिय है. इसलिये श्रोत्रेंद्रियका जो विषय शब्द वोह आकाशका गुण नहीं कहा जा सकता आकाशके किसी प्रदेशमें शब्द हो रहा है किसी प्रदेशमें नहीं है अर्थात् शब्द सावयव हुवा और निख गुणीके किसी प्रदेशमें हो किसीमें न हो, कभी हो कभी न हो ऐसा गुण नही हो सकता, किंतु नित्यमें नित्य गुण होता है. इसलिये उसपक्षानुसार शब्द आकाशका गुण नही. और ऐसेही पृथ्वी जल तेज वा वायुकाभी गुण नहीं है जो उनका गुण होता तो घ्राण, चक्षु वा त्वचाका विषय होता. परंतु ऐसा नहीं है. किंतु उनकी गति शब्दके उद्भव होनेमें निमित्त है. यह स्पष्ट है.

एक पक्ष शब्दको वस्तु नहीं मानता, किंतु हवाकी लहेरका नाम शब्द है ऐसा बताता है. सोभी सिद्ध नहीं होता. क्योंकि जैसे प्रकाश चक्षुका विषय तो उसकी लहरें—किरणभी चक्षुका विषय होती है ऐसेही शब्दनामा लहेरभी त्वचाकी विषय होनी चाहिये. परंतु शब्द दूसरी इंद्रियका विषय होता है, इसलिये हवाकी लहेर नही. हां हवा जब दबती है वा गति करती है, तब शब्दकी अभिव्यक्तिमें निमित्त होती है. यथा घंटा बजाने पर, कांसीके कटोरेके किनारे पर लकडी फेरनेपर, सितारका तार हिलानेपर, भेरीमें फुंक देने पर, ढोलको धक्का देने पर, दो हथेली पीटने पर, फोनो-ग्राफकी चुडी पर आघात प्रत्याघात होने पर, कुवामे आवाज देनेमे वेसी उलटी आवाज होती है ऐसी स्थिति पर, कंठादिकी गति होने पर इत्यादि प्रसंगोंमें शब्दमें गति होती है, उसमें वायु (स्पर्श मात्रा)भी निमित्त होती है. परंतु तोपकी और गरजनकी आवाजसे स्पष्ट होता है कि, शब्दकी गति वायुसे ज्यादा जलदी है इसलिये शब्द वायुरूप नहीं.

एक पक्षमें वायुका धक्का—अथडाना, ऐसी स्थितिका नाम शब्द माना है. इसमेंभी पूर्वोक्त दोष आता है.

कुदरती यंत्र शब्द वास्ते यह परिणाम बताता है के जेसे आकाशमें गरमी हवा विद्युतादिका समुद्र है वेसे शब्दनामा परमाणुओंकाभी समुद भरा पडा है और गरमी हवा विद्युत समान कारणवशात उसमें अज्ञात गतिभी होती रहती हैं. उपाधि और स्थानभेदसे जब ज्यादे गति होती है तब उसकी अविभक्ति होती है याने सुना जाता है (ज्ञात होता है). जेसे दरियामें पत्थर फेंकने वा लकडी मारनेसे चारुं तरफ लहेर उठती मालूम होती हैं और उससे जलके अंदर अज्ञात गतिभी होती है. पहेली लहेर दूसरी लहेर उठने पर दबके जलका पूर्वरूप हो जाता है. दूसरी लहेर पेदा होनेमें हवा और पहेली लहरकी लचक निमित्त है और परंपरासे पहेला धक्काभी.निमित्त होता है. पहेली लहेर दबनेमें वायु और लचक संबंधी दूसरी लहेरका उभारभी निमित्त होता है. इस प्रकार होते होते अंतिम लहेर, टकरानेसे वा सबब न मिलनेसे शांत हो जाती है. इसी प्रकार किसीके धक्के, ईथर, बिजली वा हवा के निमित्तसे यथा उपाधि स्थानभेद, शब्दसागरमें लहेर उठती हैं. और शांत होती हैं. ऐसे यथा प्रसंग जान लेना चाहिये. किसीने जो शब्द उच्चारण किया वा किसी धक्केसे जो शब्द हुवा वोह सुननेमे नहीं आता किंतु उससे जो चारुं तरफ शब्दकी लहेरे उठीं, उन लहेरोंकी संतानमेंसे कानपर जिस लहेरका आघात हुवा वोह शब्द सुना जाता है. तोप चलने पर प्रकाश प्रथम और शब्द पीछे जान पडता है, इससे ज्ञात होता है के शब्दमें प्रकाशसे गति मंद है. अनेक शब्दोंमें यह शब्द किसका ऐसा ज्ञान नही होता. इससे जान पडता है के शब्द समूहरूपभी बनता है. भारी, हलका, पतला, लंबा, तिक्षन, मधुर, कोमल इत्यादि स्वर प्रकार उपाधि भेदसे जान पडते हैं. शब्दके ऐसे स्वरूप नही हैं. किंतु यथा उपाधि उसका ऐसा रूपांतर होना पाया जाता है और बुद्धि उसकी जुदा जुदा संज्ञा कल्प लेती है. काचपर कीडी चलावें और यंत्र द्वारा सुनें तो कीडीकी गतिसे जो शब्द हो रहा है वोह चलति हुई रेल्वेकी आवाजके समान सुनाई देता है. इसमे स्पष्ट होता है के शब्द सागर (परा) मे अज्ञात (पश्यंति) ध्वनि होती रहती है क्योंकि सूक्ष्म परमाणु और मनमें गति होती रहती हैं. स्थंभ बिनाके तार समाचारमें ईथरकी लहेरोंसे शब्द संकेतका भान होता है. अरबके गायन वा वाजेसे हिंदीको और हिंदी के गाने बजानेसे अरबको. मजा नही आता इससे स्पष्ट होता है कि शब्दका मधुरत्वादि यह बुद्धिकी कल्पना है. और जेसे स्थान भेदसे वरण संज्ञा कल्पी है, वैसे नली वगेरेके स्थानभेदसे खरजादि स्वरभेदभी बुद्धिकी कल्पना है.

एक पक्ष ध्वनि रूप शब्दकोही नित्य नही मानता किंतु अक्षर तथा पदोंकोभी

नित्य मानता है और कहता है कि हरेक अक्षर-पद व्यापक है उपाधि और स्थान भेदसे उनकी अभिव्यक्ति होती है. और वे व्यापक हैं इसलिये एक कालमें अनेक देशमें उनका उपचार (प्रगटत्व) हो सकता है और एक देश कालमें क्रमशः होता है. कितनीक साधारण युक्तिभी देता है.

परंतु यह पक्ष समीचीन नही क्योंकि (१) व्यापकका परिणाम नहीं होता और न उसमें गति होती है इसलिये एक पद वा अक्षर नाना देशमें विभक्त नहीं हो सकता. जो आकाशके विभाग समान दर्शन मानें तो एकके एक कालमें भिन्न आकार नहीं हो सकते (२) प्रजामें वरण भेदभी पाये जाते हैं. एक जिसे ख कहता है दूसरा उसे क+ह, एक जिसे थ कहता है दूसरा उसे त+ह मानता है इसलिये वरण नित्य नहीं. (३) जो पद नित्य होता तो एक पदसे सबको वही ज्ञान होना चाहिये. परंतु ऐसा नहीं होता. पारसी मुसलमानको राम वा देव कहें तो गाली मानता है हिंदुको कहें तो प्रसन्न होता है. असुरसे हिंदु नाराज पारसी प्रसन्न होता है. हुररे पदसे अंग्रेज राजी, हिंदु गाली मानता है. इसलिये अर्थवाले पद नित्य नहो. इसीसे यहभी जान पडा कि पदोंमें अर्थ जनानेकी शक्ति नहीं है. नहीं तो उक्त भेद न होता. अग्निका नाम कुछ भी कोइ रखे परंतु उसकी दाह शक्तिसे सबको दाह होगा. इस प्रकार पदसे एक अर्थ फल नहीं होता किंतु विरोधी अर्थभी अनेक निकलते हैं. पदमें ईश्वरकी शक्ति मानें तोभी उक्त दोष आता है तथा शक्तिवानकी शक्ति उससे भिन्न नहीं रहती. अतः उसमें परकी शक्ति नहीं. जो प्रकृति प्रत्ययके संयोगसे पदस्फुटनमें शक्ति मानें सोभी नहीं बनता क्योंकि जो स्वयं वीर्यहीन उनके संयोगसे क्या पेदा होता है. तोपके गोलेकी आवाजसे गर्भपात होता है तहां वायु और शब्दके धक्केसे कार्य होता है जिसका यहां प्रसंग नहीं है. गाली देनेसे मनुष्यको क्रोध आता है. वाद बजाता है, यहभी शब्दकी शक्ति नहीं है क्योंकि उपर कहे अनुसार पदमें अर्थ जनानेकी शक्ति नहीं है और एकही पदसे एकको क्रोध और दूसरेको आनंद होता है. जो पदमें शक्ति होती तो ऐसा न होता. जो पदमें अर्थ जनानेकी शक्ति नहीं है तो फेर पदसे अर्थका क्यों ज्ञान होता है. वाचक वाच्यका क्या संबंध है? तहां अर्थ जनानेकी शक्ति संकेत ज्ञानमें है. अर्थात् जिस पदको जिस अर्थके वास्ते माना हो उस संकेतका भान जिस बुद्धिमें हो उस संकेत भानवाली बुद्धिमें उस शब्दसे उस अर्थका ग्रहण होता है इसलिये संकेतभानमें शक्ति है, नहीं के पद मात्रमें.* इसी प्रकार पद पदार्थका कल्पित वाचक वाच्य भाव

*फलितार्थ—जितने वाक्य वा ग्रंथ हैं वे पौरुषेय हैं. अपौरुषेय नहीं.

(शक्य शक्यार्थ, लक्ष्य लक्ष्यार्थ भाव) संबंध है यह स्पष्ट हो गया.

जो पदमें अर्थ जनानेकी शक्ति होती तो ग्रंथोंके शब्दार्थमें विवादही क्यों होता. नाना मत पंथके झघडे न होते. यहां इसके विशेष निर्णयका प्रसंग नहीं है इसलिये इतनाही कहना बस है कि जेसे रेल्वे ठराने वा चलानेके लिये वस्त्रमेंसे नीली पीली लाल झंडी बनाते हैं वेसे शब्दकी ध्वनि जो कंठादिकी उपाधिसे जुदा जुदा रूपमें जान पडती है उनकी अकारादि ककारादि अक्षर संज्ञा कल्पी गई है और इनके भिन्न भिन्न समूहसे पद संकेत (भाषा) कल्पनेमें आये हैं. फेर अभ्यास और परंपरा द्वार उन पदोंके द्वारा भावार्थ (लक्ष्यार्थ) लेनेकी परिपाटी चली है. ॥

जेसे कुहाडेका अग्र परमाणु, लकडीके संयुक्त असंख्य परमाणुओंके साथ संयोग पाता, उनके विभाग करता, उनसे जुदा होता ऐसे एक क्षणमें असंख्य कार्य करके लकडीको चीर देता है ऐसे एक क्षणमें अनेक अकारादि वरण वा खरजादि स्वर वा ध्वनि आत्मक लहरोंकी अविभक्ति (उत्पत्ति), स्थिति (प्रतीति—श्रवण) तिरोभाव (अभाव) होता है. क्योंकि शब्द अति सूक्ष्म और चपल है ॥

जब आदमी बोलता है तो वायु स्थानादि उपाधीसे शब्द सागरमेंसे ककारादि रूपकी लहरें सुनते हैं तहां क उत्तर वर्ण वा स्वरका उत्पादक वा नाशक नही होता तथाहि उत्तर वर्ण वा स्वर पूर्वका नाशक नहीं होता. किंतु मनादिकी गति और हवा संबधसे उत्पत्ति होती है. दूसरी क्षणमें स्थिति (प्रकटता) और तीसरी क्षणमें आपही शब्द सागर रूप हो जाता हैं. ऐसे क्षण क्रमसे शब्द बोले जाते हैं और क्षण क्रमसे उनकी उत्पत्ति स्थिति नाश होता है. ॥

परमाणु और मूर्त्तका लक्षण उपर कहा गया है. गंधादि दस अमूर्त्त नहीं किंतु मूर्त्त हैं. इंद्रियोंका जो विषय न हो उसीको अमूर्त कहना यह लक्षण समीचीन नहीं है किंतु वजनें रहित आकार रहितका नाम अमूर्त्त है. परिछिन्न साकारका नाम मूर्त्त है. इन दसोंका मूर्त्तो (तन, मन, इंद्रिय, मध्यम पदार्थो) पर असर होता है और उनका इन पर असर होता है इसलिये वे अमूर्त्त नहीं किंतु मूर्त्त हैं. जो अमूर्त्त होते तो मूर्त्तो (शरीरादि) के साथ स्पर्श न होनेसे परस्परमें असर न होता, शरीरादि उनको चूसनेकी आड नहीं होते, उनको स्वाधीन नहीं कर सकते, परंतु ऐसा होना देखते हैं इसलिये मूर्त्त हैं.†आकाश और इश्वर अमूर्त्त निराकार हैं इसलिये मूर्त्त पदार्थोंका उनपर असर नहीं होता. सदा

†उत्तरार्द्धमें जीव अमूर्त मूर्त्तका प्रसंगभी देखो.

समान और निर्लेप होते हैं (शं.) अमूर्त परमात्माकी असर मूर्त प्रकृति परभी नहीं होना चाहिये क्योंकि अमूर्त देश नहीं रोकता मूर्त रोकता है. इसलिये परस्परमें स्पर्श नही हो सकता.(उ.) इस शंकाका समाधान इतनाही हो सकता हे के जेसे अमूर्त आकाश मूर्त के उपयोगमें आता है—आकाश, उनको अवकाश देता है—वेसे परमात्माकी शक्ति द्वारा उनमें कोई प्रकारसे गति और उनका उपयोग होता होगा. परंतु परमेश्वरकी शक्ति अगम्य अचिंत्य है मनुष्य नहीं जान सकता कि केसे गति कराता, उपयोग लेता और रचनामें लाता होगा.

उपर कहे अनुसार गंधादिका अति संक्षेपमें बयान हुवा (शंका) द्रव्य इंद्रियोंके विषय नहीं उनके गुण ही विषय होते हैं, इसलिये गंधादिको गुण संज्ञा देनी चाहिये. (उ) इसका समाधान उपर आ चुका है. अर्थात् पृथ्व्यादि कहो वा गंधादि कहो, द्रव्य कहो वा गुण कहो, परंतु दोके स्वरूपका बाध न आवे ऐसी शैली होनी चाहिये. इसलिये इनको अणु पदार्थ कहनेमें दोष नहीं आता. और अन्य संज्ञा न देने वा देनेमें हमको आग्रह नही है, हरेक परमाणु सत्व, रज, तमात्मक (मिश्रित—जुदा न होनेवाले हमेशे साथ रहनेवाले) मानें तोभी व्यवस्थामें दोष नहीं आता. वर्तमान पाश्चमीय सायंसके तमाम (७२—८०) तत्त्वोंका समावेश पृथ्वी जल तेज और वायु इन ४ में हो जाता है. गेस, प्रवाही, गेसिस और ईथरीयल तमाम पदार्थोंका इन ४ में वा सत्व रज तम इन तीनमें समावेश हो जाता है. उपरोक्त पदार्थोंमें वजन होना चाहिये क्योंकि परिछिन्न है. और किस किसमें स्नेह अस्नेह है इसका विस्तार मूलमें है यहां लिखनेकी अपेक्षा नही हैं ॥१०७॥

स्नेह उस योग्यताका नाम हे कि जिस द्वारा द्रव्य खिंचे या खेंचे. विशेषतः यह योग्यता सजातीयोंमें उपयोगी होती है, जेमे लोहेके परमाणु स्नेह योग्यतामे पिंड बांधते हैं. विना किये जुदा नहीं पडते. चंबुककी विजली लोहेको खेंचती और लोहा चंबुकमें खिंचाता हे. अन्य साथ यह व्यवहार नहीं होता. इसको स्नेहाकर्षणभी बोलते हैं. अस्नेह (द्रोह) उस योग्यताका नाम है कि जिसद्वारा अपनेको दूसरेमे अलग हटना पडे वा आप दूसरेको अलग हटावे. जेसे चंबुककी विजलीका दूसरा किनारा लोहेको दूर करता लोहा दूर होता है. पदार्थोंमें जो यह दो योग्यता न होती तो शायद जगतही नहीं बनता. लोहे सोने वगेरेके परमाणुमें स्नेह है, ऐसा नहीं समझना चाहिये परंतु गूंदके परमाणु स्नेह रूप हैं. स्नेह याने जो कोई प्रतिबंधक कारण न हो तो सजातीय वा विजातीय के साथ चोटें, ऐसे परमाणु. और स्नेह योग्यता द्वारा अमुककोंही खेंचना वा अमुकमेंही खिंचाना होता है. यह दोनोंका

अन्तर है. चिकनास रसायणीयजन्य योग्यता है याने श्लेस और स्नेह रूप नही है गुरुत्व योग्यताका नाम वजन (भारीपन) है. यह परमाणु मात्रमें होती है. धारो के सुवर्णके २० अणु लोहेके २९ अणु के बराबर तोलमें हों तो सोनाका १ अणु लोहेके १। अणुकी बराबर होगा. लोहाके ४० और सोनाके ४० को समतोल करें तो बराबर नहीं होते. परंतु लोहाके ४० और सोनाके ३२ समतोलमें बराबर होंगे. ईससे जाना गया के परमाणुकी सख्या समूहका नाम वजन नही है. किंतु परमाणुका मूल स्वरूप अनादितः ऐसाही है. अर्थात् एक दूसरे परमाणुमें गुरुत्वका भेद है. इसीका नाम गुरुत्व योग्यता है. (शंका) जो गुरुत्वका भेद है या गुरुत्व है तो उस परमाणुके अनंत टुकडे ही होते जाने चाहिये. (उ.) यह प्रतिज्ञा कल्पना मात्र है. कारण के स्वरूपतः अनादिसे ऐसेही हों, ऐसा क्यों न माना जाय? गुरुत्व हो वा न हो और टुकडे होनाही मानें तो गति और स्थितिका अभाव होनेसे कार्यही नही होंगे. यथा आकाशमें क परमाणु स्थित है जो अनंत भाग होनेके योग्य है. दूसरा ख परमाणु गति करता हुवा क को स्पर्श करता जाता है. ऐसी स्थितिमें ख परमाणु क से इतर देशमें कभीभी नहीं हो सकेगा; क्योंकि क के अनंत भागको 'ते' करने वास्ते (स्पर्श करते जाने वास्ते) अनंत काल चाहिये. इसी प्रकार एक तीर छोडें तो वोह अनंत कालतक गतिमें ही रहना चाहिये क्योंकि अनंत प्रदेश 'ते' करते हैं. और ऐसेही जाते हुये क आदमीको ग आदमी न पकड सकेगा क्योंकि मध्यमें अनंत देश है. जो कल्पना मात्रसेही टुकडे होना मानें तो आकाश और ईश्वरकेभी क्यों न माने जाय? ससीम अनंत टुकडेवाला असीम विभु (अनंत) क्यो न हो जाय? अग्नि गरम है, वोह ठंडी हो जायगी, ऐसा क्यों न माना जाय? संक्षेपमें परमाणुके टुकडेही होते जायंगे, यह ख्याल, विचार रहित है. इसलिये गुरुत्ववालेके टुकडे होनाही चाहिये यह मान्यता समीचीन नहो.॥ अब यूं मानें कि परमाणुओमें गुरुत्वका भेद नही, समान है परंतु उनके स्वरूप भावही जुदा प्रकारके हैं तो लोहेके २० और पारदके २० परमाणु समतोल होने चाहिये परंतु नही होते. इसका कारण गुरुत्वाकर्षणका खिचाव और हवाका दबाव मानें. यथा शीशीमेंसे हवा निकालके पर और पैसा छोडें तो दोनों साथ,साथ नीचे उतरेंगे, तालावमें भरा हुवा घट खेंचे तो पानीसे बाहिर आने तक वजन नहीं मालूम होता. यह पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षणका प्रभाव हैं. सोभी अयुक्त है; क्योंकि प्रथम तो पृथ्वीमेंही गुरुत्व मान लिया. दूसरे उपर कह आये हैं कि आकर्षण कोई वस्तु नहीं किनु पदार्थका गुरुत्व शेपाकी लचक इत्यादि हैं. हवामें दवान माना यही गुरुत्व है, दरीयामें घटका भार

सहार रखा है इसलिये वजन नहीं मालूम होता. अब जो परमाणुकी संख्या (क्षेत्र) को गुरुत्व मानें तो हरेक परमाणुमें गुरुत्वका स्वीकार हो गया यह बात सहेज विचारसे जान सकते हैं. एक तरफ १० दूसरी तरफ २० परमाणु हैं वे समतोलमें समान नहीं हुवे तो साबित हो जायगा के १० में विशेषता है याने गुरुत्व है. ऐसेही २० में है. हां यह मान लेना पडेगा के सर्व परमाणु वजन भावमें समान हैं. संक्षेपमें गुरुत्व है, वोह पदार्थ विशेष नहीं किंतु परमाणुका स्वरुपही है और उपयोग दृष्टिसे उसकी योग्यता संज्ञा है. जो पदार्थ हो तो अणु वा विभु परिमाण होता परंतु ऐसा नहीं है. और न सिद्ध होता है. गुरुत्व, इन्द्रिय वा मनका, साक्षात् विषय नही है किंतु एक दूसरे पदार्थकी अपेक्षासे अनुमान प्रमाणका विषय है, गुरुत्व सब परमाणुओंमें होने योग्य है. और स्नेह अस्नेहमी, परंतु प्रकारान्तरसे. (इसका विवेचन मूलमें है) ॥

जैसे गत् कालमें वायु निरूप और वजन रहितेमी मानी गईथी. जल तत्त्व माना गया था. परंतु वर्तमान पदार्थ विज्ञान विद्याने वायुको साकार वजनवाली सिद्ध कर बतायी और जल विजातीय मध्यम सिद्ध कर बताया है. वेसे ही 'जो' इस समय गरमी, विजली शब्द वगेरेमें वजन नहीं जान पडता परंतु जो शोधका भविष्य है तो साधन मिलने पर गरमी वगेरेकेमी वजन मापे जायंगे, ऐसा मेरा खयाल है. क्योंकि वे अणु हैं अभीमी जो शब्दको हवाकी लहेर मानें तो शब्द वजनवाला हो गया. गरमी डीगरीमे मापी जाती है. तो आयन्दे विशेष निर्णय हो, यह स्पष्ट है. ॥११८॥ ११७ से १२३ तक ॥

तम मध्यम विलक्षण ॥१२४॥ उसमें आवरण गुरुत्व योग्यता ॥१२५॥ अर्थ—तम मध्यम एक विलक्षण मूर्त्त पदार्थ है ॥१२४॥ उसमें आवरण करनेकी और गुरुत्व (वजन) योग्यता है ॥१२५॥ तम यह विवादित विषय है. तहां एक पक्ष तमको प्रकाशका अभाव बताता है. द्रव्य वा गुण वा वस्तु नही मानता. परंतु ऐसा सिद्ध नहीं होता है. क्योंकि प्रथम तो अभाव कोई वस्तुही नहीं है. उसका कोई परिमाण (अणु मध्यम विभु) वा कालक्रम (अनादित्व सादित्वादि) सिद्ध नहीं होता किंतु देशकी विलक्षणता मात्र है, इसलिये मधुरत्व, शब्दत्वादिका वा हरकोईका अभाव किसीका आवरक नहीं होता, परंतु तमतो आवरक होता है. अभाव किसी इंद्रियका विषय नहीं होता किंतु प्रतियोगी अपेक्षित बुद्धि मात्रका विषय है परंतु तम तो प्रतियोगीकी अपेक्षा विन, चक्षुका विषय होता है अभाववादि अपने पक्षमें अभावको सक्रिय नहीं कहता अथवा अनुयोगीके साथ अभावकी क्रिया मानता है, उस विना नहीं. परंतु तममें क्रिया होती

है; अभावमें वजन नहीं परंतु तममे वजन होता है; जेसेके दिनको बाहिरसे अंदर कमरेमें आवें तो चक्षु पर तमका भार पडता है वोह अनुभव गम्य होता है. एक कोटडीके आसपास रोशनी हो और अंदरमें तम हो वहां दीपक करें तो प्रकाश होता है तब तम कहां गया और दीवा गुल करदें तो तम कहांसे आगया और प्रकाश कहां चला गया. अर्थात् प्रकाशकी गेरहाजरी थी तो दीपक होनेपर कहांसे आ गया और न होनेपर कहा भाग गया ? परंतु वस्तुतः दोनों वहाके वहां उद्भव और तिरोधित होते हैं यह स्पष्ट होता है. प्रकाशकी उत्पत्ति पूर्व था अर्थात् अनादि ठेरा. इसलिये किसीका अभाव है, ऐसा कहना नहीं बनता. तम मध्यम है परंतु दर असल कोई विलक्षण प्रकारका परमाणुरूप है. जिसको आकाशकी चादर समान और लचकवाला मान सकते हैं. जहां जहां उसका विरोधी याने प्रकाश उद्भव नहीं वहां वहां वोह उद्भव होता है. जहां जहां प्रकाशका विरोधी तम उद्भव नही वहां वहां प्रकाश उद्भव होता है. इसप्रकार दोनों विरोधी हुयेभी सहनावस्थारूप उनका अविरोध है, याने एक दूसरेमे दबके साथ साथ रहते हैं. जहां अन्तराय रहित दोका संयोग होता है उस संयोग प्रदेशमें तम और प्रकाश दोनों साथ नही होते. सारांश उभयका सामान्य रूपमें विरोध नही है किंतु विशेषरूपमें विरोध है. जो प्रकाशका अभावही तम मानें तो प्रकाशसे इतर तमाम परमाणु तम ठेरेंगे. परंतु ऐसा नहीं है. ज्यूं ज्यूं प्रकाश चलता है त्यूं त्यूं तम तिरोधित होता है और गति होनेसे जहां जहां प्रकाश नही रहेता, वहां वहां तम उद्भव होता है, यही तमकी गति है. यथा शरीरकी छायामें गति जान पडती है, किंवा ज्यूं ज्यूं तम चलता हैं त्यूं त्यूं प्रकाशमें गति मालूम होती है, यथा बदलकी छाया चलती जानेसे प्रकाशमे गति जान पडती है. इस प्रकार कभी प्रकाशमें गति होती है और कभी नही होती परंतु तमकी गतिसे गति होना जान पडता है तद्वत् कभी तममें गति होती है और कभी नहीं होती परंतु प्रकाशकी गतिसे उसमें गति होना जान पडता है. (स्वप्न थीयरी विचारके वहांके तम प्रकाशपर ध्यान दीजिये.) मंद प्रकाशका नाम तम मानें तोभी प्रकाशका अभाव तम, यही परिणाम आता है और वोह उपर कहे अनुसार असिद्ध है. तममें गंध, रस, स्पर्श नहीं हैं किंतु उनसे अन्य प्रकारका है.जेसे एक खाली कमरेमें बिजली गरमी वगेरे पदार्थ मोजूद हैं तोभी गोचर नही होते परंतु उनके उद्भव होनेकी सामग्री होनेपर उद्भव होते हैं, ऐसेही तमभी वहां मोजूद है परंतु गोचर नहीं होता. उद्भवक सामग्री

नेपर गोचर होता है * ॥१२५॥

इस प्रसगमे उक्त गंधादि वा पृथ्व्यादि पदार्थोका और वक्ष्यमाण देश काल इत्यादि-
ओंका वैधर्म्यका तारन कर लेनेसे पृथक्त्व स्पष्ट हो जाता है उदाहरण—तम, पृथ्वी नहीं
गंध न होनेसे, जल नहीं शीत न होनेसे, प्रकाश नहीं नील होनेसे, वायु और गरमी
नहीं, स्पर्श न होनेसे, आकाश नहीं, सक्रिय होनेसे शब्द नहीं, श्रोत्रका विषय न
होनेसे, रंग नहीं, सूर्यके प्रकाशमें न रहनेसे, बिजली नहीं, धका वा प्रकाश न होनेसे,
आकर्षण नहीं, खेंच न होनेसे इसलिये इनसे भिन्न वस्तु है

चक्षुका विषय—रग रूप (प्रकाश आकार) तम आकाशस्थ बिजली, आवरण
संयोगादि

त्वचाका विषय—गरमी, शीत, (अप,) स्पर्श (वायु) दृश्याकार, माप, कठोरता
कोमलता, अमुक गेस.

रसनाका विषय—६ रस नासिकाका विषय—गंध. कानका विषय—शब्द.

मन बुद्धिका विषय—देश दैशिक और कालिक, परत्व अपरत्व, संख्या, दुःख सुख

अनुमानका विषय—काल, आकर्षण, गुप्त विद्युत.

यथायोग्यता विषय—गैसरूप पदार्थ. कोई किसी, कोई किसी इंद्रियका विषय और
कोई किसी इंद्रियका विषय नहीं.

अविषय—सबके मूल स्वरूप

आत्माके विषय—मन, रागादि और भेद (वैलक्षण्य).

जहां मिश्रण हो वहां उनकी योग्यता (गुणादि) से विभाग जान लेना चाहि
यथा गंध, रस, रूप, रंग, स्पर्श यह पृथ्वी मिश्रणमें है गंधसे इतर ४ अप मिश्र
रूपादि तैजस् मिश्रणमें, और स्पर्श वायु मिश्रणमें है यह तमाम तत्त्व एक गृहमें त
गृहमें आते जाते रहते ह जैसे के सूर्यमंसे गरमी रंग प्रकाश आते और जाते
परन्तु जो भारी रूपमें होते हैं वे गृहकी आकर्षणसे बाहिर नहिं जाते इनके
जानेमें व्यापक शेषा (इथर) की योग्यता और स्वकमी कारण है ॥१२५॥

तिनकाही कार्य स्थूल ॥१२६॥ तिनके मिश्रणसेही दृश्य ॥१२७॥ उ
सूक्ष्मही कार्य रूपमें स्थूल होते हैं ॥१२६॥ स्थूल मिश्रितमें पुनः
होता है जिसका रूप यह दृश्य ब्रह्मांड है

*तम पदार्थ है

कार्य द्रव्योंकी योग्यताके कारण द्रव्योंके विभाग करने जा सकते हैं —सुवर्णमें एक वोह वस्तु है कि जो चक्षु यन्त्र द्वारा विषय होती है, दूसरी वोह है कि जो रसना द्वारा विषय होती है, तीसरी वोह है कि जो स्पर्शकी विषय होती है. अन्य हो तो तिरोधित है. गंधकमें भी ऐसाही है. घ्राणका विषय भी उद्भव होता है. इसी प्रकार अन्य पदार्थोंमेंभी कुदरती यन्त्र द्वारा परीक्षा कर्तव्य है. हरेक पदार्थकी चार स्थिति होती है घट्ट (घनाकार–सुवर्णादि). प्रवाही (जलादि) वायवी (वायु, गेस आपादि). और सूक्ष्मी (दीपरूप आकाश जैसे सूक्ष्म–ईथीरीयल). सोना, चांदी गंधक घट्ट हैं अग्निसे द्रवत्वरूप, यह प्रवाही. हवामें उड जाय ऐसा रूप गेस (वायवी हवाई) और इससेभी सूक्ष्म हो तब सूक्ष्मी संज्ञा होती है. जब कार्य होते हैं, तब दृश्योंका इससे उल्टी रीति होती है यथा ओक्षजन और हाइड्रोजन गेस (हवाई) से पानी बनता है, पानीसे बरफ होता है. इसी प्रकार पहाड, पृथ्वी वगैरे वास्ते जानना चाहिये. मूल परमाणु सब विजातीय होते हैं. उनसे सजातीय मध्यम, विजातीय मध्यम बनते हैं जिनको द्व्यणुक, त्र्यणुक भी कहते हैं, और एलीमेन्ट भी बोलते हैं. उनसे स्थूल पदार्थ बनते हैं. जैसे दृश्य पृथ्वी, जल, तेज, वायु, गंधक, सोना, चांदि, पिलाटीनीयमादि सब विजातीय मध्यम हैं. मिश्रण दो प्रकारका होता है भौतिक, जैसे दृश्य लोहेके अणुओंका मिश्रण है जो सहेज कारणसे विभाग पा जाता है. जो वोह भौतिक सजातीओंका है तो उसे होमोजीन और विजातीयोंका है तो मिक्चर कहते हैं. दूसरा रसायणीय मिश्रण है जैसे कि ओक्षजन हाइड्रोजनके रसायणीय संयोगसे जल बना है. रसायणी संयोगसे एक दूसरे तत्त्व ऐसे मिल जाते हैं कि एक दूसरेकी अमुक योग्यता उद्भव अमुक तिरोधित होनेसे उनका मुख्य स्वरूप नहीं जाना जाता किन्तु नवीन स्वरूप होता जान पडता है और उस मिश्रणका पृथक्करण बडी मुशकलीसे होता है. ऐसे मध्यम मिश्रणको कम्पौन्ड कहते हैं. द्विअणुक त्रिअणुकका ऐसाही मिश्रण हैं. और इसी वास्ते व्यवहारोपयोगमें उनको तत्त्व कहते हैं. उदाहरणमें जलकी परीक्षा कर लीजीये. क, ख और ग यह विजायतीय अणु अमुक वजन के हैं जो क में ख उस पीछे ग मिलावो तो उनसे एक स्वरूप बनेगा. परंतु जो ग में क उस पीछे ख मिलावो तो इन तीनोंका पहेलेसे कुछ और स्वरूप होगा और तासीर मेंभी अंतर होगा. परीक्षा वास्ते एक वस्त्रको पानी, फिटकडी, रंग, दुध, खटाईमें क्रमशः डबोवे. दूसरे वस्त्रको पानी खटाई फिटकडी वगेरे ऐसे क्रम बदलके डबोवें तो फरक

होगा. सोना, तांबा, चांदी, जसद, इनकोभी क्रम बदल बदलके खंगड बनावे तो उनमें अंतर होगा. वैधकमें ऐसे प्रयोग स्पष्ट हैं. विचारना यह है के तत्त्व समान हैं के वल क्रम बदलनेसे फॉरममें वा तासीरमें अंतर क्यों पड गया. रसायणीय मिश्रणमें अणुओकी ज्ञात अज्ञात योग्यताका तिरोभाव उद्भव वहोत वारीकीके साथ होता है, ऐसी इस प्रकृति (तत्त्वों)की योग्यता है. यही अंतर होनेका कारण है. उक्त सूक्ष्म मिश्रणसे पुनः और मिश्रण बनता हैं जिसे पिंड बोलते हैं. जैसेके ग्रह, उपग्रह, शरीर, पहाड, अन्न, लोही, वीर्य आदि हैं. वर्त्तमानके पदार्थ विज्ञानमें उसे तत्त्व कहते हैं कि जिनका पृथक्करण न हो सके. अर्थात् रसायणीय प्रयोग द्वारा जो पृथक्करण करें तो वैसे के वैसे निकलें. जैसे गंधक, सुवरणादि. वस्तुतः यह विजातीय मध्यम पिंड हैं.

देश और काल विभु ॥१२८॥ योग्यता यथा संख्या अवकाशत्व और औपाधिक क्षणिकत्व प्रतीति ॥१२९॥

देश (आकाश) और काल विभु परिमाण वाले अमूर्त्त पदार्थ हैं ॥१२८॥ आकाश में अवकाशकी और कालमें औपाधिक क्षणिकत्व भावकी योग्यता है ॥१२९॥—गति प्रवेश आकाशका लिंग है याने जिसमें प्रवेश होता है वा गति करनेका अवकाश मिलता है उसे आकाश कहेते हैं पूर्व उत्तर कालका लिंग है याने गतिके आरंभ अन्तका अन्तर. यह पर, यह अवर, ऐसा व्यवहार देशका बोधक है यह पहिले, यह पीछे, यह व्यवहार कालका बोधक है. ॥

एक पक्ष देश कोई वस्तु है, ऐसा नहिं मानता. ब्रह्मांडमें परमाणुक ठस हैं, मालाके मणिये समान एक पीछे चलता है. ऐसे बताता है १. दूसरा आकाश शून्य है, कुछ वस्तु नहिं, यूं कहता है २. एक कहता है के ब्रह्मसे उसकी उत्पत्ति याने ब्रह्मका रूपांतर है ३. एक पक्ष काल कोइ वस्तु नहीं मानता ४. दूसरा कहता है कि काल क्रिया होनेसे कल्पना मात्र है ५. एक देशकालको मगज वा मनका प्रभाव मानता है, बाहिर कुछ नहीं है ऐसा कहता है ६. इत्यादि पक्ष हैं.

परंतु देश कालके विना पदार्थका ज्ञान नहीं होता. तिस सहित होता है, यह सब को स्वीकारना पडता है. समाधी, मूर्च्छा, सुषुप्तिमें देश कालका भान नहीं होता, उत्थान पीछे पूर्वोत्तरको, जो बताता है वोह काल, शरीरकी वा मनकी जिसमें गति सो देश जान पडता है.

देश काल नहीं, ऐसा कहना वा मनमें कल्पना करना, यही दोनोंको सिद्ध कर

है क्योंकि मन वा शब्दकी गति और पूर्वोत्तरका बोध होता है. ब्रह्म निरवयव गीग है. उसका रूपांतर नहीं हो सकता तथा ब्रह्म चेतन है और यह दोनो जड निःशून्य-ज्ञेय) है, इसलिये उसके कार्य नहीं. मन वा मगजका प्रभाव-इम्प्रेशन वा ल्पनाभी नहीं, क्योंकि एक अंधा, सिंदूकमें कीली ठोके तो वोह अंदर जाती है अथवा ब्द बोलके पहेले यह कहा था, अब यह कहता हु, ऐसा व्यवहार करता है. दोनो संयोगमें अकेले मगज वा मनका प्रभाव नहीं जान पडता और कार्य होते है, अतः शरीरके भीतर है, वाहिर नहीं, वा मगज मनका प्रभाव वा इम्प्रेशन वा कल्पना है, ऐसा नही मान सकते. हरकोई अधार्मी अपने शरीरका परिमाण (छोटा वडा) होना और उमरका समय अनुभव करता है काल, क्रियाके आरंभ और अंतका विभाजक है इसलिये क्रिया द्वारा कल्पित नहीं. आकाशका रंग रूप नहीं है अतः चक्षु मात्रका विषय नहीं है, कालभी किसी इंद्रियका विषय नहीं है किंतु दोनो उपाधी संबंधसे बुद्धिके विषय है सृष्टिके आरंभ पूर्व प्रकाश विभक्त तिरोभित होनेसे सब परमाणु तमावृत्त होने योग्य है. जब परमाणु इकठे हो वा अंतर सहित गतिवाले हो तब आकाश जान पडता है, यही उसकी उत्पत्ति है. और गतिके पूर्व उत्तर क्रम होनेसे अति सूक्ष्म जो काल उसका भान होता है, यहि कालकी उत्पत्ति है सूर्य चंद्रादि उसके उत्पादक नहीं है ॥ भूत वर्तमान भविष्य, यह ३ संज्ञा क्रिया स्थितिकी अपेक्षासे कल्पे जाते है. परत्व, अपरत्व (पर--अवर पहले—पीछे) यह देश कालके गुण वा अवस्था नहीं है किंतु व्यवहारार्थ बुद्धिकी कल्पना है. जो कालमें क्षणिकत्व माने तो गत् काल अनंत तथा अनागत् अनंत, ऐसी व्याघात कल्पनाका स्वीकार होगा इसलिये गत् काल कहा गया भविष्य कहासे आया, ऐसा क्षणिकत्व जो कालमे जान पडता है सो तो गतिका क्षणिकत्व है और संबंध होनेसे कालमे जान पडे ऐसी उसमें योग्यता है वस्तुत. कालमें गति होती है परंतु कालके स्वरूपकी गति नहीं होती वोह अक्रिय है देशवत् व्यापक और उससेभी सूक्ष्म है अनुभव मात्रका विषय है. दशा कोई वस्तु नहीं है. पदार्थोंकी अपेक्षाको लेके व्यवहारार्थ कल्पित संज्ञा है. यथा पूर्व उत्तरादि सूर्यकी और दाहनी बायी मुखकी अपेक्षासे संज्ञा है ॥१२९॥

संयोगादि जन्य अवस्था ॥१३०॥ रागादिभी ॥१३१॥ संयोग, विभाग, (वियोग) द्रवत्व, कोमलत्व, कठोरत्व, वेग (गति) स्थैर्य, प्रभाव (असर—इम्प्रेशन, ईफेक्ट—लागनी—फीलिंग—तासीर) और परिणाम यह तो पदार्थ (द्रव्य वा गुण) नहीं है किंतु द्रव्योंकी जन्यअवस्था है. ॥१३०॥ तद्वत् राग, द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान,

संस्कार यह आठमी अवस्था विशेष है. ॥१३१॥ एक स्थितिमें दूसरी स्थितिमें आनेका नाम **अवस्था** है. औक्षजन, हाईड्रोजन मिलने पर उनकी योग्यताका उद्भव तिरोभाव होनेसे जल बनता है, यह उनकी उत्तर अवस्था है. जलकी बरफ. अग्निमें कनकादिका द्रवत्व होना, घटके पानीको निकालके उसमेंही फेर घटमें भरनेसे पूर्व स्थितिका फेरफार होना, जलमें जलका दूसरा टीपा मिलके नवीन जुन्थ होना, रबडका संकोच विकास पाना, शरीर वा दरख्तका न्यूनाधिक होना यह सब अवस्थाके उदाहरण हैं. **संयोग**—दोका अंतराय रहित मिलनेका नाम संयोगावस्था. जेसे दो प्रेस सिला एक दूसरेसे रगडें जब दोनोंमें छिद्र न रहें. दोनोंके मध्यतम प्रकाश और हवा जानेकोभी अवसर न रहे तब वे ऐसे जुडते हैं कि खेंचनेसेभी नही छूटने. निदान अंतराय रहित जुडनेका नाम संयोग. जब तक दोनोंके दरमियान प्रकाश तम हवादि कुछभी हो वोह संयोग नही कहाता. संयोग संयोगीयोंके एकदेशी वृत्ति होता है, सर्वदेशी नही. कहीं कभी एककी क्रियासे कहीं कभी दोकी क्रियासे होता है. यह दोनों साक्षात् संबंध कहाते हैं. यथा हस्त और लेखनीका संयोग. लेखनीका शरीरके अन्यांगके साथ अन्यतर कर्मज कहाता है. संयोग अनित्यही होता है. **विभाग**. संयोगका जुदा होना रूप स्थिति. संयोगका नाशक गुण, विभाग है किंवा कोई अन्य प्रकारकी वस्तु है ऐसा नहीं है. संयोगवत् तीन निमित्तोंसे होता है **द्रव्यत्व**—वहेनरूप स्थिति जेसे जल और कनक पतला होने पर वहता है. **वेग** जलदी और जोरसे गति नाम अवस्थाका नाम है. देश स्पर्श स्पर्शावस्थाका नाम गति हैं. **कोमल** जिसके स्पर्शमें त्वचाको कडापन न मालूम हो, पतला ज्ञात हो ऐसी स्थितिका नाम कोमलत्व है. **कठिन**—सख्त ज्ञात हो तो कठिनत्व हैं. सोनाका टुकडा कठिन है. पतरा कोमल है. गेस रूप हो तब अति कोमल है. निदान उपरोक्त गेसादिके अंतरगत् है. **स्थैर्य** जब गति न हो वेसी अवस्था. **प्रभाव** (भाव—इम्प्रेशन—इफेक्ट—असर—फीलींग) किसी अवयवी (मध्यम) स्वयंकीही एक दूसरेके संबंध, वा घात प्रत्याघात द्वारा स्थितिका रूपांतर तो हो परंतु स्पष्ट न मालूम हो ऐसे रूपकी सूक्ष्मावस्थाका नाम प्रभाव हैं. संस्कार जेसी अवस्था है. संस्कारावस्थामें दूसरेका अस्पर्श होता है. इसमें दूसरेका स्पर्श रहताभी है. संस्कार आद्यवस्थाकाही नाम है यह अवस्था वारंवार होती है मोम पर सिक्केकी छाप मारनेसे मोमका जो फारम (स्थिति—अवस्था) हुवा वोह, केमेरेकी प्लेट पर जो किरनोंने प्रत्याकृति की उससे प्लेटके मसालेका जो फारम हुवा वोह, पानी पर लकडी पडनेसे पानीका जो फारम, हुवा वोह, पदार्थकी किरनोंने चक्षुद्वारा शरीरके अंदर मगज वा मनके साथ संबंध पाया

उससे मगज वा मनका जो फारम (पदार्थरूपता वा ज्ञानरूपता) हुवा वोह, किसीके प्रतिकूल शब्दसे मनपर घात हो के मनका जो फॉरम हुवा वोह, शरीर पर प्रतिकूल घात होनेपर मगज वा मनका जो फॉरम हुवा वोह, प्रभावावस्था कहाती है. जुलाबादिकी दवा देनेसे दवाईने अंदर जाके जो काम (गरमी, मलकी गति, गुडगुडादि) किया उसे दवाईका असर (तासीर) कहते हैं—याने दवाईकी ऐसे उपयोगवाली अवस्था. यह सब प्रभावके उदाहरण कहे. परंतु कैानसा शब्द कहां लगाना इसमें अतर है. मगज और मनकी स्थिति बदलनेमे प्रभाव (इम्प्रेशन) लिखा जाता है. दुःख सुख रागादिमें फीलींग—असर प्रभाव शब्द लिखते है, दवाईके कार्यमें असर—इफेक्ट शब्दका प्रयोग होता है. और कहीं नियम विना लिखा हुवाभी देखते हैं. जिज्ञासुको चाहिये के यथा प्रसंग योजना हो ऐसा प्रकार वर्ते. **परिणाम** अवयवी—(उपादान—परिणामी) स्वयंका ही अथवा दूसरेकी साथ मिलके पूर्वसे और प्रकारका रूप पाना परिणाम कहाता है. जेसे जलका बरफ होना, कनकका कुंडल होना, किरनोंका प्रतिबिंब रूप होना, यह अविकृत (वोह परिणामके जो अपने पूर्वरूपमें आ जावे) परिणाम कहाता है. और दूधका दहीं होना, रसोंका शहद होना इत्यादि विकृत- (वोह परिणामके जो अपने पूर्व रूपमे न आ सके) परिणाम कहाता है. वस्तुतः परमाणुओके सयोग विभागका नामही परिणाम है. परमाणुके अज्ञात होनेसे, दृश्य मध्यम होनेसे और कार्य दृष्टिसे व्यवहारमे परिणाम शब्दका प्रयोग होता है.

भावादि गुण नहीं है.— नित्यमे नित्य गुण होते हैं. अनित्य नहीं. १ गुणका उपादान गुणही होता है द्रव्य (गुणी) नही २† तत्त्व (अणु विभु)का सयोग विभाग तो होता है (दूसरेसे जुडना, जुडके जुदा पड जाना यह सयोग विभागका भाव है) परंतु परिणाम नही होता. ३ इन तीन स्वतःसिद्ध सृष्टिनियमोंको ध्यानमें लेके विचार करिये के उपरोक्त **संयोगादि** ९ नित्यमेंभी नित्य नही होते किंतु उत्पत्ति नाशवाले होते हैं, यह सर्वको अनुभवसिद्ध है. इनका उपादान कोई गुण, मालूम वा सिद्ध नही होता इसलिये साफ स्पष्ट होता है कि सयोगादि द्रव्योकी स्थिति है जो निमित्त विशेषसे होती रहती है. व्यवहारार्थ उनको गुण वा अन्य नाम देना यह दूसरी बात है. यदि गुणको हठसे स्वरूपतः पदार्थ मानें तो जब **असंभव** सज्ञाके विशेषण रहित उसकी **स्वरुप संभावना** (द्रव्यादि, परिमाण, आकारादि, चिदादि, कालादि, भावादि,

†नियम १, २ के वास्ते देखना हो तो वैशेषिक १।१।१०॥२।१।२४॥२।५।२२॥७।१।३॥ देखो.

त्रिपुटी, आभासादि, गुणादि, गुण्यादि, कल्पितादि विविध) में १३० प्रकारसे परीक्षा करेंगे तो उनका परिमाण, काल, सावयव, निरवयव, जड चेतनादि रूप सिद्ध नहीं होगा (तत्त्व दर्शन अ. २ की स्वरूप संभावनाका उदाहरण देखो). अतः संयोगादि गुण पदार्थ नहीं. तद्वत् रागादि वास्ते ज्ञातव्य हैं. (इनके लक्षण पूर्ववत) वैसेही धर्म (उत्तम सुखके निमित्त संस्कार–अदृष्ट–अभ्यास) अधर्म (निकृष्ट दुःखके निमित्त संस्कार –अदृष्ट–अभ्यास) सादृश्यत्व, मिथ्यात्व, सत्यत्व, शौर्य, औदार्य, दया इत्यादिके प्रसंगमें यथायोग्य योज लेना चाहिये.

(नोट) पृथ्व्यादि मूल तत्त्वोंमें जो नित्य योग्यता (गुण शक्ति) हे वोह क्या और कैसी यह मनुष्य नहीं जान सका है· किंतु तत्त्वोंके कार्यसे उनका अनुमान होता है. यथा गुरुत्व, वायु, पदार्थको जिस योग्यतासे उडाता हे सो. विजली लोहेको जिस शक्तिसे खेंचती हे सो, इत्यादिका रूप नहीं जाना गया हैं.

स्नेह और गुरुत्वसे आकर्षणका व्याख्यान ॥१३२॥ अणु, और विभु अजन्य ॥१३३॥ संख्या, परत्व, और अपरत्व अपेक्षासे ॥१३४॥ अर्थ स्पष्ट ॥ सू. १३२ का व्याख्यान उपर सू. ९० से ९६ तकके और ११७ के विवेचनमें गुरुत्व और आकर्षणके प्रसंगमें आचुका हे ॥१३२॥ उपरोक्त गंधादि अणु तथा देशादि विभु परिमाणवाले हैं वे उत्पन्न नहीं हुये याने अनादि हैं क्योंकि अणु विभु तत्त्वरूप होते हैं ॥१३३॥ और मध्यम अणुके मिश्रणसे बनता है. अवस्थामी उत्पन्न नाशवान होती हैं और कल्पित संज्ञा अर्थशून्य होती हैं. व्यवहारार्थ कल्पना मात्र है. सारांश मध्यम अवस्था और संज्ञा तत्त्वरूप नहीं हैं ·॥१३३॥ एक दो वगैरे संख्या और परत्व अपरत्व कोई प्रकारके गुण वा स्वरूपसे पदार्थ नहीं हैं किंतु व्यवहार वास्ते एक दूसरेकी अपेक्षासे बुद्धिके कल्पित संकेत हैं. ॥१३४॥

असमान सजातिय रहित्वमें एककी, समान–सजातीयवालोंमें एकसे अधिक संख्या की कल्पना की गई है. तथा नित्यमें नित्यका और अनित्यमें अनित्यका व्यवहार किया जाता है यथा आकाश १ नित्य घ १ अनित्य, परमाणु अनेक नित्य घटादि अनेक अनित्य. जो संख्या गुण होता तो जेसे आर्य प्रजामें १ से ९ तक इकाई मानी हैं उससे अन्यथा चीन देशमें ३० तक इकाई न होती किंतु गुणके अनुकूल इकाई दहाई होती. परंतु ऐसा नहीं है. और जो संख्याको गुण माना तो पूर्वोक्त दोष आवेंगे. घटका एकत्व उत्पत्तिवाला, ईश्वरका अनुत्पत्तिवाला सजातीय परमाणुका द्वित्व त्रित्व अनुत्पत्ति वाला और घटादिका उत्पत्तिवाला, आकाश ईश्वरका एकत्व व्यापक, परमाणुओंका नित्य अणु,

धुका एकत्व परिछिन्न मध्यम अनित्य, घटत्वादिका अनेकत्व परिछिन्न मध्यम अनित्य. ईत्यादि रूप मात्रा द्वारा दिखावेगा. परत्व अपरत्वके संबंधमें उपर कहा गया है. ॥१३४॥

एक पक्ष उक्त पृथ्वीआदिको बाह्य वस्तु नहीं मानता किंतु बुद्धिका क्षणिक परिणाम अथवा मगजका इम्प्रेशन है, ऐसे मानता है. परंतु पृथ्वी आदि तत्त्व और उनकी योग्यता तथा देशकाल तम बाहिर न हों ऐसा युक्ति अनुभवसे विरुद्ध है. एक वृक्ष पर अनेक चढते हैं, मकान बनाते हैं और एक रास्ते सब चढते हैं, मख्खी और कीडी मिष्ट पर दोडती हैं, हाथमे तखते पर तसवीर खेंचते हैं, परस्पर हाथ मिलाके घटको खेंचते हैं, एक सूर्य अनेकोंका विषय है, फोटो खिचते हैं, मल बाहिर निकले तब गंध जान पडती है, यात्राको जाते हैं, परस्परके युद्धमे एक दूसरेको पीडा होती है, खाते पीते हैं, इत्यादि नानात्व और उपयोग देखते हैं, इसलिये पृथ्वी गंधादि किसी एक बुद्धिका आंतरीय परिणाम है किंवा पृथ्वीआदि द्रव्य बाह्य वस्तु नहीं अथवा क्षणिक हैं यह मानना कल्पना मात्र है. स्वप्नवत् मानें तोभी उक्त भेद स्पष्ट है.

एक पक्ष यूं मानता है कि एकही वस्तु अनेकोंको अनेक प्रकारकी जान पडती है तथा एककोही कालांतरमें ओर प्रकारकी जान पडती है. यथा एक व्यक्ति किसीको मित्र, किसीको शत्रु. वही एक कभी मित्र, कभी शत्रु; नीव कभी कटु; और सर्प विष कालमें मधुर कभी मधुरही कटु, कभी कीसीको एक वस्तु दो रूप (गोल लंबी) जान पडती है, कभी लाल श्याम, श्वेत लाल देख पडता है. इससे स्पष्ट है कि एक बात (रूप—प्रकार) नहीं मान सकते वा जिसको जैसा तैसा. यह पक्षभी ठीक नहीं है क्योंके लाखो निरोगीको एकत्र करके परीक्षा करोगे तो सबको समान विषय होगा. यथा अग्निदाह और शब्दादि विषय होना. परंतु जहां प्रमाता प्रमाण वा प्रमेयका दोष होगा वहांही अथवा अभ्यास विशेषसे अन्यथा जान पडेगी. इस असाधारण कारणसे बाह्य वस्तुका अनिश्चितत्त्व वा जिसको जैसा उसको वैसा, ऐसा नही मान सकते. हां, जीव सृष्टिमे ऐसा मान सकते हैं. यथा मित्र शत्रु आदिके भेद बदलते हैं सर्पनीको सर्प प्रिय, मनुष्यको नहीं यह बुद्धिके भेद हैं. वही सर्प रोग निवृत्तिसे अनुकूल मान लिया जाता है. दुष्ट विकारी लोहीभी अप्रिय हो जाता है. ऋतु वा रोग कालमें स्त्री अप्रिय हो जाती है. अन्यथा प्रिय होती हैं. आज्ञाकारी पुत्र प्रिय, कलंकित अप्रिय. निरोगी शरीर प्रिय, रोगी अप्रिय. हां, प्रमाणोंकी अपूर्णता (एक दूसरेसे न्यूनाधिकताभी) मान सकते हैं. (सू. १०० का विवेचन देखो) परंतु शरीरसे बाहिर वस्तु नहीं, वा बाह्य हैं परंतु सर्वथा

अनिश्चित किंवा वाह्य हैं परंतु जिसको जैसी जान पडे उसको वैसी. ऐसा सर्वांशमें नहीं माना जा सकता. ॥१३४॥

व्यवहारमें समानत्वकी सामान्य संज्ञा ॥१३५॥ विशेषाभाव वैलक्षण्यकी ॥१३६॥ अधिकरण तद्वैलक्षण्या समानतासे सामान्यादिका व्याख्यान ॥१३७॥ स्वरूप कल्पनामें अनवस्थादि दोषैं. ॥१३८॥

घटपटादि पदार्थोंमें जो समानता है इसका नाम जाति है. और वह संज्ञा मात्र हैं. वह संज्ञा व्यवहारमें समानत्वकी अपेक्षासे सिद्ध होती है. ॥१३५॥ विशेष और अभावभी कोई वस्तु जान नहीं पडती. ॥१३६॥ अणु वा विभु परिमाणवाले पदार्थमें लचक (लम्बा ओछा होना) नहीं होती, ईससे प्रतिकूल कल्पनाकीही विशेष और अभाव संज्ञा है. देशाधिकरण कालाधिकरणका भेदसे उसका अनुरुप व्याख्यान हो जाता है ॥१३७॥ *

सामान्यादिको स्वरूपतः कोई वस्तु मानें तो अनवस्था, आत्माश्रय, अन्योऽन्याश्रय, चक्रिका, अव्याप्ति, असंभव और अपरिमाणत्व दोष आते हैं ॥१३८॥ क और ग मनुष्यों पास ओक्षजन, वा सोना वा जलके समान अणु हैं उनको लेके इधर उधर करके उनके सामने रखो: वे अमुक मेरा है, ऐसे नहीं जान सकेंगे.. क्योंकि वे सजातीय समान हैं. इनमें जो समानता (समानत्वनाम धर्म) है इसका नाम जाति हैं. परंतु जो एक परमाणु है वोह दूसरा नहीं है. उनका स्वरूप और देशाधिकरण भिन्न भिन्न है यही उनमें विशेषत्व है. विजातीयमें अपने स्वरूपके असमानत्वका नामभी विशेषत्व है. जब एक अणु है तब उस विशिष्ट देश है, जब वोह-अणु वहां नहीं है, तब वोह देश उस विनाका है देशकी प्रतियोगी (उक्त अणु) रहितता जो वैलक्षण्य उस विलक्षणताका नाम अभाव है. यद्यपि देशका स्वरूप पूर्ववतही है परंतु अभावका ज्ञान प्रतियोगीकी अपेक्षा रखता है, इसलिये प्रतियोगी विशिष्टतासे रहित आकाशको विलक्षण पद दिया है. मधुरत्वमें अमलत्व, श्वेतमें श्यामत्व, शब्दमें स्पर्शत्व, स्पर्शमें शब्दत्व, गंधमें रसत्व, दुःखमें रसत्वादिका अभाव है वहां मधुरत्व विशिष्ट मधुर और मधुरत्व रहित अमलत्वादिका विलक्षणत्वही अभाव है. जो ऐसा न होता किंतु अभाव वस्तु होता तो जिसको अमलत्व ज्ञान नहीं उसेभी मधुरत्वादिमें अमलत्वादिके अभावका भान होता परंतु ऐसा नही होता. इसलिये प्रतियोगी अपेक्षित विलक्षणताहीकी अभाव संज्ञा

* जाति, विशेष और अभावादि, अणु, मध्यम वा विभू परिमाणवाले पदार्थो नहीं है वे तो व्यवहारमें समजनेके वास्ते कल्पित संज्ञा (Symbol) है. यथा प्राणि पदार्थोका कल्पित राम, घटपटादि नाम सदृश.—प्रकाशक.

है. जेसे प्रकाश विशिष्ट देश और प्रकाश रहित देशका जो वैलक्षण्य उस संज्ञाको वा स्वरूपाधिकरणके वैलक्षण्यको अभाव कहते हैं वेसेही सर्व प्रसंगमें घटित प्रकारसे योज लेना चाहिये. ॥ जेसे भेद (अन्योऽन्याभाव सामान्य और विशेष स्वरूपतः कोई वस्तु नही है वेसे अभेदभी कोई वस्तु नहीं हैं किंतु व्यवहारार्थ कल्पित संकेत हैं, एसा जान्ना चाहिये. भेद, अभेदकी तकरार व्यर्थ है.

सामान्य विशेषः—

योग्यतावाले द्रव्य (कारण वा कार्यरूप द्रव्य) का नाम व्यक्ति. यथा परमाणु ईश्वर और गाय. सबमें जो एक धर्म उसका नाम **सत्ता वा पराजाति**. यथा सबमें है, है (अस्तित्व). इस व्यवहारका जो हेतु सो सामान्य प्रत्यय वा **परा सत्ता-परा जाति**. अनेकोंमें जो एक धर्म उसका नाम **अपरा सत्ता** वा **अपरा जाति**. यथा द्रव्यत्व, गुणत्व सामान्य जाति. घटत्व पटत्व अपरा जाति. अमुकमें ही जो धर्म उसका नाम **विशेष**. यथा पृथ्वीत्व, अग्नित्व. पदार्थोंकी असाधारण रचना वा परिणाम अथवा विलक्षण अवयव संयोगोंका नाम **आकृति**. यथा घट. गायादिका आकार.

जाति या विशेषको स्वरूपतः पदार्थ मानें तो सिद्ध नही होता. याने तत्त्वदर्शनमें पक्ष तुलना वास्ते जो **स्वरुप संभावना** और **असंभव** संज्ञा बताई हैं उनमें असिद्ध **असंभव** को छोडके **स्वरुप संभावना** संज्ञाकी २० तराजुमें तोलें तो सामान्य वा विशेष पदार्थ सिद्ध नहीं होते. यहां उसमेंसे नमुना मात्र उदाहरण देते हैं:-

पदार्थ नित्य अनित्य दो प्रकारके हैं. जो जातिको नित्य मानें तो अनित्यमें नहीं होनेसे असिद्ध रहेगी क्योंकि धर्म धर्मी विना नही होता. याने जाति, व्यक्तिके आश्रित है. व्यक्ति -धर्मीके अभावसे जातिभी अनित्य होगी. जो अनित्य मानें तो नित्य पदार्थोंमें सिद्ध न होगी क्योंकि धर्मीको नहीं छोड सकती. जो उभयथा याने नित्यमें नित्य, अनित्यमें अनित्य मानें तो संकर दोष होगा. अनित्यकी उत्पत्तिका वेसा उपादान न मिलेगा. जो नित्यमें नित्य माने, अनित्यमे नहीं तो जातिवाद त्याग होगा अनित्य द्रव्य गुण कर्ममें जाति न होनेसे उनका ज्ञान व्यवहार न होना चाहिये परंतु होता तो है. ॥ जातिको जो **अणु परिमाण** मानें तो देशकाल विभु हैं उनमें न होगी. जो विभु मानें तो अणुमे न होगी. जो मध्यम मानें तो नाशवान ठेरेगी. नित्य (अणु विभु) में न होगी जो त्रिविध (तीनों परिमाण) मानें तो संकर दोष होगा.

जो जातिको एक मानें तो अणवादि वा द्रव्य गुणादि अनेक हैं उनमें न होगी. जो अनेक मानें तो ईश्वरादि एकमें न होगी.॥ जो अनेकोमे ही होती है एसा मानें तो

आकाश, सूर्य ईश्वर जाति रहित होंगे. जो अनेकोंमें न मानें तो सिद्धांत त्याग होगा. जबके जाति कुछ वस्तु है, तो जातिमें जाति होनेमे अनवस्था दोष आवेगा.

जो "आकाशत्व, ईश्वरत्व, सूर्यत्व जाती नहीं उपाधी होनेसें, घटत्व कलशत्व जाती नहीं तुल्य होनेसे, भूतत्व मूर्तत्व जाति नही मनमें मूर्तत्व होने भूतत्व न होनेसे तथा आकाशमें भूतत्व होने मूर्तत्व न होनेसे, सामान्यमें सामान्यत्व नहीं अनवस्था होनेसे, विशेषमें विशेषत्व जाति नहीं रूप हानी होनेसे, समवायादि संबंधमें समवायत्वादि जाति नहीं जाति, व्यक्तिमें समवायादि संबंध करके रहनेसे, अभावमें अभावत्व जाति नही संबंधी होनेसे" एसा मानें तो कल्पना मात्रके सिवाय अन्य सबूत नहीं मिलता और यह कल्पना हास्यास्पद ठेरती है, अभाव पदार्थ माननेवालेको अभावमें जाति मानी पडेगी. जब यूं है तो अन्योऽन्या भावोंके अभावप्रतियोगिक अभावोंमें अनवस्था दोष स्वीकारना पडेगा. नृसिंह अवतारवादीको संकर दोष मानना होगा. नाशवान घटमें घटत्व माननेसे उसकी उत्पत्ति पूर्व और नाश पश्चात् धर्मी विना धर्म रहेनेसे आत्माश्रय दोष वा असंभव दोष कबूल करना होगा. जो जाति व्यापक मानें तो अणुमें अणुत्व भाग होगा. उससे अधिक व्यापक रहना सिद्ध न होगा. शरीर, वृक्ष, पृथ्वी आदि दिनबदिन वढते रहेनेसे वा क्षीण होनेमे शरीरत्वादि जातिको मध्यम नाशवान कहना पडेगा. है है ऐसी सत्ता अस्तित्वकी वाचक है तहां बाध रहित होनेसे उनको द्रव्यत्वादि और न्यूनाधिक होनेसे पृथ्वीत्व, अग्नित्व, द्रवत्वादिको विशेष नाम देना यह बुद्धिकी कल्पना मात्र नहीं तो क्या? समानत्व, असमानत्वसे इतर व्यक्तिमें जातिका कोई लिंग नहीं पाया जाता. घटत्व पटत्वमें विशेष नामका कोई पदार्थ नहीं जान पडता है. देशान्तर विशिष्टता और असमानत्वका नाम ही विशेष कल्प लेते हैं. गो व्यक्ति है, अवयव संयोग आकृति है, गोत्व जाति है. ऐसा मानें तोभी व्यवहार सब व्यक्तिमें होता है. तत्वजन्य आकृतिका व्यवहारभी व्यक्तिमें होता है क्योंकि अवयवी कोई नवीन पदार्थ नही है. जो हठसे जाति मानें तो जाति अमूर्त होनेसे उसमे त्याग-ग्रहणही नहीं हो सकता. तथा मूर्त अमूर्तके, व्यवहारमें आवे ऐसा संबंध ही होना नही संभवता. पृथ्वीमें द्रव्यत्व, गुणत्व कर्मत्व, भूतत्व, घटत्वादि अनेक जाति साक्षात् वा परंपरा संबंधसे रहना मानते हो परंतु उसका सबूत नही मिलता. व्यक्ति (परमाणु, आकाश, गुण वगेरे) के स्वरूपमें जातिका स्वरूप अंदर वा उपर लिपटा हुवा वा एक देशमें रहता है इसका उत्तर नहीं मिलता. जो आकाशवत् विभु कल्पें तो उत्तरमें दोषही दोष रहता है.

स्वरूपाप्रवेश दोप सिवायमें—जाति न मानें तो एक गोका ज्ञान होगा; सबका नहीं. इस शंकाका समाधान स्पष्ट है अर्थात् जिसने अनेक गो न देखी हों उसकोभी एक ही गो का ज्ञान होगा. और जिसने अनेक समान देखी हों उसको अनेक व्यक्ति (समूहजन्याकृति) का ध्यान हो जायगा. मुरदेकी शुद्धि करना व्यवहार मात्र है. जातिका लिंग नहीं. मिट्टीकी गायमें दूध नहीं निकलना यह जातिका व्यावर्त्तक नहीं है किंतु उस व्यक्तिमें दूध उत्पादक अवयव नहीं हैं. इसलिये दूध नहीं है. जो दूध निकलना जातिका लिंग मानें तो मरी हुई वा वंध्या गायमेंभी दूध निकलना चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता. मनुष्यको मनुष्यत्व क्या जान पडता है, विचारो तो मननादि योग्यताकी असमानता. याने बंदरादि पशुमें वे योग्यता नहीं, इतनाही है. व्यक्ति आकृतिका ज्ञान जाति ज्ञानके आधीन नहीं है क्योंकि जो (मनुष्य—पशु) जातिका भान नहीं रखते उनकोभी व्यक्तिमे व्यवहार हो जाता है. जातिवत् विशेपकी परीक्षा कर्तव्य है.

क. ख. ग. घ. चार सजातीय परमाणु वा गोली योगीको दिखावें और उनके नंबर कल्प लें. उस पीछे उनमेंसे दो लेके दूसरी दो मिलाके फिर ले जाके बतावें तो पूर्व वाली दोके नंबर (यह वोह) और नवीनको जुदा करके (यह वोह नहीं) बता देगा. यह विलक्षणता जिससे (धर्मसे) जानी जाती है उसका नाम विशेप है और वोह नित्य द्रव्यों (विभु, परमाणु) में होता है. ऐसा मानें तोभी कोई विशेप नामका पदार्थ है यह सिद्ध नहीं होता. क्योंकि बुद्धिमान विद्वान जन्मांधभी ऐसा बता सकता है. विधेयभी बता देता है. श्वानभी अपने अदृष्ट स्वामीकी औरा को घ्राणद्वारा पहेचान लेता है. कवि मार्तंड श्री गट्टुलालजी प्रज्ञाचक्षुको कितनिक सजातीय वस्तु स्पर्श कराके उनकी संज्ञा कल्पके फेर अदलबदल करके उनको देते तो वोह पूर्वकी वस्तुको नंबर सहित बताके जो नवीन होती तो नवीन बताते थे. यहां कारण यह है कि सब पदार्थोंमेंसे तैजस् (विजली) का प्रवाह चलता है उसमें देश और स्वरूपाधिकरणत्वका अंतर होता है. यह सूक्ष्मी दर्शीकी प्रज्ञामें त्वचा द्वारा ग्रहण होता है. योगीको उससेभी ज्यादा सूक्ष्मता जान पडती है. इस प्रकार देशाधिकरण, स्वरूपाधिकरण और कालाधिकरण तथा इन विशिष्ट तैजस् (औरा) का वैलक्षण्य, यही विशेपता है. नहीं के सजातीय मूलोंमें कोई विशेप नामका गुण वा शक्ति वा पदार्थ है.

पदमें तो व्यक्ति, जाति वा आकृति वा विशेप जनानेकी शक्ति वृत्ति है ही नहीं किंतु अर्थ जनानेकी शक्ति संकेत भानमें हैं. याने अमुक पद अमुक संज्ञा वा

अमुक व्यवहार वास्ते है, इतना ही है. नित्य पदार्थ (ईश्वर परमाणु वगैरे) की समानता (है है.) वा असमानता (विभु परिछिन्न) यह स्वरूपाधिकरण विशिष्ट कोई वस्तु नहीं किंतु वैसा स्वरूप शाश्वत है, स्वरूपमे इतर कोई वस्तु नहीं है. जाति वा विशेष दु:खादि वा शब्दादि रूप नहीं वा उसमें दु:खादि शब्दादि नहीं, इसलिये बाह्य या अतर प्रमाणके विषय नहीं. परिमाण सिद्ध न होनेसे अथवा गुण वा गुणी न होनेमे वस्तु नहीं. इसी कारण व्याप्ति न मिलनेसे अनुमानके विषय नहीं. अतः सामान्य, विशेष बुद्धि कल्पित व्यवहार है.

सामान्य सत्ता (है है) ईश्वरका स्वरूप है, ऐसा मानना भक्तोंके वास्ते छोड दो. और वस्तु मानके उसका परिमाण (अनु, विभु मध्यम वगैरे) न बताना इनमे रहित उट पटाग बताना यह प्रकार शुष्क तर्कवादियोंको भेट कर दो हा, पदार्थोंके पृथक्करण वास्ते उत्तम कल्पना है, इसलिये जो जाति और विशेष वादके कल्पित नियमो समान उनका उपयोग किया जावे तो व्यवहार दृष्टिसे कोइ दोष नहीं जान पडता॥

अभाव.—

जाति और विशेषवत् अभावभी कोई वस्तु नहीं है. परतु अभाववादिका कथन यह है.—न इस प्रत्ययका वाच्य (शक्य) का नाम अभाव (गैरहाजरी) है. व्यवहारमे उसके नित्य अनित्य यह दो भेद और हरेक भेद, भाव प्रतियोगिक, अभाव प्रतियोगिक दो प्रकारका है. ॥ परमाणु परमाणुमें जो अन्योऽन्याभाव वोह नित्य है. घटपटका अन्योऽन्याभाव सो अनित्य है. पृथ्वीके परमाणुका अग्निके परमाणुमे जो अभाव है सो किंवा घटपटका अन्योऽन्याभाव है सो अभाव भाव प्रतियोगिक अभाव है इसी प्रकार अन्य अभावोंमें योज लेना. जिसका अभाव हो वोह अभावका प्रतियोगी जिसमें वोह अभाव वोह उस अभावका अनुयोगी कहाता है. जिस अभावका प्रतियोगी भाव रूप पदार्थ हो उस अभावका नाम भाव प्रतियोगिक अभाव है जिस अभावका प्रतियोगी अभाव हो उस अभावका नाम अभाव प्रतियोगिक अभाव है. अग्नि पृथ्वीके परमाणुमें जो अन्योऽन्य अभाव है इन अभावोका परस्परमें जो अन्योऽन्या भाव है सो किंवा पट और घटका अन्योऽन्याभाव है इन अभावोंका जो परस्परमें अन्योऽन्याभाव है सो अभाव अभाव प्रतियोगिक कहा जाता है क्योंकि अभावका प्रतियोगीभी अभाव है. इसी प्रकार अन्य अभावोंमें योज लेना

पुनः अभाव पाच प्रकारका है (१) घटकी उत्पत्ति पूर्व घटका अनादिसे अभाव था इस अभावका नाम प्रागभाव है. जब घट उत्पन्न हुवा तब वोह अभाव या नो

घट रूप हो गया इसलिये अथवा घटसे जुदा उसका प्रध्वंसाभाव हुवा इसलिये प्राग भाव अनादिसांत है. उपादानोंमें रहता है॥ नित्य परमाणुओंमें, अन्यका अन्यमें जो अभाव वोह **अन्योऽन्या भाव** है वोह अनादि अनंत होता है. अनुयोगीमें रहता है. नित्य स्वरूपमें उससे इतरका वा ईतर स्वरूपके प्रवेशका जो अभाव सो **अत्यंताभाव** कहाता है. वोहभी अनादि अनंत है. अन्योऽन्या भावमें षष्टी और इसमें सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है इतना मात्र दोनोंमें अंतर है. किसीके नाश पीछे उसका जो अभाव उसका नाम **प्रध्वंसाभाव** है. यथा घटाभाव पीछे घटका प्रध्वंसाभाव होता है. यह सादि अनंत होता है. अन्यस्थान (मुदग्रादि अधिकरण) न मिले तो अंतरक्षमें रहता है. भूतलमें घट है उसे दूसरी जगे ले गये तो भूतलमें घटाभाव पेदा हुवा पुनः घट लाये तो भाव हुवा पुनः ले गये तो अभाव पेदा हुवा. ऐसे अभावका नाम **साम्यकाभाव** है. यह उत्पत्ति नाशवान होनेसे सादि सांत होता है, अभावोंकी संख्यामें विवाद है परंतु अभाव कोई वस्तु नहीं. इसलिये मुख्य २ असमीचीनता दरसावेंगे. अभाववादि कहता है कि अभावसे ज्ञान होता है, अभाव प्रतियोगिक अभाव, अन्याभावोंका आश्रय होता है. जिस इन्द्रियद्वारा शब्दादिका ज्ञान होता है उसी द्वारा उसके अभावका ज्ञान होता हैं इसलिये अभाव पदार्थ है.

अभावकी असमीचीनता.

परंतु कोई प्रकारकाभी अभाव स्वरूपतः वस्तुरूपसे सिद्ध नहीं होता. याने तत्त्वदर्शनकी अध्याय २ में पक्ष तुलना वास्ते जो स्वरूप संभावना और असंभव संज्ञा बताई है उनमें असिद्ध असंभवको छोडके स्वरूप संभावना संज्ञाकी ३० तराजुमें तोलें तो अभाव वस्तु सिद्ध नहीं होती. यहां उसमेंसे नमुना मात्र उदाहरण देते हैं:—

जो अभाव वस्तु है तो उसका परिमाण होना चाहिये. तहां जो उसे अणु मानें तो परमाणुका अभाव आकाशमें न होगा. विभु परिणाम मानें तो आकाशका अभाव परमाणुमें न होगा. जो अणु विभुसे विलक्षण मध्यम (विचला मिश्रित) मानें तो नाशवान होनेसे नित्योंका आपसमें नित्याभाव न होगा और विभुमें न होगा. जो अनादि मानें तो सांत होना असंभव क्योंकि अनादि सांत नहीं होता. जो उसको सांत माने तो उसका उपादान बताना चाहिये. जो प्रध्वंसाभाव उसका उपादेय कहोगे तो उसे सादि अनंत नहीं कह सकोगे कारण के वोह सादि सांत होता है. अथवा प्रध्वं-साभाव पूर्वके उपादानकाही स्वरूप है अतः अनादि मानना पडेगा जो के अभाववादिको अनिष्ट है. जो पूर्व अभावके अभावको (घटादि समान) भाव रूप मानोगे तो असंभव-

दोष होगा क्योंकि अभावसे भावरूप नहीं बनते. जो अभाव, भावरूप पदार्थ है ऐसा मानें तो उसमें वजन और क्रिया और मान बताना पडेगा, परंतु ऐसा नहीं हो सकेगा. तथा कोई इंद्रियका विषय होगा परंतु वक्ष्यमाण कथन समान वोह इंद्रियका विषय नहीं है. जो अभावको अनादि मानें तो घटादि सादि पदार्थोंमें न होगा जो सादि मानें तो परमाणुमें न होगा. जो अनेकधा मानें तो परीक्षामें सिद्ध नहीं होता याने उपादान नहीं मिलता.॥ अन्योऽन्याभावोंका परस्पर अन्योऽन्याभाव माननेसे अनवस्था दोष आवेगा. जो प्रथमको दूसरेका और दूसरेको पहेलेका अभाव वा अनुयोगी वा प्रतियोगी मानें तो अन्योऽन्याश्रय दोष होगा. जो दूसरेको तीसरेका तीसरेको पहेलेका मानें तो चक्रिका दोष (अन्योऽन्याश्रय जेसाही है) आवेगा. इसलिये अभावोंका अनुयोगी (आश्रय) प्रतियोगी सिद्ध न होनेसे अभाव प्रतियोगिक अभावकी सिद्धि न होगी. इसी प्रकार अत्यंताभावादिकोंके अन्योऽन्यादि के स्वरूपमें दोष आता है क्योंकि अत्यंताभावकी मान्यतामी प्रतियोगी विना न होनेसे अन्योऽन्या भाव जेसा है. प्रागभावमानें तो हरेक परमाणुसे घट होना चाहिये, क्योंकि घटका प्राकभाव सर्व (त्र्यणुक, द्विअणुक वा परमाणु) में है. परंतु ऐसा नहीं हो सकता. प्रागभावसे भावरूप घट नहीं हो सकता क्योंकि अभावमें वजन नहीं है घटमें है. अब जो उसके अभावका प्रध्वंसाभाव नाम रखें तो घटाभावके पीछे घट प्रध्वंसाभावके प्रागभाव और घट प्रध्वंसाभाव इन दोनोंका अन्योंऽन्याभाव मानना पडेगा. जोके अभाववादिको इष्ट नहीं कारणके प्रागभागको ही प्रध्वंस माना है. जो घटके प्रागभावका प्रध्वंसाभाव और घटके प्रध्वंसाभावको भिन्न भिन्न मानें तो इनका अन्योऽन्याभाव अनादि अनंत न मान सकोगे किंतु सादि अनंत ठेरेगा जोकि असंभव है.॥ भूतलमें घट होने हुयेभी घटका अभाव होता है फेर साम्यकं क्या? कुछ नहीं. प्रागभावोंका अन्योऽन्यभाव अनादि माना पुनः प्रागभाव नष्ट होनेपर सो अन्योऽन्य अभावभी सांत ठेरा. परंतु अन्योऽन्याभाव तो अनादि अनंत मानते हैं अतः अभाव कल्पना मात्र है.

घटमें जो पटका अभाव (भेद) सो अभाव पटके अभाववाले घटमें है किंवा केवल घटमें है. अर्थात् वोह घट जिसमें पटका अभाव (भेद) उसके आश्रय विना अपने आश्रय (आत्माश्रय-स्वतंत्र) मे रहा हुवा है उस घट मात्रमें है? दोनो पक्षमें आत्माश्रय, अन्योऽन्याश्रय, चक्रिका वा अनवस्था दोष आवेंगे. ईसलिये भेद (अभाव) कोई वस्तु नहीं. अभावमें द्रव्यत्व, गुणत्व वा क्रिया न पाये जानेसे किसी इंद्रियका विषय नहीं इसलिये व्याप्ति न मिलनेसे अनुमानकाभी विषय नहीं, अर्थात् प्रमाणसिद्ध है.

जो यूं मानें कि परिमाण रहित अनादि सादिभाव रहित विलक्षण पदार्थ है तो इस अभावको शुष्क तर्कवादियोंको भेट कर दो. भला घटोत्पत्ति पूर्व पटमें घटका अभाव नही था, उत्पत्ति पीछे हुवा वोह पटमें कहांसे आ गया उसका उपादान क्या ? ईसका उत्तर नही मिलता. अभाव प्रतियोगीकी अपेक्षावाला अनुयोगीके आश्रय वा अनुयोगीका विशेषण भाव मानें तो भी उसमे स्वतंत्र क्रिया नही. किंतु अनुयोगी के आधीन है. यूं है तोभी उपादान विना उसकी उत्पत्ति नाश मानते हैं, यह केसी मान्यता? हांसी उपजावे ऐसी.

जेसे अभाव (भेद—अन्योऽअन्याभाव) वस्तु नही वेसे अभेद वा भावत्व भी स्वरूपसे भिन्न कोई वस्तु नही है किंतु स्वरूपाधिकरणके अस्तित्वका ही भावत्व वा अपनेमें आप अभेदत्व सज्ञा है. दूसरेसे असमानत्व, वा देश वैलक्षण्य वा स्वरूपाधिकरणत्वका नाम अभेद है जेसाके उपर कहा गया. भेद अभेदवादीके तर्कका नमूना (अभेदवादि) घटपट भिन्न ओर आकाश परमाणु भिन्न है. तो यह भेद भिन्नोंमें रहता है वा अभिन्नोंमे? भिन्नोंमे मानें तो ठीक नहीं क्योंकि भेदके रहनेसे पूर्व वोह भिन्नही नही हो सकते. उसके पहले कोई दूसरा अभाव (भेद) मानो तो वोहभी भिन्नोंमें रहता है वा अभिन्नोंमे? उभयपक्षमें उक्त दोष और अनवस्थादि दोष आते हैं इसलिये अभिन्नोंमें भेद नही रह सकता. (भेदवादि) अभेद भिन्नोंमें रहता है वा अभिन्नोंमे? जो अभिन्नोंमें मानें तो अभेदके रहनेमे पूर्व वोह अभिन्न नही हो सकते. जो किसी दूसरे अभेदसे अभिन्न मानें तो उक्त ओर अनवस्थादि दोष आवेंगे. और जो भिन्नोंमे अभेद रहना स्वीकार करे तो असंभव दोष है. अभेद जिसमें रहता है वोह ओर अभेद, भेदवाले ठेरेंगे. ॥ संक्षेपमे अभाव और भेद वा भाव और अभेद कोई वस्तु नहीं ठेरती जेसाके उपर कहा है.

अभाववादि अनुपलब्धि प्रमाका हेतु मानके अभावको पदार्थ मानता है सो भी ठीक नहीं. प्रतियोगीकी अपेक्षावाला देश वैलक्षण्य ही अनुपलब्धि ज्ञानका हेतु है. नही के अभाव विशेषण वा अभाव पदार्थ. और अभावका अभाव आश्रय मात्र कल्पना मात्र है गंधत्वादि का अभाव इंद्रियका विषय नही किंतु उपरोक्त वैलक्षण्य ही बुद्धिमे अभाव कल्पनाका हेतु है. इस रीतिसे अभाव कोइ वस्तु नहीं. हां पदार्थोंके पृथक्करणमे अभाव कल्पित सज्ञा हुये भी उपयोगी है. इसलिये कल्पना निषेधमें आग्रह नही है. किंतु अभाववादके कल्पित नियमानुसार उसका उपयोग करनेमें व्यवहारिक दृष्टिसे कोई दोष नही जान पडता. ॥ १३५ से १३८ तक ॥

पृथकत्व तदंतरगत ॥१३९॥ उभय परिमाण स्वरूपसे अन्य नहीं ॥१४०॥ सदादिवत् ॥१४१॥ संबंध व्यवहारार्थ कल्पना ॥१४२॥ सत्वादि अपेक्षित भेद ॥१४३॥ पृथकत्व भी कोई द्रव्य वा गुण वा स्वरूपतः कोई वस्तु नहीं है किंतु उक्त विशेष वा अभावके अंतरगत् है ॥ अर्थात् स्वरूपाधिकरणकी असमानता वा देशांतर विशिष्ट विलक्षणता है यह स्पष्ट ही है. ॥१३९॥ छोटेसे छोटे निर्विभागका नाम अणु परिमाण और बडेसे बडे असीमका नाम विभु (महत्) परिमाण है. यह दोनों परिमाण वस्तुतः स्वरूपसे इतर कोई प्रकारकी (द्रव्य वा गुण वा कर्म ईत्यादि) स्वरूपतः वस्तु नहीं हैं. ॥१४०॥ अणुसे बडे और विभुसे छोटे परिमाणका नाम मध्यम परिमाण है. मोटा पतला यह नाम गुरुत्व वा समूहकी अपेक्षासे है तद्वत ससीम लंबाई. इस-लिये मध्यम, पतला मोटा और लंबा यह चारुं परिमाण स्वरूपसे इतर वस्तु नहीं. अणु और विभुके अंतरगत हैं. ॥१४०॥ जैसे नित्य पदार्थमें नित्यत्व और सत्यमें सत्यत्व स्वरूपसे इतर कुछ वस्तु नहीं किंतु अबाधित होनेसे उसे सत कहते है. तद्वत् असत् वा अभाव पदार्थ नहीं. नहीका नाम असद वा अभाव है वैसे ही परिमाण भी कोई वस्तु नहीं है. ससीम असीम स्वरूपकी संज्ञा है. ॥१४१॥ समवाय (दोका नित्य साथ रहना) तादात्म्य (दोका ओतप्रोत रहना) व्यापक व्याप्य (व्यापकमें रहना) अभेद (दोका ओतप्रोत एक रूपसे रहना) संयोग (दोका मिलना जुडना) यह संबंधभी कोई पदार्थ नही है किंतु ऐसी स्थिति (अवस्था) का नाम व्यवहारसे संबंध रखा है. ॥१४२॥ जो पृथकत्वादिको पदार्थ माना जाय तो पृथकत्वका पृथकत्व, परिमाणका परिमाण, संबंधका संबंध मानना पडनेसे अनवस्था दोष आवेगा. स्वरूपमें स्वरूपका अप्रवेश है यह नियम बाधक होगा. अर्थात समवायादि संबंध ही सिद्ध न होगा. और पृथकत्व तथा परिमाणत्वके प्रवेशको सिद्ध न कर सकोगे. तथाहि संयोगादिको गुण माननेसें, विशेषादिको स्वरूप माननेमें जो दोष कहे हैं वे प्राप्त होंगे. अतः पृथकत्व और परिमाण तथा संबंध स्वरूपतः वस्तु नही है ॥१४२॥

सत्व, रज और तम यह तीनों कोई प्रकारके भिन्न पदार्थ नहीं है किंतु पदार्थोंकी अपेक्षासे भेद कल्पे गये हैं ॥१४३॥ यथा ज्ञानात्मक, शुद्ध, उत्तम, ज्ञान परिणाम, पारदर्शकत्व, शांति, इत्यादिकी सत्व संज्ञा है. क्रियात्मक, मिश्रित, मध्यम, क्रिया अवस्था, मध्यम चपलता इत्यादिकी रज संज्ञा है. शिथलतात्मक, मलिन, निकृष्ट वस्तु स्थिति, नपारदर्शकत्व, मंद, इत्यादिकी तम संज्ञा है. उदाहरणमें प्रकाशसत्व, काच रज और घट तम केवल प्रकाशमान अग्नि सत्व, उसकी गुप्त धूम सहित ज्वाला

रज, सधूम तम, धीरज सत्व, तेज रज, शौर्य तम. ॥ सत्व, रज और तमको गुण वा द्रव्य मानते हैं वा तीनोंके समूहका नाम वा ईनकी साम्यावस्थाका नाम प्रकृति (स्वभाव) रखा है उसका कारणभी यही है. और परिभाषाकी पद्धतिसे द्रव्य वा गुण वा अन्य संज्ञा देनेमें दोषभी नहीं है. यथा शब्दादि पंच विषय आकाशादिके गुण हैं, ऐसा एकने माना. दूसरेने आकाशादिके उपादान तत्व रूप माने हैं. सारांश पदार्थोंकी योग्यता, कार्य, स्थिति पर सत्वादिकी कल्पना है जो परमाणु मात्रमें है अथवा तीनोंका समूह हरयेक है ॥१४३॥

नोट

उपर गंधादि १० योग्यता, तम देशकाल अवस्था, सामान्यादि विषे जो बयान किया है उसको वेसा ही मान लेना असा आग्रह उचित नही है. कारण के दर्शनकारोंकी दृष्टि व्यवस्था पर और विज्ञानवादिकी दृष्टि उपयोग पर होती है. तत्त्ववेत्ताका आधार अनुभव पर रहता है. इसलिये दर्शनकारादि विवाद पर नहीं उतरते. अमुक स्त्री अमुक की उसपर उसका स्वामीत्व, यह कुदरतमें वा तत्वतः नहीं है परंतु उपयोगी सुखकारी होनेसे व्यवहारमें माना गया है इसी तरह आइडीया और व्यवहार उपयोगमें अंतरभी होता है. वैद्य और डाक्टरके निदानमें अंतर होता है परंतु दोनोंकी जुदा जुदा दवाई रोगको हटा देती हैं. शब्दादि विषयोंको अशिक्षित नही जानते तो क्या उनका उपयोग न करें? ईत्यादि प्रकारपर ध्यान रखके उपयोग विद्या (पदार्थ विज्ञान-सायंस) के प्रयोगद्वारा जिसमें विशेष उपयोग और प्रजाको सुख हो सो प्रकार स्वीकार लेना उचित जान पडता है. नही के फिलोसोफी वा तत्त्ववादके आग्रहमें तना जावें. व्यवहार परमार्थकी समानतामें इतना ही अतर है. ॥

अब मूल पदार्थोंके बयान पीछे उपादान प्रकृतिमेंसे ईश्वर शक्तिद्वारा सृष्टि उत्पन्न हुई और स्थित रहती है तथा प्रलय होता है उसका बयान होगा. उसके संबंधमें वस्तुतः यूं है कि ईश्वरकी अचित्य शक्तिद्वारा किस क्रमसे और कब रची जाती है और कब प्रलय होती है यह बात मनुष्य नहीं जान सकता किंतु प्रत्यक्ष व्याप्ति द्वारा अनुमानसे मान सकते हैं. और मानते हैं. वेसे ही यहां जान लेना चाहिये. आग्रह विना जिस व्याप्तिको लेके अनुमान होगा सो एक सूत्रमें कहते हैं.

सृष्टिकी उत्पत्यादि कार्यकारणादिकी व्याप्तिसे ॥१४४॥

वर्तमान सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लयका अनुमान कार्य कारणादिकी व्याप्तिसे किया

जाता है. ॥१४४॥ कार्य कारण १, अंगांगी २, अवयव अवयवी ३, उपादान उपादेय ४, परिणाम परिणामी ५, साधन साध्य ६, व्यापक व्याप्य ७, तादात्म्यवान ८, और समवाय संबंधी इन ९ में एक दूसरेकी व्याप्तिसे एक दूसरेका अनुमान हो जाता है ऐसेही यहां सृष्टि उत्पत्यादिके प्रसंगमें जान लेना चाहिये.

१–जितने कार्य बुद्धिपूर्वक सनियम देखते हैं वे किसी ज्ञानवान कर हुये देखते हैं और किसीकी इच्छासे होते हैं. तथा उसमें कर्ताका उद्देश होता है तथा जितने कार्य होते हैं वे पूर्वमें न थे और उपादानमेंसे बने वा रचनामें आये इस व्याप्ति (निमित्तकारण, उपादानकारण, इच्छा, उद्देश, उपयोग) से यह अनुमान होता है कि ब्रह्मांड रूपी कार्यका कोई निमित्त, उपादान है और इच्छा पूर्वक किसी सफल उद्देशसे रचा गया है, और उपयोग होता है.

२–गृहोंके अंग टूटके पृथ्वीमें पडते हैं उससे गृहरूप अंगीका अनुमान होता है.

३–जल उपादेयसे उसके उपादान औपजनादिकी योग्यताका अनुमान हो जाता है.

इत्यादि व्याप्ति द्वारा सृष्टि रचनाका अनुमान हो जाता है. उस अनुमानक उपयोग आगे लिखते हैं:—

आरममें ईश इक्षणासे अव्यक्तमें गति ॥१४५॥ तीनोंकी सफलता और जीव कर्म उसमें निमित्त ॥१४६॥ संयोग विभागसे नवीन आरंभ ॥१४७॥ यथा कर्म संस्कार रसायणीय मिश्रणसे सूक्ष्म स्थूल बीज पुंज ॥१४८॥ उनसे यथायोग्य ग्रह धातु, मूळ और शरीर ॥१४९॥ सृष्टिके आरंभमें उक्त ईश्वरकी इक्षणासे अव्यक्त (मूल प्रकृति) में गति होती है॥१४५॥ ब्रह्मांडमें कोई वस्तु वा उसकी योग्यता निष्फल नहीं किंतु उपयोगमें आने योग्य है, इस नियमानुसार ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनोंकी उनकी योग्यता सहित सफलता होनी चाहिये, और जीव अपने आप व्यष्टि वा समष्टि संबंधी कर्मोंके फल नहीं भोग सकता, भोगनेमें परतंत्र है इस लिये जीवोंके कर्म और उक्त सफलत्व यह दोनों सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लयमें हेतु हैं. ॥१४६॥ ईश्वरकी शक्तिद्वारा योग्यतावाले परिछिन्न पदार्थोंके संयोग और वियोगसेही कार्य रूप नवीन नाम रूपवालोंकी रचनाका आरंभ होता है. ॥१४७॥ किन कर्मोंके किन अदृष्टोंके भोग वास्ते क्या सामग्री और योजना चाहिये यह सर्वज्ञ ईश्वरके ज्ञानसे बाहिर नहीं इसलिये उन कर्म संस्कारोंका भोग हो सके ऐसी रीतिसे ईश्वरकी शक्ति द्वारा तत्त्वोंका रसायणीय मिश्रण हुवा (दो अणुक, तीन अणुक इत्यादि बने) उनमें

सूक्ष्म और स्थूल बीज बने ॥ याने ऐसी योग्यतावाले बीज बने कि संबंध पानेपर उन द्वारा भोगानुकूल सामग्री चूंसाके साँचा बन सके और उपयोगमें आवे ॥१४८॥ उन बीजोंमें यथायोग्य (जैस के भोग और कर्मके लिये चाहिये वैसे) ग्रह उपग्रह, खणिज, वनस्पति और प्राणीयोके शरीर बने. ॥१४९॥ (इस प्रसंगमें उपादान अव्यक्त, निमित्त ईश्वर और उसकी इच्छा तथा जीवोंके कर्म, और असमवायी कारण मूल तत्त्वोंका संयोग है)

ईश्वरके ज्ञान इच्छासे सूक्ष्म अदृष्ट अव्यक्तका उक्त परिणाम याने संयोग विभाग बने यह आश्चर्यकी बात नहीं है. ईश्वर प्रसंगमें स्वप्न सृष्टिका उदाहरण दे आये है हरकोई कार्य (नवीन रचना-नाम रूप परिणाम) मूल तत्त्व वा मध्यम सजातीय विजातीय के संयोग विभागसे बनते हैं ऐसी व्याप्ति देखते हैं. वे रसायणीय वा भौतिक संयोगसे होते हैं, यह उपर कहा है. और ऐसा देखते हैं. अमुक प्रकारके संयोगजन्य बीजोंसे धातु, वनस्पति और शरीर होना देखते हैं. इसलिये उनसे ग्रह वगैरे बने, ऐसा अनुमानही कर सकते हैं क्योंकि ग्रह आदिमें वैसा रसायणीय भौतिक संयोग देख पडता है. वैसे बीज कैसे बने, उनमें क्या क्या तत्त्व हैं और क्योंकर मिले. यह आदमीको मालूम नहीं हुवा है और न वैसे बना सकता है टूटे हुये तारोंके टुकडे और पृथ्वीके पदार्थोंको जांचो, ग्रहादिके छोटे बडे गोलेमें स्नेह अस्नेह गुरुत्वादिकी योगताका नियम हो और उन नियमसे बीज बने हों, यह स्पष्ट ही हैं नहीं तो बीजोंमें संकर दोष (एकसे अनेक प्रकार होना) देख पडता. परंतु वैसा नहीं है. सृष्टि पूर्व प्रकृतिके परमाणु पसरे हुये थे वा सुषुप्तिवत् गोले समान बीज रूप थे, यह नहीं कहा जा सकता. हां असीम ईश्वरमें उससे अवर थे, इतना कह सकते हैं. स्थिर परमाणु ईश्वरकी शक्ति द्वारा एकत्र हो के वा गोलेमेंसे विभाग पाके रसायनीय वा भौतिक संयोग हुवा यह उभय पक्ष हैं. सृष्टि कार्य रूप है. इसलिये चतुर कर्तासे जन्य याने उसका आरंभ है इसलिये सृष्टिकी उत्पत्यादिका क्रम मानाही पडता है. देशकालकी उद्भवरूप उत्पत्तिका रूप उपर कहा गया है सृष्टि पूर्व परमाणु गतिमें वा लचकमें थे और उनसे स्वाभाविक सृष्टि हुई, यह सिद्ध नहीं होता किंतु जैसे स्वप्नसृष्टि अचित्य शेषामें निमित्तसे बनती है वैसा यहां योग्य प्रकारसे योज लेना. प्रकार उपर कहा गया है. स्वप्नसृष्टि, अज्ञान-अनेच्छा होते हुये पूर्वकर्म संस्कारवश अव्यक्त शेषासे रची जाती है, ईश्वरसृष्टि ज्ञान ईच्छा पूर्वक पूर्वकर्म संस्कारानुसार अव्यक्तमेंसे रची जाती है, इतना दोनोंमें अंतर है. विचारके व्यवस्था कर लीजीये.

जिनं कर्मोंका फल असंबंध हुये स्वयं भोगना पडे उनको व्यष्टि कर्म कहते हैं यथा रोग व्याधि और जिनका फल दूसरेके संबंधमें भोगना पडे वे समष्टि कर्म कहाते हैं. यथा वारसेमें रोग मिला, कुटुंबजन्य दुःख सुख, स्टीमरके तुफान वा डूबनेका दुःख, भूकंप वगेरे जन्य दुःख, हस्पतालादिसे, व्यापारसे वा राज्य व्यवस्थासे सुख दुःख, होते हैं. इत्यादि समष्टि कर्मके फल हैं. ॥१४९॥

शुद्ध मिश्रणसे अद्भूत मनस् ॥१५०॥ सत्वांशसे ज्ञानेंद्रिय ॥१५१॥ रज अंशसे कर्मेंद्रिय ॥१५२॥ तम अंशसे अन्य सूक्ष्म स्थूल ॥१५३॥ यथा विद्युत और ग्रहादि ॥१५४॥ परस्परके संबंधसे रूपांतर तरंगवत् ॥१५५॥ मिश्रणका शेष सशक्त शेपा ॥१५६॥ भावार्थ–प्रकृतिके शुद्ध (सत–रज–तम) से आश्चर्यकारक मनस् बना है ॥१५०॥ और सत्वांशसे श्रोत्रादि पंच ज्ञानेंद्रिय (ज्ञानतंतु) बने हैं ॥१५१॥ और रजो गुण अंशसे हस्तादि पंच कर्मेन्द्रिय (कर्मतंतु) हुये हैं ॥१५२॥ और तम अंशसे दूसरे. सूक्ष्म स्थूल दृश्य बने हैं ॥१५३॥ जेसेकि सूक्ष्म विद्युत और स्थूल ग्रह उपग्रह हैं वे तमांशसे बने हैं ॥१५४॥ तदनंतर जेसे समुद्रमें परस्परके संबंधमे तरंग अनेक रूपमें होते हैं वेसे मिश्रणोंके परस्परके संबंधसे अनेक पदार्थ कार्य होते रहते हैं ॥१५५॥ अव्यक्तके सूक्ष्म स्थूल मिश्रणसे जो शेष रहा हुवा भाग सो ब्रह्मांडमें चादर समान पसरा हुवा शक्तिमान होता है उसे शेपा (हिरण्यगर्भ, सूक्ष्मा) कहते हैं ॥ इस शेपाका विस्तार १६८ (सूत्र के विवेचनमें हैं) ॥१५६॥

† अंतकरणरण (मनस्) के कार्यसे जान पडता है कि वोह प्रकृतिके शुद्ध मिश्रण से बना है. तब ही उसमें ज्ञान करण और क्रिया या दोनों योग्यता हैं. इंद्रिय और जीवका उससे उपयोग होता है. मनको जो अणु मानते हैं वोह अनुभव परीक्षा और युक्तिसे विरूद्ध है जिन जिनके ज्ञानकी करण हे उन उन योग्यतावालेके सत्वांशसे पांच ज्ञान इंद्रिय (ज्ञानतंतु) बने हैं. क्रियाकारी होनेसे ५ कर्म इंद्रिय (कर्म ततु) रज अंशसे बनी है. सूक्ष्म प्राण सूक्ष्म वायु ओर स्थूल प्राण स्थूल वायुका रूपांतर है जो गरमी होनेसे, और जगे मिलनेसे हलका भारी होता हुवा शरीरोंमें आता जाता है, उससें शरीरका रसायणीय संयोग बना रहता है. और शरीर, वृक्ष, सूर्य, चंद्र विजली वगेरे तमाम दृश्य पदार्थ प्रकृतिके स्थूल तम अंशसे बने हैं.

† जेसे केमिस्टरी विद्याद्वारा रसायणीय और भौतिक संयोगसे शरीरादि बन्ना पाया जाता है. ग्रहोंमेंसे जो टूकडे जमीन पर आते हैं उस व्याप्ति द्वारा ग्रहके तत्वोंका अनुमान होता है वेसेही अंतःकरणके कार्यसे उसके स्वरूपका भान होता है.

पृथ्वी वगेरे ग्रहोंमें स्थूल स्थूल, सूक्ष्म सूक्ष्म और स्थूल सूक्ष्म याने मूर्त्त पदार्थोके संबंधसे अनेक प्रकारके पदार्थ और कार्य होते रहते हैं यथा—*बीजसे वृक्ष, उससे फूल फल बीज, वा बीजवाली शाखा वा बीजवाले अणु, रजवीर्य मलादिसे प्राणियोंके शरीर, शरीरसे यह सब, पृथ्वी आदिकी गति, गरमी, सरदी, बदल, वर्षा, विजली, ओले, धनुष, गरजना सूर्य चंद्र मंडल, सूर्यादिका ग्रहण, बरफ, भूकंप, वडवानल, भस्मके परबत, पहाड उडना तारा टुटना, पहाड बनना, गंधक सुवरणादि होना ज्वालामुखी, समुद्र इधर उधर होना जल प्रलय, बरफ प्रलय, भूकंपप्रलय, वस्ती जमीनमें जाना, नवीन जमीन जलमेंसे उभरना, बीज और प्राणीयोंके बीज पानी हवा, गरमी विजली द्वारा वा अन्य निमित्तोंसे इधर उधर होना; वहां अनेक वृक्ष शरीर फल बीज होना; जल, संयोग, घात प्रत्याघातसे स्वयं बनना वा मनुष्य बनावें, घोडेकी संतानमें यथेच्छा मनुष्य रंग पेदा करले, धोली कनेरके धोले फूल होते हैं उस कनेरको लाल फूलभी पेदा करे ऐसी बना लेना, वेलीको वृक्ष रूपमें बना लेना, एक दरख्तको दूसरे दरख्तका पेबंद लगाके फलको न्यूनाधिक रूपमे ले आना, अनेक प्रकारके गुलाब बना लेना, वा स्वयं बनना, फूल अनेक रंगके बनाना, वछेरे वगेरे संतान अमुक आकृति वा रंगकी कर लेना, अश्व गर्धवके मेलसे खचर होना, मनुष्यके बंदरके संसर्गसे पूंछ विनाकी बंदर जेसी संतान हो जाना, जोडीले पेदा होना, दो सिर छ अंगली वगेरे अवयववाली संतान होना, (गर्भमें दूसरे अपूर्ण शरीरके अंग जुड जाते हे) वा अंगहीन संतान होना (गर्भमें अपूर्ण सामग्री होनेसे ऐसा होता है), वायु विजली और अग्निसे यथेच्छा काम लेना¶ मन और जीव तथा इनका ओर शरीरका संबंध होना, जीवोंको कर्म फल भोगना और अपनी इच्छासे नवीन कर्म करना, समष्टि (दूसरे संबंधी) कर्मकी व्यवस्था हो जाना, *मनुष्यकी उन्नति अवनति होना. यथा रज वीर्य संग संबंध परिस्थिति और यथा संस्कार* माला मनाना वगेरे वगेरे कार्य और रूपांतर होनेका प्रवाह चलता है. इन कामोंमें ईश्वरके हाथकी अपेक्षा नही रहती क्योंकि उनके कारण और नियम पहेलेही ग्रहोंके मेटर और बीजोंमे योजाय गये हे. स्वप्न और शरीरके उदाहरणसे सहेजमें समझ सकते हैं. शरीरनामा ब्रह्मांडमें कितनेक काम केवल प्रकृति परिणामके हैं. जिसका मूल बीजमें

*वनस्पति विद्या खगोल विद्या वायु विद्या, भूगोल विद्या, भूस्तर विद्या, प्रकाश विद्या, शरीर शास्त्र वैद्यक विद्या मानस शास्त्र, विकासवाद और फिलोसोफीके अभ्याससे वक्ष्यमाण बातें ज्ञात हो सकती हैं.

¶ यथा बीजसे वृक्ष' इस पदसे लेके 'अग्निसे यथेच्छा काम लेना' इस दरमियानमें जितनी बातें लिखी हैं वे सब कालेजोंमें पढाई जाती है, देशी वैद्यक ग्रंथोंमें हैं. बाकी मानस शास्त्र और विकासवादमें हैं

रखा गया था. यथा गांठोंका और हृदय यकृतके काम. कितनेक कार्य केवल जीवके हैं यथा इंद्रियोका उपयोग. कितनेक उभयके आधीनमी हैं यथा उन्मेष प्राण चलना रोकना. कर्मतंतु हलना हलाना. इसी प्रकार इस ब्रह्मांडमें कितनेक कार्य ईश्वर शक्तिसे होते हैं यथा प्रकृतिकी योजना,-सनियम व्यवस्थापकता. कितनेक योजित प्रकृतिसे स्वयं होते हैं जैसेके बीजसे वृक्ष, वृक्षसे बीज इत्यादि तफसील उपर कही. कितनेक काम उभयके संबंधसे संबंध रखते हैं. यथा ग्रहादिका उपचय अपचय होना. (विशेष देखना हो तो न्याय वैशेषिक सांख्य वेदांत वैद्यक, शारीरक (फीजीकल) विद्या, भूस्तर विद्या, और सायन्स देखो.

कोई पक्षमें मन पदार्थ नहीं. कोईमें मन शरीरका परिणाम (ब्रेमेटर-मगज है, कोई पक्षमे अनुत्पन्न अमूर्त्त अनादि अणु परिमाण और स्थूल शरीरसे भिन्न है. किसी पक्षमें उत्पत्तिवान मध्यम, परिणामी और स्थूल शरीरसे भिन्न मूर्त्त सूक्ष्म पदार्थ हैं. परंतु जिसने माणस शास्त्रका अभ्यास तैजस् (मेस्मेरेझम) विद्या वा योग विद्याके प्रयोग किये वा देखे हैं उनको अंतिम पक्ष सिद्ध जान पडेगा. विचारो-अंदरमें मकानका नकशा, किसीकी छबी वा दीपककी शिखाका फोटो होने हैं. उनकी तदाकारता होती है. यह सब मध्यम परिमाणके प्रत्यक्ष सबूत हैं. दो ज्ञान एक समय न होनेका कारण मनकी एकाकारता और आत्माका एकही होना है, नही के मनका लिंग. (विशेष उत्तरार्द्धमें).

किसी पक्षमें १० इंद्रिय शरीरका भाग (दृश्य ज्ञानतंतु, क्रियातंतु) किसीमें स्थूल शरीरगत् सूक्ष्म शरीरका भाग और दृश्य चक्षु आदिको उनके गोलक, किसीमें अंतःकरणकीही शक्ति और उसका अभ्यास गोलकमे, ऐसे माना है. किसीके मतमें पुनर्जन्ममें स्थूलसमान नवीन सूक्ष्म शरीर (अंतःकरण इंद्रिय) मिलना, किसीमें पूर्व जन्मवाला सूक्ष्म शरीर वा चित्त मिलना, किसीके मतमें मोक्ष दशामें सूक्ष्म शरीरका न होना, किसीके मतमें होना, किसीमे केवल अंतःकरण (मन) का होना, इन्द्रीयोंका न होना माना है.

उपरोक्त विषय तर्क युक्ति मात्रका विषय नही है. योग और तैजस् विद्याकी परीक्षासे जान सकते है. अंतःकरण और उसकी योग्यता और अभ्यास इन तीन शब्दोमें उसका जवाब निकलता है. जब मनका अभ्यासी, मनका सामान्य ज्ञान प्राप्त कर ले तब सब फैसला हो सकता है, वहां तक विवाद वा परतः प्रमाणका विषय है. मुक्तिमें मनको मात्रा हांमी उपजाता है. मुक्तका अनादि अणु मन निरर्थक रहता है सो असंभव है (विशेष उत्तरार्द्धमें).

सब पदार्थ बनते विगडते रहते हैं. जीवोंकीभी चढती पडती तरंगवत् है और अंतमें चढतीके टोच (मुक्ति) पर पहोंचते हैं दरमियानमें एक जीव मनुष्य योनीसे पशु योनीमें जाता है तो दूसरा पशु योनीसे मनुष्य योनीमे आता है. इस प्रकारकी चढती पटतीमें क्रियमाण और संचित कर्म कारण हैं. पुरुषार्थ करते करते वासनाका अभाव हुये मोक्षको पाता है यह उपर कहा है. ॥१५६॥

जीव, मन और शेपासे स्वप्न ॥१५७॥ स्थूल युक्तसे जाग्रत ॥१५८॥

ईश्वर व्याप्य जीवात्मा, संस्कारी मनस् और शेपा—इन तीनोंके समूहसे स्वप्न सृष्टि होती है ॥१५७॥ ईश्वर व्याप्य उक्त तीनों और प्रकृतिके स्थूल युक्त (शरीर, ग्रहादि) यह चार मिलके जाग्रत सृष्टि होती है ॥१५८॥

शेष तदंतर्गत् ॥१५९॥ यथा आरंभमें कर्म नियम आधीन देवादिको बीजसे स्थूल प्राप्ति ॥१६०॥ एवं पुरुष स्त्री हुये ॥१६१॥ उनमें संस्कारी उपदेष्टाभी ॥१६२॥ उनसे मैथुनी सृष्टि. ॥१६३॥ कालांतरमें देशकाल स्थिति भेदसे उन्नति अवनति ॥१६४॥ तद्वत् आरंभमें अन्यभी ॥१६५॥ स्वप्नवत् रचनादि हुयेभी यथायोग्य ॥१६६॥ एवं उत्पत्यादिका प्रवाह ॥१६७॥ शंका समाधान स्वप्नसे ॥१६८॥

उपर जो संयुक्त विश्वासवादका भाग लिखा गया है उसके अंतरगत् औरभी कितनेक मंतव्य हैं (उनकी आवश्यकता न जानके नही लिखे) ॥१५९॥ (उदाहरणमे कुछ जनाते हैं) जेसेके सृष्टिके आरंभमें जब ग्रह उपग्रह बने तब मानवसृष्टि होनेके लिये जीवोंके पूर्व कर्मके नियमके वा कर्म नियमके अनुसार सुर असुर अदृष्टवाले जीवोंको बीजसे स्थूल शरीरकी प्राप्ति हुई इसका नाम अमैथुनी सृष्टि है. ॥१६०॥ इस प्रकार अनेक पुरुष स्त्री पेदा हुये ॥१६१॥ उनमें ऐसेभी थे कि जिन्होको मनुष्य उपयोगी ज्ञान पूर्वमें हुवा वोह उपस्थित था. ऐसे संस्कारी देव (विद्वान) शब्द संकेत—भाषा बनाके दूसरोंके उपदेष्टा हुये.॥१६२॥ उन अनेक जवान पुरुष स्त्रीसे मैथुनी सृष्टि चली ॥१६३॥ जेसा देशकाल और परिस्थिति प्राप्त होते गये वेसे कालांतरमें मानव मंडलकी उन्नति अवनति होती रही अथवा यथा देशकाल स्थिति उत्क्रांति अनुत्क्रांति होती है, वेसे हुवा. ॥१६४॥ देवी संपत्ति (देव—विद्वान) वालोंके सगी, संबंधी, संस्कारी और अनुकूल देश निवासी उन्नति पर आवें और उनसे दूर पडे हुये और प्रतिकूल देशमें हों वेसे अवनतिमें आवें यह स्वाभाविक हैं. क्योंकि देवोंमें विश्वास,

उनका संग रखनेवाले उनकी शिक्षा माननेवाले जो अनाडी (दस्यु-असुर, अनार्य) टोले (मंडल)मी हों तो वे (उनकी प्रजा) शनैः शनैः उन्नति पर आ सकते हैं. और देवोंके विरोधी उनसे दूर रहनेवाले यदि आर्य टोलेके हों तोभी वे (उनकी संतान) शनैः शनैः कालांतरमें पडतीमें आ सकते हैं. यह स्पष्ट ही है ॥१६४॥

आरंभमें उक्त प्रकारसे पशु पक्षी तिर्यक वगेरे प्राणी मात्र के अमैथुनी शरीर हुये उन युवासे मैथुनी सृष्टि चली ॥१६५॥ जेसे स्वप्न सृष्टिमें सब कुछ पूर्व संस्कारी जीव मनद्वारा यथा संस्कार सूक्ष्मामेंसे सृष्टि रचनामें आती है (बनती है) उपयोग होके लय हो जाती है वेसे सर्वज्ञ सर्व शक्तिमानकी शक्ति द्वारा प्रकृतिमेंसे यह ब्रह्मांड बनता है. उपयोग होके प्रलयको पाता है. स्वप्नसृष्टि ज्ञानपूर्वक नहीं. अनेच्छित प्रवाहवश होनेसे यथायोग्य नहीं और ब्रह्मांड सृष्टि ज्ञानपूर्वक सेक्षणा होनेसे यथायोग्य है. (इतना अंतर है) ॥१६६॥ इस प्रकार सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लयका प्रवाह है (यथा पूर्व पूर्व उत्तरोत्तर प्रवाह है) ॥१६७॥ इस आरंभवादमें जो शंका हो उनका समाधान स्वप्नसृष्टिके विवेकसे हो सकता है (यह विवेक भू. और त. द. में लिखा है) ॥१६८॥ स्वप्नसृष्टिमें अनेच्छित उपादानमेंसे यथा संस्कार केसी अदभुत सृष्टि हो जाती है तो सर्वज्ञ सर्वशक्तिमानद्वारा यह अदभुत ब्रह्मांड रचा जाय इसमें क्या आश्चर्य ? ॥१६८॥

जो वस्तु संयोगी है उसका आरंभ है. आरंभका निमित्त विशेष होना चाहिये. इसलिये पहेले संयोग वास्ते अमैथुनि सृष्टि माननाही पडती है. वर्तमानमेंभी वृक्ष, प्राणियोंमें अमैथुनी और पीछे मैथुनी सृष्टि पाई जाती है. अमैथुनीमें पूर्व क्रम (बीज) होनाही चाहिये. पानीमें अकेले एक प्रकारके अन्न और मिश्रित दानोंसे जो जीव पेदा होते हैं उनमें भेद है. मलमें अमैथुनी नाना प्रकारके पेदा होते हैं, वर्त्तमानमें प्रथम समान मानवसृष्टि अमैथुनी होनेकी अपेक्षा नही इसलिये नहीं होती. इसमें जगत्नियंताकी हिकमत होनी चाहिये. २० वर्ष तक खानेपीनेसे शरीर बढता है. पीछे उत्तम और ज्यादा खाते हुयेभी नही बढता. इसमें मूल बीज (पाया) मुख्य कारण है, वेसेही अमुक प्रसंग पीछे अमैथुनी प्रकार बंद पडे इसमें क्या आश्चर्य ? अमैथुनी सृष्टि पहेले कोन खानकी हुई यह बताना मुशकिल है. तथापि प्रथम जरायुज होना सिद्ध नही होता. उद्भिज, स्वेदजमेंसेभी अंडज वा अन्य प्रकारकी होना संभव है. याने बीज जमीनमें वा मेलमें वा अंडेमें वा अन्यमें आके वृद्धिको पाये हों, ऐसा अनुमान हो सकता है. जेसे वर्तमानमें देखते हैं के मेथी राईके दाने बोवें तो १९

दिनमें खाने योग्य हों परंतु मनुष्य उनको संस्कारी बनाके १९ मिनिटमें उगाके खा लेता है. आंब बोवे तो तीन वर्षमें फल देता है परंतु मानव उसकी गुठलीको अन्य औषधियोंमे संस्कारी बनाके डेढ घंटेमें छोटा वृक्ष छोटे फलवाला बना लेता है. खटे फलभी खाता है. मुरगीके अंडे २१ दिनसें बच्चा निकालते हैं परंतु मनुष्य तुरतके अंडेको कलद्वारा गरमी पहोंचाके चलने फिरने खानेवाले बच्चे एकदम पैदा कर लेता है. गन्नो, बड वगेरेकी संतान अनेक रीतिसे चलती है. जब ऐसी व्याप्ति है तो आरंभमें ईश्वरी शक्ति किंवा अन्य अज्ञात रीतिसे साथ रहे हुये वा भिन्न भिन्न रहे हुये स्त्री पुरुषके शरीरके बीजोंमे पूर्वके जीवोंका प्रवेश होके वे बीज एकदम बढ गये हों और जवान समान उनका उपयोग होने लगा हो तो क्या आश्चर्य? कीडे मकोडे होते होते उन्नतिक्रमसे बंदर हुये. उनमे अन्य पशु उनसे मनुष्य प्राणी हुवा, ऐसा क्रम सिद्ध नहीं होता. (देखो तत्त्वदर्शनका उत्क्रांतिवाद)॥ कर्मफल भोगार्थ सूर्य चंद्रादि बने वैसे ज्ञान प्राप्ति अर्थ सुशिक्षित देव जीवभी उत्पन्न होने योग्य हैं क्योंकि यह कर्म नियमके विरुद्ध नहीं है और न आश्चर्यजनक, पहेले सब पशु और अनार्य वा नीच थे, ऐसा सिद्ध नहीं होता और कर्मके नियमसेभी विरुद्ध है. (देखो. तत्त्वदर्शनमें नूतन भावनाका अपवाद) क्योंकि आरंभमे सब जीव समान कर्म (पशु जैसे अज्ञ) फलवाले उत्पन्न हों, ऐसा नियम सिद्ध नहीं होता और जो सिद्ध हो जाय तो उसके स्वीकारमें दुराग्रह अनुचित है ॥

जब पृथ्वीकी गति (१३ प्रकारकी गति) उसके प्रदेशोंके फेरफार, भूकंपप्रलय, जलप्रलय, हिमप्रलय पर ध्यान दिया जाय तो इस निश्चय पर आना पडता है कि पृथ्वी उत्पन्न हुये पीछे कोन जाने किस किस भागमें कितनी प्रलय हुई और कहां कहां कब कब वनस्पति, प्राणी मनुष्य सृष्टि होके सर्वथा नष्ट हुये वा कहां कहां कितनीवार नवीन सृष्टि का आरंभ हुवा. किंवा उस प्रदेशकी सृष्टि का भाग दूसरे प्रदेशमे आके फेर उन्नति वा अवनति के प्रवाहमे आया होगा (उक्त कारणसे) इत्यादि विषे ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता. यद्यपि योरोपके वर्तमान शोधक ज्योतिषी—भूस्तरविद्यावाले, शोध करते और उत्पत्ति नाश तथा कालक्रम का अनुमान बांधने लगे हैं और उनके मंतव्योंमें अंतर है तथापि पृथ्वी कब हुई और उसमें प्राणि सृष्टि कहां कहां वा एक जगे वा कब कब हुई इत्यादि बातों का यथार्थ रूपमें निश्चय होना असंभव जैसा जान पडता है. क्यों कि यद्यपि पृथ्वीगत सरदी गरमी के अनुमानिक मापसे, समुद्र नदियोंके संगम उपर पड बंधते रहते हैं उनके शोधसे, अनेक पदार्थों

र विद्यावाले शोधकोंने वनस्पति, प्राणी और मनुष्यसृष्टि की स्थिति तथा काल
। होने वास्ते जुग ठेराये हैं यथा वनस्पति, कोयले पत्थरका पहेला, पत्थरका दूसरा,
मेका, लेहेका (वर्तमान जुग) जुग. और मायंसके नियमाधीन उनके अंतर काल,
। अनुमान बांधा है उससे उनकी उत्पत्ति के काल का कुछ अनुमान होता है परंतु
मीनके फेरफारसे यह जुग सर्व स्थलमें समान नहीं पाये जाते. तथा तीन
कारणोंसे जहां तहां जब तब बरफकाल होता है उससे कितनीक अनुमानिक
शोधपरसी पानी फिर जाता है. इसी प्रकार काल जाने वास्ते विचार और भाषाको
संतानके विभाग किये गये हैं. यथा वेदकाल, ब्राह्मणकाल, उपनिषदकाल,
सूत्र वा दर्शनकाल, और पुराण (आधुनिक) काल. परंतु इनपर तकरार की जाती
है तोभी उस इतिहास का ठीक ठीक निश्चय नहीं होता. ×

आरंभके देवरूप उपदेष्टाओंका उपदेश जिसे श्रुति कहते हैं जिसके प्रथम
का कोई ग्रंथ वा साक्षी वा इतिहास दुनियामें नहीं मिलता, जिसके कर्ताका निश्चय
नहीं किंतु सुनते आये हैं, इतनाही कह सकते हैं जिसके तमाम पद यौगिक हैं
रौढिक नहीं, ऐसी जिस उपदेशमें अपूर्वता है, वैसे वाक्य स्वीकारने योग्य हैं और
पूर्वसंपादित होनेसे उस उपदेशवाला ज्ञान माननीय है, ऐसा स्पष्ट कह सकते हैं.
(पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर सृष्टिमें प्रवाहसे वा किसी द्वारा सीखते सिखाते चले आये हैं.

× शतंत॰ अथर्व वेदकी श्रुति-प्र ८ अनु. १ म. २१में सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलयके पूर्व याने सृष्टि स्थितिके चार अरब बत्तीस किरोड बतलाये हैं इस लेख और प्राचीन ज्योतिष की गणितसे आजतक एक अरब छानवे किरोड आठ लाख त्रेपन हजार वर्षके आसरे सृष्टि उत्पत्ति को हुये. सुप्रसिद्ध जियोलोजिस्ट प्रोफेसर हक्सली साहेबने सिद्ध किया है कि जबसे पृथ्वीमें वनस्पति पैदा हुई उससे आज तक एक अरब वर्ष गुजरे होने चाहिये पर्ल्ड लाइफ पृष्ट १८०॥ चीन [illegible] भी वेदके कहेके समीप समीप बतलाती है अर्थात् मनुष्य मंडलमें बादशाह बननेका समय दस किरोडके आसरे बताती है यह चीनके पहेले बादशाह होनेका समय है परंतु बायबल सृष्टिकी उत्पत्तिको पांच हजार वर्षही बताता है. कुरान संसार इस बातको तसलीम नहीं करता.

मि. तिलक ऋग्वेदके उषा प्रकरण और अग्निहोत्र-यज्ञप्रकारकी शोधद्वारा यह साबित करते हैं कि आर्य प्रजाका प्रथम निवास पृथ्वीके ध्रुवदेश (जहां ६ महिने का रात दिन होता है) में था. संभव है कि पृथ्वीके भाग परिस्थितिमें आनेसे ऐसा हो. इसराइली प्रजा (यहुदी, खिस्ती, मुसलमान) पहेले मनुष्यकी उत्पत्ति लंका वा अदनमें कहती है नवीन शोधकोंमें कोई एफ्रिका कोई काकेसस (कोहकाफ, तिब्बत, केलासके पश्चिम उत्तर कोन) पर्वतकी तरफ बताता है विकासवादं (इंग्लिस्तान भीमांके मगत) आ के मतमें विवाद है आर्य प्रजा तिब्बत हिमालय भागमें होना मानती है.

के मिलनेसे, प्राचीन गुफा और पहाडोंकी स्थितिसे तथा पृथ्वीके पडकी स्थितिसे वा नया किस तरह इस तकरार-विवादमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं है. यह आगे जानोगे.)

विचारीये—उपनिषदकार जैसे महऋषि १ मानवमंडलकी पूर्वोत्तर स्थिति प्रकृतिको ध्यानगम्य करके तमाम मानवमंडलके उपयोगी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके मार्गदर्शक किंवा चारो वर्णाश्रमके कानुन (स्मृति) कर्ता अनुभवी मनु जैसे राज्यऋषि २ जिनको फिलोसोफी अगाध और अन्य देशस्थ विद्वान भी जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं वैसे स्वतंत्र गोतम तथा कनाद तथा कपिल जैसे दर्शनकार और पतंजली जैसे स्वतंत्र परीक्षा मार्गदर्शक, जिसको (वेदको) प्रमाण रूपसे स्वीकारते आये हैं, ३ तथा जिस ग्रंथकी तमाम खंडोंमें प्रशंसा हो रही है जो आर्य प्रजाकी नीति धर्म कर्म ज्ञान और फिलोसोफीका नमूना है वोह याने भगवद्–गीता जिसको (वेदको) कबूल करता है ४ उस वेद ग्रंथमें अपूर्वता, सत्यता, उपयोगीता, प्रमाणता होनी ही चाहिये, ऐसा हमारा विश्वास माने यह स्वाभाविक है. जो ऋषिमुनियो की अगाध महिमाको जानते और वेद नही पढे हुये हैं उनके विश्वासमें भी उसकी महिमा प्रमाणता जगे कर लेती है. यह है तथापि जिसवाक्यमें कालक्रमसे फेर फार हो गया हो. किंवा भाषाके फेरफारसे तबके अर्थमें तकरार पड गई हो, वा मुख्यार्थ न जान सकनेके सबब पेदा हो गये हो अथवा किसी निमित्तसे वा अन्यथा कोई भाग सृष्टिनियम (नैसर्गिक वेद) के प्रतिकूल बोधक माना गया हो उस वाक्य का पूर्व सृष्टिको संपादित वा गुप्तशक्तिबोधक मानके उन वाक्यों पर विवाद करके उन्नति वा उपयोग रोकनेकी आवश्यकता नही है. किंतु दूसरी प्रकारसे शोध, उपयोग और परीक्षा कर्तव्य है. जो परीक्षा सिद्ध और उपयोगी विषयको बताता हो और सृष्टि नियमके अनुकूल हित और सत्यका बोधक हो ऐसा हरकोईका वाक्य स्वीकार करनेके योग्य है तो फेर वैसे श्रुति वाक्य के स्वीकार वास्ते तो क्या कहना है.

५ केवल एकके शब्द मात्र पर रहना, परीक्षा न करना अथवा भाषा मात्र पर अटक जाना यह उन्नतिकी आड है. जैसे कि उणादिको दरमियानमें न लें तो अष्टाध्यायी व्याकरणने भाषाकी हद बांधी, इसलिये संस्कृत भाषाकी उन्नति बंद पड गई. सारांश किसीके वाक्य मात्र वास्ते प्रथम बहुत सोच विचार करनेकी आवश्यकता है और समष्टिके हित उपयोग और सृष्टिके नियमको छोडके उसके अंधे भक्त बननेकी आवश्यकता नही जान पडती (इति उदाहरण).

आरंभमें नर मादा कैसे बने ? पूर्वपूर्वकी उत्तरउत्तर संतान ऐसे अनादि बीज

भूस्तर विद्यावाले शोधकोने वनस्पति, प्राणी और मनुष्यसृष्टि की स्थिति तथा काल ज्ञान होने वास्ते जुग ठेराये हैं यथा वनस्पति, कोयले पत्थरका पहेला, पत्थरका दूसरा, कासेका, लोहेका (वर्तमान जुग) जुग. और सायंसके नियमाधीन उनके अंतर काल का अनुमान बांधा है उससे उनकी उत्पत्ति के काल का कुछ अनुमान होता है परंतु जमीनके फेरफारमे यह जुग सर्व स्थलमें समान नही पाये जाते. तथा तीन कारणोसे जहा तहा जब तब बरफकाल होता है उससे कितनीक अनुमानिक शोधपरभी पानी फिर जाता है. इसी प्रकार काल जानने वास्ते विचार और भाषाकी संतानके विभाग किये गये हैं. यथा वेदकाल, ब्राह्मणकाल, उपनिषदकाल, सूत्र वा दर्शनकाल, और पुराण (आधुनिक) काल. परतु इनपर तकरार की जाती है तोभी उस इतिहास का ठीक ठीक निश्चय नहीं होता. ×

आरभके देवरूप उपदेष्टाओंद्वारा उपदेश जिसे श्रुति कहते हैं जिसके प्रथम का कोई ग्रंथ वा साक्षी वा इतिहास दुनियामें नही मिलता, जिसके कर्ताका निश्चय नहीं किंतु सुनते आये हैं, इतनाही कह सकते हैं जिसके तमाम पद यौगिक हैं रौढिक नहीं, ऐसी जिस उपदेशमें अपूर्वता है, वैसे वाक्य स्वीकारने योग्य है और पूर्वसंपादित होनेसे उस उपदेशवाला ज्ञान माननीय है, ऐसा स्पष्ट कह सकते हैं. (पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर सृष्टिमें प्रवाहसे वा किसी द्वारा सीखने सिखाने चले आये हैं.

× शतते० अथर्व वेदकी श्रुति-प्र ८ अनु १ म २१में सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलयके पूर्व याने सृष्टि स्थितिके चार अरब बत्तीस किरोड बतलाये हैं इस लेख और प्राचीन ज्योतिष की गणितसे आजतक एक अरब छानवे किरोड आठ लाख त्रेपन हजार वर्षसे आसरे सृष्टि उत्पत्ति को हुये. सुप्रसिद्ध जियोलोजिस्ट प्रोफेसर हक्सलीने साबित सिद्ध किया है कि जबसे पृथ्वीमें वनस्पति पेदा हुई उससे आज तक एक अरब वर्ष गुजरे होने चाहिये यल्ट लाफ पृष्ट १८०॥ चीन प्रजा भी वेदके कहेके समीप समीप बताती है अर्थात् मनुष्य मडलमें बादशाह पन्नका समय दस किरोडके आसरे बताती है यह चीनके पहेले बादशाह होनेका समय है परतु बायबल सृष्टिकी उत्पत्तिको पांच हजार वर्षकी बताता है कुरान सरीफ इस बातको तसलीम नहीं करता

मि तिलक ऋग्वेदके उस प्रकरण और अभिहास-पत्थरकी शोधद्वारा यह साबित करते है कि आर्य प्रजाका प्रथम निवास पृथ्वीके ध्रुवदेश (जहां ६ महिनेका रात दिन होता है) में था सभव है कि पृथ्वीके भाग परिवर्तनसे आनसे ऐसा हो. इसराइली प्रजा (यहुदी क्रिस्ती, मुसलमान) पहेले मनुष्यकी उत्पत्ति लका वा अदनमें कहती है नवीन शोधकोंमे कोई एशियाके काकेसस (कोहकाफ, तिब्बत, बेगालके पश्चिम उत्तर कोन) पर्वतकी तरफ बताता है विकासवादी (डार्विन सरीखे भौगोलिक भगत) आर्य के मतमें विचार है आर्य प्रजा तिब्बत हिमालय भागमें होना मानती है

के मिलनेसे, प्राचीन गुफा और पहाडोंकी स्थितिमे तथा पृथ्वीके पडकी स्थितिसे या क्या किस तरह इस तकरार-विवादमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं है. यह आगे जानोगे.)

विचारीये—उपनिषदकार जेसे महऋषि १ मानवमंडलकी पूर्वोत्तर स्थिति प्रकृतिको ध्यानगम्य करके तमाम मानवमंडलके उपयोगी धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके मार्गदर्शक किंवा चारों वर्णाश्रमके कानुन (स्मृति) कर्ता अनुभवी मनु जेसे राज्यऋषि २ जिनकी फिलोसोफी अगाध और अन्य देशस्थ विद्वान भी जिसकी प्रशंसा कर रहे हैं वेसे स्वतंत्र गोतम तथा कनाद तथा कपिल जेसे दर्शनकार और पतंजली जेसे स्वतंत्र परीक्षा मार्गदर्शक, जिसको (वेदको) प्रमाण रूपसे स्वीकारते आये हैं. ३. तथा जिस ग्रंथकी तमाम खंडोंमें प्रशंसा हो रही है जो आर्य प्रजाकी नीति धर्म कर्म ज्ञान और फिलोसोफीका नमूना है वोह याने भगवद्-गीता जिसको (वेदको) कबूल करता है ४ उस वेद ग्रंथमें अपूर्वता, सत्यता, उपयोगीता, प्रमाणता होनी ही चाहिये, ऐसा हमारा विश्वास माने यह स्वाभाविक है. जो ऋषिमुनियो की अगाध महिमाको जानते और वेद नहीं पढे हुये हैं उनके विश्वासमें भी उसकी महिमा प्रमाणता जगे कर लेती है. यूं है तथापि जिसवाक्यमें कालक्रमसे फेर फार हो गया हो. किंवा भाषाके फेरफारसे तबके अर्थमें तकरार पड गई हों, वा मुख्यार्थ न जान सकनेके सबब पेदा हो गये हों अथवा किसी निमित्तसे वा अन्यथा कोई भाग सृष्टिनियम (नैसर्गिक वेद) के प्रतिकूल बोधक माना गया हो उस वाक्य को पूर्व सृष्टिको संवादित वा गुप्तशक्तिबोधक मानके उन वाक्यों पर विवाद करके उन्नति वा उपयोग रोकनेकी आवश्यकता नहो है. किंतु दूसरी प्रकारसे शोध, उपयोग और परीक्षा कर्तव्य है. जो परीक्षा सिद्ध और उपयोगी विषयको बताता हो और सृष्टि नियमके अनुकूल हित और सत्यका बोधक हो ऐसा हरकोईका वाक्य स्वीकार करनेके योग्य है तो फेर वेसे श्रुति वाक्य के स्वीकार वास्ते तो क्या कहना है.

५ केवल एकके शब्द मात्र पर रहना, परीक्षा न करना अथवा भाषा मात्र पर अटक जाना यह उन्नतिकी आड है. जेसे कि उणादिको दरमियानमें न लें तो अष्टाध्यायी व्याकरणने भाषाकी हद बांधी, इसलिये संस्कृत भाषाकी उन्नति बंद पड गई. सारांश किसीके वाक्य मान्नि वास्ते प्रथम बहुत सोच विचार करनेकी आवश्यकता है और समष्टिके हित उपयोग और सृष्टिके नियमको छोडके उसके अंधे भक्त बनेकी आवश्यकता नहीं जान पडती (इति उदाहरण).

आरंभमें नर मादा केसे बने ? पूर्वपूर्वकी उत्तरउत्तर संतान ऐसे अनादि बीज

। हर सृष्टिमें नवीन ? प्रथम योनियोंके सचे पीछे मैथुनी सृष्टिका प्रवाह चला किंवा विकासवाद एकी रीतिसे एक प्राणीसे विकास पाते पशु पक्षी बंदर मनुष्य रूप व्यक्ति बनी ? अथवा ईश्वरने प्रथमही नर, मादाके शरीर बना दिये पीछे मैथुनी सृष्टि चली ? प्रथम बीज बना वा वृक्ष ? वा अनादिसे प्रवाह ?

वनस्पति वा प्राणीओंकी सृष्टिका आरंभ पृथ्वीके किस देशमें हुवा ? आरंभसे लेके आजतकके बीचमें प्राणीयोंकी सृष्टिका प्रलय हुवा वा हिमप्रलयादिके कारण देशांतरमें आने जाने रहे ? प्राणीके आरंभसे आजतक कितना काल हुवा ? इत्यादि सवालोंके जवाबमें भूमंडलके अनेक विद्वानोंकी भिन्न भिन्न कल्पना हैं और सर्वज्ञोक्त माने हुये ग्रंथोंमें भी इस विषे भिन्नमत हैं. परंतु मनुष्योत्पत्तिसे पूर्वका इतिहास मनुष्य नहीं जान सकता, हिमप्रल्यादिसे फेरफार होता रहा है, इसलिये उक्त सवालोंका यथार्थ उत्तर नही मिल सकता.

मैंने जो कुछ लिखा है वोह अपने विश्वाससे लिखा है. विश्वासमें युक्ति भी दी है तथापि वोह विश्वास दूसरेको मनाने वास्ते तैयार नहीं हो सकता.

सूत्र १९६ में स्वप्नवत् रचना कहनेका आशय यह है कि स्वप्नसृष्टि होनेमें संस्कारी मन जीव निमित्त कारण हैं. उनके हाथ पांव वगेरे नही हैं तो फेर उनके संस्कारद्वारा स्वप्नसृष्टि कैसे रची जाती है. सो भी अनेच्छित. यह बात शोधकको अवश्य विचारणीय है. वहां जीव और मन तथा शेषाकी योग्यतासे विचित्र सृष्टि रचाती है, तो फेर ईश्वर जैसे अचिंत्यशक्तिवाले करके ऐसी अदभूत विचित्र जगत् रची गई हो उसमें क्या संदेह हो सकता है ? नहीं. जड चुंबककी बिजली में इतनी योग्यता है कि लोहेको खेंचे और दूर करे: तो चेतन ईश्वरकी शक्तिद्वारा जगत् बने इसमें क्या आश्चर्य ? हो ही.

अब रही यह बात के ईश्वर कैसे बनाता है यह अगम्य बात है. हम अपने स्वप्नसृष्टिकी खोज ही यथावत् नही कर सकते तो उसके भेदके जान्ने की बात ही क्या करना. उपर जो सृष्टिरचनाप्रकार लिखा है वोह व्याप्तिद्वारा अनुमानिक है और जिज्ञासुकी वृत्ति संशयमें न रहे तथा यह विषय मनुष्यसे अगम्य है ऐसा उसको भान हो जाय इसलिये लिखा है. वस्तुतः हम इस भेदको नही जान सकते. स्वप्न के दृष्टांत देनेमें यह प्रयोजन है कि ईश्वर जगतकर्त्ता है, इस संबंधमें जडवादि कितने क सवाल कर बैठते हैं उनका उत्तर शोधकको मिलजाय (तत्वदर्शन अध्याय ४ और मु. में इसका विस्तार है) तथा यह विषय बुद्धिसे पर है यह जाननेमें आ जावे.

॥१९६॥ जेसे स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति, चिरकाल स्थाई और पीछे लय हो जाता है इसीप्रकार ईश्वरकी शक्तिद्वारा उपादानमेंसे जीवोंके कर्मसंस्कारानुसार सृष्टिकी उत्पत्ति चिरकाल (भोग काल) तक स्थिति फेर भोगकाल समाप्त हुये प्रकृतिमें लय (प्रकृतिरूप) हो जाती है.

तत्त्वोंका पहेला संयोग वा परिणाम सांख्यकी रीतिसे विकृति है. जो उसके उत्तरकार्यकी प्रकृति (कारण) है. सृष्टिके आरंभमें ईश्वरकी शक्तिद्वारा सब प्रकारके बीज बने. ईन तमाममें ऐसी योग्यता रखी गई के ये दूसरे परमाणुओंको खेंच सके. दूसरे उसतरफ खिचे, दूसरे बीजके अनुरूप हो जावें, अर्थात् उत्पत्ति और वृद्धिकी शक्ति बीजोमें रखी गई. जिनका परिणाम सब पशु, पक्षी, मनुष्य वनस्पति वगेरे है.

मूलतत्त्वोंके सयोगजन्य कार्यकी उत्पत्ति ऐसी मान्यताका नाम **आरंभवाद** है और समूहजन्यका रूपांतर होना-परिणाम पाना ऐसी मान्यताका नाम **परिणामवाद** है. यहां आरंभवाद है. यद्यपि ब्रह्मांडके हरेक कार्य पदार्थ (शरीर, दीपक, कुरसी, पृथ्वी, सूर्य वगेरे) क्षणक्षणमें बदलता रहता है ऐसा प्रवाह है परंतु सो एकदम (बौद्ध मत समान) क्षणिक नही है किंतु संयोग, स्थिति और वियोग क्रमशः होता रहता है. दूसरे ग्रहोंमें किसप्रकारकी सृष्टि है यह नहीं कहा जा सकता. अनुमानसे यथामति कल्पना की जाती है.

प्रलय किसप्रकार होती है याने ईश्वरकी शक्तिद्वारा किस क्रमसे प्रलय होती है यह नही कहा जा सकता क्योंकि तमाम ब्रह्मांडकी बनावटका ज्ञान मनुष्यको नहीं है तथापि दृश्यकी व्याप्तिसे कल्पना की जाती है.

यदि स्वप्नसृष्टिके उपादान, निमित्त, संस्कार, अधिष्ठान, उसकी अद्भुत सत्ता, संस्कारीमन, अभिमानी जीव इन सबको बारीक दृष्टिसे विचारा जाय और तटस्थ होके शोधा जाय तो सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लयकी व्याप्ति मिलनेसे यथायोग्य योजना हो सकती है. सृष्टिकी उत्पत्यादिका कुछ भान हो सकता है. ॥ १९७—१९८ ॥

नोटः—उपरोक्त प्रकृतिके पृथ्वी आदि पदार्थ, उनकी योग्यता, उनकी रचना, उनकी व्यवस्थाका विशेष विस्तार करनेका यह प्रसग नही है. विश्वासका मूल मात्र लिखा है जो कदाचित बयान करने लगें तोभी मनुष्य अल्पज्ञ और अपूर्ण होते उसको यथावत् नही मान सकता और न बयान कर सकता है.

(शंका) तुमने जो सृष्टिरचना संबंधमें उपर लिखा है किंवा दूसरे ईश्वरवादि

या हर सृष्टिमें नवीन ? प्रथम योनियोंके सांचे पीछे मैथुनी सृष्टिका प्रवाह चला ? किंवा विकासवाद एकी रीतिसे एक प्राणीसे विकास पाते पशु पक्षी बंदर मनुष्य रूप व्यक्ति बनी ? अथवा ईश्वरने प्रथमही नर मादाके शरीर बना दिये पीछे मैथुनी सृष्टि चली ? प्रथम बीज बना या वृक्ष ? या अनादिसे प्रवाह ?

वनस्पति वा प्राणीओंकी सृष्टिका आरंभ पृथ्वीके किस देशमें हुवा ? आरंभसे लेके आजतकके बीचमें प्राणीयोंकी सृष्टिका प्रलय हुवा वा हिमप्रलयादिके कारण देशांतरमें आने जाने रहे ? प्राणीके आरंभसे आजतक कितना काल हुवा ? इत्यादि सवालोंके जवाबमें भूमंडलके अनेक विद्वानोकी भिन्न भिन्न कल्पना हैं और सर्वज्ञोक्त माने हुये ग्रंथोंमें भी इस विषे भिन्नमत हैं. परंतु मनुष्योत्पत्तिसे पूर्वका इतिहास मनुष्य नहीं जान सक्ता, हिमप्रलयादिसे फेरफार होता रहा है, इसलिये उक्त सवालोंका यथार्थ उत्तर नही मिल सकता.

मैंने जो कुछ लिखा है वोह अपने विश्वाससे लिखा है. विश्वासमें युक्ति भी दी है तथापि वोह विश्वास दूसरेको मनाने वास्ते तैयार नही हो सकता.

सूत्र १६६ में स्वप्नवत् रचना कहनेका आशय यह है कि स्वप्नसृष्टि होनेमें संस्कारी मन जीव निमित्त कारण है. उनके हाथ पांव वगेरे नहीं हैं तो फेर उनके संस्कारद्वारा स्वप्नसृष्टि कैसे रची जाती है. सो भी अनेच्छित. यह बात शोधकको अवश्य विचारणीय है. वहां जीव और मन तथा शेषकी योग्यतासे विचित्र सृष्टि रचाती है, तो फेर ईश्वर जैसे अचिंत्यशक्तिवाले करके ऐसी अदभुत विचित्र जगत् रची गई हो उसमें क्या संदेह हो सकता है ? नहीं. जड लोहचुंबककी निलकी में इतनी योग्यता है कि लोहेको खेंचे और दूर करे; तो चेतन ईश्वरकी शक्तिद्वारा जगत् बने इसमें क्या आश्चर्य ? हो ही.

अब रही यह बात के ईश्वर कैसे बनाता है यह अगम्य बात है. हम अपने स्वप्नसृष्टिकी खोज ही यथावत नही कर सकते तो उसके भेदके जाने की बात ही क्या करना. उपर जो सृष्टिरचनाप्रकार लिखा है वोह व्याप्तिद्वारा अनुमानिक है और जिज्ञासुकी वृत्ति सशयमें न रहे तथा यह विषय मनुष्यसे अगम्य है ऐसा उसको भान हो जाय इसलिये लिखा है. वस्तुतः हम इस भेदको नही जान सकते. स्वप्न के दृष्टांत देनेमें यह प्रयोजन है कि ईश्वर जगतकर्ता है, इस संबंधमें जडवादि कितने क सवाल कर बेठते हैं उनका उत्तर शोधकको मिलजाय (तत्वदर्शन अध्याय ४ और ५ में इसका विस्तार है) तथा यह विषय बुद्धिसे पर है यह जाननेमें आ जावे.

॥१९६॥ जैसे स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति, चिरकाल स्थाई और पीछे लय हो जाता है इसीप्रकार ईश्वरकी शक्तिद्वारा उपादानमेंसे जीवोंके कर्मसंस्कारानुसार सृष्टिकी उत्पत्ति चिरकाल (भोग काल) तक स्थिति फेर भोगकाल समाप्त हुये प्रकृतिमें लय (प्रकृतिरूप) हो जाती है.

तत्त्वोंका पहेला संयोग वा परिणाम सांख्यकी रीतिसे विकृति है. जो उसके उत्तरकार्यकी प्रकृति (कारण) है. सृष्टिके आरंभमें ईश्वरकी शक्तिद्वारा सब प्रकारके बीज बने. इन तमाममें ऐसी योग्यता रखी गई के वे दूसरे परमाणुओंको खेंच सके. दूसरे उसतरफ खिंचे. दूसरे बीजके अनुरूप हो जावें, अर्थात् उत्पत्ति और वृद्धिकी शक्ति बीजोंमे रखी गई. जिनका परिणाम सब पशु, पक्षी, मनुष्य वनस्पति वगेरे है.

मूलतत्त्वोंके संयोगजन्य कार्यकी उत्पत्ति ऐसी मान्यताका नाम **आरंभवाद** है और समूहजन्यका रूपांतर होना-परिणाम पाना ऐसी मान्यताका नाम **परिणामवाद** है. यहां आरंभवाद है. यद्यपि ब्रह्मांडके हरेक कार्य पदार्थ (शरीर, दीपक, कुरसी, पृथ्वी, सूर्य वगेरे) क्षणक्षणमें बदलता रहता है ऐसा प्रवाह है परंतु सो एकदम (बौद्ध मत समान) क्षणिक नही है किंतु संयोग, स्थिति और वियोग क्रमशः होता रहता है. दूसरे ग्रहोंमें किसप्रकारकी सृष्टि है यह नही कहा जा सकता. अनुमानसे यथामति कल्पना की जाती है.

प्रलय किसप्रकार होती है याने ईश्वरकी शक्तिद्वारा किस क्रमसे प्रलय होती है यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि तमाम ब्रह्मांडकी बनावटका ज्ञान मनुष्यको नही है तथापि दृश्यकी व्याप्तिमे कल्पना की जाती है.

यदि स्वप्नसृष्टिके उपादान, निमित्त, संस्कार, अधिष्ठान, उसकी अद्भुत सत्ता, संस्कारीमन, अभिमानी जीव इन सबको बारीक दृष्टिसे विचारा जाय और तटस्थ होके शोधा जाय तो सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लयकी व्याप्ति मिलनेमे यथायोग्य योजना हो सकती है. सृष्टिकी उत्पत्यादिका कुछ भान हो सकता है. ॥ १९७–१९८ ॥

नोटः—उपरोक्त प्रकृतिके पृथ्वी आदि पदार्थ, उनकी योग्यता, उनकी रचना, उनकी व्यवस्थाका विशेष विस्तार करनेका यह प्रसंग नहीं है. विश्वासका मूल मात्र लिखा है जो कदाचित बयान करने लगें तोभी मनुष्य अल्पज्ञ और अपूर्ण होते उसको यथावत् नही जान सकता और न बयान कर सकता है.

(शंका) तुमने जो सृष्टिरचना संबंधमें उपर लिखा है किंवा दूसरे ईश्वरवादि

जो लिखते हैं सो क्या तुम और वे ईश्वरसे पूछके आये ? (उत्तर) किननोंका यह विश्वास है कि ईश्वरीय पुस्तक हैं उनमें ईश्वरने उपदेश किया है उसको मानके तदनुसार कुछ अपनी बुद्धिसे व्यवस्था लिखते हैं. कितनेक व्याप्तिवश अनुमानसे लिखते हैं. मेरा विश्वास यह है कि इश्वर मन बुद्धिका विषय नही तो उसकी योग्यता और उसका उपयोग मनुष्य नहीं जान सकता. और तमाम ब्रह्मांडका ज्ञान तथा उसके नियम और उसकी रचना मनुष्यके ज्ञानसे बाहिर है. परंतु जीवका स्वभाव है कि संस्कार और परिस्थिति अनुसार उसकी प्रवृत्ति हो तथा उस भावना अनुसार उसका परिणाम हो. इसलिये यथा बुद्धि शोध करके अपनी परीक्षा और विश्वास परीक्षकके समक्ष रजु करे. क्योंकि इसका परिणाम जीवनमें उपयोगी हो पडता है, यथा प्रस्तुत त्रिवादकी भावना धर्म और नीति तथा जगत् व्यवहारमें अन्य भावनाओंसे उत्तम है, ऐसा मै मानता हुं.

(नोट) इस कर्म उपासना प्रसगमें प्रकृतिके पदार्थोके वर्णन करनेकी सृष्टि उत्पत्ति लयके कथनकी जरुरत नहीं थी सू. ११७ से १६८ तककी आवश्यकी न थी) क्योंकि कर्म उपासनाके जिज्ञासुको इस विषय जानेको आवश्यकता नही है. तथापि वर्तमान प्रवाहको दृष्टिसे एक शैली लिखी है ताके जिज्ञासुको ज्ञान मात्र हो और इसलिये शंका समाधान खंडन मंडन छोडके संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया गया है ॥१६८॥

उपर कर्म योग प्रसंग विषे सू. ३६ वगेरेमें संचितभावका प्रकार लिखा है उसमें शंका होती है कि प्रायश्चितसे अनेक तमाम संचितोंका निषेध नही माना जा सकता. और शुद्ध संचितके फलसे उपरति होनेसे उसका भोग न हो ऐसा नही मान सकने और प्रारब्ध माननेकी जरूर नहीं इत्यादि शंकाके समाधानमें वक्ष्यमाण १६९ से के १७७ तकके सूत्र हैं. उसके पीछे १८५ तक मुक्ति प्रसंगी शंकाके समाधानमें हैं.॥

योगादिमें जो कष्ट सो मंद संचितका फल ॥१६९॥ और शुद्धि उत्तम संचितका ॥१७०॥ सेवा और उपकार जन्य सुख भी ॥१७१॥ प्रायश्चितसे नाश भी ॥१७२॥ फलकी अनुत्पत्ति दर्शनसे ॥१७३॥ किंवा अधिकारी निःसंचित वा अल्प संचितवान * ॥१७४॥ प्रतिकूलतामे प्रारब्धकी सिद्धि ॥१७५॥ स्मरणादिसे श्रेष्टता ॥१७६॥ जीवके विवेकसे ममत्वका अभाव ॥१७७॥

जो कर्मयोगी होता है उसके साधारण मंद संचितका भोग, (फल) योग साधनामें, नित्य नैमित्तक कर्म करनेमें और निष्काम परोपकार करनेमें जो कष्ट होता है सो है

*एक भविक=जो कर्म एक जन्ममें फल देने वाले हो उन कर्म समूहका नाम एकभविक और अन्य भवमें फल देनेवाले होते है उनका नाम अन्य भविक (योग भाष्य)

॥१६९॥ उसके उत्तम संचितका भोग (फल) उसके अंतःकरणकी शुद्धि हुई वा होती जाती है सो है ॥१७०॥ तथाहि पर सेवा करें उसमे और योगी निष्काम कर्म करे उसमे जो योगीको सुख होता है सो है ॥१७१॥ और प्रायश्चित करनेसेभी दुष्ट संचित नाश होते है ॥१७२॥ क्योंकि लोकमे प्रायश्चित करनेसे संचित फलका अभाव होना देखते है. ॥१७३॥

अथवा कर्म योग साधनेके योग्य वोह अधिकारी होता है कि जिसके दुष्ट संचित न हो किया हो तो साधारण-अल्प हो. क्रियमाणकी योग्यता होनेसे पूर्वके संचित न हो, ऐसाभी संभव है ॥१७४॥ अनेच्छित प्रतिकूलता (दुःख) आती है और भोगनी पडती है इससे प्रारब्धकी सिद्धि होती है सू. १०१-१०२ मे पुनर्जन्मकी सिद्धि की है उससेभी प्रारब्धकी सिद्धि होती है ॥१७५॥ सूत्र ४९ मे जो स्मरणादि (इष्ट स्मरण, तदनुवर्तन, तद प्रसन्नार्थ कृति) का उपदेश है उससे उत्तमता प्राप्ति होती है. यह भक्ति योगका फल है ॥१७६॥ उपरोक्त जीव स्वरूपके विवेक और कर्मयोग भक्तियोगसे जीवको संसारमे तो क्या बल्के स्थूल सूक्ष्म शरीरमे भी ममता नही रहती इसलिये शरीर त्यागने समय किसीमेंभी मोह नही होता. प्रवृत्ति मात्रमें उपेक्षा हो जाती है. जो कि मोक्ष पानेका अंतरंग साधन है. ॥१७७॥ सूत्र १६९ से लेके १७६ तक का विवेचन पूर्वमे कर्मयोग भक्ति प्रसंग विषे आ चुका है, इसलियें यहा नही लिखा॥ (अ) जारीको विस्फुटक वा उपदंश हो जाय तो वोह रोगी कितनेही प्रायश्चित करे वा दवाई करे तोभी नष्ट नही होता. ऐसेकी क्या गति ? (उ) जो वोह कर्मयोग करे तो यद्यपि इस जन्ममे उसका संचित नाश न हो तोभी शरीर भोग पीछे उसका अभाव हो जायगा. किंवा दूसरे जन्ममे मुक्त हो जायगा

जीवको ममत्वही बंधन है सो जीवके विवेक अर्थात् जीव शरीरसे भिन्न है, ऐसा विवेक होनेसे नष्ट हो जाता है ॥ और दूसरी तरफ कर्मयोगद्वारा भूत कर्मका अभाव तथा भावि कर्म फलकी रोक करता है इसलिये शरीर त्याग पीछे मुक्त हो जाता है. मे हु, ऐसा अहंत्व सामान्य है यह जीवके अस्तित्वका बोधक है. बंधका हेतु नही. इसलिये ममत्व त्याग और कर्मयोगसे वा उपासना योगसे मुक्त हो जाता है. ॥१७७॥

उक्त स्मरणादिसे मनकी शुद्धता होती है. उत्तम गुण प्राप्त होते है. ईश्वरकी स्तुति करनेसे तद्धर्मापत्ति याने उत्तम गुण प्राप्त होते है और प्रार्थना करनेसे अभिमानवृत्ति (अहंकार) नष्ट हो जाता है. और ध्यान करनेसे बुद्धि वृत्तिकी सूक्ष्मता, शांति, धीरज, कोमलता उपरामता और ईश्वरानंद प्राप्त होते है. नही के ईश्वर अन्याय करके पापीको

क्षमा करे स्तुति करनेका आशय यह है कि उस दयादाताका भय रखा रहे उस अनुसार अनुकरण करनेसे भगतमें वैसे उत्तम गुण प्राप्त हो. अर्थात् जीवकी सामर्थ अनुसार जीवमें न्याय, दया, धर्म, सत्य, शील, ईत्यादि गुण संपादन हो

जिसको ईश्वर पर उसके न्याय नियम पर विश्वास है, जो उसका भय रखता है अर्थात् अन्याय अनीति दुराचरणमें नहीं उतरता और उसकी सब शक्तिमानता और सर्वज्ञता पर जिसका निश्चय है ऐसे भगतोका वर्तन आरोसे उत्तम होता है कारण के जो कुछ हुवा, हो रहा है और होगा वोह सब अच्छेके वास्ते हुवा, हो रहा है, और होगा, वही समर्थ है जो कुछ हमारे वास्ते करता है वोह ठीकही है इत्यादि प्रकारसे भगतका विश्वास होता है आपतकालमेंभी धीरज और संतोषसे शांति रूप जीवन होता है वोह दु खकालमेंभी ईश्वरका अनुग्रह मानता है अर्थात् निकृष्ट कर्मोसे हमको हठानेकी शिक्षा है, ऐसा मानता है निदान सर्व प्रकारमें ईश्वरका धन्यवाद और संतोष यह दो शस्त्र उसके पास रहते हैं उससे असंतोष अशांतिका नाश डालता है. ॥१७६॥

जब उपर कहे अनुसार जीवका विवेक हो जाता है तब शरीर इंद्रिय, मन, माता, पिता, पुत्र, मित्र, स्त्री, प्राण, धन, महल, राज्य, वर्ण ४, आश्रम ४, धर्म, अधर्म इत्यादि मेरा स्वरूप नहीं और न वे मेरे हैं और न मैं उनका हु इत्यादि स्पष्ट हो जानेसे ममताका नाश हो जाता है. ॥१७७॥

पूर्वोक्त कर्मयोग पद्धतिका दूसरा सार यह है कि पदार्थके संबंधसे रागादि होते हैं. उनसे पाप पुण्य (धर्माधर्म) रूप कृति होती है उसका अभ्यास-संस्कार वृत्तिमें रहता है उससे विपरीत अभ्यास किया जाय तो पूर्वका अभ्यास शिथिल हो जानेसे अपने अनुसार प्रवृत्तिका हेतु नहीं हो सकता यथा ईश्वरकी भगतिका अभ्यास जगत् व्यवहारमें उपयोगी नहीं किंतु परिणाममें ईश्वरसे इतर सबमें वैराग्य कराता है तद्वत चित्तनिरोधमी उपरामता बताता है इस प्रकारके अभ्याससे उक्तरागादि नहीं होते किंतु वे अदृष्ट संस्कार नष्ट हो जाते हैं और वासनाका अभाव हो जाता है इतना हो जानेसे पुनर्जन्म न होने और मोक्ष स्थितिमें रहनेका अधिकारी हो जाता है इसलिये विशेष शंका करनेकी आवश्यकता नहीं है किंतु मोक्षवादी तमाम धर्म मत पंथोको चित्तशुद्धि और चित्तनिरोध संमत है इसलिये उक्त कर्मयोग और ध्यानयोग सेवनीय है.

अब आगे विदेहमुक्तकी सिद्धि तथा विदेहमुक्तकी स्थितिका प्रकार और आवृत्ति अनावृत्ति वा क्या? यह विषय लिखेंगे. पूर्वोक्त सूत्र ४१, और ६२ से ६६ तकको विवेचन सहित वांचे लो फेर सू. १७८ से १८९ तक वाचनेमे अनुकूलता होगी.

राग द्वेष इच्छाके ३ प्रकार होनेसे भविक मुक्तिकी सिद्धि ॥ १७८ ॥ स्वरूपकी स्थिति रहनेसे ॥ १७९ ॥ उनके बलसेही उपासकी की ॥ १८० ॥ सिद्धिकी व्याप्तिसे वैभवीकी ॥ १८१ ॥ अनावृत्ति और आवृत्ति कही गई ॥ १८२ ॥ जीव अनत होनेसे सृष्टिका उच्छेद नहीं ॥ १८३ ॥ उपयोग अनुपयोगसे उपेक्षाही ॥ १८४ ॥ शब्दसेभी, विवादित होनेसे ॥ १८५ ॥

पूर्वोक्त कर्मयोगजमुक्त (४१) और उपासकमुक्त (सू. ६२ से ६६) की मुक्तिकी सिद्धिमें व्याप्ति ४ सूत्रमें दरसाते है.

उक्त विदेहमुक्तोंके राग, द्वेष इच्छा तीनतीन प्रकारके हो सकते है उससे भविक मुक्तिकी सिद्धि होती है ॥ १७८ ॥ क्योंकि रागादि उदासीन हुये स्वस्वरूप में स्थिति याने केवल्य स्वरूप रहता है ॥ १७९ ॥+ विवेचन—निवृत्तिमें (बंधाभाव) राग, प्रवृत्ति (ईश्वरध्यान, ईश्वरानंदभोग वा सिद्धिभोग) में राग वा उभयसे उदासीन (रागशून्य) १, निवृत्ति (प्रकृति, वा शून्यता) में अरुची, प्रवृत्ति (सिद्धिभोग) में अरुची अथवा उभयसे उदासीन २ निवृत्ति (बंधाभाव वा शून्यस्थिति) में इच्छा, प्रवृत्ति (ईश्वरध्यान ईश्वरानद वा सिद्धिभोग) में इच्छा, वा उभयमे उदासीन ३ इस रीतिसे रागादिके तीनतीन प्रकार होते है. प्रकृति वा उसके विषयमें राग वा इच्छा और बंधाभाव, ईश्वरध्यान वा ईश्वरानदभोगमें द्वेष नही होता. वा य कहो कि प्रवृत्ति निवृत्तिमे रागादि होना वा उनमे उदासीन स्थिति ऐसे दो प्रकार होते है. जिसने मननिरोधका थोडाभी अभ्यास किया होगा उसकोभी थोडी देर रागद्वेष इच्छाशून्य स्थिति होनेका अनुभव हो जाता है. और इस सिद्धव्याप्तिसे स्पष्ट हो

+ यहा जीवके रागादि ३ प्रकार कहा शेष प्रयत्नादि ५ का प्रकार नहीं कहा उसका कारण स्पष्ट है अर्थात् शारीरिक और मानसिक दुःख सुखका यहा अभाव है ईश्वर ध्यान वा ईश्वरानद भोगमे ईतर प्रयत्नकी अपेक्षा नहीं है और पूर्व निरोधाभ्याससे पूर्वके संस्कारभी नहीं है और नवीन सस्कार होनेकी सामग्री नहीं है और ज्ञानका उपयोग आनद भोगमें है इसलिये अनावृत्ति आवृत्तिके हेतु जो रागादि उनकाही वर्णन करना आवश्यक था तथापि राग द्वेषके अनुसार शेषोका व्याख्यान हो जाता है इसलिये उनको दरमियानमें नहीं लिया है

जाता है कि सविक मुक्ति होती है. याने रागादि रहित हुवा स्वरूपमें स्थित होता है इसी अवस्थाका नाम अभावरूपा मुक्ति है. ॥ १७९ ॥ इसी प्रकार उपासककी मुक्तिकी सिद्धि हो जाती है याने ईश्वरके ध्यानमें रहे वा ईश्वरानंद भोगमें रहे तो उपासकके ईश्वरमें राग इच्छा होनेसे तथा ईश्वरीय बल साथ होनेसे, और प्रकृति में अरुची होनेसे प्रकृतिका बल नहीं खेंच सकता इसलिये भावरूपा (ईश्वरानंद भोग) मुक्तिकी सिद्धि हो जाती है. किंवा उपासक प्रवृत्ति निवृत्ति शून्यनिरुद्ध परिणाम धारे तो सविक रूप अभावरूपा मुक्तिमें रह सकता है इस प्रकार रागादिके बलसे उपासककी मुक्ति सिद्ध हो जाती है ॥ १८० ॥ वर्तमानमें किसी किसी योगी वा मेस्मेरेझरमें थोडीबहुत सिद्धिके दर्शन होते हैं इस व्याप्तिसे पूर्ण योगसिद्ध उपासकको वैभववाली मुक्ति प्राप्त हो ऐसा मान सकते हैं. (परंतु भोग प्रकृतिकेही कार्य होते हैं इसलिये वोह सिद्धि जब तब बंधकी हेतु हो पडे यही मालूम पडता है) ॥ १८१ ॥

उपरके बयानसे जीवकी मुक्तिमें अनावृत्ति है यह और आवृत्ति भी हो सकती है यह कहा गया ॥ १८२ ॥ अर्थात् उदासीन अवस्थामें यदि प्रकृतिकी भावना वा संबंध बलिष्ट हो जाय तो उपरोक्त सविक वा उपासकको किसी न किसी लोकमें यथावासना जन्ममें आना पडेगा. उसविना नित्य मुक्ति अवस्थामें रहेगा. इस प्रसंगमें मुक्तके अभ्यासका बलाबल निमित्त है, क्योंकि जीव एक स्थितिमें नहीं टिक सकता. इसलिये उदासीनताकोभी अवसर मिलता है, और ईश्वरके ध्यान, ईश्वरानंद भोग तथा स्वरूप स्थिति इनकी आवृत्तिभी होती रहती है ॥ १८३ ॥

सूत्र १७८ से १८२ तकका सार यह है. रागादिके अभावसे उदासीन रूपसे रहना स्पष्ट करदेता है कि जीवकी सविक मुक्ति हो जाती है उसको प्रकृतिका बंध नहीं हो सकता. जिस निमित्तसे उसे प्रकृति खेंचती थी वोह निमित्त वैराग्य और बंधाभावने शिथल कर दिया याने विषयासक्ति नहीं रही. (शंका) जीवका स्वभाव है रागादि होना सो नष्ट नहीं होगा. (उ.) स्वभाव नहीं है. परंतु पदार्थोंका संबंध हो तो रागादि अवस्थाको प्राप्त होता है. संबंध न हो तो रागादि नहीं होते. इसलिये मुक्तिमें आवृति नहीं होती. याने रागद्वेष और इच्छा उदासीन रूपमें रहें तो बंध नहीं होगा. परंतु जो ऐसे समयमें पसरी हुई प्रकृतिका वा तत्संबंधी संबंधका स्मरण हो जाय उससे जीवको उसके गुण स्वभावश प्रकृति (माया) में राग हो जावे तो वासना हो जानेसे

प्रकृतिमें खिंच जायगा. याने मोक्षसे आवृति हो जायगी. और जो ऐसा न हो अर्थात् प्रकृतिमें अरुची रही तो नहीं खिंचा सकेगा. अपनी स्वरूप स्थितिमें रहेगा. इस प्रकार दोनों स्थिति जीवके अभ्यास और स्वभावाधीन हैं.

उपासकको अन्य मुक्ति याने सालोक्यादि प्राप्ति होनेमें यह अनुमांन होता है के उपासक, उपास्य और प्रकृति इन तीन वलमेंसे उपासकका वल है प्रकृतिसे उपरामता याने इश्वर सिवाय अन्यमें अरुची. सारांश वासनाका अभाव यह बल है. और इष्टाकारता रहनेसे जीव वृत्तिमें ईश्वरी बलकी विशेषता हुई अर्थात् ईश्वरका प्रकाश विशेष हुवा वोह आनंद प्रकृतिको तुच्छ दरसा देता है प्रकृतिकी तरफ रुची नहीं होने देता किंतु प्रकृतिमें द्वेषभाव दिखा देता है. इन दोनों बलके एकत्र होनेसे प्रकृतिका बल शिथल हो गया. इसलिये उपासक सालोक्यादिको प्राप्त होके पुनः जन्ममें नहीं आता. क्योंकि वोह इष्टके देश, समीप, इष्टके साथ जुडा हुवा तदाकारतामें अपने आपको भूला हुवा होता है. वा तद्धर्मापत्तिवाला हुवा उसी आनंदमें रहता है.

परंतु जो ईश्वरकी तदाकारताके अभाव कालमें (उदासीन अवस्थामें) प्रकृतिके संबंधसे प्रकृतिमें राग–वासना फुरी तो उपरोक्त भविक मुक्तकी तरह मुक्तिसे आवृत्ति हो जायगी.

जिस अधिकारीने जीव वृत्तिके निरोधका अभ्यास करके वैभववती किंवा उक्त वैभव विनाकी अर्थात् उपास्याकार रहनेकी अथवा स्थिर रहनेकी सिद्ध मुक्ति प्राप्त की है उसकी दशाभी पूर्ववत् जान लेना चाहिये. यदि वृत्तिके निरोधाभाव कालमें प्रकृतिके संबंध पानेपर रागरूप वृत्ति हो गई तो आवृत्तिमें आ जायगा अन्यथा उपासक समान ईष्टाकार रहेगा. वा तो सू. १८१ समान स्वरूप स्थित रहेगा. सारांश आवृत्ति न होगी. अब यदि वोह योगी सत्संकल्पद्वारा वैभववती मुक्ति भोगता है तो इस दशामें यदि उस भोगमें आसक्ति होगी तो मुक्तिसे गिर जायगा. अन्यथा नहीं. परंतु यह बात आकाशके सुगंधित फूलके समान है. याने आसक्ति हुये विना न रहेगी. इसी वास्ते महात्माओने सिद्धिका अनादर किया है. पतंजलि ऋषिभी उसको मान नहीं देता है.

सिद्धि कथन मंतव्य सर्वथा गप्प हैं, दंतकथा है ऐसा में नहीं मान सकता. निकृष्ट योग याने मेस्मेरेझमके प्रयोगद्वारा थोडीक सिद्धियें वर्तमानमें जान पडती हैं इसलिये यह मान सकते हैं कि योग सिद्धि उससे अधिक हो. यह बात ठीक है कि परीक्षा विना की जो सुनी सुनाई लिखी लिखाइ गप्प चल रही हैं उनको नहीं मानना चाहिये.

मोक्षावस्थामें यदि मन (चित्त अन.करण) हो तो प्रकृतिके कार्य-मनके साथ सबध रहेनेसे पुनरावृत्ति होगी और जो नहीं है तो सत्सस्वर और भोग नहीं हो सकता यह शंका गभीर है समाधान यही जान पडता है कि मुक्ति दशामें मन नहीं हो सकता, किंतु अणु चेतन जीव अपनी सामर्थ्यसे भोग सकता है, यही मानना पडता है वोह भोग सक्रिय होके वा एक स्थानमें स्थित होके भोगे यह उसकी इच्छा है. परतु मेरा यह विश्वास है कि ऐसे मुक्तको तो आवृत्तिही होगी क्योंकि भोग्य प्रकृतिका जैसे तैसे सबध होता रहता है ॥१८१॥१८२॥

(शंका) यदि मोक्षसे अनावृत्ति तो जब तब सब जीव मोक्ष हो जानेसे सृष्टिका उच्छेद हो जायगा अर्थात् प्रकृति अनुपयोगी रहेगी, इस लिये जब तब मोक्षसे आवृत्ति होनी चाहिये (उ.) ईश्वर असीम-अनत है इसलिये उसमें व्याप्य जीव और परमाणुकी सख्यासे अनत हो यह स्पष्ट है. नहीं तो ईश्वरभी सात मानना पडेगा परतु ईश्वरको हर-कोई अनंत मानता है इसलिये जीवभी अनत मानने पडेंगे इस वास्ते जीवोका अत न आनेसे सृष्टिका उच्छेद नहीं हो सकेगा. ॥१८३॥

(शंका) जो मुक्त जीव गतिशून्यरूप या स्वरूपमें स्थित रहेगा तो उसका अनुपयोग रहेगा परतु ससारमें अनुपयोग रहनेका अभाव है अत मोक्षसे आवृत्ति होगा (उ.) मुक्तको उपयोग अनुपयोगसे उपेक्षा है ॥ इसलिये यह शंका व्यर्थ है उसका उपयोग होना था सो हो गया इस वास्तेभी यह शका निरर्थक है और यदि किसीकी फांसीसे मुक्तकी आवृत्ति हो तो मुक्ति सिद्धातका भग होगा ॥१८४॥ (शं.) तो तुमने मुक्तिका स्वरूप कहा है और अनावृत्ति बताई है वोह शब्द प्रमाणके अनुकूल नहीं है क्योंकि मुक्तिके स्वरूपमें मतभेद है और कोई शब्द मुक्तिसे अनावृत्ति कोई आवृत्ति मानता है (उ.) मुक्तको शब्दसे उपेक्षा है. क्योंकि उसमें मतभेद है तथा अर्थमें तकरार है और कौनसा शब्द मान्य, कौनसा अमान्य इसमेंभी तकरार है (इत्यादि उपर कहा है) इसलिये उसको दरमियानमें नहीं लेना चाहते किंतु व्याप्तिसे जो सिद्ध हो वही मानना ठीक जान पडता है ॥१८५॥ यहा मतभेदकी विगत जनाते है —

ईश्वरमें मतभेद—अनीश्वरवाद (प्रकृति समूहवाद, आकर्षणवादादि) की असमी चीनता उपर कही. ईश्वरवादमेंभी मतभेद है कोई ईश्वरको साकार सगुण कोई निरा-कार निर्गुण मानता है इत्यादि मतभेद हैं. परतु जितने ईश्वरवादि हैं वे सब ईश्वरको स्वयंभु, अनादि अनत, सर्वज्ञ, और सर्वशक्तिमान मानते हैं. बाकी विशेषणोमें

मतभेद हैं वे यह है:- अद्वितीय (सजातीय स्वगतभेद रहित) ज्ञान ईच्छा (इक्षणा) प्रयत्नवान, सगुण (अमुक गुणवाला होनेसे सगुण) निर्गुण (अमुक गुण न होनेसे निर्गुण) सनियम जगतकर्ता धर्ता हर्ता, उपादानमेंसे जीवोंके कर्मानुसार सृष्टि कर्ता धरता, हर्ता, निमित्त कारण, अभोक्ता, अपरिणामी. अकाय, अमूर्त्त, निराकार, विभु (व्यापक असीम) सक्रिय, एक और सत्य है. अनुपादान सृष्टिकर्त्ता, धरता, हरता, अद्वितीय (सजातीय विजातीय स्वागतभेद रहित), अभिन्न निमित्तोपादान, परिणामी, अन्यथा कर्ता. (यथेच्छा कर्ता) इक्षणा रहित, अपरिच्छिन्न अवतारधारी, परिच्छिन्न, परिच्छिन्न अवतारधारी, मध्यम समूह, मायाविशिष्ट चेतन, आभासरूप, प्रतिबिंब रूप, नाना (यथा जीव सृष्टि नाना स्वप्नवत् नाना मिश्रमत) निराकार, साकार, असद, सदसदरूप, सदसद् विलक्षण, अध्यास (भ्रम) का विषय (इन सबकी असमीचीनता पूर्वोक्त ईश्वर प्रसंगसे साक्षात् और उसकी अर्थापत्तिसे सिद्ध हो जाती है. बुद्धिमान स्वयं विचार सकता है. अतः विस्तार नहीं किया. अन्य ईश्वरवादसे त्रिवादवाला ईश्वरवाद उत्तम है.)

जीवमें मतभेद—जीवके स्वरूप संबंधमे अनेक मतभेद हैं. आश्चर्य यह है कि अपना स्वरूप अपनेसे समीप परंतु फेरभी अनेक मतभेद (तत्वदर्शन अध्याय १ देखो).

जीव स्वरूपके मतभेदवाले विशेषण यह हैं.—

अणुरूप, अनादि अनंत, चेतन, नाना, संख्यासे अनंत, सक्रिय कर्ता भोक्ता, पुनर्जन्म पानेवाला, अपनेमें असंयोगी तत्त्व. स्वरूपसे अणु और शरीरमें उसकी ज्ञान सत्ता व्यापक, अणु और शरीरमें गतिवान, निरवयव, अमूर्त्त, निराकार, सगुण, परिच्छिन्न (ससीम) चेतन और रागादि गुणवाला, रंग रहित, वजन रहित, विभु और कर्ता भोक्ता, विभु और अकर्त्ता भोक्ता, न कर्ता न भोक्ता, मध्यम (अणु विभु परिमाणसे इतर बिचला परिमाण) अनादि अनंत, मध्यम अनादि सांत, मध्यम सादि अनंत, मध्यम और अपनेमें संयोगी, मध्यम और अपनेमें असंयोगी, मध्यम निरवयव, मध्यम सावयव, मध्यम जड चेतनात्मक, मध्यम सगुण होनेसे, आभास रूप प्रतिबिंब रूप, अविद्या विशिष्ट चेतन, अंतःकरण विशिष्ट चेतन, अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन, पुनर्जन्म नहीं पानेवाला, शरीर परिणाम, इन्द्रीय समूह, प्राण, गरमी, गिलो समान, शहेद समान, प्रकाश समान, रबड समान, दीपकसे दीपक हो वैसा ईश्वरांश—वा स्फूर्ण—वा आज्ञा—वा ज्ञान, वा श्वास वा उसकी शक्ति वा उसका

प्रतिबिंब वा उसका आभास. मूर्त. संख्यासे सांत, संख्यामें एक, साकार, सगुण, रागादिवाला, अभावजन्य, जडजन्य, क्षणिक परिणामी, सदरूप, असदरूप, सदसद रूप, सदसदसे विलक्षण, अध्यासरूप, उक्त तमाम विशेषणोंकी असमीचीनता उपरोक्त जीव सिद्धिवाले विशेषणोंसे साक्षात् वा अर्थापत्तिसे सिद्ध हो जाती है इसलिये विशेष विस्तार नहीं लिखा है. अन्य जीववादसे त्रिवादवाला जीववाद उत्तम है.

मुक्तिमें मतभेद्—दुःखकी अत्यंत निवृत्ति, बंधनिवृत्ति, पुनर्जन्माभाव १, परमानंदकी प्राप्ति, सत्संकल्प हुये यथेच्छा वैभवकी प्राप्ति २, उभय (बंधाभाव, परमानंदभाव) की प्राप्ति ३, कर्म शून्यता ४, साकारत्वसे निराकारताकी प्राप्ति ५, चित्त और आत्मा भिन्न हुये स्व स्वरूप स्थिति ६, इष्टके लोककी वा इष्टके सामीप्यकी वा इष्टके साथ युक्त होनेकी वा इष्टके समान स्वरूप हो जानेकी प्राप्ति १०, ब्रह्मानंद भोग ११, लोक विशेषकी प्राप्ति १२, विकास क्रमाधीन सर्वज्ञ हो के ब्रह्ममें लय होना १३, ब्रह्म स्वरूप होना १४, अपना अभाव हो जाना १५, मुक्ति है ही नहीं १६, मुक्ति भ्रमका विषय है १७ इत्यादि मतभेद हैं. इन सबके दूषण भूषण तत्त्वदर्शनके प्रथमाध्यायमें लिखे हैं. सार यह है कि यदि जीव कोई परिच्छिन्न तत्त्व पदार्थ है और बंध है तो उपरोक्त मुक्ति प्रकारही बनता है अन्य नहीं और उपरोक्त मुक्ति प्रसंगकी अर्थापत्तिसे वा साक्षातद्वारा पक्षवाद असमीचीन रहता है. अतः विस्तार नहीं किया.

तथा साधनमेंभी मतभेदः—केवल कर्मसे १, केवल उपासनासे २, केवल योगसे ३, केवल इष्ट इच्छा वा उसकी कृपासे ४, विकास क्रमसे ५, ज्ञानसे (पदार्थ ज्ञानसे, स्वरूप ज्ञानसे, जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे) ६, कर्म उपासना दोनोंसे ७, कर्म ज्ञान दोनोंसे ८, उपासना ज्ञान दोनोंसे ९, कर्म उपासना ज्ञान इन तीनोंसे १०, वासना त्यागसे ११, शरीर मरणसे १२, इत्यादिसे मुक्ति होती है याने यह मुक्ति पानेके साधन हैं. इत्यादि मतभेद हैं. सार यह है कि यदि जीव कोई परिच्छिन्न तत्त्व पदार्थ है और मुक्ति होती है तो उपरोक्त साधन प्रकार बनते हैं. अन्य नहीं. और उपरोक्त साधन प्रसंगकी अर्थापत्तिसे किंवा साक्षातद्वारा पक्षवाद असमीचीन रहता है. अतः विस्तार नहीं किया.

जीव ईश्वर और मुक्तिके स्वरूपमें तथा मोक्ष साधनमें मतभेद है वे उपर देखाये हैं. इसलिये शब्द, भ्रमका कारण हो पडनेसे उपेक्षणीय है. इस जगे यह बात ध्यानमें रखना चाहिये के **शब्द प्रमाण नहीं माना चाहिये, ऐसा आशय नहीं है.** क्योंकि

शब्दके विना जीवन व्यवहारही नहीं होता ऐसा उपरही कह आये हैं. सत्य हितबोधक और सृष्टि नियमानुकूल जो वाक्य हो वोह किंवा परीक्षासिद्ध और उपयोगसिद्ध हो वोह मानताही चाहिये यह आशय है. वेदादि मान्य ग्रंथोंमें अर्थके झघडे इत्यादि कारणसेही तत्त्व अनुशासन इत्यादि उपर कहा गया है. (शंका) जबके तुम किसी शब्दका प्रमाण न मानके उनकी साक्षी नहीं देते तो तुम्हारे कहे हुये कर्मयोग, परा भक्ति, योग, वा उपासनासे विदेहमुक्ति होती है, और मोक्षावस्था तुम्हारे लिखे अनुसार हैं, इन दोनों विषयका सबूत क्या ? अन्य समान तुम्हारा कौन मानेगा. कोई नहीं. क्योंकि मुक्तिमें जाने पिछे किसीने कोई समाचार नहीं भेजे. (उ.) जिस सबबसे दूसरेके शब्द मानते हो वोही सबब यहां मान लेना चाहिये. अर्थात् प्रत्यक्ष व्याप्तिका आधार. जैसाके उपर मुक्ति प्रसंगमें कह आये हैं. उस परीक्षासे विचार करना चाहिये. जो शब्द व्याप्ति विना वा सृष्टि नियम विरुद्ध परोक्षार्थका बोधक हो उसके माननेमें आपपास क्या आधार है ? यदि विश्वास है तो हम कुछ जवाब नहीं देना चाहते—याने हमाराभी संयुक्त विश्वास है. और यदि व्याप्ति आदि आधार है तो आपके सवालका जवाब आप दे चुके. और हम अपने विश्वासको मनाना नहीं चाहते. जो ठीक और उपयोगी जानेगा वोहभी स्वीकारे वा न स्वीकारे. यह उसकी रुची. इसलिये आपकी शंका व्यर्थ है. ॥१८५॥

और ग्रंथके अंतमें त्रिवाद सिद्धांतके सूचक शब्द प्रमाण लिखे हैं इच्छा हो तो वे वांच लीजे.

सारग्राहि दृष्टिसे यूंभी कह सकते हैं कि उक्त मुक्ति सिद्धांत भावमें जो और जितने लाभ रहे हुये हैं वोह और उतने, मुक्ति अभाववाद वा दूसरे जीव मुक्तिवाद (जीव सादि, जीव मध्यम. मुक्ति पराधीन, मुक्ति मिथ्या इत्यादिवाद) में वा केवल आवृत्ति वा अनावृत्तिवादमें नहीं हैं. प्राचीनोंकी यह बात वोही योग्य समझ सकता है कि जिसने जितेंद्रियपनेका और नीति मर्यादाका तथा सदाचरणका सुख भोगा हो वा जानाहो. किंवा अनुभवी, लोकहितैषी, परोपकारी, तत्ववेत्ता, आत्म अनुभवी, निष्काम और दीर्घदर्शी हो सर्व साधारण इस बातको नहीं जान सकते. ॥१८५॥

(शंका) उपर जितना कुछ लिखा है इसमें यथार्थत्व (प्रमात्व) परसे है वा स्वतः उत्पन्न हुवा है याने प्रमात्व (यथार्थत्व) का ग्रहण ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे इतर सामग्री द्वारा है किंवा ज्ञान, ग्राहक, सामग्री (जीव, मन, इंद्रिय, विषय विषयीका सन्निकर्ष) में है ? यह बताना चाहिये (उ.) ३ सूत्रमें.

यहां परतोग्राह्यवाद ॥१८६॥ स्वतोग्रहके अभावसे ॥१८७॥ और स्वरूपका ज्ञान न होनेसे ॥१८८॥

इस त्रिवादमें परतः ग्राह्यवादका स्वीकार है ॥१८६॥ क्योंकि स्वतोग्रहका अभाव है याने सिद्ध नहीं होता ॥१८७॥ और दृष्टादृश्य भिन्न होते हैं इसलिये अपने स्वरूप कामी ज्ञान किसीको नहीं होनेसेभी स्वतोग्रहका अभाव है ॥१८८॥

यह विषय सूक्ष्म है परंतु उपयोगी है इसलिये यहां जितना चाहिये उतना संक्षेपमें लिखते हैं ×

(१) यथार्थ ज्ञान **प्रमा** (२) अयथार्थ ज्ञान **अप्रमा** (भ्रम संशय विपरीत) (३) प्रमामें जो प्रमात्व-धर्म उसका नाम **प्रामाण्य** (४) प्रमात्वका प्रयोग अबाधितार्थ याने यथार्थत्वमेंही किया जाता है अयथार्थमें नहीं (४) अप्रमात्वका प्रयोग उसी ज्ञानमे किया जाता है जिसमें अप्रमात्व हो (५) ज्ञानत्वका प्रयोग प्रमात्व और अप्रमात्व इन उभयमें होता है (६) प्रमात्व कैसे उत्पन्न हुवा और क्यों कर ग्रहण होता है इसमें मतभेद है तद्वत् अप्रमात्वमें पक्ष हैं. (७) प्रामाण्यके दो भेद हैं १ स्वतस्त्व २ परतस्त्व (८) ज्ञान ग्राहक निर्दोष सामग्रीके नाम यह हैं आत्मा, मन, इंद्रिय, विषय और विषयीका सन्निकर्ष (आत्मा और मनका योग्य संबंध) (९) दूषित सामग्री वस्तुके विशेष स्वरूप का अज्ञान, सस्कार, प्रमाता दोष, प्रमाण दोष प्रमेय दोष.(१०) प्रमात्वकी उत्पत्तिमें जो स्वतस्त्व उसको उत्पत्ति स्वतस्त्व कहते हैं (११) और जो परतस्त्व सो उत्पत्ति परतस्त्व कहाता है. (१२) प्रमात्वके ज्ञान होनेमें जो स्वतस्त्व सो ज्ञप्ति स्वतस्त्व कहा जाता है (१३) और जो परतस्त्व सो ज्ञप्ति परतस्त्व कहाता है (१४) ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे इतर अन्यसे प्रामाण्यकी उत्पत्ति माना तथाहि अन्यसे प्रामाण्य (प्रमात्व) का ज्ञान होना माना इसका नाम **परतः प्रामाण्यवाद** है (१५) निर्दोष ज्ञानग्राहक सामग्रीसे स्वतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति तथा स्वतःप्रामाण्यका ज्ञान होना माना इसका नाम **स्वतःप्रामाण्यवाद** है (१६) ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे इतर अन्यद्वारा प्रमात्व वा अप्रमात्वकी सिद्धि माना याने ग्रहण होने योग्य वा ग्रहण करने योग्य, ऐसा माना **परतः ग्राह्यवाद** (१७) ज्ञान ग्राहक सामग्रीमेंही प्रमात्व वृत्तिका ग्रहण होना (प्रकाशित होना) तथा अप्रमात्व वृत्तिका पीछे ग्रहण होना ऐसा माना इसका नाम **स्वतो ग्राह्यवाद** (१८) ज्ञानग्राहक सामग्रीसे अन्य इतर उनके नाम—आत्माका उत्पत्तिवाला ज्ञान गुण, अनुमान, सन्नि-

× विशेष उत्तरार्द्धमें बांचोगे

ज्ञप्ति गुण, व्याप्य ज्ञान गुण, साधर्म्य वैधर्म्य ज्ञान - गुण, यथार्थ योग्यतादि ३ का ज्ञानगुण, व्याप्ति ज्ञान गुण, इम्प्रेशन, यहां प्रथम परतः प्रामाण्यवाद लिखते हैं:—

ज्ञान मात्रकी जनक जो सामग्री उससे भिन्न जो प्रयोज्यत्व है यही प्रमात्वमें उत्पत्ति परतस्त्व है. जेसे जीवात्मा और मनका संयोग ज्ञान मात्रकी सामग्री है अथवा विषय विषयीका संयोग ज्ञान मात्रकी सामग्री है, तद्भिन्न सामग्री याने उभय संबंध जन्य आत्मामें जो ज्ञान गुण उस ज्ञानमेंही प्रमात्व है. क्योंकि मन इंद्रियादिसे प्रमात्व नही होता इसलिये गुण सहकृत उक्त (ज्ञान ग्राहक)-(सन्निकर्ष) सामग्रीसे जन्य ज्ञानमें ही प्रमात्व है. प्रत्यक्ष प्रमा (ज्ञान) में सन्निकर्ष प्रमात्वोपत्तिका कारण है. अनुमिति प्रमामें व्याप्ति ज्ञान गुण कारण है. इत्यादि. ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे भिन्न सामग्री अर्थात् दोष कारण करके जो प्रयोज्यत्व है सो दोष ही अप्रमात्व (भ्रम–संशय) उत्पत्ति परतस्त्व है अप्रमात्वकी उत्पत्तिमें दोष ही कारण है.

'यह घट है' 'यह रज्जु सर्प है' 'में घटको जानता हुं' 'में रज्जु सर्पको जानता हुं' इत्यादि निश्चयत्वकी उत्पत्तिमें उक्त ज्ञान गुण सामग्री है. मन आत्माका संयोग वा इंद्रिय वा सन्निकर्ष सामग्री नही है. जो स्वतोस्त्व होता तो इंद्रिय विनाभी प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति होती.

केवल ज्ञान मात्रकी ग्राहक जो सामग्री तिससे भिन्न सामग्री द्वारा जो ग्राह्यत्व (ग्रहण योग्यपना) है यही उक्त प्रमात्वमें ज्ञप्ति परतस्त्व है जेसे के प्रथम जल देखके, 'में जानता हुं' यह अनुव्यवसाय ज्ञान मात्रको ग्रहण करता है इस व्यवसाय उत्पत्ति का कारण मन आत्माका संयोग इंद्रिय विषयादि हैं इन ज्ञान मात्र ग्राहक सामग्रीसे प्रमात्वका ग्रहण असंभव है किंतु तद्भिन्न अनुमानरूप सामग्रीसे प्रमात्वका ग्रहण होता है जेसेके उक्त जलको कोई प्रकार पीने पीछे सफलज्ञानता है, कालांतरमें जल देखके 'यह जल' ऐसा व्यवसाय ज्ञान होता है फेर अनुमानसे प्रमात्वका ग्रहण होता है. वोह अनुमान यह है—यह जल ज्ञान प्रमा है—सफल प्रवृत्तिका जनक पूर्ववत् होनेसे. जो जो प्रमा (यथार्थ ज्ञान) भिन्न ज्ञान हैं वोह वोह सफल प्रवृत्तिका जनक नही होता. रज्जु सर्पादिवत्. यहां यह जल ऐसा व्यवसाय ज्ञान है और में जलको जानता हुं यह अनुव्यवसाय ज्ञान है.

उक्त व्यवसाय ज्ञान आत्मामें समवाय संबंधसे है तिसकोभी उक्त अनुव्यवसाय विषय करता है. (इसकी रीति सूक्ष्म होनेसे और न्याय परिभाषाके ज्ञान हुये विना समझमें न आनेसे नहीं लिखी है और विशेष उपयोगी भी नही है.) निदान उक्त

अनुव्यवसायत्व (प्रमात्व, यथार्थत्व) का ग्रहण (ज्ञान) पूर्वोक्तनाये अनुसार अनुमानसे ग्रहण होता है. ईसीका नाम परत प्रामाण्यवाद है.

जहा सामान्य उक्त ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे अधिक सामग्री नहीं हो वहा ज्ञानमे प्रमात्व नहीं होता.

केवल ज्ञान मात्रकी ग्राहक जो सामग्री तिससे भिन्न करके जो ग्राह्यत्व यही अप्रमात्वमे ज्ञप्तिपरतस्त्व है जैसेके भ्रमकालमे अप्रमात्वका अग्रहण ज्ञप्तिपरतस्त्व है यद्यपि भ्रमकालमे प्रमात्व समान ग्रहण है तथापि उत्तरमे फलका लाभ न होना और अनुमिति द्वारा अप्रमात्वका ज्ञान होता है साक्षातरूपसे नहीं (अकरने इस अनुमान का ग्रहण होता है) इसलिये अनुमानद्वारा ग्रहण होनेमे ज्ञप्ति परतस्त्व है.

उपर बताये अनुसार प्रमात्ववत् अप्रमात्वकीभी उत्पत्ति और ज्ञप्ति परतस्त्व है अतः **परतः अप्रामाण्य** है ॥

जैसे प्रमात्व और उसकी ज्ञप्ति सबधमें कहा वैसेही ज्ञान और ज्ञानत्वकी सामग्रीसे अन्य कारणसे प्रमात्वके ज्ञानकी उत्पत्ति होती है यथा प्रत्यक्षादि प्रमाणसे घटादिका ज्ञान होता है. मन. सयुक्त समवाय सबधसे उक्त घटादिके ज्ञानका ज्ञान होता है. इस अनुव्यवसायका विषय घट और घट ज्ञान यह दोनो है अनुव्यवसाय (विशेष ज्ञान) का आत्माभी विषय है क्योकि आत्मा सगुण है ऐसी प्रतीति होती है ज्ञान जीवात्मा का गुण है ऐसा विषय होता है इसलिये त्रिपुटी गोचर ज्ञानका नाम अनुव्यवसाय है. इसका कारण मन है.

घटत्व, ज्ञानत्व, आत्मत्वभी अनुव्यवसायके विषय है ॥ जब अनुव्यवसाय गोचर अनुव्यवसाय हो तब प्रथम 'अह जानामि' का प्रकाश होता है दूसरा अनुव्यवसाय ('घटके ज्ञानको मे जानता हु') अप्रकाशित रहता है घटके ज्ञानका व्यवहार अनुव्यवसायसे हो जाता है इसलिये विषयका प्रकाशक जो ज्ञान उसके प्रकाशित होने न होनेकी आवश्यकता नही है. जे प्रकाशित ज्ञानसे विषयका प्रकाश मानें तो अनवस्था दोष आता है क्योकि प्रकाशक ज्ञानके पीछे होता है घटके ज्ञान बिना अपने कार्यको करता है अपने कार्य प्रकाशकी अपेक्षा नहा है इसी प्रकार ज्ञानका कार्य 'विषय प्रकाश' है तिस कार्यमें अपने प्रकाशकी अपेक्षा नहीं करता. जिस ज्ञानका व्यवहार है उस ज्ञानका ज्ञान प्रकाशित मालूम होता है. इस प्रकार प्रमात्वकी सामग्री अनुमान है

परतोग्राह्यवाद.

उपरोक्त प्रमात्व और उसका ज्ञान और अप्रमात्वकी उत्पत्ति तथा तिसका ज्ञान यह सब ज्ञान ग्राहक सामग्री (विषय विषयीका योग्य संबंध, मन, इंद्रिय) से ग्रहण नही होता किंतु उससे इतरमें ग्रहण होता है (परसे ग्रहण होने योग्य है). इस मान्यता का नाम परतोग्राह्यवाद है. परतः प्रामाण्य केवल प्रमात्वका बोधक है, अप्रमात्वका नहीं, यह अंतर है. परतः प्रामाण्य और परतः अप्रमाण्य मिला लेनेसे परतोग्राह्यवाद बन जाता है.

परतोग्राह्यमें परमात्वग्रहकी सामग्री जीवात्माका ज्ञान गुण और व्याप्ति ज्ञान (अनुमान) है और अप्रमात्वकी उत्पत्ति और ज्ञप्तिमें दोष सामग्री तथा अनुमान है.

मूल द्रव्य वा परोक्ष विषय (ईश्वरादि) विषय नहीं होते उनके गुणादिसे सिद्धि मानी जाती है और स्थूल द्रव्य अमुक रूपमें विषय होते हैं. गुणादि और द्रव्य स्थूलमें यथार्थता स्वभाविक है (जेसे हैं वेसे हैं) विवाद उसके ज्ञानमें है. ज्ञानके ३ प्रकार मान सकते हैं (१) इदं मात्र याने कुछ है (२) यह अमुक है याने घट है जल है (मृग जल) इत्यादि (३) में घटादिको जानता हूं. नं. १ सब ज्ञानोमें समान है. ज्ञान मात्रका विषय है. दूसरा व्यवसायात्मक है. जन्मसे जेसे जेसे आद्य संस्कार हुये और व्याप्तिका अभ्यास हुवा तथा जेसी परिस्थिति है उस अनुसार ज्ञान गुणमें ग्रहण होता है इस-लिये तमाम प्रमात्व और तदज्ञान परतोग्राह्य हैं. तीसरा दूसरेके आधीन है.

भ्रम प्रसंगमें दोष प्रतिबंध होनेसे विषयी अथवा मन विषयाकार न हो सका याने योग्य संबंध न हो सका और दोषभी ग्रहण हुवा इसलिये यथासंस्कार ज्ञान गुणमें ग्रहण हुवा है अतएव उस कालमें प्रमात्वरूपमेही ज्ञानमें ग्रहण हुवा परंतु उपयोग और परीक्षा प्रकारमें न आनेसे याने व्यवहारमें बाधित और निष्फल प्रवृत्तिका जनक जान पडनेसे "भ्रम हुवा था" ऐसे अनुमिति प्रमाका विषय होता है इसलिये यहभी परतोग्राह्य है. यथा हजारों वर्षोंसे जल यह तत्त्व है, चक्षुवृत्ति बाहिर जाती है. ऐसा प्रमात्वरूपसे ग्रहण होता था परंतु अब वोह अन्यथा सिद्ध हुवा अर्थात् जल अतत्त्व है मिश्रण है[१] और चक्षुवृत्ति बाहिर नहीं जाती[२] किंतु रूपका फोटो अंदर आता है,[२] ऐसा परीक्षामें सिद्ध हो जानेसे[२] उक्त प्रमात्व अप्रमात्वरूप हो गया.

---

१ ऑक्सिजन, उद्जनादि तत्वोंसे बनता है. कालेजोंमें बनाके दिखाया जाता है

२ एक कटोरीके बीचमें पैसा रखो. फेर इतनी दूर रखो के वोह पैसा नजर न आवे. फेर उप

इस प्रकार त्रिवादगत तमाम पदार्थों वास्ते परतः ग्राह्यवादका उपयोग है.

ज्ञानग्राहक निर्दोष सामान्य सामग्रीसे प्रमात्व और तिसका ज्ञान सिद्ध वा ग्रहण नहीं होते और न वे अपनी सिद्धि आप कर सकते हैं अर्थात् स्वयंप्रकाशमान वा स्वयं ग्रहण नहीं होते किंतु उस सामग्रीसे इतरद्वारा अर्थात् आत्मा मन संयुक्त होनेपर आत्मामें ज्ञान गुण उत्पन्न होता है उससे किंवा व्याप्ति ज्ञान अर्थात् अनुमितिसे ग्रहण (उनकी सिद्धि और वे क्या ऐसा) होते हैं.

इंद्रिय, मन, आत्माका स्वरूप, आत्मा मनका संयोग, मन इंद्रियका सन्निकर्ष, आत्माके ज्ञानादि गुण, प्रकृतिका मूल स्वरूप (द्रव्य-परमाणु) ईश्वरका स्वरूप, ईश्वर की सिद्धि, जीवकी सिद्धि, जीव शरीरसे भिन्न उसकी सिद्धि, पुनर्जन्म, मोक्षकी सिद्धि, इम्प्रेशनका मंतव्य, इत्यादि स्वतः ग्रहण न होनेमे परतः ग्राह्य हैं. इसलिये इस त्रिवादमें परतः प्रामाण्यवाद (परतोग्राह्यवाद) का स्वीकार है. (१) मन इंद्रियका संबंध हो विषयका न हो तो, इंद्रिय विषयका संबंध हो और मनका न हो (मन दूसरी जगे हो) तो, विषयका ज्ञान नहीं होता और यह हुये (अर्थात् संबंध-सन्निकर्ष-व्यापार हुये) ज्ञान होता है. ऐसी व्याप्तिमे सन्निकर्षमें प्रमाणताका प्रयोग होता है. (२) स्वप्नकालमें वा क्लोराफारम वा सन्निपातकी मूर्छामें मनसे इंद्रियद्वारा सार्थ भाषण हो रहा है परंतु आत्माके संयोग न होनेमे ग्रहण नहीं होता और शरीरकी पीडाका आत्माके साथ संबंध हो तोभी मनके संयोगाभावसे ग्रहण नहीं होता इससे पाया जाता है कि विषय संबंध मन आत्माका संयोग हो तबही आत्मा (जीव) में ज्ञान गुण उत्पन्न होता है. और इस ज्ञान गुणमे विषय प्रकाशित होता हैं. इस स्थितिका नाम प्रत्यक्षत्व है. नं. १, २ को मिलाके आत्मसंयुक्त मन, मनसंयुक्त इंद्रिय, इंद्रियसंयुक्त विषय, इन सन्निकर्षोंके एकत्र हुये प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ऐसा अर्थ कर लेना चाहिये. (३) निर्दोष सन्निकर्ष और सफल प्रवृत्ति परिणामकी व्याप्तिमे प्रमात्व व्यवहारकी उत्पत्ति होती हैं. (४) नं ३ की व्याप्तिमे प्रमात्व ज्ञानताका व्यवहार होता है. (५) सदोष

कटोरीमें पानी डालो तो तमाम पैसा नजर आने लगेगा. अर्थात् पैसेकी किरणें स्वच्छ पानीमें उठके सीधी लेन मिलनेसे चक्षुमें आती है तो पैसा दीखता है एसेही पानी विनाभी पैसेकी किरणें आंखमें आके मगजमें जाती है तो ग्रहण होती हैं यही पैसेका दर्शन है इसी प्रकार तमाम रूप आकार वास्ते जानना चाहिये. चक्षुवृत्ति बाहिर नहीं जाती॥ दूरबीन द्वारा दिनकोभी तारा देखा जाता है. अर्थात् ताराकी किरणें दूरबीनमें एकत्र होके ज्ञान पडती है. वृत्ति बाहिर जाती तो दूरबीन विनाभी तारा दीखता परतु ऐसा नहीं होता. द.

सन्निकर्ष होनेसे प्रमात्व नही होता. इस व्याप्ति दर्शनसे अप्रमाणताका प्रयोग होता है (६) प्रवृत्तिका सफल प्रवृत्ति परिणाम न निकले अर्थात् सदोष सन्निकर्ष हुवा हो उसमे अप्रमात्वकी उत्पत्ति होती है. यह अप्रमात्व, दोष सामग्रीमें वा अन्य सामान्य सामग्रीमें वा ज्ञान गुणनें ग्रहण नही होता (भ्रम भ्रम कालमें भ्रम भावमें ग्रहण नही होता) और बाध कालमेंभी अर्थात् न होने पर अनुमित्तिका विषय होता है, इस व्याप्तिमे अप्रमात्व माना जाता है अर्थात् परमे ग्रहण होता है. (७) नं. ६ की व्याप्तिसे अप्रमात्व ज्ञातताका व्यवहार होता है. इस रीतिसे प्रमाणतादि परतोग्राह्य हैं स्वतोग्राह्य नही हैं.

अपनी आंख (मुखादि अंग) का किसीकोभी स्वतः (जीवात्मामें स्वय) ग्रहण नही होता. किंतु आंख बंद होनेपर रूपका ज्ञान नही होता. इस व्याप्तिसे वा दूसरेकी आंख देखनेकी व्याप्तिमे किंवा काचमें प्रतिबिंब देखें तब उस व्याप्तिसे चक्षु इंद्रिय मानी जाती है इसलिये परतःग्राह्य है. एसेही तमाम इंद्रियों वास्ते उपर अनुसार यथायोग्य व्याप्ति लगा लेना चाहिये. है: ऐसा सामान्य (निर्विकल्प) ज्ञान, "यह घट है, में घटको जानता हु" ऐसा विशेष (सविकल्प वा अनुव्यवसाय) ज्ञान यह सब परतः हैं. विचारिये कि घटकी किरणे चक्षुके अंदर गई. ज्ञान गुणमें ग्रहण (प्रकाशित) हुई तब बाह्य घट विषे 'है' एसा अनुमान होता है क्योंकि बाह्य घटके साथ सन्निकर्ष नही है और 'है' कहने वा मानने हैं. इस व्याप्तिके उपयोगसे "यह घट, घटको में जानता हु" ऐसा व्यवहार होता है. इसी प्रकार अन्य सन्निकर्षो में (मुख चक्षुके प्रतिबिंब और शब्दादि विषयोमें) पर अर्थात् ज्ञान गुण और अनुमानद्वारा ग्रहण होना योज लेना चाहिये. इसी प्रकार प्रमाण प्रमात्वाप्रमात्व और ज्ञेय (प्रमेय) परतं ग्राह्य हैं. ॥ ज्ञानको ज्ञान, ज्ञानका ज्ञान और ज्ञानमें ज्ञान (किवा गुणको गुण, गुणका गुण; गुणमें गुण) नही होता. और यदि मानें तो अनवस्थादि दोष आता है. और हांसी उपजाता है इसलिये आत्माका ज्ञान गुणभी उपर कहे अनुसार परतः ग्राह्य (अनुमानका विषय) मान्ना पडता है. अर्थात् ज्ञानभावभी परतः प्रामाण्य है. दृष्टा दृश्यसे भिन्न होता है इसलिये दृष्टा आत्मा अपना दृश्य नही हो सकता. अर्थात् आत्माको अपना ज्ञान नहीं हो सकता यह उपर कहा है. इसलियेभी आत्मा आपसे अपनेमे ग्रहण (स्वतोग्रह) हो ऐसा नहीं है किन्तु परतः मान्ना पडता है ॥ जैसे इंद्रिय मन गुण, आत्मा और सन्निकर्ष तथा प्रमाणतादि वास्ते परतः कहा वैसे उपरोक्त प्रकृतिके मूल स्वरूप इत्यादिके वास्ते बुद्धिमान स्वयं योजना कर सकता है क्योंकि परतः प्रसिद्ध है.

सन्निकर्ष सन्निकर्षमें, मन मनमें, इंद्रिय इंद्रियमें (अपने आपको) प्रमाणपना सिद्ध नहीं कर सकते किंतु अन्य द्वारा उनमें प्रमाणपना सिद्ध होता है. उक्त गुण गुणमें प्रमाणपना सिद्ध नहीं कर सकता किंतु अनुमानसे उसमें प्रमाणता सिद्ध होती है इस लिये परसे प्रमाणपनाही **परतः प्रामाण्यवाद** है परसे ग्राह्य इसलिये **परतोग्राह्यवाद** है. इस प्रकार इस त्रिवादमें परतोग्राह्यका स्वीकार है. ॥ जो स्वतः प्रामाण्य (स्वतोग्राह्य) सिद्ध होता तो उपरोक्त विषय स्वतः (आत्मामें) ग्रहण होते परंतु ऐसा नहीं होता. अतः परतः ग्राह्यवाद समीचीन है. ॥१८६॥

स्वतः प्रामाण्यकी असमीचीनता.

अपूर्व ज्ञानमें प्रमात्वका संदेह रहनेसे स्वतः प्रामाण्यका अभाव है. और ज्ञान स्वरूपको स्वप्रकाश मानकेभी "ग्रहित नहीं" ऐसा नहीं मानते. अतः परतः है. प्रमात्व भी साथ ही ग्रहण होना मानते हैं अतः स्वतः नहीं. उक्त रीतिसे प्रमात्व संदेहकी अनुपपत्तिसे भ्रम प्रसंगका लोप है. अर्थात् जो प्रमात्वकी स्वतः उत्पत्ति है तो भ्रम-संशय नही मान सकोगे. सफल प्रवृत्ति पीछेही ज्ञानके प्रमात्वका निश्चय होता है. उस विना किसीको प्रमात्व किसीको अप्रमात्व कहना नहीं बनता. प्रमात्व अप्रमात्वका संबंध ज्ञान सामग्रीके आधीन है. ज्ञानमें प्रयोजक सामग्री होनेसे उत्पत्ति अनुत्पत्तिका कथन है. अप्रमात्वका प्रयोजक दोष है. *प्रमा अप्रमा ज्ञानकी उत्पत्ति ही प्रमात्व अप्रमात्वका* प्रयोग है. सर्वत्र ज्ञानके ज्ञानका अग्रहण है. यथा व्यवसाय (सामान्य ज्ञान)का ज्ञानत्व सहित ग्रहण होता है. नही के प्रमात्वका. उसके ग्राहक अनुव्यवसाय (विशेष ज्ञान) के प्रमात्वका अनुमान विना अग्रहण है.

ज्ञप्तिस्वतस्त्व माने तो भ्रम संशयका होना ही असभव है; कारणके प्रमात्वोत्पत्तिकी जो सामग्री (घट और रज्जुसर्पके ज्ञान वास्ते जो सामग्री) चाहिये सो प्रथम मोजूद है अतः कहीं-प्रमा कही अप्रमाका प्रयोग करना हास्यजनक बात है. और ज्ञानमें स्वतोग्रहता मानते हो, इसलिये स्वतः प्रामाण्यका अभाव है. किंतु अप्रमात्व ग्रहणभी पूर्वमें कहे समान अनुमानका विषय है. यथा पत्रे उत्पन्न यह रजत अप्रमा है. निष्फल प्रवृत्तिका जनक होनेसे. जो अप्रमा नहि वोह निष्फल प्रवृत्तिका जनकभी नहीं जैसेके सत् रजत.

जो प्रमात्वकी उत्पत्ति स्वतस्त्व होती और ज्ञप्ति स्वतस्त्व होती तो बडे बडे फिलो सोफर तत्ववेत्ता, योगी, विद्वान ऋषि मुनिओंमें पृथ्वी, जलादि द्रव्य और शब्दादि गुण और अत्यंत स्वसमीप या स्वस्वरूप जो जीवात्मा उसके स्वरूपमें मतभेद नहीं होता.

धर्मकेः झघडे न फेलते परंतु ऐसा नहीं है मतभेद होतेही चले जा रहे हैं. इसलिये स्वतः प्रामाण्य कल्पना मात्र हैं किंतु प्रमात्व अप्रमात्वकी प्रयोजक अन्य सामग्री होनेसे यथा सामग्री परिणाम आता है.

(शेष आगे सू. २३६ से २४३ तकके और ३५९ से ३६६ तकके विवेचनमें)

स्वतोग्रहकी असमीचीनता.

जो स्वतः प्रामाण्यका खंडन है वोही स्वतोग्रहका है, ऐसा जान लेना चाहिये. क्योंकि प्रमात्व उत्पत्ति स्वतस्त्व और ज्ञप्ति स्वतस्त्व यह स्वतः प्रामाण्यका अर्थ है और प्रमात्व तथा उसके ज्ञानका साक्षी (आत्मा) में स्वतः ग्रहण होना यह स्वतोग्रहका अर्थ है. तद्वत् अप्रमावृत्ति (दोषजन्य अप्रमात्व) प्रमारूपमें और भ्रम बाध हुये पीछे अनुमितिद्वारा अप्रमात्वका ज्ञान याने अप्रमात्वका अनुमान साक्षीमें स्वतः ग्रहण होता है, इसलिये स्वतोग्रहके अंतरगत् आ जाता है इस रीतिसे प्रमात्व अप्रमात्वको स्वतोग्रहका विषय मानके सू. १८७ का विवेचन कर लेना चाहिये. ॥१८७॥

उपर वृत्ति (सू. १८८)में वताये हुये कारणसे स्वस्वरूपका ज्ञानभी किसीको नहीं होता परंतु अपनी सिद्धि तो होती हैं. अतः अर्थापत्तिसे यह परिणाम निकला कि पर द्वाराही सिद्ध होता है इसलियेभी परतोग्राह्यवाद सिद्ध होता है ॥१८८॥ इति परतोग्राह्यवाद ॥

अब त्रिवादके उपसंहारमें त्रिवादी अपना निश्चय विश्वास कहता है —

ईससे अन्यथा अन्यथेति ॥ १८९ ॥

उपरोक्त मंतव्य (सू. १२ से १८८ तक) से जो और प्रकारका माना जाता है वोह अन्यथा है याने समीचीन नहीं है. ॥ (ऐसी हमारी मान्यता है) इति प्रसंग समाप्तिसूचक है ॥ इस प्रकारकी दृढ भावना न हो तो कर्म उपासनामें यथायोग्य प्रवृत्तिभी न हो. इसलिये ऐसा आग्रह है.

पूज्य स्वामी श्री ब्रह्मानंदजीके शिष्य
आत्मानंद प्रयोजित ब्रह्मसिद्धांत ग्रंथका
धार्मिक मंडलार्थि साधनप्रतिपादक
पूर्वार्द्ध समाप्त हुवा.

ॐ

ब्रह्मसिद्धान्तः

उत्तरार्द्ध.

अनुभूमिका.

पूर्वार्द्ध विषे संक्षेपमें कर्म उपासना कांड, समष्टि व्यष्टि व्यवहारकी दृष्टिमे त्रिवाद रूपमें सयुक्त विश्वासकी पद्धतिसे लिखा गया है. इस शैली वा मंतव्यका व्यवहार पर भी उत्तम प्रभाव (असर) पडता है याने इसका उत्तम परिणाम निकलता है (यह उपर कहा है) और मुख्य अनुभव होनेका साधनभी है.

पाठक महाशय! जो आपको कर्मकांड प्रिय है, जो आपकी प्रवृत्ति मार्गमें रुची है और जो आप देश हितैषी मंडल साथ संयुक्त हैं तो, अथवा आपकी भक्ति–उपासना मेंही रुची है तो, पूर्वार्द्धकोही पुनः अवलोकन करें, उत्तरार्द्ध पर दृष्टि न डालें, क्योंकि लोकमें उक्त त्रिवाद (कर्म–ईश्वर–भक्तिबोधक) उत्तम सिद्धांत है. इसलिये उत्तरार्द्ध पर दृष्टि न डाले यह मेरी प्रार्थना है. नहीं तो आपका समय व्यर्थ जाय किंवा संशय वा भ्रांति पैदा हो जाय, ऐसी संभावना है, यूं में मानता हुं ॥ जो आपकी रुची कर्म उपासना और व्यवहारिक प्रवृत्तिमें नहीं रही है किंतु आपको कर्म उपासना सिद्ध है (अर्थात् अपनी वा दूसरेकी हानीकारक हो ऐसी मलीन वासना नहीं फुरती और जब चाहो तब थोडी देरके वास्तेही मनको रोकके एकाग्र कर सकते हो), संसारके दुःख दोष पर दृष्टि पड गई है लोक व्यवहारमें रुची नहीं है तथा विवेकादि (विवेक वैराग्य, शमादि षट्, मुमुक्षुता) उत्पन्न हो गये हैं और आत्म अनुभवकी जिज्ञासा हो तथा संसारके पदार्थोंमें (शरीर तकमें) ममता न हो और नकली फोनोग्राफ जेसे अहंत्वको नहीं चाहते अर्थात् अहंता ममताके त्यागमें अरुची वा कलेश न हो और अहंत्वके सच्चे लक्ष्यको पहेछाननेकी इच्छा हो तो अथवा स्वतंत्र होके निष्काम हुये लोकसेवा करनेकी इच्छा हो तो, अथवा संबंध रहित निवृत्तिमें प्रवृत्तिकी इच्छा और ऐसे हुये जीवन कर सकनेकी योग्यता हो तो, उत्तरार्द्धका अवलोकन करना सफल होगा, ऐसी मेरी मान्यता है. क्योंकि पूर्वार्द्ध धर्म नीति प्रवर्त्तक कर्म उपासनाके अधिकारी वास्ते है, इसलिये सयुक्त विश्वासवाद है. उत्तरार्द्धमें परिणामवाद, अवच्छेदवादकी रीतिसे सांख्ययोग–ज्ञान

योग-है जोकि कर्म उपासनाके विना प्राप्त होना कठिन है. और ज्ञानके अधिकारियों वास्ते है. ज्ञानमार्गमें ज्ञानद्वारा पदार्थकी परीक्षा, उसका परिणाम और उस पीछे उसका उपयोग हो, ऐसी शैली होती है.

पूर्वार्द्धमें जो कहा गया और उत्तरार्द्धमें जो कहा जायगा उसमें ज्ञानानुभव दृष्टि वश कुछ अंतर है अर्थात् ईश्वर विभु सक्रिय सगुण १, जीव परमाणुरूप चेतन रागादि गुण वा अवस्थावाला २, ज्ञानका अनादर ३, केवल कर्मोपासनासे मुक्ति ४, आत्माके स्वरूपका असाक्षात् ५, और स्वतः प्रामाण्यका अनादर ६. इन ६ बातोंने अनुभवके साथ अंतर है तथापि अनुभव होनेके पीछे, और कतकरेणु समान जब फिलोसोफी अपने सहित मौन धारण करती है-(नीचे बेठ जाती है-चुप हो जाती है) और अपने सहितमें उपेक्षा कराती है-इसके पीछे व्यवहारमें वोही त्रिवाद वा जीवन मत उत्तम जान पडता है, क्योंकि जीवनका सार तो वही है. जीवन पर्यंत उसके साथ संबंध रखना पडता है. ज्ञानयोग तो वाजे और खास (क्रोडोंमेंसे एक) के लिये होता है. इसी वास्ते वोह टूटी चारपाईकी बादशाही है, ऐसा तत्त्ववेत्ताओंनेभी लिखा है. ॥

उत्तरार्द्धमें ईश्वरनामा शक्ति यह सामान्यतोदृष्टरूप अनुमानका विषय है. और मनोअभ्यासीके लिये, आत्मानुभव "अर्थात् जिसमें सामान्य रूपसे मन अवश्य रीतिसे प्रकाशित होता है उस स्वप्रकाश (स्वयं प्रकाशमान) आत्माका अवश्य प्रकारसे अनुभव हो, यह" खास अनुभवका विषय है.

यद्यपि पूर्वार्द्धके मूल वाक्योंमें पक्ष वर्णन नहीं है तथापि उसके जाने विना "यह विश्वासवाद अयुक्त नहीं है, यथेच्छा मात्र हो, ऐसा नहीं है." ऐसी भावना होना और उसके विना कर्मोपासनामें प्रवृत्ति होना मुशकिल है, ऐसा मानके बीच बीचमे संक्षेपसे पक्षवर्णन पूर्वक बयान किया है. परंतु आत्मानुभव प्रकरणमें ऐसी वृत्ति होना उचित नहीं जान पडती, इसलिये उतने प्रकरणके विवेचनमें पक्षवर्णन-खंडनमंडन से उपेक्षा रखी गई है. अधिकारी यदि लिखे अनुसार अंतःकरणकी परीक्षा कर ले तो आशा है कि आत्मानुभवकीभी परीक्षा हो जाय, ऐसा मैं मानता हूं. हां, पूर्वार्द्धमंतव्यमें जो अनुभवकी आड मानी गई उनका निराकरण, सू. २४३ तकमें दिखाया गया है जो कि विवेकख्याति होनेमें सहकारी हो पडता है. इससे इतरमें पक्षका रूप नहीं लिखा गया है. सू. ४२७ से अद्वैत फिलोसोफीकी दृष्टिसे ब्रह्मवादादि ११ पक्षका वर्णन है और अधिकारका स्मरण कराके सू. ९०८ में ग्रंथकी समाप्ति है.

(शं.स.) एकही ग्रंथमें ऐसे प्रकारका पक्षभेद याने पूर्व उत्तरमें अंतर क्यों ? मानो जुदा जुदा पुस्तक करने. (उ.) प्रेरकों (मित्र–जिज्ञासु) का आग्रह कि जैसा जैसा परिचित और परिवर्तन हुवा वैसाही लिखके युक्ति तर्कको छोडके अपना अनुभव लिख देना चाहिये इसलिये जैसा जैसा परिवर्तन हुवा और अंतमें जो अनुभव बहुत वर्षोंसे इस वृद्धावस्था तकका साथी रहा वोह क्रम लिखा गया, सोही आपका उत्तर है. दोष आरोपकोंको छोडके रुची और जमानेकी विचित्रता देखनेसे दूसरोंको यह क्रम लाभकारी हो या क्या ? इसका उत्तर कहना मुशकिल जान पडता है. और कुछ निश्चय मानें तो भूलमें आ पडनेकी संभावना है. क्योंकि वर्तमान प्रजाको अनेक कारणोंवश जीवन सामग्रीकाभी घाटा, ऐसा वर्तमान है, तो कर्मोपासनाके अधिकार होनेकी तो वातही क्या करना अर्थात् ऐसे अधिकारी कम मिलते हैं. एकही विषय एकको ही कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल इस प्रभाव अनुसार उसी कारणसे इस अंधाधुंध प्रवृत्तिकालमें सच पूछो तो फिलोसोफी (तत्त्व विवेक विद्या) एक प्रकारका उन्माद और वैराग्य यह तडफानेवाला भयंकर रोग है ऐसा मान सकते हैं× परंतु विवेक-वैराग्यके विना इस विद्याका फल नहीं मिल सकता. इसलिये आपके सवालका तो यही जवाब है कि वर्तमानमें कर्मोपासना विवेक वैराग्यबोधक ग्रंथोंके बनाने और प्रसिद्ध करनेसे उपेक्षा चाहिये तथापि प्रेसोंकी बाहुल्यता और अनेक प्रवृत्ति इस विचारकी बाधक, इसलिये शुष्क ज्ञानकी परंपरा हो चली. ऐसा रूप देखनेमें आ रहा है अर्थात् अनुभव न होने और इस विद्यासे शांति न मिलनेका सबब हमारी खामी–अपूर्णता वा अनधिकारता है, न कि विद्याका दोष, ऐसा खयाल हो, इसलिये, और मेरे जैसे कितनेकोंको यह क्रम* लाभकारी–उत्तरका पूर्व सहकारी पडा इसलिये जुदा जुदा दो पुस्तक नहीं किये-साथ

×वैराग्यका विवेचन न करनेका यही कारण है.

*तप मलादिक कर्मोपासनाके, विवाद पद्धतिमूलक कर्मोपासना विवेकादिके, और विवेकादिक श्रवणादिके. ऐसे परंपरासे बहिरंग और अंतरंग साधन हैं उनका परिणाम विवेकख्याति अर्थात् प्रकृति पुरुष और उनके व्यवहारका अनुभव (यह फल) है ऐसे क्रमके संस्कार.

(नोट) भ्रमनाशक उत्तरार्द्ध परमार्थ दर्शन। पृ ८० से पृ ८०६ तक इस ग्रंथका रूपांतर और साक्षात्से या ठीक विस्तार सहित व्याख्यान है यहां कोई वात समझमें न आवे तो उसमें खुलासा मिल सकेगा. आत्मानुभव प्रसंगमें चिद् विवेकख्याति प्रकरण और प्रकृति प्रसंगमें अचिद् विवेक ख्याति प्रकरण और उभयके व्यवहार प्रसंगमें अंतका विलक्षण प्रकरण उपयोगी है. परमार्थ दर्शनमें बहुत पदार्थोंका वर्णन है, अतः विषय जलदी स्पष्ट हो जाता है–(सं.)

रखे हैं. परंतु वर्तमानके प्रवृत्तिवाद और विचित्रताके कारण प्रथमावृत्तिकी पद्धति आरण्यक पद्धतिमें बदली गई है. (पृ. १९० देखो.)

सबकुछ (श्रेणि-पद्धति) और अंतिम अनुभव पुज्यश्रीका है किंवा उनका अनुग्रह है, इसलिये उनके नामसे सुशोभित किया है. इससे इतर विशेष कहना नहीं चाहता ॥

(नोट) सं. १९९१, ९२, और ७२ में तीन जिज्ञासुओंके साथ विचित्र अनुभव हुवा. अर्थात् सत्संग करते करते जब ममत्वका त्याग होने लगा तब गबराहटमें पडे और बनावटी फोनोग्राफवाला अहंत्व भंग होने लगा तो बहुत कुछ शोकमें आन पडे (उनकी खेदकारक रंगते यहां लिखना ठीक नहीं) अंतमें उनके मगजकी हानी और विपरीत परिणाम आना जानके उनको ईश्वरभक्ति और व्यवहारिक पुरुषार्थमें जोडा गया और एकको दूसरे महात्माने ब्रह्मबोध किया तब वे ठिकाने पडे.† सच है अस्पर्श योगो वै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः। योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भय दर्शिनः ॥ मांडुक्य उ. कारिका प्रकरण ३ कारिका ३९॥ अर्थ—यह योग (ब्रह्म विद्या-ज्ञान योग) अस्पर्श नामका है (क्योंकि सब प्रकारके संबंधके स्पर्शसे रहित हो जानेसे अस्पर्श योग नामसे कहाता है) और यह सर्व प्रकारके योगियोंकरके दुर्दर्श है. (वेदांतमें कहे हुये विज्ञान रहित सर्व प्रकारके योगीसे देखा जावे ऐसा नहीं है) क्योंकि इससे योगियों भयको पाते हैं जो कि यह योग अभय रूप है तोभी उस अभय रूपमेंभी भयको देखनेवाले होनेसे वे योगीयों भय पाते हैं. ॥३९॥ ऐसा होनेका कारण "वर्तमानकी प्रवृत्ति, मिथ्याभिमान पदार्थासक्ति और लोकेषणा तथा पश्चिमकी हवाका सामना अधिकार परीक्षाकी न्यूनता" यह जान पटा है. तिससे पूर्वके महऋषियोंका उपदेश मनमें बैठ गया. अर्थात् यह विद्या आरण्यकके लिये है. जिसको विवेक और वैराग्य न हो तथा श्रद्धावान न हो वोह इस ज्ञानयोगविद्या (घरजाणि विद्या) का अधिकारी नहीं हो सकता.

---

†एक वृद्ध वेदांती साहेबके समक्ष "अहमब्रह्म ऐसा कहनेवाला या मान्नेवाला ब्रह्म नहीं है" इतना प्रकरण जरा स्पष्ट किया गया तो उनको महान शोक और भय हो पडा. पीछे रूपांतरसे आशय कहा गया है. कितनी जगे शोकजनक प्रसंग देखें हैं ॥

अथ ब्रह्मसिद्धांत-(उत्तरार्द्ध).

ज्ञानयोग-सांख्ययोग.

पूर्वार्द्धमें कर्मयोग, ध्यानयोग (इन दो) का वर्णन हुवा. अब इस उत्तरार्द्धमें ज्ञानाधिकार, ज्ञानयोग, और विज्ञानयोग (उत्तर फिलोसोफी-परमार्थ) का वर्णन होगा. तहां प्रथम ज्ञानयोगके अधिकारको कहते हैं.—

उक्तके अनुकरणसे कर्म उपासनाकी सिद्धि ॥१९०॥ उसका फल शुद्धतादि ॥१९१॥ विशेषाभ्यासार्थ अरण्यमें गमन ॥१९२॥ प्रतिबंधक व्यवहारमें वैराग्य होनेसे ॥१९३॥ तहां वीतराग ज्ञानवानोंके संगकी आपत्ति ॥१९४॥ इस सदाकरमें निर्णायक मध्यस्थका श्रवण (प्रत्यक्ष अनुमान युक्ति साथ वा सृष्टि नियम इंद्रिय बुद्धि साथ अनुभव मध्यस्थ इसका श्रवण) ॥१९५॥ और तन्निर्णित वक्ष्यमाणकाभी प्रसंगसे ॥१९६॥ वृत्ति—

पूर्वार्द्धमें कहे हुये प्रकारके अनुकरण (अभ्यास)से कर्मयोग और उपासनायोगकी सिद्धि हो जाती है ॥१९०॥ उसका फल-मनकी शुद्धता १, निष्कामता २, अपर वैराग्य ३, मलनाश ४, विक्षेपाभाव ५, एकाग्रता ६, सिद्धि ७, और विवेक बुद्धि ८ होता है ॥१९१॥ कर्मयोग वा ध्यानयोग के विशेष अभ्यास होनेके लिये अधिकारीको अरण्यमें जाना होता है ॥१९२॥ क्योंकि उसके इष्ट प्राप्तिका प्रतिबंधक जो व्यवहार (गृहस्थाश्रम व्यवहार) उसमें उसको अपर वैराग्य हो जाता है ॥१९३॥ तहां बहुधा करके वीतराग ज्ञानवान (आत्मवित्) महात्माओंका निवास होता है इसलिये आये हुये जिज्ञासुको उनके सत्संगकी प्राप्ति होती है (होनी ही चाहिये) ॥१९४॥ उस सदाकर (सत्संग) प्रसंगमें (अनेक विषयोंका श्रवण होता है इसी प्रकार) मध्यस्थकाभी श्रवण होता है. (वा हुवा) ॥१९५॥ मध्यस्थके लक्षण यह हैं:-प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण और युक्तिमें तुलना इन तीनोंके साथ अनुभव वा अनुभवके साथ यह तीनों मिल जावें तो इन चारोंको मध्यस्थ पदवी होगी. अथवा सृष्टि नियम, इंद्रियजन्य ज्ञान

१ पवित्र सरल अंदर बाहिर समान निष्कपटता ॥ २ काम्य कर्मका त्याग-फलकी कामना छोडके कर्म करना ॥ ३ संसारके पदार्थोंमें दोष-दुःख दृष्टिसे मनमें अरुची हो जाना ॥ ४ गुप्त नीच भावना वा पाप वासनाका अभाव हो जाना ५ मनकी चंचलता क्षण क्षणमें स्फुरण उसका अभाव ॥ ६ चित्तका अवलंबनाकार स्थित रहना वा निरालंब ठेरना ॥ ७ मानसिक शक्तिओंका उद्भव ॥ ८ सत् असत् निर्णय करनेकी और सार ग्रहण असार त्यागनेकी योग्यता ॥ १९५ मध्यस्थकी व्याख्या और उनको माननेका कारण तत्त्वदर्शन अ २ में विस्तार पूर्वक लिखा है. ॥

और बुद्धिकी संगति इन तीनोंके साथ अनुभव वो अनुभवके साथ यह तीनों मिल जावें तो इन चारोंको मध्यस्थ संज्ञा होगी. इस मध्यस्थका शंका समाधान पूर्वक श्रवण होता है. क्योंकि इष्ट विषयके निर्णयमें इनके द्वारा शांतिकारक परिणाम निकलता है. मनुष्यमंडलकी सीमातकमें संशय विपरीत भावना और असंभव दोषका निवारण होके सत्य, अनुभवमें ग्रहण हो जाता है इसलिये आरंभमें इसका श्रवण हो जाता है. ॥ १९५ ॥ सत्संगमें प्रसंग प्राप्त हुये उक्त जिज्ञासु अधिकारीको मध्यस्थद्वारा निर्णित वक्ष्यमाण विषयकाभी श्रवण होता है और उसका मनन होके योग्य परिणाम (आगे वांचोगे) निकलता है. ॥१९६॥

विवेचन—सू. १९० से १९६ तकमें अरण्यगमन और मध्यस्थ इन दो विषय के विवेचनकी जरुरत है सो नीचे अनुसार है.

यद्यपि पातंजल दर्शनवर्णित क्रिया योगकी सिद्धि व्यवहाराश्रममें नहीं होती तथापि ब्रह्मविद्या जिसे आरण्यक विद्या कहते हैं सोभी संस्कारादि (पूर्व संचिताभ्यासादि) का बल होनेसे गृहस्थाश्रममेंभी प्राप्त हो जाती है जैसेके याज्ञवल्क्य, जनक विदेही, वशिष्ट और श्रीरामजी वगेरेको प्राप्त हुई है तो यदि पूर्व सामग्री संचितवाले को कर्म उपासनाकी सिद्धि व्यवहाराश्रममें हो जावे तो इसमें क्या आश्चर्य है. जैसेकि जयमिनि, कुमारल भट्ट, साबर वगेरे कर्मयोगी और शांडल्य नरसी वगेरे भक्तियोगी हुये हैं. तथापि यह अवश्य कहना पडेगा कि कर्म-ध्यान और ज्ञान यह तीनों योग विर्ले व्यवहाराश्रमीको प्राप्त होते हैं और इस वर्तमान पच्छमकालकी प्रवृत्ति, नाना धर्म मत पक्ष दर्शन, और जीवनके कष्टसाध्य साधन इन तीनकी आपत्तिसे जिज्ञासु अपने इष्टाभ्यासको व्यवहाराश्रममें नहीं कर सकता किंतु अरण्यमेंभी कठनताईसे कर सकेगा. इसलिये उक्त जिज्ञासु व्यवहाराश्रमको अपना प्रतिबंध जान उसको त्यागके अरण्यमें जाता है

जो देव, पितृ और लोक इन तीन ऋण रहित हो, जिसको लोककी कुछभी चिंता न हो, जिसको व्यवहारसे बिलकुल उपेक्षा हो—अरुची हो, जो कनक कांता और लोकेषणासे वर्जित हो और इष्टाभ्यासके वास्ते अरण्यमें रहता हो ऐसे पुरुषको आरण्यक कहते हैं.

(शं.) अभ्यासीके शरीरका निर्वाह कैसे होगा ? (उ.) इसका समाधान पूर्वार्द्धमें आ चुका है. याने इन योगका वही अधिकारी होगा जिसको शरीर निर्वाहकी सामग्री

प्राप्त होगी जो पूर्ण सामग्री है तो गृहस्थमेंभी इष्ट सिद्धि कर सकता है. जो थोडी है (अन्न वस्त्र योग्य अप्राप्त) तो अरण्यमें इष्ट प्राप्ति कर सकता है.

मध्यस्थ संबंधी संक्षेपमें यह निवेचन है कि जो अपरोक्ष विषय हैं उनमेंभी विवाद है जैसेके शब्दादि अपरोक्ष विषयका विवाद उपर कहा है. तथापि उनका निवेडा कोट न कोइ प्रकारसे होभी जाय और न हो तोभी थोडा मतभेद रहता है इस लिये ऐसे प्रसगोंमें मध्यस्थकी कम जरुरत पडती है. तथापि परोक्ष विषय जो ईश्वरादि हैं उनका निर्णय मध्यस्थ विना नही होता. जीवात्मा यह परोक्षापरोक्ष जैसा है इसलिये तत्सबंधी मोक्षभी ऐसाही है.

जो जिज्ञासु श्रद्धावान अपने मान्य ग्रंथ और अपने मान्य सदगुरुमे श्रद्धा रखते हैं उनको अन्य मध्यस्थकी अपेक्षा नहीं है. क्योकि उनका निश्चय यह होता है कि हमारे ग्रंथ गुरुके उपदेशको कोई कैसाभी बतावे और उसका परिणाम कैसाभी निकले हमको इसपर ध्यान देनेकी अपेक्षा नही है किंतु उनका बोध सत्यही है क्योंकि वे आप्त वाक्य है अतः अन्य प्रमाण (मध्यस्थ) की अपेक्षा नही है.

परंतु वर्तमान तर्कंकाल है और नाना ग्रंथ विरोधी पक्षका प्रसार है इसलिये श्रद्धा विश्वासको दृढस्थान नही मिलता इस लिये जहां स्वतंत्र सत्सग होता है वहां शब्द प्रमाणको विवादित मानके और मनुष्य अपूर्ण हैं ऐसा समझके प्रथम मध्यस्थका निश्चित करते हैं अर्थात् मानव मंडलकी सीमातकमे जिसमे विषयका निर्णय हो उसका स्थापन करते हैं उस पीछे इष्ट विषयको उसमें तोलते हैं सो मध्यस्थ इस सूत्रमें बताया है. सूत्रवर्णित उभय मध्यस्थ समानही हैं. रचना मात्रमें अंतर है. इन मध्यस्थोंमें मतभेद हो जावे तो बहु पक्षानुसार फेसला होता है. (इसका विस्तार मूलमें है.)

तटस्थ शोधक बुद्धिमान जिज्ञासुको मध्यस्थकी इसलिये अपेक्षा है कि माने हुये विषयमें यदि सशय प्राप्त हो तो उसका केसे निर्णय करना. सत्संगमें शंका समाधान हों यह स्वाभाविक है तो समाधान केसे करना और क्या मानना, इसलिये मानव मंडल की पराकाष्ठा (सीमा) तकमें मध्यस्थ+ (जज) की अपेक्षा रहती है. क्योकि वस्तुतः यथार्थ क्या है. ऐसा मनुष्य जाननेमे असमर्थ है. माना के जैसा ईश्वरको विषय होता है अर्थात् जैसाके वस्तुतः है. वैसाही योगी वा अन्य मनुष्य विषय कर रहे हों तोभी वे यह दावा नहीं कर सकते के इत्थमही है. क्योकि उपर कहे अनुसार उनकी अपूर्णता

+ तत्त्वदर्शन अ २ मे इसका विस्तार है

मुक्ति वगेरे परोक्ष विषयोमें नाना मत–कल्पना है. उनमे सबको और सबको नहीं तो अमुक अंश छोडके सबके मंतव्य असत् ख्यातिके विषय होने चाहिये. क्योंकि सत् तो एकही होगा. ॥१९९॥ प्रमाणकी अपूर्णता प्रसिद्ध है. यथा मंत्र द्वारा जलमें कृमी जान पडते है चक्षुसे नहीं. यदि वैसी चक्षु होती तो ज्यादे लाभ होता. मख्खी, कीडी दूरमे मिष्टको जान लेती है, मनुष्य नहीं. निशाचर जानवर रातको अच्छा देखते हैं (बिल्ली, उल्लु, भगेरा वगेरे निशाचर है) मनुष्य नहीं देख सकता. इत्यादि. जो मन इंद्रियोंमें अपूर्णता न होती तो जीव, ईश्वर, मोक्ष, शब्दादि विषयके स्वरूप संबधमें फिलोसफरोके मतमें भेद न होता. मान्य ग्रंथोमे जीवादिके विषयके मतभेद न होता. वा योगियोंका मंतव्य समान होता. सांढे जानवरकी तरह मनुष्यकोभी वर्षा होनेका ७ दिन पहेले ज्ञान हो जाता. एवट (भेड बकरी) की तरह छुपे हुये कुवे वा रङ्को ज्ञान मनुष्यकोभी हो जाता. पक्षी विशेषके समान मिश्रित विषयका ज्ञान हो जाता, भूल वा भ्रम न होते. तथाहि आजतक जल तत्त्व माना गया, अतत्त्व नहीं. प्रतिबिंबका उपादान मनोवृत्ति वा अनुपादान होना माना गया, किरणोंको उपादान न माना. चक्षुवृत्ति शरीरसे बाहिर जाती है, ऐसा माना गया, रूपकी किरणें आंखमें आके रूपका ज्ञान होता है, ऐसा न माना गया; परंतु अब जल अतत्त्व, प्रतिबिंबका उपादान किरण, वृत्ति बाह्य अगमन माने गये. इत्यादि.

सारांश मनुष्य वा योगीके प्रमाणमें भूल न होती तो ऐसा न होता. इस रीतिमेंभी अन्यथा वक्ता पर अन्यथा कह सकते हैं. ॥२००॥ यथार्थ–सृष्टिमें वस्तुतः जो हो और जेसा हो वोह और वेसाही प्रतीत हो इसका नाम यथार्थ ज्ञान. इस ज्ञानका विषय यथार्थ वा अबाधितार्थ. एसा यथार्थवेत्ता कोई हुवा वा है, एसा कहना मुशकिल है.॥ यथार्थसे अन्यथा अयथार्थ सत्य–जेसा जाना माना ऐसे ज्ञानका नाम सत्य ज्ञान उसका विषय सत्यार्थ. अब वोह वस्तु वस्तुतः वेसीही है किंवा अन्यथा, इसका जवाबदार सत्यवादी नहीं है. जेसा जाना माना है उसमे अन्य कहना वर्तना असत्यवाद है. डोरीको डोरी, मृगजलको भ्रांति जाना माना वोह यथार्थ और सत्य है जो डोरीको डोरी और मृगजलको मृगजल नहीं जानता किंतु सर्प और तालाव जानता मानता है वोह यद्यपि यथार्थपर नहीं परंतु उसको असत्यवादी नहीं कह सकते. परीक्षा होने तक उसको सत्यवादिही कहा जायगा. जो डोरीको डोरी या डोरीको सर्प किंवा सरोवरको सरोवर और मृग तृषणिकाको मृगजल जानता मानता है और फेर लकडी वा धुंध बताता है वोह असत्यवादि है. मेरी नाक, मैं नकटा, मेरी आख, मैं काना, यह

व्यवहार सत्य है ? वा क्या ? ऐसे बारीक विवेक पर उतरे तो भ्रम किसका कहना यह सवाल उठता है. उपर प्रमाणकी अपूर्णतामें जल, प्रतिबिंब, वृत्तिबाह्य गमनके उदाहरण दिये हैं वे सृष्टिके आरंभसे लेके इस सदीके पूर्व तक सत्य, यथार्थ माने जाते थे और अब असत्–अयथार्थ माने गये. इस रीतिसे भ्रम किसे कहना इसका जवाब सहेज नही है और इसी कारणसे भ्रमके स्वरूपमें सत्ख्याति, असदख्याति, सदसदख्याति, आत्म ख्याति, अन्यस्थ ख्याति, अन्यथा ख्याति, अन्यरूप ख्याति, अख्याति, सदसद विलक्षण वा अनिर्वचनीय ख्याति इत्यादि मत हैं जो अयथार्थ प्रतीत होता है उसका उपादान है वा नहीं, वा नाम कल्पन है और उसका ज्ञान अध्यास रूप है वा नहीं इत्यादि मतभेद हैं. यह मतभेद तो परीक्षा हो सके ऐसे रज्जु सर्पादिवाले भ्रममें है. परंतु जिन विषयोंकी वा परोक्षकी परीक्षाही न हो सके उसके संबंधमें तो क्या कहें. इसलिये किसका कथन मंतव्य यथार्थ सत्य और भ्रम माना जाय यह विवाद है. इस वास्ते दूसरेको यकदम अन्यथावादि कहना वा मान्ना उचित नहीं है ॥२०१॥ पूर्वार्द्धके मतव्यमेंसे कितनाक भाग अपूर्ण याने असमीचीन है (आगे पासही वाचोगे)–इसलिये अन्यथा वक्ता अन्यथापर है ॥२०२॥ पूर्वार्द्धमें जितना कुछ माना है वोह परतः (अपरोक्षत्व हुये विना अनुमानका विषय) माना है स्वतोग्राह्य नहीं परंतु वक्ष्यमाण प्रकाशसे स्वतोग्राह्यभी है–जिसे विवेक ख्यातिभी कहते हैं, इस वास्तेभी पूर्व वक्ता अन्यथा पर है ॥२०२॥ पूर्वके मंतव्यमें उत्तर जन्म विषेभी इष्ट सिद्धि मानी है याने साधनमें संशय बताता है और मुक्तिसे अनावृत्तिभी कही है परंतु उक्त मुक्तिसे पुनरावृत्ति–जन्म प्राप्तिही सिद्ध होती है (आगे वांचोगे) इसलियेभी अन्यथा वक्ता अन्यथा पर है. ॥२०३॥

(शंका) तुम जो कहोगे वोहभी वेसा (पूर्ववादी जेसा) क्यों न माना जाय ? (उ.) इष्ट है. जेसा सृष्टि नियम, व्याप्ति आधीन स्वतोग्रह हो और परीक्षामें पास हो वेसा हम मानते हैं. वोहभी अन्यथा हो याने परीक्षामें न आवे तो त्याग देना. परंतु हम किसीको अन्यथा (मिथ्या) पर है यह कहना नही चाहते. (शं.) अन्यभी ऐसाही कहते हैं. (उ.) आपके ध्यानमें जेसा आवे वेसा करना मान्ना. मालूम पडता है के आप कर्म वा उपासनाके अधिकारी हैं वा सम्प्रदायबद्ध हैं. इसलिये आपको पूर्वार्द्धही ठीक है. स्वतंत्र शोधक याने ज्ञानयोगमें आपको रस नहीं आवेगा. और उत्तरार्द्धवाला विषय मनानेमें हमारा आग्रह नही है. क्योंकि किसीके अधिकार (प्रवृत्ति कर्म वा उपासनाकी योग्यता) को अनधिकार अवस्थामें भ्रष्ट करना वा होना हम पाप मानते हैं अधिकार

प्राप्त होनेपर उसे स्वयंही आगे चलनेकी जिज्ञासा उत्पन्न हो जाय, ऐसे निमित्त हो जायेंगे. (शंका) क्या तुम्हारे मंतव्य कथनका खंडन नहीं हो सकता ? (उ) जितना कुछ मनसे कल्या जाय वा वाणीसे कहा जाय उस सबका खंडन हो जानेकी संभावना है क्योंकि स्वरूप लक्षण मन वाणीके विषय नहीं होते यदि विषय हैं तो अनुभव मात्रके. अब रहा अन्यथा (अयथार्थ) उसका खंडन मंडन वडी वात नहीं. परंतु जेसे जिसका खंडनभी विषय हो जाय वोह स्वतः स्वरूप खंडनका विषय नहीं हो सकता वेसे ऐसे संभव है कि मनुष्यकी पराकाष्ठातकमें वे विषय खंडन न हो सकें कि जो स्वतः सिद्ध सृष्टि नियमके अनुकूल ओर सबकी परीक्षामें होनेसे सर्वतंत्र हो. यथा जो स्वरूपतः एक ओर निरवयव हो, उसका अपनेमें संयोग नहीं होता, वोह परिणामी नहीं होता इत्यादि. ओर हमारे आपके जेसे परिच्छिन्नोंके लिये तो क्या कहें किंतु विश्वास पद्धतिको वीचमें न लेके सृष्टि नियम व्याप्ति युक्ति ओर परीक्षा सहित जो खंडनमंडन हो तो हमारी भूलसे हम मुक्त होंगे, दूसरेको सत्यग्रहण लाभ होगा इतनाही कहना बस है. ॥२०३॥

अब त्रिवादके शुद्धतादिका स्वीकार करने पीछे त्रिवादमें जो अपवाद है सो लिखते हैं.

२०४-ईश्वर जीव, मुक्ति और साधन प्रसंगमें भूमंडलमें जितने प्रचलित पक्ष हैं वे सब त्रिवाद सू. १८९ के विवेचनमें लिखे हैं. उनका किंवा जितने पक्ष जीव, ईश्वर प्रकृति, बंध, मोक्ष, मोक्षके साधन, सृष्टि उत्पत्ति पूर्व और नाशपश्चात् सृष्टि- उत्पत्ति, स्थिति, लय इन तमाम विषयोंका खंडन देखना हो तो संस्कृत "खादि खाद्य खंडन"में मोजूद हैं इसका लेखक स्वतंत्र विचारवाला है. परंतु ग्रंथ कठिन है इसलिये अन्य भाषामें नहीं हो सका है जो हिंदी गुजराती भाषामें देख सको तो प्रसिद्ध ग्रंथ अद्वैतादर्श, भ्रमनाशक (दोनों भाग) और तत्त्वदर्शन सविवेचन देखना चाहिये. किंवा प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश, सत्यामृतप्रवाह, जैन तत्त्वादर्श, सर्वदर्शन संग्रह, न्याय वैशेषिक और सांख्य शास्त्रपर जो आर्य भाष्य है सो, वेदांत शंकरभाष्य विचारिये. सब बुद्धिविलास है. मेरी समझके अनुसार तो इस विषयके संबंधमें इतनाही ठीक जान पडता है कि स्वतःसिद्ध सृष्टि नियमपर ध्यान देवें और अधिकारी होके अपने आपको शोधें तो सब शंकाका पर्यवसान होके शांति होगी और एक परिणाम निकल आवेगा. जो यूं नहीं हो सके तो लोक परोपकार और अपने जीवनकी रक्षा याने जीवन मत बस है.

त्रिवादगत अपवाद-

उक्तमें विभुप्रतिगतिका अभाव होनेसे अव्यवस्था ॥२०५॥ इच्छादि न हो सकनेसे ॥२०६॥ त्रिकालज्ञत्वादिकी असिद्धिसे ॥२०७॥ नित्यका नित्य कार्य अदर्शनसे ॥२०८॥ और समसत्ताके स्वीकारसे ॥२०९॥ अविभुभावमें भी सर्वाधार न हो सकनेसे ॥२१०॥ तत्त्वमें कर्तृत्व भोक्तृत्व न होनेसेभी ॥२११॥ प्रकृतिमें ऐसी योग्यता न होनेसेभी ॥२१२॥ इष्टाकारतामें विनाशत्व प्राप्तिसे ॥२१३॥ और चित्तका अनुपयोग होनेसेभी ॥२१४॥

पूर्वोक्त त्रिवादके मंतव्यमें अव्यवस्था बताते हैं:-असीम विभु (ईश्वर) में गति नहीं हो सकनेसे (पूर्वोक्त मंतव्यकी) व्यवस्था नहि होती ॥२०५॥ विभुमें इच्छादि (इच्छा, प्रयत्न, न्याय, दया) गुण नहीं हो सकते इसलिये व्यवस्था नहीं होती ॥२०६॥ त्रिकालज्ञत्वादि (सर्वज्ञत्व सर्व शक्तिमानत्व) की सिद्धि नही है इसलिये व्यवस्था नहीं होती ॥२०७॥ नित्य (ईश्वर) का नित्य कार्य नही देखते, इसलिये व्यवस्था नहीं होती ॥२०८॥ ईश्वर और प्रकृति दोनोंका अस्तित्व, समान स्वीकारा है इसलिये व्यवस्था नहीं होती ॥२०९॥ ईश्वरको परिच्छिन्न मानके व्यवस्था करें तोभी. (पूर्वोक्त मंतव्यकी) व्यवस्था नही होती ॥२१०॥ तत्त्व (पूर्वोक्त अणु चेतन जीव) में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं हो सकता इसलियेभी (पूर्वोक्त मंतव्यकी) व्यवस्था नहीं होती॥ २११॥ ईश्वर जीव चेतनकी जगे प्रकृतिको मानके व्यवस्था करें तोभी प्रकृतिमें वैसी योग्यता न होनेसे व्यवस्था नही होती ॥२१२॥ जीव, ईष्टाकार (संकोच विकासवाला) होता है ऐसे पूर्वोक्त मंतव्यसे जीवमें विनाशत्वकी प्राप्ति होती है, इसलिये व्यवस्था नहीं होती ॥२१३॥ और जीवके मुक्त होने पीछे चित्त अनुपयोगी रहता है, इसलियेभी व्यवस्था नहीं होती ॥२१४॥ इसवास्ते उक्त मंतव्यसे अन्यथा है ऐसा जान पडता है और उसको अन्यथात्वकी प्राप्ति होती है ॥२१४॥

(विवेचन)-त्रिवादमें ईश्वरको विभु असीम और सक्रिय माना है (सू.१३-९४) परंतु असीम विभुमें गति (क्रिया)का अभाव है क्योंकि देश विना गति नहीं हो सकती और असीमके आसपास देश नही होता जो हो तो असीम नहीं रहा. इस रीतिसे पूर्व मंतव्यमें कर्तृत्वकी अव्यवस्था वा अन्यथात्वकी प्राप्ति होती है. (शं.) जितना उतनाही, इस दृष्टिसे गति संभवे है (उ.) आसपास आकाश नही इसलिये क्रिया असंभव. जो तुम्हारी दृष्टिमे मानें तो आकाशभी जितना उतना है उसमेंभी गति होनी चाहिये. ईश्वर

का तमाम स्वरूप सिलासमान एक तरफ गति करेगा तो परिच्छिन्न होनेसे आधेय होगा. स्वयंभू सर्वाधार न ठेरनेसे अव्यवस्था होगी. और जो ईश्वरके अवयव अवयव–गति करेंगे वा ईश्वरके अमुक प्रदेशमें ईश्वरकी गति होगी तो सावयव ठेरेगा और परिच्छिन्नवाले दोष आवेंगे. परमाणु अणु हैं, इसलिये इनका परिणाम पाना नही बनता. परंतु जो विभु गतिवान हो तो उसका परिणाम होना, वा उसका गर्भमें आके अवतार लेना अथवा मध्यमाकार हो जाना क्यो न माना जाय? परंतु ऐसा हो तो वोह असीम विभु नहीं ठेरता. इस रीतिसे विभुमें गतिका अभाव है (हां, विभुकी अचिंत्य सत्ता स्वरूपकोही लोहचुंबक समान गतिका निमित्त मानें तो जुदी बात है परंतु उसमें इच्छादि नहीं मान सकते)॥२०५॥ त्रिवादमें ईश्वर विषे इच्छा, प्रयत्न, न्याय, दया गुण मानें हैं (सू. १३) परंतु असीम विभुमें गुणोंका प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि एक रस अचल है जो हठसे मानें तो वक्ष्यमाण विवेचन सू. २११ में कहे अनुसार मध्यम ठेरेगा परंतु ईश्वर विभु निरवयव है इसलिये इच्छादिके अभावमे अव्यवस्था वा अन्यथाकी प्राप्ति होती है॥२०६॥ त्रिवादके सू.१३ में ईश्वरको सर्वज्ञ माना है, परंतु जेसे कि उक्त वा लोक भावनामें माना जाता है अर्थात् एक कालमें एक विषे सर्वज्ञत्व त्रिकालज्ञत्व होता है और एकमें सर्व प्रकारकी शक्ति होती है, ऐसा मानते है. ऐसा मानते हैं वेसा सिद्ध नहीं होता + इसलिये उक्त मंतव्यमें अव्यवस्था वा अन्यथाकी प्राप्ति रहती है. ईश्वर क्यों सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान माना जाता है वा किस

+ जो कोई हठसे वेसा माने तो सृष्टि कितनीवार उत्पन्न नाश हुई और होवेगी इसका सर्वज्ञकी तरफसे उत्तर-नहीं हो सकेगा, जो देगा तो सृष्टिका पहेला आरंभ और अंतका नाश मानना पडेगा जो के असंभव है. क्योंकि प्रकृति निष्फल अनुपयोगी नही रह सकती. जो उत्तरमें अनंत वार शब्द मानें तो त्रिकालज्ञ न रहा. जो उत्तरमें सृष्टि की उत्पत्ति वा नाश नहीं किंतु अनादिसे है और ईश्वर व्यवस्थापक है, ऐसा हो तो अमुक दो परमाणुका संयोग वियोग, अमुक जीवका जन्म कितनीवार हुवा और होगा, इसका उत्तर न बनेगा. जो बनेगा तो अनंत कहनेसे अत्रिकालज्ञता असर्वज्ञता सिद्ध होगी. जो आरंभ और अंत उत्तर हो तो सृष्टि अनादि अनंत न ठेरेगी तथाहि अकृत (कर्म कार्य) का ज्ञान अपरोक्ष न ठेरेगा क्योंकि अकृतम इंद्रिय नहीं होता त्रिकालज्ञने अनुमानसे जाना, यह हासी उपजाने जेसा कथन है. सारांश अकृत कर्मका ज्ञान मानना मिथ्या है. जो हठसे मानेंगे तो जीव परतंत्र होनेसे जवाबदार न ठेरेगा. त्रिवादमें जो सर्व संप्रदायोंसे विशेष गुनी–उत्तमता है वोह यही (अनादिसे सब यदाग) है उसका नाश

प्रकारसे सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान है यह आगे वांचोगे ॥२०७॥ त्रिवादमें गुण सहित ईश्वर नित्य तो उसके कार्य (अनेक सृष्टि उत्पत्ति लय) भी नित्य होने चाहिये परंतु वेसा नही जान पडता जेसाके पूर्वार्द्धमे ईश्वर प्रसंग विषे नित्य हाथ होनेका प्रतिषेध किया है (ईश संबंधी विवेचन याद करो) ।२०८॥ जबके ईश्वर और प्रकृति उभय सम सत्ता (स्वरूपतः सत्य) हैं तो वे केसेभी सूक्ष्म स्थूलादि स्वरूप हों (सू. ४३६ का विवेचन गोचर करो) वे एक दूसरेके स्वरूपमें प्रवेश नही कर सकते. अर्थात् जहां इश्वर स्वरूपा-धिकरण है वहां प्रकृति (जगत् स्वरूपाधिकरणकी जहां प्रकृति स्वरूपाधिकरण वहां ईश्वर स्वरूपाधिकरणका प्रवेश वा अस्तित्व नहीं होना चाहिये यह नियम दीर्घदर्शि विद्वान बुद्धिमान सहजमें जान सकते है वा मान सकते है परंतु त्रिवादमें इस नियमके विरुद्ध उभयका व्याप्य व्यापक भाव संबंध माना है, इसलिये अव्यवस्था वा अन्यथा प्राप्ति होती है ॥२०९॥ जो क्रिया, इच्छादि गुण स्थापनके लोभवश ईश्वरको अविभु (परिच्छिन्न) मानें तो सर्वज्ञ और ब्रह्मांडका कर्ता न मान सकेंगे तथा वोह पराधेय होगा इसलिये अव्यवस्था वा अन्यथात्वकी प्राप्ति होगी. ॥२१०॥

होगा क्योकि ईश्वरका भविष्य ज्ञान वा प्रकृति नियत भविष्य अन्यथा वा मिथ्या नही मान सकते. तो फेर जीव स्वतंत्र पुरुषार्थ करता है वा कर सके, यह न रहा किंतु अन्य संप्रदायों समान नियत ठेरेगा. इस मंतव्यसे महान हानी होगी. जो कहो के जीव ऐसा करेगा तो यूं होगा, ऐसा करेगा तो यूं होगा, इस प्रकार भविष्य जानता है. यह उत्तर हासीप्रद है. इसीका नाम त्रिकालज्ञता हो तो क्या कहें? यह तो जो भूत व्याप्ति हो तो विद्वान मनुष्यभी कह सकता है जो भूत भविष्य नहीं किंतु ईश्वरको सर्व वर्त्तमान है, इसलिये सर्वज्ञ हैं, ऐसा मानें तो इच्छावाला ईश्वर अभिमानी एक है, अनेक देशस्थ अनेक जीव वा परमाणुओंकी अनेक क्रिया एक कालमेंही "मैं जानता हुं" ऐसा अभिमान नही कर सकता. कितनाभी बडा हो परंतु अभिमान भाव याने ईश्वर ज्ञाता संज्ञा तो एकही है उसके "अनंत ज्ञान अनंत शक्ति" ऐसे अयुक्त भाविक पद विश्वासीयोंके पास रहने दो. इसी प्रकार: जो सर्व शक्तिमान मानें तो सवाल पेदा होता है अर्थात् उसमें अनर्थ वा अन्याय करनेकी, अनादि तत्त्वोंके नाश करने वा उनके गुण स्वरूप बदलनेकी, अपने देशसे किसीको बाहिर निकालनेकी, अनुपादान सृष्टि बना-नेकी, अपने टुकडेमेंसे जड मलिन सृष्टि रचनेकी वा अपने जेसा दूसरा ईश्वर बनानेकी शक्ति है वा नही? जो है तो ईश्वर न ठेरा असंभव दोष आये, और जो नहीं है तो सर्व शक्तिमान कहना न बनेगा. ड ॥२०७॥

त्रिवादमें जीवको अनादि अनंत (सू. १२) नित्य गुणवाला (सू. १२) नाना (सू. १४) कर्त्ता भोक्ता (सू. २५) ज्ञान लिंगवाला (१४–१००) कहा गया है इसलिये जीव अणु चेतन तत्व स्वरूप ठेरता है, क्योंकि विभु तत्त्वमें क्रिया नहीं होती और मध्यम परिमाणमें अनंतत्व नहीं होता और जडमें ज्ञान नहीं होता अब जो इस जीवको अमूर्त्त मानें तो आकाशवत् मूर्त्त प्रकृति (शरीर) के साथ उसका संबंध अर्थात् बंधन होना नहीं बन सकता परंतु बंधन तो देखते हैं इसलिये उक्त (अणु चेतन तत्त्व) को मूर्त्त मानें तोभी उसमें भोक्तृत्व नहीं हो सकता क्योंकि दुःख सुख भोग अवस्था है. और अमूर्त्त वा मूर्त्त तत्त्वकी अवस्था नहीं होती जब चेतन अणु तत्व भोक्ता नहीं तो उसमें कर्तृत्वका आरोप व्यर्थ है. परंतु कर्तृत्व भोक्तृत्व देखते तो हैं. अतः अव्यवस्था वा अन्यथात्वकी प्राप्ति होती है ॥

जीव यदि तत्त्व है तो उसमें रागादि अनित्य गुण होना असंभव. कारणके द्रव्यका द्रव्य, गुणका गुण उपादान होता है जबके दुःख सुख इच्छा राग द्वेषादि नष्ट हों पुनः उत्पन्न हों तो जीवमें जीव स्वरूपसे इतर उनकी उत्पत्तिका उपादान नहीं पाया जाता और जीव तत्त्व होनेसे परिणामी नही है इसलिये दुःखादि गुण उद्भव तिरोभाववाले नित्य जीवके अंदर रहते होंगे वा बाहिरमें चारों तरफ लिपट रहेते होंगे, वा अमुक प्रदेशमें होंगे ऐसा माननेसे जीव सावयव ठेरता है. या तो इसका उत्तर नही मिलता, यदि गुण कोई वस्तु है तो स्वरूप अप्रवेश दोष आता है फेर वही गुण अणु वा मध्यम परिमाण हैं इसका उत्तर नहीं मिलता पुनः वे गुण यदि जड तो जीव, जडचेतनका समूह होनेसे मध्यम ठेरा और यदि चेतन तो चेतन समूह यानें सजातीय मध्यम हुवा अर्थात् जीव व्यक्ति नाशवान ठेरी. ॥ रागादिको १३१ सूत्रमें अवस्थां माना है और सू. १४–१०० मे जीवको रागादिवाला कहा हैं. अब जो रागादि उसकी अवस्था हैं तो जीव परिणामी–मध्यम सिद्ध हुवा. जो रागादि गुण, और गुणी जीव दो नहीं किंतु अनिर्वचनीय एक स्वरूपहै, ऐसा मानें तो याते, रागादि हरेक क्षणमें होने चाहिये क्योंकि दुःख सुख राग द्वेष उसके स्वरूप मानें हैं, परंतु ऐसा नहीं होता. तथा दुःख सुख राग द्वेष विरोधी हैं, वह दोनों एकके स्वरूप नहीं हो सकते जब यूं नहीं तो जीव मध्यम परिमाणठेरा. इसलिये यथानिमित्त जब तब उसकी रागादि अवस्था होती रहती हैं. उपरोक्तसंयोगादि अवस्था सू. १३० के विवेचनमें गुणकी स्वरूप संभावनावाली १३० तुलनामें परीक्षा करना बताया है उस अनुसार रागादि गुण नहीं किंतु जीवकी अवस्था ठेरती है.

जीव शरीरमें एक जगे (ब्रह्मरंध्र) में माना है तो शरीरमें पीडा होनेसे जीवको दुःख क्यों होता है, क्योंकि मन, इंद्रिय वा ब्रह्मरंध्र (ब्रेमेटर) ने वहांकी स्थितिकी खबर दि है वोह स्थिति तो वहां ही है. जो वोह स्थिति जीव पास आती तो तमाम मार्गमें वैसा विकार-पीडा होता परंतु ऐसा नहीं होता किंतु जीवको स्थितिकी खबर मिली है. जब यूं है तो स्थितिकी खबरका ज्ञान हुवा है. इसलिये हाय ओय वा रुदन न होना चाहिये, परंतु होता है. इसलिये कुछ अन्यथा है. जो कहो के शरीरमें मोह है, मैं शरीर ऐसा अध्यास है और अज्ञान है इसलिये प्रतिकूलतासे हाय ओय होता है तो यह सिद्ध हो गया के प्रतिकूल स्थितिसे जीवकी स्थिति बदलती है, दुःख सुखादि अवस्था हैं अर्थात् जीव मध्यम है. तथाहि जबके जीव एक जगे रहता है तो उसको स्पर्श, पीडादिकी खबर कैसे पहोंची. जीव तो वहां गया नहीं. जो कहो कि मनद्वारा खबर पहोंची तो मन अमुक स्थानपर हो तो उसको कैसे खबर पहोंची. जो कहो के इंद्रियोंके गोलकमें इंद्रिय वा तंतु हैं उन द्वारा पहोंची और उनद्वारा जीव कार्य करता है तो जीव वा मनको मालूम होना चाहिये कि अमुक तंतुने यह गतिकी और हमने अमुक तंतुको हलाया तब कार्य हुवा, परंतु जीव वा मन बुद्धिको यह मालूम नहीं होता. अतः जीव अणु चेतन नहीं किंतु और प्रकार है.

जो जीव अमूर्त्त (अणु परंतु निराकार-अमूर्त्त) तो अमूर्त्तपर मूर्त्त (प्रकृति शरीर मन इंद्रिय) का असर न हो सकनेसे जीवको दुःख सुख न होना चाहिये परंतु होता है. इसलिये अमूर्त्त निराकार नहीं. विचारो, मानो, आकाशकी एक बिंदु प्रदेशमें असंख्य (वा अनंत) जीव एकत्र हों तो उस बिंदु प्रदेशमें तादात्म्य रह सकेंगे क्योंकि देश नहीं रोका. अब एक परमाणु उधर जावे उसी देशमें गुजर करता जावे तो उन जीवोंके साथ स्पर्श न होगा क्योंकि प्रकृतिके परमाणुने देश रोका उन्होंने नहीं रोका था. तथा परमाणु गमनसे उनके तादात्म्यत्वमें विघ्न न होते हुये परमाणु चला जायगा. इसलियेभी अस्पर्श सिद्ध है जब यूं है तो परमाणु (शरीर-मनादि) की उस (जीव-जीवो) पर असर वा संबंध नही हो सकता. जैसे के अमूर्त्त आकाश और परमात्मा पर पर प्रकृति (बिजली, गरमी पंच विषय, मन इंद्रिय) का असर नहीं होता परंतु प्रकृति संबंधसे जीवको दुःख सुख होता है, इसलिये जीवभी गरमी, बिजली आदि समान साकार और मूर्त्त है, यह सिद्ध होता है. जब साकार मूर्त्त है तो उपरोक्त तमाम प्रसंग उसे मध्यम सिद्ध कर देगा. हाथ वा पैरको अधर खडा रखना, शरीरसे कुशती करना इतनी योग्यता अणु, मात्रमें नहीं हो सकती. मध्यम मनद्वारा कराता हो, तो

मन जड है उसमें हुकम समझने और अमल करने जितना ज्ञान नहीं है. इसलिये जीव अणु नहीं मान सकते.

त्रिवादमें जीवको एक जगे रहना मानके उसकी सत्ता दीपकके प्रकाश समान व्यापक मानी है, इससेभी जीवका मध्यमत्व विनाशित्व सिद्ध होता है क्योंकि प्रकाश सावयव होनेसे संकोच विकासवाला नाशवान है. और शक्ति (ज्ञान सत्ता—चेतन सत्ता) में संकोच विकास नहीं होता तथा शक्ति, शक्तिमानको छोडके बाहिर नही जाती. प्रसंगमें चेतनाशक्ति जीव प्रदेशसे इतर देश—तमाम शरीर—में मानी है. इसलिये जीवही संकोच विकासवाला शरीरमें है, ऐसा मानना पडता है याने मध्यम—परिणामी और नाशवान ठेरता है अथवा अन्यथा है. जो फूल, कपूर वा कस्तुरीकी गंध समान सत्ताको शरीरमें मानें तोभी पूर्वोक्त दोष आवेगा क्योंकि गुण गुणीमे इतर नहीं होता.

जो जीवको शरीरमें फिरता हुवा मानें तोभी तमाम शरीरमें चेतना रहना, इसका उत्तर नहीं मिलता और मन माननेकी जरुर नहीं. परंतु मन तो है. तथा दुःख सुखादि भोग होनेके कारण उपर कहे अनुसार जीव मध्यम ठेरेगा. जो शरीरकी स्थिरता, चेतना, हड्डी गरमी विजलीसे मानें और जीवकी सत्तामे न मानें तोभी पूर्वोक्त मध्यमत्व दोषका निवारण नहीं होता.

त्रिवादमें कहा है के गोली (ग्रेमेटर) इंद्रिय और मन साधन हैं उनके द्वारा भोग होता है अर्थात् अणु जीव हाथ पेरको उठाके खडा रखे, प्राणको रोक दे, शरीरको कुदावे वा इतने वजनदार शरीरको उठाये फिरे * वा मुक्तिमें यथेच्छा पदार्थ बना ले, ऐसा कोईभी नहीं मान सकता क्योंकि कुछभी और केसाभी हो अणुमें अणु जितने पराक्रम होंगे और मध्यममें अधिक. अब यह मानें के "मन मध्यम है, उसद्वारा जीव उक्त काम कराता है और शरीरके तंतु अवयवोंकी रचना ऐसी है कि जिस करके उक्त काम हो सक्ते हैं." तो मन जड है उसमें जीवकी आज्ञा माननेकी योग्यता नहीं है और यदि वोह संस्काराभ्यास वश वेसे काम करता है तो फेर जीवके माननेकी अपेक्षा न रही. ।। जो दुःख सुख यह शरीर वा मन (अंतःकरण)की अवस्था है जीवकी नहीं.

*एक हाथी मरे तो १० हाथीसे खिंचता है जीता हाथी शरीरको लिये फिरता था कारण? कलकी रचना जेसे पहैदार गाडीद्वारा एक आदमी दोको खेंच ले जाता है ऐसे शरीरकी रचना है जिसे मध्यम शक्ति खेंचती है. अणु नहीं

तथाहि वे जीवके गुणभी नहीं है किंतु दुःखादिका ज्ञान होना यही भोक्तृत्व है. ऐसा मानें तो जीव यदि ज्ञान स्वरूप है तो भोक्तृत्व न वन सकेगा क्योंकि ज्ञाता नहीं है. और यदि ज्ञान स्वरूप नहीं किंतु ज्ञाता है तो जेसे घट वांका तिरछा हो तोभी उसके ज्ञाताको दुःख नहीं होता किंतु साक्षी मात्र होता है. इसी प्रकार दुःख (रूप अवस्था) का साक्षी (ज्ञाता मात्र) हो सकता है; नही के भोक्ता. अतः ज्ञातृत्व मात्रका नाम दुःख सुख नहीं माना जा सकता. जो यह मानें कि "जीव अणु चेतन है, बुद्धि (अंतःकरण) के रागादि परिणाम दुःख सुखादि उसकी अवस्था यह सव बुद्धिके धर्म जीव अपने हैं (मेरे हैं, में ऐसा, इत्यादि) ऐसा मान लेता है क्योंकि उभयका तादात्म्य संबंध है और जीवको उसका और अपने स्वरूपका अविवेक है." सोभी नहीं वनता. क्योंकि मान्ने मात्रसे कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं हो सकता यथा में अमुक देशका राजा में चोर मेंने अमुककी चोरी की इत्यादि मान्ने मात्रसे वोह राजा वा चोर न हुवा और न उसका फल उसको होता है. इसी प्रकार जीव कर्ता भोक्ता न होनेसे उपदेशादिको अनपेक्षा रहेगी और ईश्वरको जगत रचनेकी अपेक्षा नही होगी तथाहि बुद्धिका विवेकही वोह अपनेमें मानेगा याने में कर्ता भोक्ता नहो, बुद्धिसे भिन्न हुं इत्यादि. परिणाम यह आया के बंध मोक्ष बुद्धि की है. जीवकी नहीं. तथा उभयके संबंधका निमित्त न मिलनेसे पुनः मुक्तोंके साथभी बुद्धि संयुक्त होनेसे बंधो समान मुक्तभी पूर्ववत् उसके कार्य परिणाम अपने में मान लेंगे इस प्रकार अव्यस्था चलेगी क्योंकि वोह विवेक बुद्धिका थां; न के जीव (स्वयं) का

दो अंगुली मिलाते हैं और सर्प अपनी पूंछ मुखमें लेता है, तहां जो जीव दोनें स्थानमे है तो सावयव ठेरा क्योंकि संयोग दोका होता है एकका नही होता. जो अपने आपमें संयोगी हो वोह मध्यम परिणामी नाशवान होता है और जो जीव एक तरफ है दूसरी तरफ (अंगली, पूंछ) में नहीं है ऐसा मानें तो दोनों उंगली और पूंछमें क्रिया न होनी चाहिये. और स्पर्शका भेद न होना चाहिये. परंतु दोनों कार्य होते हैं. अतः अणु नहीं.

विषयकी खबर मिलती है, जीवकी इच्छानुसार कार्य होते है. ईम्प्रेशन होता है और भोग होता है, यह तो ठीक है. परंतु जीव अणु है तो उसमें इच्छा और संस्कार नही हो सकने क्योंकि इच्छा गति विशेषका नाम है अर्थात् स्वरूपका गुण न होते हुये पूर्व संस्काराभ्यासवश स्वरूपका स्फुर्ण एक प्रकारका परिणाम, इस स्थितिका नाम इच्छा है. और संस्कार=पहेल पहेल जो पदार्थाकारता रूप स्थिति

कालांतरमें स्मृतिकी हेतु, इस स्थितिका नाम संस्कार है. ऐसी दोनों अवस्था अणु सत्त्वकी नही हो सकती क्योंकि निरवयव एक रस है. जो जीव निर्गुण तो कर्त्ता भोक्ता नहीं हो सकता और न मुक्ति पात्र. जो सगुण तो मध्यम ठेरेगा. जो ईश्वरका व्याप्य तो स्वरूप प्रवेश दोष आवेगा. और पवित्रके साथ अभेद (व्याप्य) वाला होनेसे अपवित्र अर्थात् बंध होने योग्य नहीं माना जा सकता. जो ईश्वरका भाग अंश, (घटाकाश महाकाशवत्) टुंकडा, गुण, शक्ति, श्वास, स्फुरण, लहेर आज्ञा वा उसका ज्ञान मानें तो प्रथमतो निरवयव ईश्वरके ऐसे भाग होना असंभव तथा यह सब विशेषण अणु परिमाणरूप नहीं हो सकते परंतु जो हठसे मानें तो ईश्वरवत् निर्भ्रांत और पवित्र होनेसे जीव दुःखी या बंद नहीं माना जा सकता. जो ईश्वरने जीवको पेदा कीया ऐसा मानें तो कर्मका जवाबदार नहीं ठेरता क्योंकि ईश्वरने जेसा बनाया जेसी योग्यता दी, जेसी सामग्रीमें रखा, जेसे साधन दिये वेसे करता है. अतः जीव जवाबदार नहीं किंतु कर्त्ता जवाबदार है. आश्चर्य यह है कि दुःख, जीवको होता है.

इत्यादि रीतिसे पूर्वोक्त जीव न विभु सिद्ध होता है और न अणु. और जो विभु या अणु मानते हें तो दोष आता है. व्यवस्था नहीं होती. इसलिये उक्त मंतव्यमें अव्यवस्था और अन्यथाकी आपत्ति होती है. ॥२११॥

और संक्षेपमें —असलमें यह है कि कुछ योगाभ्यास करके विवेक सीखके विवेक ख्याति संपादन हो जाय तो जीव अणु नहीं हें और चित्त (अहंकार) मध्यम है. यह स्वयं अनुभव हो जायगा. ॥२११॥

त्रिवादवाले ईश्वर वा जीवके बदले प्रकृतिको मानें तो बुद्धिपूर्वक सनियम जगत् रचनेकी और सू. ९९ में जीवकी ग्यारा कार्य ग्रहणकी जो योग्यता जनाई है सो और दुःख सुख भोगनेकी जो योग्यता (३९ सू. देखो) है सो जड प्रकृतिमे नहीं है इसलिये नहीं मान सकते. ॥२१२॥

जीव इष्टाकार होता है (सू. ९६) इसका अर्थ क्या? ईश्वर विभु है इसलिये अणु जीव विभु आकार नहीं हो सकता; क्योंकि अणु विभु नहीं हो सकता, यह उसकी निरवयवतासे स्पष्ट है. जो जीव, ईश्वरके अणु प्रदेशके आकार होना मानें तो जीव स्वयं अणु उसमें व्याप्य है फेर तदाकारता क्या. अर्थात् अणु किसीके तदाकार नहीं हो सकता और यदि जीव मध्यम है तोभी विभुके आकार नही हो सकता. अर्थात् जितना उसका आकार बढ सके उतना तदाकार

आकार धारण कर सके, इतनाही तदाकारताका अर्थ मान सकते हैं. सारांश जीवका तदाकार होना जीवको मध्यम परिणामीजन्य नाशवान सिद्ध कर देता है. इसलिये उक्त मंतव्यमें अव्यवस्था वा अन्यथाकी प्राप्ति होती है ॥ जो जीवकी नहीं किंतु मध्यम चित्तकी तदाकारता मान लेवें तो मुक्तिमें चित्तका अभाव है. मुक्त जीव आनंद-भोग वा वैभवका भोग कैसे कर सकेगा? तथा चित्तकी तदाकारता हुई जीवकी नहीं, उससे जीवको लाभ न हुवा. उपरांत यहां चित्तकी तदाकारताका प्रसंग नहीं है अतः विशेष नहीं लिखते. ॥२१३॥

मुक्तिमें मुक्त जीव, ईश्वरानंद भोगता है. ऐसे त्रिवाद मानता है, तहां भोक्तृत्व क्या? जुडना वा उसका ज्ञान होना, वा तद्रूप होना? जुडने आदिको तो आनंदभोग नहीं कह सकते यह स्पष्ट है. जहां संभोग, मधुरत्वादिके संबंधसे आनंद होता है ऐसे आनंद भोग मानें तो आनंद एक अवस्था ठेरती है न के भोग्य पदार्थ. अर्थात संबंध कालमें इष्टानुकूल होनेसे चित्त विक्षेप रहित होता है और विषयका ज्ञान होता है इन दोके सिवाय आनंदरूप वस्तु कोई ज्ञात नहीं होती. अर्थात् जीवकी विक्षेप रहित अनुकूल स्थितिका नाम आनंद है यही भोग है. किंवा विक्षेपाभाव हुये चित्त वा जीवकी अपूर्व स्थिति विशेपका नाम आनंद है. संक्षेपमें आनंद कोई वस्तु नहीं. इसलिये उसका भोग मात्रा कल्पना मात्र है. आनंद स्वरूप ईश्वरके ज्ञान होनेका नामही आनंद भोग मानें सो बने नहीं क्योंकि ईश्वरका स्वरूप अविपय है. मधुरत्वादिका ज्ञान आनंद नहीं किंतु तद्जन्य संबधसे जीवकी जो स्थिति उसका नाम आनंद है. इसी प्रकार मुक्तिमें ज्ञातव्य है. तथाहि जो हठसे ईश्वरानंद भोग मानें तो ईश्वर भोग्य ठेरता है परंतु वोह निराकार किसीका भोग्य नहीं है. इसलिये आनंद भोग नहीं. जिस प्रकार आनंद-सुखको विभाग करके अवस्था दरसाया है इसी प्रकार दुःख-भोग वास्ते योज लेना. याने अवस्था है. ॥२१३॥

चित्तके अनुपयोग रहनेसेभी अव्यवस्था वा अन्यथाकी प्राप्ति होती है अर्थात् मुक्तिमें जीव चित्त रहित होता है. वहांभी जो अंतःकरण हों तो प्रकृतिका बंध ही रहेगा. जब यूं है तो मुक्तसे जुदा पडा हुवा चित्त वा उसके अवयव अनुपयोगी—निष्फल हो जायंगे, क्योकि अनंत जीवों वास्ते अनंत चित्त हैं उनमेंसे जितने जीव मोक्ष हुये. उतने कम हुये. अर्थात् उतने चित्तकी सामग्री (उपादान) और उनके उपयोगके भागवाले प्रकृतिके परमाणु अनुपयोगी हो जायंगे परंतु यह बात असंभव है. निष्फल कोई नही है और सृष्टिका उच्छेद नहीं है. इसी प्रकार मुक्त जीवोंके संबंधमें

जान लेना याने (संख्यासे सांत वा अनंत) कितनेभी जीव हों उनमेंसे मुक्ति पाये हुये पीछे न आवें तो सृष्टिका उच्छेद हो जायगा. अर्थात् उतने भागकी सामग्री (परमाणु) निरर्थक पडी रहेगी इसलिये अव्यवस्था वा अन्यथाकी प्राप्ति होती है. ॥२१४॥

त्रिवादमें सृष्टि आरंभमें युवा पुरुष स्त्री उत्पन्न हुये ऐसा माना है परंतु सृष्टि नियम इस कल्पनाका निषेधक है. वेसी व्याप्ति नही मिलती, विशेष आगे.

उपर लिखे हुये प्रकारसे पूर्व भाग वाले उक्त मंतव्यमें दोष आनेसे उसमें अव्यवस्था होती है वा तो वोह मंतव्य अन्यथा (अध्यासरूप) है वा तो उससे अन्यथा प्रकार है. ॥ २०९ से २१४ तक ॥

उपर ईश्वर और जीव प्रसंगके दोष कहें. अब आगे उपरोक्त कर्मयोग, ध्यानयोग, क्रियायोग, साधन, उसके फलमें और मुक्ति स्थितिमें जितने अंशमें जितनी असमीचीनता जान पडती है सो २१५ से लेके २२५ तक ११ सूत्रमे कहेंगेः—

कर्म अभावसे भावरूप फल नहीं ॥२१५॥ अज्ञातके प्रायश्चितका सनियम निश्चय नहीं ॥२१६॥ फलमें परतंत्रता होनेसे उपरति उपयुक्त नहीं ॥२१७॥ इष्टाकारतासे आवृत्ति ॥२१८॥ सादिका अनंत फल न होनेसे ॥२१९॥ जन्यका भाव न रहनेसे ॥२२०॥ उपयोगके प्रवाहसे ॥२२१॥ और जीव जितने उतने होनेसे ॥२२२॥ अतः नित्य वैभववालीभी नहीं ॥२२३॥ दोनोंके अभावसे इष्ट नहीं. ॥२२४॥ सालोक्यादिभी ऐसेही ॥२२५॥

कर्मके अभावसे भावरूप फल नहीं होता ॥२१५॥ किंतु भावसेही भावरूप फल होता है. इसलिये सू. २१ में माने अनुसार नित्य नैमित्तिक कर्मका अभाव भावी बंधका हेतु नहीं हो सकता. रोटी खानेसे तृप्ति, शक्ति, उत्साह, भावरूप फल होता है. क्योंकि अवयवोंको मदद मिली. अब न खानेसे भूख सताती है अनुत्साह, अशक्ति होती है यह भावरूप कहांसे आ गये. परंतु अभावजन्य नहीं किंतु अंगोंको विभाग मिलनेका जो साधन उस नियमका हमने भंग किया इसलिये वे अवयव काम नहीं दे सकते. इसलिये नियम भंग भावरूपसे तंतु अनुपयोग भावरूप फल हुवा. नहीं के भोजनका अभाव उक्त भावि बंधका हेतु है. सारांश उक्त उभय प्रकारका कथन और उसका परिणाम समान है. परंतु भावसे भाव कथन पद्धति सृष्टि नियमानुकूल है. अभावसे भाव कथन प्रतिकूल है. इतना अंतर है. इसी प्रकार अन्य प्रसंगोंमें योजना चाहिये. तन मन वाणीके भाव रूप मल अभ्यासका कोप स्वाभाविक होगा उस बंधके

रोकने वा नष्ट करनेके लिये भावरूप शौच (तीनों प्रकारके शौच) कर्तव्य है, नहीं के शौचाभाव भावी दुःखका हेतु होगा. इसलिये शौच कर्त्तव्य है. अधिकारी आगमन पर सत्कार करना ऐसा वलवान सोसाईटीका नियम है, उसका भंग करें तो भावी दुःख होगा. यहां भावसे भाव फल हुवा. सत्काराभाव दुःखका हेतु होता तो पर राज्यमेंभी ऐसा होता. परंतु नहीं होता. सत्कार किया तो नियम पालन किया उससे उभयको सुख रहा. यहांभी भावका भाव फल हुवा. संध्या, वा सत्संग करनेसे चित्तके मल दूर होते हैं, चित्त शुद्ध होता है उन्नति पाने योग्य होता है इत्यादि भावरूप फल होते हैं. न करें तो चित्तके स्वाभाविक दोप वा अभ्यास बंधके हेतु होते हैं; नहीं के संध्यादि का अभाव हेतु होता है. शीतलाका टीका न लगावें तो विद्यमान दुष्ट रुधरका कोप होगा उससे दुःख होगा. उसमें टीका न लगाना हेतु नहीं हुवा किंतु टीका लगनेसे उस कोपका निरोध वा दुष्ट लोहीका नाश ऐसे भावरूप फल होता है. दुष्ट क्रमी दुष्ट हवाका कोप न हो इत्यादि हेतुको लेके यज्ञादि करते हैं, उनका अभाव बंधका हेतु नहीं, इसी प्रकार विवेकादि करने न करने प्रसंगमें योज लेना चाहिये

जो कर्माभावमे या अभावसे भावरूप फल हो तो उद्यमाभावसे द्रव्य प्राप्तिभी होना चाहिये, भोजनाभावसे तृप्तीभी होनी चाहिये. जो कहो के उद्यमसे द्रव्य और भोजनसे तृप्ति फल होता है तो भावसे भावरूप फल हुवा. जब यूं है तो अभावसे अभावरूप फल होना चाहिये. यथा उद्यमाभावसे उद्यमजन्य द्रव्यका अभाव हो जाना चाहिये परंतु ऐसा नहीं होता. किंतु व्ययादिरूप कर्मसे द्रव्याभाव होगा. अन्यथा नहीं. जो उद्यम पूर्व द्रव्यका अभाव है तो अभावही रहेगा. इत्यादि रीतिसे व्यभिचारादि दोप आनेसे कर्माभाव भावरूप भावी प्रतिबंधका हेतु नहीं बनता.॥२१५॥ अज्ञात्त सचितका कोनसा वा अमुक प्रायश्चित्त, ऐसा सनियम संतोपकारक निश्चय नही हो सकता ॥२१६॥ क्योंकि कर्म अनेक प्रकारके और अनेक जन्मके हैं. इसलिये सू ३६ में लिखे अनुसार साधारण प्रायश्चितसे सर्वका अभाव होना नहीं माना जा सकता. जो प्रायश्चितसे नाश होना मान लेवें तो "अवश्यमेव भोक्तव्यं" "जीव भोगनेमें परतंत्र" और "ईश्वर न्यायकारी" इन तीनों सिद्धांतका त्याग होगा. जार कर्मजन्य विस्फुटकादिका मूलभी नष्ट होना चाहिये परंतु नहीं होता किंतु शरीरदाह होनेपर नष्ट होता है. साधारण प्रायश्चित आरंभ होने पीछे राजाको चाहिये कि ज्ञात सचितका दंड न दे, परंतु ऐसा होनेसे घोर अनीति चल पडती है, अतः ऐसा नहीं माना जा सकता. क ने पूर्व जन्ममें द का खून किया. और विना शिक्षा पाये जलदीही

मर गया. इस क्रियमाणसे द. और उसके बालक कुटुंबको दुःख हुवा. वर्त्तमान जन्ममें क जीवने साधारण प्रायश्चित किया इसलिये और पूर्व माने अनुसार अस्मरणसे ईश्वरने उसका बदला नहीं दिया किंवा अस्फूर्णसे फल न होगा. जो यूं है तो सहेजमें शंका होती है कि माफ करनेमें ईश्वरका क्या बिगडा? परंतु न्यायकारी ऐसा नहीं कर सकता. पूर्व जन्मके अदृष्ट संचित अनिच्छित फुरके फलके हेतु हों और परके संबंधसे फुरने वाले हों तो साधारण प्रायश्चितभी उसको नहीं रोक सकता. और यदि रोक सकता है तो उपर कहे अनुसार नियम विरुद्ध और अन्याय. इसलिये एक प्रायश्चितमे सब संचितका अभाव सिद्ध नहीं होता. ॥ उपर सू. १६९ से १७२ तक संचिताभावार्थ विभाग दरसाये हैं उसमें निंदक तथा सेवकोंको फल मिले ऐसा माना है. परंतु कर्म शास्त्रसे विरुद्ध हैं. जो यूंही हो तो मरनेवाला शुभ उपयोगार्थ द्रव्य छोड मरा उसके पिछले (पुत्रादि) ने उसकी मददमे घोर पाप किये तो इन पापोंका फल उस मरनेवाले वा उस मुक्तकोभी मिलना चाहिये. परंतु ऐसा नहीं हो सकता किंतु उस पापका भागी वोह विद्यमान कर्त्ताही है, यह स्पष्ट है. सार यह है के वर्त्तमानमें दूसरेके किये हुये कर्मका फल दूसरेको पूर्व जन्मके संबंध होनेसे तो मिल सकना मान सकते है और संभवभी है और संभवभी है. परंतु उसे पूर्वके कर्मका फल कहेंगे न के वर्त्तमान क्रियमाणका. यथा परकी की हुई रोटी अकस्मात मिलके तृप्ति हुई तो उसमे कर्त्ता ओर भोक्ताका पूर्वमें हेतु पेदा हो गया है. यदि परेच्छासे रोटी मिली व किसीने उपकार किया है तो पूर्व कर्म उसमें निमित्त है वा तो क्रियमाण. इसी प्रकार योगीकी निंदा और सेवा संबंधमे योज लेना चाहिये. अन्यथा योगीके संचितोंका फल अन्यको नहीं मिल सकता इसलिये इस प्रकारमेंभी संचितका भोग निश्चित नहीं हो सकता. ॥ प्रायश्चितसे अमुक संचितका अभाव होता है उसमेंभी सोसाईटीके नियम है यथा किये हुये संचितका सभामें पश्चाताप करना वा सोसाईटी मान्य ग्रंथानुसार कुछ कर देना. अर्थात् ऐसा करनेसे दूसरे वेसा कर्म न करें और करनेवालेको सोसाईटीके नियमका जो प्रत्यवाय (शंका—भय-लज्जा) होता था वोह न हो, यह दो फल हैं. परंतु किये हुये कर्मका फल तो हुवा वा होवेहीगा. यथा जार कर्मसे आतशकका दुःख. चोरी करनेसे प्रीति प्रतीति और विश्वासकी हानी. तद्वत असत्यादिके फल वास्ते घटित प्रकारसे योज लेना चाहिये. सारांश प्रायश्चितके उक्त दो फल हैं, और तीसरा सृष्टि नियमानुकूल है. जिसमें अपने कर्मके बदले अपने कर्मसे खाता सरभर नहीं हो सकता किंतु कर्म आरंभमेही होता है और उसकी अवधि होनेपर उसके फलकी समाप्ति होती है.

शुभाशुभ अल्प सचितवाला वा सचिताभाववाला योगी मानके व्यवस्था करें (१७४ याद करो तो कोइ सवाल नही होता यह सब कर्मवादि और मोक्षवादियोंको कबूल करनाही पडता है. तथापि ऐसे कर्मयोगी वा उपासना योगीको पुनरावृत्ति तो होहीगी (आगे बाचोगे) ॥२१६॥ शुभ अशुभ फल भोगनेमे जीव परतंत्र होता है ऐसा सर्व जीववादि मानते हें, इसलिये शुभ कर्मका फल भोगनाही पडता है. उससे अन्यथा नहीं होता अर्थात् सू. ३७के मतव्यानुसार शुभ फल मिलनेसे उपरति, इतनी मान्यतासे उसका भोग नही छुट सक्ता वा अन्यको नहीं मिल सक्ता ॥२१७॥ इसलिये सचित भोग शेष माने पडेंगे यदि शुभ सचितका फल, अंतःकरणकी शुद्धि अथवा शुभ सचितभी शेष नही तो उपर लिखे अनुसार व्यवस्था मान सकते है ॥२१७॥ निष्काम कर्मसे सुख और अंतःकरणकी शुद्धि फल होता है. प्रत्युपकारमेंभी गिना जाता है. दूसरेको फल मिलता है उसका निर्णय पूर्ववत् कर लेना चाहिये. यथा—यातो पूर्वजन्म सबंधी है और जो क्रियमाण है तो यदि कर्ता मोक्ष पाने योग्य है तो, अंतःकरणशुद्धि फल है अथवा प्रत्युपकार. जो उत्तर जन्म होनेवाला है तो इन निष्काम कर्मका फल उत्तरमे भोगेगा वा जिसको उससे सुख मिला उसका कुछ सबध होगा इत्यादि. निष्कामककर्मी निर्लेप रहता है इसका हेतुभी उस निर्णयमें दाखिल है क्योंकि ज्ञाता ज्ञात वा इच्छित अनिच्छित कर्मोका फल तो होनाही है

ज्ञानाग्निमे कर्म और फल नष्ट हो जाते है, ऐसे मान्य ग्रथोमें कहा है परतु पूर्व त्रिवादमे ज्ञानका अनादर रखा है. इसलिये उसके लिये यह साक्षी इष्ट नहीं, तथाहि ज्ञान योगमेंभी प्रारब्ध भोगसे नष्ट होते हे और सचितका ज्ञानसे नाश होता है ऐसे माना है सो यह केसे हो सकेगा, इसमे वडा विचार है और इसमें गुह्यभेद समाया हुवा हैं. परतु इसका यहा प्रसग नहीं है अत. उपेक्षा ॥२१६॥२१७॥

उपासक इष्टाकार धारता हो और ऐसी उपासनासे मुक्ति होती हो तो मुक्तिसे आवृत्ति होगी॥ (ओर उपासकका स्वरूप मध्यम होनेसे उसे विनाशत्व प्राप्त होगा उपरके सू. २१३ का विवेचन याद करो) ॥२१८॥ क्योंकि यह साधन (कर्म—उपासना) सादि है और सादिका अनत फल (नित्य मोक्ष) नहीं हो सक्ता किंतु सातही होता है, यह नियम है इसलिये मोक्षसे आवृत्ति होगी ॥२१९॥ तथाहि जो न हो के हो वोह नित्य भावरूप नही रह सकती (अर्थात् हो के न रहें ऐसी सादि सात अवस्था वा परिणाम होगा) इसलिये मोक्षावस्था नित्य न रह सकनेसे मोक्षसे आवृत्ति होगी

॥२२०॥ कोईभी वस्तु अनुपयोगी नहीं रहती किंतु उसके उपयोगका प्रवाहही रहता है. (संयोग, स्थिति, वियोग, इसप्रकार एक उपयोगसे दूसरे उपयोगमें आना पडता है यह नैसर्गिक नियम है) इसलिये मोक्षसे आवृत्ति होगी ॥२२१॥ और ईश्वर व्याप्य परिच्छिन्न जीव, संख्यासे अनंत नहीं हैं किंतु त्रिवादके मंतव्यानुसार अनुत्पन्न अनाश होनेसे जितने हैं उतनेही हैं इसलिये मोक्षमे आवृत्ति होगी॥२२२॥ क्योंकि आवृत्ति न हो तो सृष्टिका उच्छेद हो जाय जो के असंभव है ईश्वर अनंत, इसलिये उसके व्याप्य परमाणुभी अनंत, ऐसा मानें तो दो परमाणुमेंभी अनंतताका आरोप हो सकेगा. अर्थात् जब कि ये विभु ईश्वरसे अवर हैं तो संख्यासे सांत ही होंगे. और यदि हठसे अनंत मान लेवें तोभी सू. २१४ के विवेचनानुसार अनुपयोग रहनेसे वही दोष आवेगा. इसलिये अनंत नहीं होनेसे और सृष्टिके उच्छेदाभावसे आवृत्तिही होगी ॥२२२॥ उक्त कारणोंको लेके सू. ४१ और १७८ में जो भविकमुक्ति उससे और सू. ४२, ६२ और १८१ में जो वैभववाली मुक्ति कही है उससेभी आवृत्ति होगी, क्योंकि वे दोनों मुक्ति नित्य नहीं हैं. ॥२२३॥ उभय मुक्तिके अभाव होनेसे वैसी नाशवान मुक्ति जिज्ञासुको इष्ट (इच्छाके विषय) नहीं है ॥ क्योंकि भाविक पुरुष तो भावि दुःख रहित नित्य सुख या नित्य परमानंद चाहता है. ॥२२४॥ इसी प्रकार उपरोक्त सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य इन चारों प्रकारकी मुक्ति वास्ते जान लेना चाहिये ॥२२५॥ क्योंकि पूर्वोक्त कारणसे वहांसेभी आवृत्ति होगी. और अणु जीव, ईश्वरका सारूप्य-सर्वज्ञ-सर्व शक्तिमान वा विभु हो सके यह बात असंभव है. इतना ही नहीं किंतु जो तदाकारता धारणके योग्य हो याने परिणामी हो तो नाशवान ठेरेगा- और जो तद्धर्मापत्तिका नाम सारूप्यता मानें तो जीव स्वरूपकी मर्यादामें मान सकते हैं परंतु उपरोक्त कारणसे मोक्षसे आवृत्ति तो माननीही पडती है. ॥२२५॥ सू. १८४ में मुक्तको अनुपयोग उपयोगसे उपेक्षा बताई है. परंतु यह उपेक्षा सू. २१४, २१७, २२१ के विवेचन अनुसार उसको पुनरावृत्तिसे नहीं छोड सकती. अतः मोक्षसे आवृत्तिही होगी ॥२१९ से २२५ तक॥ (शं.) ईश्वरकी सर्वज्ञता, सर्व शक्तिमानता, उसकी रचनाका प्रकार और मोक्षका स्वरूप इत्यादिके विषय बुद्धिसे परे हैं. अतः इनके खंडन मंडनमें तर्क युक्ति करना व्यर्थ है ॥इसलिये उक्त प्रतिषेध मान्य नहीं. (उ.)

धी पर इत्यम नहीं ॥२२६॥ जो बात बुद्धिसे परे हो उसके संबंधमें इत्थम भावसे कुछ कहना नहीं बनता ॥२२६॥ विचित्र कार्य सनियम दर्शनसे अनुमान होता है कि कोई इसका कर्त्ता अद्भुत है. परंतु वोह कैसा है कैसे कर्त्ता है, यह हम

(मनुष्य) नही कह सकते. जीवकी ससार बंधनसे मुक्ति होनी चाहिये क्योंकि वोह शरीरसे भिन्न जान पडता है, परंतु मोक्ष क्या और जीवका स्वरूप केसा, यह हम नहीं जान सकते, इस जगत्‌का उपादान है क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति नाश देखते हैं परंतु वोह भिन्न भिन्न शक्तिरूप वा द्रव्यरूप वा परमाणुरूप वा केसा है ;यह हम नही जान सकते. निदान जीव, ईश्वर, प्रकृतिका मूल स्वरूप और उनकी योग्यता बुद्धिसे पर है इसलिये कुछ नहीं कह सकते. जो कहते हैं उसीमें दोष आता है.*

इतना निश्चयपर धीपर न युक्ति न तर्क कहना ठीकही है. 'परंतु ईश्वरको' विभु, सक्रिय, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, व्यवस्थापकादि मान्ना अथवा यह सब जगत् ईश्वरकाहि रूपांतर आविर्भाव है इत्यादि मान्ना वा कहना वा जीवको अणु वा विभु चेतन रागादि गुणवाला कर्त्ता भोक्ता, कहना और मान्ना तथा द्रव्य परमाणुको गुणवान, शक्तिमान, निरवयव, अखंड कहना और मान्ना; फेर जब कोई इस मंतव्यमे दोष सिद्ध कर बतावे तब अगम्य, धीपर तर्क युक्ति नही, ऐसा कहके छूटना, यह केसे बन सकता है. निदान यूंही है और फेर धीपर कहना यह नही हो सकता. ॥२२६॥ (शंका) तुम जो कहोगे उसकोभी यह कथन प्राप्त होगा (उ.) हम इत्थमके आग्रही नहीं हैं. और न पक्ष है. यथा परीक्षा स्वमंतव्य कहते हैं. भूल निकले तो सत्यग्रहण, असत्य त्याग करनेको उपर भूमिकामे प्रतिज्ञा है. अतः शंका व्यर्थ है ॥

यदि धीपर गति तर्क नहीं, ऐसा मान लेवें तो अन्य पक्षभी मान लेना चाहिये. यथा ईश्वर अभावसे भावरूप सृष्टि करता है. यह जगत् अजात है, ईश्वरही जगत्‌रूप (उंच, नीच, जड, चेतन) बनता है, ईश्वर नहीहै, किंतु सर्व स्वभावतः उत्पन्न नष्ट होता है,-धीपर तर्क गति है, हमारा मंतव्यही सत्य है, इत्यादि पक्ष हैं वे सत्य हैं, धीपर होनेसे उनमें गति और तर्क न चाहिये इत्यादि दोष, कल्पना, शंका प्राप्ति होनेसे सर्व पक्ष त्याग वा सर्व विरोधी पक्षोका ग्रहण होगा. इसलिये यथा योग्यता और मानव मर्यादा तक निर्णय विना नही मान्ना चाहिये. (त. अ. २ देखो) ॥२२६॥

यहा तक ईश्वर जीव और मोक्ष विषे कहा. अब आगे सू. २३९ तक त्रिवादके प्रकृतिके स्वरूप संबंधमें कहेंगे—

---

*जरमन निवासी कएन्ट त्रि १७८० में हुवा है वोह कहता है, कि बाह्य वस्तु, आत्मा, परमात्मा इन उभयका संबंध उनकी सत्ता अनिर्वचनीय है हम कुछ नही कह सकते. स्वप्न का उदाहरण देता है. इसलिये उस पर आक्षेप नहीभी हो सकता.

परमाणुवादभी युक्त नहीं ॥२२७॥ तत्त्वका परिवर्तन न होनेसे ॥२२८॥ और असावयवत्वकी अप्राप्तिसे ॥२२९॥ अन्यथा दृष्ट्य असंभव ॥२३०॥ देशकालकी उत्पत्ति दर्शनसे ॥२३१॥ यथा स्वप्नमें ॥२३२॥ प्रभावादिमें वस्तुत्वका अभाव होनेसे ॥२३३॥ और संयोगमें देश न होनेसे ॥२३४॥ अन्य प्रसंगमेंभी यथायोग्य ॥२३५॥

त्रिवादमें परमाणुवादका स्वीकार है (सू. ११७, १२९ वगेरे) सोभी समीचीन नहीं है ॥२२७॥ क्योंकि परमाणुओंको तत्त्वरूप माना है परंतु तत्त्वका परिवर्तन–परिणाम नहीं होता ओर परिवर्तनके विना उनसे सूक्ष्म स्थूल कार्य नहीं हो सकने ॥२२८॥ और परमाणुओंमें असावयवत्व (निरवयवता) की अप्राप्ति है क्योंकि संयोगी होने हैं इसलिये तत्त्वरूप नहीं ॥२२९॥ जो उनमें परिवर्तन और सावयवत्व न मानें तो दूसरे प्रकारसे स्थूलभाव (स्थूल कार्य) की आपत्ति नहीं हो सकती ॥२३०॥ सू. १२८ में देशकालको विभु याने नित्य माना है परंतु देशकालकी उत्पत्ति देखते हैं, उनको परमाणुजन्य नहीं मान सकने. ॥२३१॥ जेसेके स्वप्नमें उत्पन्न होना प्रसिद्ध है अतः नित्य ओर परमाणुजन्य नहीं ॥२३२॥ जो न दे और हुये अर्थात् परमाणुजन्य नहीं किंतु किसी समूह (मगज वगेरे)का प्रभाव–इम्प्रेशन, असर, इफेक्ट, फोर्स वा वायब्रेशनरूप उनको माने तो प्रभावादि स्वरूपमे कोई वस्तु नहीं किंतु अवस्था है अतः उसका अभाव होनेसे देशकाल उत्पत्तिलयवाले ठेरेंगे परंतु परमाणुकी गति, परिणाम वा अवस्था, देशकालके विना नहीं होने इसलिये उक्त मंतव्यमें व्यवस्था नहीं होती ॥२३३॥ और देशको विभु कहा है परंतु दोके संयोगमें देशका अवसर नहीं है यदि है तो संयोग (अंतराय रहित दोका मिलना) नही हुवा. परंतु संयोग तो होता है अतः उसमें देश न होनेसे देश विभु नहीं इसलिये नित्यभी नहीं ॥२३४॥ त्रिवादोक्त अन्य प्रसंगोमें यथायोग्य योजना कर लेना चाहिये. अर्थात् सर्व असमीचीन है ऐसाभी नहीं है. और सब समीचीन है ऐसाभी नहीं है अतः ग्रहण त्यागकी यथा-योग्य योजना कर लेना चाहिये (उत्तरार्द्धमें अन्य प्रकारकी शैली है इसलिये इस विषयका यहां विस्तार नहीं लिखा है ॥२३५॥

विवेचन ओक्सिजन, हाईड्रोजन गेसको जुदा जुदा शोधो तो जल जेसा स्वरूप नहीं है परंतु जब वे अमुक परिमाणमें रसायणी रीतिसे मिलते हैं तो उनकी अदृश्य योग्यताके उद्भव तिरोभाव होनेसे एक नवीन रूप (फारम) हो जाता है. यही उनका परिवर्तन और सावयवत्व है दूधके अवयव जुदा करके देखोगे तो उसके अणुओ वास्तेभी यही

दशा है. मानाके अनादिसे परमाणु हैं वे अखंड निरवयव हैं उसके प्रदेश हैं जिनके साथ अन्य परमाणुओंका संयोग होता है. उसमें गुरुत्वभी है निदान परमाणु अनादिसे ऐसीही वस्तु है. परंतु उनके उपादानसे अन्यथा स्वरूप याने कार्य दर्शनसे यूं कह सकते हैं कि जो वे निरवयव आकाश जेसे एक स्वरूप होते तो उनका साधारण भौतिक संयोग होता, नहीं के रसायणी प्रयोगसे उनके रूपका अविकृत वा विकृत परिवर्तन होता. और जो परिवर्तन न होता याने मिश्र न होते तो जलादि पदार्थ अन्यथा स्थूल-भावरूपमें नहीं बनते परंतु होते हैं–ऐसेही असंख्य कार्य प्रसिद्ध हैं. इसलिये जिसे परमाणु नाम दिया जाता है वोह स्वरूपतः) एक वस्तु नहीं किंतु मिश्रण होना चाहिये (जिसको गुण, योग्यता, शक्ति वा गुणी शक्तिवानादि कहते हैं) उन मिश्रित अणुंसे प्रसिद्ध संज्ञावाले परमाणु उनके मिश्रणसे द्विअणुक उनसे त्रिअणुक अन्यथा रूप बने हैं. इस प्रकार परिणाम पाके स्थूल पदार्थ बने हैं. पूर्व पूर्वसे उत्तरोत्तर परिणामका प्रवाह है. कोई तत्त्व केवल जुदाही है ऐसा सिद्ध नही होता. (शं.) उन मूलसे आगे जो सूक्ष्म मानोगे उसका नाम परमाणु. (उ.) उनमें गुण शक्ति न होनेसे उनको द्रव्य न कह सकोगे. किंतु एक स्वरूप निर्गुण अथवा अनाश्रित गुण वा शक्ति नाम दे सकोगे. जो द्रव्य कहोगे तो निर्गुण कहना पडेगा. इस प्रकार द्रव्य गुण और शक्ति नामके अनेक प्रकारके परमाणु मानें तो उनके संयोग विभाग मिश्रणकी व्यवस्था नहीं बता सकेंगे और अंतमें मिश्रण अणुवोंका नाम परमाणु रखके व्यवस्था करोगे. द्रव्य, या गुण या शक्ति ऐसे असंख्य विजातीय परमाणु मानें तो कार्य होने की व्यवस्थामें अटक जायंगे क्योंकि कार्य द्रव्य, कार्य योग्यता (गुण) कार्यरूप शक्ति देखते हैं इसलिये पुनः मिश्रणकोही कुछ संज्ञा देनी पडेगी. संक्षेपमें मूल स्वरूप के वास्ते कोई कल्पना काम नहीं देती. ॥ जो बुद्धिसे परमें तर्कका अनवसर ऐसा मानें तो परमाणुवाद त्यागना पडेगा क्योंकि दृष्यमें कोई अमिश्रित नहीं जान पडता है अर्थात् परिणामवादसेही व्यवस्था करनी पडेगी और एकही पदार्थ (शक्ति वा द्रव्य) मानके उसका रूपांतर मानें तो अव्याप्ति होनेसे अविकार होगा. अनेक दोष आवेंगे. अनिर्वचनीयताका सबूत मनुष्यकी अपूर्णता, और पूर्व कहे अनुसार नित्य उपयोगमें आनेवाले शब्दादिमेंभी अनेक पक्ष तथा विरोधी भावना. इसी वास्ते मेटर–प्रकृति वा हरकोई के मूल स्वरूपके लक्षण (डेफीनेशन) नहीं कहे जा सकते. जेसे प्रकृतिको गंधादि अणु अथवा पृथ्वी आदि अणु अथवा शब्दादि, तन्मात्राके वास्ते कहा गया वेसे ही जीव अणु (परमाणु चेतन) के वास्ते यथायोग्य योज लेना चाहिये. जेसाके अणु

परिमाण निषेधमें उपर कहा गया है ॥२२७ से २३० तक॥ देश और कालकी उत्पत्ति है क्योंकि देखते हैं ॥२३१॥ जैसेके स्वप्नसृष्टिमें नवीन देशकाल उत्पन्न हुये देखते हैं ॥ स्वप्नवाले देशकाल, परमाणुजन्य नहीं मान सकते क्योंकि वे वैसे मूर्त्त परिच्छिन्न नहीं है. और विभुमें गति परिणाम न होनेसे विभुके कार्य नहीं मान सकते. जो यह कहो कि वे मनके संस्कार-वासना मात्र हे, वस्तुतः कुछ नहीं, सो कल्पना मात्र है. सृष्टि नियमेको सामने रखके स्वप्न विवेककी थीयरी "तत्त्व दर्शन" अध्याय ४ में देखोगे तो यह कल्पना न रहेगी क्योंकि स्वप्न विकल्पादि रूप नहीं अर्थात् स्वप्नसृष्टि-विकल्पमात्र, ज्ञानमात्र, संस्कारमात्र, शब्दमात्र, अनुमान, शोधन, स्मृतिमात्र, स्मृति-ज्ञानमात्र, प्रत्यभिज्ञा, (तदज्ञान) बाह्यका दर्शन, कल्पित, मस्तिष्क (ब्रेमेटर) का परिणाम, मनका परिणाम, महत्तका परिणाम, द्रष्टाका परिणाम, क्षणिक, प्रतिबिंबरूप, प्रभाव (इम्प्रेशन) मात्र, भावनामात्र, सद्रूप, असद्रूप, सदसद्रूप, धर्मदर्शन, अन्य-देशस्थ, स्मृतिअविवेक, अनानुभव, उन्माद, अजात, अधिष्ठानस्वभाव, अधिष्ठानरूप, भूतदोष (तत्त्व-कफादि प्रेत), अज्ञेय, अनुपादान, भ्रान्तिरूप, अन्यावभास इस प्रकार ३८ रूप नहीं है. किंतु उपादान और उपयोगकी समानताकी दृष्टिसे जाग्रत स्वप्नकी समानता† है अर्थात् साधिष्ठान (कूटस्थ प्रत्यगात्मा संयुक्त), संस्कारी मनके निमित्तसे अनिर्वचनीय शेषांशसे देशकाल सहित नवीन सृष्टि उत्पन्न होती है ॥२३२॥ स्वप्नवाले देशकाल न थे और हुये और फेर न रहे इसलिये वे विभु और नित्य नहीं, किंतु उत्पत्ति नाशवाले हैं तथा असर वा इम्प्रेशन क्रिया विना नहीं होते. क्रिया देश विना नहीं होती इसकोभी विचारीये. अंतमें अनिर्वचनीय कहना वा माना पडेगा ॥२३३॥ औरभी दोके संयोग (१३० के विवेचनमें लक्षण देखो)में जब अन्य (देश, तम-प्रकाशादि) कुछभी न हो तब संयोग कहाता है और उससे कार्य होता है जो बीचमें देशका होना मानें तो दूरस्थित परमाणुओंसेभी कार्य होना चाहिये परंतु नहीं होता तथा जो वहां देश मानें तो वहां वायु विजलीभी होने चाहिये क्योंकि वे देश को खाली रखना नहीं चाहती. सारांश रसायणी संयोग न होनेसे जलादि कार्य न होंगे परंतु कार्य तो होते हैं. इसलिये देशकालको चाहे प्रकृतिके, वा मनके वा मगज (ब्रेमेटर) के परिणाम (प्रभाव-इम्प्रेशन) माने परंतु वे उत्पत्ति नाशवाले हैं-कार्यरूप

†स्वप्न क्या ? जाग्रत स्वप्नकी समानता, इस सिद्ध प्रक्रियासे प्रचलित अनेक शंकाओंका समाधान और इसका फल तत्त्व दर्शन अ ४ में और भ्रमनाशक के उत्तरार्द्ध प्रकृति विवेकमें अविस्तृत वर्णन किया गया है ॥

हैं यही सिद्ध होगा. (शं) जाग्रतके देशकाल वेसे नहीं जान पडते (उ.) उक्त स्वप्न विवेक विचारोगे तब स्वयं उत्तर पा लेगे. और प्रस्तुत प्रसंगकोही ध्यानमें लेनेसे समझ. सकोगे ॥ देशकाल वस्तु नही, इस कल्पनाका निषेध देशकाल प्रसंग (सू. १२८ के विवेचन) मे कर आये हैं. ॥२१४॥ त्रिवादोक्त अन्य प्रसंगमेंभी यथायोग्य त्याग ग्रहण कर लेना चाहिये उस विषे संक्षेपमें कहते हैं ॥

वक्ष्यमाण परिणामवाद और गत त्रिवादमें व्यवहार और परमार्थ दृष्टिको लेके अंतर माना है वस्तुतः त्रिवाद व्यवहार और कर्म उपासनके किलासमें उत्तम है किंतु ज्ञान योगका साधन है अतः उसके निषेधमें आग्रह नही है यही यथायोग्य योजना है और परमार्थ दृष्टिसे जो भेद है सो उपर कहा है तथा आगे कहेंगे यहां सारसार लिखते हैं.

(१) ब्रह्म चेतनका सशक्ति वा शक्ति (प्रकृति) का सचेतन उपयोग हो इसका नाम ईश्वर. और वोह त्रिवाद जेसी योग्यतावाला है (२) जब कूटस्थात्माका मन. सहित वा मनका आत्मा सहित उपयोग हो तब उसे जीव कहते हैं और वोह त्रिवाद जेसा है. परंतु अणु मात्र नही (३) प्रकृतिको अणु विभू नहीं कह सकते किंतु कोई अनिर्वचनीय वस्तु है. उसका कार्यवाद त्रिवाद जेसा है (४) ज्ञान और वासनाके अभावसे मोक्ष होती है और मोक्षसे अनावृत्ति है., तथापि इस अनुभव प्राप्ति तक त्रिवादोक्त साधनद्वारा किसी परलोकोमें त्रिवादोक्त मुक्तकी स्थिति होती हो तो संभव है याने उसके निषेधमें आग्रह नही परंतु वोह अनावृत्तिवाली नहीं. (५) त्रिवादोक्त असंयोग भक्तियोग ध्यानयोग ठीकही है. फल भावनाके अमुक अंशमें अपवाद किया है (६) त्रिवादोक्त प्रमाणादि प्रसग ठीक जान पडता है. (७) ईश्वरकी सिद्धि की है तथा उसको जगदाधार और जगतका निमित्त कारण बताया है सो ठीकही है परंतु उसमें इच्छा और गति (वा संस्कार) शक्ति भागमे है ऐसा मान्ना चाहिये। (८) जीव, शरीरसे भिन्न है उसका पुनर्जन्म होता है और नाना है कर्म करनेमें स्वतंत्र, फल भोगनेमें परतंत्र है, यह मंतव्य ठीकही है परंतु जीवमें जो रागादि और गति भाग है वोह शक्तिका है ऐसा मान्ना चाहिये (९) त्रिवादमें जो पदार्थोंका वर्णन किया है वोह व्यवहार दृष्टिसे ठीक है क्योंकि अनेक दर्शनकारोने अनेक भिन्न भिन्न रीतिसे माने हैं ऐसे ही यहभी एक प्रकार है. वस्तुतः यूंही है, यह नही कहा जा सकता और न इससे परमार्थ विद्याको कुछ विशेष सरोकार है. (१०) तमको व्यवहार दृष्टिसे पदार्थ मानना अनुचितभी नहीं है (११) देशकालको अनादि विभु वस्तु मान्ना सिद्ध नहीं होता

(१२) संयोगादि, रागादि, स्नेहादि, संख्यादि, सामान्य, विशेष, अभाव, संबंध और पृथकत्वके वास्ते जो लिखा है वोह टीकही है (१३) सृष्टिकी उत्पत्ति प्रकार जो लिखा है और लयकी रीति जो लिखी है वोह अनुमान मात्र है वस्तुतः यूंही है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि ईश्वरकी शक्ति और उसका उपयोग तथा प्रकार मनुष्य नही जान सकता (१४) सृष्टिके आरंभमें अमैथुनी सृष्टि हुई हो यह संभव है अनेकोंका यही विचार है तथापि पशुपक्षी और मनुष्य आरंभमें जवान पैदा हुये याने सबके नरमादा (पुरुष स्त्री) यकदम जवान पेदा हुये या ईश्वरने यकदम जवान बनाये ऐसा प्रकार व्याप्तिसे सिद्ध नही होता अतः मानना मुशकिल है (१५) योगादि प्रसंगमें जो संचित वगैरेमें और मुक्ति प्रसंग में जो शंका समाधान किये उनमें जितना अपवाद है वोह उपर कहा गया है. इस प्रकार यथायोग्य त्याग ग्रहण है. याने सत्संगमें चर्चाका परिणाम आया. ॥२३९॥

(संगति) अब आगे त्रिवादोक्त परतःप्राम्यका विषय शेष रहा है उसकी चर्चा करेंगे. क्योंकि उपयोगी विषय है—

स्वतोग्रह (स्वतःप्रामाण्य)

सृष्टिमें शब्दादि पदार्थ तो जेसे (द्रव्यगुण वा अवस्था-तत्त्व वा अतत्त्व) हैं वेसे हैं ही. उनकी यथार्थता अयथार्थता बुद्धिकी मान्यतासे नही हो सकती. ज्ञानमें मत भेद है. यथार्थ ज्ञान (जेसा कुदरतमें है वेसा ज्ञान) होता है वा नहीं, किसीको हुवा वा नहीं इसका उत्तर देना मुशकिल है. इसलिये मानव मंडलमें जो सबको समान ज्ञान होता है उसेही सत्य—प्रमा माना जाता है, उसी दृष्टिसे प्रमात्व वा अप्रमात्वका प्रयोग है तहां ज्ञान ग्राहक सामग्री (मन—ज्ञानेंद्रिय—आत्मा) निर्दोष होनी चाहिये.

सवाल यह है कि यह ज्ञान यथार्थ है या अयथार्थ है इस प्रमात्व और अप्रमात्व की उत्पत्ति ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे प्रयोज्य है वा ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे इतर (ज्ञान गुण व्याप्ति ज्ञान—अनुमान) द्वारा प्रयोज्य है और उस प्रमात्वका ज्ञान ज्ञानग्राहक सामग्रीमें ग्रहण होता है अथवा इस सामग्रीसे इतर अन्यद्वारा ग्रहण होता है. इसके उत्तरमें स्वत प्रामाण्य (स्वतोग्रह) और परतःप्रामाण्य (परतोग्रह) यह दो वाद हैं. भ्रमज्ञान वा सशय प्रसंगमें जो अप्रमात्व है उसकी उत्पत्ति परतः (दोषसे) है और उसका ज्ञान परतः (अनुमान द्वारा) है. याने परतः अप्रामाण्य है.

परतःप्रामाण्य—परतोग्रहका प्रकार त्रिवादमें कहा है. और सर्वत्र स्वतोग्रह,

स्वतोग्रह नहीं, सर्वत्र परतःप्रामाण्य है इसका निषेध और स्वतोग्रहकी सिद्धि ७ सूत्रोसे कहते हैं.

स्वतोग्रह और स्वप्रकाशकी सिद्धि ॥२३६॥ अनुमान ग्रहण होनेसे ॥२३७॥ स साक्षीत्व प्रकाशमान होनेसे ॥२३८॥ प्रकाशवत् ॥२३९॥ और अज्ञान ग्रहण होनेसेभी ॥२४०॥ अन्यथा अप्रमाणता ॥२४१॥ मैं हुं ऐसे सामान्य अपरोक्षत्त्व होनेसेभी ॥२४२॥ एवं अन्यकाभी अपरोक्षत्व ॥२४३॥

ज्ञान ग्राहक सामग्री याने आत्मामें प्रमात्वादि वृत्तिओका स्वयं ग्रहण होता है इस स्वतोग्रहकी और ज्ञान स्वरूप आत्मा स्वप्रकाश स्वरूप है इन उभय विषयकी सिद्धि है ॥२३६॥ क्योकि जिसे परतोग्रह कहते हो याने ज्ञान वृत्ति और अनुमान सो उसमें स्वतोग्रह होता है. अर्थात् आत्मासे आत्मामें स्वतः ग्रहण होता है. ॥२३७॥ और आप साक्षीत्व सहित प्रकाशमान होता है इसलिये स्वप्रकाशकी सिद्धि होती है ॥२३८॥ जेसे प्रकाश, प्रकाश्य (घटादि) को प्रकाशता हुवा (स्वतः विषय करता हुवा) उस सहित आप स्वयं प्रकाशमान होता है वेसे स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूपभी परतःग्रह (अनुमानादिको) को प्रकाशता हुवा आप स्वयंप्रकाश होता है इसलिये स्वतो ग्रह स्वप्रकाशकी सिद्धि होती है ॥२३९॥ और अज्ञान (में नहीं जानता इस प्रतीति का जो विषय) किसी मन इंद्रियका वा अनुमान शब्द उपमानादिका विषय नहीं होता सोभी सर्वको ग्रहण होता है याने आत्मामे स्वतोग्रह होता है इसलिये स्वतोग्रहकी सिद्धि होती है ॥२४०॥ जो स्वतोग्रहको न मानें तो जो कुछभी (प्रमेय, प्रमाण, परतोग्रहकी सिद्धि स्वतोग्रहकी असिद्धि) माना जाय तो उसमे अप्रमाणता वा अप्रतीतिकी आपत्ति होगी भ्रम संशयपना होनेसे व्यवहारभी न हो सकेगा परंतु भ्रमादि रहित सफल व्यवहार देखनेमें आता है अतः स्वतोग्रहकी सिद्धि है ॥२४१॥ "मैं हूं" ऐसे सामान्य अपरोक्षत्व सबको है. यह शब्द विनाका अहंत्व किसी इंद्रिय ओर मन वा अनुमानद्वारा ग्रहण नही होता और न किसीको अपने अस्तित्वमें संशय वा भ्रम है× इससेभी स्वतो ग्रह स्वप्रकाशकी सिद्धि होती है ॥२४२॥ त्रिवादमे परतः प्राह्य माना है. सत्संगमेंउपरका विवेक श्रवण मनन होनेपर श्रोताको यह निश्चय हो जाता है कि जेसे अहंत्व और अज्ञान सबको अपरोक्ष होते हैं वेसे अन्य (जीव, आत्मा वगेरे) भी अपरोक्ष, होने योग्य क्यों न हो? होने चाहिये. ॥२४३॥

× यह अहंत्व पशु पक्षीमेंभी जान पडता है. क्योकि उनका नाम रखनेसे वे उसी नाम लेनेपर आते जाते हैं.

इस तमाम प्रसंगमें मन अर्थात् चित्त, बुद्धि, मन, अहंकार याने रागादि अवस्थावाला अंतःकरण यह अर्थ जानना.॥ स्वतोग्रह और परतोग्रहकेलक्षण पूर्वमें कहे हैं आगेभी वाचोगे.

जो ज्ञान ग्राहक सामान्य सामग्री (आत्मा मन, इंद्रियादि) से ग्रहण हो उस ज्ञान ज्ञेयको स्वतोग्राह्य और उससे इतरद्वारा ग्रहण हो उसे परतोग्राह्य कहते हैं.॥ जैसे दीपक स्वयं प्रकाशका प्रकाश, आकाशमें ज्ञात नहीं होता परंतु जब किसीके साथ संबंध पावे (टकरावे) तब विषय होता है. वैसेही मन और आत्माके लिये ज्ञातव्य है. जब मन स्वयं कोई (दुःख, सुख, रागादि) आकार—परिणाम धारता है किंवा अन्य विषयके आकार होता है तब अपने तादात्म्य (अभेद, वा व्यापक व्याप्य भाव) संबंधवाले साक्षी (चेतन—आत्मा) में ग्रहण होता है अर्थात् अन्यकी अपेक्षा विना स्वप्रकाश आत्मामें प्रकाशित होता है (ज्ञात होता है) ऐसे प्रसंगपर स्वतोग्रह वा स्वतः ग्राह्यका प्रयोग होता है ॥ जहां ऐसा नहीं होता अन्यथाग्रहण होता है वहां पूर्व (१८६) लिखे अनुसार, परतोग्रह वा परतः ग्राह्यका प्रयोग होता है, यथा इंद्रिय, प्रकृतिका मूल स्वरूप, शरीरके भीतरके अवयव, पुनर्जन्म वा अप्रमात्व के आकार मन नहीं हो सकनेसे वे साक्षीमें ग्रहण नहीं होते इसलिये वहां परतः का प्रयोग होता है. घटादि रूपकी किरणोंकि तथा शब्द, स्पर्श, रस, गंधादि विषयोंकि आकार जब मन होता है यातो दुःख सुखादि रूप होता है तब उस आकार मन आत्मामें ग्रहण होता है वहां स्वतःका प्रयोग है. प्रमात्व, अप्रमात्व, (भ्रम) उभयमें ज्ञानत्वाकार होनेसे उनके ज्ञानत्वमें स्वतोग्राह्यका प्रयोग होता है. इसलिये स्वतोग्रह और परतोग्रह यह दो वाद वा प्रक्रिया कहाती हैं.

जिसको परतःग्राह्य वा परतोग्रह (वा परतः प्रामाण्य) कहते हो वोह किसमें ग्रहण हुवा मानोगे? जो ग्रहण न हुवा तो असिद्ध रहा. व्यवहार न होना चाहिये. जो ग्रहण हुवा तो जिसमें ग्रहण हुवा वोह स्वतः सिद्ध ठेरेगा. मेरा मन इस समय दूसरी जगे (विषय) में था ऐसा ग्रहण क्यों होता है? उपर परतोग्रहवाद प्रसंगमें जिन जिन मनादिका अनुमान जिन जिन व्याप्तिसे बताया है उन उन तमाम व्याप्तिओंका ग्रहण किसमें हुवा? चक्षुके अनुमानमें प्रतिबिंब और दूसरेकी चक्षुका ज्ञान और ऐसी मेरी चक्षु ऐसा ज्ञान किसमें ग्रहण हुवा? है, यह घट है. में घटको जानता हूं, यह व्यवहार वा ज्ञान किसमें ग्रहण हुवा? विषय, इंद्रिय, मन, आत्मा, उसका ज्ञान गुण मन परिणाम, इन सबका

परस्परमें जो भेद (वैलक्षण्य) सो और विषयों, इंद्रियो, मनके परिणामोंमें जो भेद हैं सो यह सब अनुभवसिद्ध ज्ञातभेद किसमें ग्रहण हुये ? निदान सबका उत्तर किसी स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूपमें स्वतोग्रह होता है. जिससे परतः ग्राह्य हैं अर्थात् जो अनुमानादि हैं वे किसीमें ग्रहण न हुवे तो अनुमानादि अनिश्चित वा शून्यरूप ठेरेंगे ॥ जो यूं हो तो घटादिका व्यवहार न होना चाहिये परंतु होता है; इसलिये ग्रहण हुवा मानेंगे तो किसमें ग्रहण हुवा ? जो उसको दूसरे अनुमानमें ग्रहण होना मानें तो अनवस्था दोष आवेगा और जो दूसरेका ग्रहण पहेलेमें तो अन्योऽन्याश्रय और जो दूसरेका ग्रहण तीसरेमें तीसरेका पहेलेमें तो चक्रिका दोष आवेगा और जो पहेला अनुमान अपने आपमें ग्रहण मानें तो स्वतोग्रह माननेसे सिद्धांत त्याग होगा. सारांश कहीं न कहीं स्वतोग्रह (स्वतः प्रामाण्य) मानना ही पडेगा. फेरभी जो हठसे न मानें तो परतःग्राह्यकी सिद्धि वदतोव्याघात दोषका विषय होगा. मेरे मुखमें जिव्हा नहीं ऐसे कथन समान होगा. और अप्रमाणता होगी क्योंकि किसी प्रमाणमें ग्रहण हुवे ऐसे उसकी स्थिति नहीं बताते हो.

मैं अमुक नहीं जानता इस प्रतीतिका विषय जो अज्ञान, किसी मन इंद्रिय आदिका विषय नहीं और अनुभवमें सबको ग्रहण होता है, मैं नहीं हुं. मै हुं, मैं दुःखी हुं इत्यादि किसीकोभी परतःग्राह्य नहीं होता. स्वतोग्राह्य होता है. पूर्वमें जो इंद्रिय मनसे न ग्रहण होने योग्य अर्थात् उनके भेद और शब्दादि विषयोंके भेद और उनकी पूर्वोत्तर योजना सो किसी परतः के विषय नहीं हैं, "मैं आया हुं." ऐसामें मानता वा "अनुमान करता हुं" ऐसा कथन वहमी सिवाय कोई नहीं करता पशुओंमेभी अपने अस्तित्वका स्वतः ग्रहण होना मान सकते हैं. ऐसे ही अहंका जो वाच्य अहं प्रयोगके विना ऐसा सामान्य अस्तित्व सबको स्वतःसिद्ध है इसलिये आत्माको (ज्ञान गुणको) परतःग्राह्य मानना हठ मात्र है. क्योंकि परतः ग्राह्यकी साक्षीभी उसी स्वतः सिद्ध प्रकाशसे मिलती है वा उसमें प्रकाशित वा उसमें ग्रहण होता है. (शं.) आत्मा प्रत्ये स्वतः प्रमाणता, स्वतोग्रहता मानें तो आत्माश्रय दोष होगा ? (उ.) जेसे प्रकाश स्वयंप्रकाश और उसमें प्रकाशित स्वतो ग्रह होते हैं. उसमें आत्माश्रय दोष अप्रसिद्ध है किंतु भूषण है तथा उसके संबंधमें प्रकाशका प्रकाश, प्रकाशमें प्रकाश, प्रकाशको प्रकाश ऐसी कल्पना व्यर्थ है. इसी प्रकार स्वप्रकाश चेतन (आत्मा)में आत्माश्रयादि दोष कल्पना वा ज्ञानमें ज्ञान, ज्ञानको ज्ञान, ज्ञानका ज्ञान इत्यादि कल्पना करना भूल है वा व्यर्थ है वा अति प्रसंग है

क्योंकि अनादिसे ऐसाही स्वतःसिद्ध स्वरूप है. उपरोक्त नानापक्षकी व्याप्तिभी परतो ग्रहका लिंग नहीं है अर्थात् उस हेतुसे परतोग्रह सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक में वही माना पडता है. और ग्रहणके बदले अनिश्चितताकी प्राप्ति यानें अग्रहणका लिंग है तथाही नाना पक्षपनेमें मनकी योग्यता कारण है, मनका जैसा (प्रमात्व वा अप्रमात्व) आकार हो वैसाही आत्मामें स्वतः (आत्मासे) ग्रहण होता है उसमें प्रमाणता अप्रमाणताको बीचमें लेनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह सब बुद्धिके परिणाम हैं. आत्माके दोष वा उसकी कल्पना नहीं है. (१९४ से १९६ तकका विवेचन देखो) ॥२४३॥

(शं) जैसे अनुमानका अनुमान न होनेसे वा वैसा मानें पर अनवस्थादि दोष आनेसे और अनुमानका उपयोग होनेसे अनुमानका आत्मामें ग्रहण होना माना है परंतु साक्षीकी सिद्धिमें क्या प्रमाण मानोगे? जो मानोगे तो अनवस्थादि दोष आवेगें जो न मानोगे तो उसकी सिद्धि न होगी. (उ) साक्षीकी स्वतः प्रमाणताही इसका उत्तर देती है सो उपर कहा है.

(शं) साक्षीमें प्रमात्वका ग्रहण होता है. और जहां अप्रमात्व वृत्तिका ग्रहण होता है वहां वोह अनुमान वृत्तिभी प्रमात्व रूपमें ग्रहण होती है. तो फेर जो स्वतोग्रह हैं तो साक्षीमें अप्रमात्व क्यों नहीं ग्रहण होता ? (उ.) प्रमात्व अप्रमात्व यह बुद्धि व्यवहार है. आरंभ विषे जिस आकार वृत्ति हुई उसकी परीक्षा पीछेभी उसी आकार हुई ऐसी वृत्ति प्रमात्व वृत्ति है यानें विषय यथार्थ है "यह घट है" ऐसा उसका आकार है. इस प्रकार स्वतः प्रमात्वकी उत्पत्तिवाली वृत्ति आत्मामें ग्रहण होती है यही प्रमात्वके ज्ञानका ग्रहण यानें ज्ञप्ति स्वतस्त्व है. जहां भ्रम हो तहां वृत्ति विषयाकार नहीं होती किंतु जो दोष है उस आकारभी नहीं होती किंतु यथा संस्कार प्रमात्व रूपमेही ग्रहण होती है. उत्तरकालमें भ्रम हुवा था भूला था इस आकार वृत्ति होती है यानें अनुमानरूपावृत्ति साक्षीमें ग्रहण होती है. परंतु वृत्तिका आकार अप्रमात्व रूपा न हो सकनेसे भ्रम साक्षीका विषय नहीं होता. क्योंकि मन जिसका वा जो आकार आत्माके समक्ष करे उसीको साक्षी प्रकाशता है तिस बिना नहीं. अर्थात् यद्यपि सामान्यमे उसका सर्व जगे उपयोग है परंतु विशेषमे मनद्वारा होता है. (आगे बांचोगे).

परिभाषा—पूर्वार्द्धसे अधिक.

प्रमा=यथार्थ ज्ञान (प्रमा नाम चेतनकाभी है, सो अर्थ इस प्रसंगमें न लेना)

अप्रमा=अयथार्थ ज्ञान (भ्रम संशय)

प्रमात्व=यथार्थत्व. प्रामाण्य.

प्रामाण्य=प्रमामें जो प्रमात्व धर्म सो. यह कैसे उत्पन्न होता है, कैसे ग्रहण होता है, इसमें दो भेद हैं; स्वतस्त्व, परतस्त्व.

अप्रामाण्य=अप्रमामें जो अप्रमात्व धर्म सो. इस.

ज्ञातता=ज्ञानजन्य प्रकट सत्ताको ज्ञातता कहते हैं.

उत्पत्ति स्वतस्त्व=प्रमात्वकी उत्पत्तिमें जो स्वतस्त्व सो ज्ञान मात्र उत्पत्तिकी सामग्री करके जो प्रयोज्यत्व यही प्रमात्वमें उत्पत्ति स्व.

उत्पत्ति परतस्त्व=प्रमात्वकी उत्पत्तिमें जो परतस्त्व ज्ञान सामग्रीसे भिन्न करके जो प्रयोज्यत्व है यही प्रमात्वमें उत्पत्ति पर.

ज्ञप्ति स्वतस्त्व=प्रमात्वके ज्ञान होनेमे जो स्वतस्त्व सो. ज्ञान ग्राहक सामग्री करके जो ग्राह्यत्व यही प्रमात्वमें ज्ञ.

ज्ञप्ति परतस्त्व=प्रमात्वके ज्ञान होनेमे जो परतस्त्व सो. भिन्न सामग्री करके जो ग्राह्यत्व यही प्रमात्वमें ज्ञ.

स्वतः प्रामाण्यवाद=स्वतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति और स्वतः प्रामाण्यका ज्ञान होना माना इसका नाम स्व.

परतः प्रामाण्यवाद=अन्यसे प्रामाण्यकी उत्पत्ति तथा अन्यसे प्रामाण्यका ज्ञान होना माना इसका नाम पर.

परतः अप्रामाण्य=प्रमात्वकी परसे उत्पत्ति तथा अन्यद्वारा उसका ज्ञान होना माना सो.

ज्ञान ग्राहक सामग्री=मन, इंद्रिय, आत्मा, सन्निकर्प.

इससे इतर=आत्माका ज्ञान गुण. व्याप्ति ज्ञानादि याने अनुमानादि.

ग्राह्यत्व=ग्रहण होने योग्यपना.

स्वतोग्रह=ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे प्रमात्वके ग्रहका नाम स्वतोग्रह यथा यह घट. इसमें प्रमात्वका साक्षीमे ग्रहण है. रजुके इदं प्रमात्वका साक्षीमें ग्रहण है.

परतोग्रह=रज्जुमें सर्प, सर्पप्रमात्व समान ग्रहण होता है. तथापि उत्तरकालमें

बाधित होनेसे प्रमा ज्ञानका विषय नहिं ऐसा मानते हैं. उसका अप्रमात्वभी अनुमानका विषय है.

प्रमाण=यथार्थ ज्ञान होनेमें जो करण याने ज्ञानका साधन सो प्रमाण.

स्वतःप्रामाण्यग्रह=निर्दोष ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे प्रमात्वका ग्रहण होवे सो स्वतः प्रामाण्यग्रह कहाता है.

स्वतोग्रह*=ज्ञान स्वरूप-चेतन प्रकाश-साक्षीमें प्रमात्व वृत्तिका या अप्रमात्व रूप वृत्तिका वा हरकोई प्रकारकी वृत्तिका प्रकाश्यभावको पाना याने ज्ञेयत्व प्रमेयत्व अनुमेयत्व रूपसे स्वतः ग्रहण हो जाना अर्थात् आत्मा करके ग्रह होनेका नाम स्वतोग्रह है.

स्वयंप्रमाण (स्वतःप्रमाण्य)*=ज्ञान होनेमें वा ज्ञान करानेमें जो आपही साधन-करण हो. जैसे मन (चित्त बुद्धि अहंकार) और उसके परिणाम रागादिके प्रकाश्य याने-ग्रहण होने-ज्ञान होनेमें साक्षी चेतनही स्वतः प्रमाण है अन्य कोई प्रमाण नहीं. तद्वत् अपने प्रकाशमान होनेमें (प्रकाशवत्) स्वप्रकाश स्वरूप है दूसरी मोटी भाषामें कहें तो अपने भान करानेमें आपही साधन है. अनुमानादि प्रमाण किसी अन्यकी अपेक्षा विना साक्षीमें आपही ग्रहण होते हैं इसलिये स्वतः प्रमाण हैं जैसे अनुमानरूप वृत्ति ग्रहण होती है वैसे अन्यभी जान लेना. आत्मा और मनका भेद तथा सन्निकर्षभी आत्मामें ग्रहण होता है इसलिये भी स्वतःप्रमाण (आप ज्ञानका साधन) है.

परतः प्रमाण*=सामान्य निर्दोष ज्ञानग्राहक सामग्रीसे भिन्न जो ज्ञान होनेमें साधन सो परप्रमाण वा परतःप्रमाण कहा गया है यथा अपनी आंख है ऐसा ज्ञान होनेमें आत्मा मन इंद्रिय और सन्निकर्ष साधन नहीं है किंतु व्याप्ति ज्ञान साधन है. इसे परसे जन्य ज्ञानका साधन होनेसे परतः प्रमाण कहते हैं.

यथार्थ स्मृति=यथार्थ अनुभवजन्य संस्कारका स्फुरण सो. और उसका ज्ञान स्मृति ज्ञान.

अयथार्थ स्मृति=अयथार्थ अनुभवजन्य संस्कारका स्फुरण सो. और उसका ज्ञान अयथार्थ स्मृति ज्ञान.

यहां थोडे स्वतोग्रहका प्रकार लिखते हैं (शेष पीछे).

* मत सिद्धान्तकी परिभाषा.

स्मृतिज्ञान, अनुभवज्ञान साधारण जो (संवादी) सफल प्रवृत्तिके अनुकूल तिसवाला तिसप्रकारका ज्ञान तादृश्य ज्ञानमेंही प्रमात्व रहता है। यह प्रमात्व ज्ञानभी इंद्रिय सन्निकर्षादि अथवा आत्ममनसंयोगादि सामान्य सामग्रीसे प्रयोज्य है. उससे अधिक गुणादिकोंकी (मन आत्मा संयोगजन्य गुण वा व्याप्तिजन्य अनुमान) अपेक्षा नहीं करता. क्योंकि रूपादि वा आत्माके प्रत्यक्षमें इंद्रीयसन्निकर्ष और गुणके कारणता नहीं है. तथाहि सन्निकर्ष कारण होते हुयेभी संखमें पीतादिकी प्रतीति होती है. ऐसेही अनुमति प्रमा प्रसंगमें है. क्योंकि असद् हेतु (लिंग) परामर्शात्मक ज्ञान कालमेंभी विषयके अबाध होनेसे अनुमिति आदि ज्ञान प्रमात्मक उत्पन्न होता है (असदानुमान सत्यरुपमें हो जाता है) (शं) उभय प्रसंगमें ज्ञान सामान्य सामग्री हैं. अतः अप्रमा ज्ञानभी प्रमारुप होना चाहिये (उ.) प्रमात्वमें दोषाभाव हेतुता है. अप्रमात्वमे दोषका भावत्व हेतु है इसलिये उभयका भेद है. (शं) जो दोषाभाव हेतु तो प्रमात्व परतस्त्व स्वीकार होगा (परतःप्रामाण्य मान लेना पडेगा) (उ) ज्ञान सामान्य सामग्रीसे इतर आगंतुक भावरूप कारणकी अपेक्षा होनेसे परतस्त्व व्यवहार होता है (प्रसंगमें पहेले वा वर्त्तमान वा उत्तरकालमें दोषाभाव कारण नहीं है. अर्थात् दोष है ही नहीं).

जेसे प्रमा ज्ञानमें प्रमात्व स्वतः उत्पन्न हुवा वेसे प्रमात्व ज्ञान (प्रमात्वका ग्रहण) भी स्वतः होता है. उक्त प्रमात्वमें स्वतोग्राह्यत्व (आपही ग्रहण होने योग्यपना) तो दोषरहित जो प्रमाज्ञानग्राहक सामग्री सो तादृश्य सामग्री ग्राह्यत्व है. उसका आश्रय अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान है. उसका ग्राहक साक्षीरूपज्ञान है, उस साक्षी ज्ञानसे वृत्तिज्ञानग्रहण होनेसे वृत्तिनिष्ठ प्रमात्वका ग्रहणभी होता है॥ सर्वत्र साक्षीही प्रमात्वका ग्राहक है ऐसा नहीं है. किंतु संशय* वा भ्रम, साक्षीमें ग्रहण नहीं होता. यह स्थाणु, वा पुरुष ? ऐसा दे कोटी ग्राह्य ज्ञानको संशय कहते हैं. संशय प्रसंगमे प्रमात्व विषे संदेह है. यह संशयही दोषका होना निश्चय करा सकता है.

दोषके अभावमें साक्षी ग्राहक होता है. संशयमें दोष होने करके साक्षीका अभाव होनेसे प्रामाण्यकाही अभाव है. सारांश दोषस्थलमें साक्षीसे ज्ञाननिष्ट प्रमात्व का ग्रहण नहीं होता. प्रमाज्ञानके ग्राहकसे ग्राह्यत्वकी योग्यतावाला होनाही ज्ञप्ति

*संशयकालमें साक्षीमे संशयका प्रमात्व ग्रहण होता है परंतु दोष और जिसमें संशय है उस विषयका प्रमात्व वा अप्रमात्व ग्रहण नहीं होता

स्वतस्त्व है. संशय प्रसंगमें यह योग्यता है भी, परंतु दोषवशसे ग्रहण नहीं होती इसलिये संशय बन सकता है.

अप्रमात्व (धर्म-भ्रमपना) ज्ञान सामग्रीजन्य नहीं है किंतु उसको प्रयोजक केवल दोष है. अप्रमाज्ञानमें जो अप्रमात्व (धर्म) उस अप्रमात्व धर्मका अप्रमा ज्ञान प्रयोजक सामग्री (अयोग्यतादि दोष) से भी ग्रहण नहीं होता तो अप्रमात्व धर्म के संपादक जो तदभाववत्वादि धर्म (दोषत्व) हैं, वे वृत्ति आत्मक ज्ञान (वृत्तिज्ञान) के विषय न होनेसे साक्षीद्वारा ग्रहण होनाही दुर्घट है. अप्रमात्व क्या? ततुसे अन्य और तिस भाववाला तिस प्रकारकपनारूपही अप्रमाज्ञानमें अप्रमात्व है. यद्यपि उसकालमें तत्प्रकारत्व (प्रमावत्) करके ग्रहण होता है तथापि तदभाववाला तत्प्रकार पनेसे ग्रहण नहीं होता (अन्यथा भाववाला है ऐसे ग्रहण नहीं होता) इसलिये तदभाव ततुप्रकारत्व वृत्तिमें ग्रहणको अविषय होनेसे उनका साक्षीमें ग्रहण नहीं होता. किंतु अनुमितिका विषय है. यथा यह शक्ति रजतार्थि प्रवृत्ति प्रमाणशून्य है. निष्फल प्रवृत्ति होनेसे. विसंवादि (भ्रम प्रवृत्तिरूप) लिंगसे उत्पन्न होनेवाली अनुमितिसे अप्रमात्वादि धर्मोका ग्रहण होता है. इसलिये अप्रमाणज्ञानमें अप्रमात्वकी उत्पत्ति तथा ज्ञान परतो ही सर्वत्र होता है; क्योंकि वृत्तिसे विना केवल साक्षी विषय पदार्थका नाम साक्षी वेद्य नहीं है किंतु इंद्रिय अनुमानादि प्रमाणोंके व्यापारसे विना जो विषय हो वोह पदार्थ साक्षी वेद्य है. ×

सांख्ययोग (ज्ञानयोग) का अधिकारी.

अतः अपरोक्षार्थ जिज्ञासा ॥२४४॥ पुरुषार्थसे प्रतिबंधका निवारण ॥२४५॥ स्वरूपादिके दर्शनसे ॥२४६॥ और विवेकादि साधनसे अधिकार प्राप्ति ॥२४७॥ ततः सदाकार और श्रुतार्थका मनन ॥२४८॥ और साक्षात्कारार्थ निदिध्यास ॥२४९॥ उससे विवेकख्याति ॥२५०॥ तदनुभव अनुसार कथन ॥२५१॥

अतः अर्थात् उक्त श्रवण और स्वतः प्रामाण्य—स्वतोग्रहवाद सयुक्त सुनेसे उक्त जिज्ञासु शोधकको ईष्ट (जीव मन आत्मा मोक्ष) के अपरोक्ष होने वास्ते उत्कट जिज्ञासा उत्पन्न हो गई॥२४४॥ परंतु यह इच्छा अध्यात्मविद्या (ब्रह्म विद्या प्राप्त हुये विना पूरी नहीं हो सकती इसलिये, उसके अधिकार प्राप्ति वास्ते प्रयत्न हुवा. उस पुरुषार्थसे जो अध्यात्म विद्या प्राप्तिमें भूत वर्तमान और भावि ३ आड होती हैं उनमेंसे जो पूर्व

× मू. ३५४, १६३, ३६८, ३०२, ३७४, ३८९ इन ६ का विवेचन बांचके और १९७ २०१ इनका विवेचन याद करके पुनः इस प्रमात्व अप्रमात्व प्रसंगको बाचना ठीक होगा.

संस्कारसे नष्ट पर्याय थे: उनके सिवाय जो आड भी उन (प्रतिबंध) का निवारण करता रहा ॥२४५॥

अनुभव.

क्योंकि इस भाग्यशाली जिज्ञासुको चार कृपा (अपनी कृपा याने उत्कट जिज्ञासा. दैव कृपा. विद्या बुद्धिकी कृपा और तहां प्राप्त जो ब्रह्मनिष्ट सद्गुरु उसकी कृपा) प्राप्त हो गइथी इसलिये प्राप्त विघ्नोंको दूर कर सका ॥२४६॥ तथाहि विवेक, वैराग्य, शमादि षट् और मुमुक्षता यह चार अध्यात्म विद्या प्राप्तिके बहिरंग साधन हैं इनमेसे जितना अंश अप्राप्त था सो प्राप्त किया. ॥२४७॥ तिस पीछे ब्रह्म विद्या प्राप्ति अर्थ कल्पवृक्ष रूपी जो सत्संग सो सेवने लगा और जो सत्समागम और अपने गुरुदेवसे सुना उसका युक्तिपूर्वक मनन किया ॥२४८॥ और श्रवण मननके अनुसार है इसके अनुभवार्थ निदिध्यास किया ॥२४९॥ ऐसे अभ्यास करते करते मध्यस्थद्वारा निर्णित जो सुना तथा गुरुश्रीके मुखसे तत्त्वबोधका उपदेश हुवा उसके अनुसार अनुभवमें आ गया अर्थात् अपूर्व प्रकारसे विवेकख्याति हो गई तुर्या अवस्था हो जानेसे अडिग अपरोक्ष दृढ ज्ञान प्राप्त हो गया. जीव, आत्मा और मोक्षके स्वरूपका साक्षात्कार हो गया. ॥२५०॥ अब आगे उसको जो अनुभव हुवा उसके अनुसार कथन होगा ॥२५१॥

अध्यात्म विद्या प्राप्ति अर्थ जिस अधिकार शैलीका सूत्रोंमें वर्णन है वही शैली सर्वके वास्ते है तथापि जिसके पूर्व जन्ममें उत्तम संस्कार हों, और इसके वास्ते पुरुषार्थ हुवा हो उसके तीनो प्रतिबंध और चारों कृपा तथा विवेकादिमें अन्योंमे अंतर होता है अर्थात् प्रतिबंध थोडे और वेभी शिथिल होते हैं. चारों कृपा थोडे श्रमसे प्राप्त हो जाती हैं उससे वे शिथिल विघ्न थोडे उपायसे नाश हो जाते हैं वा आडमें नही आते. तद्वत् विवेकादि सुलभ और जलदी तथा थोडे प्रयत्नसे प्राप्त हो जाते हैं॥ इसलिये ईन सूत्रोंका विवेचन उस शैलीमे किया जायगा कि जो सब जिज्ञासुओंको लागु हो सकें:—

चिदचिद्विवेक ख्याति.

मैं हु ऐसे अपने स्वरूपके अस्तित्वका याने स्वरूपका सामान्य अपरोक्षत्व सर्वको है वैसेही दूसरोंकाभी अपरोक्षत्व है क्योंकि स्वप्रकाश स्वरूप (अलुप्त ज्ञानप्रकाश) आत्मामें तादात्म्य संबंधवाले होते हैं. इसलिये स्वनोग्रहण हुये अपरोक्ष हो जाते हैं इसलिये इष्टके अपरोक्षार्थकी जिज्ञासा होती है ॥२४४॥ मैं नहीं हु वा नहीं था, ऐसा

किसीको अनुभव नहीं होता और यदि कोई मूर्छादि प्रसगमें ऐसा मानें तो ईस अभाव को विषय करने वालाही आत्मा, स्वप्रकाश है, ऐसा सिद्ध हो जायगा. इसलिये 'में नही' ऐसा नहीं किंतु 'में हु' ऐसे पदकाजो वाच्य अर्थात ऐसी प्रतीतिका जो विषय उसका लक्ष्य जो है सो अर्थात् स्वयं प्रकाशमान जो है सो किसी इंद्रिय, मगज-इम्प्रेशन वा मनका विषय नही है. इसमें सत्ता (अस्ति)ज्ञान (भाति) जीवन (प्रिय) और सवित् (स्वप्रकाशरूप अनुभव) यह चार अंश है. जो विचारणीय और गंभीर है. (यहा अंश शब्द कल्पना मात्र है. बोधार्थ उद्देश है) इस प्रकार अपने (सामान्य स्वरूपका अस्तित्व अपरोक्ष है. हा, विशेष स्वरूप अर्थात् में कैसा (द्रव्य, गुण, अणु, विभु, मध्यमादि) और कोन हु ऐसा अपरोक्ष नहीं है याने अपना विशेष स्वरूप नहीं जानता, ऐसा कहा जा सकता है अपरोक्ष (साक्षात्) और प्रत्यक्ष पदमें इतना अंतर है कि अपरोक्षत्व तो मन इंद्रिय और आत्माके विषय होनेवालेमेंभी लगता है और प्रत्यक्ष इंद्रिय मनद्वारा विषय होनेवालेमेंही लगता है आत्मा प्रसंगमें नही, ऐसी परिपाटी है अलुप्त स्वयंप्रकाश आत्मामें रागादि और शब्दादिका अनिर्वचनीय अभेद (तादात्म्य) सबंध होनेसे वे स्वतोग्रहण हुये अपरोक्ष (साक्षातसे ज्ञात) होते हैं उनका उदाहरण और प्रकार दृष्टांत सहित उपर स्वतः प्रसगमें लिख आये हैं और आगेभी वाचोगे. जब अधिकारी शोधकको स्वतोग्रह और अपरोक्षत्व (अपरोक्ष होने) की व्याप्ति जान पडती है तब उसको स्वाभाविक यह जिज्ञासा हो जाती है के हमारा इष्ट परमात्मा-मोक्ष-जीव स्वरूप) भी साक्षात् होने योग्य हो जो यूं हो तो, परतः प्रामाण्य-परतोग्रह रूप विश्वाससेही माना जाय, यही ठीक नही. इसलिये अपरोक्षार्थ प्रयत्न करता है ॥२४४॥ प्रस्तुत इष्ट जिसको अपरोक्ष हो सकता है उस अधिकारीके लक्षण लिखते है —

(क) पूर्वोक्त त्रिवादमें कहे हुये कर्म और उपासना जिसको सिद्ध हो अर्थात् चितमें अपने वा परके वास्ते मलिन (पाप) वासना न फुरे ऐसे पाप रहित शुद्ध हृदय होना यह कर्मयोग सिद्धिके लक्षण है और जब चाहें तब मनको रोकके एकाग्र (सकल्प रहित) कर लेना वा किसीके आकार करके ठेरा लेना यह उपासना (ध्यान) योग सिद्धिके लक्षण है यह दोनो साधन जिसको सिद्ध हो (ख) और इष्ट प्राप्तिमें जिसके भूत, वर्तमान और भावि प्रतिबध न हो अर्थात् ऐसे सचित न हो कि जो पुरुषार्थमें आड हो. यथा माता पिताके दुषित रज वीर्यके वा अन्य कर्मजन्य शरीरमें दोष होनेसे इच्छा पूरी करनेमें अशक्त हो इत्यादि विघ्नकारक संचित भूत प्रतिबध कहाते हैं ऐसे

विघ्न विना भूत प्रतिबंध रहितपना है॥ ममतादिका होना **वर्त्तमान प्रतिबंध** कहाता है अर्थात् ममत्व (पदार्थोंमें ममता होना) मंदता (समझने, ग्रहण करनेके योग्य बुद्धिका न होना) कायरता (पुरुषार्थमें शिथिल हो जाना) कुतर्क (निकामी तर्क उठाना–जेसे के भोग वास्ते पेदा होके मर जाना है और क्या. ई.) कुसंग (पामर, विषय लंपट अथवा दुष्ट जनोंके सहवास–संगमें रहना) शंका (इस मार्गसे मेरा इष्ट सिद्ध होगा वा नहीं ऐसा संशय होना.) भय (इस मार्गमें चलनेसे में नष्ट हो जाउंगा, लोक मुझे निंदेंगे इत्यादि भय होना) आसक्ति विषयोंमें मनकी रुची होना) दुराग्रह (सत्यका आभास हुयेभी पक्षपात वा हठसे उसे न स्वीकारना) सिद्धि (मंत्र जंत्र वीर देवतादि सिद्धिकी मनमें इच्छा रहना वा प्राप्त सिद्धिमें मोह अभिमान होना) यह वर्तमान प्रतिबंध जिसको न हो याने ममतादि रहित हो. जिसका भावी जन्म अवश्य होगा ऐसे बलिष्ट कर्म वोह **भावी प्रतिबंध** कहाता है. साधारण सामग्री प्राप्त हों तोभी इस मार्गमें रुची न होना किंतु प्रसंग आनेपर उसके विपरीत प्रवृत्ति हो जाना वा वेसी सामग्री हो जाना, यह भावि प्रतिबंध के लिंग है. उक्त चार प्रतिबंध जिसके न हों (ग) और चार कृपा का पात्र हो अर्थात् स्वकृपा याने उत्कट जिज्ञासा (इष्ट प्राप्ति अर्थ ऐसी दृढ इच्छा और पुरुषार्थ होना कि त्रिलोकीके वैभव जिसके सामने तुच्छ हों, किसीके दाव पेचमें न आने और विघ्न हों तो उनके दूर करनेमें पूर्ण प्रयत्न) दैवकृपा (पूर्वके संचित उत्तम हों * धी विद्याकी कृपा (विवेक करने समझने और ग्रहण करनेके योग्य बुद्धि हो तथा थोडी बहुत विद्या शक्ति हो) गुरु कृपा (योग्य अनुभवी शिक्षककी यह इच्छा हो के जिस तिस उत्तम प्रकारसे उसका कल्याण हो याने उसे श्रेय–इष्ट प्राप्ति हो और यथायोग्य उपदेश होना) इन चार अनुग्रहवाला हो. क्योंकि इनमें जितनी कमी उतनी ही खामी रहती है. (घ) और विवेक वैराग्य शमादिषट् तथा मुमुक्षता इनचार साधनसंपन्न हो अर्थात् विवेकवाला (सदसदका जिसने निर्णय कर लिया हो अर्थात् हमको क्या कर्तव्य क्या अकर्तव्य, क्या ज्ञातव्य और क्या प्राप्तव्य है ऐसा जिसने जाना हो, क्षणभंगुर दुःख रूप संसारके साथ हमारा क्या संबंध उसका परिणाम क्या. यह बात जिसके ध्यानमें आ गइ हो. वैराग्यवान हो अर्थात् विवेक निर्णित त्याज्य–निषेधका त्याग उससे मनमें अरुची हो. (सबको छोडके जंगलमें जाके बेठना और मनमें तृष्णा रहनेका नाम वैराग्य नहीं है किंतु गृहमें हो वा जंगलमें परंतु मनमें वैराग्य होना चाहिये) षट् शमादिवाला हो. अर्थात् शम (मनपर काबु होना मनको विवेक परिणाम

*कोई दैवकृपाका अर्थ, ईश्वरकृपाभी करता है.

पर रखना) दम (इंद्रियोंपर काबु होना–इंद्रियोंको विवेक परिणाम पर रखना, विषयोंसे रोकना) उपरति (विवेक परिणाममें जिनका निषेध आया है वे विषय प्राप्त हों वा उनका प्रसंग हो तोभी उनमे उपराम होना) तितीक्षा (दुःख, सुख, सरदी, गरमी, मानापमान, आपत्कालमें सहनशीलता होना) श्रद्धा (अपने पुरुषार्थ, इष्ट और गुरुमें विश्वास होना) समाधान (उपरोक्तमें मन विषे विपरीत भावना वा संशय उठे तवही उसका समाधान हो जाना) इन षड् शमादिवाला हो. विवेक वैराग्यके यह रक्षक होते हैं और एक पीछे दूसरे आही जाते हैं इसलिये इनको एक साधनसंज्ञा दी है. **मुमुक्षता** उपरोक्त विवेकादिवालेमें मोक्षप्राप्तिकी इच्छा होना मुमुक्षता कहलाती है. इस प्रकार चार (विवेकादि) साधन संपन्न हो उसको **अधिकारी** जानना चाहिये ॥ क्योंकि **पामर** (मूढ) विषयी (भोगोंमें आसक्त, लोकेष्णा वित्तेष्णा, पुत्र (स्त्रीआदि)की एष्णावाला इस विषयका अधिकारी नहीं हो सकता और तज्ज (जीवन मुक्त) का यह प्रसंग नहीं. शेषमें वेही पुरुष अधिकारी हो सकते हैं कि जो इधरके नहीं और उधरकी जिसको इच्छा हो ॥ यद्यपि अधिकारीके विवेकादि चारही बहिरंग साधन–लक्षण कहना बस था क्योंकि ऐसे विस्तार करें तो धन, स्त्री, पुत्र राज्यादि परंपरासे सब मोक्षके साधन मान सकते हैं और हैंभी. अर्थात् उपर जेसे लंबे लंबे साधन लिखे सो व्यर्थ हैं तथापि प्राचीनकालकी यह पद्धति होनेसे विवेकादिके बहिरंग साधन ध्यानमें न रहनेसे और मुद्रालयकी बाहुल्यतामे ऐसा हो पडा है कि विवेकादिके पूर्वके जो अधिकार हैं उनपर दृष्टि न जानेसे शुष्क ज्ञानी हो जाते हैं, तोतेके समान वे मुख्य फलके भागी नहीं होते, वीतरागीके बदले द्वेरागी हो जाते हैं. सुखके बदले दुःखको अनुभवते हैं, ऐसी बहुधा व्याप्ति देखनेसे उक्त प्रकारसे लक्षण लिखे हैं. ताके अपनी योग्यताका ध्यान रहे, और विद्याको कलंकित न दरसा सकें. उन लंबे चोडे लक्षणोंमेंभी सार तो वही है अतः दोष नहीं. अनेक जन्ममें संसिद्धि होती है इसलिये किसीको पूर्वजन्ममें कर्मोपासना सिद्ध हो तो उसको सद्देजसे विवेकादि होके इष्ट प्राप्ति हो जाती है. जो ऐसा न होता तोभी भावि प्रतिबंधसे इतर सब प्रतिबंधका अभाव और अनुग्रहका संपादन होना जिज्ञासुके पुरुषार्थके आधीन है अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा प्रतिबंधोंका अभाव करके अनुग्रहका पात्र हो सकता है. इसलिये निरास होनेका अवसर नहीं है. इसके सिवाय प्रारब्ध तो भोगनेसे स्वयं नाश हो जायगा. भाविजन्म अपरोक्षका विषय नहीं और न उनका निर्णय कर सकते हैं याने अज्ञात है, वैसेही पूर्वके सचितभी अज्ञात हैं और सबका मूल क्रियमाण है इसलिये पुरुषार्थ परही आधार रखनेकी अपेक्षा है. अतः

पुरुषार्थ करके इसी जन्ममें इष्ट सिद्धि करनेकी निष्ठा रखना चाहिये. जेसाके सूत्रोक्त आरण्यकने पुरुषार्थद्वारा अधिकार प्राप्त किया ॥२४९ से २४७॥ उक्त अधिकारीको सत्याकर याने सतसंग कर्तव्य है. विवेकादि सहित स्वतंत्र होके सबकी सुना परंतु ग्रहण करना सत्यका, नहीं के विश्वासमात्रमे मान लेना. क्योंकि ऐसे न हो तो अनिष्ट भी हो जाता है. सत्संग समय वक्ता किस उद्देश किस अपेक्षासे कहता वा लिखता है, और उसका सार और लक्ष्य क्या है. उसपर ध्यान देना चाहिये. नहीं के सूकी तर्क वा विवाद पर उतरना वा विपरीत भावना कर लेना. जो ऐसा न होगा तो सत्की प्राप्ति नही हो सकेगी, क्योंकि एकही बात एकके वास्ते विधि (यथा शरीर पालन, स्त्री वर्जन विद्यार्थीओके वास्ते विधि) वही दूसरेके वास्ते निषेध (यथा वृद्धको शरीर मोह, गृहस्थको स्त्री त्याग निषेध) कहा जाता है. इसप्रकार देशकाल स्थिति और अधिकार प्रति उपदेश होता है सर्वको सर्व नही तथाहि एक क जमींदार अफीम को पानी दे रहा है और माल अफसरका सिपाही दिला रहा है क्योंकि जो समयपर न दे तो अफीम नष्ट होनेसे राजा प्रजाकी हानी. उस समय कोईके आरोप करनेपर पुलिसमेन क के पकडनेको वारंट लाया है और देवानीका चपडासी उसके घरके मालकी कुरकी वास्ते आता है. तीनों क को, अपने कबजेमें रखना चाहते हैं, तकरार होती है. वे अपने अपने अफसरको रपोर्ट करते हैं, उसमें अपना अपना पक्ष करते है. राजा सबकी ड्युटी समझके तीनों बातें यथा अधिकार निभे ऐसा हुकम देता है. इसी प्रकार व्यवहारवाद, कर्मवाद, उपासनावाद और ज्ञानवाद, (जीवके वास्ते अपना अपना पक्ष तानके अपनी ड्यूटी बजाते हैं. वे सत्र अंशमें असत्पर नही हैं. इसलिये सबका निभाव हो और सबका उद्देश सफल हो इसका विचार अधिकारीको करना चाहिये. इत्यादि रीतिका विचार रखके जो सत्संग करे तो मथनसे उपयोगी सत्य तिर आता है असत् ग्रहण नहीं होता, पक्षमें नहीं तनाता और सुखी हो जाता है जिसको अपने परीक्षित सद्गुरुसे इतरके श्रवणकी अपेक्षा नहीं किंतु उनमेंही प्रमाण्यता मानी हो तो उनकाही बोध श्रवण करे. परंतु छानवीन करके स्वीकारना चाहिये. (शं.) रोगी, वैद्य और अपने रोगकी यथावत् परीक्षा नही कर सकता. तद्वत् जिज्ञासु अपने इष्ट विषय वा गुरुकी परीक्षा नहीं कर सकता. अतः जिज्ञासा और परीक्षा पदका निषेध हैं. (उ.) दर्शन वा श्रवणसे जिज्ञासा होती है. सफल निष्फल प्रवृत्तिका विवेक पीछे होता है. परमार्थके जिज्ञासुमें विवेकादि हैं, उससे जिज्ञासाका रूप स्पष्ट हो जाता है. लोकमें जिसकी प्रतिष्ठा हो और जिसके विशेष प्रयोग सच्चे अच्छे माने गये हों, उससे इलाज

कराते हैं, फेर अन्यथा परिणाम निकले यह दूसरी वात है. ऐसेही तत्त्व जिज्ञासुको चाहिये कि अनेक विद्वान बुद्धिमान प्रतिष्ठित जिस व्यक्तिको विद्वान, बुद्धिमान, आत्मानुभवी, स्वतंत्र, दयालु, रागद्वेष रहित पवित्र सदाचारी मानते हों, उस पास जाना. उसका संग करना. वोह ब्राह्मण वर्णका है वा अन्य, गृहस्थ है वा संन्यासी, इसपर विशेष ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है. किंतु गुण कर्म पर ध्यान देनेका है. जैसे रोगीको वैद्यकी दवाइ सेवनपर सामान्यसे लाभ हानी, जान पडती है, ऐसे यहांभी सामान्य ज्ञान हो जाता है. क्योंकि जिज्ञासु विवेकादि संपन्न है, सृष्टि नियमकी कसोटी उस पास होती है. निदान यही सामान्य परीक्षा है फेरभी अन्यथा परिणाम आवे वहां कोई दूसरा कारण होना चाहिये. पूर्ण परीक्षा तो उस जेसे बनें तब होगी. सारांश केवल अंधभावना, अंधश्रद्धा वा अंध विश्वासका निषेध है. नहीं के सच्चे अच्छेमें सच्ची अच्छी भावना श्रद्धा वा विश्वासका. (त. २ सूचना प्रकरण देखो).

जो उपदेश, विश्वास मात्रसे ग्रहण कर लेते हैं उनको उससे विवेकख्याति प्राप्त होना कठिन है ॥ इस प्रकार सत्संग, सत्ग्रंथ और सद्‌गुरुसे जो श्रवण (उपदेश) हुवा उसीकाही **मनन** करना चाहिये. अर्थात् प्रथम उसके विरुद्धमें उचित शंका युक्ति उठाना, फेर उसका आप वा शिक्षकसे पूछके समाधान करना. उस पीछे उपदेशके अनुकूल उचित तर्क युक्ति उठाना फेर निश्चय कर लेना. जो शंका न उठें तो विकल्प वा शुष्क तर्क युक्ति उठाना अनिष्ट है. ॥२४८॥ मननके पीछे जो निश्चय हुवा उसकी परीक्षा अर्थ निर्जनस्थानमें **निदिध्यास** करना चाहिये. यहां आत्म अनुभवका प्रसंग है इसलिये निदिध्यासका यह अर्थ है:—पूर्वमें उपासना सिद्ध होनेसे चित्तमें एकाग्रता वा इष्टाकारता होनेकी योग्यता है इसलिये निश्चित अर्थके आकार वृत्तिको वारंवार करना. जैसे तेलकी धारा अखूट पडती हो एसे वृत्तिका इष्टाकार प्रवाह होना चाहिये ॥२४९॥ एसा करनेसे इष्ट—जीव, आत्मानुभवकी परीक्षा हो जायगी. अर्थात् मनोवृत्ति सचेत स्थिर होनेपर कोइ अकथ्य प्रकारसे कुटस्थ समचेतनात्माका साक्षात्कार हो जाता है, उससे जीव क्या, और उसकी मोक्ष क्या, मोक्षका स्वरुप क्या, बंध क्या और बंध किसको, इन वातोंका अपरोक्षरूपमें समाधान हो जायगा. और अंतःकरण, प्रकृति (माया) के सामान्य स्वरुपकाभी कारण कार्यभाववश भान होगा. इस प्रकार, श्रवण मननके अनुसार और सृष्टि नियमके अनुकूल है वा नहीं एसे स्वयं अनुभव होके परीक्षा हो जायगी ॥२५०॥ जो तुर्या प्राप्त हुये मत्स्वरुपका अनुभव अनुभवरूप हुवा है तो तुरतही जीवादि

(जीव, परमात्मा, प्रकृति, बंध, संबंध मोक्ष, असंबंध मोक्षके साधन) के संबंधवाली तमाम शंका समाप्त हो जायगी. और समाधानपूर्वक शांति प्राप्त होगी. आत्माका अनुभव (विवेकख्याति) होनेसे चिदग्रंथी भिदा जाती है, सर्व संशय छिन्नभिन्न हो जाते हैं. और अनुभवी के कर्मका नाश हो जाता है, ऐसा होना उसका स्ववैद्य-लिंग है. (शं.) यहः-स्थिति (ब्रह्मज्ञान प्राप्ति) भूमंडलके मानवकोही संपादन हो सकती है वा क्या? (उ) जिस जीवको जबतब (स्त्री, पुरुष, युवा वृद्ध, देव,* मनुष्य हरकोई वर्णाश्रम कालमें) जहां तहां (चंद्र, सूर्य, विद्युत, स्वर्गादिलोक ब्रह्मलोक वा हरकोई योग्य लोक) अधिकार और बोध सामग्री प्राप्त हो वोह तबही तहांही यह कल्याणकारी अपूर्व विद्या अपूर्व प्रकारसे संपादन करके मोक्ष हो सकता है, + ऐसाही माना जा सकता है * भूलोकके मनुष्यकोही इसका पट्टा नहीं मिला है.* और न द्विजातीय या चतुर्थाश्रमीकोही किंतु यह विद्या अधिकारीकोही मिलती है.

आश्चर्य यह है कि जैसा है वैसा देवोंकीभी मन बुद्धि नहीं जान सकती, नही विषय कर सकती जो वे कुछ वर्ल करते हैं तो उनको पीछे हटना पडता है, ऐसा है तो वाणी (शब्द) बेचारीका तो पता ही क्या ? अर्थात् प्राप्त अनुभवभी कहनेमें नहीं आ सकता. मानो अनुभवीके मन बुद्धिकी जिव्हा काट ली जाती है. और अकथ्य प्रकारसे उस स्वयं प्रकाशका साक्षात्कार होता है, इसलिये नही है, वा अज्ञात है, ऐसाभी नही कहा जाता. गूंगेको स्वप्न जैसी बात है, ज्ञात अज्ञात और मत अमतसे अन्यथाही है, इसी वास्ते ऐसे लक्ष्य अलक्ष्य सिद्धांतको आजतक अनुभवी ऋषि मुनि, योगी, यति लक्षणावृत्ति (भाव वृत्ति-अनुभव भाषा भावार्थ प्रकार) से बोध करते आये हैं, इदंकी शक्ति वृत्तिसे नही कर सके. यथा जो चक्षु और मनका विषय नहीं. चक्षु मन जिसके विषय, संशय अज्ञान और भेद तथा अभाव जिसके विषय, सर्व बोधमें विदित, उसको कोइ नहीं जानता है, वोह सबको जानता है. वोह ऐसा है. इत्यादि +

जिज्ञासु येनकेन प्रकारसे वहां पहोंच जाय ऐसी धारणासे किसीने प्रतिबिंब किसीने आभास, किसीने अपने स्वरूपको भूल गया, किसीने अविवेक, किसीने अविद्यावृत्त,

* इंद्र (देवता) गार्गी, लोपामुद्रा (स्त्री) छापकली (जुलाहा) जाबालि (अज्ञातकुल) निम्न चेता, श्वेतकेतु सनकादि (ब्रह्मचारी) जनक वशिष्ट (गृहस्थ) और शम्स तब्रेज मनसूर-हाफिज (यवन) की एसी कथा सुनतेभी हैं. ऐसे विरल होते हैं, इस लिये इनोकी महिमा विशेष रूपमें मानी जाती है.

+ केन और माडुक्य उपनिषद विचारना चाहिये.

किसीने लीलासे माया मोह, कहके निर्वाह किया, किसीने नाना विभु, किसीने अणु, किसीने एक विभु, किसीने जीव ब्रह्मकी एकता, किसीने द्दष्टा द्दश्य भेद, किसीने उपहित, किसीने विशिष्ट भाव लेके बोध किया. किसीने परतःप्रामाण्य मानके अनुमानका, किसीने उसकी कृपाका आश्रय लिया. और किसीने हम नहीं जानते, हमको यह भेद नहीं बताया गया इत्यादि कहके पीछो छुडाया. परंतु यथा अधिकार जेसी शैली, पद्धति ली गई वेसी वहां नहीं है 'किंतु जेसा है. वेसा है' वहां गये जान सकोगे. भला नित्यप्राप्त और सर्वभोग्य शब्दादि विषयके स्वरूप वर्णन में मनुष्य अशक्त है तो उसकी तो बातही क्या करना ! ॥२५०॥

(शं.) आत्मा किसीका विषय नहीं. और मन (बुद्धि) से मन नहीं जाना जाता. यदि आत्मा स्वयंप्रकाश (अलुप्तचेतन) तो उसके बोधकी अपेक्षा नहीं. जो आत्मा प्रमाणका अविषय तो अप्रमाण. जो मन प्रमाणका अविषय तो अप्रमाण, जो आत्मा, मनका विषय तो प्रमेय ठेरा, और मन उसका विषय न होगा. अन्योऽन्यके विषय तो असंभव दोष. इसलिये अधिकारीको आत्मा मन संबंधी जो बोध कथन वोह कपोलकल्पित ठेरता है. (उ.) जिस करके आपने अपनी शंका जानी, उसके प्रकाशमे उसका कथन है. आत्मा और मनको नहीं जानके जो वेसी शंका करता है वोह वर्णन करता है. अतः कपोलकल्पित नहीं. किंवा शंकाभी कपोलकल्पित अतः उत्तरकी अपेक्षा नहीं. ॥२५०॥

अब आगे उपरोक्त अधिकारी विवेकी अनुभवीकी परीक्षा अनुकूल कथन होगा ॥ यद्यपि वर्णन पद्धतिमें प्रकारांतर है तथापि उसके लक्ष्यमें अंतर नहीं है ऐसा जानना चाहिये ॥२५१॥ वक्ष्यमाण प्रकारकी अवच्छेदवाद, विशिष्टवाद, चिदचिद् विवेक और परिणामवाद संज्ञा है. जो यथाप्रसंग हेत्वांतरमे मानी गई है. तमाम प्रकरण बांचनेसे जान सकोगे.

२५१—वक्ष्यमाण वर्णनमें मन जीव-आत्मा मोक्षका प्रसंग अभ्यासित अनुभवित् परीक्षा है शब्द वा विचार मात्र नहीं है. इसलिये प्रथम युक्ति तर्कको जुदा रखके कहे अनुसार प्रेक्टस करके परीक्षा करना चाहिये. पीछे युक्ति तर्क करना, परंतु मनसत्ता पूर्व उत्तर जो प्रवाह लिखा है सो इस अनुभवित व्याप्तिके आधार पर कहा है तथा ईश्वरीय प्रसंग और सृष्टि उत्पत्यादिका वर्णन वक्त व्याप्ति और स्वप्नकी व्याप्तिमे अनुमानकाही विषय है क्योंकि "पिंडे ब्रह्मांडे" यह कहावत है इसकी सिद्धि स्वप्न विवेक और स्वप्न व्याप्ति कुछ अंशमें अपरोक्षवत दरसाती है वा नहीं इस बातको विचारमें लेनेसे कुछ जान पडता है ॥

अधिकारी वास्ते तटस्थ सूचना

(क) कर्तव्य–(१) जिसद्वारा सृष्टि नियमानुकूल सत्य हित और उपयोगी विषयका बोध मिलता हो उसे सत्संग वा सद्शास्त्र कहते हैं. उसका बोध मानना. परंतु जो वोह परीक्षामें आ सके तो उसकी परीक्षा करना. और जो प्रत्यक्ष परीक्षामें न आ सके तो उसे स्वरूप संभावनामें और सृष्टि नियममें वा मध्यस्थमें तोल लेना जो उसके अनुकूल हो तो मानने योग्य है. अन्यथा नही. (तत्त्व दर्शन अ. २ में इस प्रकारका विस्तार है) (२) राग, द्वेष, इच्छा, संस्कारसे दुःख और जन्म मरण होता है इसका चितवन (३) दुःख सुख कृत कर्मका फल है ऐसा मानना. (४) ब्रह्मांडके मूल तत्त्वोंपर विचार चलाना (५) सत्यबोधकी आज्ञा पालनेमें रुची होना और उस अनुसार वर्तना. (६) ज्ञान विज्ञान पर रुची होना. (७) सत् शास्त्रके पठन पाठनमें अथवा सदाफ़र (सत्संग) में रुची होना. (८) संचित काटनेमें प्रयास और नवीन कर्म बंधनमे अरुची. (९) सद् गुरुसे श्रद्धापूर्वक श्रवण करना. (१०) सकोच रहित होके शंका समाधान करना. (११) पुनरावृत्ति करते रहना (१२) उत्तम पुरुषोंके गुण तथा उनके तत्त्व विवेकको कथा वार्ता करना.

(ख) भावना (१) तन मन धन स्त्री पुत्र बंधु मित्र शत्रु कुटुंब यह किंतु त्रिलोकी क्षणभंगुर हैं अविनाशीको प्राप्त हुं तो यह क्षणभंगुर दुःख प्रद न हों, क्योंकि जिसको स्वरूप ख्याति हो जाती है उसको प्रवृत्ति निवृत्ति उभय समान हो जाती हैं निष्काम हो जाता है. अतः सब संसार सुखमय हो जाता है. दुःख रूप नहीं भासता. (२) मोतसे बचानेवाला कोई नहीं है (३) में अकेला आया अकेला जाउंगा, अपनी करनी पार उतरनी है, तो किसको अपना समझना, किसमें रागद्वेष करना. जो कोई अपना है तो अपना कर्म (धर्म) अथवा अपना जीवनरूप आधारभूत अर्थात् परमात्मा अपना है. इस संसारमें कोई कोईका नहीं है तथापि आत्मा सबका है ओर सब आत्माके हैं इसलिये उसको पा लेना तो सब मेरे औरमें सबका हो जाउंगा. अर्थात् समान दृष्टि हो जानेसे सब सुखमय भासेंगे. (५) यह शरीर अपवित्र है रोगका धाम है बंध रूप है, नाशवान है इस शरीरका में द्रष्टा हुं अर्थात् इससे भिन्न हुं तो फेर ऐसे शरीरमें आसक्ति क्यों करना (६) राग, द्वेष, अज्ञान, संशय, भ्रांति विपरीत भावना और असंभव भावना यह सब बंधनकारक हैं इनकी निवृत्ति हो. (७) नवीन कर्मोंका बंधन न हो ऐसे रहुं (८) जो जो उत्तम ज्ञान सीखा और सीखुं उसका उपयोग लूं अर्थात तदनुसार वर्तुं तथा शिक्षकोंका उपकार मानता रहुं (९) सम्यक् ज्ञान कैसे

और कब प्राप्त करूं. (१०) संसारमें सद्ग्रंथ और सत्संग दुर्लभ है इसलिये उसको खोजके उनका नित्य सेवन करूं.

(ख) मनोनिग्रहके विघ्न (१) प्रमाद (२) मुल्तवी रखना (३) उंघ (४) अत्याहार (५) उन्माद प्रकृति (६) माया प्रपंच (७) अनियमितता (८) अकरणीय विलास (९) मानावलंबन (१०) अमर्यादित काम (११) आत्मश्लाघा (१२) तुच्छ वस्तुमें आनंदित होना (१३) निग्रह समय दूसरेकी छाया पडना (१४) देशकाल स्थितिका विरोध. (१५) व्याधि वगैरे (१६) रसलुब्धता (१७) अतिभोग (१८) पर अनिष्ट विचार. (१९) निष्फल संग्रह. (२०) पर स्नेह. (२१) कुसंग संबंध (२२) अविश्वास (२३) अदृढता. (२४) अधैर्य. (२५) एक उत्तम नियम साध्य न करना. (२६) कुचितवन. (२७) चिंता विशेष. (२८) मन निग्रहसे लाभ क्या ऐसी शंका. (२९) असंभव मान्यता. (३०) पंच यम पंच नियमका अनभ्यास (विशेष पतंजलिकृत योग दर्शनमें देखो).

(ग) श्रवण प्रसंगमें तन मन और वाणीके दोप—(इनको त्यागके श्रवण–सत्संग कर्तव्य होता है) (१) असभ्य रूपसे बेठना (२) चलासन याने अवयव हलते रहें. (३) चक्षुकी चपलता (४) पाप क्रिया वा उसकी कुछ संज्ञा करना (५) आसरा लेके बेठना. (६) कंठ नासिकादिके मलको हलाना (७) उंघ आना (८) संकुचित बेठना. इन ८ कायिक दोष रहित होके श्रवण करना (१) शंका याने श्रवणमें लाभ क्या? इससे कोईकी मोक्ष हुई उसका प्रमाण नहीं मिलता इत्यादि (२) मुझको अन्य धर्मात्मा मानें इस भावसे जानां (३) धनकी इच्छासे श्रवण करना (४) कीर्ति वास्ते सुन्ना (५) लोक निंदाके भयसे सुन्ना (६) संसारी धनादिकी कामनासे सुन्ना (७) श्रवण फल देगा वा नहीं ऐसी शंका रहना (८) क्रोधका आवेश हुये सुने (९) श्रवण कालमें क्रोध, मान, माया और लोभमें वृत्ति रखे (१०) सत्संग कल्पतरु कहाता है उससे मनोवांछित संसारी पदार्थ मिल सकेंगे इसलिये श्रवण करना. (११) विनय रहित सुने सुनावे (१२) भगति भाव और विश्वास रहित सुन्ना. इन १२ मानसिक दोषको त्यागके एकाग्र चित्त होके श्रवण कर्तव्य है (१) श्रवणमें बिभत्स वा असभ्य शब्द बोलना (२) प्रसंग विनाकी बात करना (३) साहसिक और विना विचारे शब्द बोलना (४) असत् बोध करना (५) शास्त्रकी दरकार किये विना अन्यथा बोलना (६) अन्य न समझ सके ऐसा व्याख्यान करना (७) कोईके साथ विवाद करना (८) स्त्रीआदि का निंदा स्तुति रूपमें विवेचन करना (९) कोईकी हांसी मस्करी हो ऐसे वाक्य

बोलना (१०)शास्त्रके वाक्य न्यूनाधिक या अशुद्ध बोलना (११)स्पष्ट शब्द न बोलना, गडबडीया बोलना (१२) इष्ट विषयको छोडके अन्य बातोंपर उतर जाना. वाणीके इन १२ दोषोंको छोडके सत्संग करे, करावे.

(घ) मनन दोष- (१) मै एकवार समझ चुका हूं. पुनः पिष्टपेशन क्या करना (इस अभिमानका फल अनिष्ट होता है) (२) चंचलता (३) विस्मरण (४) उतावल (५) कथन या श्रवण मात्रसे विश्वास होके मान लेना (६) (७) शंकाका अस्फुर्ण (८) अपुनरावृत्ति (९) धारणा शक्तिका अभाव (१०) कथनानुसार युक्ति न शोधना (११) विरुद्धताका अनादर (१२) जगें जंगे बेठना याने अनेकांत सेवन (१३) उपदेश वास्तेही मनन करना [१४] शरम याने अपनी हीनता जानके गुरुसे पुनः न पूछना [१५] कुतर्क [१६] मंदता [१७] बुद्धिमताका घमंड

[ङ] बंध निवृत्तिमें सहकारी—कनक, कांता और लोक इन तीनकी इच्छाका त्याग.

[च] श्रेयके सहकारी—श्रवणादि परिपक्व हुये पीछे शरीर, शास्त्र और लोक वासनाका त्याग. [अनासक्ति]

[छ] इष्ट प्राप्तिका आद्य साधन तन, मन [बुद्धि] है उसकी आसक्ति विना रक्षा करना. वीर्यवृद्धि करना, आलसी न होके कुछ योग्य कार्य करते रहना. ब्रह्मचर्य पालना. अति वा कुरसवर्जित सरल लघु भोजन करना, योग्य तितिक्षाका अभ्यास रखना, सदाचरणी रहेना, किसीके तन मनको न दुःखाना, किसीको तिरस्कार दृष्टिमे न देखना, मेत्रि, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इन चारोंका सेवन करना.

[ज] आत्म ज्ञान पानेकी चार और पीछे अभ्यासकी तीन ऐसे ७ भूमिका अनुभवी महात्मा मानते आये हैं. [१] शुभेच्छा अर्थात् मलीन वासना रहित वैराग्य और सद्गुरु सदशास्त्रमें प्रवृत्ति और ईश्वर भगति होना [२] सुविचारना, अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारण देहका विवेक याने इनके विभाग करके यह जान लेना के आत्मा उनसे भिन्न है, जेसाके पूर्वमें कहा है. और आगे कहेंगे [३] तनुमानसा अर्थात् अभ्याससे मनको तीक्ष्ण और सूक्ष्म बना लेना, धेयकी वारंवार स्मृति होना और मनन का अभ्यास रहना [४] सत्वापत्ति-अर्थात् निदिध्यास हुये सत्व [ब्रह्मात्मा] का साक्षात्कार हो जाना और जगत उसमे विलक्षण स्वप्नवत् जान पडना. अवच्छेदवादमें इस अवस्थाकी प्राप्ति हो ऐसा प्रयत्न किया जायगा. और उत्तर फिलोसोफीमें जगतका ऐसा स्वरूप जान लिया जाय ऐसा प्रकार कहा जायगा इस अवस्था प्राप्तको ब्रह्मवित्

कहेते हैं इसकी दशा ऐसे होती है कि जैसी समुद्रके किनारेपर कोइ खडा हो.इधर देखे तो जलही जल, पींठ मोडके देखे तो वस्ती नगर जान पडता है. तद्वत् यह ब्रह्मवित् जब मनकी वृत्ति ब्रह्माकार करे तब ब्रह्म इतर नही भासता. जब वृत्ति शरीर यात्रादिके व्यवहारमें हो तो जगताकार भासता है. इस आगे तीन अवस्थामें सिद्धांत समान है. परंतु सुखाकारीमें अंतर है [५] असंसक्ति-याने शरीरके अभिमान रहित. पर शरीर वत शरीरका प्रयत्न होना. जगत् सूक्ष्म तुच्छ भासना, समुद्रमें नाक जितने जलमें खडे हों तब जल और नगर जेसे भासते हैं वेसे आत्माकार होना. स्वप्न जेसा जगत् भासना. यहां मनोराज्य और वासना मूल रहित नाम मात्र जनाते हैं [६] पदार्था भावनी. कुंडल कनकवत् तमाम ब्रह्ममय दीखना. अंधेरेमें जाते हुये मनुष्य समान जगत मालूम होना. खुली आंखे समुद्रमें हो जाने समान स्थिति हो जाती है. याने ब्रह्माकारही वृत्ति होती है. कोई खिलावे तो खाता है इसके व्यवहार कम और परेच्छित होते हैं. [७] तुर्या-भावाभाव, में, तु, यह, वोह रहित स्थिति. संस्कार निरुद्ध. सुषुप्तिवत्. याने वृत्ति ब्रह्ममें लय हो जाती है. केवल स्वप्रकाश आत्मस्वरूप होता है. इस स्थितिके लक्षण अवाच्य हैं. स्ववेद्य कहनामी मुशकिल होता है. अभ्यासीको जब यह होती है तब चिद् ग्रंथीका भंग हो जाता है याने जड [अंतःकरण] और चेतन [आत्मा] जुदा जुदा अनुभवमें आ जाते हैं. पुनः जिसके अदृष्ट निवृत्तिके हों वोह अधिकारी चिद्ग्रंथी भंग हुये पीछे अर्थात् आत्मवित होने पीछे [चोथी अवस्था होने पश्चात्] मनोराज वासना क्षय करता हुवा पांचमी छटीको पहोंचके सातमीमे आता है अर्थात् निरवछिन्न तुर्या अवस्थामें रहता है तब उसके शरीरका व्यवहार आपसे नही होता. सुषुप्तिवत् पडा हुवा होता है. प्रवाही पदार्थ कोई मुखमे डाल दे तो कोई दिन शरीर टिकता है. कहेते हैं कि ऐसेका शरीर ४१ दिनसे ज्यादे नही जीता. यह तो समुद्रमे डुबा हुवा होता है. चोथेका ब्रह्मवित्, पांचमेको ब्रह्मवित् वर्यान, छटेको ब्रह्मवत् वरिष्ट, सातवेको ब्रह्मवित् वर्यान वरिष्ट कहते हैं.

ब्रह्म सिद्धांतके उत्तरार्द्धका रहस्य अनुभव हुये पीछे शेष ३ का उपयोग यथा अदृष्ट होता है. अधिकारीको ध्यानमें रहने वास्ते यहां वर्णन किया है.* ॥२९१॥

---

*एक विद्वान ब्रह्मवित् सन्यासीको पांचवी अवस्थामें देखा गया बाकी वास्ते सुनते है. देखनेमें नही आये. एक निरक्षरकोभी एसा देखा है.

डाक्टर कहता है कि अभ्याससे मगज खुश्क हो जानेसे एसी अवस्था हो जाती है अन्य कुछ नही है।

ज्ञानयोग.

अपर पूर्ण समचेतन प्रकाशमें अध्यस्त प्रकाश्य ॥२५२॥ यथा नभनीलता और स्वप्न ॥२५३॥ चित्तादिमें प्रकाश्यत्व होनेसे स्वप्रकाश ॥२५४॥ अन्वयी होनेसे अधिष्ठानभी ॥२५५॥

जिसके परे कुछभी नहीं, पूर्ण अर्थात् जिसका केंद्र नहीं किंवा सर्वत्र जिसका केंद्र है और अपेक्षा रहित सर्वत्र है. सम अर्थात् एक समान-एकरस घन स्वरूप, स्वगतभेद रहित, निष्कंप, अपरिणामी, निरवयव, अचल, है. ज्ञान दर्शन लक्षण अर्थात् चेतन प्रकाश स्वरूप है उस प्रकाशमें अध्यस्त [व्याप्य] उससे प्रकाशित होते हैं ऐसे प्रकाश्य हैं ॥ दृश्य निर्धूम जड प्रकाश रंग रूपवाला इंद्रियोंका विषय है, मध्यम है, असम है. सपर है. वोह ज्ञान प्रकाश रंग रूप रहित, मनेंद्रियका अविषय, असीम, अपर है और सम है ॥२५२॥ जेसे नीलता आकाशमें अध्यस्त हैं, जेसे स्वप्नसृष्टि दृष्टा चेतनमें अध्यस्त है वेसे उसमें प्रकाश्य अध्यस्त हैं ॥२५३॥ आकाश नील नहीं, उसमें नीलता नहीं किंतु दूरमें ऐसा मालूम होना स्वभाविक है. ऐसा मानें तोभी प्रकाश्य स्वाभाविक मालूम होते हैं, यूं कहना पडेगा. जो वर्तमानकी सायंस समान रंग स्वरूपतः वस्तु नहीं; ईथरकी अमुक पतली लहरें आस्मानी फॉरममे विषय होती हैं ऐसा मानें तो प्रकाश्यका जो स्वाभाविक उपादान उसकी लहरें नाना प्रकारके प्रकाश्य रूपमें मालूम होती हैं, ऐसा स्वभाव है, वस्तुतः स्वरूपसे वेसे प्रकाश्य नहीं हैं, ऐसा मानना पडेगा और जो स्वरूपतः हैं तोभी आशय सिद्ध होता है. इसी प्रकार स्वप्न वास्ते योज लेना. चेतन सम है इसलिये उसकी लहरें नही होती ॥२५३॥ समचेतन स्वप्रकाश है, क्योंकि चित्त, बुद्धि, अहंकार, मन और विषय यह अन्यकी अपेक्षा विना उसमें प्रकाशित होते हैं, चित्तादिका प्रकाश करता हुवा प्रतिबोध विदित है. अर्थात् प्रत्येक बोधमें स्वप्रकाश है. ॥२५४॥ तथाहि किसी दूसरेसे प्रकाशित न होके स्वयंप्रकाशमान है, इसलिये स्वप्रकाश है. और जो प्रकाश स्वरूप न होता तो दूसरे उससे प्रकाशित न होते. ॥२५४॥ सब परिणामरूप प्रकाश्योंमें वोह अन्वयी है उसके विना कोई प्रकाश्य नहीं होता. इसलिये उनका अधिष्ठानभी है ॥२५५॥ जेसे नीलताका आकाश, स्वप्नसृष्टिमें व्यापक दृष्टाचेतन स्वप्नसृष्टिका अधिष्ठान है वेसे वोह है. जिसके विना जिसका अस्तित्व ज्ञात न हो वोह उसका और जिसमें जो अध्यस्त हो वोह उसका अधिष्ठान कहाता है. (ऐसे समचेतन और प्रकाश्यका अनुभव तुर्या और स्वप्न विवेकद्वारा होता है.) ॥२५५॥

प्रकाश्य विषय और करण ॥२५६॥ विषय स्थूल और सूक्ष्म ॥२५७॥ करण मनस और प्रधान॥२५८॥ अर्थ क्रिया और ज्ञानकी व्याप्तिसे ॥२५९॥ प्रकाश्य मूल और अव्यक्त ॥२६०॥ तीनों गुण अविभक्त होनेसे ॥२६१॥ उसके रूप कल्पनेमें बुद्धि अशक्त, तिसका कार्य होनेसे ॥२६२॥ और कल्पनामें निर्दोषत्व न होनेसे ॥२६३॥ जैसे शब्दादिमें अनेक पक्ष॥२६४॥ अतः प्रकृतिके कार्य और परिणाम पर्याय ॥२६५॥ इन (परिणाम कार्य) का संयोग वियोग और उसका प्रवाह ॥२६६॥

उक्त प्रकाश्य दो प्रकारके जान पडते हैं. एक विषय होने योग्य और दूसरा विषय होनेका साधन (असाधारण कारण) ॥२५६॥ विषयभी दो प्रकारके जान पडते हैं १ सूक्ष्म (इंद्रियोंसे अगोचर) २ स्थूल (गोचर) ॥२५७॥ और करणभी दो प्रकारके हैं ऐसे कह सकते हैं १ मनस् (अंतःकरण) व्यष्टिकरण, २ प्रधान (महत्) समष्टिकरण ॥२५८॥ (करण और विषय माननेमें हेतु कहते हैं) क्योंकि वस्तु (पदार्थ) उसकी क्रिया और इन दोनोंका ज्ञान इन तीनोंकी व्याप्ति है॥ इन तीनोंमें ज्ञात अज्ञात सब अव्यक्त-प्रकृतिका समावेश हो जाता है. जैसेके ज्ञानसे जो बाहिर वोहभी ज्ञेय होनेके योग्य हैं, इसलिये समष्टिकरण (प्रधान) मानना पडता है ॥२५९॥ जो प्रकाश्य है वोह जगत्का मूल उपादान है और अव्यक्त है. याने प्रकाश्य अव्यक्त (माया—प्रकृति) का मूल स्वरूप बुद्धिका विषय नहीं होता इसलिये व्याप्तिद्वारा उक्त विभाग वा संज्ञा कल्पनेमे आई हैं. ॥ (इनका विस्तार आगे होगा) ॥२६०॥ माया प्रकृतिके सत्व, रज और तम यह तीनों गुण साथ रहते हैं. जुदा नहीं रहते इसलिये उक्त प्रकार कल्पा गया है. ॥२६१॥ सत्व, रज और तम इन तीनों द्रव्यके मिश्रणका नाम प्रकृति है (भोग्य होनेसे वा रस्सीसमान सकल रूप रहनेसे इनकी गुण संज्ञा है) शब्द रूपादि यह सब उसके परिणाम हैं.

सत्व=सुख	ज्ञान	उत्तम	श्वेत	प्रकाश	प्रधान	इत्यादि.
रज=दुःख	क्रिया	मध्यम	लाल	रूप	साधन	इत्यादि.
तम=स्तब्ध(मूढ)	अर्थ	कनिष्ट	तम	तम	ज्ञेय	इत्यादि.

(१) यह तीनों चलस्वभाव होते हैं. स्थिर नहीं रहते. (२) एक दूसरेके विना नहीं होने-तीनों सहचारी होते हैं. न इनका आदि संयोग है और न वियोग हैं. सब जगे तीनों विद्यमान हैं (३) कभी सत्व प्रधान और दोनों गौण कभी रज प्रधान

और दोनों गौण. कभी तम प्रधान शेप दोनो गौण, ऐसे विषय भावमें रहते हैं. तीनों समान अवस्थामें नहीं होते. और जब साम्यवस्थामें हो जाय तो शिथिल स्तब्ध हो जाते हैं, यह प्रसंग क्वचित् होता है. नहीं तो एक दूसरे दबके एक प्रधान रहता है. ऐसा हरेकमें (परमाणु तकमेंभी) जान लेना.

पहिछान—अंतःकरण तीनोंका समूह है. जब उसमें सत्वका उदय (प्रधान) होता है तब उसका सुखात्मक परिणाम होता है. ऐसेही रजसे दुःखात्मक और तमससे मोहात्मक परिणाम होता है ॥ पुनः तारतम्यताके भेदसे शुद्धसत्व, शुद्धरज, शुद्धतम, एवंमलीन, एवंअमिश्रित, एवंमिश्रित ऐसे भाव वाले होते हैं. उनकी पहिछान और विवेचन प्रकृति विवरणमें किया गया है॥ प्रकाशक वस्तुओंमें सत्व प्रधान, चलनात्मक में रज ओर टोसमें तम प्रधान है ज्ञान प्रसंगमें सत्व, हंसी खेल भोग्यमें रज और प्रमाद आलस्यमें तम प्रधान है॥ द्रष्टा वगेरेकी रुची और पदार्थोंके संबंधसेभी गुणोकी अभिव्यक्ति होती हैं. जेसे एक सत्पुत्रको देखके सुख होता है क्योंकि उसके प्रति उसके सत्वगुणकी अभिव्यक्ति होती है परंतु उसके शत्रुओंको दुःख होता है क्योंकि उसके प्रति रजो गुणकी अभिव्यक्ति होती हैं. और दुसरोंको मोह होता हैं क्योंकि उनके प्रति तमो गुणकी अभिव्यक्ति होती है. सूर्यकी प्रभाके संबंधसे कमलमें सत्वकी और कुमुदनीमें तमकी अभिव्यक्ति (उदय) होती है ॥ इस प्रकार ब्रह्मांडके तमाम पदार्थमें यथायोग्य जान लेना चाहिये. तीनों गुण सदृश और विसदृश रूपमें परिणाम पाते रहते हैं यथा दृश्य दूध और पानीमें सदृश परिणाम होही रहा है. और संबंधसे दही विसदृश परिणाम होता है. सुषुप्ति (प्रलय) मेंभी कुछ न कुछ हलतेही रहते है. समानताका विरोधी भाव (असूनेह) और सहचारीत्वभाव (स्नेहाकर्षण) इनमें हैं.

परंतु मिश्रणरूप रहनेसे इनका खास स्वरूप विषय नहीं होता. इसलिये उसके कार्यके विभाग कल्पे जाते हैं. ॥२६१॥ अव्यक्त (मेटर माया) के रूप कल्पनेमें मनुष्यकी बुद्धि अशक्त है क्योकि उसका कार्य है. कार्य अपने कारणको विषय नहीं कर सकता यह स्पष्ट नियम है. ॥२६२॥ जो उसके स्वरूप संबंधमें कल्पना की जाती है (पहेलेंने की और कर रहे हैं सो) निर्दोष नहीं होती॥ कुछ न कुछ अपवाद वा अपूर्णता आही जाती है ॥२६३॥ जेसेके शब्दादि (गंधादि ५ तम, देश, काल, इंद्रिय, मन, गुरुत्व, आकर्षण, गरमी, प्रकाश, विजली, किरण, सामान्य, विशेष, अभाव=१९ विषय) प्रसंगमें पूर्व मतभेद कह आये हैं और उनमें दोप रहता है ॥२६४॥

द्रव्य, परमाणु, शक्ति, वा गुणरूप माननेमें भी दोष रहता है जैसा के २२७ से २३३ तकमें उपर कहा है. इसलिये अव्यक्तका मूल स्वरूप क्या (अणु मध्यम वा विभु, शक्ति गुण वा योग्यता वा क्या? उसकी संज्ञा क्या? इसका उत्तर शब्दमें नहीं मिलता. ॥२६४॥ इसलिये मूलकी व्याख्यासे उपेक्षा करके प्रसंग पर उसके मिश्रणका (जैसाके उपर सू. २६१ में कहा है वैसे) अर्थात परिणाम पदका प्रयोग किया जायगा क्योंकि प्रकृतिके कार्य और परिणाम पर्याय है साराश अनिर्वचनीय अव्यक्त के कार्य प्रसंगमें मिश्रण लक्ष्य है * ॥२६५॥ अव्यक्तके इस प्रकारके परिणाम वा कार्योका संयोग वा विभाग होता है ऐसा जानना चाहिये और ऐसे संयोग वियोगोंका अनादिसे प्रवाह है ॥२६६॥ यथा ओक्षजन समूह सहचारी परिणाम हाइड्रोजन समूह सहचारी परिणाम इन उभय परिणामोके संयोग समूहका जल परिणाम है. उसका बरफ परिणाम है ऐसेही सर्वत्र जान लेना चाहिये. ॥२६६॥ अब आगे अव्यक्तके अंश विषय (सूक्ष्मा पंचभूत) और करण मनस् प्रधान) तथा मर्यादिका बयान करेंगे.

माया शक्तिवाले महेश्वरद्वारा यथापूर्व उत्पत्यादि.

अर्थ—परमात्मा देवकी शक्ति अचिंत्य है. उस शक्तिमानद्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लय होता है, यथा पूर्व उत्तर उत्तरम उत्पत्यादि होते रहते है.

उसका संक्षेपमें प्रकार :—

प्रभुकी इच्छासे नाना जीव और प्रकृति (जगतकी सामग्री आकाशादि) उत्पन्न होते हैं उस माया के अंशही मनस् और आकाशादि होते है चेतन व्याप्त होनेसे उनमें होता है. और मनसमें प्रवेश होनेसे उसका विशेष उपयोग होता है, विस्तार आगे होगा.

एक पक्ष—जितने मनस् होते हैं, वे सब जीवकी उपाधि हैं इन मनसोका प्रकृति के परमाणुओका संबंध होनेसे उनकी योग्यता अनुसार चेष्टा होती है, उनमे योग्यता माया अंशवत् होती है, यह विशिष्ट मनस् यथा कर्म जन्म मरण स्वर्गादिको पाता

* उदस उसके मूल स्वरूपका बुद्धिमें कुछ आभास हो जाता है (परोक्ष अग्निके प्रात विश्वत्) यदि मनस उसका कार्य न होता वा उसका आकार भाने योग्य होता, अथवा अव्यक्तमा चेतन समान स्वप्रकाश होती तो अवश्य उसका मूल स्वरूप ज्ञात हो जाता अब उसका परिणाम अन्तःकरण अपने मूल (प्रकृति माया) का समावृत बोध करा देता है अर्थात् निर्मच चेतन साक्षी मानमें प्रकाशित और स्वतोग्रह होता है, मन वाणिका विषय नहीं होता

हैं. फेर जन्म अधिकारी हुवा ज्ञानवान होता है अर्थात् चेतन और मनस्रूपी ग्रंथी का भंग होता है तब वासनाका अभावसे आगे नहीं चलता. (विशेष आगे), इस प्रकार जब सब जीव मोक्ष हो जायंगे तब महा प्रलय होगा. सब मायारूप हो जायंगे. पुनः जब इच्छा होगी तब वोह प्रभु अपनी रमत आरंभ करेगा.*

सूक्ष्माका वर्णन.

पक्षे तदंश सूक्ष्मा विस्तृत अवधिवत् ॥२६८॥ चेतनाकर्षित मर्यादामें अनादिसे स्थित ॥२६९॥ तिसमें लोक लोह काष्ठके गोले समान ॥२७०॥ उनमें बीज और मनस् ॥ ७१॥ नियमसे उनकी गति उनमें गुरुत्व होनेसे ॥२७२॥ और सूक्ष्मामें स्थितिस्थापकत्व होनेसे ॥२७३॥ तद्वत् उपचयापचयका प्रवाहभी ॥२७४॥ मध्यम परिमाण होनेसे ॥२७५॥ एवं उत्पत्ति लयका प्रवाह ॥२७६॥ प्रकृति और वासनासे मनस्का उपयोग ॥२७७॥ उससे पृथक्, स्थूल और सूक्ष्मभूत ॥२७८॥ उनका सूक्ष्माद्वारा उपयोग ॥२७९॥ बीजोंकाभी ॥२८०॥

एक पक्ष.

एक पक्षमें उस अव्यक्तका एक भाग सूक्ष्मा (शेषा, हिरण्यगर्भ ईथर) जेसे समुद्र विस्तृत है वेसे ब्रह्मांडमें अनादिसे पसरा हुवा (चादर समान) है-॥२६८॥ सो विस्तृत चादर समचेतनकी आकर्षण शक्तिसे आकर्षित है, अर्थात् समचेतनके अंतरगत (अवर) अमुक सीमामें अनादिसे पसरी हुइ रहती है ॥२६९॥ जेसे समुद्रमें काष्ट लोष्ट मिश्रित गोले डाल दें वेसे ग्रह उपग्रह उस शेषामें पडे फिरते हैं ॥२७०॥ उन ग्रह उपग्रहोंमें बीज और मनस् तथा भूत परमाणु रहे हुये होते हैं ॥२७१॥ उन ग्रह उपग्रहोंकी गति नियमसे होती रहती है क्योंकि ग्रहोमें गुरुत्व है ॥२७२॥ और शेषामें लचक है तथा उपर कहे अनुसार शेषाके गुणोंका चर स्वभाव है और प्रवाही गेससेभी सूक्ष्मरूपा है ॥२७३॥ उपरोक्त गुरुत्वादि कारणसे और अन्य निमित्तोसे ग्रहोंका उपचयापचयरूप प्रवाह (बनना बिगडना कम ज्यादे होना) भी अनादिसे होता रहता है. ॥२७४॥ क्योंकि वे मध्यम पुंज हैं ॥२७५॥ इस प्रकार ग्रह उपग्रहोंकी उत्पत्ति लयका (नाशका) अनादिसे प्रवाह है. ॥२७६॥ वक्ष्यमाण

---

* बात यह है के वोह प्रभु अपनी अचित्य शक्तिके योगसे अपनेको रज्जु सर्पवत् नाना रूपमें देखता है और बंध मोक्ष सृष्टि उत्पत्यादि रूपमें देखाता है. जेसेके स्वप्नमें मन शक्ति द्वारा चेतनही नानारूपवाला मालुम होता है वेसे (विस्तार आगे)

मनस् नामा अंशका अव्यक्तकी प्रकृति (स्वभाव) और मनस्‌की वासना करके उपयोग होता है ॥२७७॥ सूक्ष्मा और मनससे इतर स्थूल सूक्ष्मभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायुके परमाणु वा पूर्वोक्त गंधादि पदार्थ) पृथक् हैं अर्थात् ग्रह उपग्रहोंमें सूक्ष्मामें रहे हुये चलायमान हैं. यहभी अव्यक्तकेही त्रिगुणात्मक रूप हैं. ॥२७८॥ इनका सूक्ष्मा (और महोपग्रह) द्वारा उपयोग होता है (जेसे कवर्पादि, भूकंपादि होते हैं) ॥२७९॥ और ग्रह उपग्रहगत जो बीज हैं उनकाभी उपयोग (सूक्ष्माद्वारा) होता है सो उपयोगभी प्रवाहसे अनादि है. ॥२८०॥ विवेचन—

सूक्ष्मा (शेषा) का संक्षेपमें वर्णन.

अधिष्ठान चेतनाश्रित समुद्र समान प्रकृतिका सूक्ष्मांश हमेशे पसरा हुवा रहता है. वोह चेतनमें आकर्षित रहनेसे अमुक मर्यादामें रहा हुवा है, इधर उधर नहीं जा सकता. अपनी मर्यादामें स्थितिस्थापक रूपसे वा समुद्रके जल समान लहरों द्वारा गतिमें रहता है. उसके सत्व, रज, तममें स्नेहाकर्षण है. मुख्य और गौण भेदसे अस्नेह भावभी होता है जेसेके बिजलीमें उभय भाव देखते हैं. सू. २६१ की टीकामें गुणका वर्णन है सो ध्यानमें लीजीये.

जितने ग्रह उपग्रह हैं और उनमें गतिमान जितने परमाणु है उनसे इतर तथा वक्ष्यमाण मनस् भागसे इतर याने इनसे इतर अव्यक्तका शेष भाग होनेसे इसको शेषा भी कहते हैं.॥ यह समुद्र सूक्ष्म होनेसे इंद्रियोंका अविषय है. कार्यसे उसका अनुमान किया जाता है. ग्रह उपग्रह उसमें काष्ट लोष्टकी स्टीमर वा गोले हैं. उन स्टीमरोंमें मनस् बीज वगेरे मुसाफर और सामान हैं. पृथ्वी आदि परमाणु वा उनके पुंज तालाबके तृण समान हैं. यह सब उसके गर्भमें पडे फिरते है और उससे उनका उपयोग होता है इसलिये उसे हिरण्यगर्भ भी कहते हैं. नेतिका विषय होनेसे ब्रह्मकी शेष संज्ञा है इसी प्रकार अन्यथा होनेसे अव्यक्तकी वा इसके इस सूक्ष्मांशकी शेषा संज्ञा है.

जेसे मछली या आदमी पानीके आसरे पानीके अंदर रहके गति करते है. लचकदार होनेसे पानी उनका प्रतिबंधक नही होता, बल्के सहायक होता है. वायु आसरे वायुमें उडते हुये पक्षीका वायु प्रतिबंधक नहीं होता किंतु सहायक होता है, एसेही उसके अंदर जो गोले परमाणु, बिजली, प्रकाशादि फिरते है उनकी प्रतिबंधक नहीं होती किंतु सहायक है. जेसे पानी–हवा अपना भार अपने आप सहारे रहता है.

वीचोंवीच रहे हुये पार नहीं पडने देता. ऐसेही इसका भार किसी पर नहीं होता. समचेतनाधिष्ठान, अव्यक्तका चलन स्वभाव, लचक, ग्रहोंका गुरुत्व यह ३ इसकी नाना प्रकारकी गति होनेमें निमित्त हैं.

इच्छाके विना शरीरके अंदर जो देश सहित मकानका नकशा वा नाना प्रकारकी छबी वा रंग वा चक्रोंमें प्रकाश जान पडता हैं उनका मुख्य उपादान यही है. दृश्य नीलता इसीकी लहरोंका परिणाम है. याने लहरोंसे अवभास है. स्वप्नसृष्टिमें जो जाग्रत समान देशकालादि सहित विषय और सृष्टि जान पडती है उसका उपादान यही है. अनहदवाले शब्द इसकी सूक्ष्मगतिका प्रभाव है. एकाग्रताकालमें जो नाना प्रकारके रंग रूप जान पडते हैं वे इसीके रूपांतर है. प्रतिबिंबकी उपादान जो किरणें वे इसीके अंशका कार्य है. छोटेसे डायनामाइटसे वडे वडे मकान छिन्न भिन्न हो जाते हैं उसमें, गर्जना होने पर, ज्वालामुखी फटने पर और विद्युतद्वारा जो कार्य होते हैं उसमें, तोपके चलने पर, गर्जनाकी आवाज होनेपर, इथरमें क्षोभ होनेसे गर्भपात हो जाते हैं और मकान फट जाते हैं. इत्यादि कार्य होनेमें इसका हाथ है–इसका प्रभाव है. कभी कभी आकाशमें विचित्र कार्य अकस्मात जान पडते हैं उनमें इसका प्रभाव है. तारद्वारा वा तारके विना जो खबरें (संकेत) पहोंचाई जाती हैं उनका निमित्त यही दूत है. विजली, प्रकाश, शब्द वगेरे इसीद्वारा एकदम दूसरी जगे पहोंचते हैं.

जेसे वर्तमान सायंस ऐसा मानती है के गुरुत्वाकर्षण शक्ति हमारे सामने चारों तरफ आकाशमें मोजूद है और वोह वडे वडे शनी वगेरे ग्रहोंको खेंचे रखती है और उससे वडे बडे कार्य होते हैं, तथापि वोह इंद्रियगोचर नहीं है, स्थूलकी गतिकी प्रतिबंध नहीं है, ऐसे ही इस शेषाको सूक्ष्मतर जान लेना चाहिये वलके आकर्षण होनाभी इसीका नतीजा है (आगे वांचोगे). इसका विस्तार–इसकी योग्यता मनुष्य नहीं जान सकता.

इसको यदि ईश्वरका प्रतिनिधि मान लिया जावे तो भी अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि (चुंबुक समान) जड है तो भी (वुद्धिहीन विजली जेसे लोहेको खेचती और हटाती है वेसे) उसमें अदभूत योग्यता उसके कार्यसे जान पडती हैं. मानो, बुद्धि पूर्वक काम कर रही होय नहीं, ऐसी उसमें योग्यता (स्वभाव) है. वोह परमाणुओंका पुंज मध्यम परिमाण है ऐसा उसके कार्योंसे कह सकते हैं, वस्तुतः परिछिन्न हुयेभी

एक खास शक्ति है वा समूहात्मक है वोह एकही अनेक रूप होती है वा समूह होनेसे अनेक रूप हो जाती है वा कैसी है, एसा निश्चित रूप अभीतक नही जाना गया है. किंतु अभीतक उसकी अनिर्वचनीय शक्ति यह संज्ञा मानी गई है.

येरोपीयन और अमेरीकन चतुर विद्वान इसकी शोध कर रहे हैं और थोडा बहुत इसका उपयोगभी लेने लगे हैं. ज्यों ज्यों इसकी योग्यता जाननेमें आवेगी त्यों त्यों जगत्‌में सुखकारी विचित्र उपयोग होगा (फोनोग्राफको ध्यानमें लीजे) × वर्तमान सायंस जिसको ईथर (हवा वगैरे) कहती है वोह इस शेषाका अमुक भाग और अन्य परमाणुओंका मिश्रण है.

एकमत.

(आकर्षण उपचयापचय.)

आकर्षण अर्थात् क्या? और अव्यक्तके कार्योंमें गति कैसे होती है तथा ग्रह उपग्रह कैसे बनते विगडते हैं उनका संक्षेपमें बयान:—

(१) मानो के एक वडा तालाब है, उसमें लकडी और लोहा मिश्रित एक ऐसा गोला डाल दो कि जिसमें पहाड जेसी उंचाई नीचाईभी हो. अब यदि हवा न होगी तो भी यह गोला और पानी हलता रहेगा क्योंकि गोलेका गुरुत्व गोलेको पानीमें ले जाना चाहता है और प्रवाही पानी उसको उपरको फेंकता है इस प्रकार गुरुत्व और पानीके लचक स्वभावसे गोले और पानीमें गति होने लगेगी. अंतमें गोलेकी गति कम होगी–ठेरा हुवा जान पडेगा तथापि उसमें थोडी थोडी तो गति होहीगी क्योंकि पानीका लचक स्वभाव (चल) है और गुरुत्व पानीको दाबता है. और उपर कहे अनुसार गुण चल हैं.

(२) परंतु जो हल्के भारी वीस पचीस गोले इधर उधर डाल दीये जावें तो वे सब गोले और पानी गतिमेंही रहेंगे–नहीं ठेरेंगे. क्योंकि गोलोंका गुरुत्व और प्रवाही पानीकी लचक यह दोनों गतिके हेतु रहेंगे. भारी गोलेसे पानी दबा और पानीने उसे उपर फेंका इस गतिसे पानीमें लहरें उठी हैं और पानीके दबानसे दूसरी तरफका पानी उंचा उठेगा याने उस भागका हलका गोला उपरको आवेगा. यदि वोह पहेलेसे भारी होगा तो लहेर कमजोर पड जायगी परंतु दूसरा भारी गोला नीचेको जायगा और वहां पूर्व क्रम चलेगा. इस प्रकार उक्त सब गोलोंमें पानीका दबान, पानीकी लचक और ग्रहोंका गुरुत्व गति होनेमें हेतु रहेंगे. और गुरुत्वके

× ग्रामफोनकी सहायक सामग्री इसीका अंश है

-भेद होनेसे टेर न सकेंगे. और गोल होनेमे लहरोंके झोल पानेसे गेंदकी तरह लुढकते (घूमते) चलेंगे.और उक्त कारणसे वे गोले इधर उधर घूमते रहेंगे; परस्परमें न मिल सकेंगे; क्योंकि हलके भारी होनेसे एक दूसरेका दबान और पानीका ढलान होता रहता है. अलबत्ते जो कोई सबसे भारी गोला होगा तो जबतब धीरे धीरे सब गोले उसमें मिलनेके लिये अथडायेंगे. नहीं तो नहीं.

(३, अब नंबर २ वाले असंख्य गोले समुद्र के गर्भ (पानीके अंदर) में मान लीजे. पानीका वजन गोलों पर नहीं पडता क्योंकि पानीकी देवारोंके सहारे हैं. इसी कारणसे पानीके अंदरका भरा हुवा घट खेंचे तो भार नहीं जान पडता क्योंकि पानीका और घडेका भार पानी सहार लेता है पानीसे बाहिर आने पीछे भार जान पडेगा. इसलिये गुरुत्वसे गोलोंका नीचे जाना पानीका उपरकी तरफ फेंकना इत्यादि प्रवाह नं. २ अनुसार रहेगा.

(४) जब गोला नीचे जाता है तो उपरके पानीको कुछ न कुछ नीचेको तनाना पडता है इसलिये; और गोलेके झोलके प्रभावसे गोलेके पहाडके उपरका अणु और आसपासके छोटे पदार्थ उसके साथ तनाते हैं—दूसरी तरफ नही जाते वा नहीं रह जाते. उपरके पानीका रुख उपरको होनेका है इसलिये गोलेको उपर आनेका ईशारा भी होता है तथा नीचेका पानी उपरको फेंकता है इसलिये आसपासके वा गोलेके पदार्थोंको उपर चलनेमें मदद मिलती है. परंतु गोलेका झोल ज्यादे होनेसे उपर होनेमें मुश्कली पडती है याने उनको गोलेकी तरफ (गोलेके केन्द्रकी तरफ) तनाना पडता है

(५) यदि किसी या अनेक गोलेमें किसी तूफान (वडवानलादिके ईशारे) से तूफान हो जाय तो उसका कोई भाग जोरके साथ दूसरी तरफ जायगा याने अपने गोलेकी जो हद (झोल और पानीके लहरकी जो सीमा) है उससे बाहिरतक न गया तो झोल और पानीकी लहेरसे जब तब अपने गोलेमे आ मिलेगा. और यदि हदसे बाहिर चला गया तो जिस गोलेकी लहरोंके दायरेमें पहोंचेगा उस गोलेमें जा मिलेगा. परंतु जो दो गोलों के दरम्यानी स्थानमे अर्थात् जहां दोनों गोलोंसे उत्पन्न हुई लहरें मिलती हैं वे सामान्य रूपमें होके स्थिर जेसी जान पडती है वहां पहोंचा तो वोह भाग न अपने गोलेमें और न दूसरे गोलेमें जा सकेगा किंतु वहांही झोले खाया करेगा. क्योंकि उसपर दूसरे झोलोंका दबान नहीं आता है और उभय तरफ-

की लहरें होनेसे उसी दायरेमें रहेगा. अब यदि इसी प्रकार एक गोलेके अनेक भाग वा अनेक गोलेमेंसे निकले हुये भाग एक जगे मिलें वा अनेक जगे मिले तो जब तब वहांभी एक गोला बन जायगा. पानीके पसारेसे अमुक सूरतमें (फोर्मका) बन जायगा और दूसरे गोलेके जैसा भागीदार हो जायगा. और उसके गुरुत्वका असर पानी पर होनेसे दूसरे गोले तक चलेगा. जिनमेंसे भाग निकले हैं और दूसरी जगे (गोले) से नहीं आये हैं किंवा आये तो भी निकलनेसे थोडी आवक हुई है तो ये गोले कम पड जायंगे यहां तक के उनका भाग जल्दीही दूसरोंमें जाने लग जायगा. अंतमें समाप्त हो जायगा और झोल तथा लचकके नियमानुसार दूसरे नवीन और अन्य गोलोंका प्रभाव विभक्त होके उनकी गति, नियममें आ जायगी.

(६) गोलेके परमाणु गोलेके झोल और लहेरोंकी सीमासे बाहीर नही जा सकते परंतु गतियोंसे जो हवा पैदा हुई है और लहरें चल रही हैं उनसे मुमकिन है कि तूफानके सबबसे जो जरा जरासे भाग हुये वे पानीकी लहेरोंद्वारा दूसरी तरफभी जांय और वे दूसरे गोलेमें तो जा नहीं सकते परंतु दो गोलेके दरमियानी भाग तक नं ५ में कहे अनुसार पहोंचके रहते जावेंगे.

(७) उपर जो गति सनियम हुई उसका कारण यह कहेंगे कि परस्परकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति है. गुरुत्वसे नीचे जाना पानीका उपर फेंकना, लचकसे गति होना, झोलसे दूसरे पदार्थ दूर न जाना और उपरसे नीचे जल्दी जाना और नीचेसे उपरको देरसे पहोंचना, उपर जाके हलका जान पडना, और हलके भारी होनेसे गोलेका न मिलना, अमुक मर्यादामें घूमते रहना यह सब कार्य एक दूसरेके संबंध और योग्यतासे हो रहे हैं. पश्चात् व्यवस्था शोधकने उसका नाम गुरुत्वाकर्षण शक्ति रख दिया. वस्तुतः वहां गोलोंमें और पानीमें इतर शक्ति कोई पदार्थ नहीं है, और न पदार्थोंकी शक्ति पदार्थोंसे बाहिर गई है.

दार्ष्टांत.

(८) जैसे उपर समुद्र और गोलोंकी व्यवस्था कही वैसेही इस दृश्य संबंधमें योग लेना चाहिये. (दृष्टांतका अमुक भाग लिया जाता है सब नहीं.) अर्थात् अधिष्ठान ब्रह्मचेतनाश्रित अव्यक्तका एक भाग जैसा अमुक मर्यादामें समुद्रवत् पसरा हुआ रहता है. उपर (२११) कहे अनुसार स्वभाववाला लचकदार है. चेतनकी आकर्षणसे इधर उधर नहीं जाके हलता रहता है. इस अनादि चादर या जालमें ग्रह उपग्रह

गोले हैं. उनके गुरुत्व तथा गरमी और शेपाकी लचकसे आपसमें गति होती रहती है, और दृष्टांतानुसार गोले अपनी २ सीमामें घूमते रहते हैं. (ध्रु भी चिर है. दूर होनेसे स्थिर जान पडता है). पृथ्वी जब पतली थी ठंडी हुई उसकी गति और खिचावसे सुकड गई तो पहाड और खड्डे (ताल) बन गये. जब समुद्रका पानी छिद्रोंद्वारा पृथ्वीके अंदरके गरम पदार्थोंके साथ मिलता है तो खदभद होनेसे भूकंप होता है. ज्यादे बल हो तो जमीन फटती है, अमुक भाग उंडा होके जमीनपरही (टेकरी वगेरे) रह जाता है. अमुक भाग आकर्षण (पृथ्वीके झोलकी असर) की सीमासे बाहिर जाता है. वेगके कारण प्रकाशित हुवा दूसरे ग्रह निवासीको तारा टूटा जान पडता है. जेसे के अपनेको तारे टूटे जान पडते हैं और ग्रहोंके भाग पृथ्वीमें आके मिलना देखते हैं. और यदि किसीमें न मिले तो जुदा रूप बनता है. जेसेके धूमकेतु बन रहे हैं. जेसे सूर्यकी किरणें और गरमी परलडमें आती जाती है तथा न्यूनाधिक होती रहती हैं वेसे शनैः शनैः दूसरे सूक्ष्म रेझेभी उपर कहे अनुसार आते जाते हैं. इस प्रकार ग्रह उपग्रह कम ज्यादा होते होते नष्टभी होते हैं और दूसरे बनते है यथा सूर्य अमुक पुंजका गोला है उसमेंसे गरमी, आकाश–ईथरमें जाती है, पीछी नही आती. उस गरमीके साथ अनेक प्रकारके परमाणु हैं. जब दूर पडे और तप्त पुंज ठंडे पडे तो कोइ न कोई प्रकारका ग्रह (पृथ्वी) बन गया. जो सूर्य जेसे तप्त गोले नही उनमेंसे अन्य प्रकार भाग हुये हैं. इस प्रकार शनैः२ सूर्यादि नष्ट होते जाते अन्य ग्रह बने और बिगडेंगे सारांश मारवाड के टीबों समान कालांतरमें बनते बिगडते रहनेका अनादिसे प्रवाह है. किरोडों वर्षोंमें ऐसे कार्य होते हैं और वोहभी शनैः शनैः. इसलिये मनुष्यको उसका ठीक ठीक पता नही लग सकता. व्याप्ति ग्रहसेही मानना पडता है. सूर्य काला है, गति वगेरेके प्रभावसे प्रकाशमान है और वोह प्रकाश शेपा द्वारा अन्य ग्रहोंमें आता जाता है. सूर्यमेंसे गरमी जाती है पीछे नही आती ऐसा स्वाभाविक है, इसी प्रकार अन्य ग्रहोंकी यथायोग्य व्यवस्था है, जिसको मनुष्य नही सकता.

(९) शेपामें सूर्य, चद्र, शनि, येोरेनस आदि गुरुत्ववाले गोले हैं, धूमकेतु छोटे टुकडे पसरे हुये पदार्थ हैं. गतिमान बिजली परमाणु (एटम) यह तृण समान छोटे छोटे जुनब हैं. कोई गोला अमुक कक्षामें कोइ गोला वक्रगति करके फेर कक्षामें चलता है कोई एक गोलेके गिर्द और कितनेक किसी एकके गिर्द घूमते हैं. यह सब कार्य उपर कहे हुये गुरुत्वादि की मर्यादासे होते हैं. शेपा अधिष्ठानके आश्रित है और ग्रह उसके आधेय हैं.

(१०) ब्रह्मांडकी सीमामें जिस गोलेसे शेषाका ज्यादे भाग जिधरको है वही उस गोलेकी नीचली तरफ है. गोले नीचेकी तरफ जाते हैं; शेषा उपरको फेंकती है, शेषाका उपरका भाग गोलेके साथ ज्यादा नहीं खेंचानेसे गोलेको उपरकी तरफ आनेका इशारा करता है और निचला भाग उपरको फेंकता है. ऐसे गति होती है और अनेकोंकी ऐसे गति होनेसे सबकी गति मर्यादावाली हो जाती है. शेषाके किनारेके पासवाले ग्रहोंमें ज्यादे और जल्दी फेरफार होना चाहिये.

(११) गुरुत्व करके झोल पडनेसे व्यापक शेषामें अमुक सीमातक भंवर, लहेर, लचक और तनाव होता रहता है और ग्रहके साथ साथ होता जाता रहता है. तथा यथा सामग्री स्थिति उनका उपयोग होता है.

(१२) उपरके तमाम निमित्तोंसे नीचेके सवालवाले तमाम कार्य होते रहते हैं इसलिये आधेय संबंद्ध स्थिति का नाम किंवा उक्त सनियमव्यापारका नाम आकर्षण (शक्ति) है, ऐसा क्यों न माना जाय? स्वरूपसे आकर्षण कोइ वस्तु (द्रव्य गुण शक्ति) नहीं है ऐसा क्यों न कह सकें? (क्योंकि सूत्र ९२ में बताये अनुसार परिमाण असिद्ध है.)

(१३) नीचेके सवालोंका जवाब (समाधान) उक्त स्थितिनामा आकर्षणसे हो जाता है (१) पृथ्वीमें १३ प्रकारकी गति कैसे हो सकती हैं तद्वत् अन्य ग्रहोंमें अनेक प्रकारकी गतिके लिये सवाल है × (२) उपरको फेंका हुवा पत्थर अथवा भूकंपसे उडे हुये आकाशकी तरफ जाते हुये पदार्थ पीछे जमीन पर क्यों गिर जाते हैं (३) दूसरे ग्रहोंका कुछ भाग (तारा टूटा हुवा) दूसरे ग्रह (जमीनादि) में क्यों कर आते हैं? (४) नीचे तोली हुई वस्तुको पहाडके उपर लेजाके सुइके कांटेसे तोलें तो वजनमें क्यों कम होती है? (५) उपरसे नीचेको गोली

× पृथ्वीमें अपने गुरुत्वसे, सूर्यके गुरुत्वसे चंद्रादिके संबंधसे, महान बडे सूर्यके गुरुत्वसे, और ईथरकी लचकसे इत्यादि निमित्तोंसे १३ प्रकारकी गति होती हैं और किसी बडे सूर्यकी तरफ अपने सूर्य सहित खेंचाती जाती है. इस १३ प्रकारकी गतिका विस्तार एक अमेरिकन वा फ्रेंचके ज्योतिषी के लेखसे गुजराती पेपरमें छपाया था. ऐसेही अन्य ग्रहो वास्ते भी मान सकते हैं. इस गति पर ध्यान दें तो पृथ्वीका क. बिंदु जो इस सेकंडमें आकाशके द बिंदुके साथ संयुक्त है, ऐसा संबंध पूर्वे न हुवा था और भविष्यमें पुनः न होगा तद्वत् पृथ्वीके क. और सूर्यकी द बिंदुके साथ जो स्ट्रेट लैन है वोह भूतमें न हुई और भविष्यमें न होगी ऐसा परिणाम आ जाता है

फेंके तब जोर नहीं पडता परंतु नीचेसे उपरके फेंके ते जोर क्यों पडता है? (६) उपरसे नीचेको गोली डालें तो उसका ज्यादे ज्यादे वेग क्यों बढता है? (७) नीचेसे पहाड पर जब चढें तो जोर पडता है परंतु उपरसे नीचे उतरें तो जोर नहीं लगता इसका क्या कारण है? (८) चाहियेथाकि सब मकान आपसमें मिल जाते परंतु क्यों नहीं मिलते? (रगट और गोलेकी समीपता कारण है) (९) मूल परमाणु वजनदार हैं वा नहीं? उनकी संख्या समूहका नाम वजन है, किंवा किसी एकमें वजन है? सब परमाणु सजातीय हैं? वा विजातीय हैं? किसी एकके रूपांतर हैं वा जुदा जुदा अनादिसे हैं? (१०) हवा निकाली हुई शीशीमें पर और पेसा साथ साथ निचे क्यों उतरते हैं? (११) बरफ पर पेसा और पर रखें तो बरफ गलती जायगी त्यों त्यों पेसा और बरफ साथ उतरेंगे वहां वजन अनुसार (पेसेका जलदी उतरना) नहीं होता. आवखोरेमें पानी भरें वो जब स्थिर हो तब उस पर हलकाइसे सूइ रखें और पर रखें तो वे उपर रहेंगे. नीचेसे शनैः२ पानी निकालें तो वे साथ साथ उतरेंगे. वहा सूइके वजनानुसार नहीं होगा. इसी प्रकार शीशीमें है अर्थात् हवा निकाली तो खाली जगे होगी परंतु ईथर भरपूर है इसलिये खाली होनेके बदले शीशीगत हिरण्यगर्भ (इथर) की गति बहुत कुछ कम पड जाती है और इथर कुछ घट्ट हो जाता है तथा बाहीरकी हवाका पर और पेसे पर दबान नही रहा इसलिये दोनों साथ साथ उतरेंगे. याने ज्यों ज्यों इथरमें गति और विकास होंगे त्यों त्यों उतरेंगे वहां पृथ्वीके आकर्षणने समानतासे खेंचा अथवा पेसेमें जराभी वजन नहीं रहा, ऐसा नहीं है. इत्यादि सवालोंका समाधान हो जाता है इतनाही नहिं किंतु गुरुत्व (भारीपन) अंतर (दो गोलोंका वा दो वस्तुओंका फासला) विस्तार (गोलोंकी जिसामत-क्षेत्र) इन तीन पर जेसे आकर्षण का हिसाब चल रहा है वोही हिसाब इस प्रसंगमें हो जाता है. उससे इथरकी लचक और दबानकी गणित ज्ञात हो जाती है.

(१४) आशा है कि भविष्यमें इथरकी योग्यताका ठीक ज्ञान होने पर उक्त प्रकार (एकमत) की शोध होगी; क्योंकि जमाना शोधका है, हंस काढने मात्रका नहीं है. धन्य है वेदोंके और कणाद ऋषिके कि जिन्होंने गुरुत्वाकर्षणका ध्यान दिलाया और धन्य है योरोपीयन न्यूटन साहेबके कि जिसने उसके सगणित स्पष्ट कर बताया, जिससे आकर्षण अर्थात् क्या? इस शोधनेका मार्ग खुला.

(१५) उपर जो आकर्षण स्थितिका बयान हुवा वोह एक सूर्य मंडलमेंही लगता

है ऐसा नहीं है किंतु असंख्य मंडलमें लग जाता है. उसके दो भेद मान सकते हैं [१] पृथ्वीके गिर्द चंद्र और सूर्यके गिर्द शनी वगैरे घूमते हैं, पुनः यह सूर्य मंडल अपनेसे बडे सूर्यके गिर्द घूमता है ऐसे असंख्य मान लेना चाहिये. अधिष्ठानाश्रित होनेमे अव्यवस्था नहीं होती [२] शेषाके अमुक भागमें यह दृश्य ग्रह उपग्रहका मंडल है. परंतु इनसे आगे केवल शेषाही है फेर कहीं आगे जाके दूसरा ग्रह उपग्रह मंडल होगा ऐसे असंख्य मंडल होंगे जिनका परस्परमें संबंध नहींभी हो. परंतु वे अनंत नहीं क्योंकि संख्यामे कोईभी अनत नही होता. [शंका] गोलोंका आधार इतना बडा हिरण्यगर्भ गोचर क्यों नहीं होता? [उ.] तमाम ग्रहोंका आधार आकर्षण शक्ति क्यों नहीं दीखती? सारांश अद्भुत और सूक्ष्म है ॥२७६॥

[१६] गोलोंमें नाना प्रकारके बीज और वक्ष्यमाण मनस [जीववृत्ति] यहभी प्रवाहमे अनादि हैं [स्वरूपतः अनादि नहीं] वे गोलोंके साथ रहते हैं और गोलोके भागके साथभी चले जाते हैं मनसके लिये नियम है कि यदि वोह नवीन है तो जैसे खाई हुई एक रती दवा जहां चाहिये उसी स्थान पर पहोंच जाती है वा खिंचा जाती है किंवा जैसे प्रकृति खाली जगे नहीं देखती याने खाली स्थानमें तुरत दोड आती है किंवा जैसे शब्द इच्छा विना यथाप्रसंग बोले जाते हैं [इत्यादि आगे कहेंगे] वैसे मनसकी योग्यता अनुसार उसके उपयोग वास्ते उसको सामग्री [शरीर पड वा मनसमें मिलने योग्य मनस अणु] मिल जाते हैं कहांसे? शेषा और मूल प्रकृतिद्वारा समष्टिमेंसे. मिलते हैं. इसलिये मनसका उन्नति क्रम बंध नहीं पडता. जब ग्रह प्राणी सृष्टिके योग्य होता है तब मनस पर यथा संस्कार पट चढते हैं और धीरे धीरे उन्नतिमें आता है. एकदम वर्तमान जैसा मनुष्य वा वर्तमान जैसा युवान स्त्री पुरुष नहीं होता. किंतु उन्नतिके क्रमानुसार अनेक योनीको धारता है ॥ आरंभमें युवा स्त्री पुरुष हुये हो, यह सयुक्त नहीं जान पडता. किंतु जब मनसमें वासना इच्छादि भाव पैदा हो जाते हैं तब उसके अनुसार खेंचाता है और शरीर वगैरेका सबंध पाता है उसमें समष्टि कर्मका प्रसंगभी है [शेष आगे] मनसका रसायणी मिश्रण ऐसा होता है के ग्रहोंकी गरमीसे वा अन्य आगसे नहीं टूटता. हवासे नहीं सुकाता. ग्रहोंके टुकडोंके साथ आवे तब नाश नहीं होता एक ग्रहमें दूसरे ग्रहमें जावे तो छिन्नभिन्न नहीं होता. जो ऐसा न मानें तो संसारमें एक गरमीके सिवाय दूसरे परमाणु मात्र नहीं मान सकोगे. निदान मनस ऐसे धक्कोंसे नष्ट नहीं होता है. ॥२७७॥

[१७] ग्रहोंमें जो गरमी, विजली प्रकाशादि वस्तु हैं तथा ग्रहोंसे बाहिर जो शेषामें स्थूल सूक्ष्म भूत हैं उनका उपयोगभी सूक्ष्मा और ग्रहोंकी गतिद्वारा होता है जेसे के वर्षादि, भूकंपादि, ग्रहणादि, बीजवृक्षादिमें होता है.

[१८] बीजोंकाभी ऐसा क्रम है अर्थात् सब प्रकार (स्वेदज, उद्भीज, अडंज, जरायुजादि) के वीज अनादिसे हैं जेसे बीजसे वृक्ष, वृक्षसे वीज होते रहते हैं वेसे सब बीजोंका प्रवाह है, उत्पन्न, नष्ट वा रूपांतर होते रहते हैं. और दूसरेके संबंध पानेसे उनमें शनैः शनैः उपचयापचय होके नवीन रूप वन जाता हैं. मानो नवीन बीज उत्पन्न हुवा होय नहीं. बीज अन्य धातकी प्रसंगोंसे तदन नष्टभी हो जाता है जेसेके अग्निमें जलावें तो नहीं रहता. और कितनेक ऐसे भी हों कि वे अग्नि आदिसे नष्ट न होते हों.

[१९] वर्षादि, भूकंपादि और ग्रहणादि यह सब कार्य ग्रहोंकी गति गरमी सरदीसे होते हैं. मयुर आदि विचित्राकार, फूलादि विचित्र चित्र, और गर्भ मगज शरीर यंत्रकी रचना बीजानुसार होती है, मनसका भोग उपयोग प्रथम प्रकृतिद्वारा पीछे यथा वासना (कर्मानुसार) होता है और पृथ्वी आदि भूत शब्दादि विषय तथा गरमी वगेरेके परमाणुओंका यथायोग्य उपयोग भी ग्रहोंकी गति तथा शेषाद्वारा होता रहता है.

इन सब कामोंमें ईश्वरकी अपेक्षा नहीं जान पडती. (शं.) तो फेर ईश्वरकी अपेक्षा कहां होगी? (उ.) आगे वांचोगे.

[२०] उपरके विवेचनसे जाना गया होगा कि इस दृश्य सृष्टिका कभी सर्वथा लय (अभाव) होके नवीन उत्पत्ति हुई हो ऐसा न हुआ, न होगा. सारांश सर्वथा नवीन उत्पत्ति वा सर्वथा प्रलय नही है किंतु ग्रह उपग्रहोंका उपचयापचय होता है ॥ २६८ से २८० तक ॥

संगति —जेसे तम प्रकाश, सत् असत्, भाव अभाव, अपेक्षित संज्ञा हैं वेसे चिद् अचिद्, जड अजड संज्ञा अपेक्षासे रखी जाती हैं. यथा ज्ञान दर्शन अपेक्षासे चिद् और तदाभावकी अपेक्षासे अचिद् जड अजड संज्ञा रखी जाती हैं. शुद्ध सत्वकी अपेक्षासे कीसीको जड और मलीनता अचपलता अथवा शुद्ध सत्वके अभावसे कीसीको अजड संज्ञा दी जाती हैं. बिंब प्रतिबिंब, वक्तामुख और फोनाग्राफ, घट और काचकी हांडी, कोयला और हीरा, विजली लोहा, मन

और शरीर यह सब प्रकृतिके कार्य हैं. परंतु जैसा इनमें अंतर है वैसा अजड जडमें अंतर है ॥ जड नहीं परंतु जड जैसा, चेतन नहीं परंतु चेतन जैसा ऐसा अजड होता है. आगे जिसे मनस और प्रधानकी संज्ञा दी जायगी वोह ऐसे विलक्षण हैं तहां प्रथम सू. १९८ में कहे हुये मनसनामा कारण (अंतःकरण) और जीवका बयान होगा (२८१ से ३२४ तक), अधिकारी जिज्ञासुको चाहिये कि लिखित विषयानुसार है वा नहीं इस बातकी परीक्षा करे. (६९९ की नोट देखो.)

मनस वर्णन.

तिसीका अंश विशेष मनस् ॥२८१॥ सो अविषयका विषय, विषयका अविषय और करण ॥२८२॥ त्रिपुटी व्यवहारमें उपयोगी ॥२८३॥ कर्मादिका असाधारण कारण होनेसे ॥२८४॥ अपूर्ववत् विषय होनेसे विषय ॥२८५॥ अज्ञात भी करण होनेसे ॥२८६॥ रसायणीय परिणामजन्य विजातीय मध्यम और सूक्ष्म ॥२८७॥ और तदाकारतादि चोवीश शक्तिवाला ॥२८८॥

तम और रजसे दबा हुवा जो सत्व ऐसे अंशविशेष याने उसी अनिर्वचनीय अव्यक्तके अंशविशेषकी मनस संज्ञा है ॥२८१॥ सो अविषय जो आत्मा उसका विषय है और विषय जो शब्दादि वा पंचभूत उनका अविषय है तथा ज्ञान होनेमें असाधारण कारण (करण-साधन) है ॥२८२॥ ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, द्रष्टा दर्शन दृश्य, कर्त्ता करण कर्म और भोक्ता भोग भोग्य यह त्रिपुटी कहाती हैं, इस त्रिपुटीके व्यवहारमें सो मन उपयोगी है. ॥२८३॥ क्योंकि कर्म, ज्ञान, और स्मरण होनेमें यह असाधारण कारण है ॥२८४॥ शब्दादि विषयोंके समान अन्यकी अपेक्षासे और इदं रूपसे विषय नहीं होता-किंतु इसमे अन्यथा-अपूर्व रीति समान (अकथ्य प्रकार) आत्मामें विषय होता है इसलिये उसको विषयभी कहा जा सकता है ॥२८५॥ और अज्ञातभी कह सकते हैं। क्योंकि वोह दूसरेके ज्ञान होनेमें करण है, अपने वास्ते करण नहीं हो सकता. इसलिये अविषयभी कहा जाता है ॥२८६॥ यह मनस भौतिक संयोग वा भौतिक परिणामजन्य (पंचीकृत) नहीं है किंतु रसायणीय परिणामजन्य है. उसके रसायणीय प्रयोगमें सत्व रज तम ऐसे विजातीय अवयव हैं अर्थात् सजातीय अवयवसे बना हो, ऐसा नही है. और अणु परिमाण नहीं है किंतु जन्य होनेसे मध्यम परिमाणरूप है. इसलिये विजातीय मध्यम है और बिजली गरमी आदिक विषयों समान मूर्त्त और

२८६—मनसकी रूप और कैसे उत्पत्ति होती है सो सू. ३२३ में वांचोगे.

स्थूल नहीं है किंतु मूर्त (साकार–परिच्छिन्न) है परंतु उनसे ज्यादा सूक्ष्म है, अर्थात् इंद्रियोंका विषय नहीं ॥ यह सब लक्षण उसकी तदाकारादि योग्यता ज्ञात होनेपर स्पष्ट हो जाते हैं ॥२८७॥ उसमें तदाकारतादि चोवीस शक्ति (योग्यता) हैं अर्थात्–(१) तदाकारता (विषयके आकार हो जाना) (२) किरणों वा शेपा समान विषयोंका स्वरुप धारण कर लेना (३) राग (किसीकी तरफ झुकना–प्रेम होना–रुची होना खिंचाना) (४) द्वेष (किसीसे दूर होना, अरुची होना) (५) इच्छा (पूर्व संस्कारजन्य अभ्यासवश स्वरूपका स्फुरण याने निमित्तसेवा स्वभावतःगति विशेष होना जिसे इच्छाशक्ति (विल पावर) वा परिणामविशेषभी कहते हैं (६) प्रयत्न (दूसरेकी अपेक्षा विना प्रवृत्ति निवृत्ति अर्थ स्फुरण याने चेष्टा) (७) संस्कार लेना (आद्य तदाकारता समान, पीछे होना) (८) चित्त (स्मरण होना,) (९) प्रज्ञा–बुद्धि (ज्ञानाकार परिणाम पाना) (१०) अहंकार (अभ्यासवश अहमाकारता–अभिमान होना) (११) कृति (कर्मेंद्रिय–कर्मतंतुओंके साथ संबंध पाके उनको हलाना वा उनके उपयोगका हेतु होना) (१२) वृत्ति (ज्ञानेंद्रियोंके साथ संबंध पाके उनको हलाना वा उनके उपयोगका हेतु होना) (१३) स्फूर्ति (अपना उपयोग अर्थात् दूसरेकी अपेक्षा विना समय या प्रसंगपर फुरना, क्रिया करना वा कराना, शब्दको गति देना, प्राण रोकना छोडना संकल्प विकल्प करना. विषयका आवरण भंग करना. विषय प्रकाशक परिणाम पाना) (१४) स्वरति (रूपांतर होके अपने असली पूर्व स्वरूपमें आ जाना) (१५) विषयग्रहण (१६) प्रतिक्रम (विवेचना) (१७) करणता (आत्माका उपयोग हो ऐसे परिणाम होना, ज्ञान, भोग, निश्चय, ज्ञेय वा भोग्य रूप होना) (१८) इंद्रियोंके विनाभी इंद्रियोंवाले काम कर लेना, साधारण संबंध विनाभी विषय ज्ञानमें उपयोगी होना १९) स्थूल पदार्थ स्थूल शरीर विनाभी ले आना–त्याग ग्रहण करना (२०) सूक्ष्मा (ईथर) का थोडा बहुत उपयोग कर लेना (२१) पर शरीरमें जाके उस शरीरका यत किंचित् यथा सामग्री उपयोग लेना (२२) परचित्तका आकर्षण करना. याने अपनेसे निर्बल चित्तको स्वेच्छानुसार वर्ता लेना वा अपनी तरफ रुची करा लेना (२३) अपनेसे निर्बल चित्तका फोटो ले लेना. (२४) निरोध (संस्कार स्फुरण विना होके ठेर जाना–धैर्य.) ॥ यह चोवीस शक्तियें अंतःकरण (मनस) में होती हैं× ॥२८८॥ इनका विस्तार बहुत है + ॥ यह

× प्राचीन ग्रंथ विषे मुक्तदशामें नीचेकी २४ शक्ति होना लिखा है. (ज्ञानेंद्रिय ५ और अहंकारादि ४ रूप होना अर्थात्–) १ बल, २ पराक्रम, ३ आकर्षण, ४ प्रेरणा, ५ गति, ६ भीषण ७ विवेचन, ८ क्रिया, ९ उत्साह, १० स्मरण, ११ निश्चय, १२ इच्छा, १३ प्रेम,

शक्ति क्यों कर कब हो सकती हैं वा कब उद्भव होके उपयोगमें आ सकती हैं यह आगे वांचोगे* .

जीव वर्णन.

चेतन और मनके योग्य संबंधसे विशेप उपयोग ॥ २८९ ॥ सूर्यकांतवत् ॥२९०॥ उभय विशिष्ट प्रमाता (जीव संज्ञा) ॥२९१॥ विशेषण विशेष्य भाव होनेसे ॥२९२॥ मषीवत् ॥२९३॥ सो अल्पज्ञ परिच्छिन्न और अनेक॥२९४॥ उपहित चेतन प्रत्यगात्मा ॥२९५॥ उपाधिका भाव होनेसे ॥२९६॥ युक्त करणकी जीववृत्ति संज्ञा ॥ २९७ ॥

उक्त मन और उक्त चेतनके योग्य तादात्म्य संबंध होनेसे उभयका विशेप उपयोग होता है ॥२८९॥ जैसेके सूर्यकान्त मणिके संबंधसे सामान्य सूर्य प्रकाश और काच उभयका विशेप उपयोग होता है वैसे ॥२९०॥ उभयके अनिर्वचनीय तादात्म्य विशिष्ट होनेसे इस स्वरूपको (अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनको) प्रमाता अर्थात (अंतःकरण विशिष्ट चेतनको) जीव सज्ञा दी जाती है ॥२९१॥ क्योंकि आत्माका मन विशेपण होनेसे आत्मामें विशेष और मनमें विशेषण भावकी आपत्ति है इसलिये विशिष्ट प्रमाता कहा जाता है ॥२९२॥ जैसेके पानी और काला रंग मिलनेपर रंग विशेषण और पानी विशेप होनेसे उभय विशिष्ट को स्याहि संज्ञा है. स्याहि नामसे व्यवहार होता है. (किंवा जैसे ऑक्सिजन हाइड्रोजन विशिष्टमें जल व्यवहार होता है) वैसे मन और चेतनके तादात्म्य स्वरूपमें जीव व्यवहार होता है ॥२९३॥ सो प्रमाता—जीव—अल्पज्ञ और असंख्य हैं ॥२९४॥ उनमें उपाधिवाला जो अर्थात् अंतःकरण अवच्छिन्न समचेतन सो उपाधि (मन) की सीमामें प्रत्यगात्मा कहा जाता है ॥२९५॥ क्योंकि चेतन तो सम है परंतु उपाधि भाव होनेसे अर्थात् उपाधि अवच्छिन्नपनेकी दृष्टिसे उसे सीमावाला कहा जाता है ॥२९६॥ चेतन विशिष्ट करणकी जीव वृत्ति ऐसी संज्ञा रखी गई है ॥२९७॥ विवेचनः—

१४ द्वेष १५ संयोग १६ विभाग, १७ सयोजक १८ विभाजक, १९ श्रवण, २० स्पर्शन, २१ दर्शन, २२ स्वादन २३ गंधग्रहण, और २४ ज्ञान. + न्याय, सांख्य, वैशेषिक तथा वेदांत दर्शन के भाष्योंमें एक प्रकारकी शक्तिके अनेक भेद बताये हैं. आमननिवासी सुप्रसिद्ध कण्ट फिलोसोफरने एक प्रकारकी शक्तिके १२ भेद जनाये है. जिनको परिमाण, गुण, संबंध और प्रकार सज्ञा देके विस्तार किया है, योरोपीय दर्शन पृष्ट ११६, ११७ देखो.)

* चेतनविशिष्ट मनमें (अंतःकरणमें यह २४ शक्ति होती है अकेले मनमें इनका उद्भव भाव नहीं होता. यह आशय है

तादात्म्य=जेसे धूम बादल और आकाश ओतप्रोत हैं. चेतनके विशेष उपयोग होने योग्य जो मन ऐसे मनका संबंध योग्य संबंध है. क्योंकि समचेतनके साथ सबका संबंध है उससे उसका सामान्य उपयोग (आधार–अधिष्ठानत्वादि उपयोग) होता है. (और अणु अणुमें चेतन–चेतनता है. यूं कहा जा सकता है, मनके संबंधसे ज्ञातृत्व दृष्टत्व साक्षित्व रूपसे विशेष उपयोग होता है. सूर्यका सामान्य प्रकाश रुई जलानेका निमित्त नहीं होता और न सूर्य मणि. परंतु दोनोंके संबंधमे रुईका दाह होता है. तहां किरण पुंज होनेमें काच निमित्त है. अतः उभयका विशेष उपयोग हुवा. चुंबुक लोहेको खेंचता है तहां उभय के संबंधसे लोहेकी गतिरूप उपयोग होनेमें चुंबुक निमित्त है. हीरा अहरनसे नहीं टूटता. स्वरूपतः कोयला है. उभय (कोयला–रसायणीय प्रकाश) के संबंधसे प्रकाशरूपता और कठोरताका उपयोग है. इसी प्रकार चेतन संबंधसे मनकी जो शक्ति वा योग्यता, उनको उत्तेजन होता है, अर्थात् उनका विशेष उपयोग होता है (अन्यथा अन्य जड-वत् होता है) और चेतनका व्यवहार प्रकाश विशेष उपयोग होता है. आकाश मात्रमें जलादि नहीं ठेरते. घटादि होनेसे ठेरके विशेष उपयोग होता है. ऐसे सामान्य चेतन और मनके उपयोग वास्ते योज लेना चाहिये. ॥२८९–२९०॥ अंतःकरण चेतन विशिष्टको जीव संज्ञा दी जाती है. और चेतन विशिष्ट अंतःकरणकोभी. जेसेके आगे जीववृत्ति संज्ञा दी है. दोनों एकही बात है. क्योंकि चेतन तो कुटस्थ व्यापक है. मन नामा बादल वा धूवां जहां जहां जाय वहा वहां उस उस निर्विकार चिदाकाश निर्लेपमें तादात्म्य वा व्याप्य व्यापक भाव संबंध है ही. परंतु जीवत्व व्यवहारमें मुख्य भाग चेतन है, जिवावे सो जीव, इसलिये अंतःकरण विशिष्ट चेतनकी जीव सज्ञा उचित जान पडती है. मछलीके शरीरका ऐसा रसायणीय मिश्रण है कि जल संबंधसे देखे चले फिरे. जलसे अलग करो तो जडवत् फेर जलमें डालो तो सचेत व्यवहार. इसलिये शरीर विशिष्ट पानीका नाम मछली (जीव) है, ऐसे ही यहां योज लेना. विशेष्यके स्वरूपमें जिसका प्रवेश हो और जितनी दूरमें आप हो उतनी दूरमे विशेष्यका अन्यसे जुदा करके बतावे उसका नाम विशेषण है. जेसे क्षार जलमें क्षार विशेषण है. मिष्ट पानीसे जल को जुदा खारा पानी रूपमें बताता है. यंत्रमें खेंचे तो क्षार जुदा और पानी मधुर है. जिसका उपहितके स्वरूपमें प्रवेश न हो और जितनी दूरमें आप हो उतनी दूरमें अपने सहित उपहितको जनावे. उसका नाम उपाधि. उपाधिवालेका नाम उपहित. जेसे घटका आकाशके स्वरूपमें प्रवेश नही और घटावच्छिन्नाकाशको अपनी सीमामें अपने

सहित महदाकाशसे जुदा करके घटाकाश रूपसे जनाता है. जब आप गतिमें आता है तब घटाकाशमेंभी गति होनी जान पडती है. यहां आकाश उपहित और घट उपाधि है. अंतःकरण मध्यम और आत्माका व्याप्य है. इसलिये आत्माका विशेषण और उपाधिभी है अर्थात् तादात्म्य हुवा अपने सहित अपना जितना जनानेसे विशेषण है और अंतःकरण अवच्छिन्न भागमें प्रवेश न करके अपने सहित अपने जेसा जनानेसे उपाधिभी है. इसलिये उभय (विशेषण विशेष्य अर्थात् विशिष्ट, और उपाधि उपहित इन उभय का परस्परमें और समूहमें व्यवहार हो जाता है. नीचेके व्यावहारिक दृष्टांत समझके दार्ष्टांतमें परीक्षा करिये. (अर्थात् अन्यका अन्यमें वा विशिष्टमेंभी व्यवहार होता है)

१—डाढीवाला सोता है. दंडी खाता है. यहां विशेष्य (पुरुष) का विशिष्टमें व्यवहार हुवा क्योंकि डाढी नहीं सोती दंड नही खाता. २—पानी खारा है. यहां विशेषण (क्षार) का विशिष्टमें व्यवहार है क्योंकि पानी खारा नहीं होता. ३—शस्त्री पुरुष जाता है घोडेसवार जाता है. यहा उभयमें गमन क्रिया होनेसे उभय विशेषण विशेष्यका विशिष्टमें व्यवहार हुवा. इसी प्रकार अंतःकरण और आत्माका व्यवहार देखते हैं. १—मैं वीस वर्षका मोटा ताजा सुखी वा मैं साठ वर्षका दुबला, पतला, दुःखी. मैं रागी द्वेषी. यहां विशेषण (मन—जीववृत्ति) का विशिष्ट (जीव) में व्यवहार हुवा. क्योंकि आत्मा मोटा पतला अमुक उमरवाला और रागी द्वेषी नहीं है मैं पदका लक्ष्य आत्मा इन रहित है, अंतःकरण और शरीरके वे धर्म हैं. २—मैं दृष्टा ज्ञाता मनका साक्षी अंतरजामी. यहां विशेष्य (आत्मा) का व्यवहार विशिष्टमें हुवा. क्योंकि जीवके अंतःकरण भागके यह धर्म नहीं है. ३—जीवसे यह शरीर जीता है. यहां दोनों (मन—आत्मा) का व्यवहार दोनोंमें हुवा है. क्योंकि उभय करके शरीरका जीवन और व्यवहार है.

उपर कही रीतिके व्यवहारका अभ्यास होनेसे विशिष्टका नाम जीव संज्ञा है तथाहि अन्य व्यवहारको जांचो. जो विवेकीओंमें होता है. (१) जीव अनादि—अमर चेतन है. यहां विशेष्यका विशेषण (वा विशिष्ट) में व्यवहार है (२) जीवात्मा बध है, जीव मुक्त है, यहां विशेषणका विशेष्यमें व्यवहार हुवा (३) मनका साक्षी चेतन है. यहां उस उसका उस उसमें हुवा. (४) शरीरस्थ आत्मा परिच्छिन्न है, घटाकाश नाश हुवा. जीव मर गया. यहां उपाधिका उपहितमें व्यवहार है. क्योंकी आत्मा परिछिन्न नहीं. घटाकाशका नाश नहीं. किंतु अंतःकरण परिच्छिन्न है और घट का नाश होना है, शरीर मरता है. (५) शरीर चेतन है, वा शरीर दुःखी

है, यहां उपहित—आत्माका वा उपहित अंतःकरणका शरीर उपाधिमें व्यवहार हुवा. (६) जीव दूसरा शरीर धारता है, याने जीवपर दूसरा शरीर चढता है. यहां व्यापक आत्मा उपहित और अंतःकरःउपणाधि इन दोनोंका दोनोंमें व्यवहार है. अर्थात् स्थूल शरीर बदलते हैं ॥

मेरी नाक, (कट जायतो) मैं नकटा, मेरी आंख (फुट जायतो) मैं काना, मेरा हाथ (टुट जायतो) मैं लूला, इत्यादि वदतोव्याघातवाले व्यवहारका सत्यरुपमें अध्यास हो रहा है. मैं दुबला पतला, ब्राह्मणादि, ब्रह्मचारी आदि हुं इत्यादि प्रावाहिक अध्यास सत्य रूपमें हो रहा है. क्योंकि तादात्म्य होनेमे अन्यका अन्यमें अध्यास हो जाता है. यथा लाल वस्त्र है उपाधि जिस काचके नीचे उसमें "लाल काच" ऐसा संसर्गाध्यास हो जाता है, धोला काच वा लाल वस्त्रवाला काच लाना, ऐसा कहें तो व्यवहार नही होता. वैसे ही केवल मन वा केवल आत्माके कथनसे व्यवहारका निर्वाह नहीं होता. क्योंकि चेतनविशिष्ट अंतःकरण कर्तृत्वका हेतु और अंतःकरण विशिष्ट चेतन भोक्तृत्वका हेतु कहा जाता है वा है. मनके विना व्यवहार नहीं होता और आत्मप्रकाश विना व्यवहारमें जीवत्व नहीं आता. इत्यादि कारणवशात् विशिष्ट माना जाता है इस लिये यहां जीवके कर्तृत्व भोक्तृत्व प्रसंगमें रागादि परिणाम वा क्रिया भाग अंतःकरणमें और ज्ञानप्रकाश भाग आत्मामें लगा लेना चाहिये ॥ निदान उपरोक्त कारणवशात् विशिष्टकी जीव संज्ञा है. ऐककी नहीं. ॥ २९१ से २९३ तक. यह जीव परिच्छिन्न है इसवास्ते अल्पज्ञ है और अंतःकरण उपाधि नाना हैं, इसलिये उक्त जीव नाना हैं, वोही कर्ता भोक्ता है* परंतु अंतःकरण जिसकी उपाधि है वोह अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन कूटस्थ है. अंतरजामी है. पूर्व कहे अनुसार उपाधि व्यवहारसे उसे उपहित कहा जाता है, वस्तुतः अव्यवहार्य है. ॥ २९४—२९६ ॥ उक्त विशिष्ट जीवमें जो करण भाग है उसकी जीववृत्ति संज्ञा है. अर्थात् चेतनविशिष्ट अंतःकरणका जो परिणाम (लंबा चोडा गोल विषयाकार, वा रागादिरूप इत्यादि परिणाम) होता है

---

* जीव प्रसंग विषे विशिष्ट चेतनका निषेध किया जाता है क्योंकि जीव सादि सांत ठेरनेमे मुक्ति सिद्धांतका अभाव. अंतःकरण जड और आत्मा शुद्ध होनेसे कर्तृत्व भोक्तृत्वके अभावकी आपत्ती होगी जोकि दृष्ट विरुद्ध दोष है और कर्म शास्त्रोंको उठाके रख देना पडता है इसका समाधान उत्तरार्द्ध वाचके अनुभव करोगे तब स्वयं हो जायगा (गीताका १३वें अध्यायमें क्षेत्र क्षेत्रज्ञका विवेक ध्यानमें होगा).

उसका नाम वृत्ति है. चेतनात्माका परिणाम नहीं होगा. और अकेले अंतःकरणका परिणाम जडवत् होनेसे सचेत वृत्ति नहीं कह सकते किंतु जंगलमें गाने हुये फोनोग्राफके परिणाम समान है. इसलिये चेतन संबंधसे उसमें जो विशेपता है उस विशेपतावाले परिणामका नाम वृत्ति है. जैसे मछलीको जलसे बाहिर करें तो सब अवयव जड. और उसे पानीमें डाले तो फेर जीवन चपलता आ जाती है, विलक्षण उपयोग होता है, इसी प्रकार अंतःकरण वा उसकी वृत्ति वास्ते जान लेना. चेतनके विना उसका उपयोग विशेप नहीं होता. क्योंकि उभयके संबंधसे उपर कहे अनुसार मछली समान एक नवीनता हो जाती है. जैसाके हाई ड्रोजन ओक्षजनके मिश्रणमें वा हीरा मिश्रणमें वा मद्य मिश्रणमें नवीनता होती है वैसे उभय मिश्रणसे जीवत्व एक नवीनता हो जाती है. (शं.) वोह नवीनता अनुपादानजन्य है वा क्या? (उ.) अनुपादान वा अभावजन्य नहीं है. पानीसे प्यास जाती है, ओक्षननादिसे नहीं. अहरणसे हीरा नहीं टूटता, कोयला टूटता है. कोयलेमें प्रकाश नहीं; हीरेमें होता है. अकेली वनस्पतिमें मधुरता रंगीनता नहीं. मधुमें होती है. मीनका शरीर मात्र दर्शन स्पर्शन खानापानादि नही कर सकता, परंतु जलके संबंधसे चेतन होके करता है. तद्वत् अंतःकरण जड होनेसे कर्ता भोक्ता नहीं होता और आत्मा शुद्ध है अतः कर्ता भोक्ता नहीं है परंतु दोनोमें यह योग्यता है. (प्यास निवृत्ति समान). इस योग्यता वास्ते शब्द नहीं मिलता. उभयके मिश्रणका, उभयके पृथक्करणका पुनः वे मिलके मिश्रण होता है उस मिश्रणका अकथ्य प्रकारसे अनुभव हो जायगा तब समाधान होगा. (वहां तक विवादका आश्रय ठीक होगा) फोनोग्राफकी योग्यता विचारो. अजाने श्रोताकी ज्ञान शक्तिका फोनोग्राफके शब्दोंके साथ तादात्म्य होनेसे चेतन मनुष्य गा रहा है ऐसा भान होता है इस चमत्कृतिका और उसके विना जंगलमें बोलते हुये यंत्रका और फोनोग्राफही गाता है ऐसे ज्ञाताके अनुभवका इन सबका मुकाबला तोलोगे तो ज्ञानस्वरूप और नवीन योग्यताका भान हो सकेगा. जैसे राज्यका मुख्य अंग राजा और वृत्ति प्रधान है वैसे शरीर राज्यमें आत्मा राजा और मन वा उसका परिणाम—वृत्ति प्रधान है, उभयसे राज्य कार्य चलता है. ॥२९७॥

तिसकी रागादि अवस्था ॥२९८॥ कृत्यादिभी ॥२९९॥ सशब्द और अशब्द चिंतादिभी ॥३००॥ भावनादितदंतरगत् ॥३०१॥ सबका अवभास ॥३०२॥ इनके लक्षण प्रसिद्ध ॥३०३॥

अर्थ—जीव वृत्तिके राग द्वेप, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, संस्कार, ज्ञान (प्रज्ञा)

यह आठ अवस्था (परिणाम) हैं ॥२९८॥ कृति, नृति, वृत्ति और स्वरति रूप चारभी उसकी अवस्था हैं ॥२९९॥ चित्त (सशब्द अशब्द) बुद्धि (सशब्द अशब्द) मन (सशब्द अशब्द) अहंकार (सशब्द अशब्द) यह चारभी उसकी अवस्था वा परिणाम है ॥३००॥ भावना, प्रेम, वासना, कामना, स्फुरणा, तृष्णा और इच्छा यहभी उसकी अवस्था वा परिणाम हैं और उक्त रागादिके अंतरगत इनका समावेश हो जाता है ॥३०१॥ रागादिका इदं पद विना अनुभव होता है, वे साक्षीभास्य हैं ॥३०२॥ उक्त रागादि,* कृत्यादि चित्तादि और भावनादिके लक्षण प्रसिद्ध हैं. यथा–राग (प्रीति होना) कृति (क्रिया होना) चित्त (चितवन होना) भावना (भाव होना) इत्यादि. ॥३०३॥ और रागादि चित्तादि वृत्तादिके लक्षण पूर्वार्द्ध जीव प्रसंगमें और उत्तरार्द्ध विषे तदाकारादि (२८८ सूत्रमें आ चुके हैं इसलिये नहीं लिखे.

पहेले पहेल किसी नाम (शब्द) वा अर्थ (शब्द स्पर्श रूप रस गंधादि)के साथ संबंध होनेपर मनका तदाकार होना इस अवस्था वा परिणामका नाम संस्कार है. उसमें मनमें भाव होता है अर्थात तदाकारताका सहज भाव होनेका नाम भावना है. उसीकी ज्यादती प्रेम–राग वा रुची. इस अभ्याससे अदृष्टाभ्यासका नाम वासना (यथा बीजमें जमे हुये अंकुर) वही जब उकसे तब उसका नाम कामना (यथा गरमी पहोंचनेसे अंकुरमें गति होना) यही जब अधिकता पकडे उसका नाम फुरना (यथा अंकुरकी गति बीजके पेटको फोडने लगे). उसीका वार वार फुरना. तृष्णा (यथा अंकुरसे बीज फूटा) इसी अभ्यासका स्पष्ट रूपमें होना इसका नाम इच्छा (विल पावर) अर्थात् अप्राप्तकी प्राप्ति अर्थ मनमें गति होना (यथा–अंकुर बाहिर स्पष्ट जान पडे.)

बालक जन्मे तब उसमें अस्पष्ट अस्तित्व होता है, प्रकृतिकी रचना अनुसार गति वगेरे होती हैं. उसके सामने बा बा करें तो चक्षुद्वारा ओष्टोके संयोग वियोगका फोटो जाता है, और श्रोत्रद्वारा शब्दका असर होता है, उस अनुसार मनमें प्रयत्न चलता है जब ओष्टादि साधन बलवान हों तब वोह अभ्यास ओष्टपर आता है अर्थात् बा बा कहता है और जिस जिसने प्रथम बा बा कहा था उसको देखके ज्यादे होता है. बडा होनेपर किसको बा बा कहना ऐसे संस्कार होनेपर वेसा उपयोग होने लगता है. ऐसेही अन्यके वास्ते योज लेना.

बालकका बाप बिंदूकवाले सिपाहीको देखके आब कहके गरदन नीचे करता है. बालकको चक्षु श्रोत्रद्वारा यह संस्कार हुये फेर जब बिंदूकवाला आवे तो उसे देखके

*रागादि, कृति आदि, चित्तादि, भावनादि रूपावस्था होनेकी योग्यता वा शक्ति पूर्वोक्त २७७ वत्

'आव' कहके गरदन नीचे करता है. सिपाही मानता है कि इच्छा पूर्वक बुलाता है, परंतु ऐसा नहीं है. स्वाभाविक अभ्यास फुरा है. क्योंकि जो विदूक विना दूसरे प्रकारके वस्त्र धारण करके आया हो तो बालक वैसी चेष्टा नहीं करेगा. निदान ऐसे अभ्यास होते ये इच्छा शक्तिके रूपमें आ जाते हैं और यथा प्रसंग होते हैं.

मैं, वा हूं ऐसा शब्द सुनके शब्दाभ्यास हो जाता है. फेर यह अपनेको लगाते हैं. ऐसा अभ्यास हो जाता है. अर्थात् उसका अपने अस्तित्वमें अभ्यास हो जाता हैं. कदाचित् मैं के बदले असी, वा तुं का संस्कार होता तो वैसा अभ्यास हो जाता. इस प्रकार स्वाभाविक अस्तित्वका नाम मैं पडके अभिमान रूप पकडता. है. जीवका अस्तित्व क्या है? मनका चेतनके साथ जुडनेपर स्वयंप्रकाश चेतनमें मन प्रकाशित होता है, इन दोनोंकी ऐसी अवस्थाका नाम **जीवका अस्तित्व** है ॥ अर्थात् मनका अस्तित्व-ज्ञान प्रकाशके विना, उजाले वा व्यवहारमें नही आता. और चेतनका अस्तित्व स्वतः सिद्ध हैं परंतु मन नाम लकडीके अथटानेपर विशेष प्रकाशमान जान पडता है. (किसको जान पडता हैं इसका समाधान आगे). ॥

उपर इस जन्मके संस्कारादिका प्रकार कहा. एसे असंख्य क्रिया ध्वनि नाम रूपादिका याने सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञानका अनेक अभ्यास असंख्य जन्मोंमें संपादन हो जाता है और जीव सृष्टिका रूप बन जाता है. जैसेके विवेचन और व्यवहार होना देखते हो * कितनेक पूर्वजन्मके संस्काराभ्यास जीव वृत्तिमें होते हैं जो थोडे संबंधसे जलदी रूपमें आ जाते हैं विशेष वर्त्तमानमें ही होते हैं. इन संस्कारोंकी संतान वृक्ष समान असंख्य ततुवाली हो पडती-है. अर्थात् संस्कार उद्बोदक सामग्रीसे अन्य संस्कार होते जाते हैं उससे अन्य भावनादि होते हैं. अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारके (छोटे बडे वा क्रिया, ज्ञान, विषय संबंध, भेदादि) अभ्यास (संस्कार) हुये हैं उन अभ्यास और योग्यता तथा चेतन विशिष्टताके कारणसे, भेद ग्रहणादि (भेद ग्रहण, पूर्व उत्तरकरण, तारतम्य, तोलन, योजन, वर्गीकरण, निषेधकरण, विवेचन, चरमस्मृति, नियमन, व्याप्ति ग्रह और अनुमानकरण इत्यादि) कार्य जीवके होते हैं अर्थात् चेतनके तादात्म्य हुये विना नही होते. (मानो आत्म सत्ताकी प्रेरणासेही होते होय नहीं) इनकी उत्पत्ति (बुद्धि वृत्तिका आविर्भाव) का विस्तार है. कुछ सू. २७२ के विवेचनमें वांचोगे. नमुना मात्र यहां लिखते हैं.

*विशेष देखना हो तो समनाथके उत्तरार्दमें परिभाषा देखो. वा तत्त्वदर्शनकी अध्याय १ वांचो.

जिसे सामान्य ज्ञान (खान पान भय मैथुनादिका ज्ञान) कहते हैं वोहभी जीव प्राणीको अनेक जन्मोंके संस्काराभ्यासका परिणाम है. तो विशेष ज्ञानके संस्काराभ्यासका तो कोन जाने कितने असंख्य जन्मोंमें परिणाम आया होगा. इसी प्रकार भेद ग्रहणादिके संबंधमें जानना चाहिये. यहां संक्षेपमें उसकी उत्पत्तिका प्रकार जनाते हैं.

१—शरीरके प्रतिकूल अनुकूल वस्तुके इम्प्रेशन–संस्कार पडनेपर उस वस्तुमें निवृत्ति वा प्रवृत्ति होती है (यथा आग पानी) भिन्न इंद्रियोंसे भिन्नभिन्न विषयका ग्रहण होता है. ऐसा वारंवार होता है यही भेद, ज्ञानमें साधन है अर्थात् जीव वृत्ति जब भिन्न भिन्न विषयके आकारको प्राप्त होके साक्षी चेतनमें ग्रहण होती हैं तब वृत्तिओंके भेदभी आत्मामें स्वतोग्रह होते है उस अपरोक्षत्व स्थितिके संस्कार (छाप) जीव वृत्तिमें होती है (अपरोक्षत्व याद करिये) उसका परिणाम भेद व्यवहार होता है.

२—क ने ख को चार वात कही ताके वोह ग को कहे. प्रसंग आनेपर चारोंका क्रम वा उनमें एक दो भूल गया. जिनकी संस्कार उद्भवक सामग्री प्राप्त हुई, वोह वात कहने लगा याने पिछली पहेले कहने लगा वोह स्वतोग्रह हुई. इस संस्काराकार वृत्ति हुई. ग पाससे जानेके पीछे शेष यादमें आई. ऐसा क्रम हो जानेसे पूर्वका उत्तर, उत्तरका पूर्वकरण (असत्य कथन) की विधीको सीख लिया याने अभ्यास–टेव पड गई.

३—इसी प्रकार अनेकवारके अभ्याससे तारतम्य, तोलन, योजन, वर्गीकरण, निषेध, विवेचन, चरम स्मृति, नियमन, व्याप्तिग्रह, अनुमान बुद्धि वृत्तिके अभ्यासका परिणाम है. ऐसा जानके घटित रीतिसे योज लेना चाहिये. परंतु इस विषयमें इतना ध्यान रखना चाहिये. (१) यह केवल मनस (बुद्धि) का काम नहीं है किंतु जीव वृत्तिकी योग्यताका परिणाम है (२) स्वतोग्रह विना याने अपरोक्षत्व विना (सू. ३७२ वांचो) इनकी उत्पत्ति नहीं होती. (३) ऐसा अभ्यास अनेक जन्मोंके संस्काराभ्यासका परिणाम है (४) आत्मा और मनका भेद जिस प्रकार आत्मामें स्वतःग्रहण होता है और वृत्तिमें उसकी व्याप्ति लक्ष्यालक्ष्य रूप होती है तब उसको लक्षणासे व्यवहारमें लेते हैं इसी प्रकार सबके वास्ते जान लेना चाहिये. ॥३०३॥

इंद्रियों और उनके विषयोंसे मन भिन्न ॥३०४॥ सभेद विषयाकार होनेसे ॥३०५॥ संकोचमें अणुवत् विकासमें शरीरवत् परिणाम ॥३०६॥

उसका वेग विद्युतमेंभी अधिक ॥३०७॥ उसकी गति संबंधसे यथा रचना ॥३०८॥ तार पेटी समान उपयोग. ॥३०९॥

उक्त जीव वृत्ति इंद्रियोंमे और इंद्रियोंके विषय (शब्दादि) से जुदा है ॥३०४॥ कारणके इंद्रियोंमे परस्पर जो भेद हैं और शब्दादि विषय और इंद्रियोंका जो भेद है तथा शब्दादि विषयोंमें परस्पर जो भेद है उन भेदोंका इंद्रिय ग्रहण नहीं करती किंतु जीववृत्ति तदाकार होती है, तब भेद ग्रहण होता है. तद्वत् दुःख सुखादिका आकार इंद्रियें नहीं रख सकती, जीववृत्ति रखती है, इसलिये इंद्रिय और विषयोंसे भिन्न है. ॥३०५॥ यहां सूत्र ९९ और १०० का विवेचन बांचो. ज्यादे स्पष्ट होगा. आत्मा सभेद आकारवाले मनका प्रकाशक है, वहांके भेद या दुःखादि रूप होता है. और भेदादि कार्य होते हैं इसलिये जीव, स्थूल शरीर, इंद्रिय १० और प्राणमे भिन्न है यह स्पष्ट हुवा. ॥३०५॥ उक्त करण (अंतःकरण) ऐसा सूक्ष्म है कि सकुचित हो

(नोट–३०१ से ३०५ तक) जिनको कर्मेंद्रिय, ज्ञानेंद्रिय कहते हैं वे स्थूल शरीर और मनसमे भिन्न वस्तु नहीं हैं किंतु मनसकी योग्यता (शक्ति) है और जिनको इंद्रिय कहते हैं वे स्थूल शरीरगत उन योग्यताके उपयोगके साधन है. यथा चक्षुका तिल एक काच है. उसके अंदर मगज केमेरा जैसि प्लेट है जिस पर फोटो पडता है और मनकी रूप शक्तिका उपयोग होता है. इसी प्रकार अन्य (ज्ञानतंतु कर्मतंतु) वास्ते जान लेना चाहिये (शं.) जो ऐसा हो तो मुखद्वारा शब्द या गंध ग्रहण होनी चाहिये (उ.) बंधन होनेके कारण जीव वृत्तिका ऐसा अभ्यास पड रहा है अर्थात तंतु ग्रहण करनेवाले द्वारा विषय ग्रहण करे वा हो ऐसी प्रेकटीस है. मनकी वे योग्यता स्पष्ट हैं ऐसा यंत्र चला है कि जो अंधेके लिलाट पर लगावें तो रूपका उसे ज्ञान हो. तेजस् विद्याके विषय (सबजेक्ट) के हाथमें पुस्तक दो तो कोई विषय छाती पर या पगतलीकी तरफ रखके बांचता है मनकी गतिमे अंदरमें जो सूक्ष्म शब्द होता है वोह कान बंध करकेभी सुना जाता है. एक अमेरीकनने अपना अभ्यास जनाया है के त्वचाके लगाके वस्तुका स्वाद बतलाता था. स्वप्नसृष्टिमें इंद्रियोंके विना रसादिका भोग होता है.

वीर (सूक्ष्म शरीर) परीक्षा—कदाचित इन चार सूत्रोंको बांचके वाचक महाशय आक्षेप करेंगे–याने वहमी, मूरख, मगजका गेर्गा, चालाक, अज्ञ, या अंधश्रद्धालु कहेंगे या दिलमें हसेंगे अस्तु ॥ परंतु अनुभव और निर्णय प्रसगमें मेरी जेसी परीक्षा है

तब परमाणु जेसा विषय होता है किंतु लुप्त पर्याय हो जाता हैं और जब विकास परिणाम धरता है तब शरीर जितना हो जाता है. ॥३०१॥ पतला इतना है के शरीरमें उसका गमनागमन स्पर्शही नहीं होता. जेसे प्रकाश लंबा चोडा होता है और संकोचकालमें बिंदु रूप होता है और मकानमें दीवा बुझावें तो प्रकाश कहीं

है वेसा कहना चाहिये बाहोश हो के और तहकीकात सहित जेसा मेरा तजरुबा है वेसा लिखा है. मेरे कथनपर मैं दूसरेको विश्वास दिलाना नहीं चाहता. अर्थात् परीक्षा कीये विना एसे विषय नहीं माना चाहिये. कहीं एसा प्रसंग प्राप्त हो तो सहेली परीक्षा यह हैं. (१) आया हुवा परोक्ष रहा हुवा वीर कोई वस्तु ला दे उसका उपयोग कर सकें ऐसी हो. (२) वहां खूंटी वगेरे पर जो वस्तु हों वे आपही इधर उधर हो जाय (३) चदरके नीचे कोई कंकर वा कागज रख दें वोह अदृष्ट हो जाय (४) अपने हाथसे दो लकडी रख दें वे स्पर्श किये विना आपही मिल जांय ॥ किसी प्रकारकी चालबाजी या बिजली वगेरेकी मदद विना यह कार्य हों तो वीरकी सिद्धि मान सकेंगे, अन्यथा नहीं, क्योंकि मुठ्ठीकी वस्तु, उस वकतकी मनकी बात, दूरस्थ परोक्ष पदार्थकी हकीकत मेस्मेरेझमका विधेय (सबजेक्ट) भी बता सकता है और अनेक प्रकारकी सूरत नजरमें आवे वा अनेक प्रकारके शब्द सुनें, ऐसा मगजकी कमजोरीसे भी हो जाता है. इसलिये ऐसी परीक्षा वीर परीक्षा नहीं जो उपर कही हुई रीतिसे परीक्षामें वीर सिद्ध हुवा तो उसद्वारा दूसरे तजरुबे (परीक्षा पूर्वक शोध) जान सकोगे.

वीर परीक्षा संबंधमें (१) एक गोरजीने, दोपहेरको पांच आदमीयोंके समक्ष सूकी चार पतल जिनपर ताल मखाने वगेरे प्रसाद था चार वारमें मंगाई. तीन प्रतिष्ठोंने और मैंने वोह प्रसाद खाया. यह मैंने देखा (२) अकस्मात मेरे सबजेक्टमें वीर आ गया. अपनी परीक्षा मखाने वास्ते मालदेयी आंच, फूलोंके हार, और फूल मेरे हाथमें देता गया. द्रष्टा मोजद थे. उन्होंने खाये, फूल सूंघे. (४) मेरे एक सबजेक्टके शरीरद्वारा संभाषण होनेपर पुनर्जन्मसंबंधी चर्चा हुई. उस अनुसार परीक्षा की तो ठीक पाई. (५) एक अतीतने मेरी मुठी अर्घ रूपमें बंध कराई खोलके देखी तो उसमें वजनदार अशरफी थी. मुठी बंध करानेपर अदृष्ट हो गई. उसी अतीतने शकर (मिश्रीकी डलीयें) मुठीमें मंगाई. वोह द्रष्टाओने खाई. और एक चादरके नीचे कल्दार १०० रुपयेके आसरे नजर पडे. स्पर्श किये तो वजनदार रुपये थे. चादर ढकी तो वे अदृष्ट हो गये. (६) इ.

बाहिर नहीं चला जाता और न नाश होता है किंतु किसिके विरोध विना वहां ही तिरोभीत हो जाता है, ऐसेही शरीरमें मनकी स्थिति होती रहती है ॥२०६॥ जैसे बदलस्थ विजलीके अगले भागका परमाणु, बादल और पृथ्वीके बीचमें जो असंख्य परमाणुकी लेन है उसके एक एक परमाणुके साथ संयोग स्थिति और वियोग इन तीन कार्यको करता हुवा जमीन पर आके जमीनमें जाता है वा पीछा उपर चला जाता है. यह असंख्य कार्य एक वा दो सेकन्डमें होते हैं. विजली ऐसी शीघ्र गति वाली है, परंतु मनकी गति उससेभी ज्यादा है. ॥३०७॥ सभामें नाचनेवाली वृत्तिके एक क्षणमें बीसयों काम होते हैं. उसको ध्यानमें लीजिये. स्वप्नसृष्टि पर विचारको फेंको, एक मिनीटमें बीसों वर्ष बीतते हैं, ब्रह्मांड रचा जाता है, असंख्य कार्य होते हैं और नाश हो जाता है. इ. ॥३०७॥ जब शरीरगत पदार्थके साथ जीव वृत्तिका योग्य संबंध हो किंवा बाह्य पदार्थोंका शरीर इंद्रियद्वारा जब संबंध हो तब मनमें गति होती है परंतु जेसे शरीरके तंतुओंकी और सेंटरोंकी रचना है उसके प्रमाणमें गति होती है. जो बाह्य पदार्थ या शरीरके आंतरीय वा बाह्य अवयवोंके साथ संबंध न हो तो गति होने हुयेभी उनका ग्रहण नहीं होता. ॥३०८॥ जेसे तार पेटीकी बडी ऑफिसमें सब तार पेटीयोंका संबंध होता है और परस्परमेंभी संबंध होता है इस-लिये एक जगे खटका (फोड मर्ड) करनेसे हेड ऑफिसमें और अन्य तार पेटीओमेंभी खबर पहोंचती है, परंतु जिस पेटीके साथ तारके संबंधका व्यवधान हो वा सबंध तोड दिया जाय तो उस तार पेटीमें वोह खबर नहीं आती. इसी प्रकार तमाम शरीरमें शरीरकी रचना याने तार तंत्र समान मनका उपयोग होता है. ॥३०९॥

विवेचनः—रसायणी संयोगजन्य होनेसे हड्डी गरमी विजली इत्यादि तत्त्वोंद्वारा

—जो मनकी कल्पना वा वहेममें फसनेवाली, अंध श्रद्धालु, दंत कथाकी भगत, और मनसा डाकनको सत्य माननेवाली प्रजा हो उसके सामने इस प्रकारके वाक्य आना ठीक नहीं, ऐसा मानके ऐसी बातोंका ४० चालीस वर्षमें जितना तजरुबा हुवा सो प्रसिद्धिमें न कहा गया. और कहीं कहना वा लिखना पडा तोभी आटके साथ. परंतु अब अंतिम अवस्थामें इस प्रसंगमें उक्त कारणवश कुछ स्पष्ट लिखा गया है. देशहितेषी महाशय मुझे क्षमा करेंगे, और देवाना मानके उपेक्षा करेंगे. प्रस्तुत दर्शनी और स्वपरीक्षामें इथरीयल—हिरण्यगर्भ संबंधी कोई ऐसा गुप्त भेद हो कि जिसको मनुष्य नहीं जानता तो मैंभी मजबूर हुं. मैंने तो जेसा स्पष्ट देखा और परीक्षामें आया उतना और वेसा लिखा है.

शरीर रूपी मकान स्थित है. उसका जेसा पाया और जितनी आकर्षणका संबंध तथा सामग्री है उस अनुसार उतना लंबा और उतने काल तक रह सकनेकी योग्यता है. कर्म और ज्ञान ततुओका परस्परमें और दूसरे अंगोके साथ संबंध है. हेड ऑफिस ब्रह्मरंध्र है इस शरीरका ड्रायीवर जो जीववृत्ति सो तमाम शरीर विषे फिरती रहती है और ज्ञान ततु (ज्ञानेंद्रिय) द्वारा विषयका संबंध होनेपर तदाकार हुई आत्माके समक्ष होनेपर विषयका ज्ञान होता है शरीर रथ है, जीव सारथी है, रथवान वृत्ति (मन) है. ब्रह्मरंध्रमे जो गोली जेसा पदार्थ है उसका केंद्र बिंदु अगोचर है*-जहा तमाम कर्म तंतु-ज्ञान तंतुका संबंध शामिल होता है अर्थात् वोह सबका केंद्र है. जिसे शारीरिक शास्त्र (फिजीकल सायस) ग्रेमेटरका मुख्य केंद्र नाम देती है, यूनानी उसे हराम मगज-दिमाग कहते है. परंतु उस ग्रेमेटर केंद्र पर हुकम चलनेवाला कैान है, इसपर सायंसने अभीतक ध्यान नही दिया है-वोह गोली बाग (रस्सी) है. इंद्रिय (ज्ञानतंतु, कर्मतंतु, ज्ञानेंद्रिय-कर्मेंद्रिय) अश्व है जीवकी इच्छा अनुसार अर्थात् जीवके स्फुरणकी वृत्तिद्वारा गोली पर असर होती है उस गोली द्वारा इंद्रियोंसे काम होता है. जब शरीर इंद्रियके साथ विषयका संबंध होता है तब इंद्रियोद्वारा उक्त केंद्र (गोली) पर असर होती है. उसद्वारा मनपर असर होती है. मन (वृत्ति) तिसका आकार आत्माके समक्ष कर देता है याने होता है, तब विषय प्रकाशित होके उसका ज्ञान व्यवहार जिसे भोग कहते है सो होता है. इस प्रकार शरीरका राज्य व्यापार चलता है. जो रसायणीय संयोग बिगड जाय तो जीव शरीर छोड देता है याने शरीर मर जाता है अथवा किसी कारणसे जीवको शरीरमेंसे निकलना पडे तो शरीरका रसायणीय सयोग नष्ट हो जाता है अर्थात् शरीर मर जाता है-सड जाता है. और राज्य व्यापार समाप्त हो जाता है. जीते हुये शरीरमे जीव (विशिष्ट) की राज्यधानीका स्थान ब्रह्मरंध्र है तथापि शरीररूपी जिलेके तमाम थाना तहसीलमे उसका प्रधान भाग याने मन फिरता रहता है. चक्षु हृदयमें विशेष कार्य करता है. प्रधान शरीरके भागमें कहीभी हो, शरीर इंद्रिय साथ संबंध पाये हुये विषयोकी खबर तार पेटी रूप गोली (उक्त केंद्र) द्वारा मनको पहोचती है अर्थात् असर होतेही तुरत वहां ही आता है (खिंचाता है) उस पीछे पूर्व कहे अनुसार भोग होता है. प्रधान किसी स्थानमेंभी हो, जब किसी कारणसे जीव वृत्तिमे इक्षणा-इच्छा होती है तब तुरत उपर कहे अनुसार इस परिणाम (इच्छा-इक्षणा) की असर उक्त गोली पर होती है और उसी अनु-

*इस सर्व संबंधी अदृष्ट-अज्ञात बिंदुको कोई मन कोई जीव ऐसी संज्ञा देता है

मार पूर्व कही रीतिकी तरह गोली द्वारा उपयोग होता है, स्मृति होनेकाभी ऐसाही प्रकार है अर्थात् स्मृति उद्बोदक निमित्त होनेपर स्मृति सेंटर द्वारा मनका पूर्वाकार परिणाम होता है वोह आत्मामें प्रकाशित होके स्मृति ज्ञान व्यापार होता है. इसमें मुख्य तो दो कारण हैं. १ संबंध और २ अभ्यास. जहां संबंध निमित्त है वहां गोली का भागमी स्मृति केंद्र निमित्त होता है. जहां असंबंध हुयेभी स्मृति होती है वहां मनाभ्यासही निमित्त है.

संस्कार उद्बोदक—संस्कार उद्बोदक मुख्य हेतु तो संबंध और अभ्यास स्फुरणकी योग्यता है. बहिरंग कारण यह हैं **प्रणिधान** (मनको बल पूर्वक अन्यमें लगाना) **निबंध** (किसी एक विषयको गूंथना) **अभ्यास** (संस्कारोंकी अधिकता) **लिंग** (साध्य सिद्धिका समर्थ हेतु) **लक्षण** (चिन्ह विशेषका दर्शन स्मरण) **सादृश्य** (सारुप्यता) **परिग्रह** (स्व स्वामीभाव) **आश्रय** (आधार) **आश्रित** (आधेय) **संबंध** (शिष्य, शास्त्र विवादादि) **आनन्तर्य** (पहिली क्रियाका अभाव होनेही दूसरी क्रियाका आरंभ) **वियोग** (इष्टका वह) **एककार्य** (समदर्शीपना) **विरोध** (परस्पर विरोध) **अतिशय** (उपनियादि संस्कार–वारंवार कथन) **प्राप्ति** (धनादिका लाभ) **व्यवधान** (कोशादिका आवरण) **सुख** (अनुकूल वेदनीय ज्ञान) **दुःख** (प्रतिकूल वेदनीय ज्ञान) **इच्छा** (सुख और सुख साधनमें रागआत्मक चित्तवृत्ति) **द्वेष** (दुःख और दुःख साधनमें क्रोधात्मक चित्तवृत्ति) **भय** (अभयनिवेशादि) **अर्थित्व** (अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति) **क्रिया** (गति) **राग** (पितृआदिकमें प्रीति) **धर्म** (विहित कर्मजन्य अदृष्ट–पुन्य) **अधर्म** (निषिद्ध कर्मजन्य अदृष्ट–पाप) **आशा**[?] (प्राप्तिकी उम्मेद) इत्यादि संस्कार उद्बोदक हेतु हैं. इसलिये एक कालमें अनेक स्मृति नहीं होती.

पुनः पूर्वप्रसंगपर आते हैं. जैसे चक्षुआदि इंद्रिय और अंतःकरण (चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार) साधन हैं वैसे ब्रह्मरंध्रस्थित गोली (ब्रेनेटरके अनेक सेंटर दिमाग–मगज) भी (स्थूल तत्त्वका बना हुवा) एक प्रकारका साधन है, ऐसा जानना चाहिये मन यह नहीं जानता के कोनसे तंतुको हलाने तब अंगलीका पोरवा, अंगली, हाथ, चक्षुकी पापण, पेटका अमुक भाग, नाकका अमुक भाग, जिव्हा, पेशाबकी थैली (फाकस–पेडु) मूल द्वारके तंतु. जननेंद्रियके तंतु इत्यादि हले 'और उपयोग हो', डाक्टर वैद्य चीर फाड पर उन तनुओंका अनुमान करते हैं, परंतु अपने शरीरके उपयोगकालमें तंतु पकडके हलाया, ऐसा ज्ञान वा अनुभव उनकोभी नहीं होता. तद्वत योगीकोभी. क्योंकि हरेक का मन उन तंतुओंके आकार नहीं हो सकता, ऐसी सूक्ष्म और परोक्ष रचना है.

विषेय और योगी कुछ कुछ जान सकता है, तमाम नही. निदान जीववृत्ति नही जानती तोभी कुदरती हिकमतद्वारा अकथ प्रकारसे उपयोग होता है. यथा चक्षुके रोग निवारणार्थ (होमीपेथिक पाव रती वा एलोपेथिक एक दो माशा दवाई खाते हैं, संभव है के मेदेमेंही रह जावे, परंतु यकृतमें जाके खूनमें मिलती है खूनके दोरे द्वारा चलती है, जहां उसकी जरुरत है वहांही वोह पकडा जाती है याने चक्षुके तंतु उसे खेंच लेते हैं. रोगमें आराम होता है, यह बात सुप्रसिद्ध है. विचारनेका यह है कि दवाई–यह नहीं जानती कि मुझे कहां रुकना है, चक्षुके तंतु यह नहीं जानते कि लोहीमेंसे अमुक वस्तु खेंचना है. तोभी वेसा योग्य उपयोग होता है. वाहरे रचनां ! जब हम बोलते हैं तो अमुक पीछे अमुक शब्द याद करके बोलें वा अमुक शब्द बोलें, ऐसी इच्छा वा संकल्प नहीं होता परंतु जहां जेसा चाहिये वहां वेसाही शब्द वाणीमें निकलता है, ऐसा क्यों ? पूर्वका अभ्यास ओर कुदरती यंत्रकी योग्यतासे स्वाभाविक होता रहता है ! पाठ कर रहें हों उस समय कभी ऐसा होता है कि मन (जीववृत्ति) संकल्प कर रहा है और वाणी बोल रही है, सुनेवाला यह समझता है के वक्ता बोलता है, यह क्या ? मगज और जिव्हा तंतुका अभ्यास. कलोराफारम सुंघानेपर मूर्छा अवस्थामेंही भाषण होता है वहां जीववृत्तिका काम नहीं क्योंकि जागनेपर वक्ता कहता है के मैंने तो भाषण नहीं किया. ऐसा क्यों ? उक्त कारण ॥ बालक सो जावे उस पीछे उसे दूसरे मकान पर चलाके ले जावें, मार्गमें पेशाब करता है, घरपर जाके दूध पीके सोता है, सवेरमें बापसे लडता है के मुझे उठाके क्यों लाये, दूध क्यों न पिलाया. पेशाबकीभी याद नही. ऐसा क्यों ? मन याने जीव वृत्ति पर कुदरती अनुवृत्ति हुई इसलिये स्वाभाविक काम हुवा. (अनुवृत्तिका विस्तार मानसिक योगमें लिखा है) इत्यादि उदाहरणोंसे जान सकते हैं कि मन, ब्रह्मरंध्र और इंद्रियोंके कितने व्यापार ऐसे हैं कि जो विषय नही होते परंतु रचना ऐसी है कि अभ्यासादि निमित्तोंसे स्वाभाविकभी हों, इसलिये जीववृत्ति, ब्रह्मरंध्र (गोली) इंद्रियोंके प्रसंगमें विशेष तर्क करनेकी जरुरत नही जान पडती ॥३०९॥

जीव वर्णन.

असंबंधकालमेंभी ॥३१०॥ तेजस् प्रयोगवत् ॥३११॥ सूक्ष्म शरीरधारी ॥३१२॥ त्याग ग्रहणकी योग्यता होनेसे ॥३१३॥ स्थूल साथ संबंध और असंबंधभी ॥३१४॥ सूक्ष्म देहकी परोक्षासे ॥३१५॥ यथायोग्यता आवागमनभी ॥३१६॥ पुरुष

वांचोगे ॥३१६॥ रज वीर्यके क्रमियोंमें मुख्यतः करणकीही जीव संज्ञा है ॥ अर्थात् पुरुष वीर्यगत जो जंतु होता है उसमें नर मादेके चिन्ह बिनाका मन (चेतन विशिष्ट अंतःकरण–जीव) होता है ॥३१७॥

रजवीर्यवाले शरीर आकारवाले लंबे गोल क्रमी जब गर्भमें संबंध पाते हैं तब उनमें जो बलवान होता है उसका निर्बल जंतु अहार हो जाता है और एक रूप होके पोषणको पाता है. जो रजवाला बलवान तो उभयका समूह स्त्री शरीर; जो वीर्यवाला बलवान तो उभयका पुरुष शरीर; जो उभय सम तो नपुंसक वा नाश होगा. उन समूहोंमें जो करण वोह उनमे भिन्नही है. (पृ. ४०७ की टीका वांचो) कोई गृष्णभेदसे कोई रजवीर्यकी बलाबलसे, कोई समय संयोगसे नरमादा होनेका अनुमान करता है वेसेही येह अनुमान हैं. यहां शरीरसे करणभिन्न है. इतनाही प्रयोजन हे. ॥३१७॥ अंतःकरण (करण) का परिणाम (स्वरूप) इदं भावसे अपरोक्ष नहीं होता किंतु इदं विना आत्माका विषय होता है. जेसेके अहंत्व इदंभावके विना अपरोक्ष होता है. ॥३१८॥ क्योंकि यह, तु, वोह यह प्रत्यय दूसरे के होते हैं इसलिये उनका आकार मन रख लेता हैं, परंतु अपने आकारमें इदमाकारता नहीं हो सक्ती क्योकि एक समयमें दो परिणाम नही हो सकते जेसेके अंतरमें "मैं हूं" ऐसा, इदं, पद या इदंभावके विना अपरिच्छिन्न विषय होता है. औरभी राग द्वेष, इच्छा दुःखादि, इदं विना अपरोक्ष होते हैं क्योंकि वेभी अंतःकरणके परिणाम हैं ॥३१८॥ इससे इतर जितने (शब्दादि) विषय होते हैं. उन सबमें शब्द प्रयोग विना मनका इदंता रूपसे आकार होता है. इसलिये इदं शब्दसे ग्रहण होते हैं. ॥ अन्य सब वस्तुओंसे यही इस (अंतःकरण) में वैधर्म्य है. ॥३१९॥

यद्यपि रूप समान आकाश, रस, गंध, में इदंता नही होती तथापि मनसे अन्य होनेके कारण सामान्यतः मनमें इदंता होती हैं. अहंत्वादिमें वेसा नहीं होता. आत्मा अविषय इसलिये उनके संबंधमे कुछ नही कहा जा सकता ॥३१८॥ यह (करण) हमेशे समान रहता है, ऐसा नहीं है किंतु जेसे पूर्वके संस्कार, स्वभाव (पुंज प्रकृति वा योग्यता) हों जेसे रज, वीर्य और अहार तथा संग या संबंध वा स्थिति परिस्थिति हो वा आवश्यकता हो उसके अनुसार इसमें न्यूनाधिकता होती रहती है ॥३२०॥ (शं.) वर्तमान जन्ममेंही या शरीर छोडनेके पीछे कालमें न्यूनाधिकता होती है? (उ.) मध्यमत्व होनेसे न्यूनाधिकता होना स्पष्ट है तो संभव है कि तीनों या दोनों या एक अवस्थामेंभी होती हो. किसीको शरीर त्याग पीछेही, किसीको वर्तमानमेंही, किसीको

दोनों स्थितिमें होती है ऐसा सूक्ष्म शरीरभी कहते हैं. उनका कथन है कि पशु मूढोंको वर्तमानमें नहीं होती परंतु संस्कारादि उनमें होनेसे स्थूल त्याग पीछे एकदम बहुत कुछ फेरफार हो जाता है. किसी संस्कारीके वर्तमानमेंभी होती है. (शं) जो ऐसा हो तो पूर्वके संस्कारोंकी स्मृति न होना चाहिये और उन्नतिके मार्गमें आड होगी (उ.) जेसे स्थूल शरीर दस पंद्रे वर्ष पीछे वही नहीं होता किंतु तमाम परमाणु वदलके नवीनका पुंज होता है तोभी व्यवहारमें अंतर नही पडता. अर्थात् नवीन परमाणु पहेलेके प्रतिनिधि रूप होके रचनामें आते हैं परंतु नित्य अहार बदल होनेसे पायेकी स्नेह आकर्षण और रसायनीय संयोगमें फेरफार होनेसे उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिति क्षय इत्यादि विकार होते हैं इसलिये वाल वृद्धादि अवस्था होती हैं. वेसेही मनमेंभी प्रतिनिधि रूपमें न्यूनाधिकता तो होती है परंतु मन सूक्ष्म है इसलिये सूक्ष्म फेरफार होता है और वोहभी यकदम नहीं होता ऐसा मान सकनेमे विस्मृति और उन्नतिकी आडमें उभय दोष नही आ सकते. स्मृतिके अभाव होनेमें रोग अनाभ्यासादि * तथा मनसके अणु न्यूनाधिक होनाभी कारण है. और पूर्व जन्मकी विस्मृतिमे अवस्थाका फेरफार कारण है परंतु उन्नति अवनतिमें **संस्कारादि**भी कारण हैं इसलिये उक्त शंकाको अवसर नही मिलता. तथापि कहना पडता है के यह सूक्ष्म फेरफार या तो योगवृत्तिसे जाना जा सकता है वा तो जो सत्व रज तमको पहिछाननेवाले मानसशास्त्रके अभ्यासी हैं वे कुछ अनुभव कर सकते हैं—क्योंकि शरीर इंद्रिय ब्रेमेटर (मगज) अर्थात् साधनकी न्यूनाधिकतासे उसमें न्यूनाधिकताका आरोप करना भूलमें आ पडना है. इसलिये परीक्षा की रीतिसेही परीक्षा कर्तव्य है. पूर्व जन्मके वा इस जन्मके संपादित संस्कार (अदृष्ट) कोई कारणसे इस जन्ममें काम न दे सकेंगे जेसा कि वर्तमानमें कोई ऐसे मनुष्य होते हैं कि उनको सिखानेमें कितनीही कोशिश करें परंतु उनका कुछ परिणाम नहीं होता. ऐसा है, तोभी शरीर त्याग पीछे उस उपयोगकी आड खुल जायगी और पडे हुये संस्कार काम देंगे. मानो कि एक जीव है जिसके पूर्वके संचित भले बुरे हैं. कर्मनियम के अनुसार प्रथम बुरे फल भोगने वास्ते पशुपक्षी वा मूढ मनुष्य शरीर प्राप्त हुवा— भोग्य योनी मिली. तोभी भोगने पीछे अर्थात् शरीर त्यागने पीछे उसके पूर्व

---

*एक डाक्टर लिखता है के एक मनुष्यको ऐसा उन्माद हुवा था के उसकी निवृत्ति पीछे रोगी सब कुछ भुल गया. ३० वर्षकी उमरमें ऐसा हुवा. अंतमें नये शिरसे उसको बालको समान तालीम दी गई. वर्तमानमें मेस्मेरेजमकाल विषे सबजेक्ट सब भूल जाता है, ऐसा देखने हैं.

संचितकी थेलीका क्या फल न मिलेगा? क्या वर्तमान जन्मके योगभ्रष्ट जीवको शरीर-त्यागने पीछे उत्तम जन्म न होगा? अवश्य होहीगा. अर्थात् उत्तम संचित भोगने वास्ते उत्तम कर्मका आरंभ होगा और उन्नतिपर चलेगा. इसलियेभी उन्नति होनेमें निराशाको अवसर नहीं मिलता. अर्थात् संचित अज्ञात रहनेसे पुरुषार्थहीको मुख्यता ठेरती है. नहीं के न्यूनाधिकताको. क्योंकि उसमेंभी पुरुषार्थ (चपलता-शिथिलता) ही निमित्त है. ॥३२०॥ प्रतिक्रमण होनेमें जेसे अदृष्ट (संस्कार) शेष होते हैं उसके अनुसार उन्नति अवनति होती है, ऐसा, प्रवाह है ॥३२१॥ अर्थात् जो कर्म उपासनामें प्रवृत्ति हुई तो ज्ञानयोग द्वारा उन्नतिकी शिखरपर पहोचता है. सद्कर्म नीति मर्यादामें चलता है, तो जीवन सुखसे होता है, विषयी रहे तो अंतमें दुःख भोगता है पामर वृत्ति वास्ते कुछ कहेने जेसा नहीं. इत्यादि प्रकारसे सुख दुःखके साधन प्राप्त करता है और सुख दुःख भोगता है इत्यादि ॥३२१॥ उन्नति और अवनति होनेमें इच्छा, संस्कार, प्रकृतिका संबंध (फोर्स) और चेतनात्मा निमित्त है ॥३२२॥ जेसे कि बीज और शाखासे पेवंद संबंधसे वृक्ष, फूल, फल बीज अंतरवालेभी होते है वेसे इस अंतःकरणका व्यापार है॥ अर्थात् उन्नति अवनतिमें आना. ॥३२२॥ उस उन्नति अवनतिके प्रवाहमें रहनेवाले अर्थात् बद्ध-अमुक्त मनससे कर्म नियम होनेसे नवीन मनसभी उत्पन्न होते हैं. जेसेके अमृता (गिलो वा अमरवेल वा वड) के यत्किंचित् अंश (भाग-टुकडे) से दूसरी वेली होनेका आरंभ होता है, वेसे ॥३२३॥ यह एक पक्ष है.

सूत्र ३२०, ३२१, ३२२ का आशय, सूत्र ४०४ से ४०८ तकके व्याख्यान का अनुभव होनेपर समझा जायगा ॥ इतना यहां जना देना ठीक होगा कि उपरोक्त विशिष्ट, विशेषण, विशेष्य उपाधि, उपहितके लक्षण व्यवहार और लक्ष्यको समझे हो तो व्यवहार व्यवस्थाकी दृष्टिसे त्रिवादवाले जीवकी व्यवस्था कर सकोगे. जहां अणु परिमाण, क्रिया, आवागमन इत्यादि व्यवहार हैं वे मनसमें, जहां चेतन ज्ञान अनादि इत्यादि व्यवहार हैं वे विशेष्य अर्थात् समचेतनमें और जहां रागादि किंवा कर्तृत्व भोक्तृत्व, कर्म उपासना साधना और मुक्ति आदिक व्यवहार हैं वे विशिष्टमें लगाके

---

३२३ अमृताके जगे जगे चक्षु होती हैं इसलिये हमेशा सजीवन है. और हरेकाई अंशमे पूर्ववत् वृद्धि पाती है वडके बीज, शाखा और डाळीमेभी दूसरा वड होता है याने सजीव बुटी है. ऐसेही मनस् अद्भुत सजीव बुटीहै परंतु संस्कार लेनेमें योह वनस्पति जेसा नहीं किंतु उसके नियम प्राणीओ समान विलक्षण हैं.

सब व्यवस्था त्रिवादवत् हो जाती है. सारांश यहां त्रिवादानुसार जान लेना चाहिये. सारग्राही और व्यवहार तथा साधन फल दृष्टिसे इस विशिष्टवाद (अवच्छेदवाद) और त्रिवादमें कोई भेद नहीं है. ईश्वरादि उभय पक्षमें है. ॥३२३॥ बीजादिके निर्णय करनेका यहां प्रसंग नहीं है अतः उससे उपेक्षा है ॥३२४॥ क्योंकि यहां जीवके बंध मोक्षके वर्णनमें प्रयास है.

यहां तक मनस्—करण और जीवका वर्णन हुवा. अब आगे सू. ३२५ से ३३७ तक प्रधान—करण और ईश्वरका बयान होगा.

प्रधानवर्णन.

अव्यक्त शुद्ध सत्वांश प्रधान ॥३२५॥ उत्तम और शक्तिमत ॥३२६॥ उसकी योग्यता अपूर्व ॥३२७॥ अविषयसे, इतरका अविषय ॥३२८॥ सम-चेतन संबंधसे विशेष उपयोग ॥३२९॥ उभयकी विशिष्टतासे समष्टि संबंधी शक्तिका आविर्भाव ॥३३०॥ यथा उक्त व्यष्टि शक्तिका ॥३३१॥ तिसकी ईश्वर संज्ञा ॥३३२॥ सो एक और महान ॥३३३॥ सर्वज्ञ, सर्वका द्रष्टा होनेसे ॥३३४॥ सर्व शक्तिमान, सर्व उपयोगका निमित्त होनेसे ॥३३५॥ तद् द्वारा व्यवस्था, सनियम विचित्रता दर्शनसे ॥३३६॥ उपहित चेतन सर्व साक्षी ॥३३७॥

अर्थ—रज तमसे न दबा हुवा किंतु रज तम जिसमें दबे हुये हैं और काच

---

३२४ बीजादि बीज कैसे बनता है, वनस्पतिमें जीव है वा नहीं, कहीं बीजमें वृक्ष, वृक्षमें बीज बनता है, कहीं वृक्षकी शाखा लगानेसे वृक्ष बनता है, कहीं पसीनेसे अमैथुनी जीवात होते है फेर वेही मैथुनी सृष्टि पेदा करते हैं (जूं, मेंडक वगेरे), कभी स्त्रीके अंदर वा सर्प जेसी संतान निकलती है. किसी पशुके १ पेर दो मस्तक दो जिव्हा होती हैं, वीर्यमें जीवका कैसे प्रवेश होता है, सूक्ष्म शरीरकी क्या क्या गति होती है, स्त्रीके दो योनी केसे होती है, वकरा कटनेपर उसके दोनों भाग क्यों हलते हैं, एक बकरेके नरका चिन्ह और मादेका चिन्ह (दो स्तन) क्यों होते है, वृक्षो में नर मादा क्योंकर होते हैं, कटके क्यों बढते है, प्राणियोंका मूल प्रोटोपलाज़म और एमीबामें तथा वनस्पतिके आद्यमूल प्रोटोपलाज़ममें स्वतः गति करने, दूसरे परमाणु लेके अपने जेसे बनाने; सेलस होने अर्थात् उत्पत्ति वृद्धिकी शक्ति केसे कहांसे आ गई, इत्यादिकी बीजादि संज्ञा है.

समान उभय तरफका दर्शक है ऐसेको शुद्ध सत्व कहते हैं. अव्यक्तका शुद्ध सत्वांशकी प्रधान संज्ञा (वा महत तत्त्व संज्ञा) है ॥३२५॥ यह अंश अव्यक्तके अन्य विभागोंसे उत्तम और विशेष शक्तिवाला है ॥३२६॥ इसकी योग्यताको मन बुद्धि न जान सके ऐसी अपूर्व—अदभूत है ॥३२७॥ ब्रह्म चेतनकाही विषय है उसमें इतर मन बुद्धि इंद्रियादिका विषय नहीं है ॥३२८॥ समचेतन और प्रधानके स्वतंत्र कार्य हो सकें याने उस विशिष्टका स्वतंत्र उपयोग हो सके ऐसे योग्य संबंधसे दोनोका विशेष उपयोग (रचना होना, व्यवस्था रहना, सब प्रकाशित और ज्ञेय होना इ. उपयोग) होता है ॥३२९॥ उभयके योग्य अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध याने विशिष्टतासे समष्टि संबंधकी अनुपम शक्तिका आविर्भाव होता है ॥३३०॥ जेसेके उपरोक्त चेतन और मनसके योग्य संबंधसे नाना व्यष्टि शक्ति याने जीव शक्तिका आविर्भाव होता है वेसे प्रस्तुत एक समष्टि शक्तिका आविर्भाव होता है ॥३३१॥ इस शक्तिकी ईश्वर संज्ञा मानते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥३३२॥ सू. ३२८ से ३३२ तकका विवेचन—

इस अनिर्वचनीय तादात्म्य (अभेद) संबंध हुये प्रधानविशिष्ट चेतनको सगुण ईश्वरभी कहा जाता है अर्थात् उपयोग कालमें जो क्रिया और गुण हैं वे तो प्रधान भागके हैं. और चेतनता, प्रकाशता, ज्ञातृत्व, आधारता, अधिष्ठानपना, सत्ता स्फुरणता, यह अक्रिय समचेतनके हैं.

ईश्वर वर्णन.

इसलिये उभय विशिष्टकी ईश्वर संज्ञा है और ब्रह्मचेतन सर्वका अधिष्ठाता होनेसे उसकी महेश्वर संज्ञा है कारण के प्रधान विशेषण है और चेतन विशेष्य है. इसलिये विशिष्ट हुये एक संज्ञाका प्रयोग है. विशिष्टता, सगुणता, विशेषण विशेष्य भाव और विशेष उपयोगता, इन सब प्रसंगोंको पूर्वोक्त २८८ से २९३ तकके अनुसार घटित रीतिसे योज लेना चाहिये. ॥ जेसे शरीररूपी व्यष्टिमें त्रिगुणात्मक अकेले मनका यह काम होता है कि पदार्थाकार होना, पूर्व दृष्टाकार होना, किसीकी तरफ झुकना, किसीसे अलग होना, गति करते रहना इत्यादि. (यह कार्य नेगेटिव पोज़ीटीव विजलीके समान स्वाभाविक होते हैं). १, चेतनके साथ अभेद संबंध होके जब सत्व विशिष्टता (चिदग्रंथी—जीवपना) होती है तब भेद, ग्रहणादि भेद, निषेध, परीक्षा, वर्गीकरणादि उपर कहे है) श्वास त्याग ग्रहणादि कार्य होते हैं २ और अकेले चेतनमें अधिष्ठातापना प्रकाशकत्व, सत्तास्फुर्ण, दातृत्व और साक्षीपना है ३.

इस प्रकार ३ प्रकारसे कार्य होते हैं. ऐसेही समष्टि ब्रह्मांडमें होता है. त्रिगुणात्मक अकेले सूक्ष्मा (शेषा) का कार्य उपर शेषा, आकर्षण प्रसंगमें जनाया है. अभेद संबंध होके जब समष्टि सत्व विशिष्टता (ईश्वरत्व-शक्ति) होती है तब रचना, व्यवस्था, याने सगुण कार्य होते हैं. जैसेके जब मनसके कर्म तो भोगने योग्य हों और उसको ग्रहके टुकडे साथ जाना पडे तब उसकी वहां वा अन्य जगे व्यवस्था होना किंवा जब शनैः शनैः किसी प्रकारका बीज नष्ट हुवा हो और उसकी अपेक्षा है तब उसकी रचना होना, किंवा जब उपर कहे हुये शेषा, ग्रह, भूत, मनसके संबंधमें कोई अव्यवस्था होनेवाली हो तब उसकी रोक हो जाना इत्यादि कार्य होने हैं. १, ऐसे कार्य सबुद्ध ईश्वरके विना नहीं हो सकते. इनमें क्रिया भाग प्रधानका है यह उपर कहा है २, और अकेला ममचेतन अधिष्ठाता, आकर्षक, प्रकाशक वगेरे है ३. इस प्रकार कार्य होते हैं. जैसे व्यष्टि जीव (हरेक शरीरधारी) अपने शरीरका संबंधी निर्वाहक है वैसे वोह ईश्वर समष्टि (तमाम जगतरूपी शरीर) का संबंधी और व्यवस्थापक है. जैसे शरीररूपी जगतमें हड्डी मांसादि जड प्रकृति. हाथ पांव पृथ्वी वगेरे ग्रह, नेत्रादि सूर्य चंद्रादि, प्राण हवा, लोही शेषा, मन प्रधान, प्रत्यगात्मा चेतन. उभय विशिष्ट प्रमाता जीव याने शरीरका ईश्वर, दूसरे छोटे बडे नाना प्रकारके क्रमी (जो लोही पेट वगेरेमें हैं जीवन व्यवहार कर रहे हैं वे पशु पक्षी मनुष्यादि रूप) शरीरधारी जीव हैं. और इस पिंडका स्वाभाविक, प्रकृतिसे, चेतन निमित्तसे और उभय मिश्रणसे कार्य हो रहा है, वैसेही ईश्वर समष्टि (जगत्) का संबंधी और व्यवस्थापक है, तीन प्रकारसे काम चलता है जैसाके उपर (पासही और पृ. १४९ से १५६ तक) कहा है. इसलिये सूत्रमें समष्टिको व्यष्टिवत् कहा है. ॥ इस ईश्वरके अतरगत पृथ्वी आदि ग्रह, वायु, विद्युतादि भूत, पशु पक्षी आदि जीव (मनस) रहे हुये हैं उसमेंही उत्पन्न होने, रहने और लय होते हैं जैसा के उपचयापचयका प्रकार उपर कहा है ॥ वोह ईश्वर अविद्या अस्मितादि पंच क्लेश रहित है. कर्म फलका उसे बंध नहीं होता, किसीसे बद्ध वा किसीके आधीन नहीं है और न किसीसे आच्छादित (ढका हुवा दबा हुवा) है किंतु सब जगत उसमें व्याप्य है उससे आच्छादित है॥ उपर मनस प्रसंगमें कहे अनुसार प्रधान चेतनका विशेषगमी है और स्वभाविमी है. २९१ से २९९ तकमें जैसे लिखा है उस रीति अनुसार घटित रीतिसे जान लेना चाहिये ॥ अंतर इतना है के प्रमाता जीव कर्ता भोक्ता, अल्पज्ञ अल्प शक्तिवाला परिच्छिन्न, प्रति शरीर जुदा जुदा, बदलनेवाला तथा रागादिवाला है. और

प्रधान विशिष्ट -ईश्वर कर्ता भोक्ता नहीं, लक्ष्य रीतिसे सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, जगतसे अपरिच्छिन्न, सर्व जगतमें व्यापक, अवदल और एक है, इच्छा ज्ञान प्रयत्न संस्कार वाला है,* रागादि उसमें नहीं है. काया नाडी नस इंद्रिय रहित है. बाकी तमाम त्रिवादवाले इश्वर जीव समान जान लेना चाहिये। जीव अल्पज्ञ होनेसे अपने शरीरके अंदरके अवयव और कृमिओं (जीवों) को नहीं जानता और पूरी व्यवस्था नहीं कर सकता तथापि शरीर व्यापारमें निमित्त तो है. और योगी जीव कुछ विशेष जानता है तथापि पूर्ण नहीं. परंतु ईश्वर वेसा नहीं है किंतु काचकी हांडी समान निरावरण होनेसे तमाम जगतको देखता जानता है और पूर्ण व्यवस्था करने योग्य है. (व्यष्टि समष्टिके साधर्म्य वैधर्म्य प्रसंगवश कोई वक्ष्यमाण प्रसंगका ईशारा यहां करना पडा है) ॥३३२॥

सो ईश्वर (शक्ति) महान है याने सर्व जगत उसके अंतरगत् है. और वोह अनेक नहीं किंतु एकही है. ॥३३३॥ उक्त प्रधानको ईशवृत्ति ऐसी संज्ञाभी दी जाती है जब प्रधानका उपयोग परिणाम हो तब ईशवृत्ति कहा जाता है क्योंकि चेतनके विना उसकी योग्यता काममें नहीं आती. उभयके संबंधसे नवीनता होती है तथा चेतनका उपयोग उसद्वारा होता है. इसलिये ईशवृत्ति, समष्टिकरण महत और प्रधान संज्ञा है. सू. २९७ में नवीनता वास्ते मछली हीरा वगेरेके दृष्टांत दिये हैं वे याद करीये. और जीववृत्ति प्रसंग ध्यानमें लीजीये. यह अनिर्वचनीय शक्ति वृत्ति किसीकाभी विषय नहीं है. जीव उसको साक्षात् नहीं कर सकता इसलिये अगम्य और विचित्र है. प्रधान उसका सूचक लिंग है. ॥ इस योग्यताकी सिद्धि ब्रह्मांडके विचित्र कार्य देखनेसे (याने अनुमानद्वारा) होती है (सू. ९४ देखो) ॥३३३॥

वोह ईश्वर सर्वज्ञ है ॥ क्योंकि प्रकाश समान व्यापक होनेसे सर्व वर्तमान उसके दृश्य है वोह उनका दृष्टा है. याने सबका उसे ज्ञान होता है. ॥३३४॥ जेसे सूर्य प्रकाशमें जितने वर्तमान हैं वा थे और होंगे वे सब उसके दृश्य हुये हैं, हैं और होंगे वेसे ईश्वर चेतनके सर्व दृश्य हैं ॥ भूत भविष्य यह भेद क्रियाकी दृष्टिसे बुद्धि (महत-प्रधान) की कल्पना है. स्वप्नमें जेसे व्यापक दृष्टा चेतनमें भूत वर्तमान और भविष्य तेसे शब्द या वृत्ति व्यवहारके विना सब सृष्टि प्रकाशित होती हैं और बुद्धिओंकी भूत भविष्य व्यवहार संज्ञाभी प्रकाशित होती हैं. अर्थात् दृष्टा अकथ्य रीतिसे जानता है, सर्व शरीरोंके मनकीभी (अंतरको) जानता है वेसे ईश्वर सर्व जगतको

* ईश्वर प्रसंगमें इच्छादि प्रधान अंशमें है इत्यादि विवेक कर्तव्य है.

जानता है उसे भी वर्त्तमान है, इस रीतिसे सर्वज्ञ है (नहीं ये ऊपर जिस सर्वज्ञत्वका निषेध है वैसा किया सू. २०७ में ज्ञानको ज्ञान, ज्ञानका ज्ञान, ज्ञानसे ज्ञानका निषेध है वैसा) सारा स्वप्रकाश स्वरूप है सर्व उसके प्रकाश्य है इसलिये सर्वज्ञ है वोह ईश्वर सर्व शक्तिमान है क्योंकि मूल अव्यक्त और उसके तमाम कार्यों (प्रधान–मनस–शेषादि) की जितनी शक्ति है वे उस महचेतन निमित्तसे उपयोगी होती है ॥३३५॥ जैसे मछलीका जलसे, इजनका स्टीम या बिजलीसे, और सभाका प्रकाशसे उपयोग होता है, जैसे स्वप्न सृष्टिके जितने कार्य है वे द्रष्टा चेतनकी सत्ता बिना नहा होने वैसे वोह ब्रह्म चेतन सब शक्तियोंके उपयोगसे निमित्त है और उसकी सत्ता बिना कार्य नहीं होता इसलिये सर्व शक्तिमान है. विशिष्ट ईश्वरकी शक्तिमें प्रधानकी शक्ति शामिल है यहा स्वप्नके निमित्त मनसकी शक्ति समान योजना कर लेना चाहिये. (उपर २०७ में जो सर्वशक्तिमानत्वका निषेध किया है उस निषेधका यह विषय नही हो सकता) ॥ जैसे प्रमाता तमाम शरीरम विराजता है वैसे किया सू ३३१ मे कहा वैसे वोह विशिष्ट चेतन सर्व प्राणी और प्रकृतिमें विराजमान (विराट) है, ॥३३१॥ जगतम सनियम विचित्र कार्य देखते है व किसी सर्वाधार, सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, सक्रिय और स्वतंत्र शक्तिके विना नही हो सकते इसलिये ईश शक्ति द्वारा व्यवस्था होती है ऐसा अनुमान करना और मानना ही पडता है (सू. ९० से ९१ तकका सू २८९ से २९३ तकका विवेचन स्मरिये ॥३३६॥ कोई विशेषण वा व्यवहार ब्रह्म चेतनमें घटता है जैसेके जिसके सर्वज्ञेय, (जिसके सर्व प्रकाश्य) है, ज्ञानस्वरूप है, सत्तावान है, अमूर्त्त है, सर्व आधार है, असीम है इत्यादि. और कितनेक प्रधानमें घटते है. जैसेके क्रिया, परिणाम, मूर्त्त, मूर्तोंका स्पर्श होके मूर्त्त जड प्रकृतिका उपयोग होना इत्यादि और कितनेकका विशिष्टमें व्यवहार होता है जैसाके सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, व्यवस्थापक इत्यादि ॥ इस प्रकार त्रिवादमे ईश्वरके जो लक्षण सू १३ मे कहे है वे (ईश्वरही उपास्य, जगतकर्त्ता धर्ता हर्ता वगैरे) यथा प्रसग यथायोग्य घटाके व्यवस्था कर लेना चाहिये ॥ जैसे स्वप्न सृष्टिका जीव (सस्कारी मनस् और चेतन यह उभय विशिष्ट) तत्री है उसके विना कुछ नहीं होता ऐसे इस ब्रह्माडका तत्री ईश्वर है सब प्राणी पदार्थ यथा कर्मसस्कार उसकी मायाकी कठ पुतली–स्वप्नाभास समान है सस्कारद्वारा सब कुछ होता है वोह आप असग है (विशेष त द अ ८ मे सू. २०८ के विवेचनमें विस्तार है)

(श) प्रधान विशिष्ट ईश्वरका चतुर्भुजादि स्वरूप वा अवतारभी होता होगा

क्योंकि प्रधान भाग परिणामी है वोह अनेक रूप धर सकता है और गर्भमें आ सकता है (उ.) नहीं. कारणके उसके करनेके योग्य जो कार्य सो अवतारके विना करने योग्य है १. इसलिये अवतार माननेमें उसकी हीन उपमा और निंदा जेसा है. २. मनसके समान कर्मका भोक्ता नहीं ३. अवतार लेता हो तो शरीरधारीओं समान उसे दोषकी आपत्ति होती हैं क्योंकि विशिष्ट ईश्वर निरावरण अबद्ध है ४. यदि लेना मानें तो वोह सर्वज्ञ नहीं हो सकता क्योंकि विशिष्ट वृत्तिमें जो नवीनता उपर कही है, उसका भाग (भंग) हो जाता हैं अर्थात् ईश्वर वृत्तित्वही नहीं रहेगी. ईश्वरकाही निषेध हो जायगा. ५. हठसे मानें तोभी अवतार भाग अन्योंसे उत्तम पराक्रमी एक योगी सिद्ध समान मनसविशेष माना जायगा, नहीं के ईश्वर ६. इसलिये वोह बद्ध सावरण होनेसे मनुष्य जेसा रहेगा. ७. चतुर्भुजादि रूपांतरके प्रसंग वास्तेभी ऐसेही दोष आते हैं. यद्यपि चतुर्भुजादि आकृतिवाली व्यक्तियें होना असंभवभी नहीं है तथापि व्याप्ति के विना स्विकारनाभी योग्य नहीं है. विशेष खुलासा तत्त्व दर्शन अ. १ अवतारादि प्रकरणमें और अ. ४ सू. २०८ की नोटमें तंत्री प्रसंगमें लिखा है वहां देखो.

(शं.) यद्यपि समचेतन सूक्ष्म निरवयव है इसलिये मनस और चेतनका व्यापक व्याप्यभाव संभव है, परंतु प्रधान और मनस अव्यक्तके भाग हैं इसलिये उनका ऐसा संबंध नहीं हो सकता अर्थात् परस्परके बाधक होंगे. वा प्रधान व्यापक न होगा. (उ.) जेसे शेया, विजली, गरमी, शब्द प्रकाश सब जगे हैं. परंतु सावयव पुंज होनेसे परस्परके वा स्थूल पदार्थोंके बाधक नहीं. इसी प्रकार मनस और प्रधान परस्परके बाधक नहीं (पूर्वार्द्धमें तम प्रकाशका सहनावस्था अविवरण याद कीजिये) शेष उत्तर फिलोसोफीमें वांचोगे. (शंका.) समचेतन एक होनेसे एक देशकालमें प्रधान और मनस दोनोंके साथ नहीं हो सकता. जब यूं हो तो ईश्वरत्वका अभाव होगा (उ.) प्रधान भाग जबके मध्यम है तब यह सवालही नहीं बनता जीववृत्ति रूपकी नवीनता और शरीरस्थ क्रमियोंके समान समाधान कर लीजीये (शेष उत्तर फिलोसोफीमें वांचोगे). (शं.) प्रधान मध्यम है क्योंकि अव्यक्तका भाग है, सावयव है. क्योंकि मध्यम परिणामी है. इसी वास्ते न्यूनाधिक होने योग्य है. और अजड है. जब यूं है तो ईश्वर मध्यम, परिणामी सावयव हुवा और चेतन न ठेरा. इच्छा ज्ञान वृत्ति अजडमें वा जडमें नहीं हो सकती. और समचेतनमें इच्छादि नहीं मानते इसलिये प्रधान विशिष्टको जगतकर्ता, व्यवस्थापक, तंत्री, ईश्वर कहना हांसी उपजावे ऐसी बात है. (उ.) ईश्वर शक्ति वा ईश्वर वृत्ति

प्रसंगमें जो नवीनता विशेषता दरसाई है और जीववृत्ति २०७ प्रसंगमें बयान है वोह आपका उत्तर है. ईच्छावृत्ति, ज्ञानवृत्ति, और प्रयत्न वास्ते अवस्थाबोधक मू. ३०० के प्रसंग समान घटित रीतिसे योज लेना चाहिये. जेसे नित्य प्रलय उत्पत्ति (सोने उठने) में मनस याने जीववृत्ति न्यूनाधिक नहींभी होती अर्थात मध्यम हुयेभी समान रहती है वेसेही प्रधान वृत्ति वास्ते होना योजितव्य है ॥३३६॥

प्रधान है उपाधि जिसकी सो उपाधिवाला चेतन सर्व जगत (प्रधान, शेषा, ग्रहादि, मनस) का साक्षी है (याने सब उसमें प्रकाशित उसके विषय हैं) (इसका विवेचन उपर आ चुका है). वस्तुतः याने निरुपाधि सो चेतन अव्यवहार्य उपशम है. ॥३३७॥ उपर कहे अनुसार समचेतन, विस्तृत शेषा, ग्रहके गुरुत्व, मनसकी योग्यता और बीजोंमे सृष्टिका व्यवहार चलता है. इसका सर्वथा लय (नाश अभाव) वा सर्वथा आरंभ नहीं होता किंतु उपचयापचयका अनादि अनंत प्रवाह है ॥२९२ से ३३७ तक॥

संगति—अब आगे दूसरा पक्ष याने सर्वथा लय (महाप्रलय) और पुनः सृष्टिकी उत्पत्ति ऐसे प्रवाह है यह पक्ष लिखते हैं—

उत्पत्ति लय.

उत्पत्तिलयकी व्यवस्था स्वप्नवत् ॥३३८॥ अन्यथा असंभव होनेसे ॥३३९॥ आरंभ होनेसे अप्रलय नहीं. ॥ ३४० ॥

जो सृष्टिका सर्वथा प्रलय (महाप्रलय) और पुनः उत्पत्ति ऐसे प्रवाह होना मानें तो स्वप्न सृष्टिकी उत्पत्ति लय समान व्यवस्था होने योग्य है. ॥३३८॥ क्योंकि उससे अन्य प्रकारमें उत्पत्ति लयका प्रवाह संभव नहीं जान पडता. ॥३३९॥ उपर कहे अनुसार उपचयापचयरूप (अप्रलय) मानें सो नहीं बनता क्योंकि जिस (सृष्टि) का आरंभ है उसकी प्रलय न हो, ऐसा नहीं हो सकता. ॥३४०॥ यद्यपि अप्रलय मान्नेमें सृष्टि नियमका विरोध नहीं आता, उपदान निमित्तमे सनियम कार्य होना सिद्ध होता है, जीवोंकी जवाबदारी और उनके कर्म अनुसार फल होता रहना सिद्ध रहता है. ईश्वर, प्रकृति वा जीवोंकी व्यवस्थामें कोई दोष नहीं आता. इसलिये हरकोई या पक्ष मानों, समान परिणाम है ॥३४०॥ तथापि प्रधानादिका संकोच विकास प्रलयकोही सिद्ध करता है.

वि.—(१) सृष्टि पूर्व ईश्वरसे इतर कुछभी नहीं था, उसने अपनी इच्छासे

अभावमेंसे भावरूप जीव जगत बनाये. ऐसे उत्पत्ति और लय मानें तो असंभव दोष आता है याने अभावसे भावरूप नहीं होता. इच्छा होनेका कारण नहीं मिलता. व्यर्थ तमाशा ईश्वरका काम नहीं. जीवकी जवाबदारी न होनेसेभी उत्पत्ति लय नहीं बनता (२) सृष्टि पूर्व ईश्वरही था. वोह अपनी इच्छासे आपही जीव जगतरूप हो गया, ऐसा मानें तो प्रलय कब करेगा? जो सब जीव मुक्त न हों उस पहेले प्रलय करे तो उत्तर सृष्टिमें शेष जीवोंके कर्मानुसार सृष्टि पेदा करेगा यह मानना होगा. अर्थात् अबभी उसी अपेक्षासे सृष्टि हुई है. ऐसा माना होगा. सृष्टि पूर्व कुछ नहीं यह मंतव्य ठीक न रहेगा जो यह कहें के प्रलयमें जीव जगतही नहीं याने पूर्ववत् ईश्वर अपने रूपमें हो गया तो मुक्त अमुक्त उभय समान हुये, व्यवहार, कर्म, शास्त्र, मुक्ति सिद्धांत व्यर्थ ठेरे. जो यह मानें के सब मुक्त हो जायगे तब प्रलय करेगा याने ब्रह्म पूर्ववत् रूपमें आ जायगा. तो फेर उत्पत्ति न होगी क्योंकि व्यर्थ कार्य होगा. और पूर्वमेंभी न हुईथी यह कहना पडेगा. तथाहि वोह निरपेक्ष है तो इच्छा और सृष्टि उत्पत्ति लयमें हेतु नहीं मिलता बंध मोक्षादिकी व्यवस्था नहीं होती. व्यर्थ तमाशे ईश्वरका काम नहीं. एक अनेक रूप नहीं हो सकता. शुद्ध विकारी, कर्ता भोक्ता उंच नीच स्वामी सेवक नहीं हो सकता. और जो वोही त्रपुटीरूप विरुद्ध धर्मवाला है तो व्यवहार कर्म, शास्त्र, बंध-मोक्ष सब निष्फल होंगे. उत्पत्ति लय मानना न माननाभी व्यर्थही रहा. (३) जो यह मानें के ईश्वरने अपनी माया शक्तिमेंसे जीव जगत बनाये और आप उसमें प्रवेश किया तोभी नं २ वाले दोष आवेंगे (४) जो यह मानें के ईश्वर जीव प्रकृति तीनों नित्य हैं जीवोंके कर्म अनुसार ईश्वर उत्पत्ति लय करता है तोभी उत्पत्ति लय नहीं बनता क्योंकि सृष्टि पूर्व प्रकृति (परमाणु) और जीव प्रसरे हुये स्थिर होंगे या तो बिंदुरूप (गोले) स्थिर होंगे. ईश्वर विभु होनेसे अक्रिय है मोशनके विना मोशन नहीं होती इसलिये ईश्वर गति नहीं दे सकता और न सूर्यादि पदार्थ कर सकता है और न उनका लय कर सकता है क्योंकि सम है. जो परिच्छिन्न याने सक्रिय मानें तो अधिष्ठान आधारपना और ईश्वरत्व न होगा. याने उत्पत्तिलय करनेमेंभी असमर्थ रहेगा. (५) ईश्वरेच्छा और उसके कार्योंमें तर्क करना बकवाद मात्र है, ऐसा मानें तो ईश्वरने तो किसीको न कहा के में इच्छासे खेल करता हुं. और सर्वमें आपही है तो वादीके समान प्रतिवादिकोभी वेसाही फुरना चाहिये ऐसाभी नहीं है किंवा व्याप्तिवाला प्रतिवादीका कथन क्यों न माना जाय? इसमें कोई संतोषकारक हेतु नहीं मिलता. प्रतिवादी जो कहता है वोह ईश्वरोक्त मंतव्य क्यों न माना जाय?

(६) जडवादका उत्पत्ति लयभी, असंभव है क्योंकि अधिष्ठानाधारका अधिकार है (विशेष तत्त्वदर्शनमें) इस प्रकार सृष्टिका उत्पत्ति लय होना नहीं जचता (७) सृष्टि उत्पत्तिके क्रमके ठीक ज्ञान हुये विना प्रलयक्रम मान लेना विश्वास पात्र नहीं. इत्यादि कारणोंका लेके जीवप्रवाहसे और सृष्टि उपचयापचय रूप प्रवाहमें अनादि अनंत हैं ऐसा माना गया (८) परंतु जो महाप्रलय होना और पुनः उत्पन्न होना ऐसा प्रवाह रहनेकी संभावना हो तो उक्त प्रधान और मायाके कारण-परिणाम स्वप्न सृष्टिके समान मान सकते हैं ॥ यथा जागनेके पीछे ज्ञान पडता है के सृष्टिकी उत्पत्ति लय हुवा. और स्वप्नमें जाने पीछे जाग्रत सृष्टिके वास्तेभी ऐसा मान सकते है ॥ यद्यपि स्वप्न कालमें ईश्वर जीव बंध मोक्षादि तथा उत्पत्ति लय प्रसंगमें अनेक कल्पना देखते सुनते हैं विवादभी होता है परंतु यह सब उस भाव उस प्रकारमें नहीं होते जैसे कि है. तथापि जब जाग्रत दृष्टिसे विचारें तो यूं ज्ञान पडेता है कि द्रष्टा चेतनके सामने स्वप्नसृष्टि के स्वाभाविक ईश्वर (पूर्व संस्कारी मनस विशिष्ट चेतन या चेतन विशिष्ट पूर्व संस्कारी मनस) द्वारा अव्यक्त (प्रकृति-शेषा) में से नाम रूपात्मक जगत बनता है उसमें चेतन द्रष्टा व्यापक है, सम है, उसके विना चमत्कृति रूप नहीं होता है. और उस समय अपरोक्ष परोक्ष ज्ञानकी सिद्धि मानी जाती है. संस्कारजन्य सृष्टिसे दूसरी नवीन सृष्टि (संतान वृक्षादि) और उभयका व्यवहार तथा मनसमें नवीन संस्कारभी होते हैं और कभी मनस वृत्तिमें सम चेतन स्वप्रकाश (स्वयं ज्योति) हो जाता है. बाकी सब कल्पना फुरना मात्र अर्थशून्य है ॥ जब संस्कार बंध होनेका होता है इसमेंभी पूर्व संस्कार हेतु हैं) तो चेतनमें सब (प्रधान मनस-सृष्टि) लय होके बिंदु अव्यक्त रूप हो जाता है, जिसे सुषुप्ति कहते हैं जब पुन संस्कार फुरने लगते हैं (इसमेंभी पूर्व संस्कार हेतु है) तब उसी प्रकार दूसरी सृष्टिका आरंभ होता है. इस प्रकार उत्पत्ति लयका प्रवाह मान सकते हैं (शं.) स्वप्नमें देशकाल सूर्यादि समान मनस (जीवाभास) भी नवीन पेदा होते हैं वे पूर्व कर्मके विना है? (उ) नहीं. पूर्व कर्माधीन हैं. तथापि दृष्टांतका सब भाग नहीं लिया जाता इसलिये दार्ष्टांतमें बिंदु-बीज-गोलेमें थे वे उद्भव हुये ऐसा मान लेना चाहिये. इस प्रकार जाग्रतदृष्टिसे मान सकते हैं.-॥३३६॥

संगति—तथापि प्रस्तुत प्रसंगका स्पष्टीकरण जबही हो सकता है कि स्वप्नसृष्टिकी दृष्टिको जाग्रत दृष्टि लेके जाग्रतमें बयान करें. इसलिये उसको संक्षेपमें जनाते हैं. अर्थात् उपर सू २९२ से ३३७ तकमें समचेतन, प्रकृति (प्रकाश्य) के परिणाम

विभाग याने सूक्ष्म स्थूल विषय, मनस प्रधान करण, अव्यक्त विस्तृत सूक्ष्मा, उसमें ग्रह मनस, प्रवाह रूपसे उनकी अपचयोपचय (महाप्रलय नहीं), मनसका स्वरूप, उसकी योग्यता, मनस चेतन विशिष्ट जीवशक्ति, उनका उपयोग, मनसकी उत्पत्तिका प्रवाह, प्रधानका स्वरूप, उसकी योग्यता, प्रधान चेतन विशिष्ट ईश्वर शक्ति, ईश्वरकी निमित्त कारणता, और फेर सूत्र ३१८, ३३९, ३४० में महाप्रलय और उपचयापचय यह दो पक्ष कहे; यह सर्व किस प्रकार होते होंगे वा हो सकते हैं उनका यथावत् बयान करना मनुष्यकी शक्तिसे बाहिर है परंतु विवेकी अभ्यासीको यत् किंचित जान पडे ऐसी स्वप्नसृष्टि नामकी व्याप्ति उसके उदाहरणमें जान पडती है इसलिये वक्ष्यमाण सू. ३४१ से ३४८ तक सो उदाहरण लिखते हैं. उससे प्रस्तुत विषय और सृष्टि कार्यका व्याख्यान हो जाता हैं. जिसमें सृष्टिकी महाप्रलय (उत्पत्तिलयका प्रवाह) और महाप्रलय नही किंतु उपचयापचयका प्रवाह यह दोनों पक्ष हैं.

सृष्टि वर्णन.

प्रकृतिके परिणामका व्याख्यान स्वप्नवत् ॥३४१॥ उपादान और उपयोग जाग्रत समान होनेसे ॥३४२॥ तिसकी शक्ति और उसके विचित्र उपयोगकाभी ॥३४३॥ *ईश जीवरूप शक्तिकाभी ॥३४४॥ सृष्टि पूर्ववत् और नवीनकाभी ॥ ३४५ ॥ यथासंस्कार नियमपूर्वक सृष्टिव्यवहार और उसके क्रमकाभी ॥३४६॥ बंध और मोक्षकाभी ॥३४७॥ व्यवहार उपयोगी त्रिवादकाभी ॥३४८॥

उपरोक्त अव्यक्तके जड विभागके परिणामका व्याख्यान स्वप्नसृष्टिके समान जान लेना चाहिये (त्रिवादमें उपर जैसे कहा है वैसेभी सब हो सकता है) ॥३४१॥ क्योंकि स्वप्नसृष्टिका उपादान और उपयोग जाग्रतके समान हैं. ॥३४२॥ स्वप्नका उपादान शेषा है सोभी जाग्रतवाली प्रकृतिका भाग है, प्रकृतिसे इतर अन्य उपादान नहीं और उपादानके विना स्वप्न वा जाग्रत दृश्य नहीं. तथा लेनदेन दुःख सुखादि व्यवहार उपयोग दोनोंमें होते हैं अतः स्वप्नसृष्टिमें उसका व्याख्यान हो जाता हैं ॥३४२॥ शेषा प्रधान शक्ति और उसके विचित्र कार्यकाभी ॥३४३॥ जीव ईश्वररूप शक्तिकाभी ॥३४४॥ यथा पूर्वउत्तर पूर्वउत्तर संस्कारोंद्वारा नियमपूर्वक सृष्टिका होना और उसमे नवीन संतानादि सृष्टि होनेकाभी ॥ ३४५ ॥ यथा संस्कार

*जैसे स्वप्न सृष्टिका यंत्री संस्कारी विशिष्ट है वैसे इस ब्रह्मांडका यंत्री ईश्वर है अर्थात् सब उस तरहके यंत्रमें घूमते हैं सब जगत्की चाबी यही है ॥

नियम पूर्वक सृष्टि व्यवहारकामी ॥ ३४६ ॥ तथा बंध मोक्षादि कामी ॥३४७॥ और नीति वर्णाश्रम व्यवहार, कर्म उपासनाका निर्वाहक और उपयोगी जो पूर्वोक्त विवाद उसकामी व्याख्यान स्वप्नसृष्टिसे हो जाता है. ॥३४८॥

सूत्र ३४१से ३७८ तकका व्याख्यान यथवंत योगमें किया गया है. याने स्वप्न क्या? अर्थात् विकल्पादि ३३ प्रकारवाला नहीं (सू. २३२ का विवेचन देखो) किंतु जीव वृत्तिके पूर्व संस्कारानुसार शेषाका परिणाम है, जाग्रत स्वप्न समान है अर्थात् साधर्म्य होनेसे समान, उपादान भोग्य दृष्टिसे सजातीय, कार्य और संस्कार दृष्टिसे सादृश्य और रचना तथा उपयोग दृष्टिसे विलक्षण है. इस प्रकारकी सिद्धिमें उदाहरण महित २५ हेतु दिये हैं उस समानता प्रसंगमें ९२ शंका समाधान हैं उस समानतासे प्रचलित ६० गंभीर प्रश्नोंका सृष्टि नियमानुकूल उत्तर है जिसमे अनेक (ईश्वर, जीव, बंध, मोक्ष, सृष्टि उत्पत्ति स्थिति लय, देश काल कारण कार्य इत्यादि) विषयोंका अपरोक्षवत् समाधान हो जाता है. उसीसे सू. ३४१ से ३४९ तक वाले विषयोंका समाधान और व्याख्यान हो जाता है इत्यादि विषयका वर्णन सृष्टि नियमानुकूल बहुत विस्तारके साथ भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमें प्रकृति विवेक प्रकरण विषे किया गया है. और तत्त्वदर्शन अध्याय ४ विषे आरण्यकाधिकार प्रसंगमेभी वही बयान संक्षेपमें लिखा गया है. इसलिये यहां विस्तार नहीं करके प्रसंगवश संक्षेपमें कुछ लिखते हैं* (शोधक जिज्ञासुको विशेष जाननेकी जिज्ञासा हो तो उक्त ग्रंथोमे देख लेवे), दृष्टांतका सब भाग नहीं लिया जाता यह बात ध्यानमें रखना चाहिये.

महाप्रलय भावना.

(१) जेसे स्वप्नसृष्टिमें स्वप्नका द्रष्टा मात्र कूटस्थ चेतन अधिष्ठानाधार वेसे यहां ब्रह्मचेतन (२) जेसे वहां संस्कारी मन वेसे यहां प्रधान (३) उभयके अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध हुये जो अनिर्वचनीय अद्भूत शक्ति याने अभिमानी जीव वेसे यहां उभय विशिष्ट ईश्वर (४) जेसे अभिमानीमें इच्छा ज्ञान वृत्ति और प्रयत्न

* प्रस्तुत प्रकृति विवेक (या यूं कहो कि स्वप्न जाग्रतकी समनता या यूं कहो कि स्वप्न जाग्रतका अन्वय व्यतिरेक) से अधिकारीको आत्मानात्म-चिदचिद् याने पुरुष प्रकृतिका अनुभव इसमे बंध मोक्षादिका अनुभव हो जाता है इसलिये प्रथमका उद्देश यहांही समाप्त हो जाता है परंतु यहां इस शैलीको संक्षेपमे गौण रूपमें उदाहरण मात्र लिखा है इसलिये आगे सूत्र ३५७ मे दूसरे प्रकारमें आत्म अनुभवकी शैली कही गई है अर्थात् जाग्रत दृष्टिमेंही चिदचिद्का अनुभव हो एसा प्रकार कहा जायगा और उत्तर फिलोसोफी प्रसंग विषे विलक्षणवादमें इस प्रकृतिविवेकका उपयोग लिया जायगा

वैसे ईश्वरमें (५) अभिमानीके मन अंशमें जेसे पूर्व पूर्वके अनेक संस्कार वैसे ईश्वरके प्रधान अंशमें (जीवोंके कर्म, बीज, गोले, देशकाल, पूर्व रचना इत्यादि) अनेक संस्कार, (६) जेसे तालावमें लकडी वा कंकरी डालनेसे गति और नाना प्रकार की लहरें होती हैं वैसे उन संस्कारों अनुसार स्वप्नवाली सूक्ष्माके सूक्ष्म अंशसे बीज रूप माता पिताजन्य मनस और स्थूल अंशमेंसे पृथ्वी सूर्य चंद्र विषय और बीज जन्य वनस्पति तथा मैथुनी अमैथुनी पशु पक्षी मनुष्यादिके शरीरकी रचना तथा तथा देशकाल और तदंतरगत अनेक नवीन सृष्टि, नवीन व्यवहार और नवीन संस्कार होते हैं. इसी प्रकार ईश्वरके इच्छा ज्ञान प्रयत्न और संस्कारोंद्वारा अव्यक्त (प्रकृति) के अजड भागसे मनकी रचना और जड भागमेंसे पृथ्वी सूर्य चंद्र देशकाल बीज धातु मूल पशु पक्षी शरीरादिकी रचना होती है और तदंतर्गत जन्म मरण भोग वगैरे अनेक व्यवहार होते हैं (७) संस्कार बंध पडनेके निमित्तसे जेसे सुषुप्ति होती है पुनः उद्बोदक निमित्त होने पर पूर्वके समान वर्त्तमान जाग्रतनामा सृष्टि (जिसको स्वप्नमें जाके स्वप्नवत् पूर्वसृष्टि माना जाता है) होती है, ऐसेही जीवोंके कर्म भोग योग्य न रहनेके समय होनेसे ग्रह प्रलय वा महाप्रलय पुनः भोगादि काल निमित्त होनेपर पूर्ववत दूसरी सृष्टि (जिसे उत्तरसृष्टिमें क्षणभंगुर असद् शून्य रूपसे कहेंगे वा वैसी विषय होगी) होती है. ऐसे, ब्रह्म और अव्यक्तके संबंधसे सृष्टिका प्रवाह है. यह नहीं कह सकते के आरंभमें पुरुष स्त्री जवान पेदा हुये वा क्या? बीज हुवा वा वृक्ष इत्यादि. परंतु सृष्टिका प्रवाह है इतनाही कह सकते हैं परंतु वोह प्रवाह पूर्व पूर्वके संस्कारानुसार उत्तर उत्तरमें होता है इस प्रकार सृष्टिका प्रवाह है. (८) जेसे स्वप्नका प्रकाशक कूटस्थात्मा चेतन, स्वप्न सृष्टिका उसमें स्पर्श न होनेसे असग, स्वप्न सृष्टिमें व्यापक, अन्यथा निमित्त (जेसे बुद्धि मानती है वैसे निमित्त नहीं किंतु और प्रकारसे स्वाभाविक निमित्त), स्वयंभु, नित्य ज्ञान स्वरूप, स्वयं ज्योति, सूक्ष्म, निरावरण, अवद्ध, स्वप्नसृष्टिवाले जीवोंका चेतन, नित्यका नित्य, अप्रेरक हुये प्रेरक समान, अकर्ता हुये कर्ता समान, सत्ता स्फुरतीका निमित्त, अपरामृष्ट, स्वप्न सृष्टिका प्रकाशक, स्वप्न सृष्टिका अविषय है. इसी प्रकार स्वप्न सृष्टिके जगे ब्रह्मांड शब्द लगाके ब्रह्म चेतनके वास्ते जान लेना चाहिये. (९) जेसे स्वप्न किसीका प्रतिबिंब नहीं किंतु बिंब विना शेपाका परिणाम होनेसे प्रतिबिंबवत है इसीप्रकारकी जाग्रत सृष्टि अव्यक्तका परिणाम है (१०) जेसे पूर्व पूर्व संस्कारोंके इधर उधर मिलनेसे स्वप्न (स्वप्न सगग

सत्य) नवीन सृष्टि होती है वैसेही यह दृश्य ब्रह्मांड है (११) जैसे स्वप्नका अभिमानी स्वप्नसृष्टिका अंतरजामी सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान इच्छा ज्ञानवाला और स्वप्नसृष्टिका अविषय अचिंत्य है वैसेही ब्रह्मांडके ईश्वर बाबत्‌ ज्ञातव्य है (१२) जैसे स्वप्नकी अचिंत्य सत्ता है और स्वप्न अचिन्त्य प्रकारसे है वैसे ब्रह्मांडकी अचिंत्य सत्ता (अस्तित्व प्रकार) और ब्रह्मांड है (१३) कर्मानुसार फल, जीव स्वतंत्र परतंत्र, मान्यता और शंका समाधान, बीजसे वृक्ष, वृक्षसे बीज ऐसा प्रवाह, दिन पीछे रात, रात पीछे दिन ऐसा प्रवाह, नरमादासे संतान, पुनर्जन्मका अज्ञानभी, ज्ञान ज्ञेय असम और समभी, ज्ञात सत्ता अज्ञात सत्ता, निद्रा दोष, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति, लेन देन, बंध, मोक्षके साधन, इत्यादि उभयमें हैं, पुनः नं. १८ अनुसारभी हैं. इत्यादि उभयमें हैं, (१४) देशकाल अनादि अनंत, उनमें कारणता तद्वत्‌ अन्यमें कारण कार्य भाव और कारण कार्य भाव नहीं ऐसा उभयमें तथा जागने पीछे नं. १८ के अनुसार उभयमें समान है (१५) जैसे स्वप्नविषे अधिष्ठानमें विकार परिणाम हुये विना कूटस्थको अस्पर्श करते हुये अव्यक्तमें गति और शेषाके परिणाम होते हैं वैसे ब्रह्ममें अव्यक्तके होते हैं (१६) उभय समान होनेसे स्वप्नसृष्टि और कूटस्थके विलक्षण अस्तित्वके समान ब्रह्म और अव्यक्तके अस्तित्वकी विलक्षणता है (१७) जैसे स्वप्नसृष्टि देशकाल रहित देशकाल वाली है वैसेही यह दृश्य है* (१८) स्वप्नकालमें जो जो जिस प्रकार वा भाव है (सत्य असत्य अनेक मंतव्य और ज्ञेय) देखने वा माननेमें आये स्वप्नाभाव कालमें वे वे उसप्रकार भाववाले नहीं किंतु और प्रकार भाववाले माया (अव्यक्त) के अनिर्वचनीय रूप जान पडते हैं वैसेही जाग्रतके हैं जिनका प्रकार और भाव स्वप्नकालमें जाना जाता है. वैसेही प्रस्तुत प्रसंगमें है. अर्थात्‌ अविवेक अनानुभव काल और विवेक तथा अनुभवकालमें ज्ञातव्य है (१९) जैसे स्वप्नके अभाव पीछे अद्वैत द्रष्टा चेतन (कूटस्थ साक्षी) वैसेका वैसा शेष और तीनों अवस्थामें अन्वयी होनेसे सम है वैसेही यहां—सृष्टि अभाव कालमें ब्रह्म चेतन शेष और सब प्रावाहिक सृष्टिओंमें अन्वयी होनेसे सम है. (२०)

शेषामें यथासंस्कार अनेक रूप बन जाना, स्वमस्तक छेदन और अपनी पृष्ठ तथा मृत्युका दर्शन इत्यादि विचित्रता है ऐसे यहांभी प्रकृतिके अन्य विचित्र उपयोग हैं, (२१) मन समान प्रधानकाभी स्वाभाविक ज्ञात और अज्ञात उपयोग है (विवेचन

* वर्तमानकी सायन्स विद्या और अनेक फिलोसोफर देशकालको वस्तु नहीं मानते परंतु गति और उसका क्रम तो मानते हैं. (विशेष मूमतादाक ३. में है).

उपर आ चुका है) (२२) जेसे स्वप्नके जीवेंको (वहांके अभिमानी जीवेंको) वहांके ईश्वर मन + आत्मा) को शक्ति ओर उससे जगत केसे रचाता है सो प्रकार तथा जीवेंका स्वरूप अगम्य है वेसे यहां ईश्वरकी शक्ति रचना और जीवेंका स्वरूप अगम्य है (२३) जेसे वहां चेतनसे प्रकाशित परंतु अगम्य वेसे यहां (२४) जेसे वहां जीव, ईश्वर, बंध, मोक्ष, साधनादि वास्ते नाना मंतव्य और जागने बाद अन्यथा. वेसे नं १८ अनुसार यहां (२५) जेसे स्वप्न (स्वप्नकालकी सत्य जाग्रत) के पीछे जाग्रत (जिसमें पूर्व सृष्टि स्वप्न कहाई) इस जाग्रत पीछे स्वप्न (जिसमें इस पूर्वकी जाग्रतने स्वप्न नाम पाया) ऐसे पूर्व पूर्व संस्कारसे उत्तर उत्तर सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लय होता है ऐसेही यथा संस्कार ब्रह्मांडकी उत्पत्ति स्थिति लयका पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर प्रवाह है (२६) जेसे स्वप्न सृष्टिमें अनेक मंतव्यमें भावना है तथापि व्यवहारोपयोगी त्रिवाद सिद्धांतमे विशेप भावना होती है क्योंकि इस मंतव्यमें प्रत्यक्ष व्याप्ति समान जीव जवाबदार गिने जाने हैं बलवानद्वारा यथा कर्म फल भोगना माना जाता है. वेसे यहांभी विवेकी देश हितेपी संसारमें यही उत्तम माना जाता है. (इसका विवेचन पूर्वमें आ चुका है) (२७) जेसे स्वप्नमें कूटस्थात्मा किसीकाभी विपय नही और स्वप्रकाश होनेसे किसी अभ्यासीको अकथ्य प्रकारसे अनुभवा जाता है वेसे यहांभी ब्रह्म चेतन वास्ते ज्ञातव्य है (२८) जेसे वहां ग्रह उपचयअपचयरूप होते हैं वेसे यहांभी (२९) जेसे वहां अनादि अनंत सृष्टि है ऐसे यहांभी उपचयापचय रूप प्रवाहसे अनादि अनंत सृष्टि है (३०) जेसे स्वप्न विपे शरीरोंकी वृत्तिमें विपय विपयीका भेद ग्रहण, पूर्व वाला विपय पीछे उत्तरवाला पूर्वमें कथन, तारतम्य, तोलन, योजन, वर्गीकरण, निपेघ, विवेचन, चरम स्मृति (स्मृतिकी स्मृति) नियमन, व्याप्तिग्रह, अनुमानरूप कार्य होते हैं और चेतनकी सन्निधिसे फोनोग्राफ वा कुवेके शब्द समान नहीं जान पडते किंतु चमत्कारी सबुद्ध जान पडते हैं और जागने पीछे अन्यथा जान पडता है, ऐसेही यहांभी (यह गंभीर विपय विचारमें लेने योग्य है.)

उपचयापचयरूप प्रलय भावना.

उपर कहे हुये प्रकारमेंसे सुपुप्ति भागको निकालके उपचयापचयरूप भावनाकी व्यवस्था कर लेना चाहिये. अर्थात जेसे स्वप्नमें अमुक शहेरकी उत्पत्ति स्थिति लय अथवा किसी ग्रहका दर्शन और लय देखते हैं वेसे यहां (जाग्रत ब्रह्मांडमें) ग्रहोंकी उत्पत्ति स्थिति लय होती रहनेका प्रवाह है. जेसे जाग्रतमें आने पीछे पूर्वमें सृष्टि (स्वप्न) थी उसका नाम-प्रलय हो गया ऐसी स्मृति होती है वेसे यहां एक ग्रह वा

एक सूर्य मंडल नाम सृष्टिका क्रमसे बदलने पीछे यह (जाग्रत) नवीन सूर्य मंडल क्रमसे हुवा है और उस गतका पूर्वकी सृष्टि और उसका प्रलय एसी संज्ञा होती है इत्यादि मान सकते हैं.

उपरोक्त स्वप्नालंकारके साथ वैधर्म्य—उपर जो स्वप्न साथ रूपकालंकार लिखा है उसमें और जाग्रतमें इतना वैधर्म्य कह सकते हैं कि स्वप्नसृष्टिमें सृष्टिका निमित्त कारण जीव, वर्त्तमान सृष्टिकी अपेक्षासे बद्ध, अल्पज्ञ, परतंत्र और परिच्छिन्न है तथा शेषा सूक्ष्म (किरणों समान) है इसलिये अनिच्छित प्रवाहवश सृष्टि और वैसाही उसका व्यवहार होता है तथा कम स्पष्ट है. वर्त्तमान ब्रह्मांड सृष्टिका निमित्त कारण ईश्वर सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, स्वतंत्र अबद्ध सृष्टिसे अपरिच्छिन्न है तथा प्रकृति स्थूल है इसलिये जीवोंके कर्म अनुसार इच्छापूर्वक सनियम सृष्टि होती है और वैसाही उसका व्यवहार है. यद्यपि स्वप्नसृष्टिकी दृष्टिसे यह भेद नहीं है तथापि जाग्रतदृष्टिमें तो मान सकते हैं और स्पष्ट है. यदि इससे आगे बारीकीमें उतरें तो यह वैधर्म्यभी नहीं रहता. (स्वप्न जाग्रत प्रसंगके शंका समाधान और उक्त की सिद्धि भ्रमनाशक के उत्तरार्द्धमें सविस्तृत लिखा है. वहां देखना चाहिये.)

उपरोक्त स्वप्नालंकार संबंधी सूचना.

(१) **स्वप्नविवेक**—जो *स्वप्न-जाग्रतका विवेक होके स्वप्नका सचा स्वरूप* अनुभवमें आजाय तो प्रचलित अनेक गंभीर सवालोंके जवाब देने वा समझनेमें तथा पुरुष प्रकृति (दृष्टा दृश्य, चिदचिद, आत्मा अनात्मा क्षेत्रज्ञ क्षेत्र) के साक्षात् होनेमें अपरोक्ष जैसा उदाहरण है. परंतु जबके नीचेके *सृष्टि नियम* * *ध्यानमें* आजावें तब स्वप्न थीयरी समझमें आ सकती है. उस विना जरा कठिन जान पडता है. (१) दृष्टा दृश्य भिन्न भिन्न होते हैं. (२) ब्रह्मांडमें निकम्मी कोई वस्तु नहीं होती (३) अन हुवा प्रतीत याने विषय नहीं होता. (४) अनुपादान कार्य नहीं होता. (५) उपादान जैसा उपादेय होता है अन्य प्रकारका नहीं (६) ज्ञेय विना ज्ञान नहीं होता (७) अभावसे भावरूप नहीं होता (८) न नवीन उत्पत्ति और न नाश (९) समकाले एकके दो परिणाम वा कार्य (गति—ज्ञान) नहीं होते (१०) एक अनेक रूप नहीं हो सकता (११) निरवयका परिणाम नहीं होता (१२) पूर्व (पूर्व जन्म वा वर्तमान जन्म) दृष्ट श्रुतकेही संस्कार होते हैं (१३) मूल तत्त्व अविकारी रहता है (१४) शक्ति गुण अपने शक्तिमान गुणीसे जुदा नहीं होते. (१५) संबंध

---

* तत्व दर्शन अ ४ स.३६ की टीकामें २४ नियम लीखना बताया है

होनेसे एकधर्मी वा धर्मका दूसरे धर्मी वा धर्ममें अध्यास (अन्यथा प्रतीति) हो जाता है (१६) मिथ्या-अध्यास सतको विषय नही कर सकता (१७) परिच्छिन्न गतिमान किसी अधिष्ठानका अध्यस्त (आधेय) होता है (१८) एक स्वरूपमें दूसरे स्वरूपका प्रवेश नहीं होता अर्थात् दो वस्तु एक जगे नहीं रहती (१९) विषम सत्तावाले पदार्थ परस्परके बाधक नहींभी होते (२०) सब सब नहीं जान सकते इसलिये सर्वको सर्व प्रकारके स्वप्न नहीं होते तथा एक जीव जाग्रतमें सब पदार्थोंका ज्ञान संपादान नहीं कर सकता ॥ (तत्त्वदर्शनमें शंका समाधान सहित इनका विस्तार है) उक्त नियम समझमें आये तो स्वप्न विकल्पादि (३३) रूप नहीं. पूर्व लिखे अनुसार स्वप्न जाग्रतके समान, सजातीय, सादृश्य और विलक्षण है यह ध्यानमें आ जाय तब सवालोंका उत्तर स्वयं निकल आवे. उपर लिखा हुवा स्वप्न जाग्रतका रूपालंकार (३० बात) समझमें आ जावे.

(२) स्वप्न विवेकका प्रयोजन—साथसाथ यहभी जना देना ठीक होगा कि स्वप्नके निर्णय वा रूपक बांधनेसे मतलब क्या है? तहां जगत स्वप्न समान मिथ्या-शून्य*-त्याज्य किंवा जगत किसीका स्वप्न है? यह तात्पर्य नहीं है किंतु (१) बारीक शोधसे सूक्ष्म तीक्षण बुद्धि हो, (२) पुरुष प्रकृति (चेतन जड, आत्मा-अनात्मा) का कुछ निर्णय और कुछ लक्ष्य हो (३) ईश्वर जीव बंध मोक्ष सृष्टि उत्पत्यादि संबंधि प्रचलित गंभीर सवाल वा शंकाओंका अपरोक्ष व्याप्ति जेसा जवाब वा समाधान हो (४) व्यवहार की विलक्षणता पर ध्यान पडे (५) निष्कामता प्राप्त हो यह आशय है (शंका) असत् झूठ स्वप्नके साथ मुकाबला करना वा उसका दृष्टांत उदाहरण देना व्यर्थ वा अशिक्षितोका काम है (उ.) जो स्वप्न सृष्टिको अर्थ शून्य मानते हैं वे स्वप्नको समझे हों वा उन्होंने इसका विचार किया हैं ऐसा मानना मुशकिल है. हम अपने मुखके दूषण-भूषण वा आकृति वा शृंगार नही जान सकते थे परंतु प्रतिबिंब (इथरकी किरण) ने वे अपरोक्ष जनाये तोभी उसको हम असत् झूठा कहें क्या यह उचित है? इसी प्रकार स्वप्नभी जाग्रत जेसा कुछ है, झूठा नही है. यद्यपि प्रतिबिंब रूप नहीं तथापि प्रतिबिंब जेसा है (ईथर-शैपासे बना है) इसलिये वोह अनेक सवालोंके उत्तर मिलनेका साधन है. अतः शोधक जिज्ञासुको उसपर ध्यान देना चाहिये. अन्यको इस विषयमें दर्दसरी पेदा करने वा समय गुमानेकी जरुरत हो, ऐसा नहीं जान पडता.

कदाचित् उपर कहे अनुसार (सुषुप्तिवत्) महाप्रलयकी संभावना हो परंतु उसके

* नाहि ख पुष्प समान प्रपंच तो ईश कहा? त्याग आश ईशकी

परंतु विरोधी कारणसे दबके प्रतिकूल अवस्था हुये स्तब्ध हो जाता है. सुषुप्तिमें जीव शरीरसे जुदा नहीं होता परंतु संबंधाभाव इत्यादि निमित्त हुयेभी अनुकूल अवस्थामें रहता है. जाग्रत स्वप्नावस्थामें जीव व्यवहार करता है, कर्ता भोक्ता होता है. सुषुप्तिमें ऐसा नहीं होता. यह अंतर है ॥३९४॥

व्यष्टि समष्टिकी एकता.

संगति—अब उपर जो जीव, ईश्वर संज्ञा कही गई हैं वो उपाधिकी दृष्टिसे कही गई हैं सो जनाते हैं *—

उपाधिके भेदसे संज्ञाके भेद ॥३९५॥ यथा विश्व वैराडादि ॥३९६॥

ब्रह्मचेतन किंवा ईश्वर जीवादिककी जो संज्ञा हैं वे उपाधिकी दृष्टिको लेके हैं ॥३९५॥ यथा विश्व, तैजस, प्राज्ञ और कूटस्थ आत्मा, वैराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, समचेतन संज्ञा है. जीव साक्षी ईश्वर साक्षी संज्ञा है. ॥३९६॥ वि. व्यष्टि स्थूल शरीर इंद्रिय, व्यष्टि मनस और तदंतरगत् सूक्ष्मा इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी विश्व संज्ञा (जाग्रत) व्यष्टि मनस और सूक्ष्मा इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी तैजस संज्ञा (स्वप्न) व्यष्टि मनसवाले अधिष्ठान चेतनकी प्राज्ञ संज्ञा (सुषुप्ति) उपरोक्त व्यष्टि स्थूलादि विना केवल चेतनकी कूटस्थ-प्रत्यगात्मा संज्ञा (तुर्य) ॥ सब विश्वोंकी समष्टि उपाधि तमाम सूक्ष्मा अर्थात् तमाम स्थूल सूक्ष्म ब्रह्मांड और प्रधान इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी वैराट संज्ञा (जाग्रत समष्टि) ॥ सब तैजसोंकी समष्टि उपाधि और प्रधान अर्थात् तमाम सूक्ष्म ब्रह्मांड इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी हिरण्यगर्भ संज्ञा (सूक्ष्म समष्टि) ॥ सप्रधान अधिष्ठान चेतनकी ईश्वर संज्ञा (अव्यक्त) जड अजड रूप अव्यक्त विना असीम समचेतनकी ब्रह्म संज्ञा. (अवाच्य अव्यवहार्य, तुर्या अतीत, देशकालातीत, चिन् मात्र). विश्वविराट अ का तैजस हिरण्य गर्भ उ का प्राज्ञ और ईश्वर म् का वाच्य है समचेतन (लक्ष्य) मात्रा रहितकाभी वाच्य नहीं. किंतु लक्ष्य मात्र है. + इस प्रकार उपरोक्त जीव ईश्वरकीवृत्ति सहित ओम् के वाच्य इस संज्ञाका विचार करना चाहिये. ॥३९६॥

---

* विश्ववैराडादि संज्ञाके ज्ञानसे व्यष्टि समष्टिकी एकताका भान हो जाता है (विस्तार मांडुक्यमें है) इसलिये यहां लिखी है

+ इसी प्रकार दूसरी भावना, भाषा वा धर्ममें संज्ञा बांध सकते हैं. यथा अल्लाह, राम, जूहाइल, गॉड इत्यादि नामोंके वाच्य विश्वादि कल्प सकते है क्यो ? जिज्ञासुके अभ्यासार्थ.

निर्णय करनेमें पडना इस उत्तरार्द्धका काम नहीं है इसका विषय केवल आत्मानुभव है परंतु प्रसंगवश होना पढता है इसलिये दोनों पक्ष वास्ते स्वप्नका उदाहरण दे देना उचित समझा गया. इसलिये दिया गया है.

सृष्टिका कब आरंभ हुवा, कितने कालमें बनती है, वोह पूर्ण बन गई वा बाकी है इसका चिन्ह क्या, कब प्रलयका आरंभ होगा, कितने कालमें प्रलय होगी, कितने काल तक प्रलय रूप (सृष्टि शून्य) रहेगा, सृष्टिके सौंदर्यकी सीमा है वा नहीं, अब पीछे इससे उत्तम बनेगी वा यही उत्तम वा क्या, समष्टि कर्म क्या हैं, उनकी केसे व्यवस्था होती है, मनसकी उत्पत्ति नाश क्यों और केसे, जीव क्या केसे, ईश्वर क्या केसे, ईश्वर केसे रचता है, बंध क्या, केसे, मुक्ति क्या, केसे, इत्यादि बातोंके नियम और सवालोंका जवाब इंद्रियोंका और शब्दका विषय नहीं है यदि है. तो कुछ अनुभवका विषय है. स्वप्न सृष्टिमें शेपाका परिणाम प्रतिबिंबवत् होने और कूटस्थ स्वयं ज्योति स्वरूप होनेसे उसमें सूक्ष्म परिणाम प्रकाशित होनेसे कुछ विशेष अनुभव हो जाता है, इसलिये सूत्रमें स्वप्नका उदाहरण दिया है. ताकि इस व्याप्तिसे अपरोक्षवत् कुछ खयाल आ जाय. इसी वास्ते स्वप्न जागृतके विवेक (समानता–निर्णय) का भ्रमनाशकके उत्तरार्द्ध और तत्त्व दर्शनकी चौथी अध्यायमें प्रौढिवादकी रीतिसे इस विषय सहित, सविस्तार वर्णन किया है ॥

समष्टि भावमें अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद) के समान त्रिवादमेंभी रूपक हो सकता है यथा (१) पिंड (शरीर और ब्रह्मांडका रूपक नं. १६६–१८ में दिया है (२) सप्रकाश आकाश ब्रह्म, गरमी, प्रधान, वायु शेपा (इथर), समुद्रका माटी मिश्रित जल प्रकृति, बादल ग्रह उपग्रह, बिजली मनस, बादलमें जोतीज (वीरभोटी) केंचवा वगेरे जीव शरीर बनते हैं और जलमें मीनादि बनते हैं वे प्राणी. इन सब समूहका नाम ब्रह्मांड. प्रकाश सहित गरमीसे पानीका उठना, हवासे इधर उधर खिंचना, बादल बना, उसमें प्राणी आदि होना, बदलका बरसना, प्रलय होना, प्रकृतिरूप हो जाना, पुनः बदल होना इत्यादि प्रवाह है. ऐसे ब्रह्ममें सृष्टिकी उत्पत्यादिका प्रवाह है. और इसी अलंकारको उपचय अपनय पक्षमें लें तो सब बादलोंका एकदम नाश न होना किंतु आकाशमें कहीं बादल रहना कहीं न रहना फेर होना ऐसे उपचयापचयरूप प्रवाह मानके रूपक बंध जाता है. (३) सप्रकाश आकाश ब्रह्म, गरमी प्रधान, वायु शेपा. जमीन प्रकृति, जल मनस, वृक्ष ग्रहादि और उनमें जीवात प्राणी तथा वन मानस जीव प्राणी और इनका समूह, वन–ब्रह्मांड, ऐसेभी रूपक हो सकता है (४) सप्रकाश

आकाश ब्रह्म, हवा गरमी प्रधान, समुद्रका जल शेषा, उसमें मिट्टी प्रकृति, टीले तद-जन्य ग्रहादि, दरयायी नारयल वगेरे वनस्पति, मीन मत्स, दरयायी अश्व गाय, दरयायी पक्षी, जलमाणस इत्यादि जीव शरीर तथा इन सवका समूह समष्टि ब्रह्मांड. (९) सुषुप्ति समान पुरुष प्रकृति बीज रूप हैं. जब संस्कार स्फुरें तव प्रकृतिमेंसे गूलर, पीपल, वड, अनारके वृक्ष समान ब्रह्मांड बनता है इस वृक्षका नाम संसार है. उसको पक्षी भोक्ते हैं वे पक्षी शरीर उभय (प्रकृतिसे शरीर, जीव पुरुष) से बने हैं गूलरके फलमें पुनः सृष्टि ऐसे उस वृक्षका अनेक रूपमें अनेक प्रकारसे उपयेग होके पुनः वीज रूप हो जाता है, इस प्रकार शुद्ध ब्रह्म चेतनमें साधिष्ठान अजड और जड याने अव्यक्तका व्यापार है. ॥ ३४१ से ३४८ तक ॥

महाप्रलय मान्ने न मान्नेमें वा उपचयापचयरूप प्रलय मान्ने न मान्नेमें कुछ विशेषता नहीं है, वोह मनुष्यके उत्तर होनेसे उसका विषय नहीं है. निदान व्यवस्थापक बुद्धिकी कल्पना (चोचले) है. ॥३४८॥*

संगति—उपरोक्त ३०१ से ३०८ में जो व्याख्यान हुवा उसके उपसंहारमें वक्ष्यमाण ३४९ वा सूत्र है, जो पूर्वोक्त ३३७ के प्रचलित प्रसंग और उत्तर सू. ३५० वाले प्रसंगकी संगतिका सूचक है. अर्थात् देहेली दीपक न्यायवत् उभय प्रसंगका संबंधी है. याने जेसे वेश्वानर (जीव) सृष्टिके कार्य, इच्छा, संबंध और स्वाभावतः होते हैं वेसे समष्टि ब्रह्मांडके कार्य, इच्छा, संबंध और स्वाभावतः होते हैं यह दरसाता है (३४१ से ३४८ तक दरमीयानी उदाहरण रूपमें प्रसंग था) सू. ३३० पीछे इस ३४९ की संगति है ऐसा जान्ना चाहिये.)

सृष्टिके कार्य इच्छा संबंध और स्वभावसे वैश्वानरवत् ॥३४९॥

*परंतु सामान्य बुद्धिको संतोष नहीं होता इसलिये विद्वान बुद्धिमान मंडल बुद्धिके अवलंब अर्थ कोई न कोई प्रकारकी व्यवस्था बांधते हैं. यथा पहेले परमाणु इकटे होने लगे उससे आकाश उद्भव हुवा. गतिके क्रमसे कालकी भावना हुई, परमाणुओंकी गतिसे हवा उद्भव हुयी, हवाके वेगसे गरमी (अग्नि तेजस) उद्भव हुयी. अग्निसे जलका रूप उद्भव हुवा (द्रवत्वको पाया) उसके जमनेसे ठोस परमाणु (पृथ्वी)ओंका रूप उद्भव हुवा. फेर उनके संबंधसे उनमें जो जो गुण थे, उनका उपयोग होने लगा उसका परिणाम ग्रह शरीर इंद्रियादि सृष्टि है. इ. ॥ किंवा माया शक्ति (प्रकृति) के विषम परिणामसे पूर्व संस्कारी बुद्धि (महत्तत्त्व) उसमें अहंत्व (मेंपना) उससे शब्दादिकी भावना, अहंकार वा शब्दादिकी भावनासे जुदा जुदा मनेंद्रियोंका भाव और शब्दादिसे आकाशादि भूतकी भावना हुई ऐसी भावना दृढ होनेपर उनके संबंधसे स्थूल दृश्य (ग्रह शरीर वृक्षादिरूप) भासने लगा. यह सब पूर्व संस्कारमें था, सो सब अविभक्त रूपमें आया इ. ॥

सृष्टि और उसके कार्य, (१) समचेतन (क्षेत्रज्ञ) (२) प्रकृति (क्षेत्र) (३) उभयके स्वभाव (योग्यता) (४) उभयके संबंध—जीव कर्म संबंध (५) और ईश्वरेच्छासे होते हैं. जैसेके वैश्वानर सृष्टि (जीव सृष्टि) के विशिष्ट, उनकी योग्यता, उनके और ज्ञेयके संबंध तथा इच्छासे होते हैं वैसे होते हैं ॥३४९॥ इसका व्याख्यान उपर (सू. १५० से १९६ तकमें ३०७, ३०९ में तथा ३३० में आ चुका है ॥ सारांश पूर्वोक्त क्षेत्रज्ञ क्षेत्र इन उभयके अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंधसे अनिर्वचनीय (व्यष्टि समष्टि) सृष्टि और अनिर्वचनीय उक्त व्यवहार होता है जैसाके प्रवाहरूप जाग्रत स्वप्नमें वा जैसाके प्रवाह रूप जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्तिमें देखते हैं ॥३४९॥

अवस्था.

संगति.—अब (सृष्टि कार्यके हेतु इच्छादि कहके) पूर्वोक्त जीवकी कितनीक अवस्थाका बयान करते हैं. जो प्रस्तुत प्रसंगमेंभी उपयोगी हैं*).

साधिष्ठान मन और सूक्ष्म स्वप्न ॥३५०॥ स्थूल सहित सो जाग्रत ॥३५१॥ आवृत अवस्था विशेष सुषुप्ति ॥३५२॥ मनकी स्तब्धता सो मूर्छा ॥३५३॥ शरीर त्याग सो मरण ॥३५४॥

समचेतन (प्रत्यगात्मा कूटस्थ चेतन, तथा संस्कारी मनस और सूक्ष्म इन तीनोंका समूह स्वप्नसृष्टि है ॥ तहां तीनों व्यापारके हेतु हैं ॥३५०॥ जो स्थूल प्रकृति ज्यादा करें तो इन चारोंका समूह जाग्रतसृष्टि है ॥ तहां चारों व्यापारके हेतु हैं ॥३५१॥ (कभी वेगके प्रवाहसे स्वप्नका जाग्रतमें और जाग्रतका स्वप्नमेंभी उपयोग हो जाता है) ॥३५१॥ जब चेतनविशिष्ट अंतःकरणकी गति स्थिर संस्कारवाली होती है अर्थात् थकानसे ठेरती है, सुख परिणाम पाती है. किसीके साथ उसका संबंध नहीं होता, इसलिये उसकी योग्यताका उपयोग नहीं होता ऐसी अज्ञान (असंबंध) आवृत्त अवस्थाका नाम सुषुप्ति है. ॥ और कफादि तरंगोंसेभी आवृत्त हो जाती है, ऐसा पक्षभी है ॥३५२॥ मूर्छा अवस्था उसे कहते हैं कि अनेच्छित बलात्कारसे मनकी गति बंध पड जाय परंतु शरीरसे जुदा न पडे ॥३५३॥ कोईभी प्रकारसे जीववृत्ति शरीरसे जुदा पट जाय उसे मरण कहते हैं ॥३५४॥ उपरोक्त सब अवस्था उपाधिमें होती हैं और उनके लक्षणमें भेद होता है ॥ मरणमें शरीरसे जीव भिन्न हो जाता है इसलिये शरीर अनुपयोगी हो जाता है. मूर्छामें जीव शरीरसे भिन्न नहीं होता

*३५०-३५१ नित्य प्रलय, ३५२ गुह प्रलय, ३५३ उपचारिक वा प्राकृतिक प्रलय. ३५४ महाप्रलयमें दृष्टांत रूप ले सकते हैं.

परंतु विरोधी कारणसे दबके प्रतिकूल अवस्था हुये स्तब्ध हो जाता है. सुषुप्तिमें जीव शरीरसे जुदा नहीं होता परंतु संबंधाभाव इत्यादि निमित्त हुयेभी अनुकूल अवस्थामें रहता है. जाग्रत स्वप्नावस्थामें जीव व्यवहार करता है, कर्ता भोक्ता होता है. सुषुप्तिमें ऐसा नहीं होता. यह अंतर है ॥३९४॥

व्यष्टि समष्टिकी एकता.

संगति—अब उपर जो जीव, ईश्वर संज्ञा कही गई हैं वो उपाधिकी दृष्टिसे कही गई हैं सो जनाते हैं *—

उपाधिके भेदसे संज्ञाके भेद ॥३९५॥ यथा विश्व वैराडादि ॥३९६॥

ब्रह्मचेतन किंवा ईश्वर जीवादिककी जो संज्ञा हैं वे उपाधिकी दृष्टिको लेके हैं ॥३९५॥ यथा विश्व, तैजस, प्राज्ञ और कूटस्थ आत्मा, वैराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, समचेतन संज्ञा है. जीव साक्षी ईश्वर साक्षी संज्ञा है. ॥३९६॥ वि. व्यष्टि स्थूल शरीर इंद्रिय. व्यष्टि मनस और तदंतरगत् सूक्ष्मा इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी विश्व संज्ञा (जाग्रत) व्यष्टि मनस और सूक्ष्मा इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी तैजस संज्ञा (स्वप्न) व्यष्टि मनसवाले अधिष्ठान चेतनकी प्राज्ञ संज्ञा (सुषुप्ति) उपरोक्त व्यष्टि स्थूलादि विना केवल चेतनकी कूटस्थ–प्रत्यगात्मा संज्ञा (तुर्य) ॥ सब विश्वोंकी समष्टि उपाधि तमाम सूक्ष्मा अर्थात् तमाम स्थूल सूक्ष्म ब्रह्मांड और प्रधान इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी वैराट संज्ञा (जाग्रत समष्टि) ॥ सब तैजसोंकी समष्टि उपाधि और प्रधान अर्थात् तमाम सूक्ष्म ब्रह्मांड इन सहितके अधिष्ठान चेतनकी हिरण्यगर्भ संज्ञा (सूक्ष्म समष्टि) ॥ सप्रधान अधिष्ठान चेतनकी ईश्वर संज्ञा (अव्यक्त) जड अजड रूप अव्यक्त विना असीम समचेतनकी ब्रह्म संज्ञा. (अवाच्य अव्यवहार्य, तुर्या अतीत, देशकालातीत, चिन् मात्र). विश्वविराट अ का तैजस हिरण्य गर्भ उ का प्राज्ञ और ईश्वर म् का वाच्य है समचेतन (लक्ष्य) मात्रा रहितकाभी वाच्य नहीं. किंतु लक्ष्य मात्र है. + इस प्रकार उपरोक्त जीव ईश्वरकीवृत्ति सहित ओम् के वाच्य इस संज्ञाका विचार करना चाहिये. ॥३९६॥

---

* विश्ववैराडादि संज्ञाके ज्ञानसे व्यष्टि समष्टिकी एकताका भान हो जाता है (विस्तार मांडुक्यमें है) इसलिये यहा लिखी है

+ इसी प्रकार दूसरी भावना, भाषा वा धर्ममें संज्ञा बांध सकते है. यथा अल्लाह, राम, जब्राइल, गॉड इत्यादि नामोके वाच्य विश्वादि कल्प सकते है क्यों ? जिज्ञासुके अभ्यासार्थ.

उस विचारका परिणाम यह आवेगा के चेतन ब्रह्म पेअद्वैत है. मायाकी उपाधिसे नाना रूपमें जान पडता है. याने माया मात्र द्वैत है. व्यष्टि समष्टिकी एकता है. तमाम दृश्य माया बिंदुमें समाजाता है और माया—अव्यक्त अपने अधिष्ठानमें लय होके रहती है.॥३९९॥

दुःख सुख.

संगति—अब दो सूत्रसे पूर्वोक्त जीवके अनुभव होनेके सहकारी जो दुःख सुख उनके लक्षण लिखके पुनः आत्म अनुभवार्थ विशिष्ट प्रकार और व्यवहार तथा उसके विभाग बतावेंगे ताकि अभ्यासीको शीघ्र लाभ हो.

प्रकृति अनुकूल नैमित्तिक स्थित अनुकूल अवस्था. ॥ ३९७ ॥ तिससे विपरीत प्रतिकूल ॥ ३९८ ॥

किसी निमित्त विशेषसे जीववृत्तिकी प्रकृतिके अनुकूल जो अवस्था उसका नाम अनुकूलावस्था अर्थात् सुख है ॥३९७॥ किसी निमित्त विशेषसे जीववृत्तिकी प्रकृतिके प्रतिकूल जो अवस्था उस प्रतिकूलावस्थाका नाम दुःख है ॥३९८॥

दु.ख सुख अवस्था स्थायी नहीं है निमित्तसे वृत्तिके परिणाम विशेष है सो जो अनुकूल ज्ञानके विषय है तो उनका नाम सुख और जो प्रतिकूल ज्ञानके विषय तो उनकी दुःख सज्ञा होती है. शरीरके रसायणीय सयोगके प्रतिकूल जो शरीरकी अवस्था जैसे के गुमडा खुलना, वा चीरे लगनेपर, पेटमें कीडे स्लबल करनेपर, वा काटा लगनेपर जो अवस्था होती है ऐसी अवस्थाके साथ मनका सबंध हो तब मनोवृत्ति तदाकार होती है. यह उसकी प्रतिकूल विक्षिप्त अवस्था है क्योकि उस ससर्गसे ऐसा असर (प्रभाव) होनेसे प्रतिकूल अवस्था हुई है. जब उक्त अवस्था सहित तदाकार मन आत्माका विषय होता है, तब उसकी सज्ञा दुःख होती है जो विषय नहीं हो तो ऐसा प्रयोग वा भान नहीं होता. जैसेके गुमडा आदिमे प्रतिकूल स्थिति हो और निंद्रा आ जावे तो स्वप्नमें जीववृत्ति आनंदमे रमती है वा दुःख नहीं होता. जोकि गुमडे आदिकी स्थिति वैसीही होती है परतु जीव वृत्तिका असबध है क्लोरोफारम सुंघने पीछे चीरफाडका दुःख नहीं होता. जब स्वप्नसे जागे वा नशा उतरे तब गुमडे वा चीरेके आकार होनेसे पुनः दुःख सज्ञा होती है. इससे सिद्ध हुवा के शरीर वा मनको दु.ख नहीं, शरीर वा मन दुःखरूप नहीं और आत्मा दुःखरूप वा आत्माको दुःख नहीं. किंतु जब मनात्मा सबंधी जो शरीर तिसकी प्रतिकूल अवस्थाके साथमें मनका सबंध हो तब मनोवृत्तिकी उसके असरसे प्रतिकूल अवस्था होती है. इन उभय

संबद्ध अवस्थाका नाम शारीरिक दुःख है. साक्षी चेतनमें ग्रहण (विषय; प्रकाशित, ज्ञेय) होनेसे उसकी सिद्धि होती है. जो ग्रहण न हो तो फोनोग्राफकी आवाज जेसे जंगलमें हो रही हो वेसी है वा स्वप्नमें जीववृत्ति आनंदमें रमती हो और गुमडा खुलता हो वेसी है. किंवा पीडा होनेपर मन जो दांतको जोरसे दाब ले—दांताकार हो जावे तो दुःख मालम नहीं होता क्योंकि मन तदाकार न होनेसे वोह स्थिति साक्षीभास्य न हुई परंतु तदाकार होनेपर साक्षीभास्य हो जावे तो उत्तर क्षणमें दुःख स्थिति आकारवाला में का अभ्यासी पुनः चेतनमें ग्रहण होता है अर्थात् मैं दुःखी ऐसा आकार होता है. यह आकार आत्मामें तादात्म्य होनेसे जीव दुःखी अर्थात् मैं दुःखी ऐसा व्यवहार विशिष्ट (प्रमाता—जीव) में होता है.

पुत्र वा धनका नाश सुनके वा देखके, वा पूर्व अनुभूत दुःखावस्थाकी (शारीरिक मानसिक दुःखकी) स्मृति होनेपर उस असरसे जीववृत्तिकी प्रतिकूल (रसायणीय संयोग वा प्रकृति—स्वभावसे विरुद्ध) स्थिति होती है इसका नाम **मानसिक दुःखावस्था** है क्योंकि शरीरके संबंध विना होती वा रहती है. यह अवस्था जब साक्षीमें ग्रहण हो तब उसका प्रकाश (ज्ञान) होता है और तबही मानसिक दुःख संज्ञा होती है और उपर कहे अनुसार दूसरी क्षणमें मैं दुःखी ऐसा व्यवहार विशिष्टमें होता है वा माना जाता है, जेसा दुःख वास्ते प्रकार कहा वेसाही सुख वास्ते योज लेना चाहिये. अनुकूल जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस वा गंध उनका संबंध होनेपर शरीर इंद्रियकी अनुकूल स्थिति होती है उस स्थिति वा अनुकूल शब्दादि आकार जो मनकी असर पाई हुई वृत्ति स्थिर हुई उस विषयाकार सहित आत्माकी विषय होती है इस स्थितिका नाम सुख है.

उसमें शरीर इंद्रियानुकूल असरजन्य मनकी स्थितिको **शारीरिक सुख** और शब्दादि असरजन्यको **मानसिक** सुख संज्ञा देते हैं. मानसिक सुखका दूसरा उदाहरण यह है—इष्ट धन पुत्रादिकी प्राप्तिसे किंवा पूर्वानुभूत सुखकी स्मृति होनेसे असर पाई हुई जीववृत्तिकी विक्षेप रहित स्थिर अनुकूल अवस्था होती है और वोह आत्मामें विषय (ग्रहण) होती है ऐसी स्थितिका नाम सुख है. इस अवस्थावाली जीववृत्ति सो जावे और स्वप्न आवे तो वहां दुःखावस्थाभी प्राप्त हो जाती है और जागती है तो सुखावस्था हो जाती है इसलिये सुखभी दुःख समान चिर अवस्था सिद्ध होती है. परस्परका संबंध होनेसे तनका मनपर, मनका तनपर प्रभाव (असर) पडता है. और दुःख सुखका पर्यवसान आत्मामें होता है अर्थात् जो उपरोक्त स्थिति

याने दुःख सुख साक्षीभास्य न हों तो दुःख सुख संज्ञाभी न हो और मैं दुःखी मैं सुखी ऐसाभी न हो किंतु जेसे लकडीको चीरें वा लकडी पर रंग चढावें ऐसी स्थिति हो. इसलिये दुःख संग प्रसंगमें शरीर मन और आत्मा इन तीनोंको लिया जाता है. और सुख दुःखकी विशिष्टमें प्रतीति वा व्यवहार होनेसे आत्मा भोक्तृत्वका हेतु है ऐसा आरोप किया जाता है. सारांश दुःख सुख अपर्व अवस्था हैं और उसका विवेक अभ्यासीजनही कर सकते हैं.

उपरके बयानसे यहभी जान लिया होगाकि दुःखाभावका नाम सुख वा सुखाभावका नाम दुःख नहीं है इन उभयके अभावकालमे इनसे इतर अवस्था होती हैं और जो इतर न हों तो उदासीन अवस्था होती है. कारण के जीववृत्तिकी जाग्रतादि रागादि, क्रतादि, भावादि, समाधि, मूर्छा अनुवृत्ति इत्यादि अनेक अवस्था होती रहती हैं. सुख दुःख भोग हैं वा उपभोग हैं, इसकी जानभी आपको हो गई होगी.

दुःख सुख स्वतोग्रह होनेसे इनका अनुभव सबको होता है. परंतु जिसने विवेक और परीक्षा पूर्वक जाना है उसको आत्मा अनात्माके स्वरूपका भान और मनका सामान्य ज्ञान हो जाता है.

आत्माकी दुःख सुख अवस्था नही क्योंकि वोह अमूर्त्त सम और निरवयव तत्त्व रूप है. उसपर मूर्त पदार्थोंका असर वा उससे स्पर्श नहीं होता. निर्लेप आकाशवत्. इसलिये उसको कूटस्थ कहते हैं. जो आत्माको निराकार चेतन अमूर्त्त तत्त्व मानके उसकी दुःख सुखावस्था मानते हैं वे सत्यपर हों ऐसा कहना मुशकिल जान पडता है. ॥ ३५८ ॥

स्वतः प्रमाण.

परतः प्रमाण स्वतः प्रमाणवत् नहीं ॥३५९॥ स्वतः प्रमाणमें ग्रहण होनेसे ॥३६०॥ उससे इतर (ज्ञान ग्राहक सामग्रीसे इतर अन्य) द्वारा ग्रहण परतः प्रमाण ॥३६१॥ सामान्य संभारद्वारा ग्रहण स्वतः प्रमाण ॥३६२॥ प्रमात्व और अप्रमात्वमें ज्ञानत्वकी समानता ॥ ३६३ ॥ यथा वर्त्तमान कलीगत् पांच हजार वर्ष आर्यावर्त्त देश इंगलिश राज्यमें ब्रह्मानंद और तुं भार्गव ऐसे जागृतमें तथा तद्वत् वा अन्यथा स्वप्न विषे इन उभय प्रतीतिमें ॥३६४॥ स्वतः प्रमाणताभी अपेक्षासे ॥३६५॥

जिसे परतः प्रमाण कहते हैं सो स्वतःप्रमाण जेसा नहीं है ॥३५९॥ क्योंकि जो परतः प्रमाण है वोह स्वतःप्रमाणमें ग्रहण हो जाता है और स्वतःप्रमाण परतः प्रमाणमें ग्रहण नहीं होता. ॥३६०॥ यावत् दोषाभाव सहित जो ज्ञान ग्राहक (इंद्रिय

मन, आत्मा, सन्निकर्ष) सामग्रीं है उनसे इतर जिसद्वारा (ज्ञानगुण–व्याप्तिज्ञान–अनुमिति इ.) विषयका ग्रहण होता हो (माना जाय) उसे परतः प्रमाण कहते हैं॥३६१॥ और यावत् ज्ञान ग्राहक सामग्री हैं उनद्वाराही विषयका ग्रहण होता हो तो इस सामग्रीकोही स्वतः प्रमाण कहते हैं. ॥३६२॥ प्रमात्व (यथार्थ ज्ञानमें जो यथार्थत्व वा प्रमामें जो प्रमात्व धर्म सो) और अप्रमात्व (अयथार्थ ज्ञानमें जो अयथार्थपना वा अप्रमामें जो अप्रमात्व धर्म सो) इन दोनोंमें ज्ञानत्व धर्म रहा हुवा है ॥३६३॥ यद्यपि प्रमात्वकालमें व्यवहार मान्य (मानव मंडल मान्य) प्रमात्व, प्रमात्व रूपसे स्वतः ग्रहण हो जाता है क्योंकि जीववृत्ति (वृत्ति ज्ञान) ने उस समय तदाकार परिणाम पाया है. और दोष बलसे अप्रमात्व काल (प्रकार) में अप्रमात्व, अप्रमात्वरूपसे ग्रहण नहीं होता क्योंकि उस समय दोष बल करके जीववृत्तिका दोषाकार वा प्रमेयाकार परिणाम नहो हो सका है, तथापि ज्ञानत्व धर्म दोनोंमें रहा हुवा है अर्थात् कोई न कोई प्रकार भावमें ग्रहण हुये हैं. जो ऐसा न मानें तो सफल प्रवृत्ति बोधक–उपयोग कालमें और निष्फल प्रवृत्ति बोधक–भ्रमसंशयके बाध हुये पीछे उस भाव उस प्रकारकी साक्षी नहीं मिलती परंतु मिलती तो है. इसलिये सामान्य ज्ञानपना तो उभयमें जान पडता है. अलबत्ते- प्रमात्व अप्रमात्व यह दोनों वृत्तिके भेद होनेसे उनके ग्रहण प्रकारमें भेद है. प्रमात्व साक्षीमें ग्रहण हो जाता है. और व्यवहार पक्षकी रीतिसे अप्रमात्व अनुमानका विषय हो पडता है. ॥३६३॥ प्रमात्व अमात्वमें ज्ञानत्व है और किस भाव या प्रकारमें ग्रहण होते हैं उसका उदाहरण देते हैं.—जैसेके इस बोध वचन कालमें कलियुगके ५०००) वर्ष बीते है. ऐसा काल है, आर्यावर्त्त देश है, इंगलीश सरकारका राज्य है कोई बोधक अपने शिष्यको कहे मैं बोधक ब्रह्मानंद व्यक्ति हुं तूं श्रोता भार्गव व्यक्ति है. इस प्रकार जाग्रत अवस्थामें प्रमात्व विशिष्ट प्रमा (यथार्थ ज्ञान) है. और फेर स्वप्नमें यही देशकाल राज व्यक्ति जान पडें, किंवा इससे अन्यथा (देश, काल, राज्य, क्षत्री आदि रूपकी व्यक्ति) जान पडे. इन उभय ज्ञानमें ज्ञानत्व समान है. जो ऐसा न होता तो जागने पीछे स्वप्नका वृतांत न कहा जाता–स्मृति न होती. उभय उदाहरणमें तिस तिस कालमें प्रमात्व रूपसेही ग्रहण हुवा. व्यतिरेक कालमें अप्रमात्व था ऐसे विषय हुवा है उसमें विषयका परिवर्तन कारण है. ॥३६४॥

३६४ इस प्रकारके उदाहरण देनेका आशय यह है कि ग्रंथके काल और कर्ताका मान रहे, पूज्य गुरुश्रीकी प्रसादीकी यादगारी रहे. स्वामीश्री ब्रह्मानंदजी अपने शिष्य आत्मानंदको भार्गव इस पदसे बोलते थे.

जिसको स्वतःप्रमाणता (स्वयंज्ञान होनेका साधनपना) कहते हैं वोहभी अर्थात आत्मा अपनी और परकी सिद्धिमें स्वतः प्रमाण है ऐसा कहना वा मानना अपेक्षामें कहा जाता है, नहीं तो याने वस्तुतः औरही अकथ्य प्रकार है.' २९५॥

स्वतः प्रमाण (ज्ञान करनेमें आप प्रमाण) और स्वतो ग्रहका बयान.

व्यवहारदृष्टि और परमार्थदृष्टिमें अंतरभी होता है. इस बातको विवेकी अनुभवी पुरुषही जान सकते हैं सर्व साधारण नहीं.

व्यवहारमें यथार्थ ज्ञानको **प्रमा** कहते हैं (वस्तुतः ज्ञान स्वरुप चेतनका नाम प्रमा है) यथार्थ ज्ञानके साधनको करण (साधन) याने प्रमाण कहते हैं जेसे के मन, इंद्रिय, विषय विषयीका सन्निकर्ष (योग्य संबंध) प्रमाण कहाते हैं. अयथार्थ ज्ञानको **अप्रमा** कहते हैं. उसके साधन (प्रमाण) मन इंद्रिय वगैरे नहीं माने जाते किंतु अज्ञानादि सामग्रीसे उसके अप्रमात्वकी उत्पत्ति होती है और उसका अप्रमात्व साक्षीमें ग्रहण नही होता. (शं.) उसकी नास्ति (अभाव) पीछे वोह अयथार्थ ज्ञान ज्ञेय था ऐसा क्यों कर ग्रहण हो सकता है और भ्रम या अध्यास कालमें उसे क्या कहें ? प्रमा कहें वा अप्रमा कहें और प्रमाका विषय कहें वा अप्रमाका ? प्रमाका विषय कहा नहीं जाता. क्योंकि बाध कालमें अन्यथा जान पडता है. अप्रमा कोई वस्तु सिद्ध नही होती क्योंकि भ्रम वा अध्यासमी ज्ञानका विषय तो है. तो फेर क्या माना ? (उ.) यह अनिर्वचनीय विषय है. जिसने यह बात समझली होगी "कि यथार्थ क्या ? यथार्थ वेत्ता, किसिको कहना मुशकिल है," वोह इस विषयको कुछ समझ सकता है. ज्ञान स्वरूप ब्रह्मसे इतरका निर्णय इस निर्णयपर आधार रखता है. तत्त्व दर्शनके अ. १ और तीनमें अध्यासको समझाया है वहां देखिये यहां इसका प्रसंग नही है. प्रकृतिवादि इस विषयमें अभी नहीं उतरें हैं. अतः उनकी पद्धतिसे इसका फेसला नहीं हो सकता तथापि दृश्यके पदार्थ क्या और केसे, यह मनुष्य नही जान सकता इतना उनका कहना विचार करने योग्य है और जो दृश्यको "इत्थमेव" कहते हैं उनके हठको उन पोसही रहने दीजिये.

व्यवहारमें बाह्य विषयके ज्ञान होने वास्ते पांच ज्ञान तंतु (ज्ञान इंद्रिय) और आंतरीय विषयके ज्ञान वास्ते मन (मगज) करण कहाता है यही स्वतः कुदरती प्रमाण हैं किंवा विषय विषयीका कोई प्रकारसे योग्य अभेद संबंध यह अंतरंग प्रमाण है और संबंधसे उत्पन्न हुवा जो ज्ञान गुण (वृत्ति ज्ञान–वृत्तिका प्रकाशक परिणाम

वा इम्प्रेशन) तथा अनुमान (व्याप्य वा व्याप्ति ज्ञान इत्यादि ज्ञान) परतः प्रमाण कहाते हैं क्योंकि स्वतः प्रमाणजन्य ज्ञान करके उत्पन्न होने हैं अतः परतः हैं.

विचारदृष्टिसे देखा जाय तो इंद्रिय मन यह ज्ञान होनेमें बहिरंग सहकारी हैं साक्षात् प्रमाण नहीं किंतु उसमे उत्तर विषय विषयीका योग्य संबंध अंतरंग प्रमाण है और जो ओर आगे विचार चलावें तो यहभी ज्ञान होनेमें अंतरंग सहकारी साधन है स्वतःप्रमाण रूप नहीं है. उसका कारण यह है कि जब तंनस प्रयोग (मेसमेरीझम) किया जाता है तो विषेयकी आंखें बंध होती हैं दूर परोक्ष देशस्थ पदार्थका रूप रस, स्पर्श, गंध बताता है और परीक्षासे वे सत्य निकलने हैं वहा इंद्रिय विषयका या मन और विषयका या जीव और विषयका योग्य संबंध नहीं तोभी उसका ज्ञान होता है. परंतु यह बात बुद्धि नहीं स्वीकार सकती और न ऐसा फोट सृष्टि नियम जान पडता है इसलिये वहां बात यह है कि रूपादिका फोटो ईथरद्वारा विषायकके मनके साथ संबंध पाते हैं इसलिये इंद्रिय प्रमाण नही परंतु मन तो है. अब ऐसा मानभी लेवें तो विषयाकार मन हुवा और आत्माके साथ संबंध पाया तब आत्मामें ग्रहण हुवा (ज्ञान हुवा) यूं हो तो यह सवाल पैदा होता है कि मन और आत्माके संबंधका, मनका, और मनके परिणाम (विषयाकारता, रागादि परिणाम) का ज्ञान किस प्रमाण (साधन) से होता होगा. जो नहीं होता तो अप्रमाण है तथा मनका सामान्य ज्ञान विवेकी साधकोकों होताभी है. मन स्वयं जड है उसको ज्ञान नही हो सकता. करण अपना आप करण नही हो सकता तो फेर मजकुर ज्ञान (संबंधादि) कैसे होता है? अंतमें यही कहना और मानना पडता है कि आत्माही ज्ञाता (प्रमाता) दृष्टा (साक्षी) है मन, उसके परिणाम, उसका संबंध, आत्मा और मनका भेद, स्मृति इन सबके प्रकाश करने, ग्रहण करने, या ज्ञान होनेमें आपही साधन (प्रमाण) है इसीका नाम स्वतःप्रमाणपना है उससे इतर कोई अन्य साधन नहीं है. स्वप्नसृष्टि और तदगत् दृश्य विषय (गंध रूप स्पर्शादि स्वप्नदृष्टा जो स्वतःप्रमाण रूप चेतन है उसमें उसीसे विषय होते हैं इसलिये वहां वही स्वतःप्रमाण है और उसमें स्वतोग्रह होते हैं और साक्षी (स्वयंप्रकाश) होता है.

(शं.) जब स्वतःप्रमाण रूप है तो भ्रमसंशयकी अनुत्पत्ति है परंतु उत्पत्ति देखते हैं अतः स्वतः प्रमाण और स्वतोग्रहवादका स्वीकार नही हो सकता (उ.) क्लोरा फारम सुंघाने पीछे मूर्छाकालमें मूर्छितकी वाणी द्वारा उत्तम भाषण सुना जाता है

और जाग्रति पीछे मुझे मालूम नही, ऐसा कहता है * कारण यह है कि संस्कारी मगज वा मनका फोनोग्राफवत् उपयोग होता है. स्वतःप्रमाण रूप जो साक्षी उसका योग्य संबंध नही है इसलिये उसमें ग्रहण नहीं होनेसे आरण्यरुदनवत् था. इससे मान पडता है कि जब जीववृत्ति (विशिष्ट मन) विषयाकार हुवा साक्ष्य हो किंवा स्वयंही साक्ष्य हो तब चेतनमें साक्षीत्व, स्वतःप्रमाणत्वका प्रयोग होता है. अन्यथा उसमें प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय (ज्ञेय) का उच्चारण वा आरोप नहीं कर सकते. भ्रम वा अध्यास प्रसंगमें मन दोष वा अर्थाध्यासाकार नहीं हो सका. इसलिये अप्रमात्व साक्षीका विषय नहीं हो सका—नहीं हो सकता. मृगजलका पूर्व उत्तर और स्वप्न सृष्टिका विचार करिये. इसी वास्ते स्वतोग्रह शब्दका उपयोग किया गया है.

पूर्वोक्त विषयका पुनः विस्तार करते हैं ॥ घट विषय और यह घट ऐसे प्रमेय और ऐसा ज्ञान है वा नहीं? जो कहो के नहीं तो अप्रमाण होनेसे व्यवहार न हो सकेगा.

जो कहो के प्रमेय हैं तो जिस प्रमाणद्वारा वे विषय हुये—ग्रहण हुये वोह प्रमेय है वा नही जो न हों तो अप्रमाण हुवा (या भ्रम ठेरा) और जो कहो के है तो जिसका प्रमेय है उसको क्या कहोगे? सारांश उपर स्वतोग्रह (२३६, २४१) प्रसंग में कहे अनुसार अनवस्था, अन्योऽन्यआश्रय वा चक्रिका वा अप्रमाणता और दृष्ट विरुद्ध दोष आवेगा. अंतमें किसी न किसीको स्वतःप्रमाण (आपही ज्ञान होनेका साधन) मानाही पडेगा. कारण के ज्ञान और ज्ञेयका उपयोग सर्वको सिद्ध है. इस प्रकार स्वतःप्रमाणपनेकी सिद्धि होती है. वोह स्वतःप्रमाण आत्मा है. उसीमें अपने आप प्रमाणता और स्वंप्रकाशता सिद्ध होती है. † घट, चक्षु और प्रकाश इन तीनसे घटमें ज्ञेयता होती है. घटस्थानमें प्रकाश (दीपक) रखें तो प्रकाशमें अपने प्रकाश करनेकी योग्यता होनेसे दो मे ज्ञेयता होती है. अर्थात् चक्षु और प्रकाश ॥ इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रस गंधमें प्रकाश विना ज्ञेयता होती है. अंदरमें दुःख सुख, स्मृति रागादिमें इंद्रिय विना ज्ञेयता होती है. अर्थात् केवल मन राग द्वेष दुःख सुखाकाररूप, स्वतःप्रमाणरूप आत्माका प्रमेय—विषय होता है. यहां करण

*प्रयोगकर्त्ता अपनेपर अच्छी प्रकार परीक्षा की गई है.

† जेयगत् प्रत्यक्षत्व विषय चेतनकी सत्तासे अभिन्न सत्ताकपना मात्र है. चेतनकी सत्तासे उसकी सत्ता भान रहती है, उस विना प्रमेयता अनिर्द्ध है, यह बात वेदान्त उत्तर विशेषतोंके अनुभवसे जान सकेंगे. इसलिये प्रमेयकी चर्चा नहीं की है.

(मन) अपने वास्ते आप प्रमाण नहीं हो सकता. इसलिये आत्माकोही स्वतःप्रमाण (ज्ञान होनेका साधन) रूप माना पडा. और आत्मा किसीका प्रमेय नहीं होता. परंतु अहंत्वादि प्रसंगमें उसका प्रकाश तो होता है इसलिये स्वयंप्रकाश (ज्ञानस्वरूप) स्वीकारना पडता है याने अपनी सिद्धिमें आपही प्रमाण है. आत्माका आत्मा ज्ञाता, अथवा उसका ज्ञाता प्रकाशक अन्य, इत्यादि मानेमें उपरोक्त अनवस्थादि दोष आ जाते हैं इसलिये स्वप्रकाश स्वयंप्रमाण कहा जाता है. जैसे दुःखादि प्रसंगमें कहा वैसे शब्दादि पंच विषय वास्ते जानना चाहिये क्योंकि विषय पकडानेमें इंद्रियें तो चिमटा हैं वा विषय आनेके मार्ग हैं, मन उनका आकार धरता है वोह सविषयाकार दुःखादि समान ग्रहण होता है, इसलिये स्वयंप्रमाण रूप आत्मामें स्वतोग्रह होते हैं. स्वप्नमें इंद्रियादि द्वारा शब्दादिका ग्रहण होना भान होता है वस्तुतः वहां सर्व साक्षी भास्य हैं. ऐसेही यहाभी. क्योंकि ज्ञानतंतु कर्मतंतुसे अन्य कोई इंद्रिय नहीं. जिन्हे शरीरसे भिन्न इंद्रिय कहते हो याने वे मनकीही योग्यता है और ज्ञानतंतु कर्मतंतु उन योग्यताके उपयोगके साधन हैं (गोलक हैं). इस रीतिसे (स्थूल व्यवहार) दृष्टि विना किसीमें प्रमाणताही नहीं घटती. परतःप्रमाणवादिसे पूछना पडता है कि आपका यह मंतव्य (सब ज्ञान गुण वा अनुमानादिके विषय हैं. देखो १८६, १८७ का विवेचन.) किसीका विषय न हुवा याने ग्रहण न हुवा तो अप्रमाण ठेरा, अमान्य रहा. और जो किसीका प्रमेय हुवा तो जिसमें ग्रहण हुवा वोह स्वयं प्रमाण ठेरेगा. जो अनुमानका अनुमानादि प्रमाण मानोगे तो स्वतोग्रह (२३९, २७१) प्रसंगमें कहे अनुसार वा यहां उपर कहे अनुसार अनवस्थादि दोष आवेंगे. जो ज्ञान गुण वा अनुमानकोही स्वतःप्रमाण मानोगे तो उत्पन्न वा व्याप्तिजन्य न होगा किंतु उससे पूर्वही स्वतःसिद्ध व्याप्ति और उसके ज्ञानका प्रकाशक होगा इसलिये उसके वास्ते उसे उत्पन्न वा उसे अनुमान नहीं कह सकोगे. इसी प्रकार मगज (ग्रेमेटर) के इम्प्रेशनमें स्वतःप्रमाणता नहीं घटती क्योंकि वोह स्वयं परतः (अनुमानादि) का विषय है. (स्वतोग्रह प्रसंग याद कीजे) प्रमात्व (घटादिके ज्ञानका यथार्थपना) कालमेंभी जबतक मन प्रमात्व आकार न धरे वहां तक ज्ञेय सत्य वा भ्रम, ऐसा प्रयोग नहीं हो सकता. किंतु दोषके न होनेसे प्रमात्व स्वतोत्व होनेसे प्रावाहिक व्यवहार होता है. जब मनकी बुद्धि वृत्ति प्रमात्वाकार धारे और आत्मामें ग्रहण हो (अपरोक्षत्व स्थिति हो) तब स्वतोग्रह कहाता है. इसी प्रकार भ्रमकालमें दोषादि निमित्तवश वृत्तिका अप्रमात्व आकार न हो वहां तक अप्रमात्वका ग्रहण नहीं होता किंतु भ्रमकालमेंभी प्रवाहवश

प्रमात्व रूप धरता है, इसलिये अप्रमात्वमें स्वतः प्रयोग नहीं हो सकता. किंतु प्रमात्वमें स्वतःका प्रयोग होता है. भ्रमाभावकालमें जब मनका अप्रमात्व संस्कारवाला रूप (भ्रम था, भ्रम ज्ञान हुवा था ऐसा) होता है तब वेसा अप्रमात्व स्वतःप्रमाण (अपरोक्षत्व स्थिति) का प्रमेय होता है. अंतर यह है कि यथार्थ (प्रमात्व) प्रसंगमें तो दोष न होनेसे साक्षीमें सविषय मन परिणामका ग्रहण होता है और भ्रम (अप्रमात्व) प्रसंगमें दोष होने और विषय न होनेसे सविषय भ्रम परिणाम ग्रहण नहीं होता. किंतु संस्काररूपमें ग्रहण होता है. परंतु ज्ञानत्व तो प्रमात्व और अप्रमात्व उभयमें समान है. योही स्वतःप्रामाण्य है. है, यह घट है, मिष्ट है, शीतादि स्पर्श है इत्यादिका परतः का विषय कहना स्वतः प्रमाणका प्रमेय न मानना आश्चर्य दिलाता है. (स्वतोग्रहमें विशेष लिख आये हैं.)

यद्यपि दर्शन पद्धतिसे आत्मामें स्वयं प्रमाणता प्रसिद्ध है क्योंकि उसका चेतन, उसमें संशय, उसका अज्ञान यह सब अन्य करणकी अपेक्षा विना उसके प्रमेय-विषय होते हैं तथापि बारीक दृष्टिसे देखें तो समचेतन-आत्माके स्वरूप प्रसंगमें "ज्ञान प्रकाश मात्र" "उसमें प्रकाश्य प्रकाशित" इससे अधिक कुछभी नहीं कहा जा सकता. ज्ञाता दृष्टा, भोक्ता, स्वतः प्रमाणता, (स्वयं प्रमाणता) साक्षी इत्यादि प्रयोग उपाधिवश कहे जाते हैं वा व्यवहारार्थ हैं इतनाही नहि किंतु ज्ञान प्रकाशका प्रयोग करते हुयेभी बुद्धि वृत्तिका भाव लाना पडता है. स्वप्न सृष्टिके प्रकाश प्रकाश्य पर ध्यान दोगे तो जैसा मानते वा कहते हैं वा उपर कहा है उससे अन्यथा है ऐसा स्वतः होता है. इसलिये हम आत्मा संबंधी विषयका अनुभव पर छोड देते हैं. प्रमाणका प्रमाण, इसलिये इस प्रकारके प्रमाण, प्रमाणसे प्रमाण इत्यादि प्रयोग स्वयं प्रमाणमें नहीं हो सकते. इस प्रमाणकी प्रमाण, प्रमाणसे प्रमाण इत्यादि प्रयोग स्वयं प्रमाणमें नहीं हो सकते. इस बातके आगे पीछे उपर स्वतोग्राह्यवादमें जैसे ज्ञानका ज्ञान, ज्ञानके ज्ञान, ज्ञानमें ज्ञान विशेष लिखा गये यहांभी समझ लेना चाहिये. ॥ ३५९ से ३६५ तक ॥

(शंका) उपर आत्मामें जो स्वतःप्रमाणपना (आपही ज्ञान होनेमें साधनपना) कहा सो यह बात याने ज्ञानका प्रमात्व स्वयं उत्पन्न होता है याने स्वतःसिद्ध है किंवा आत्मासे इतर मन इंद्रिय सन्निकर्ष व्याप्ति ज्ञान इन सामग्रीद्वारा प्रगटाया जाता है अर्थात् परतस्त्व है तथाही इस प्रमात्वका ज्ञान आत्मासेही आत्मामें ग्रहण होता है याने स्वतोग्रह है किंवा आत्मासे इतर सामग्री करके ग्रहण होने योग्य है याने परतो ग्रह है. जो उत्पत्ति ज्ञप्ति स्वतस्त्व मानोगे तो भ्रम संशयकी अनुत्पत्ति और जो परतस्त्व मानोगे तो अनवस्थादि दोष होंगे.

(उ.) जैसे कोई कहे कि वेद स्वतः प्रमाण है इस स्वतः प्रमाणतामें उसका यथार्थ बोधही प्रमाण है. अनुमानादि नहीं. जैसे चक्षुमें रूप ज्ञान होनेका साधनपना (प्रमाणपना) है उसमें यह प्रमात्व स्वतः सिद्ध है उसकी उत्पत्तिमें अन्यकी अपेक्षा नहीं. इस प्रमात्वका ज्ञान साक्षीमें स्वतोग्रह होता है. परसे इसका ग्रहण नहीं होता. एक आगका अंगारा गतिमें है सो अपनी उस गतिका और अपने आपका प्रकाशक है वा जैसे प्रकाशमें अपने सहित रूपके प्रकाशमान करनेकी योग्यता है. अर्थात् प्रकाशक है वा जैसे मैं हुं इसके प्रमात्वकी उत्पत्ति और ज्ञप्तिमें अन्य सामग्री नहीं है. इसी प्रकार आत्माकी स्वतः प्रमाणता (स्वतः प्रामाण्य)की न परतः उत्पत्ति है और न उस प्रमात्वके ज्ञानमें परकी अपेक्षा है. किंतु उसकी स्वभाविक योग्यता है कि स्वतः प्रमाण (स्वयंप्रमाणरूप) हो और योग्यता सहित स्वप्रकाश हो.* यह प्रमाणता योग्यता उसके स्वरूपसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है किंतु व्यवहारमें समझाने वास्ते प्रयोग हैं.

इस बातको समझने वास्ते व्यवहारिक स्वतःप्रामाण्य और परतः प्रामाण्यककी चर्चा लिखते हैं.

स्वतः प्रामाण्यवादका मंडन परतः प्रामाण्यका खंडन.

परतोग्राह्यवाद–परतःप्रामाण्यकी पद्धति और स्वतःग्राह्यवाद–स्वतःप्रामाण्यवादकी असमीचीनता पूर्व भागमें कही है तथा स्वतोग्रहकी सिद्धि इसी उतरार्द्धमें कही है तथा स्वतः प्रामाण्यका प्रकारभी कुछ कहा है. तथा इन उभय प्रक्रियाकी परिभाषाभी उपर कही है

अब यहां विशेषतःस्वतः प्रामाण्यकी सिद्धि और परतःप्रामाण्यकी असमीचीनता कहते हैं. स्वतोग्रह स्वतःप्रमाण और स्वतः प्रामाण्यके अर्थमें कुछ अंतर है तथापि रहस्य समान है. उनका अंतर उपरके विवेचनसे जान लिया होगा.

प्रमा–अबाधित अर्थगोचर वा पूर्व उत्तर आवृत्ति ज्ञान प्रमा यथा घटादिका ज्ञान. और यथार्थ स्मृतिभी सफल प्रवृत्तिकी जनक होती है. ×

प्रमासे भिन्न ज्ञान **अप्रमा**–जैसेके भ्रम संशय. और अयथार्थ स्मृतिभी निष्फल प्रवृत्तिकी जनक होती है.

प्रमा वा अप्रमामें ज्ञानत्व धर्म समान होता है. परंतु प्रमात्वका यथार्थत्वमेंही प्रयोग किया जाता है. अयथार्थत्वमें नहीं. इसलिये यथार्थत्वका नामही प्रमात्व है

---

* जडवादि, इम्प्रेशन अवस्थाको ऐसा जैसा मानते हैं

× किसी पक्षमें यथार्थ स्मृतिज्ञानको प्रमाणजन्य न होनेसे प्रमा संज्ञा नहीं दी है.

प्रमात्व और प्रामाण्य पर्याय शब्द हैं. ज्ञानजन्य प्रकटताको ज्ञातता कहते हैं.

कोई प्रकारका जहां ज्ञान होता है वहां प्रथम यथार्थता वा अयथार्थताकी उत्पत्ति और उनका ज्ञान होता है वा पीछे तथा तिनकी उत्पत्ति और ज्ञान स्वयं होता है वा कैसे ? इसका विवेचन नीचे अनुसार हैः—

प्रामाण्य दो प्रकारका स्वतस्त्व, परतस्त्व. प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्तिमें जो स्वतस्त्व वा परतस्त्व है उसे उत्पत्ति स्वतस्त्व कहते हैं प्रमात्व अप्रमात्वके ज्ञान होनेमें जो स्वतस्त्व या परतस्त्व है उसे ज्ञप्ति स्वतस्त्व कहते हैं.

दोष अभावके सहकृत जो ज्ञान मात्रकी उत्पत्तिकी सामग्री (इंद्रिय मन संबंध आत्मा) है तिसकरके जो प्रयोज्यत्व है (प्रयोजा जानापना है) यही उस प्रमात्वमें उत्पत्ति स्वतस्त्व है यथा इंद्रियादि करके जो यथार्थता ग्रहण होती है उसको परिभाषामें उत्पत्ति स्वतस्त्व कहते हैं.

ज्ञानग्राहक सामग्रीसे भिन्न करके जो प्रयोज्यत्व है यही अप्रमात्वमें उत्पत्ति परतस्त्व है. जैसे भ्रम दर्शन (रज्जु सर्पादि प्रसंग) में इंद्रियादि तिसमें पर दोषजन्य जो भ्रमदर्शन सो अप्रमात्व उत्पत्ति परतस्त्व है.

प्रमात्व विशिष्ट प्रमा ज्ञानकी दोषाभाव सहित जितनी सामग्री है उस सामग्री करके जो ग्राह्यत्व (ग्रहण होने योग्यपना) यही उस प्रमात्वमें ज्ञप्तिस्वतस्त्व है. यथा साक्षी चेतन करके प्रमा (ज्ञानवृत्ति) का ग्रहण होता है उसी करकेही तिसके प्रमात्व धर्म (यथार्थत्व) का ग्रहण होता है सो ग्राह्यत्व (ग्रहण होनेयोग्यपना) ही ज्ञप्तिस्वतस्त्व कहाता है.

निर्दोष ज्ञानग्राहक सामग्रीसे भिन्न जो सामग्री तिस करके जो ग्राह्यत्व यही अप्रमात्वमें ज्ञप्ति परतस्त्व है. यथा अनुमिति करके अप्रमात्वका ज्ञान, भ्रमकालमें अप्रमात्वका अग्रहण ज्ञप्तिपरतस्त्व है. यद्यपि भ्रमकालमें प्रमात्व समान ग्रहण है तथापि निवृत्ति पश्चात् फलका लाभ नहीं होता और अनुमितिद्वारा अप्रमात्वका निश्चय होता है प्रमात्ववत् साक्षात्से नहीं. (हा, अप्रमात्वकी अनुमितिका प्रमात्ववत् साक्षीमें ग्रहण होता है) कारण के "दोषजन्यत्व" वा "निष्फल प्रवृत्ति जनकत्व" वा "अनुत्तरत्व" भ्रम–अध्यासका लक्षण है किंवा "अधिष्ठानसे विषम सत्तावालेका अवभास" यह भ्रमका लक्षण है अतः दोषादि साक्षीके विषय नहीं. दोष सहित ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीमे अप्रमात्वकी उत्पत्ति होती है अतः सब ज्ञान अप्रमारूप नहीं, यह व्यावहारदृष्टिसे निर्णय है (सिद्धांतमें जो प्रकार है वोह अन्य है.)

निर्दोष सामग्री (नेत्रादि इंद्रिय मन) से प्रमात्वकी उत्पत्ति स्वतः होती है इसलिये दोषाभाव अधिक सामग्री नहीं है. दोषाभाव यह परतः प्रामाण्य नहीं हो सकता. दोषाभाव सहित साक्षीसे प्रमात्वका ज्ञान होता हैं. दोष सहित इंद्रिय अनुमानादि रूप ज्ञानको सामग्रीसे अप्रमात्वकी उत्पत्ति होती है सामान्य ज्ञानकी सामग्रीसे दोष पर हैं अतः अप्रमात्वकी उत्पत्ति परसे मानी गई है और प्रमात्वकी स्वतः मानी गई है. संशय प्रसंगमें दोषाभाव नहीं है प्रमात्व अभाव है अतः उपरोक्त भ्रम प्रसंगके समान योज लेना चाहिये.

उपरोक्त प्रकारसे प्रमात्वकी उत्पत्ति ज्ञप्तिमें स्वतस्त्वका स्वीकार है परंतु अप्रमात्व की उत्पत्तिमें परतस्त्व और ज्ञप्तिपरतस्त्वका स्वीकार है और अप्रमात्वके निश्चयमें परतःप्रामाण्यका स्वीकार हैं.

इस प्रकार सिद्धांतमें वृत्तिज्ञानका साक्षीसे प्रकाश होता है (साक्षीमें ग्रहण होता है) यही साक्षीमें **स्वतोग्रहपना** है और वृत्ति ज्ञानके प्रमात्वकाभी स्वतोग्रह है. परंतु कहीं दोष बलसे निश्चित भ्रम हुये विनाभी विलक्षण दोषसे प्रमा ज्ञानका ग्रहण नहीं होता इस वास्ते प्रमा हुयेभी प्रमात्वका ग्रहण नहीं होता. जैसेके स्थाणु वा पुरुष. मृगजल वा सरोवर. इस संशयात्मक ज्ञानमें प्रमा हुयेभी ग्रहण नहीं हुवा.

स्वतोग्रह—ज्ञानग्राहक सामग्रीसे-(ज्ञानत्वका ग्रहण होना) प्रमात्वका ग्रहण स्वतो ग्रह कहाता है. यथा यह घट इसमें प्रमात्वका साक्षीमें ग्रहण है. तद्वत् रज्जु सर्पके इदं पदार्थके प्रमात्वका साक्षीमें ग्रहण है. इसीका नाम स्वतोग्रह है.

स्वतःप्रामाण्य ग्रह=निर्दोष ज्ञानग्राहक सामग्रीसे प्रमात्वका ग्रहण होवे सो स्वतः प्रामाण्य ग्रह कहाता है सदोष सामग्रीसे प्रमात्वका ग्रहण नहीं होता.

उपरोक्त परतःप्रामाण्यकी असमीचीनता.

परतः प्रामाण्यवादि ज्ञानग्राहक सामग्रीसे इतर उत्पन्न हुये ज्ञान गुणको सामग्री मानता है सो नहीं बनता.

(१) इंद्रिय मात्र ज्ञान होनेकी सामग्री नहीं है किंतु सन्निकर्ष (संबंध) नामक गुण सामग्री है. व्याप्य ज्ञान अनुमितिकी सामग्री है इसी प्रकार अन्य सादृश्यादि गुण वास्ते घटा लेना परंतु ज्ञान यह स्वयं प्रमात्व अप्रमात्व उत्पत्तिमें हेतु नहीं हो सकता. किंतु प्रमात्वकी उत्पत्ति और उसके ज्ञानमें सफलत्व निष्फलत्व प्रयोज्य है. जो ज्ञानको ही मानें तो प्रमात्व अप्रमात्वके निश्चयमें अनवस्था चलेगी. जो अनवस्था नहीं मानें

(क) परतः प्रामाण्यका ज्ञान और निश्चय जो अनुमानसे माना तो अनवस्था, जो कहो के अनिश्चित तो प्रमाणपदका त्याग, जो कहो के स्वतः तो पक्षत्याग.

(ख) पृथ्वी स्थिर, जलतत्त्व चक्षुवृत्तिका बाह्यगमन, ऐसा प्रमात्व लाखों वर्ष था वर्तमान विषे परीक्षा होनेपर अप्रमात्व ठेरा. सार यह आया कि प्रमात्व अप्रमात्व की उत्पत्ति, विषय और सफल निष्फल प्रवृत्तिपर निरभर है वैसाही उसकी ज्ञप्ति वास्ते है अर्थात् बुद्धि वृत्तिमें प्रमात्व अप्रमात्वका आरोप याने वृत्तिका वैसा परिणाम होता है वैसाही उसके ज्ञानका ज्ञप्ति परिणाम है. उभय स्वयंप्रमाणरूप चेतनमें प्रकाशित हुये प्रकाशमान होते हैं वा यूं कहो कि उसमें ग्रहण होते हैं वा यूं कहो कि उस विषयमें प्रकाश्यभाव हुवा, इस भाव या प्रकार वा स्थितिका नाम स्वतोग्रह है.

(ग) नित्यके व्यवहारमें विचारो. पीपलके नीचे छाया वगैरे कारणसे भूत प्रेत होनेका अध्यास (निश्चित भ्रम) हो जाय तो वहां जानेकी प्रवृत्ति नहीं होती. यहां प्रमात्व रूपमें और उसके ज्ञानका ग्रहण है. परीक्षा होने पीछे तब अन्य संज्ञा आकार (अप्रमात्वके अनुमानाकार) वृत्ति होगी. सारांश, प्रमात्व अप्रमात्व विषय और परिवर्तन वगैरे पर आधार रखता है. नहीं के ज्ञान ग्राहक सामग्रीके आधीन. संज्ञा भेद वृत्तिकी कल्पना है जो सफल निष्फल प्रवृत्ति वश करती है. इस रीतिसे प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति ज्ञप्ति अपेक्षित ठेरती है क्योंकि सर्वज्ञत्व यथार्थ ज्ञातृत्वकी सिद्धि नहीं है.

(घ) स्वप्नके प्रमात्व अप्रमात्व विषे उपर कहा है. उसको विचारें तो जैसे उसका प्रमात्व अप्रमात्व माना जाता है वैसा नहीं किंतु कोई विलक्षण प्रकारका मान्ना पडता है उसके विना विरोध (प्रमात्वको अप्रमात्व कहना) निवारण नहीं होता. और वोह विलक्षणत्व मन वाणीका विषय नहीं किंतु, चेतनकी अपेक्षासे उसका विलक्षणत्व माना जा सकता है और वोह साक्षीमें स्वतोग्रह है.

(ङ) स्वतः उभय पक्षमें दोषभी हैं यथा भ्रम स्वतः ग्रहण होना चाहिये. नहीं तो अव्याप्ति दोष आवेगा. और परतः के दोष उपर कहेही हैं. इसलिये व्यवहारमें यूं कहना पडता है कि या तो उभय प्रकार हैं यथा प्रसंग लगा लेना. यातो अनिश्चित है परंतु एकांतकी सिद्धि होनेसे उभय पक्ष (उभय था वा अनिश्चित) नहीं बनने अतः यह बात अनिर्वचनीय और दुर्बोध्य है. केवल स्वतोग्रह याने वृत्ति परिणामका ग्रहण होना तदनुसार स्वीकार और उपयोग होना इतनाही कह सकते हैं वा तो प्रकाश और तदविलक्षण प्रकाश्य इतनाही कह सकते हैं. प्रमात्व अप्रमात्वका निश्चय

बुद्धि नहीं कर सकती.

उपसंहार.

उपरके विवादको विचारके आप समझे होगे कि उपरोक्त स्वतः प्रमाणमें जो प्रमात्व सो स्वतः प्रामाण्य रूप है और स्वतोग्रहमें जो प्रमात्व वोह स्वतः प्रामाण्यका विषय है. उभय, मन वाणी वा अनुमानके विषय नहीं. क्योंकि चेतनकी महिमा, (योग्यता) मन बुद्धि शब्दसे पर है. यह आपके पूर्व सवालका उत्तर है.

(शं) जेसे उपर आत्माको ज्ञाता ज्ञान, दृष्टा दर्शन प्रमाता प्रमाणरूप माना तो ज्ञेय–दृश्य–प्रमेय रूपभी क्यों न माना जाय ? (उ.) उपर जो विषय और साधन यह दो भेद प्रकृतिके परिणाम मानें हैं. उसका यही कारण है अर्थात् प्रधान और मनसभी विषय हैं. त्रिपुटीरूप मानें तो स्वप्नसृष्टिवत उपादानका परिणाम मान सकते हैं. कूटस्थात्मा तो उनका प्रकाशकही सिद्ध होगा. जो चेतनका रूप त्रिपुटी मानें तो वोह सावयव ठेरेगा. और उसमें जो प्रमाणता कही है वोह प्रमाता प्रमाण प्रमेयवत् नही है किंतु योग्यता है अर्थात् ब्रह्मसे इतर सब उसके भास्य हैं याने सब साक्षीभास्य हैं इतनाही भाव है. (प्रमात्वाप्रमात्व सब इसके अंतरगत् आ जाता है.) और स्वतोग्रहकाभी यही भाव है क्योंकि व्यवहार स्वतोग्रहके विना नहीं होता. जो वृत्ति वा उसका परिणाम स्वतोग्रह न हो तो कोईभी त्रिपुटी व्यवहार नहीं होता. आत्मामें जब वृत्तिके परिणाम अभेद संबंध होके प्रकाशित होते हैं (प्रकाश्य भावको पाते हैं वा ग्रहण होते हैं) तब सब व्यवहार होता है. अन्यथा फोनोग्राफवत् वा अंध दर्शनवत् वा अरण्यरुदनवत् है ॥२६५॥

उपरोक्त स्वतः परतः के विचारसे आत्माके स्वरूप बोधमें मदद मिलती है और स्वतोग्रहके मनन निदिध्याससे आत्मानुभव हो जाता है. स्वतः परतः का वर्णन उपर हुवा और स्वतोग्रहका कहते हैं.

विज्ञप्ति.

वक्ष्यमाण स्वतोग्रह प्रसंग (सू. २६६ से २९४ तक) की परिभाषाः—

(१) मनस, मन, वृत्ति, मनोवृत्ति, जीववृत्ति, करण, अंतःकरण, अंतःकरणके परिणाम, चित, मन, बुद्धि, अहंकार, चेतनविशिष्टवृत्ति, प्रमाणचेतन यह सब एक भाववाले शब्द हैं (२) स्वतोग्रह अर्थात् वृत्ति विषयका स्वप्रकाश आत्माके साथ संबंध हुये उसमें प्रकाश्यत्व भाव होना अर्थात् परकी अपेक्षा विना वृत्ति वा वृत्तिके

तो उसेंसेही स्वतोग्रह माना पडनेसे स्वत प्रामाण्य माना पडेगा.

(२) अप्रमात्व उत्पत्तिमें अनुमानको कारण माना है परंतु यह अनुमान और उसके ज्ञानमें प्रमात्व अप्रमात्व स्वतः माना पडेगा नहीं तो अनुमानकी अनवस्था चलेगी जोकि अनुभवके विरुद्ध है.

जो अप्रमात्वकी उत्पत्तिमें सामान्य सामग्रीसे इतर दोषको कारण मानें तो उस दोषके प्रमात्व उत्पत्तिको स्वत. माना पडेगा तद्वत् उसकी ज्ञप्तिमें स्वतस्त्व स्वीकारना पडेगा

(३) हरेक प्रकारके अनुमानमें न २ अनुसार होनेसे उत्पत्ति स्वतस्त्व और ज्ञप्ति स्वतस्त्व माना होगा. उसके विना अनुमानकीही सिद्धि न होगी.

(४) परतःप्रामाण्यके प्रमात्व अप्रमात्वके उत्पत्ति ज्ञप्तिमें स्वतस्त्वही माना पडेगा. अन्यथा अमान्य रहेगा वा अनवस्था रहेगी

(५) व्यवसाय (यह घट ऐसा ज्ञान) को अनुव्यवसाय (घटको मैं जानता हूं ऐसा ज्ञान) विषय करता है ऐसा माननार्मा अनुभवके विरुद्ध है. एक कालमें एकही ज्ञान होता है अनेक नहीं यह सर्व तत्र ढंडोरा सबको अनुभवसिद्ध है. अतः ज्ञानको ज्ञान विषय करता है यह बात असिद्ध है. "यह जल है और जलको मैं जानता हू," यहा पहेले ज्ञानके अभाव हुये अनुव्यवसाय ज्ञान हुआ है. साथ साथ (समकालीन) नहा है. कारण के परतःवादीके पक्षमें आत्मा विषे ज्ञान गुण एक है अनेक नहीं हैं. इसलिये एक क्षणमें अनेक ज्ञानकी हस्ती नहीं मान सकते और न एकके समकालमें अनेक कार्य मान सकते हैं.

(६) अनुव्यवसाय नामक गुण अपने गुणी (आत्मा) को विषय करे यह मंतव्य हास्यजनक है (श) यथा दीपक प्रकाश तेल बातमें उत्पन्न हुवा उनकोही प्रकाशता है तद्वत् आत्माका उत्पन्न गुण आत्माका प्रकाशक है ऐसा क्यों न माना जाय? (उ) दीपक, तेल बातका गुण नहीं है किंतु उनसे अन्य है तेल बात उसके उत्तेजक हैं तद्वत् दार्ष्टांतमें लगा लो याने आपका दृष्टान्त विषम दृष्टात है. इसलिये जब आत्माके प्रकाश होनेमें कोई सामग्री नहीं तो उसके प्रमात्व अप्रमात्व ग्रहणकी तो बातही क्या ? परंतु आत्मा और उसका प्रमात्व है तेहसही. अतः आत्माही स्वप्रकाश स्वरूप है (तद्वत उसका प्रमात्व है) उसमें वृत्तिके अपेक्षानन्य प्रमात्व अप्रमात्वादि प्रकाशित याने ग्रहण होते हैं ऐसा मानाही पडता है.

(७) परतःवादि घट और घटज्ञान यह दोनों एक कालमें अनुव्यवसायके विषय मानता है अतः परतःपक्ष नहीं.

घटके ज्ञानको में जानता हूं. ऐसा मान्ना शब्द मात्र है क्योंकि घट ज्ञानाकार वृत्तिही घटको जानता हुं, ऐसा परिणाम धारती है और एक कालमें एकके दो परिणाम नहीं हो सकते यह नियम है. किंवा परतःवादिकी रीतिसे आत्मा मनके संयोग पीछे घटज्ञान उत्पन्न हुवा. अब घटको में जानता हुं ऐसा दूसरा ज्ञान गुण उसी क्षणमें कहांसे आ गया? असिद्ध है. अतः उक्त कथन शब्द मात्र है.

(८) बालक और देवानेको छोडके विचारो. अज्ञातमें सकंप ज्ञातमें निष्कंप प्रवृत्ति होती है. तहां ज्ञातमें अनुमानही कारण नहीं है. यथा क पुरुष घरमें घट रख आया है. नोकरसे कहाता है के 'ले आ' यहां घट, वा घटका ज्ञान, यह क के अनुमानका विषय नहीं है किंतु स्मृतिजन्य है. स्मृति ज्ञान स्मृतिसे भिन्न नही होता और अनुमिति ज्ञान तो अनुमेयसे भिन्न होता है. ततः 'जल' और 'जलको में जानता हुं' यहां प्रमात्व अनुमान जन्य याने परतः नहीं है.

(१०) जहां दुःख होता है वहां अनुमानका अवसर नहीं है याने परतः नही है.

(११) स्वप्नकालमें रुपये लेना देना, दुःख वगेरे होता है, मरे हुयेको जीवता देखते हैं इत्यादि व्यवहार निश्चयपूर्वक ग्रहण होता है जागने पीछे उसमें असत वा भ्रांति वा अन्यथा बुद्धि होती है. यहां प्रमात्व अप्रमात्वका विरोध है जिसे प्रमात्वरूपसे माना गया और वेसाही व्यवहार हुवा उसेही अप्रमात्व कहा जाता है. तद्वत् जाग्रतके त्याग ग्रहण वास्ते स्वप्नमें बुद्धि हो जाती है अतः उभयका विरोध है. अवस्थांतरमें अप्रमात्वका स्वतःग्रहण हुवा है परतः नही. क ने ख को रुपैये दिये. कालांतरमें क से पूछा तो उसने कहा के ख को रुपैये दिये थे. यह ज्ञान अनुमानका विषय नही है. स्वप्नसे जागके ऐसा कोई नहीं कहता कि मुझे अनुमान हुवा था. तद्वत् उसके प्रमात्वके वास्ते अनुमान होना नहीं कहेगा. अब और उसके अप्रमात्व वास्तेभी यही कहेगा कि वोह भ्रम था, अन्यथा था. निदान जाग्रतमें स्वप्नका अप्रमात्व और उसका ज्ञान जो उत्पन्न हुवा है उसमें विषयका परिवर्तन कारण है, अनुमान कारण नही है.

(१२) जो दृश्य जान पडता है वोह यदि स्वप्नवत् अन्यथा हो तो वर्त्तमान प्रमात्व उत्पत्तिका कारण ज्ञान गुण नहीं रहेगा किंतु विषयके आधीन मान्ना पडेगा. जेसाके जाग्रतके पदार्थ स्वप्नमें जान पडते हैं. (१३) इ.

(क) परतः प्रामाण्यका ज्ञान और निश्चय जो अनुमानसे माना तो अनवस्था, जो कहो के अनिश्चित तो प्रमाणपदका त्याग, जो कहो के स्वतः तो पक्षत्याग.

(ख) पृथ्वी स्थिर, जलतत्त्व चक्षुवृत्तिका बाह्यगमन, ऐसा प्रमात्व लाखों वर्षमे या वर्तमान विषे परीक्षा होनेपर अप्रमात्व ठेरा. सार यह आया कि प्रमात्व अप्रमात्व की उत्पत्ति, विषय और सफल निष्फल प्रवृत्तिपर निरभर है वैसाही उसकी ज्ञप्ति वास्ते है अर्थात बुद्धि वृत्तिमें प्रमात्व अप्रमात्वका आरोप याने वृत्तिका वैसा परिणाम होता है वैसाही उसके ज्ञानका ज्ञप्ति परिणाम है. उभय स्वयंप्रमाणरूप चेतनमें प्रकाशित हुये प्रकाशमान होते हैं वा यूं कहो कि उसमें ग्रहण होते हैं वा यूं कहो कि उस विषयमें प्रकाशभाव हुवा, इस भाव वा प्रकार वा स्थितिका नाम **स्वतोग्रह** है.

(ग) नित्यके व्यवहारमें विचारो. पीपलके नीचे छाया वगेरे कारणसे भूत प्रेत होनेका अध्यास (निश्चित भ्रम) हो जाय तो वहां जानेकी प्रवृत्ति नहीं होती. यहां प्रमात्व रूपमें और उसके ज्ञानका ग्रहण है. परीक्षा होने पीछे तब अन्य संज्ञा आकार (अप्रमात्वके अनुमानाकार) वृत्ति होगी. सारांश, प्रमात्व अप्रमात्व विषय और परिवर्तन वगेरे पर आधार रखता है. नहीं के ज्ञान ग्राहक सामग्रीके आधीन. संज्ञा भेद वृत्तिकी कल्पना है जो सफल निष्फल प्रवृत्ति वश करती है. इस रीतिसे प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति ज्ञप्ति अपेक्षित ठेरती है क्योंकि सर्वज्ञत्व यथार्थ ज्ञातृत्वकी सिद्धि नहीं है.

(घ) स्वप्नके प्रमात्व अप्रमात्व विषे उपर कहा है. उसको विचारें तो जैसे उसका प्रमात्व अप्रमात्व माना जाता है वैसा नहीं किंतु कोई विलक्षण प्रकारका मानना पडता है उसके विना विरोध (प्रमात्वको अप्रमात्व कहना) निवारण नहीं होता. और वोह विलक्षणत्व मन वाणीका विषय नहीं किंतु, चेतनकी अपेक्षासे उसका विलक्षणत्व माना जा सकता है और वोह साक्षीमें स्वतोग्रह है.

(ङ) स्वतः उभय पक्षमें दोषभी हैं यथा भ्रम स्वतः ग्रहण होना चाहिये. नहीं तो अव्याप्ति दोष आवेगा. और परतः के दोष उपर कहेही हैं. इसलिये व्यवहारमें यूं कहना पडता है कि या तो उभय प्रकार हैं यथा प्रसंग लगा लेना. यानो अनिश्चित है परंतु एकांतकी सिद्धि होनेसे उभय पक्ष (उभय या वा अनिश्चित) नहीं बनने अतः यह बात अनिर्वचनीय और दुर्बोध्य है. केवल स्वतोग्रह याने वृत्ति परिणामका ग्रहण होना तदनुसार स्वीकार और उपयोग होना इतनाही कह सकते हैं वा तो प्रकाश और तदविलक्षण प्रकाश्य इतनाही कह सकते हैं. प्रमात्व अप्रमात्वका निश्चय

बुद्धि नहीं कर सकती.

उपसंहार.

उपरके विवादको विचारके आप समझे होगे कि उपरोक्त स्वतः प्रमाणमें जो प्रमात्व सो स्वतः प्रामाण्य रूप है और स्वतोग्रहमें जो प्रमात्व वोह स्वतः प्रामाण्यका विषय है. उभय, मन वाणी वा अनुमानके विषय नहीं. क्योंकि चेतनकी महिमा, (योग्यता) मन बुद्धि शब्दसे पर है. यह आपके पूर्व सवालका उत्तर है.

(शं) जैसे उपर आत्माको ज्ञाता ज्ञान, द्रष्टा दर्शन प्रमाता प्रमाणरूप माना तो ज्ञेय-दृश्य-प्रमेय रूपभी क्यों न माना जाय ? (उ.) उपर जो विषय और साधन यह दो भेद प्रकृतिके परिणाम मानें हैं. उसका यही कारण है अर्थात् प्रधान और मनसभी विषय हैं. त्रिपुटीरूप मानें तो स्वप्नसृष्टिवत् उपादानका परिणाम मान सकते हैं. कूटस्थात्मा तो उनका प्रकाशकही सिद्ध होगा. जो चेतनका रूप त्रिपुटी मानें तो वोह सावयव ठेरेगा. और उसमें जो प्रमाणता कही है वोह प्रमाता प्रमाण प्रमेयवत् नही है किंतु योग्यता है अर्थात् ब्रह्मसे इतर सब उसके भास्य हैं याने सब साक्षीभास्य हैं इतनाही भाव है. (प्रमात्वाप्रमात्व सब इसके अंतरगत् आ जाता है.) और स्वतोग्रहकाभी यही भाव है क्योंकि व्यवहार स्वतोग्रहके विना नहीं होता. जो वृत्ति वा उसका परिणाम स्वतोग्रह न हो तो कोईभी त्रिपुटी व्यवहार नहीं होता. आत्मामें जब वृत्तिके परिणाम अभेद संबंध होके प्रकाशित होते हैं (प्रकाश्य भावको पाते हैं वा ग्रहण होते हैं) तब सब व्यवहार होता है. अन्यथा फोनोग्राफवत् वा अंध दर्शनवत् वा अरण्यरुदनवत् है ॥३६५॥

उपरोक्त स्वतः परतः के विचारसे आत्माके स्वरूप बोधमें मदद मिलती है और स्वतोग्रहके मनन निदिध्याससे आत्मानुभव हो जाता है. स्वतः परतः का वर्णन उपर हुवा और स्वतोग्रहका कहते हैं.

विज्ञप्ति.

वक्ष्यमाण स्वतोग्रह प्रसंग (सू. ३६६ से ३९४ तक) की परिभाषाः—

(१) मनस, मन, वृत्ति, मनोवृत्ति, जीववृत्ति, करण, अंतःकरण, अंतःकरणके परिणाम, चित, मन, बुद्धि, अहंकार, चेतनविशिष्टवृत्ति, प्रमाणचेतन यह सब एक भाववाले शब्द हैं (२) स्वतोग्रह अर्थात् वृत्ति विषयका स्वप्रकाश आत्माके साथ संबंध हुये उसमें प्रकाश्यत्व भाव होना अर्थात् परकी अपेक्षा विना वृत्ति वा वृत्तिके

परिणामका ग्रहण होना, प्रकाशमें आना, पकटाना, भावमें आना, उजालेमें आना, आत्मासे आत्मामें ग्रहण होना प्रतितीमें आना, ज्ञेय होना, प्रमेय होना, विषयका प्रमात्व वा अप्रमात्वका बोध होना, स्वतः प्रमाणरूप जो आत्मा उसका विषय होना व्यवहार करने वा व्यवहार होने योग्य होना यह सब एक भाववाले शब्द हैं. (३) अभेद संबंध याने अनिर्वचनीय अभेद संबंध, अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध, अनिर्वचनीय ओतप्रोत संबंध, अनिर्वचनीय समान (साथसाथ) संबंध अनिर्वचनीय संयोग संबंध यह सब एक भाववाले शब्द है (४) स्वप्रकाश, ज्ञानप्रकाश, समचेतन, चेतन आत्मा, प्रत्यगात्मा, स्वयंप्रकाश, चिद्प्रकाश, ज्ञानस्वरूप–साक्षी चेतन, कूटस्थ, अक्रिय चेतन, निरीह चेतन, स्वतःप्रमाणरूप चेतन, अंतःकरण विशिष्टचेतन, अंतःकरण उपहितचेतन, अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन, अंतःकरण अनवच्छिन्न चेतन यह सब एक नाम हैं.

इन चारोंका जहां जो योग्य शोभित हो वहां वोह शब्द योग लेना चाहिये.

स्वतोग्रह

विषयका स्वप्रकाश साथ योग्य अभेद संबंध हुये विषयमें प्रकाश्यत्व भाव होना स्वतोग्रह ॥३६६॥ अहमाकार वृत्तिका स्वतोग्रह अहंत्व ॥३६७॥ हीरकवत् ॥३६८॥ अपूर्व अभ्यास होनेसे अन्यथा अवभास ॥३६९॥ शब्द यंत्रवत् ॥३७०॥ तद्वत् रागादिके संबंधमें ॥३७१॥

स्वप्रकाश स्वरूप चेतनमें योग्य अभेद संबंध हुये किसी विषयमे प्रकाश्यत्वभाव (ज्ञेयत्व प्रमेयत्व दृश्यत्व भाव) होना (याने प्रकाशित होना–आत्मप्रकाशमें ग्रहण होना) ऐसी स्थिति भाव वा प्रकारका नाम स्वतोग्रह संज्ञा है. ऐसे प्रसंगोंमें स्वतः याने आत्मासे ग्रह आत्मामें ग्रहण होनेसे स्वतोग्रह कहाता है और इसलिये व्यवहारमें आत्मा विषे स्वतः वा स्वयंप्रमाणरूप है, ऐसा प्रयोग होता है. क्योंकि अन्य करणकी अपेक्षा विना प्रकाश्य याने करणभी उसका प्रमेय हुवा है ॥३६६॥ (शं.) व्यापक समचेतनके साथ विषयका अभेद संबंध स्वभावतः है क्योंकि व्याप्य है तो फेर हरेक पदार्थमे प्रकाश्यभाव क्यों नही होता ? (उ.) इसीके समाधानार्थ सूत्रमें योग्य पद है. याने अजड जो मनस याने जीव वृत्ति उस द्वारा जो संबंध हो सो किंवा, जीव वृत्तिका संबंध योग्य संबंध कहा जाता है. सर्व सामान्यके साथ ऐसा संबंध नहीं है. ॥३६६॥ स्वप्रकाशरूप चेतनमें योग्य अभेद संबंध हुये अहमाकार वृत्तिका प्रकाश्यभावको प्राप्त होना याने प्रत्यगात्मामे ग्रहण होना अहंत्व कहाता है.

॥३६७॥ जेसे रसायणीय प्रयोगजन्य कोयला विशेष प्रकाशके साथ योग्य अभेद (तादात्म्य) संबंध पानेसे हीरा कहाता हे वेसे अंतःकरण कि जिसकी अहंवृत्ति हे वोह चेतन संबंधसे सचेत जीव जान पडता हे. उसकी अहंत्ववृत्ति चमत्कार वाली हे ॥३६८॥ जीववृत्तिमें मेंपनेका अपूर्व अभ्यास हो गया हे. इसलिये इसके तादात्म्य संबंधी आत्मामें मेंपनेका अन्यथा अवभास याने संसर्गाध्यास हे अर्थात् आत्मामें अहंत्व-अभिमान प्रतीत होता हे. वस्तुतः आत्मामें अहंत्व नहीं हे किंतु वोह ते अहंत्वका लक्ष्य स्वरूप हे. ॥३६९॥ जेसेकि फोनोग्राफसे अजाने श्रोताकी ज्ञानशक्तिका फोनोग्राफके (में ते शरण तेरी इ.) शब्दोंमें तादात्म्य होनेसे कानमें आये हुये (ज्ञान साथ मिलनेसे) उसमें "बुद्धि पूर्वक कोई जीव गा रहा हे" ऐसा अवभास हो जाता हे, ऐसे अहंवृत्तिके साथ आत्मा ज्ञान स्वरूपका तादात्म्य होनेसे अन्यथा (में आत्मा—आत्मामें मेंपना) ऐसा अवभास होता हे. ॥ ३७० ॥ जेसे अहंत्व वास्ते कहा वेसेही राग द्वेष, इच्छा, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान, संस्कार, इम्प्रेशन, यह सब अहंवत् अंतःकरणकीही अवस्था-परिणाम हें इनका स्वप्रकाश चेतनमें योग्य अभेद संबंध हुये इनका प्रकाश्यभावमें आना याने आत्मामें ग्रहण होना रागत्वादि कहाते हें.॥३७१॥ कारण के आत्मामें ग्रहण हुये विना कुंभवायु वत् हें. और आत्मा रागी, द्वेषी, दुःखी, सुखी इत्यादि अध्यासके वास्ते अहंवृत्तिवत् ज्ञातव्य हे. (शं.) क्या रागादिभी घटादि समान इदं रूपसे ग्रहण होते हें?

(उ.) मनस और उसके रागादि परिणाम इदं भावसे (इदं पद करके) ग्रहण नही होते किंतु इदं भाव विना स्वतः ग्रहण हो जाता हें. ऐसी आत्मामें स्वतः प्रमाणता हे. जेसे अहंत्व वास्ते ३१८ में कहा वेसेही यहां रागादिके लिये इदंभाव विना अपरोक्ष होना जान लेना चाहिये ॥३७१॥ वि. आत्मा करके जीवका अस्तित्व हे और उस स्वतः सिद्ध अस्तित्वमें अहं पदके प्रयोग करनेका अभ्यास—अध्यास हो रहा हे. वस्तुतः में पदके लक्ष्यमें अस्तित्व हे, उसमें मेंपना नहीं हे. इत्यादि सू. २९०-२९१ के विवेचन में कहा गया हे. ऐसे अहमाकार रागादि आकारवृत्तिका ग्रहण अहंत्व रागीत्वादि कहाता हे. (इसी प्रकार तु, वोह, यह वास्ते घट सकता हे. परंतु इदंभावसे). (शं.) भावत्व, ग्रहणत्व अपरोक्षत्व क्या? (उ.) इस अद्भुत् अकथ्य अवाच्य विषयके भावार्थ जान्ने वास्ते नीचेके ३ सूत्रका विवेचन ध्यानमें लीजियेः- (सूचना) अगले ३७२ से ३९४ सूत्र तक ग्रह पदका उपर लिखे अनुसार यह अर्थ कर लेना. "स्वप्रकाश चेतनमें योग्य अभेद संबंध हुये

स्वतः ग्रहण होना." और ग्रहण होना, अभेद संबंध और स्वप्रकाश इन पदोंका भावार्थ उपर कही हुई विज्ञप्ति (सू. ३६९ के पूर्व) अनुसार कर लेना चाहिये- विस्तारभयसे जगे जगे नही लिखेंगे.

सविषय तदाकारवाली अथवा केवळ जीववृत्तिका स्वतोग्रह अपरोक्षत्व ॥३७२॥ ज्ञेयत्वादि प्रयोगका हेतु ॥३७३॥ यथा सामग्रीजन्य परिणामका स्वतोग्रह प्रमात्व और अप्रमात्व ॥३७४॥

अर्थ स्पष्ट ॥३७२॥ सो अपरोक्षत्व, ज्ञेयत्व, ज्ञानत्व + ज्ञातृत्व, दृश्यत्व, दर्शनत्व, द्रष्टत्व, भोग्यत्व, भोगत्व और भोक्तृत्व, करणत्व, कर्मत्व, कर्तृत्व, प्रमेयत्व, प्रमाणत्व, प्रमातृत्व इन १९ का हेतु होता है. अर्थात् अपरोक्षत्वसे त्रिपुटी व्यवहार होता है ॥३७३॥ जेसी ज्ञान ग्राहक सामग्री हो उस अनुसार जीववृत्तिका परिणाम, उस परिणाम ग्रहणको प्रमात्व और अप्रमात्व कहते हैं ॥३७४॥

अपरोक्षत्व.

अपरोक्षत्व क्या? विषय, इंद्रिय, ज्ञानतंतु, मन, आत्मा, या इनका संबंध वा क्या? ॥ विषय ज्ञेय होनेसे और इंद्रियादि अपरोक्षत्वके साधन होनेसे उनको अपरोक्षत्व संज्ञा नहीं दे सकते तो फेर वोह क्या? इसके समाधानमें लक्ष्य प्रकारसे कुछ विवेचन करते हैं. (नीचेका विवेचन, विषय रूप शरीरके अंदर है वा बाहिर है इन दोनों पक्षमें लग सकता है.) घट वा किसी बिंदु का जहां अपरोक्षत्व होता है वहां ऐसा प्रकार है.—

अंतःकरण विषयके प्रकाश होनेमें आडमी है और प्रकाश पाने तथा उपयोग होनेमें करणमी है. विषयाकार न हो तब तक आड जेसा और तदाकार हो तब प्रकाश होने और उपयोग होनेमें करण है. इसी वास्ते उसको अज्ञान और उसकी वृत्तिको अविद्या तथा प्रकाशक परिणाम (विद्या) भी कहते हैं (जेसे बालक घटवाले दीपकके प्रकाशमें जो सामने वास्तु हैं उसको लेने जाता है. आप (शरीर) जो प्रकाशकी आडमें हो तो वस्तु नहीं देख पडती और आडमें न हो किंतु वस्तु के आकार हो तो उसके प्रकाशित होने वा प्राप्तिमें हेतु हो जाता है.) जेसे कुंडेके नीचे दीपक हो, लकडी कुंडेको तोडे तो दीपक स्वंप्रकाश हुवा लकडीको प्रकाशता है और दुसरे पदार्थोंको प्रकाशता है वेसे विषयके आवरण भंग होनेमें वृत्ति (लकडी) निमित्त है. आवरण अर्थात् योग्य असंबंध

+ ज्ञान, सामान्य ज्ञान, विशेष ज्ञान, सन्निकर्ष ग्रहण इत्यादि ज्ञानत्व

भाव (अप्रतीति–अज्ञान) वा योग्य संबंधाभाव ॥ तथा दीपककी रोशनी आकाशमें व्यापक है परंतु नहीं जान पडती. जब उससे कोई अथडाता है तब अथडानेवाली वस्तु प्रकाशित होते हुयें रोशनी प्रकाश्य सहित प्रकाशमान होती है. इसी प्रकार जब मन कुछ आकार रखके वा विषयाकार होके आत्मासे संबंध पाता है तब इस प्रकाश्यसहित आत्मा प्रकाशमान होता है.. अब अपरोक्षत्वकी तरफ चलिये. उक्त विषय (घट वा बिंदु) वा अन्य विषयकी आकारवाली किरणें चक्षु द्वारा अंदर जाती हैं (अथवा चक्षुवृत्ति बाहिर आके घटाकार होती है) तब उसके साथ मनका संबंध होता है और मन तदाकार हुवा (इम्प्रेशनरूप हुवा) क्षणभर स्थिर होता है (जिसे जडवाद इम्प्रेशन कहता है). जो स्थिर न हो तो विषय अपरोक्ष न हो. इसलिये वेसा–सविषयाकार मन आत्मामें अभेद संबंध होनेसे आत्माके प्रकाशमें प्रकाशित होता है (अर्थात् दूसरेकी अपेक्षा विना स्वप्रकाश चेतनमें ग्रहण होता है; कारण के आत्मामें स्वतः प्रमाणपना है) और उन सहित आत्मा स्वयंप्रकाश होता है इस अवस्थामें विषय, मन और आत्मा स्थिर होते हैं इस अवस्थाका नाम **अपरोक्षत्व** है. इस समय विषयका नाम वा प्रमात्व, अप्रमात्व वा प्रमात्व ज्ञात वा अप्रमात्व अज्ञात वा यह, तु, वोह, मैं, यह घट है वा अन्य. मैं घटको जानता हुं इत्यादि भाव ज्ञात वा अज्ञात अपरोक्ष वा परोक्ष नहीं होते. इस कालमें आत्मा वा मनका भाव परिणाममी नहीं है. इस समय सविषय मन स्वतोग्राह्य है. आत्मा स्वतः प्रमाण रूप है इसलिये स्वतोग्रह होता है यह स्थिति स्वाभाविक तो क्षणभर होती है. त्राटकके अभ्यासीको विशेष कालभी रह सकती है. यह स्थिति केवल अनुभवगम्य है. मन वाणीकी विषय नहीं होती. आजतक शब्द वाणी वा बुद्धि इसका बयान न कर सके. और होती है सबको. इसलिये आत्मा अलुप्त स्वयंप्रकाश हुवेभी अचित्य है यह स्पष्ट हुवा.-

जेसे संस्कृत फोनोग्राफ संस्कृत हो जानेसे उसमें वक्ता समान व्यवहार होता है, जेसे जीववृत्ति सुषुप्ति वा तुर्या अवस्थामें वेसी स्थितिसे संस्कृत होनेसे उसमें वेसा व्यवहार होता है. वेसेही प्रस्तुत स्थितिकालमें जीववृत्ति वेसी संस्कृत * हो

* संस्कृतको अर्थ कोई प्रतिबिंब लेना मानता है, परंतु चेतनका प्रतिबिंब नहीं हो सकता. किंतु जीव वृत्तिकी योग्यता, पूर्वाभ्यासमे अपूर्व प्रकार बनता है. जेसे जन्मांधको आकाशका आइडिया नहीं होता. परंतु जो आंख खुल जावें तो उसकी मनोवृत्ति देश संस्कृत हो जानेसे उसका अन्य भाव अन्य प्रकार हो जाता है. ऐसे संस्कृतका भाव लेना चाहिये.

जानेमे योग्यता और पूर्वाभ्यासके बलसे उत्तर क्षणमें 'यह घट' इस ज्ञानाकारको पाती है. (यहां घट भावाकार तो संस्कृत है और "यह घट" ऐसा शब्द अभ्यासित है) और आत्मामें पुनः—ग्रहण (अपरोक्ष) होती है, फेर उसी प्रकार तीसरी क्षणमें "मैं घटको जानता हूं" ऐसे (ज्ञानाकार) आकार धारती है, और आत्मामें प्रकाशित होती है. सब प्रसंगमें आत्मा विशिष्ट अर्थात् तादात्म्य है, इस वास्ते उसके उक्त व्यवहार परिणाम प्रमाता (जीव) में जान पडते हैं, इसलिये प्रमातामें विषयी (यह घट, मैं जानता हूं) व्यवहार होता है. मनस करण कहाता है. घटादि ज्ञेय—प्रमेय कहे जाते हैं × और व्यवहारके अनुकूल होनेसे चेतनको स्वयंप्रमाण वा स्वतःप्रमाण और स्वप्रकाश कहते हैं. तथा यह घट ऐसा सामान्य वृत्तिज्ञान 'घटको जानता हूं' ऐसा विशेष वृत्ति ज्ञान यह विषय कहाते हैं + और आत्मामें यह ज्ञानवृत्ति स्वतोग्रह होती है और आत्म विशिष्टता है इसलिये आत्माको विषयी याने प्रकाशक कहा जाता है वा साक्षी कहते हैं. जो उभय (ज्ञेय और ज्ञान परिणाम) आत्मप्रकाशमें ग्रहण न हों तो उनका अस्तित्वही सिद्ध न हो अथवा व्यवहारही न हो. अरण्यरुदनवत् वा क्लोराफारम सुंघने पीछे जो रोगीकी वाणीद्वारा आज्ञात व्याख्यान होता है ऐसा शून्यवत् निष्फल हो.

जैसे रंग रूपका अपरोक्षत्व कहा वैसेही शब्द स्पर्श रस गंधादि क्षणिक तथा गतिके संबंधमें जान लेना चाहीये और उनके व्यवहारकीभी वही रीति है.

जहां अन्य विषय विना केवल मनकाही उपरोक्त (अहं, रागादि, चित्तादि, कृतादि, भावनादि, किंवा स्मृतिरूप) अथवा सुषुप्ति वा तुर्यारूप किंवा प्रमात्व, प्रमात्व ज्ञातता अथवा अनुमानरूप ज्ञानवृत्ति, अथवा अन्य ज्ञानरूप वृत्ति परिणाम स्वप्रकाशमें अभेद संबंध हुये स्वतः ग्रहण होते हैं वहांभी अपरोक्षत्व पूर्व समान है अर्थात् मन परिणाम और अंतःकरण अवच्छिन्न आत्मा यह दोनोंही अदभूत—अपूर्व-स्थितिमें है उस पीछे पूर्व कहे अनुसार मैं रागी, मैं स्मृति—स्मरणकर्ता, मैं भावना इच्छावाला, मैं कर्ता, मुझे कुछभी खबर नहीं थी, मैं सुखसे सोया था इत्यादि रूपसे विशिष्टमें व्यवहार

× विषय और तदाकार वृत्ति अवच्छिन्न चेतनकी तादात्म्यता है इसलिये घट ज्ञान अंशमें प्रत्यक्ष है. तीनोंका अभेद तद्ज्ञान प्रत्यक्षमें प्रयोजक है और ज्ञानगत (ज्ञप्ति) प्रत्यक्षका सामान्य रूपसे लक्षण चेतन मात्र है. और विषयगत प्रत्यक्षत्व तो प्रमाता सत्तासे विलक्षण पना मात्र है.

+दोष सामग्री न होनेसे और मति नियमानुकूल सामग्री होनेसे तिसके नियम अनुसार प्रमात्वकी स्वतः उत्पत्ति और प्रमात्व ज्ञातताका स्वतः ग्रहण होता है.

होता है. परंतु उन परिणामोंका इदं रूपसे व्यवहार नहीं हो सकता क्योंकि इदंत्व आकार परिणाम धरनेवाला मन है सो उस समय अहंत्वादि आकार है और जिस जिस समय इदंत्वाकारको पाता है उस समय अहंत्वादि परिणाम (आकार विषय) नहीं है. इसलिये मनके परिणाम इदंत्वके विषय नहीं होते. इसी वास्ते अहंत्वादि सीमावाले रूपमें विषय नहीं हो सकने. और जहां अपरोक्षत्व हुये पीछे विषय है वहां इदंत्व प्रमात्वादि रूप भाव आकार मनका परिणाम हो सकता है. इसलिये उनमें इदंत्व और प्रमात्वादिका व्यवहार होता है.

(शं.) ग्रहण आत्मामें और उसका व्यवहार अन्य (वृत्ति वा जीव) में यह केसे ? और वोहभी क्षणक्रमसे ऐसा क्यों कर हो सकता है. (उ.) अपरोक्षत्व स्थितिमें वृत्ति संस्कृत हुई है वृत्तिकी अजटरूप योग्यता, उसका अभ्यास, और उभयका तादात्म्य रहनेसे विशिष्टमें व्यवहार होता है, ऐसा ईशारा उपर कई जगे आ चुका है. और एक कालमें एकसे दो कार्य नहीं होते इसलिये विशिष्टमेंही क्रमसे कार्य होते हैं. यह उत्तर है.

विषय संबंध विनावाले मनके परिणाम (क्रिया, करण, कर्तृत्व व्यवहार) उपर कहे हैं ।। संयोगियों औरक्रिया कर्ताका प्रत्यक्ष हो तोही संयोग और क्रियाका प्रत्यक्ष होता है. नहीं तो नहीं. जीववृत्तिद्वारा पलक, जिव्हा, प्राण, पेट, ओष्ट, मूलद्वार इत्यादिमें गति होती है. उसका प्रत्यक्ष नहीं होता और हाथ पांव अपरोक्ष होनेसे उनकी क्रिया का अपरोक्ष ज्ञान होता है. और उपर कहे अनुसार कर्तृत्व व्यवहार होता है. (यद्यपि अस्थिर रूप होनेसे ज्ञान समान गतिका अपरोक्षत्व नहीं होता तदपि सामान्यतः होता है). गतिका अपरोक्षत्व हो वा न हो परंतु जब मनद्वारा गति होती है तब वृत्ति चेतन विशिष्ट होनेसे " मैं कर्ता, मैंने किया " इत्यादि व्यवहार प्रमातामें होता है. मन विना हो तो (जेसेंके सुषुप्तिमें प्राणका आवागमन वेसे) विशिष्टमें व्यवहार नहीं होता. चित्त बुद्धि मन और अहंकार यह अंतःकरणके परिणाम हैं यह कह देना तो सहेल है. परंतु इसका समझना समझाना कठिन है, यथा बुद्धिका स्वरूप नहीं कहा जाता. ध्यानमें आनाभी कठिन है. तथापि जो अपरोक्षत्व और स्वतोग्रह प्रसंग अनुभवमें आ जाय तो अधिकारी बुद्धिका स्वरूपभी समझ लेगा.

अपरोक्षत्व त्रिपुटी व्यवहारका हेतु है. यह उपरके विवेचनसे जाना होगा कारणके मनोवृत्ति वा विषय (प्रमाण—प्रमेय) के अपरोक्षत्व हुये पीछे त्रिपुटीका व्यवहार होता है. उस विना नहीं.

एक कालमें एक वस्तुसे दो कार्य (दो परिणाम, दो क्रिया, दो ज्ञान, ज्ञानवृत्ति और क्रिया) नहीं हो सकते, यह स्पष्ट नियम है. इसलिये घटके तदाकार कालमें घटाकारता और उसके ज्ञानाकारता (वा प्रमात्व अप्रमात्वादि) यह दो कार्य नहीं हो सकते. परंतु अपरोक्षत्व तो उस कालमेंभी होता है, इसलिये अपरोक्षत्व, मनका परिणाम (आकार) वा इम्प्रेशन नहीं किंतु उपरोक्त प्रकारका नाम अपरोक्षत्व है, उस पीछे वृत्तिका ज्ञान परिणाम (यह घट-में जानता हुं) होता है. ऐसे होनेमें उक्त कारण निमित्त है (संस्कार उद्बोधक और भावनादि प्रसंग याद कीजिये). जब कुछ लिख रहे हैं वहां लिखना और उस लिखे हुयेका सामान्य ज्ञान होता रहना यह दोनों काम एक नहीं, वाणी पाठ कर रही हो और मन संकल्प कर रहा हो यहां वाणीका पाठ स्वतोग्रह नहीं होता, संकल्प स्वतोग्रह होता है. इसलिये संकल्प और उसका ग्रहण (अपरोक्ष होना) एकका काम नही किंतु संकल्प मनका परिणाम है वोह आत्मामें विषय होता है. इस प्रकारका नाम अपरोक्षत्व है. जब पंचरंगी तसवीर देखते हैं तहां उसकी बिंदु बिंदुका क्रमशः अपरोक्षत्व होता है. क्योंकि मन एक कालमें अनेकाकार नहीं धार सकता. और जो ऐसा क्रम न हो किंतु वृक्ष, रंगीन इत्यादि रूपमें सामान्याकार हो तो वहां सामान्याकारका अपरोक्षत्व होता है. इसी प्रकार जो बारीकी पर उतरें तो मनके परिणामके प्रदेश प्रति अपरोक्षत्व भाव आता है, इस परीक्षाके प्रसंगमें आत्मा और मनका ठीक अनुभव हो जाता है. आत्मा किसीका विषय नही, और स्वयंप्रकाश स्वरूप है तथा प्रकाश समान शुद्ध वृत्तिमें स्वयंप्रकाशमान होता है, इसलिये उसके संबंधमें स्वतः परतःग्राह्य कहनेकी अपेक्षा नहीं, मानो अपरोक्षत्व उसीका स्वरूप होय नही, ऐसा है तथा जिसे त्रिपुटी कहेंगे वोह उसीका स्वरूप होय नहीं, ऐसा है, परंतु जिसको प्रतीति होती है सो और जो प्रतीत होता है सो और जिसे प्रतीति संज्ञा देते हैं सो केवल आत्माका स्वरूप नहीं है किंतु वोह प्रतीत (ज्ञान मात्र) स्वरूप है. अनुभव रूप बुद्धिको काममें लीजीये. उपर कहे अनुसार अन्य प्रसंगोंमेंभी अपरोक्षत्वका विवेक कर लेना चाहिये. जैसाकि सूत्र ३९४ तक ग्रहण प्रसंगमें है ॥३७३॥ भ्रमकाल प्रसंगमें जैसे सू. ३९३ से ३६० तक प्रकार लिखा है वैसे प्रमात्व अप्रमात्वका अपरोक्षत्व योज लेना चाहिये. ॥३७४॥

स्वतोग्रह.

अनुकूल वा प्रतिकूल संस्कारवत् वृत्तिका सविषय स्वतोग्रह भोग ॥३७५॥ यथा शारीरिक दुःख सुख ॥३७६॥ विषय विना तद्रूप भावका स्वतोग्रह उपभोग ॥३७७॥ यथा परोक्ष अपरोक्ष इष्ट अनिष्टमें ॥३७८॥ ज्ञानादि रूप

वृत्तिका स्वतोग्रह ज्ञातृत्वादि ॥३७९॥ योग्यता और अपूर्व सस्कारी होनेसे ॥३८०॥ फलके दोनों हेतु ॥३८१॥ विशिष्टमें व्यवहार होनेसे ॥३८२॥ चेतनमें अगृहित वृत्ति अंधवत् ॥३८३॥ अहंका वाच्य ज्ञातादि ॥३८४॥ उसकी परीक्षा अनुभवसे ॥३८५॥ अनुकूल (इष्ट) अथवा प्रतिकूल (अनिष्ट) विषयसे असर पाई हुई (सस्कृत) तदाकार (सस्कार धारण) वाली वृत्तिका उस विषय सहित आत्मामें ग्रहण होना (अनुभव होना, ज्ञान होना) भोग कहा जाता है ॥३७५॥ जैसे कि शारीरिक (शरीररूप विषयद्वारा) दुःख सुखरूप परिणाम ग्रहण भोग होता है ॥३७६॥ विषयके बिना असर पाई हुई अनुकूल वा प्रतिकूल सस्कार (विषयाकार) भाववाली वृत्तिका आत्मामे ग्रहण होना उपभोग कहाता है ॥३७७॥ जैसे परोक्ष इष्ट अनिष्ट वा अपरोक्ष इष्ट अनिष्ट, दर्शन श्रवण स्मरण, प्रसगमें मनोवृत्ति (दुःख सुख रूप परिणाम) ग्रहण होती है उसे मानसिक दुःख सुख भोग अर्थात् उपभोग कहते है ॥३७८॥ ज्ञान, दर्शन, भोग, करण अहं ऐसे सधर्म (ज्ञानत्व, दर्शनत्व, भोगत्व, करणत्व, अहंत्व सातिगति आकारवाली वृत्तिका आत्मामे ग्रहण होना ज्ञातृत्व, दृष्टत्व, भोक्तृत्व, कर्तृत्व, प्रमातृत्व, कहाता है. (क्योंकि इसका मैं रूपसे विशिष्टमें व्यवहार होता है) ॥३७९॥ अजड होनेसे उपरोक्त सस्कृत जीववृत्तिमे साभिमान ज्ञानादि रूप होनेकी योग्यता है और अपूर्व सस्कार (अभ्यास है इसलिये ऐसा होता है ॥३८०॥ ग्राह्य (मन परिणाम) और जिसमें ग्रहण हुवा यह दोनो (याने मनस और आत्मा दोनो) फलके हेतु है. अर्थात् कर्तृत्वका हेतु चेतनविशिष्ट अतःकरण * (मनस वृत्ति) और भोक्तृत्वका हेतु अतकरणविशिष्ट चेतन * (आत्मा) कहा जा सकता है ॥३८१॥ क्योंकि दोनोका विशिष्टमे व्यवहार देखते है. जो ऐसा न होता तो भिन्न भिन्न जान पडता ॥३८२॥ चेतनमे वृत्ति ग्रहण न हो तो अधेके समान हो ॥३८३॥ अर्थात् कर्म (गति) और भोगका आकार ग्रहण न हो तो फोनोग्राफ जगलमें गा रहा हो उस समान निष्फल–अनुपयोगी रहते. परतु सफल उपयोगी होते हैं. और आत्मामें साभिमान, ज्ञानादि

* मनका परिणाम स्थिति विशेष अर्थात् दुःख सुख रूप परिणाम भोग्य, उनका भान होना (आत्मामे ग्रहण होना) भोग इसलिये विशिष्ट जीव भोक्ता मनकी गतिरूप स्थिति विशेष क्रिया, उसका ज्ञान (आत्मामे ग्रहण होना) कर्म इसलिये विशिष्ट जीव कर्ता इसप्रकार उभय हेतु होनेसे जीवमे कर्तृत्व भोक्तृत्व तादात्म्य भावमे इनका विवेक नहीं होता अभ्याससे जुदा जुदा भान हो सकता है

अर्थात् ज्ञातृत्वादि हैं नहीं इसलिये दोनोंमें व्यवहार किया जाता (वा होता) ॥३८३॥ अहंका वाच्य ज्ञाता, द्रष्टा, भोक्ता, कर्ता, अर्थात् विशिष्ट जीव ॥३८४॥ और ज्ञातृत्वादि व्यवहार, विशिष्टमें पीछे होता है, इसलिये जीवको : द्रष्टा, अनुमंता, उपज्ञाता, उपकर्ता कहते हैं और उनमें लक्ष्य भाग कूटस्थात्मा करण भाग (मनस) व्यवहारका साधन है ॥३८४॥ प्रत्युत विषयकी परीक्षा शब्द विना अनुभवसे ज्ञात हो सकती है. (अभ्यासद्वारा अनुभव–परीक्षा कर्तव्य ॥३८५॥ सू. ३७७ से ३८५ तकका विवेचन उपर (भावनादि, अस्तित्व, इम्प्रेश प्रकार, स्वतोग्रह, अपरोक्षत्वादि प्रसंगमे) सविस्तृत हो चुका है, इसलिये य नही लिखा: ॥३७९ से ३८५ तक ॥

सभेद ग्रहण प्रकारी स्वरूप अनुभव ॥३८६॥ सभेद ग्रहण प्रकारवाला स्वरूप अनुभव कहाता है. ॥३८६॥ जीववृत्तिके अनेकधा परिणाम होते हैं. (१) किसी विषयके आकार होना (जेसे घटाकार). (२) दो वा अनेककी समानताके आकार होना (यथा अनेक घटोंके सामान्य प्रत्यय घटत्व). (३) दो वा अनेककी असमानताके आकार (जेसे लाल पीत, शब्द रस, लंबे गोल इत्यादिमें जो वैलक्षण्य (भेद) उस वैलक्षण्याकार) होना इन तीनों परिणामों–(आकारों) का आत्मामें पूर्ववत् स्वतः ग्रहण होता है. ऐसेही दूसरोके बिंब प्रतिबिंबका भेद स्वतोग्रहण होता है. परंतु वृत्तिके परिणामोंके भेदाकार वृत्ति नही हो सकती तथापि उन (रागादि) का परस्परमें जो भेद है सो भेद तथा पूर्वोक्त (घट रंग शब्दादि) की जो समानता असमानता है उनका जो रागादिके साथ जो भेद है सो भेद और आत्मासे इतरमें जो आत्मामे वैलक्षण्य (भेद) है सो भेद आत्मामें स्वतःही ग्रहण होते हैं. ऐसेही पूर्वके विषय उत्तरमे उत्तरके पूर्वमें जो लगते हैं वह प्रकार आत्मामे स्वतःही ग्रहण होते हैं. इत्यादि विषयोंका स्वतःही ग्रहण प्रकार सो **अनुभवका स्वरूप** है यह बातभी बहुत बारीक और अवाच्य है. शब्द वा वाणीमें नहीं ला सकते. इसलिये स्वतः (स्वयं प्रमाण स्वरूप) स्वयं प्रकाश स्वरूप होनेसे आत्माको ही **अनुभव** स्वरूप कहके पीछा छुडा लेते है. आत्माकी इस अपूर्व अवर्णनीय योग्यताका वर्णन नहीं हो सकता. वस्तुतः अनुभवोंमें अंतर नहीं होना चाहिये परंतु इसमें बुद्धि-प्रधान की बीचमें टांग आ लगती है इसलिये कहीं कहीं मत भेद हो जाता है जेसे प्रकाशको आसमानी काचमें देखें तो आसमानी प्रकाश, ऐसा अनुभव होता है वेसेही यहांभी कुछ अंतर पडनेकी सामग्री है. (उत्तर फिलोसोफीमें मतभेदका नमूना है उसमें बांचोगे.)

जहां जुदे प्रकारके दो विषय हैं वहां वृत्ति तदाकार हुइ उस तदाकारतामें विलक्षणता थी उस विलक्षणताका आत्मामें (स्मृति भेदबल) स्वतःग्रहण हुवा, ऐसे उसका अपरोक्षत्व होने पर याने आत्मा वृत्ति परिणामका अभेद संबंध हुये प्रकाशित होने पीछे अदभृत् योग्यतावाली वृत्ति वैसे संस्कारवाली जैसे पूर्वमें कहा है वैसे (अपरोक्षत्व होने पीछे अदभृत् संस्कार लेके वृत्ति यह, मैं, इत्यादि आकार पाती है वैसे) उस विलक्षणतारूप हो जाती है वोह पुनः आत्मामें ग्रहण होती है उसके पीछे भेदका व्यवहार होता है. ऐसे प्रसंगमें यदि अपरोक्षत्वकालमें कोई दोष वा निमित्तसे अन्य रूपमें भेद प्रकाशित हुवा तो वैसे संस्कार होनेसे वृत्तिकाभी अन्यथा परिणाम हो जायगा. ग्रहणमें होने पीछे बुद्धिवृत्ति उसको इत्थम भावसे व्यवहार करेगी इसलिये अनुभवोंमें अंतर पडके उसके यथार्थ अयथार्थ यह दो नाम पड गये. जहां मनके परिणामके जुदा जुदा रूप (राग-द्वेष-यूं नहीं यूं इत्यादि) होते हैं उनके भेद ग्रहणमेंभी वही रीति है. जैसे पानी उसका बरफ यह उभय परिणाम और इनकी विलक्षणता प्रकाशमें स्वतःग्रहण होती है, वैसे वृत्तिके परिणामोंकी विलक्षणता आत्मामें स्वतःग्रहण होती है. ऐसे अपरोक्षत्व हुये वृत्ति (पूर्वोक्त रीति अनुसार) वैसी संस्कृत होनेसे उस भेदरूप भाववाली होके आत्मामें प्रकाशित होने पीछे उस भेदका व्यवहार होता है जैसे के पहले राग हुवा, पीछे द्वेष हुवा, राग द्वेषमें भेद है वोह अनुभवगम्य है इत्यादि व्यवहार होता है. वृत्तिने जो भेदका रूप धरा है वोह अपरोक्ष जैसा है. क्योंकि उस कालमें विषय (रागादि रूपवाला परिणाम) मोजूद नहीं रहता है किंतु-पूर्वोत्तर परिणामका भेद जो आत्मामें अदभृत् अकथ्य प्रकारसे ग्रहण हुवा × उसका फोटो होय नही, ऐसा कुछ है. इसी प्रकार दूसरे विषयों की और वृत्ति परिणामके भेदग्रहणकी रीति है परंतु जरा अटपटी है तोभी अधिकारी उपर कहे अनुसार समझ लेगा (शंका.) भेदोंके भेदकी अनवस्था चलेगी (उ.) उक्त (विषय भेद, वृत्ति परिणाम भेद, इन उभयका भेद) तीनों प्रकारकी भेदवृत्ति आत्मामें ग्रहण हुई है. इस सिवाय अन्य भेद प्रकार नहीं है. यदि वृत्तियोंके असंख्य भेद मानों तोभी "वैलक्षण्य," इतनाही है. सो जब जब वैसा होता है वोह विषय होके व्यवहार होने योग्य हो तो होताही है. नहीं तो नही. जैसाके आपने अपनी १०० वर्षकी आयुमें वृत्तिओंके और विषयोंके भेद अनुभवे हैं. भेदोंके भेद इत्यादि कथन वा वृत्तिका उत्तर वैलक्षण्य पदसे हो जाता है, इसलिये उक्त शंका नहीं बनती.

× आत्मासे इतर द्रष्टा ज्ञाता मंता नहीं.

जैसे दाहने हाथसे जो अक्षर लिखते हैं उनका अंतिम किनारा दाहने हाथकी तरफ होता है और जो वेही अक्षर बांये हाथसे लिखें तो उनका अंतिम किनारा बांये हाथकी तरफ होगा. इस उल्टे अक्षरवाले कागजको उल्टके पढ़ें तो सूधे नज़र पड़े जायेंगे, जलमें स्वरूपका प्रतिबिंब मान पढ़ना ऐसे प्रकारके भेद और उनके अभ्यास स्वाभाविक हो के ग्रहण होते हैं वैसेही पहले देखेको पीछे, पीछेको पहिले (अमनू माफन) कर लेनेका अभ्यास हो जाता है और किसीमें पहले राग, पीछे द्वेष, किसीमें पहले द्वेष, पीछे राग, ऐसे अनेक संयोगोंमें स्वाभाविक होता है, ऐसे अभ्याससे आगे पीछे स्थानका अभ्यास हो जाता है. जैसे के साधारण बातचित करते समय पूर्व अक्षरपद अनिच्छित यथायोग्य बुला जाते हैं वैसे विषयका पूर्व उत्तरका अभ्यास पड जानेसे पूर्वको उत्तर, उत्तरको पूर्व कर लिया जाता है. इत्यादि प्रकारके अभ्यास वाली जीववृत्तिका नाम बुद्धिवृत्ति है. अनेक जन्मोंमें अनेक अभ्यासवाली होती है. जोकि यह शरीरसे भिन्न है, इसलिये इंद्रिय और शरीर तथा इनके कार्य और भेदको ग्रहण करनेवाला उक्त (वृत्ति) पदार्थ उनसे भिन्न है ऐसा विवेक बताते हैं (९९-१०२) ऐसे प्रसंगोंमें विशिष्ट (जीव) का ग्रहण होता है क्योंकि भेदादिका ग्रहण आत्मासें स्वतः होता है, और पीछे बुद्धि वृत्ति संस्कृत हुई उसका व्यवहार करती है सो व्यवहार विशिष्टमेंही होता है. इसलिये उक्त लक्षणवाला जीव (अंतःकरण अवच्छिन्न वा मनस विशिष्ट चेतन) मन इंद्रिय, शरीर, विषय और उनके भेद तथा कार्यका विषयक होनेसे उनसे भिन्न है ऐसा कहा जाता है और ऐसाही अनुभवगम्य होता है.

भेद शब्द लेके संक्षेपमें यह अनुभव प्रकार कहा है. जो प्रस्तुत सर्व ग्रहणोंका वर्णन करें तो तीसरा उत्तरार्द्ध हो जाय. * इसलिये इसी रीतिसे सर्व ग्रहण प्रसंगोंमें शेष प्रकारसे योज लेना चाहिये.

संस्काराकारीका स्वतोग्रह स्मृति ॥२८७॥ अज्ञानावृतका स्वतोग्रह सुषुप्ति ॥२८८॥ इंद्रियोंके संबंधरहित करणरूपाका स्वतोग्रह प्रमाणरूपता ॥२८९॥ उसके भेद कहे गये ॥२९०॥ संस्कारजन्य परिमाणका स्वतोग्रह परिमाणता ॥२९१॥ एवं अन्य प्रसंगमेंभी यथायोग्य ॥२९२॥ प्रतीतिका हेतु न निश्चित

* अहिंसा एक विषय लेवेंभी पृष्ठ लिखें तोभी एक ग्रंथमें पूरा न हो. यथा शब्द. इतना विस्तारवाला गंभीर विषय है कि ब्रह्मविद्यात जैसे चार वॉ-पुस्तकमेंभी पूरा न हो; तो फेर ऐसे (प्र० पु०) विषयके लिये भी क्षमा करें !

॥३९३॥ शुद्ध-सत्वा निरालंबा संस्कार निरोधवती वृत्ति परिणामका स्वतोग्रह तुर्या ॥३९४॥

• पूर्व दृष्ट श्रुताकार (उक्त अपरोक्षत्वाकार) जो जीव वृत्ति उसका आत्मामें स्वतः ग्रहण होना स्मृति कहाती है ॥३८७॥ स्मृति, स्मृतिज्ञानसे भिन्न नहीं किंतु साक्षीभास्य है. यथार्थ अयथार्थ स्मृतिका प्रकार उपरोक्त यथार्थ अयथार्थ अनुभव वत् योज लेना चाहिये ॥३८७॥ जीव वृत्ति असंबंध (योग्य असंबंध भाव वा योग्य संबंध नही, ऐसी स्थिति अर्थात् अज्ञान) कालमें आवृत समान स्थिर होती है ऐसी वृत्तिका आत्मामें ग्रहण सुषुप्ति कहाता है. ॥३८८॥ जागके ऐसा कहता है कि "मुझे कुछ खबर नहीं थी" "मैं सुखसे सोया" इससे अधिष्ठानसे इतरका असंबंध (अज्ञान) और अनुकूलावस्थाका प्रकाशमें प्रकाशित होना स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि अनुभव हुयेकी स्मृति होती है अनुभव हुये विना स्मृति नही होती. यद्यपि भूमि गतिमान होनेसे सुषुप्तिकालमे शरीर और मनकीभी गति मान सकते हैं. तथापि जिहाजमे सोये हुये शरीर समान है अर्थात् स्वतंत्र और ज्ञात गति नही है. (३९२ भी यादमें होगा) ॥३८८॥ जब मनस वृत्ति इंद्रिय और उनके विषय विना परिणाम (सक्रिय) रूपसे स्वयं अकेली स्वतःप्रमाणरूप आत्मामें ग्रहण हो तब उसमें प्रमाणता (करण) का प्रयोग होता है ॥३८९॥ अर्थात् वोह करण प्रमा-ज्ञानका करण, अनुभव होनेमें साधन है ॥३८९॥ उस वृत्तिके भेद उपर (२८८ से ३२३ तक) कहे हैं (और प्रस्तुत प्रसंगमें चल रहे हैं) ॥३९०॥ परोक्ष रही हुई किसी वस्तुको अणु, विभु, मध्यम, ह्रस्व, दीर्घ, मूर्त्त, अमूर्त्त, साकार, निराकार इत्यादि परिमाणवाली है, ऐसा सुनके अथवा संस्कार उद्भोदक सामग्रीजन्य संस्कारसे स्वयं अनुमान करके तिस परिमाण आकार हुई वृत्तिका आत्मामें ग्रहण परिमाणत्व है ॥३९१॥ अपरोक्ष वस्तुके संबंधमें भी ऐसाही प्रकार है क्योंकि आकार ग्रहण हो वेसा अपरोक्षत्व होनेसे वेसा माना जावे वेसा व्यवहार होता है. वृत्ति, जेसी वस्तु थी वेसा आकार धर सकी वा नहीं इस बातको पहेले दरमीयानमे लेनेकी जरुरत नहीं है. * (प्रमात्व अप्रमात्व यथार्थ सत्य, और यथार्थ अयथार्थ अनुभव प्रसंग याद करीये) ॥३८१॥ इसी प्रकार परिमाणसे इतर प्रसंगोंमें यथायोग्य जान लेना चाहिये ॥ अर्थात् वृत्तिका जेसा परि-

* प्रस्तुत स्वतोग्रह प्रसंग (सू. ३८६ से सू ३९४ तक) के सूत्रोंके अर्थ वृत्तिभाष्य विवेचन शंका समाधान विस्तार पूर्वक मूल ग्रंथमें है यहा तो सार सार संक्षेपमें कहा है.

* दोष रहित अपरोक्षत्वमें प्रमात्वकी उत्पत्ति और स्वयंग्रहण होनापना है. सदोष (भ्रम) में नहीं और परोक्षमें असत् ख्यातिकी संभावना है.

णाम वैसा अपरोक्षत्व और व्यवहार है इत्यादि ॥३९२॥ इस प्रकारका ग्रहण मतभेद होनेका हेतु हो जाता है नहीं के वैसाही है ऐसे निश्चित-यथार्थ. ॥३९३॥ क्योंकि मनुष्यका प्रमाण अपूर्ण है यह पूर्व कहा है. ॥ जिस किसीने सुनके वा अनुमान मात्रसे जीवका जैसा (अणु आदि) परिमाण माना, तो वृत्तिभी तदाकार होके ग्रहण होती है इसलिये प्रमातामें "यूंही है" ऐसा निश्चित व्यवहार होता है. इसी प्रकार अन्य प्रसंगों (ईश साकार निराकार, अवतारी अनवतारी, सगुण निर्गुण, मोक्ष वंधा भाव वा भावाभाव उभय था वा वैभवी, मोक्षसे आवृत्ति अनावृत्ति, मोक्ष नहीं, शब्दादि इम्प्रेशन वा गुण वा द्रव्य, सृष्टि उत्पत्ति स्थिति लय वा उत्पत्यादि नहीं इत्यादि परोक्षापरोक्ष प्रसंग)में योज लेना चाहिये. ऐसा ग्रहण मतांतरका हेतु है नकि निश्चितार्थही ॥ (शं.) परिच्छिन्न वृत्ति विभु परिमाण आकार नहीं हो सकती (उ.) अहंत्वाकार समान, अपरिच्छिन्न रूपमें विषय होती हैं इसलिये विभु परिमाणाकारकी भावना हो सकती है और अकल्पितवत् विभु जान पडती है वस्तुतः ससीमही है. (शं.) परोक्ष विषय प्रसंगमें कदाचित उपर कहे अनुसार अनिश्चितता हो परंतु अपरोक्ष प्रसंगमेंभी ऐसा मानें तो सर्व अनिश्चित होनेसे प्रवृत्ति न होगी और न जीवन. (उ.) अपरोक्षत्व यथार्थ हो वा नहीं, सफल प्रवृत्तिका जनक हो वा नहीं, परंतु अपरोक्षत्व होनेसे मृग तृष्णिकाके समानभी प्रमाताकी प्रवृत्ति होती है इसलिये इस शंकाको अवसर नहीं तथाहि अग्निको कोई द्रव्य, अणु, गुण, विभु, शक्ति, इम्प्रेशन, देव, जड वा अन्य प्रकारकी मानें परंतु उपयोगमें उसका जो फल सर्वको प्रसिद्ध है जिसका अपरोक्षत्व हो रहा है उसमें संदेहनहीं होता. इत्यादि प्रकारवालोंसे इतर अन्य विषयोंमें अनिश्चितताका प्रयोग हो सकता है तथापि उपरोक्त मध्यस्थको दरमीयानमें लें तो मानव मंडलकी पराकाष्टा (सीमा)तक निश्चित अनिश्चितका विवेक हो जाता है. इत्यादि उपर कह आये हैं. इसलिये शंकाको अवसर नहीं. विश्वास, अनुमान, व्याप्ति, ज्ञान और विज्ञान यह प्रवृत्ति निवृत्ति और सफल निष्फल प्रवृत्तिके हेतु विद्यमान हैं इसलिये भी उक्त शंकाका अवसर नहीं है (शं.) तुम्हारा कथन मंतव्यभी इस प्रसंगका विषय (वृत्तिका भाव वा परिणाम मात्र) क्यों न माना जाय? (उ.) माना चाहिये. परंतु विश्वास वा मनमुखी रूपसे नहीं अर्थात मध्यस्थके अनुकूल हो तो बाध होने तक निश्चित माननेमें कोई कारण या दोष नहीं जान पडता. क्योंकि भ्रम (मूल) को भ्रम कालमें भ्रम है ऐसा कोई नहीं कह सकता. और अनुभव परीक्षा सिद्ध भ्रमको कोई यथार्थ नहीं कह सकता. (सू. १९७-२०३ का व्याख्यानभी याद करीये) इस

प्रसंगमें जो शेधक हैं उनको २४८ और ४१६ सूत्रका व्याख्यान ध्यान लेने पीछे निश्चयपर आना चाहिये. और जो विश्वास वश हैं किंवा विश्वासके आधीन रहने योग्य है उनको उनका विश्वास रहो, उनको जिज्ञासा और योग्यता विना उनके दरमीयानमें पडनेकी जरुरत नहीं है. ॥३९३॥ (जीव वृत्तिकी मूर्छा, सुषुप्ति, उदासीनादि अवस्था जेसी स्थिति न हो किंतु). मल विक्षेप रहित शुद्ध अवलंबन रहित और सर्व संस्कार निरुद्ध हुये सचेत स्थिर हो, वृत्तिका ऐसा परिणाम आत्मामें ग्रहण तुर्या अवस्था कहाती है ॥३९४॥ यह स्थितिभी अधिकारीको आत्म परीक्षाके लिये उपयोगी होती है. विवेकी योगी वा विवेकी अभ्यासीही इस अवस्थाको प्राप्त कर सकता है और प्राप्तिपर आत्मानुभवी हो जाता है. यह अवस्थाभी मन वाणीका विषय नही है. इस अवस्थामे उठनेपर जेसा मूर्छा आदि अवस्था वा स्वप्नमे उठने पीछे जवाब मिलता है वा चित्तमें माना जाता है वेसा उत्तर नहीं मिलता वा नहीं माना जाता है किंतु आश्चर्यवत् चुप उत्तर होता है. कारण के वहां उक्त वृत्तिका आत्मामें ग्रहण होके विलक्षण अपरोक्षत्व होता है, वेसी वृत्तिमें (प्रकाश समान) आत्मा स्वयंप्रकाश होता है वृत्ति उसमें लय होके रही हुई होती है. ऐसी संस्कृत वृत्ति उस अवस्थाके लिये कुछ बनाके कहे, ऐसे शब्द नही मिलते. परंतु गूंगेके गुड आस्वादन समान अनुभव मात्र होनेसे चुप रहना पडता है. जेसे गोतखोरको मोती मिले उस समय मिलना न मिलना इत्यादि भाव स्पष्ट नहीं होता. जलमे बाहिर आने पीछे होता है ऐसा कुछ वहां ॥ जेसे नमककी पूतली समुद्रकी थाह लेने जावे परंतु स्वयंही गल जावे, ऐसा कुछ होता है॥ जेसे अग्निका प्रकाश वा मनुष्य सन्मुख हो तबभी दोनोंका विषय न होते हुये उन बिंबोका रूप किरणोंने जो धारण किया वोह रूप अंदरमें विषय (अपरोक्ष) होता है और चित्रमें अपरोक्षत्व व्यवहार होता है. (वस्तुतः अपरोक्ष जेसा है) वेही वा अन्य दोनें पृष्ट भागमें परोक्ष हों और सामने काच हो तो उभयका रूप किरणोंने जो रखा वोह काच द्वारा ग्रहण (अपरोक्ष) होता है तब हम कहते है कि अग्निकी ज्वाला वा अंगारे ऐसे ऐसे हैं और आनेवाला मनुष्य ऐसे रंग रूप वस्त्रवाला है. इस रीतिसे परोक्षका यह अपरोक्षत्व प्रत्यक्ष जेसा हुवा (नहीं के धूम देखके जेसे परोक्ष अग्निका अनुमान होता है वेसा हुवा) पहेले उदाहरणमें तो उभय (विषय किरण) का साक्षात तार (संबंध) था और पिछलेमें तार तूटके काचद्वारा संबंध पाके विषय हुवा है इतना अंतर होनेसे अपरोक्षवत् पदका प्रयोग हुवा. इसी प्रकार परोक्ष मुखके प्रतिबिंबका

उपयोग होनेसे उसमें अपरोक्षवत् प्रयोग होता है. उपर कहे हुये अपरोक्षत्व (तुर्या) कालमें मन और आत्मा इन दोनोंका साक्षात्संबंध है इसलिये पहेली स्थितिको अपरोक्षत्व पद लगता है और पीछे मनका तदाकार (उक्त स्थितिका मानो प्रतिबिंब होय नहीं ऐसा) रूप होता है उसको अपरोक्षवत् कहा जाता है (विचारिये). इस प्रकार जेसा, आत्माका अनुभव है अर्थात् लक्ष्यालक्ष्य है, इस रूपकमें आत्माका वा चित्तका प्रतिबिंब आभास होता है ऐसा नहीं मान लेना. किंतु दृष्टांत एक देशमें होता है, ऐसा जानके स्थितिका लक्ष्य लेना चाहिये. अर्थात् कोई अकथ्य प्रकारसे अनुभव होता है जिसे विषय-ज्ञान वा मत किंवा अविषय-अज्ञान वा अमत नहीं कह सकते. अपरोक्ष कालमें वृत्ति व्याप्ति होती है उस वृत्तिमें आत्मा स्वप्रकाशमान होता है उस पीछे वृत्ति उक्त स्थिति आकारवाली होती है इसलिये वृत्तिमें तो अपरोक्ष और आत्मामें अपरोक्ष जेसा व्यवहार होता है. क्योंकि हरकोई अपरोक्षत्व कालमें इदंत्वादिका भाव नहीं होता और पीछेभी आत्मा तथा मन, इदंत्व व्यवहारके विषय नहीं होते इसलियेभी अपरोक्षवत्का व्यवहार होता है. *

---

*(नोट)-यदि आप न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदांत इन दर्शनोंके अनुभवोंको मिलाओगे और सू. ६८१ से ३९४ तकके अनुभवका मुकाबला करोगे तो जीवात्माके संबंधमें सबका एक लक्ष्य-एक भाव जान पडेगा. अंतर इतनाहीके चेतन आत्मा अनेक वा एक. मन अणु वा मध्यम. तहां बाह्य व्यवस्थाकी दृष्टिसे अनेकत्वका कथन हो, और सूक्ष्मत्वकी दृष्टिसे अणुत्वका कथन हो, ऐसा जान पडता है. क्योंकि उनके आशयको श्रुतिसे मिलाना है. रागादि आत्माके लिंग (वा गुण) आत्मा कर्ता नही परंतु भोक्ता वा कर्ता भोक्ता इत्यादि कथन सब अनोखी प्रकारसे मिल जाते हैं जेसे लाल वस्त्र और काच संबंधमे 'काच लाल है' वा संसर्गमें लाल जान पडता है ऐसे दो पक्ष होते हैं. परीक्षाके विना निश्चित नही कहा जाता. ऐसेही यहां आत्मा और मन (अंतःकरण) के तादात्म्य संबंधमे एकको रागादि आत्माके गुण-धर्म वा लिंगका परोक्ष निश्चय होता है. दूसरेको रागादि मनके धर्म हैं ऐसा निश्चय होता है. परंतु दोनोंके विना ऐसा नहीं होता यह उभयको मान्य है. परीक्षकको चाहिये के आत्मा और मन (पुरुष प्रकृति) का अनुभव करे. अर्थात् आपही फेसला हो जायगा. विभुत्व, समत्व और सक्रियत्व परिणामत्व इन उभयके भेदमें किंवा तुर्याद्वारा जान सकेंगे. अनुभव न होने तकही मतभेद है विवाद और तकरार है अनुभव पीछे नहीं. ऐसी हमारी मान्यता है.

अज्ञान.

अज्ञान अर्थात् अप्रतीति. "ज्ञानका अभाव," इसका नाम अज्ञान नहीं है; क्योंकि ज्ञान होने पीछे जब प्रतीत न हो तब अभाव पदका प्रयोग हो सकता है. अज्ञान, कोइ भावरूप तत्त्व पदार्थभी नहीं है क्योंकि नाश होता है. और उसका परिमाण (अणु, विभु, मध्यम) सिद्ध नहीं होता. अज्ञान, अपनी हयातीमें तत्प्रकार तत्भावमें विषय होता है, और उसके अभाव कालमें उसका अभाव विषय होता है. जेसे भ्रम, भ्रम कालमें भ्रम रूपसे नहीं जान पडता वेसे अज्ञान नहीं है. * अज्ञान, चेतन नहीं है, इसलिये अज्ञानमें अज्ञान अज्ञानको अज्ञान नहीं होता. अज्ञानका अज्ञानभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी सिद्धिमें उसका ज्ञानही कारण होता है. "तत्त्व दर्शन"में कही हुई जो स्वरूप संज्ञा हैं उस १३० तराजु (द्रव्यादि वगेरे १३ संज्ञा) में तोलोगे तो अज्ञान कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता किंतु अमुक प्रकारकी सादि सांत स्थितिका नाम अज्ञान है यह सिद्ध होता है.

ज्ञानके स्वरूप जाननेसे अज्ञानका स्पष्ट बोध हो जाता है. **ज्ञान**=विषय विषयीके योग्य संबंधजन्य जो भाव अर्थात् प्रतीतिका नाम ज्ञान है यद्यपि ज्ञान पदके कई अर्थ हैं (१) प्रतीति (२) वृत्तिका परिणाम ज्ञान वृत्ति, (३) ज्ञान स्वरूप आत्माका नाम ज्ञान (४) इत्यादि. तथापि यहां प्रतीतिका वाचक है. विषयी (जिसको वा जिसमें प्रतीति हो) और विषय (जो प्रतीत हो—ज्ञेय)के योग्य असंबंधवाला जो भाव उसका नाम **अज्ञान** है. जेसे आकाश यांन (बलुन) का अज्ञान है अर्थात् बलुन और विषयीका योग्य असंबंध (ज्ञेयका ज्ञान हो सके ऐसा संबंध न हो किंतु ज्ञान न हो सके ऐसा असंबंध हो) इस असंबंधसे जो भाव (बलुनकी अप्रतीति) विषय होता है इसका नाम अज्ञान है. बलुन देखने पीछे अदृष्ट हो गया तहां योग्य संबंधका अभाव हुवा इस संबंधाभावसे जो भाव (अप्रतीति) हुवा उसका नामभी अज्ञान कह सकते हैं. परंतु "योग्य संबंधाभाववाला जो भाव" ऐसी स्थितिको अज्ञान कहने समय भावार्थ खोलना चाहिये. क्योंकि इसका उपयोग पहेले लक्षण समानभी कर सकते हैं ॥ जहां स्वरूपतः वस्तु नहीं और कोई कारणसे मान ली जाय तो वहां अज्ञानके लक्षण नहीं घटते क्योंकि "योग्य असंबंध" वाक्यका प्रयोग नहीं हो सकता. किंतु वोह भ्रम हैं ॥ जब वस्तु

---

* ज्ञात प्रकारका स्मरण न होना वा उपयोग न हो सकना भूल. परंतु अज्ञात. दोषवश अन्यथा प्रतीति भ्रम. परंतु अज्ञात. योग्य असंबंधभाव वा योग्य संबंधाभाव अज्ञान. परंतु ज्ञात. जो ज्ञात नहीं तो भ्रम वा भूल है.

यदि कोई "मैं अपने स्वरूपको जानता हुं" ऐसा कहे वा मानें तो जेमे पूर्वमें "मैं अपनेको नहीं जानता" यह वृत्ति स्वाभाविक थी वेसेही यह प्रयोगभी विश्वासवश कथन मात्र है अर्थात् संस्कारवश फोनोग्राफके शब्द समान है, ऐसा मान सकते हैं. इसके सिवाय यहभी कह सकते हैं कि "मैं अपनेको नहीं जानता", इस प्रतीतिका विषय याने अज्ञान अनादि नहीं है कारणके अनादि जो ज्ञान स्वरूपात्मा उसको अज्ञान होना ऐसा मंतव्य तो प्रकाश तम प्रयोग जैसा है तथा आत्मा अवाच्य है वाचा रहित है. इसलिये आत्मामें आत्माको अज्ञान कहना बने नही. और अविद्या नामी परिणाम अथवा अंतःकरणरूप परिणाम सादि हैं. और उसका अभावभी होता है इसलिये अनंत नहीं है किंतु सांत है. सारांश अज्ञान स्थितिवाला विशिष्ट भाव अनादि न होनेसे अज्ञानभी अनादि नहीं है.

"मैं अपनेको नहीं जानता" यह साधारण प्रयोग तो फोनोग्राफ शब्द समान अभ्यास वा अध्यास मात्र है. जेसे मेरी नाक मैं नकटा, मेरा शरीर मैं पुष्ट, मेरी आंख मैं काना, पेट खाली मैं भूखा, मैं ब्राह्मण मैं चांडाल, इत्यादि अभ्यास वा अध्यास मात्र हैं तोभी उसका व्यवहार विशिष्टमे होता है. ऐसेही 'मै अपनेको नहीं जानता' यहभी अध्यास वा अभ्यास मात्र है और उसका विशिष्टमे व्यवहार होता है. परंतु श्रोताके ज्ञान संयुक्त (तादात्म्य) फोनोग्राफके शब्द समान आत्माके साथ तादात्म्य होनेसे अन्यथा प्रतीत होता है. इस अन्यथा प्रतीतिका विवेक करें तो उपर कहे अनुसार परिणाम आता है.

अब सुषुप्तिमें जो अज्ञानावृत्त (स्थिति) शब्द कहा है उसको समझ सकेंगे. और जागके "मुझे कुछ खबर नहीं" वा "मैं सुखसे सोया" इसका विवेक कर सकेंगे. अर्थात् जिस क्षणमें स्तब्ध अंतःकरण और आत्माका योग्य असंबंधभाव है तब अज्ञान और जिस क्षणमें स्थिर मनस और आत्माका साधारण योग्य संबंधभाव है तब सुख और जब उपर कहे अनुसार योग्य संबंधभाव हो तब तुर्या ऐसी स्थिति होती है. उनसे उठने पीछे उस अनुभूत स्थितिमे संस्कृत मनस उस आकारवाला होता है अर्थात् स्मृति होती है. (अपने अज्ञान वा ज्ञानका स्वरूप तुर्याके अनुभव विना समझना मुशकिल है इसलिये तुर्या प्रसंग, पीछे विवेचनमें आया है).

उपर कहे अनुसार ज्ञान और अज्ञान एक प्रकारकी स्थिति विशेष हैं. परंतु वर्त्तमानमें अज्ञानको ज्ञानाभावभी मान लेते हैं इसलिये कुछ विशेष लिखते हैं.

१—प्रथम तो अभाव कोई वस्तुही नहीं, वैलक्षण्यकाही नाम अभाव है, यह पूर्व में कहा है. अतः ज्ञानाभाव अज्ञान नहीं.

२—प्रतीत होनेसे उसे भावरूप माने तो उसकी अभाव संज्ञा रखना तालावको मृगजल कहने समान है.

३—ज्ञानाभाव अज्ञान, ऐसा कहतेही ज्ञाता अपने ज्ञानाभावका प्रतियोगी और अनुयोगी ठेरेगा परंतु यह असंभव है क्योंकि अभावका आश्रय और प्रतियोगी भिन्नही होता है.

४—अनित्य (घटादि) विषयके उत्पत्ति पूर्व ज्ञातामें उसके ज्ञानका अभाव कहना बने नहीं ओर उत्पत्ति पीछे (श्रवण करके) उसके ज्ञानाभावकी उत्पत्ति मानें तो उसमें कोई प्रमाण नहीं है. और न उसका उपादान सिद्ध होता है.

५—जो ज्ञेय नित्य (ईश्वर परमाणु) और ज्ञाता अनित्य तो ज्ञाताकी उत्पत्ति पीछे ज्ञानाभाव उत्पन्न होनेमें नं. ४ वाले दोष हैं.

६—जो ज्ञेयको नित्य मानके उसे अनुयोगी और ज्ञाताको नित्य मानके उसे प्रतियोगी मानें तो जैसे परमाणुमें ईश्वरके ज्ञानका अभाव (वा अपने ज्ञानका अभाव) अनादि अनंत (नित्य) है वैसे नित्य मान्ना पडेगा. क्योंकि उभय अनादि होनेसे ज्ञानाभावभी अनादि. और अनादि, सांत नहीं हो सकता अतः नित्य ठेरा. परंतु अज्ञान का तो अभाव होता है इसलिये अनादि नहीं होनेसे प्रतियोगीत्व अनुयोगीत्व नहीं हुवा. तथा ज्ञानाभाव वस्तु नहीं किंतु अवस्था ठेरी क्योंकि अनादि वस्तुका अभाव नहीं होता. अवस्था (वा कार्यों)ओंकीही उत्पत्ति तथा अभाव होता है.

७—जो ज्ञानाभाव अनादि तो अणु वा विभु परिमाण ठेरेगा. परंतु अभावका परिमाणही सिद्ध नहीं होता यह उपर कहा है. तथा जो ज्ञाता विभु तो उसमें अणु परिमाणवाला और जो ज्ञाता अणु तो उसमें विभु परिमाणवाला अभाव नहीं बन सकेगा. विभुमें अणुरूप अज्ञान सर्वत्र न होनेसे व्यवस्था न होगी और अणु, विभु अज्ञानका आश्रय नहीं हो सकता. जो मध्यम मानें तो सादि सांत ठेरेगा. अर्थात् नित्यमें नित्यके अज्ञानकी असिद्धि रहेगी. सारांश, अभावका परिमाण नहीं. परिमाण रहित कोई वस्तु नही होती. इसलिये ज्ञानाभाव कोई वस्तु नहीं. अर्थात् ज्ञानाभावको अज्ञान कहना अलीक है.

यहां तक आत्मानुभव होनेकी शैलीका यानें वृत्तिके परिणाम और उसके स्वतो-

हो और 'नहीं है' ऐसा मान लिया जाय तो वोहभी भ्रम है (अज्ञान करके हुवा है) क्योंकि असंत् (शून्य) और अभान (अप्रतीति) यह दे शब्द उसमें नहीं बन सकते. किंतु सत् हो और मालूम न हो तब अभान पदका प्रयोग हो सकता है. वस्तु हो वा प्रतीत हो तब राग होता है, अनहुईमें राग होना भ्रम है. इस प्रकार अज्ञानसे होनेवाले असत्वापादक, अभानापादक जो भाव उसमें विवेक कर्तव्य है.

यहां तक **पर संबंधी अज्ञानका** संक्षेपमें बयान हुवा. आगे स्वसंबंधी प्रसंग है **"मैं अपनेको नहीं जानता"** इस प्रतीतिका विषय अज्ञान है. यह प्रसंग अत्यंत विचारणीय है. जिसमें यह प्रकार वा भाव ग्रहण होता है उस (ज्ञान स्वरूप)के लिये यूं कहा जाय कि "मैं अपनेको नहीं जानता" तो अनवस्थादि दोष आवेंगे. और दृष्टा दृश्य भिन्न, यह नियम आडमें आवेगा. इसलिये अज्ञान जिस स्वयं प्रकाशका विषय हो उस अवाच्यके लिये अर्थात् अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन वा आत्माके लिये तो यह प्रयोग व्यर्थ ठेरा. और चेतन (ज्ञान स्वरूप) को अपना अज्ञान है वा ज्ञान है यह दोनों प्रयोग उसमें अघटित हैं यह उपर कहा गया है क्योंकि ज्ञान स्वरूप है. (आत्मा अद्वितीय अनुपम है अतः योग्य दृष्टान्त नहीं मिलता) इसलिये मैं का वाच्य, जो जीव अर्थात् अविद्या वा अंतःकरणविशिष्ट चेतन वा चेतनविशिष्ट अविद्या वा अंतःकरणमें इसका प्रयोग करें तो आत्मा, मनस, वा विशिष्टमें अपना अपनेमें योग्य असंबंध कहना नहीं बन सकता. क्योंकि अपनेमे अपना असंबंध यह पदही निरर्थक है. तो फेर मैं अपनेको नही जानता, इस प्रतीतिके विषयकी क्या व्यवस्था होगी तहां संक्षेपमें यह है कि—

संस्कारी मनस (अंतःकरण) जब दूसरे संस्कार विना अकेला निरुद्ध परिणाम रूप हो तब किंवा स्वरत रूप (अपने रूपमें) हो तब किंवा वृत्ति व्याप्ति प्रकारसे आत्माकार हो तब आत्म प्रकाशमें विशेष रूपसे प्रकाशित होता है इस स्थितिका नाम **योग्य संबंध भाव** है. ऐसा न हो वहां तक स्व अज्ञान प्रसंगमें योग्य असंबंध भाव है. क्योंकि उपर कहे अनुसार मनस परिणामका संबंध तो हैही. परंतु इस रूपका बोधक संबंध नहीं है. इसलिये संबंध पदका विशेष अर्थ है. सारांश, जब योग्य संबंधभाव हो तब उपर कहे अनुसार अंतःकरण (बुद्धिरूप गुफा) में आत्मा स्वयप्रकाश होता है और मनस प्रकाशित होता है—आत्मामें ग्रहण होता है तब चिद् मैत्री (विशिष्टभाव) का भंग हो जाता है—दृष्टा दृश्य जुदा जुदा रूपमें हो जाते हैं (यह अकथ्य अपूर्व स्थिति होती है) पुनः मनस संस्कारोंका रूप होता है तब पुनः

विशिष्ट (तादात्म्यत्व) भाव हो जाता है अर्थात् जेसे जलको जुदा करें तब ओक्षजन हाईड्रोजन उभय जुदा रूपमें होते हैं और फेर शामिल करें तो जल जलरूप हो जाते हैं. ऐसे पुनः चिद् ग्रंथी तादात्म्य रूपमें हो जाती है इस प्रकार अधिकारी अभ्यासीको वारवार होनेसे जीववृत्ति (मनस) अपूर्व (पूर्वमें ऐसी संस्कृत कभी न हुई ऐसे) संस्कारवाली होती है. ऐसा संस्कृत मनस (बुद्धिवृत्ति-जीववृत्ति) जेसे संस्कृत होने पूर्व "मैं अपनेको नहीं जानता" ऐसे कहता था, अब नहीं कहथा, कारण के जब उक्त स्थितिमें मनस प्रकाशित हुवा था तब मैंपनेका प्रयोग नहीं हो सकता था (जेसे स्वाभाविक मै, मैं, कहता है वेसे नहीं कर सकता) और चिदग्रंथी हुई तब मै का प्रयोग हुवा, ऐसे संस्कारका भाव अपूर्व रीतिसे हो चुका. इसलिये मैं भाव विशिष्ट (जीव)में, है ऐसा (मै का अस्तित्व उपर कहा गया है) संस्कृत हो गया. इसलिये " मैं पनेको नहीं जानता" ऐसा प्रयोग (परिणाम) तदाकार भावमें नहीं कर सकता. और "मै अपने स्वरूपको जानता हुं" ऐसा प्रयोग इसलिये नहीं कर सकता के जो प्रयोग करनेवाला है वोह अपना आप विषय नहीं है और न चेतनको विषय करता है यहां मैं का लक्ष्य कूटस्थात्मा है ऐसा लक्षणावृत्तिसे कहे तो बन सकताभी है; क्योंकि संस्कृत हुवा है. कोई इस प्रसंगको यूं कहता है के मनस जब प्रकाशित हुवा तब आत्माके स्वरूपका उसमें आभास (प्रतिबिंब) होता है. ऐसा होनेसे "मै अपनेको जानता हुं" "मै आत्मा स्वरूप हुं" ऐसा लक्षणासे प्रयोग होता है॥ यह आभासवादकी शेलीभी समझाने मात्र है, वस्तुतः ऐसा नहीं है क्योंकि आत्मा (ब्रह्म) का आभास वा प्रतिबिंब नहीं हो सकता अर्थात् आभासका उपादान जड प्रकृति (शेषा वा रोशनीकी किरणें) है वोह आत्मा-चेतन जेसा रूप धारनेमें अशक्त है. नहीं धर सकती. तथा अंतःकरण गतिमान है इसलिये प्रतिबिंब वा आभास क्षण क्षणमें बदलेगा (यथा घट गमनसे घटगत् जैलाकाश बदलता है) अतः स्मृति वगेरेका व्यवहार न होगा और बंध मोक्षकी व्यवस्था न होगी.

निदान उपरोक्त विषय ऐसा अनिर्वचनीय अपूर्व और अद्भूत है कि उसका अनुभव होनेपरभी आश्चर्यमें रहना पडता है. बुद्धि वा युक्ति उसको नहीं पकड सकती. मैंने जो कुछ उपर कहा है वोहभी सच पूछो तो अपूर्णही है, जेसा है वेसा नहीं कहा गया है. अनुभव होनेपर स्वयं जान सकोगे. स्थूल शरीरमें इतनाही कहना वस है कि अपनेको कोईभी नहीं जान सकता. इसलिये अपना ज्ञान वा अज्ञान कथन मात्र है.

यदि कोई "मैं अपने स्वरूपको जानता हुं" ऐसा कहे वा मानें तो जेमे पूर्वमें "मैं अपनेको नहीं जानता" यह वृत्ति स्वाभाविक थी वेसेही यह प्रयोगभी विश्वासवश कथन मात्र है अर्थात् संस्कारवश फोनोग्राफके शब्द समान है, ऐसा मान सक्ते हैं. इसके सिवाय यहभी कह सकते हैं कि "मैं अपनेको नहीं जानता", इस प्रतीतिका विषय याने अज्ञान अनादि नहीं है कारणके अनादि जो ज्ञान स्वरूपात्मा उसको अज्ञान होना ऐसा मंतव्य तो प्रकाश तम प्रयोग जेसा है तथा आत्मा अवाच्य है वाचा रहित है. इसलिये आत्मामें आत्माको अज्ञान कहना बने नहीं. और अविद्या नामी परिणाम अथवा अंतःकरणरूप परिणाम सादि हैं. और उसका अभावभी होता है इसलिये अनंत नहीं है किंतु सांत है. सारांश अज्ञान स्थितिवाला विशिष्ट भाव अनादि न होनेसे अज्ञानभी अनादि नहीं है.

"मैं अपनेको नहीं जानता" यह साधारण प्रयोग तो फोनोग्राफ शब्द समान अभ्यास वा अध्यास मात्र हैं. जेसे मेरी नाक मैं नकटा, मेरा शरीर मैं पुष्ट, मेरी आंख मैं काना, पेट खाली मैं भूखा, मैं ब्राह्मण मैं चांडाल, इत्यादि अभ्यास वा अध्यास मात्र है तोभी उसका व्यवहार विशिष्टमें होता है. ऐसेही 'मैं अपनेको नहीं जानता' यहभी अध्यास वा अभ्यास मात्र है और उसका विशिष्टमें व्यवहार होता है. परंतु श्रोताके ज्ञान संयुक्त (तादात्म्य) फोनोग्राफके शब्द समान आत्माके साथ तादात्म्य होनेसे अन्यथा प्रतीत होता है. इस अन्यथा प्रतीतिका विवेक करें तो उपर कहे अनुसार परिणाम आता है.

अब सुषुप्तिमें जो अज्ञानावृत्त (स्थिति) शब्द कहा है उसको समझ सकेंगे. और जागके "मुझे कुछ खबर नहीं" वा "मैं सुखसे सोया" इसका विवेक कर सकेंगे. अर्थात् जिस क्षणमें स्तब्ध अंतःकरण और आत्माका योग्य असंबंधभाव है तब अज्ञान और जिस क्षणमें स्थिर मनस और आत्माका साधारण योग्य संबंधभाव है तब सुख और जब उपर कहे अनुसार योग्य संबंधभाव हो तब तुर्या ऐसी स्थिति होती है. उनसे उठने पीछे उस अनुभूत स्थितिमे संस्कृत मनस उस आकारवाला होता है अर्थात् स्मृति होती है. (अपने अज्ञान वा ज्ञानका स्वरूप तुर्याके अनुभव विना समझना मुशकिल है इसलिये तुर्या प्रसंग, पीछे विवेचनमें आया है).

उपर कहे अनुसार ज्ञान और अज्ञान एक प्रकारकी स्थिति विशेष हैं. परंतु वर्तमानमें अज्ञानको ज्ञानाभावभी मान लेते हैं इसलिये कुछ विशेष लिखते हैं.

१–प्रथम तो अभाव कोई वस्तुही नहीं, वैलक्षण्यकाही नाम अभाव है, यह पूर्व में कहा है. अतः ज्ञानाभाव अज्ञान नही.

२–प्रतीत होनेसे उसे भावरूप माने तो उसकी अभाव संज्ञा रखना तालावको मृगजल कहने समान है.

३–ज्ञानाभाव अज्ञान, ऐसा कहतेही ज्ञाता अपने ज्ञानाभावका प्रतियोगी और अनुयोगी ठेरेगा परंतु यह असंभव है क्योंकि अभावका आश्रय और प्रतियोगी भिन्नही होता है.

४–अनित्य (घटादि) विषयके उत्पत्ति पूर्व ज्ञातामें उसके ज्ञानका अभाव कहना बने नहीं और उत्पत्ति पीछे (श्रवण करके) उसके ज्ञानाभावकी उत्पत्ति मानें तो उसमें कोई प्रमाण नहीं है. और न उसका उपादान सिद्ध होता है.

५–जो ज्ञेय नित्य (ईश्वर परमाणु) और ज्ञाता अनित्य तो ज्ञाताकी उत्पत्ति पीछे ज्ञानाभाव उत्पन्न होनेमे नं. ४ वाले दोष हैं.

६–जो ज्ञेयको नित्य मानके उसे अनुयोगी और ज्ञाताको नित्य मानके उसे प्रतियोगी मानें तो जेसे परमाणुमें ईश्वरके ज्ञानका अभाव (वा अपने ज्ञानका अभाव) अनादि अनंत (नित्य) है वेसे नित्य मानना पडेगा. क्योंकि उभय अनादि होनेसे ज्ञानाभावभी अनादि. और अनादि, सांत नहीं हो सकता अतः नित्य ठेरा. परंतु अज्ञानका तो अभाव होता है इसलिये अनादि नही होनेसे प्रतियोगीत्व अनुयोगीत्व नही हुवा. तथा ज्ञानाभाव वस्तु नही किंतु अवस्था ठेरी क्योंकि अनादि वस्तुका अभाव नहीं होता. अवस्था (वा कार्यों)ओंकीही उत्पत्ति तथा अभाव होता है.

७–जो ज्ञानाभाव अनादि तो अणु वा विभु परिमाण ठेरेगा. परंतु अभावका परिमाणही सिद्ध नही होता यह उपर कहा है. तथा जो ज्ञाता विभु तो उसमें अणु परिमाणवाला और जो ज्ञाता अणु तो उसमें विभु परिमाणवाला अभाव नहीं बन सकेगा. विभुमें अणुरूप अज्ञान सर्वत्र न होनेसे व्यवस्था न होगी और अणु, विभु अज्ञानका आश्रय नहीं हो सकता. जो मध्यम मानें तो सादि सांत ठेरेगा. अर्थात् नित्यमें नित्यके अज्ञानकी असिद्धि रहेगी. सारांश, अभावका परिमाण नही. परिमाण रहित कोई वस्तु नही होती. इसलिये ज्ञानाभाव कोई वस्तु नहीं. अर्थात् ज्ञानाभावको अज्ञान कहना अलीक है.

यहां तक आत्मानुभव होनेकी शैलीका याने वृत्तिके परिणाम और उसके स्वतो-

ग्रहण होनेका वयान हुवा. ॥३६६ से ३९४ तक ॥ संगति–अव आगे तुर्यातीतके स्वरूपका लक्षणावृत्तिसे स्मरण कराके आत्मवित् जीवनमुक्तका वर्णन होगा.–

जीवनमुक्त.

तुर्या अतीत शेपापति निर्विशेप शेप ॥३९५॥ मनका मन चेतनका चेतन ॥ ३९६ ॥ उसकी महिमा अग्राह्य ॥३९७॥ तुर्यासे वेगवश वृत्तिका उत्थान भापा उचारवत् ॥३९८॥ प्रवल संस्कार ग्रहण होनेसे जीवनव्यवहार ॥३९९॥

जो उक्त तुर्या अवस्थासेभी रहित (कार्यरूप ब्रह्मांडके न रहने पीछे जो उपादानरूप शेप रहे ऐसी अव्यक्तरूप वा अन्यथा अन्यथा करते शेप रूपवाली है ऐसी अव्यक्त रूप जो शेपा उस) शेपाका स्वामी (अधिष्ठाता आधार) और निर्विशेप (नेति नेति करते हुये जो शेप रहे सो) शेप है (अर्थात् कूटस्थ परमात्मा है तुर्यावस्थामें यही प्रकाशमान होता है) ॥३९५॥ सो मनका मन है (अर्थात् उसमे मन ग्रहण होता है वा स्वयं प्रमाण–स्वतःप्रमाणस्वरूप है) सो चेतनका चेतन है (अर्थात् जीवोंमें जो चेतनता जान पडती है वोह उसकी चेतनतासे है) ॥३९६॥ उसकी महिमा (उसकी योग्यता उससे इतर अन्य नहीं जान सकते इसलिये) अग्राह्य है (वोह कैसे अधिष्ठानाधार है, कैसे सत्ता स्फुर्णा देता है, अक्रिय हुवा कैसे प्रेरक है, मनेंद्रिय विना कैसे ज्ञाता द्रष्टा है इत्यादि योग्यता (वा उसकी शक्ति) अगम्य है.) + ॥३९७॥ उपरोक्त तुर्यावस्थासे जीव वृत्तिका वेगवश (पूर्व संस्काराभ्यासवश) उत्थान होता है (वृत्तिकी प्रवृत्तिमे भावना होती है जो ऐसा न हो तो उत्थानकी अपेक्षा न हो) जैसे सोते हुयेको यकदम जगावें तो जागनेवाला अनेक भापा जानता हो तो भी (जैसे) पूर्व दृढाभ्यासवाली भापामें उसकी अनायास प्रवृत्ति होती है वैसे तुर्यावाले पुरुपका पूर्व दृढ संस्कार अनुसार उत्थान होता है (अर्थात् उत्थानमें वोह निमित्त है) ॥३९८॥ उसके पीछे जो जो जैसे जैसे प्रवल संस्कार हैं वे आत्मामें ग्रहण होनेसे उन उन वैसे वैसे संस्कार अनुसार प्रवृत्ति होती है अर्थात् विवेकी जीव (विशिष्ट) का व्यवहार होता है ॥३९९॥

नोटः—मनस और आत्माके अनुभव होनेकी दृष्टिसे कुछ सूचना लिखते हैं सो आंखों विना देखके कानों विना सुनके उस अनुसार परीक्षा करके पुनः उपरोक्त अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद) को लक्षणा वृत्ति द्वारा देखना चाहिये. आंख कान विना

+ स्तनोग्रह वा कार्य व्याप्ति वा सामान्यतोदृष्टसे यही वा मानी जाती है.

का आशय यह है के जेसे अमलीकी स्मृतिसे मुखमें पानी आ जाता है, अमली अंदरमें सामने आ खडी होती है, कॅनेनकी स्मृतिसे जिव्हा कटु हो गई होय नहीं ऐसा भाव होता है. बदन कांप उठता है. इसप्रकार मनको तदाकार (हजुर कल्ब होके) करके अनुभवकी चक्षुसे देखें, मनसे विचारें. उपरोक्त विशिष्टमें भाग त्याग करें याने अंतःकरण भागको त्यागके प्रत्यगात्मा ब्रह्मको लक्षणावृत्तिसे समझीये. वे दोनों सूचना यह हैं:—

(१) मनसलिंग.

(१) शरीरके अंतरगत् एक ऐसा पदार्थ है कि सुषुप्ति मूर्छादि प्रसंगके सिवाय क्षण क्षणमें फिरता है, संकल्प विकल्प करता है तब उसके शब्द कान बंद करने परभी सुने जाते हैं और उस समय उसकी गति जानी जाती है. विना शब्द, कभी आंखमें, कभी त्वचामें, कभी रसनामें, कभी हाथमें, कभी पांवमें आता है, कभी तंतु हलाता, कभी किसीका आकार धरता है. उदासीन वेठे हों तब अकस्मात अंदरमें श्यामश्वेत बालवाली तसवीर सामने होती है. जो उसका इदम् रूपमें स्थायी ज्ञान न हो तो वोह छवी इसीका परिणाम है, किरणें जेसे प्रतिबिंब रूप धारती हैं वेसे उसने छवी रूप धारा है. उस छवीसे उसका सामान्य स्वरूप जाना जाता है. क्योंकि अन हुई वस्तु नहीं देख पडती और अनुपादान वस्तु नहीं होती, इसलिये उसीका रूप समझमें आ जाता है. दीपक पर त्राटक करें और आँख बंद करें तो अंदरमें चलता हुवा दीपक जान पडेगा. उसके पीछे पीछे जो चलता है वो वही पदार्थ है. और फेर दीपकके दर्शन विना जब अंदरमें दीपक देख पडता है वो इसीका परिणाम है. दृष्ट पदार्थोंके भेदका जो आकार धरता है वोह यही है. अंदरमें मकानका नकशा बनता है उसकी लकीर पर जो दोडता है वोह यही है. अंदरमें आकाश विषे जब कुछ लिखते हो तो आकार जान पडता है, उसकी कलम याने आकार करनेवाला और अंकनार्थ गति करनेवाला यही है, चक्रोंमें जो रोशनी जान पडती है उसकी सीमा पर फिर कर तदाकार होनेवाला यही है. दुःख (पीडा) का रूप धरनेवाला यही है. प्राणको नाकके बाहिर वा अंदर विना किसी द्वारा रोक देता वा छोडता है वोह यही है. यह तेजस प्रयोग समय सबजेक्टको वा योगीको विशेष रूपमें जान पडता है. यह मगज (ग्रेमेटर) रूप वा उसका परिणाम नहीं है. कोइ इसको अंतःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार वा चित्त) कोइ मनस, कोई जीव, कोई ईश्वरका स्फूर्ण वा आज्ञा, कोई आत्माकी स्फुरणा, कोई सूक्ष्म शरीर, कोई सोल,

कोई रूह इनसानी, कोई क्षणिक विज्ञान, कोई चित कोई कुछ कोई कुछ कहता है परंतु अभ्यासी जान सकता है के वोह मध्यम परिमाणवाला है, किरणोंकि समान अज्ञात है. जब कोई आकार धरे तब किसी ज्ञान प्रकाशमें ग्रहण होता है याने इदंरूप विना उसका अकथ्य प्रकारसे भान हो जाता है. (उपरके लिंग शोधके अनुभव करिये.)

(२) "लक्ष्यात्मा."

(२) मनकी क्रिया जिस प्रकाशमें जानी जाती है, संकल्पोंकी संधि जिसमें ग्रहित होती हैं, मनकी गेरहाजरीकी जिससे साक्षी मिलती है, हरेक ज्ञान बोध (बुद्धि वृत्ति)में जो विदित (स्वयंप्रकाश) होता है, दुःख सुखका जो साक्षी है, जो कान विनाका है परंतु शब्द उसमें ग्रहण होते हैं, जो चक्षु विनाका है परंतु उसमें रूप ग्रहण होता है, ऐसेही रसना, त्वचा, घ्राण विनावेमें स्वाद, स्पर्श गंध ग्रहण होते हैं. शब्दादि उसके प्रकाशमें प्रकाशित हुये जाने जाते हैं. मन बुद्धि उसे नहीं जानते परंतु यह उसके विषय हैं, वोह सबको जानता है, उसे कोन जान सके, जिसके वाणी नहीं है, बोलता नहीं है, परंतु वाणी और पद उसमें गृहित होते हैं. अंतःकरणकी वृत्तियें (मैं, स्मृति, निश्चय, संकल्प) जिसमें प्रकाशित हुये व्यवहार होता है. अहंत्वादि वृत्तियोंका जो गूंगा साक्षी है, आकाश समान एक रस है, आकाशसेभी सूक्ष्म घनरूपी है, तमाम ज्ञान, अज्ञान, प्रकाश, तम और संशयभी जिसमें प्रकाशित हुये व्यवहार योग्य होते हैं, जो अचल है परंतु मन जहां जाय उसके पहेले वहां मोजुद पाता है, मनके आगे पीछे अनुभवाता है, मन उसमें समुद्रकी मछली समान चेतन जेसा हुवा जीता और फिरता है—स्वप्नमें जो शरीरका सिरकटा हुवा, और पीठमें गोलीका जखम जो देखता है सो अभिमान विनाका गूंगा साक्षी वही है.

लिखनेवाला और लिखे हुयेको देखनेवाला यह दोनों सबको एकरूप जान पडते हैं परंतु वस्तुतः जुदा जुदा हैं, संकल्प कर्ता और उसका श्रोता यह दोनों सबको एकरूप जान पडते हैं, परंतु वस्तुतः जुदा जुदा हैं. फोनोग्राफके गायनमें अजानको जो चेतनता जान पडती है, वहां उसका ज्ञान और शब्द, तादात्म्य हैं इसलिये वेसा जान पडता है. वस्तुतः शब्द, ज्ञान शून्य है. अभिमान रहित ज्ञान भानरूप अन्य है. जो दुःखी है वोह एक जान पडता है, वस्तुतः ऐसा नहीं है, दुःख दृश्य उसका द्रष्टा साक्षी अन्य है, और दुःख भोग अन्यकी अवस्था है. जब अभ्यास करनेवाले अधिकारी (इंद्र)की जीववृत्ति उस प्रकाशके आकार होना (वा ग्रहण करना—जानना—विषय

करना) चाहती है तब वोह यक्ष समान तुम और जब जीववृत्ति ऐसा नहीं करती तब अलुप्त-स्वप्रकाश रहता है. अर्थात् बुद्धि-जीववृत्ति उसे ग्रहण नहीं कर सकती किंतु उसकी विषय होती हैं. मैं पना, तु पना, सोपना, यहपना, जिसमें प्रकाशित हुवा ग्रहण होता है, आत्मा वा ब्रह्म नहीं है, नहीं मालूम होता है, उससे इतर है, प्रतीत होता है, किंवा ब्रह्म (आत्मा) है वा नहीं ऐसा संशय है, इत्यादि बोध वा वृत्ति जिसमें प्रकाशित हुये स्वतःग्रहण होते हैं सो वोह अलुप्त ज्ञान प्रकाश है. *

उपरोक्त लिंग समझके उनके लक्ष्यका लक्षणा वृत्तिसे अनुभव करीये. सूत्र ३८६ में कहे हुये वृत्तिके परिणामोंका वैलक्षण्य वृत्ति और आत्मस्वरूपका वैलक्षण्य (भेद) जो लक्षणासे ध्यानमें आ गया तो उपरोक्त लिंगके लिंगीकी परीक्षा हो जायगी.

सार यह है कि जिसको सविवेक अनुभव है, उसको प्रमाण, लक्षण और युक्तिकी अपेक्षा नहीं होती. जिसको अनुभव नहीं है, उसके लिये प्रमाणादि यथायोग्य कामके नहीं क्योंकि हठ होनेसे अपने प्रश्न और दूसरेके उत्तरकोही नहीं समझ सकता. यातो विश्वाससे मान लेगा वा तो संशयमें रहेगा. इसलिये इस झघडेमें न उतरके जेसे तेसे कोईभी योग्य प्रकारसे मनस और आत्माका अनुभव कर लेना चाहिये. उससे सर्व संशयका समाधान हो जायगा, प्रमाण लक्षण और युक्तिकी अपेक्षा न रहेगी जीव क्या, बंध क्या, बंध कब हुवा क्यों हुवा, कब और केसे निवृत्त होता है, निवृत्तिके साधन क्या, मोक्ष क्या, मोक्षसे आवृत्ति वा अनावृत्ति, ज्ञान क्या, अज्ञान क्या, अज्ञान कबसे है और कब कैसे निवृत्त होता है, मै क्या, मैं पना क्या,

* मेरी आंख मै काना, मेरी नाक मै नकटा, मेरा शरीर दुर्बल मैं मोटा ताजा इत्यादि विरुद्ध असद् व्यवहार अध्यासबलसे होता है. उभय अर्थात् मनसविशिष्ट चेतन वा चेतनविशिष्ट मन तादात्म्य होनेसे हीरा वा जल समान एक जान पडने हैं इसलिये एक दूसरेके धर्म एक दूसरेमें जान पडते हैं इसीका नाम चिदग्रंथी है (बंध है). जब जुदा जान पडे तब अविद्या वा अंतःकरण भाग विनाका चेतन कुटस्थ शुद्ध है. ऐसा स्वतःग्रहण होना बंध निवृत्ति है. विषय, सुख स्वरूप नहीं, विषयोंमें सुख नही और विषयों करके सुख नही, किंतु विषय संबंध विना सुषुप्ति अवस्था और तुर्या अवस्थामें सुख होता है, वोह आनंद क्या, उसको विचारना चाहिये. परमें जो प्रियता है वा शरीर, इंद्रिय, प्राणमें जो प्रियता है वोह उनमें नही किंतु अपने वास्ते है इससे जान पडता है कि अपना आत्माही प्रिय स्वरूप है.

कर्त्तव्य, ज्ञातव्य, और प्राप्तव्य क्या, भावी क्या, इत्यादि बातोंका अपरोक्ष रूपसे समाधान हो जायगा. यहां तक जितना कथन श्रवण हैं वोह यथा अधिकार यथा योग्यता बुद्धि विलास है. चूं कि परंपरा रहेनेके लिये उसकी आवश्यकता है. इस-लिये यथा देश काल स्थिति उसको नाना रूपमें कहते सुनते चले आये हैं. और *भावीमें ऐसेही होगा. इसी वास्ते शैलियोंमें अंतर है. ॥३९९॥*

संगति—उपर कहे हुये विषयके उपरोक्त अधिकारी (सू. २७९से २९०तक का विवेचन ध्यानमें लीजीये) अभ्यासीको अंतःकरणकी असंख्य वृत्ति, (परिणाम), स्वतोग्रह, और अपरोक्षत्वसे संस्कृतवाले अदभूत परिणाम, मनके अनेक अभ्यास, मनस तथा आत्मा इन सबका, और मनस तथा आत्मा इन दोनोंसे मिलके जो चिद ग्रंथी होती हैं उसका अर्थात् विशिष्टका भान हो जाता है. मनस तथा आत्माके तादात्म्य तथा जुदा होनेका अनुभव हो जाता है (यह प्रकार साक्षात् रहता है). मन किस तरहसे विशेषण और किस प्रकारसे उपाधि है यह बात तादृश्य ध्यानमें आ जाती है और तुर्यके अभ्याससे पुनः उपरोक्त विषयकी परीक्षा हो जाती है. ऐसा होनेमे उस (जीवनमुक्त) का ज्ञान और व्यवहार विलक्षण होता है, सो आगले ४ सूत्रोंमें कहते हैं:—

जीवनमुक्त

जीवतेही स्वताभाव और अमरत्वका अनुभव जीवन मुक्ति ॥४००॥ तद्वान् निर्वासन निष्काम शांत और निरंकुश ॥४०१॥ प्रारब्ध भोग तक प्रवाह रूपसे इच्छतादि रूपमें प्रवृत्ति ॥४०२॥ वृत्तिके निरोधसे व्यवहारका निरोध ॥४०३॥

देह अभावके पूर्व याने जीवनमेंही अपने फोनोग्राफ जेसे संस्कारी नकली स्वत्वका अभाव (मरण) और अपने अहंत्वके लक्ष्य (याने अपना सच्चा अस्तित्व) कूटस्थ प्रत्यगात्माके अमरत्वका याने चेतन सम है और अविनाशी है ऐसा अनुभव हो जाता है इस अदभूत् स्थिति अवस्थाकानाम जीवनमुक्ति है. इस अकथ कहानीका अनुभव उक्त अधिकारी अभ्यासीको हो जाता है ॥४००॥ यहां रहस्य है. जेसे कोई राज्याधिकारी उन्मत्त हुवा अपनेको राजा मानके तेसा उपयोग करने लग जाता है किंवा कोई राजा शराव पीके मैं कंगाल, गरीब ऐसा बकता है, मानता है. इन दोनोको अपने सच्चे अहंत्वके लक्ष्यका पता नहीं होता. वे अपने अहंत्वके लक्ष्यको तो क्यों किंतु अहंत्वके वाच्यकोभी नहीं जानते. इसी प्रकार अज्ञानी अभिमानी जीवोंका अहंत्व है. उनको अहंत्वके वाच्य और लक्ष्यकी खवर नहीं है किंतु प्रवाह रूपमें

संस्कारी फोनोग्राफ समान है. इस अहंत्वका अभाव और उसके लक्ष्य कूटस्थका अमरत्व, ऐसा इस सूत्रका भाव है ॥४००॥

तिस जीवन मुक्तिवाला अर्थात् ऐसे अनुभववाला (अनुभवी) जीवनमुक्त वासना रहित, निष्काम, शांत, और अपने वास्ते निरंकुश हो जाता है ॥४०१॥ उसके प्रारब्धका जब तक वेग है, तब तक उसके भोग तक उसका प्रवाह रूपसे व्यवहार (प्रवृत्ति निवृत्ति रूप क्रिया) होता है. वोह प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहार इच्छित, अनिच्छित वा परेच्छित ऐसे तीन प्रकारके रूपमें प्रवाहसे होता है (नहीं कि अज्ञानियों समान रागद्वेष वासना कामनासे) ॥४०१॥ (जो उसके प्रारब्ध निवृत्तिके हो तो योगादि साधनद्वारा) वृत्तिके निरोध होनेसे उसके व्यवहारका निरोध होता है ॥ (साधारण प्राण यात्रासे इतर उसकी दूसरी प्रवृत्ति नहीं होती) ४०३॥

चारों सूत्रोंका विवेचन—निदिध्यासका अभ्यासी पहेली पहेल तुर्या अवस्था होनेपर संस्कार वेगसे उठता है और अनुभव पीछे कुछ ओर ही नवीन रंगत हो जाती है अर्थात् चिदग्रंथी भंग होनेसे जीवनमुक्त हो जाता है. उसके व्यवहार यद्यपि अमुक्त जेसेही जान पडते है तथापि उनमें रात दिन जेसा अंतर होता है. और वोह अंतर मुक्त ही जान सकते हैं, वोह अधिकारी ही इस दशाको प्राप्त होता है कि उसके संचितादि भावी प्रतिबंध नहीं हों वा नष्ट हो गये हों. और निष्काम होनेसे क्रियमाणका बंधन नहीं होता. शरीरका जीवन व्यवहार देखनेसे सिद्ध हुवा के प्रारब्ध भोगसे नाश होगा. सार यह है कि मन आत्माका जुदा जुदा साक्षात् होने और विशिष्टका व्यवहारका भान हो जाने तथा चिदग्रंथीके भिदा जानेसे उसके शेष संचित और वासनाका मूल भुने बीजके समान हो जाते हैं वा नष्ट प्राय हो जाते हैं. इसलिये आगे बढनेके योग्य नही होता अर्थात् ऐसा पुरुष निर्वासन हो जाता है और इसलिये कर्म होते हुयेभी उसके कर्मको क्रियमाण संज्ञाभी प्राप्त नही होती (सच पूछो तो प्रारब्ध भोग संबंधमेभी कुछ और भेद है). स्वत्वाभावसे अमुक्तोंके समान व्यवहार परमार्थका उसपर अंकुश नही रहता. यद्यपि संचिताभाव,१ वासनाक्षय,२ क्रियमाण संज्ञा न होना,३ स्व अभाव हुये व्यवहार केसे हो सकता है,४ अपना मरण (स्वत्वाभाव) और अपना अमरत्व यह उभय विरोधी इसलिये ऐसा होना असंभव,५ इन पांचों बातें वास्ते शंका हो यह स्वाभाविक है क्यों कि कर्मभोग अवश्य है और स्वत्वके विना व्यवहार नही होता. तथापि चिदग्रंथीके भंगके अनुभव होने पीछे यह—पांचों बातें स्वयंही अधिकारी अनुभव कर लेता है. हृदयग्रंथीका भिदना क्या, सर्व संशयके नाश होनेका अर्थ

क्या और परावरकी ज्ञान रूप अग्निसे कर्मका क्षय (दग्ध) होना क्या यह स्वयं स्ववेद्य हो जाते हैं सब क्लेशोंका मूल जो अविद्या (स्वरूपाज्ञान—अविवेक—विपरीत ज्ञान) अन्यथा उपयोग उसके नष्ट होनेसे तदजन्य अन्य क्लेशोंका नाश हो जाता है अर्थात अस्मिता (आत्मा बुद्धिका भेद प्रतीत न होना, ऐक रूपसे भान होना) राग, द्वेप (पूर्ववत) अभिनिवेश (मर जानेका भय, मेरा शरीर विलाप करता हुवा वा कुदेश, कुकाल वा कुस्थानमें मरेगा तो मेरी दुर्गति होगी वा उत्तर जन्ममें दुर्दशा होगी इत्यादि) इन क्लेशोंका अभाव हो जानेसे वीतराग हुवा शांत हो जाता है.

व्यवहार दृष्टिमें तो यूंभी कह सकते हैं कि नकली स्वत्वके अभावसे उच्च दशाको प्राप्त हो गया है, अतः व्यवहारका अंकुश नहीं रहता. शम दम जिसका स्वभाव हो गया है ऐसा अभ्यासी, जीवनमुक्त प्राप्तिके जो साधन उनको उत्तम मानके सदाचार नीति और परोपकारी सत्य कर्ममें प्रवृत्त होता हुवा दूसरोंको उपदेशरूप होता है तथा वेसाही बोध करता है यह उसका उत्तम निष्काम चरित्र है (वा प्रत्युपकारका अंत है). त्रिलोकीकी जितनी वासना हैं उन सबके अभाव हो जानेसे कामना, तृष्णा, इच्छाका अभाव है जिसमें इसलिये वोह स्थितप्रज्ञ हो जाता है और इसी वास्ते उसका व्यवहार इच्छितादि रूपमें होता है. कुछ तो प्रारब्ध बलसे इच्छित अनिच्छित प्रवृत्ति होती है यथा शरीर यात्रार्थ खानपानादि और किसीके प्रारब्ध निवृत्तिके होते है, इसलिये ऐसा जीवनमुक्त पुरुष, क्रिया योग वा सांख्ययोग द्वारा वृत्ति निरोध करता है व्यवहारमें प्रवृत्त नहीं होता, किसीके प्रवृत्तिके प्रारब्ध होते हैं. और कोई प्रवृत्ति परेच्छित होती है यथा समष्टि कर्म विषे परसंबंधार्थ प्रवृत्ति और क्रियमाण रूप होती है यथा परार्थ निष्काम प्रवृत्ति. परंतु इन सब प्रवृत्तियोंमें कर्तृत्वाभिमान नहीं होता. इसलिये तीनों प्रकारकी प्रवृत्ति बालकों समान प्रवाह रूपसे होती हैं मानो स्वाभाविक चेष्टा होय नहीं. यह चेष्टायें ज्ञानके पूर्वकालमें जेसे होती थी वेसे रूपवाली अर्थात् वासना तृष्णा सदभाव, अज्ञान वा मोह जेसी नहीं. इन प्रवृत्ति निवृत्तिओंके स्वरूपका बोधभी स्ववेद्य होता है. जो वेसा हो वोहही इस बात को समझ सकता है. निदान जेसे फलदार आम्रके वृक्षका मूल उखड जाय तोभी कुछ काल उसका उपयोग (फल मिलना) होनेसे लोक उसको पहेले जेसाही तर ताजा मानते हैं, जेसे कुलालका चक्र वर्तन उतरने पीछेभी वेगवश थोडा काल घूमता है पीछे शांत होता है; इसी प्रकार जीवनमुक्तकी प्रवृत्ति (प्रवृत्ति वा निवृत्तिरूप प्रवृत्ति) होती है. परंतु प्रारब्ध विचित्र होते हैं इसलिये प्रवृत्ति निवृत्तिका खास नियम,

मर्यादा नहीं कही जा सकती. किसीकी प्रवृत्ति जीवनमुक्ति (चतुर्थ भूमिका) से आगे पांचवी छट्ठी सातवीं भूमिकाकी तरफ होती है. (जेसे जडभरत हुये) यद्यपि जेसे गाय भेंस बकरी वगेरेके घ्रतमें चिकनाई समान है तथापि रंगतमें फेर है, ऐसे चोथी भूमिका वाले (जीवनमुक्त) और आगे भूमिकावालेके लक्ष्यमें अंतर नहीं तथापि वृत्तिके विशेष सुखमें तो भेद होता है. किसीके प्रवृत्तिके प्रारब्ध होते हैं जेसे, राजा जनक, महाराजा रामचंद्र तथा श्री कृष्ण महाराज अवतारी महा पुरुष हुये हैं. वशिष्ट, विश्वामित्र, दुर्वासा, अष्टावक्र, याज्ञवल्क्य, चवन इत्यादि ऋषियोंके चरित्रोंसे जान सकोगे कि ज्ञानीके प्रारब्ध व्यवहारका नियम नहीं कहा जा सकता. किसीके आचरण, अज्ञानी बालक वा उन्मत्तजेसे, किसीके कंगाल, किसीके श्रीमंतो जेसे होतेहैं. कोईके बाह्य दुःख.कोईके बाह्य सुखवाले होते हैं (शं.)ज्ञानीको क्लोराफारम सुंघावें तब वा रोटी न मिलें तब उसका अलुप्त स्वप्रकाश चेतन कहां भाग जाता है ? इसीका नाम ज्ञान (उ.) मनही बंध मोक्षका कारण है, यह आपका उत्तर है. मूर्छादि प्रसंगमें चेतन तो वहांका वहांही जेसेका तेसा है, परंतु उसके साथ मनसका योग्य संबंध न होनेसे विशिष्टभाव नहीं होता, इसलिये ज्ञानाज्ञानादिका व्यवहार नही होता. आपकी शंका मन वा विशिष्ट व्यवहार संबंधी है. चेतनमें लागु नहीं हो सकती. (शं.) उत्तम वा नीच मनस जहा जहां जायगा वहां वहांके चेतनको विशिष्टता प्राप्त होनी जानेसे चेतन विगडता रहेगा अर्थात् मोक्ष न होगा. (उ.) यहभी मनस संबंधमें है. चेतन निर्लेप है. मनस मथुरां जाय वा नरकपुरमें जाय, आकाश समान चेतनको बाधा नहो. मनसकी करनी उसके वास्ते नही है, मनस वास्तेही है. अतः उक्त शंकाही नहीं बनती. (शं.) ज्ञानीको भी जब प्रारब्धवश दुःखादि भोगने पडे तो अमुक्तसे अंतर क्या हुवा? (उ.) क ख दो बेगारी थे. सिपाहीने उनका वारा जानके आवाज दी. क, की स्त्री पानीको गईथी क अपने पुत्रको झुला रहा था. जवाब न दिया. ख अपना वारा जानके आ हाजिर हुवा. क को सिपाही अंदर जाके लाया. क बोला के मैं गंगाजी गया तब बेगार करना छोड आया हुं, सिपाहीने कहा के गामका संबंध छोडता तो बेगार न देने. निदान दो चाबुक देके आगे धर लिया. मार्गमें क अपने पुत्र स्त्रीका शोक करता सिपाहीको मनमें गाली देता हुवा जा रहा है. ख संतोषके साथ सिपाहीसे बातें करता जाता है. दूसरे गाम पहोंचनेपर क बेगार डालके तुरत पीछा लोटा. मार्ग विषे अंधेरेमें पेरमें कांटा लगा. १ कोस गया के पेरके दर्दने न चलने दिया. बेठ गया, पडके मनमें रूदन करता था. ख को सिपाहीने आटा दिया. खाके रातको सिपाही

पास रहा, घडी सवेरमें अपने गामकी तरफ चला. मार्गमें क की दुर्दशा देखी गाममेंसे गाडा गया तब आया. ज्ञानी अज्ञानीमें क ख जितना अंतर है. मैं ज्ञानवान हूं इतना होनेसे प्रारब्धका सिपाही उसे नहीं छोड सकता. सारांश एक बाधितानुवृत्तिसे ससंतोष भोगता है और एक रोर्पीटके भोगता है. ॥४०० से ४०३ तक॥

विदेहमुक्ति.— अब आगे विदेह मुक्तिका वर्णन है:

अंतमें अनुत्क्रांति ॥ ४०४ ॥ उक्त तीनों बलके अभाव होनेकर वेगका अभाव होनेसे ॥ ४०५ ॥ और चोथेको अपेक्षा न होनेसे ॥ ४०६ ॥ यथानियम अन्यत्र उपयोग ॥ ४०७ ॥ शरीरादिवत् ॥ ४०८ ॥ अतएव विदेह मुक्तिसे भेद नहीं ॥ ४०९ ॥ वर्तमानवत् तदांभी ऐसा दर्शनसे ॥ ४१० ॥ और अंतमतिवत् गतिसेभी ॥ ४११ ॥ निरंकुश तृप्ति होनेसे ॥ ४१२ ॥ अतएव ज्ञानसे मुक्ति और निरंकुश तृप्ति ॥ ४१३ ॥

उस जीवनमुक्तकी अंतमें याने प्रारब्धभोगके शरीरत्याग होने पीछे अनुत्क्रांति होती है अर्थात् चिद्ग्रंथी (जीव) का पुनः जन्म वा योनी संबंध वा प्रवृत्ति अर्थ गति नही होती. उसके मनसका रसायणीय मिश्रण भंग होजाने से उसके मन और प्राण, शरीर समान छिन्नभिन्न हो जाते हैं ॥ ४०४ ॥ क्योंकि सू. ३२२ में कहे हुये एष्णा, संस्कार और दृश्य (प्रकृति-विषय) इन तीनोंका बल नहीं होता याने गतिकारक हेतुओंका अभाव हो जाता है ॥ ४०५ ॥ और उक्त सूत्रोक्त चोथे बल (चेतनाकर्षण) को उसकी अपेक्षा नहीं है इसलिये उधरभी गति नहीं होती ॥ तथा इसकोभी उधरकी अपेक्षा नहीं रही है इसलिये नहीं खिचाता ॥ ४०६ ॥ जेसे अजड (पदार्थो) का नियम है उस नियम अनुसार क्षीण हुये मनसके अवयवोंका दूसरी जगे (दूसरे मनसोमें खिचाके) उपयोग होता है ॥४०७॥ जेसे जुदा पडे हुये तेजस् (गरमी, बिजली, प्रकाश) के अणुओंका और मरे जले हुये शरीरके अणुओंका दूसरी जगे उपयोग होता है वैसे छिन्नभिन्न हुये मनसके अणुवोंका दूसरी जगे उपयोग होता है ॥ किंवा भुने हुये अन्नबीज वा वडके असंबंधी बीज, डाढी वा डाली समान उपयोग होता है अर्थात् रसायणी संयोग विगडके उसके अणु पुनः वडके अंगोंमें खिचाते हैं वैसे ॥ ४०८ ॥ इसलिये देह त्याग-चिद्ग्रंथी भंग हुये पीछे इस मनसकी कुछ अन्य स्थिति याने उन्नति वा अवनति होती हो, ऐसा भेद नहीं है ॥ ४०९ ॥ (इस बातका सबूत क्या ?—उत्तर-) क्योंकि जैसा जीवनमुक्तको वर्तमान विषे अनुभव हो रहा है वैसाही देह त्याग

पीछे होना है ऐसा उसके ध्यानमें आ जाता है ॥ ४१० ॥

(शं.) अंत समयमें वर्तमानवत् वासना क्यों न हो? संस्कार क्यों न स्फुरें? अर्थात् पुनर्जन्मादिकी प्राप्ति क्यों न हो ? (उ.) जीवनमुक्त वास्ते अंतमतिवत् गति, ऐसा भेद नहीं होता ॥ ४११ ॥ क्योंकि वोह निरंकुश तृप्त है (जो होना है वोह उसको तादृश्य होनेसे निर्भय और तृप्त होता है) ॥ ४१२ ॥ इसीवास्ते ज्ञान (स्वरूप, मनस, वा प्रकृति पुरुषके ज्ञान चिद्ग्रंथी के भंग) से मुक्ति और निरंकुश तृप्ति होती है (यह योगी विवेकी अनुभवी सूक्ष्मदर्शीओंका सिद्धांत है) सो समीचीन है ॥ ४१३ ॥ वि.—

उत्क्रांतिवाद (इवोलेशन थीयरी) का सिद्धांत यह है कि इच्छाका अभाव उन्नतिकी टोच (शिखर) अर्थात् अंतिम स्थिति वासनाका अभाव, वा अज्ञानाभाव वा स्वरूपज्ञानभाव मुक्ति, ऐसा अनेकोंका मत है. इस प्रसंगमें उनको दरमीयानमें न लेके अपरोक्षवत् व्याप्तिसे अनुत्क्रांति जनाते हैं:—

(१) संस्कार, (२) प्रकृति-विषयोंका फोर्स याने जीवका उसमें खिंचाना (३) विषयोंकी इच्छा (वासना-तृष्णा) (४) चेतनका स्वाभाविक आकर्षण. यह चार चिद्ग्रंथी और उसकी प्रवृत्तिके निमित्त हैं. अज्ञानकालमें पहेले तीनोंका बल विशेष होता है इसलिये नानातरफ जाता है. विवेक संस्कार होनेपर वैराग्य होनेसे प्रकृति (विषय) को तुच्छ जानके उससे उपेक्षा होती है. चेतनकी तरफ झुकता है ऐसा होनेसे प्रकृतिका एक स्वाभाविक आकर्षण मात्र शेष रहता है. तृष्णाभंग उसके विरुद्ध चेतन तरफकी जिज्ञासा हुई. यह उभय बल तथा चेतनाकर्षण स्वाभाविक बल यह तीनों एकतरफ हो गये, इसलिये प्रकृतिका बल पूरा दाब नहीं दे सकता पीछे जब विवेकख्याति हुई तब चिद्ग्रंथी भंग होनेसे, बनावटी स्वत्वका अभाव हो जाता है. उससे वासनाका मूल उखड जाता है. आत्मास्वरूपके अमृत्व से मुक्ति तककी इच्छा नहीं होती. ऐसी निर्बल रही हुई ग्रंथीका प्रकृति अंश (अंतःकरण—मनस) शरीरके साथ शरीरवत् छिन्नभिन्न हो जाता है अपने उपादान रूप हो जाता है. उस पिंडकी चेतनको अपेक्षा नहीं. इसलिये मनसके परमाणु उसके सजातीयमें खिंचा जाते हैं. चेतन जैसा का तैसा शुद्ध रहता है. इस बातका अनुभव विवेकख्याति होनेपर हो जाता है. चेतनकी सत्ता पूर्ववत् उपयोगमें रहती है. और चारों बलके अभावसे मनस छिन्नभिन्न हो गया. आगे प्रवृत्ति (जन्म वा गमन) नहीं होती ॥ ४०४ से ४०९ तक ॥

मनसका विकास–अविकास.

(शंका) जो अंतमें मनस नाशवान है तो शरीरवत् शरीरके साथ उसकी उत्पत्ति नाश माना बस था. क्योंकि स्थितिकालमें यथायोग्यता चेतनके संबंधसे जीव व्यवहार हो चुका. इस मंतव्यमें चेतनवादभी रहा और अन्य कूटाकूट न रही. (उ.) जो मनस शरीरसे भिन्न है-उसका पुनर्जन्म होता है यह दोनों बातें परीक्षा सिद्ध न होती तो ऐसा मानना उचित ही था. परंतु दोनों बातें परीक्षा सिद्ध हैं इस लिये जीवको शरीरसे भिन्न ही मानना पडता है. मानाकि यह परीक्षा लोगों विद्वानों मेंसे किसीकोही होती है तथापि किसीको तो है. स्वरूपतः तो यूं है. इसलिये लाचार वैसे मानना पडता है.

(शं.) जब यूं है तो क्या फेर मनस अनुपयोगी ही रहेगा ? (उ.) नहीं. परंतु जबके (१) मनसके होने हुयेभी व्यापक चेतन जगतमें जैसे सामान्यतः उपयोगी है वैसे मनसके छिन्नभिन्न हुये पीछेभी उपयोगी रहेगा (२) मनस मध्यम (उत्पत्ति नाशवाला सावयव) है (३) संस्कार वासनाके विना प्रवृत्ति नहीं होती (४) जीवकी इच्छा वासनाका अभाव हो गया (५) जीवत्व जानलिया गया.

यह पांचों बातें अनुभवसिद्ध हैं तो फेर मुमुक्षुको इस विषयमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं रहती. क्योंकि गत् दुःख भोगा चुका अब हुये समान नहीं हो सकता. वर्तमान बंध क्यों है क्यों कर जावे, कैसे फेर न हो, इनमेंसे दुःखनिवृत्ति और फेर न होने का उपाय हो चुका. तो फेर "क्यों है" इस जानेकी अपेक्षा नहीं रहती. पेरमें कांटा लगा हो और तकलीफ हो रही हो तब येनकेन प्रकारसे उसको निकालनेकी अपेक्षा है. नहीं के क्यों लगा, कब लगा, किस महूर्तमें लगा और कोनसे महूर्तमें निकालना चाहिये इत्यादिकी अपेक्षा नहीं रहती. इस प्रकार जीवनमुक्त को यह सवाल ही नहीं उठने. और न अपेक्षा है.

- तथापि शोधकको उसके जानेकी अपेक्षा है इसलिये शोधक दृष्टिसे संक्षेपमें उत्तर लिखते हैं. कोईभी वस्तु अनुपयोगी नहीं होती यह नियम है. अतः छिन्नभिन्न हुये मनसके अवयवोंका उपयोग होना चाहिये सो भविष्यमें कैसे होगा ? तथा मनस मध्यम है तो उसकी उत्पत्ति कैसे हुई होगी. इस उपयोग और उत्पत्तिमें दो पक्ष माने जाते हैं

(१) शरीर समान छिन्नभिन्न हुये मनसके अवयव—अणु दूसरे मनसोंमें मिलके उपयोगमें आवेंगे. अर्थात् प्रकृतिकी फोर्स-सजातीय-आकर्षण और ईश्वर

निमित्त कारणद्वारा उसके विभाग (अवयव परमाणु) दूसरे (सजातीय) अंतःकरणोंमें मिलके उनका उपयोग होगा, ऐसा अनादि अनंत प्रवाह है अर्थात् कोइ समय (उत्पत्ति स्थिति प्रलय) ऐसा नहीं होता कि असंख्य मनस न हों इसलिये उन उनमें खिंचके उपयोग होगा. माना के अमुक समयतक उसका कोई परमाणु किसी दूसरे पदार्थमें आके वा जुदा रहके फिरता हो तथापि अंतमें उसका उपयोग होगा. जिस प्रकारके (वनस्पति, तिर्यक्, पक्षी, पशु वा मनुष्य योनी संबंधी) मनसमें उसका विभाग वा अणु जुडने योग्य हैं उसमें जेसे जितने परमाणु जुडनेकी जरुरत है वेसे उतने परमाणु जुडके उपयोग होगा. सारांश, मुक्त (निर्वासन) मनसके अवयव अमुक्त मनसोंकी तरह नवीन मनस पेदा होनेमें निमित्त वा उपादान नहीं होते. किंतु जेसे वडके बीज, डाढी, वा डालीका रसायणी संयोग बिगडके जुदा होके उसके अणु जगत स्थित दूसरे वृक्ष डाढी व शाखा वा बीजमें मिलके उसका उपयोग होता है किंवा जेसे मरे हुये शरीरके अवयव दूसरे शरीरादिमें मिलके उपयोग होता है वेसे उस क्षीण मनसका उपयोग होता है. क्योंकि इस क्षीण मनसको सृष्टि नियमानुसार योनियोंका संबंध नहीं हो सकता. अलबत्ते जेसे अजडके नियम है वेसे अर्थात् उसके सजातीय मिश्रणमें उसका उपयोग होता है, नहीं के अन्यथा. इतना शरीरादिके अवयवसे भेद है.

नवीन मनसकी उत्पत्तिः—जो चिद्ग्रंथीवाले अमुक्त जीव (मनस) हैं उनसे नवीन मनस होते हैं. उसका क्रम यह है कि जेसे जीवके अनेक कर्मोंके अनेक फल होते हैं वेसे उससे योनी संबंधद्वारा (वा अन्य सृष्टि नियम कर्म फलवश अन्य प्रकारसे) दूसरे एक वा अनेक मनस पेदा हों, यहभी एक कर्मका फल है, जिसमें समष्टि कर्मका संबंध अवश्य होता है. इसलिये नवीन मनस पेदा होते हैं. अमुक्त मनसोंके कर्म संस्कार और उस अनुसार स्नेहाकर्षण, प्रकृति आकर्षण (फोर्स) और कर्म फल व्यवस्थाका जो निमित्त अर्थात् ईश्वर उस ईश्वरीय नियम (निमित्त) के अनुसार नवीन मध्यम (कंपोंडरूप) मनस होनेका आरंभ होता है. नवीन मनसका उपादान कर्मयोनी भोगता हुवा जो अमुक्त मनस उसका अवयव (भाग—अणु) है और संस्कारादि निमित्त हैं. और रजवीर्यादि (पृथ्वी, जल, वायु, रज वीर्यादि और प्रोटोपलाज़िम सेल्सादि) से उसका पोषण होता है. यह नवीन मनस हुवा. मनसके उपादानके परमाणु विशेष (अजड) हैं इसलिये नवीन मनस् और चिद् (व्यापक चेतन) का

तादात्म्य संबंध होनेसे उसकी योग्यता अनुसार चिदग्रंथी तो होही जाती है. (इसी वास्ते जीव अणु किंवा अणु अणुमें जीव है ऐसा कहा जाता है)

जैसे वड़का बीज, डाली या डाढी जमीनमें मिलके दूसरा वट पैदा होता है किंवा जैसे अमरवेल (आकाशवेल) वा गिलोके जरामे अंशमे सामग्री मिलनेपर दूसरी वेलीका आरंभ होके उसका उन्नतिक्रम चलता है, जैसे दवाई लोहीमें मिलके रोगांगमें आपही पकडा जाती है ऐसे नवीन मनस (चिदग्रंथीवाला नवीन) को उसकी योग्यता अनुसार (ईश्वरीय प्रकृतिके नियम वमुजिब) शेषामेंसे शरीरके अवयव (पड-खोली प्रोटोपलाज़िम सेल्स) संपादन होते हैं. (उपर कहा है) वोह शनैः शनैः वनस्पति, तिर्यक्, पक्षी पशु वगेरे योनीसे यथा कर्म और योग्यता संबंध पाता हुवा (अर्थात् जन्म लेता, मनसवाले नवीन अवयव लेता हुवा, और अनिष्ट त्यागता हुवा अर्थात् न्यूनाधिक होता हुवा योग्यता संपादन करता हुवा) उन्नतिकी तरफ आता जाता है. पूर्वकी योग्यता, परिस्थिति, नवीन संस्कार तथा वासना और उपयोग क्रम उसमें निमित्त हैं. बीचबीचमें संग सामग्रीवश अवनति (तनजुल-पडती-यथा पुनः पशु पक्षी योनी पाना इत्यादि) होती है तोभी पुनः वैसाही उन्नतिक्रम चलता है. एवं स्वर्ग नरकादिमें आवागमन होता है. अंतमें इस भूलोक वा अन्यलोकमें मानव देह वा कोई योग्य देहमें ज्ञान पाके वासना न रहेनेसे उपर कहे अनुसार अनुत्क्रांति होती है, फेर उसकी अवनति (बंध) वा उन्नति (मोक्ष वा अन्य डीगरी मिलना) नहीं होती. किंतु उपर कहे अनुसार उसके अवयव नवीन वा प्राचीन दूसरे मनसोंमें मिलके उपयोगमें आते हैं. ऐसा अनादि अनंत प्रवाह है. इस क्रममें बंध क्या, बंध किसको, बंधका निमित्त हेतु क्या, उसकी निवृत्ति क्यों, उसकी निवृत्तिका हेतु क्या और बंध निवृत्ति क्या, और निवृत्तिका साधन क्या, बंध निवृत्ति पीछे आवृत्ति क्या, अनावृत्ति क्या, इत्यादि तमाम सवालोंका जवाब हो जाता है.

नवीन मनस, भोग्य योनी (वन (वनस्पति), पशु, पक्षी) अथवा कर्म योनी (मनुष्य वगेरे) वाले मनसके भागसे मनस पैदा होना संभव है परंतु वोह मनस कर्म योनी भोग चुका हो, तो ही उससे नवीन मनस उत्पन्न होंगे. परंतु जो नवीन मनस अभी कर्म योनीमें नही आये उनमे नवीन मनस नही होता क्योंकि उनसे अभी ऐसे कर्म नही हुये हैं कि जिनका फल मनस भाग हो. सार यह है कि (भोग्य योनीमेंसे क्वचित् ही मनस होते हैं), कर्मयोनी भोग ली है जिसने, ऐसे मनसमें

कर्मयोनीवाले संस्कारके अदृष्टका संबंध है. नवीन मनसकी उत्पत्ति होनेमें वही निमित्त है और इसलिये थोडी बहुत जवाबदारी वा न जवाबदारीकी और उन्नति अवनतिके क्रमकी व्यवस्था हो सकती है. इस विषयको य बारीक दृष्टिसे विचारके उसको योजें तो अनेक सवालोंका जवाब निकल आता है. र चेतनका विरोध दूर होके दोनोंमें संप होके पुनर्जन्मकी थीयरी सहेजमें मान लेनी डती है.

उपर सू. ४०८ में तेजसका दृष्टांत दिया है उसमें कई आशय हैं उनमेंसे एक यहभी भाव है कि मनसके अजड परमाणु सत्व रज तम रूपमें विजातीय और अजड भावमे सजातीय हैं उनका उपयोग मनस प्रकरणमेंही होता है दूसरे रूपमें नहीं; और जेसे गरमी, प्रकाश, विजली योग्य संबंध पानेपर दूसरे पदार्थोंमें घुसा जाती है और अलग रहे हुये रूपसे उपयोगमें आती है, ऐसे मनस (मुक्त वा अमुक्त मनस) के अवयव बीज, शरीर, वीर्य आदिमें घुसाके अलग रहे हुये रूपके उपयोगमें आते हैं. जेसाके स्थूल शरीर और वीर मनसके संबंधसे उपयोग देखते हैं और पशु पक्षी ओंमें देखते हैं.

मनसमें पशुपना वा मनुष्यपना वा नर मादापना नही है इसलिये यथा कर्म संस्कार पश्वादि और नरमादादि शरीरोंका संबंध होने पर पशु आदि नर मादादि संज्ञा होती है. इतना जरुर है कि जो वन योनीवाले मनसमेंसे नवीन मनस होगा वोह उपरकी दूसरी योनीके मनससे देरमें उन्नति पर आवेगा. और जो मनुष्यवाले मनसमें नवीन मनस होगा वोह नीचेकी दूसरी योनीके मनससे जल्दी उन्नतिपर आवेगा कारणके वन वाले मनसमें कर्म योनीके संस्कार बहुत कालसे तिरोहीत होते हैं और मनुष्यवालेमें उन्नतिके संस्कार ताजा होते हैं. सारांश कोइ योनीमेंसे मनस बने परंतु उसकी उन्नतिका क्रम छोटीमे छोटी योनी (वनादि) से आरंभ होगा. और उपर कहे अनुसार उन्नति अवनतिमें तारतम्यता होगी.

(शंका) जबके नवीन मनस दूसरेका भाग है तो उस नवीनकी योग्यता पराधीन होगी तथा वनादि योनीभी पराधीन लेनी पडेगी. इसलिये उस अनुसार कर्म संस्कार होनेसे जवाबदार न होगा. (उ) आरंभमें पूर्व जीवके समष्टि संबंधी कर्म जवाबदारीमें हेतु हैं. अर्थात् नवीन मनस तुरत इसलिये जवाबदार नही के वोह स्वतंत्र प्रवृत्ति करनेके योग्य नही हुवा है और इश्वर वा प्रकृति इसलिये जवाबदार नहीं है कि उसका कारण पूर्व मनस और उसके कर्म है. इसलिये पूर्व मनस जवाबदार है क्योंकि नवीनका उपयोग सृष्टिमें होनेवाला है जेसे कोई लाभ हानीमे ज्ञात वा अज्ञात

पुरुष, दुर्गंधी वा सुगंधी मार्गमें डाल दे तो उसका फल मनाको होनेसे डालनेवाला जवाबदार ठेरता है. मानाके उस दुर्गंधी या सुगंधीके फलकी संतान लंबी (परंपरामें आगे और आगे) चले, तथापि डालनेवाला तो अमुक मर्यादामेंही जवाबदार ठेरेगा. न के हमेशेके परिणामके लिये. ऐसेही पूर्व मनसके लिये जवाबदारीकी मर्यादा जान लेना चाहिये. तथा यूं भी हो सकता है कि जो नवीन मनसका बीज निर्गो समष्टि कर्मका फलरूप हुवा हो तो पूर्व मनस जवाबदार नहीं ठेरेगा क्योंकि वोह तो पूर्वके बदलेमें फल है. उस फलके उपयोगार्थ उसकी योग्यता अनुसार उक्त रीति अनुसार उसको शरीर संपादान होता है. और जो ऐसा नहीं है तो पूर्व मनस क्रियमाणकी रीतिसे साधारण जवाबदार है और नवीन मनसको उपरोक्त अनुसार शरीर संपादन होता है उसमें पूर्व मनसका कर्म निमित्त है. जैसे माता पिता, बालक संतानके अमुक कर्मके साधारण जवाबदार माने जाते हैं और होनेही चाहिये वैसे. अर्थात् सामान्य इच्छा बुद्धि शक्ति संपादान न हो वहां तककी दशामें जितने मापमें जवाबदारी आ सकती है उतने मापमें जवाबदार ठेरता है याने नवीनकी लघुक्रिया होनेसे साधारण जवाबदार ठेरता है. और फेर भविष्यमें नवीन योग्यता (इच्छाबुद्धि) प्राप्त होती है (सद २९० का विवेचन देखो) इसलिये वोह स्वयं जवाबदार ठेरता है.

(शंका) पूर्व मनस इस उत्पत्ति प्रकारको नहीं जानता इसलिये जवाबदार नहीं. (उ.) जीव पुनर्जन्म प्रकार, वा पशुयोनी प्रकार वा गर्भमें संतान उत्पत्ति प्रकार नहीं जानता तो क्या कर्मका जवाबदार नहीं? अवश्य है. वैसेही जिस निमित्तसे वैसा अंग समष्टिमें आवे सो जवाबदार है (शं.) पशुपक्षी मनुष्यके तो अनेक संतान समान जान पडती हैं उनमेंसे नवीन मनसका लिंग क्या है (उ.) यह दृश्य नवीन नहीं हैं किंतु कालांतरसे उन्नति अवनतिमें आये हुये प्राचीन मनस शरीरधारी हैं. नवीन तो अति सुक्ष्म (एक इंचका पचास हजारवां भाग) और वन सेभी अधिक जड अवस्थावाला होता है, सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वाराभी इंद्रियगोचर नहीं होगा. वन वा प्राणी मात्रके वीर्य या रजमें अनेक जीव (शरीरधारी मनस स्पार्मेटोजोन नामा पड) होते हैं उनमेंसे अमुक गर्भ अंडमें पकडा जानेपर शरीरका पोषण पाता हैं. सब नहीं. दूसरे बाहिरके पदार्थोंसे संबंध पा जाते हैं वा उनका शरीर नष्ट हो जाता है. नवीन मनस तो इनसेभी सूक्ष्म होता है. और गर्भही नहीं किंतु उसके शरीर संपादन होने और पोषण होनेके निमित्त उस विनाभी हैं. अर्थात् दूसरा क्रमभी होता है. इसलिये नर वा मादाके मनसमेंसेभी मनस पेदा होते हैं. नहीं के मादा वा नर मनसमेंसेही. क्योंकि मनसमें नर मादा पना नहीं है.

(शं.) उक्त नवीन मनस थोडी टकरोंमे नाश हो जायगा अतः न होने समान हे (उ.) दूसरे ग्रहोंके टुकडे (तारा टुटा) जमीन पर लाखों कोससे टकराते आते हे उनमें गंधकादिके अणु वेसेके वेसे होते हैं १, गंधक, कनकादि वस्तुतः सजातीय विजातीयका मिश्रण (कंपौंड) है. केमीस्टरीके प्रयोगसे वे परमाणु जुदा नहीं होते, ऐसा कुदरती मिश्रण हे २. कर्मका कायदा बलवान सत्ताके आधीन हे, कोई प्रकारकी फोर्स का उसके विरुद्ध अमल नहीं हो सकता ३, इसलिये नवीन छिन्न भिन्न नहीं हो सकता. किंतु कर्मके नियमानुसार उन्नतिकी तरफ आता हे. तथाहि चेतन शक्तिका विशेष विशिष्टभाव होनेसे वासनाभी बलवान हो जाती है याने इच्छाशक्ति (विल पावर) सहकारी हो पडती है इसलियेभी नाश नहीं होता. मान सकते हैं कि उन्नति पूर्वे नाश हो सके. परंतु उक्त कारण प्रतिबंधक हैं. अंतमें कर्म नियम याने उपर कहे अनुसार वासनाके अभाव हुयेही वोह छिन्न भिन्न होता हे अन्यथा नहीं.

(शं.) पशु पक्षी आदि जानवरोंमें जीव होता तो मनुष्य समान चेष्टा करते परंतु ऐसा नहीं देखते. (उ.) जेसे मनुष्योंमें साधनकी न्यूनाधिकतासे उनके कर्म ज्ञानमें भेद हे वेसे कीडीसे लेके हाथी पर्यंत, मछरसे लेके बाज, सीमुर्ग पर्यंत साधन भेदसे उनके कर्म ज्ञानमें अंतर हे. परंतु जीव मनुष्य जेसा है. अर्थात् जीवके जो लक्षण राग द्वेष इच्छा प्रयत्न दुःख सुखसंस्कार ज्ञान यह पशु पक्षीओंमेंभी हे. अश्व, हस्ति श्वान, गाय, बंदर, वन–मानस, जल–मानस, लोमडी, चीता, न्योला सर्पकी लडाई, मछली इत्यादि पशुवोंके ज्ञान, वफादारी वगेरे प्रसिद्ध हैं. पक्षीओंमें सारस एक विवाह करता हे, उनमें एक पुरुष वा स्त्री मर जाय तो दूसराभी शनैः शनैः मर जाता है. मधु माखीयोंका प्रबंध, वेयाकी गृह रचना, ततीयोंका प्रबंध, काग चीलोंका संप, इत्यादि प्रसिद्ध हैं. जानवरोंमें रागादि (ज्ञान प्रबंध इत्यादि) हैं उनके अनेक उदाहरण * कु. आ. मु. के पेज ४३,-४४ में लिखे हैं और भ्रमनाशकके पूर्वार्द्धमें लिखे हैं वहां देखो.)

(शं) वनस्पतिमें जीव (चेतन विशिष्ट मनस) नहीं जान पडता. (उ.) एक वेलीके आसपास वा सामने एक लकडी खडी कर दो, वेल दूसरी तरफ न जाके उधर आवेगी. लजवंतीको स्पर्श करें तो संकुचा जायगी. अमेरीकामें जंगल विषे एक मुरदों का स्थान कहता हे वहां झूंडे जेसे झाड हैं. उनकी मर्यादामें जो जानवर वा मनुष्य चला जावे तो उनकी शाखा तुरत लंबी होके प्राणीके शरीरको चिमटके लोही चुंस

* कुल्लियात आर्य मुसाफर.

लेती हैं, फेर उसको मर्यादा तक सरकाके पूर्वरूपमें संकुचित हो जाती हैं. (यहवात २० वर्षपर पेपरोमें प्रसिद्ध हुईथी)मूंगा, स्पंजके दरखतमें प्राणीपना स्पष्ट है. एक दरखत प्राणीके स्पर्श होनेपर फटता है और प्राणीको पेटमें खेंचके बंद हो जाता है. ज्वालामुखीकी तरफ हीरवण जेसा एक छोटासा झाड होता है, उसके पत्ते विछु जेसे और पत्तेकी दुमपर विछु जेसा पेचदार तंतु होता है. उसके तुचा लगेके काटता है विछु काटे जेसा दरद होता है. दुसरी बूटी लगानेसे आराम होता है. मानो विछु प्राणीका मूल यही होय नहीं. वृक्षोमें इंद्रिय प्राण सिद्ध हुये हैं. बीज जमीनमें पडके फटके मूल तंतु रूप होता है, अपनी खोराक पृथ्वीमेंसे लेता है और वाहिरके तंतुको पहोंचाता है ऐसे वृद्धि होती है.

कोई वृक्ष ऐसेभी होते हैं कि जो चलते हैं. याने आज क स्थान पर हैं तो दस वर्ष पीछे दो चार हाथ दूर मालूम होगे.

वनस्पतीमें मंद प्राणी समान क्रिया व्यवहारके सेंकडों उदाहरण मिल आवेंगे. टीन्डोल नामी शास्त्री तो यूं कहता है के मुझे तो वकरामी चलती वनस्पति जान पडती है. (अर्वाचीन और शास्त्रीय विचार पृष्ट ७१)

(शं.) वनस्पतिमें जो जीव तो सब हिंसक टेरेंगे. (उ) एक दूसरेमे एक दूसरेका जीवन, यह सृष्टि नियम है. हिंसा अहिंसा निर्णयका यह प्रसंग नहीं. दूसरे जीवोंको दुःख न देके जीवन हो सके वहांभी ऐसा होना "माइट इज राइट" का नियम है. आपतकालमें घोडे मारके खाये जाते हैं. वधिया करना, पशुको वाहन बनाना, पशुओंके बच्चोंका दूध आप पीना, इत्यादि जो हो रहा है, पशु पक्षी स्त्री आदि निर्बलोंके एक बलवान भोगता है यह सब बलवानके दो भाग जेसा व्यवहार है. अप्रासंगिक होनेसे उपेक्षा करते हैं ॥

(शं.) नवीन सायंस चेतनोत्पत्ति विषे क्या बताती है (उ) यह प्राकृत विषय है वोह हमारा विषय नहीं है, तथापि "बुद्धिवाद मुद्रण मंडल "—The Rational Press Association—का इंग्रजीमें एक ग्रंथ है जिसका नाम अर्वाचीन शास्त्रों और शास्त्रीय विचार है. उसका तरजुमा गुजरातीमें प्रसिद्ध हुवा है, उसमेंमे कुछ लिखते हैं.

चेतन यह पदार्थोंकी अवस्था है, सायंसका प्रोटोपलाजम एक सजीव-जानदार मेटर—है. जिसमें ऑक्षजन, कारबोन, हाईड्रोजन, नाइट्रोजन, लोहा, गंधक, फास्फोर्स, फलेशिया (चुना) शोडियम, पोटेशियम, और मस है. अर्थात् इनका रसायणीय मिश्रण है. मनुष्य जिसको नहीं बना सकता. यह पहला सूक्ष्मरूप है जो

वनस्पति और प्राणी तथा मनुष्यमें चेतनक्रियाका मूल है. सादेमें सादा उसका "अमीवा" प्राणीका रूप है. पानीके टीपेमें बेक्टेरीया जीव (क्रमी) होते हैं जो एक इंचका चालीस हजारवां भाग है. उसके हाथ पांव मुख इंद्रिय नही होते. उस विना जरूरी क्रिया करता है. अपने भागमेंसे दूसरे प्राणी पेदा करता है. परंतु यह प्रकृति और शक्ति कहांसे पेदा हुई, यह बात अभी सायंस नही बता सकी है. पृष्ट ७७ में लिखा है के **हक्सली, पास्च्युर** और **टीन्डोल** वगेरे शास्त्रीओ ऐसा मानते हैं कि चेतनकी उत्पत्ति जडमेंसे नही होती, यह बात प्रयोगसे सावित हुई है. एक नलि २१२ डीगरीसे गरम की. उसमें जरासामी जंतु न रहा, उसमें हवा न जाय ऐसे बंध किया. उसमें सुके और गरम रसायर्णीय द्रव्य डाले गये थे वे ठंडे होनेपर उनमें चेतनशक्ति आ गई (पेदा हो गई). जडवाद यूं कहता है कि उनमेंसे पेदा हुई होगी. प्रतिपक्षी कहता है के उस गरमीमें बेक्टेरीया नष्ट नही होने, वे जुडे होंगे"

उपरके प्रयोगमें यूं क्यों न माना जाय कि जब "प्रोटोपलाज़म" योग्य स्थितिमें आवे तब व्यापक चेतन शक्तिका उसमें उपयोग होने लगता है. (क्योंकि आकाशवत चेतन अग्निसे नहीं जलता, वायुसे नही उडता). इसका नाम सायंसका जीव; और उसमें पूर्वोक्त नवीन मनस जो उससेभी सूक्ष्म है और जो अग्निसे नही जलता. उस विशिष्ट चेतन (सायंसका जीव और मनस) दार्शनिक जीव. इसमें स्वाभाविक ज्ञान पदार्थोंके संबंधसे होने लगता है (जेसा के उपर कहा है) क्यों कि मनसमें संस्कार हैं और चेतन विशिष्ट है. इस समूहका नाम **मूल प्रकृति और शक्ति.** उस पीछे आगे शनैः शनैः शरीर और क्रियाका अभ्यास तथा ज्ञान बढने लगता है, अंतमें विशेष ज्ञान पानेके योग्य होता है, तथा अमेरीकामें नवीन रेडीयम (अत्यंत प्रकाशमान पदार्थ) बना है, वोहभी व्यापक चेतन शक्तिके उपयोग लेनेके योग्य पदार्थ बनावेगा. अर्थात् उसके संबंधसे ऐसे प्राणी शरीर बन सकेंगे कि जिसमें मनस प्रवेश करके हलन चलन करे. ॥

(शंका.) नवीन मनसपर जवाबदारीका आरंभ कबसे होगा ? (उ.) जब इच्छा और बुद्धिका सामान्य उपयोग होने लग जायगा. जेसे के वटक्रमी, मच्छर, खटमल में इच्छा और बुद्धि स्पष्ट रूपमें और वनस्पतीमें उससे न्यून होती है और जो वे कर्मफलके भोग्यरूपमें न हों तो जवाबदार होते जाते हैं.

(शं.) नवीन मनसकी सामान्य बुद्धि इच्छा कब मानी जाय ? (उ.) यद्यपि

कर्म और सूक्ष्म सृष्टिका क्रम अज्ञात रहनेसे ठीक ठीक कहना दुर्घट है तथापि जडावस्थासे पीछे वनस्पतिके शरीर पाने योग्य हो तबही सामान्यबुद्धिकी छाया होने लग जाती है. और अदृष्ट सूक्ष्म छोटे जीवों -कर्म नहीं तो सामान्य भाग स्पष्ट हो जाता है, उसीके परीणाममें उसका फलभी होने लगता है. इससे पूर्व जड अवस्थामें कोई विशेष कर्म न होनेसे उसके मूल मनसपर जवाबदारी बहोत कम होती है. (शं.) क्या वनस्पति, पशु पक्षी वा मनुष्ययोनीमें नवीन और पूर्वके मनसके लिंग हैं ? (उ.) नवीन मनस बहुधा वनस्पतिसेभी जड होता है. इसलिये प्रसिद्ध उपयोगी वनस्पति पशु पक्षी मनुष्य वा वीर योनीमें वोह नही होता किंतु अदृष्ट योनीमें होता है. (शं.) मनसभागकी न्यूनाधिकतासे स्मृतिक्रम नष्ट होगा ? (उ.) इस जन्मकीही तमाम स्मृति नहीं रहती इसके कारणमें यहभी एक कारण हो. परंतु सर्व अंशमें ऐसा नहीं है. मूल बीजका ऐसा रूपांतर बदल होता है कि पूर्व जेसे रंगीन पत्ते और बीज पेदा हों ऐसेही मनसकी स्मृति अस्मृति प्रसंगमें ज्ञातव्य है परंतु सब स्मृति न होनेका यह कारण नही है. सू. ३०९,३१०का विवेचन यादमें लीजिये, इस विषयमें औरभी अनेक शंका समाधान है. पुनर्जन्म, और त्रिवाद के कर्मवादके समान "भोग्य योनी, कर्म योनी, व्यष्टि समष्टि कर्म, प्रारब्ध संचित क्रियमाण कर्म, आपत अनापत धर्म और निष्काम कर्म इत्यादि" कर्म विभाग करके सबका समाधान हो जाता है, इसलिये ज्यादे विस्तार नही किया. (यहां सू. ३१० से ३११ तकका व्याख्यान और पूर्वार्द्धका पुनर्जन्म प्रसंगभी याद करना चाहिये).

प्रस्तुत नवीन मनससे जुदा जो दूसरा मनस कर्मवश रजवीर्यादिमें आता है और पोषण पाता है. भोगार्थ साधन पाता है ;वोह नवीन नहीं है किंतु किसी अन्य योनियोंवाला है, और नवीन मनसके समान बनके उसकी उन्नति अवनतिके क्रम समान उन्नति अवनतिके चक्र (जन्म-आवागमन) में घूमता हुवा चला आ रहा है, ऐसा जानना चाहिये.

उपर कहे अनुसार मुक्त अमुक्त मनसों (सूक्ष्म शरीर) के उपयोगका अनादि अनंत प्रवाह है. और जिस मनसके रजवीर्यमें बाहिरवाला मनस आया उस मनसका भाग आये हुयेको मिले वा न मिले यह दोनों क्रमकी सभावना है क्योंकि कर्म संस्कार विचित्र हैं. उपर कहे हुये अमुक मनसके दोनों क्रम समझनेसे ध्यानमें आया होगा कि वर्त्तमान जीवपर समष्टि प्रसंगमें कितनी जवाबदारी है. जो उसके दुष्ट संग कर्मसे दुष्ट प्रकृति बंधे तो उससे जिस नवीन मनसकी बुनियाद पडी वा

जिस दूसरे मनसको उसका भाग मिला वे वेसे हों तो वर्तमान मनस-जीव-दुष्टताकी उन्नतिमें हेतु हुवा, संसारके भागको भ्रष्ट करनेमें निमित्त (पापी) वन गया. और जो उसमे उलटा हुवा अर्थात् उत्तम संग कर्मसे उत्तम प्रकृति बंधाये तो संसारके भागके उन्नति होनेमें निमित्त वन जायगा * इसलिये मुक्त (विवेक ख्यातिहुये निर्वासन) होने तक उसको सृष्टिनियमानुकूल उत्तम गुणकर्म संपादन करके तदनुसार वर्तना फर्ज है. (पहला पक्ष समाप्त हुवा).

(२) दूसरा पक्ष यह है कि एकही मनसके दोसे अधिक अणु क्यों न मिलें? मिल सकते हैं. इसलिये मनस जेसे योनीयोंमें न्यूनाधिक होता आया है और जेसे वडके अंगबीज, शाखा वा डाढीसे दूसरा वडका वृक्ष होता है वेसे रजवीर्यादिके संबंध होनेपर उसका भाग दूसरे मनस (वनस्पति, पशुपक्षी तिर्यकादिवाले मनस) कोभी पेदा करता है और मुक्त मनसके छिन्नभिन्न होनेके पीछे उसके अमुक मिले हुये अवयवोंसे नवीन मनस पेदा होनेकाभी आरंभ होता है और जो कोई परमाणु (अणु) जुदाभी रह जावे तो वेसे वेसे मिलके दूसरे मनस पेदा होनेका आरंभ होता है और फेर उनकी क्रमशः उन्नति अवनति होती है वा दूसरे मनसके साथ मिलके उनका उपयोग होता है. उपर कहे अनुसार पशुपक्षीसे मनुष्य और मनुष्यसे पशुपक्षी पुनः मनुष्य इत्यादि क्रमसे गोते खाते तिरते उन्नतिकी टोचपर आवें, पुनः अनुत्क्रांति होनेपर भंग होके उक्त क्रम चले, ऐसे अनादि अनंत प्रवाह है. यह क्रम प्रवाह उत्क्रांतिकी थीयरी अनुसार किंवा प्रकृतिके स्वभाव वश किंवा सजातीय आकर्षण वश होता हो अथवा जीवोंके संस्कार वश ईश्वर निमित्तद्वारा होता हो. ऐसा मानना चाहिये (इस पक्षमें दोष है).

परंतु रजवीर्य संबंधसे वा उसके विना नवीन मनस होने प्रसंगमें ईश्वरेच्छासे नवीन मनस होना माननेमें ईश्वरविषे विषमता अन्यायादि दोष आते हैं क्योंकि पहेले पहेले उनके भेदवाले (मनस अनेक प्रकारके) होनेमें तथा पहेले पहेले जन्म होनेमें कोई हेतु नही मिलता. कर्म थीयरीका और बंध मोक्षकी व्यवस्थाका अभाव होता है इसलिये ईश्वरेच्छामात्रसे माननेका पक्ष असमीचीन है. इस प्रकार स्वाभाविक वा फोर्स वा सजातीय आकर्षण और उत्क्रांति पक्षमें दोष आते हैं इसलिये यथा कर्म संस्कार ईश्वरद्वारा होना यह पहेला पक्ष समीचीन जान पडता है.

* "पिता गर्भमें अपने आप उत्पन्न होता है क्योंकि अपना भाग है." यह कथन इसी दृष्टिसे किया हो, ऐसा जान पडता है

(शंका) येरोपमें नवीन जडविकासवाद चला है उसमें पांच प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया है के पृथ्वीपर प्रथम वनस्पति वा प्राणी नहीं थे. स्वाभाविक अकस्मात १२ तत्त्वका प्रोटोपलाज्मि चेतन रस बना उससे सब प्राणीकी सृष्टि चली, प्राणीओंमें उस प्रो. से अमीबा जंतु हुवा. उसका परिवर्तन कीडे मकोडे, मछली, मींढक, सर्प, पक्षी, और पशु हुये. बंदर पशुका रूपांतर मनुष्य है. आरंभमें वर्तमानवत् श्रेणी, कक्षा, जाति, और उपजातिवाले जंतु नहीं थे किंतु एक प्रो. से कालांतरमें परिस्थिति तथा पूर्व संस्कारसे एक दूसरेका परिवर्तन होते हुये वर्तमान भेदवाली सृष्टि है. प्रथम विना हड्डीवाले हुये उनसे वांसेकी हड्डीवाले और स्तनधारी हुये. हरेक प्राणी अपने गर्भमें संक्षेपसे पूर्वजोंका अनुकरण करता है (इत्यादि तत्त्वदर्शन अ. १ जडविकासवादमें विस्तार है) जब यूं है तो मनस, जीव, पूर्वसंस्कार और पुनर्जन्म मानेकी आवश्यकता नहीं और न सिद्ध होता है.

(उत्तर) जीव शरीरसे भिन्न, शरीरमें यथासंस्कार आने जानेवाला उपर सिद्ध किया है. तथा जीवांश मनसकी सिद्धि और उस संस्कारी प्रावाहिक अनादि मनसोंके माने विना विकासवाद सिद्ध नही हो सकता यह उक्त विकासवाद प्रसंगमें जनाया है (वहां देखो) तथा मनसकी सिद्धि अपरोक्ष है इसलिये आपकी शंकाका उत्तर देना पिष्टपेशन है. तोभी नवीन विकासवादकी दृष्टि लेके प्रस्तुत मनस प्रसंगवश संक्षेपमें उत्तर देते हैं.

गति दो प्रकारकी देखते हैं. अबुद्धा (निरिच्छा) बुद्धा (सेच्छा-विल पावरसे) उनके दोदो प्रकार हैं:-

१-अबुद्धा सामान्या-यथा पृथ्वीकी गति और सूर्यकी गरमी होनेसे वायुमें गति होती है. और परिस्थितिसे न्यूनाधिक होती रहती है. हार्ट, लिवर, लोही गति कर रहे हैं. हरेक परमाणुमें सत्व रज तम हला करते हैं. इस गतिको स्वाभाविक सामान्या कहते हैं.

२-अबुद्धा विशेषा-जहां जगे खाली हो वहां हवा दोडके चली जायगी. क्योंकि प्रकृति जगेको खाली रखना नहीं चाहती. चंबुककी बिजलीमें लोहेके खिंचनेवास्ते गति होती है. फोनोग्राफमें शब्दकी गति विशेष होती है. अग्नि किसीमें चुसाती है किसीमें नहीं, रंग किसीमें चुसाता है किसीमें नहीं. तहां गरमी और रंगकी गति विशेषा है इस प्रकारकी गतिको स्वाभाविक विशेषाभी कहते हैं.

३-बुद्धा सामान्या-पशुपक्षी मनुष्यको पेशाब पाखाने वास्ते गति करनी पडती

है. अकस्मात कंकरी पडनेसे भयवश बदन हल जाता है. यह गति उक्त अबुद्धासे अन्य प्रकारकी है. इसको अस्वाभाविक विशेषा कहते हैं.

४—बुद्धाविशेषा—इच्छापूर्वक गतिका आरंभ करना वा रोक लेना, शब्द बोलना और आगे पीछे करके (असत) बोलना इत्यादि. इसीको अस्वाभाविक *विशेषा कहते हैं ॥ यह विल पावर (ईच्छाशक्ति, ईच्छा अभ्यास) के आधीन होती है. विल पावर यह पूर्व पूर्व के बहुत कालके संस्कार परिस्थितिके अभ्यासका परिणाम है और वोह बीज वृक्षवत् जन्म पानेवालेके साथ उतरती है इसलिये उसका प्रवाह है. अबुद्धासे अन्य प्रकारकी होती है. बुद्धा सामान्या और इसमें सहेज अंतर है. याने परवश—स्ववश.

विकासवादके प्रोटोपलाज़म और सेल्समें अबुद्धा गति हो सकती है. बुद्धा नहीं, क्योंकि असंस्कारी और नवीन है. जिसमें बुद्धा होती है वोह नियत गति है. उत्पत्ति, वृद्धि स्वसमान रूप बना लेना यह सब उसमें हो सकता है जब कि उसका पुंज कुदरती योग्यतावाला हो गया हो और चेतन शक्तिका साथ हो. विकासवादका प्रोट० और सेल्सके असंख्य कोष्ट किसी अदृश्यके संस्कार-बलसे तथा परिस्थिति अनुसार बनते हैं; इसलिये उनकी गति अबुद्धा विशेषा है.

जिसमें उक्त विशिष्ट संस्कारी मनस है उसमें बुद्धा गति होती है. और उभयके संबंधसे उभय (चिदि चित्त) का विशेष उपयोग होता है. भेद ग्रहणादि तथा उत्पत्ति वृद्धि आदिभी उसी अर्थामें होते हैं.

मनसको उपर अमृताकी उपमा दी है. उसके अनादि, सादि, अनंत, सांतपनेके जान्ने वास्ते दृष्टांत यह है. ३ हाथ वा १ हाथ लंबा गिलोका टुकडा लो. थोहर, नीम और अजेवालेके झाडपर चढे ऐसे लगा दो. उनमें वाहिरके तत्त्व मिलके उस जैसे रूपमें होके वृद्धि होगी क्योंकि उसमें रसयणीय तंतु, परिस्थिति और बीजकी योग्यता संपादन हो गई है. थ, न, अ की परिस्थितिसे उनके गुणमें कुछ अंतर पड जायगा परंतु बीज रूपसे योग्यता पूर्ववत रहेगी. मानो अ गिलो नष्ट हो गया, और थ गिलोकी सतान उसी परिस्थितिमें चल रही है थ के प फ ब तीन टुकडे किये और जुदा जुदा लगाये. थ का मुख्य मूल स्वयंभी है ब नष्ट हो गया. फ अपने परंपरा रूपमें चल रहा है और प. के दो टुकडे किये. उनको जुदा जुदा लगाया. उनसे संतान चली. इस प्रकार १०० वार किया है. सोवीं संतानमें यह नहीं कहा जाता कि उसमें थ, न का कोई परमाणु नहीं है,

बिल्कुल नवीन है या पूर्वका कोई परमाणु हैं; क्योंकि उभय पक्षकी संभावना है. और सोवें संतान या थ, न के उत्पादकवर्धक मूल स्वरूपकी किस कालमें उत्पत्ति हुई, यहभी नहीं कहा जा सकता.

अर्थात् थ न से पूर्व पूर्वसे प्रवाह रूपमें गिलोका स्वरूप चला आता है. यदि गिलोका कर्मीमी संसारमें नाश न होता हो तो इसीको प्रवाहसे अनादि स्वरूप कहेंगे. अ, ब नष्ट हो गये (रसायणीय संयोग नष्ट हो गया) इनमें कोन कोनसे पुराने और नवीन अणु थे यह निश्चित नहीं कहा जा सकता. परंतु उस रूपका नाश तो हो गया. प्रलय हो जाय तोभी गिलोका बीज बना रहनाही चाहिये. (दृष्टांतका सब भाग नहीं लिया जाता यह बात दार्ष्टांत समझने समय लेना चाहिये.)

इसी प्रकार संसारमें गिलोवत् असंख्य (अनेक) मनस हैं वे प्रवाहसे अनादि अनंत हैं. अ, ब समान उनका नाश नहीं होता. वेसे उत्पत्तिमेंभी जरा भेद है मनसका बंधारण विल पावर (वासना-इच्छा) पर है उसका जब तक बल है. प्रकृतिके हमले (गरमी सरदी वगेरे) उसपर असर नहीं कर सकते. मनस कंपोंड रूप हैं. संस्कार और परिस्थितिसे न्यूनाधिकभी हो सकता है और संस्कारादि करके उससे छोटेमे छोटा मनस उत्पन्नभी हो सकता है. तथापि उसका स्वरूप जब इच्छा शक्तिमें आ गया तब उसका नाश नहीं होता. जब वासना (इच्छा कामना) नष्ट हो जाती है तब उसका मूल स्वरूप नाश हो जाता है अन्यथा नहीं. उत्पन्न भाग पशु पक्षी वनस्पतिके पडमेंभी जाता है. याने वेसे पड उसपर चढते हैं (यह उपर कहा गया है).

अब उत्पन्न मनस जो निर्बल संस्कार (छाया संस्कार) विशिष्ट है तो उसपर उन्नति (विकास) का क्रम चलता है याने गर्भ विनाका सामान्य प्रोटोपलाज़्म उसपर चढता है. जेसे जरासी दवाईभी लोहीमें मिलनेसे रोग स्थानपर पहोंचतेही उसी जगे खिंचा (पकडा) जाती है, और जेसे वायु खाली जगे भरनेको दोड आती है ऐसा स्वभाव है वेसेही इथर (हिरण्य गर्भ) में से उसपर पड चढते हैं और जेसे उसमें उद्भव संस्कार हैं वेसेवेसे कामवाले कोष्ट (सेल्स) यथा सामग्री बनते बिगडते रहेते हैं. पूर्व संस्काराभ्याससे मनसमें स्वयं गति होती है और संस्काराभ्यास अनुसार जरुरत है उस सबबसे प्रोटे० मेल वगेरेमें गति होके कोष्ट बनते हैं. मनस यह संकोच विकासमें आना, पर रूप होना, दूसरेको स्वसामग्री रूप करना, उत्पत्ति वृद्धि, इच्छा, राग, द्वेष, प्रयत्न, दुःख, सुख, ज्ञान वगेरेके संस्कार तथा योग्यता वाला पूर्वसे है और ऐसा संस्कारी चेतन शक्ति विशिष्ट है तथापि प्रस्तुत भाग

(मनसका अल्प टुकडा)में मजकूर योग्यता बीज रूपमें हैं, परिस्थिति और योग्य साधन अभ्यास नहीं हो सकेनेसे वे उद्भव नही होती. इसलिये गर्भ विनाकी स्थितिमें संस्कारवश आया हुवा है उसपर परिस्थिति तथा उद्भव संस्कारानुसार उन्नति (विकास) क्रम चलता है और होते होते यथा योग्यता बलवान होनेपर वनस्पति, कीडे, पक्षी, पशु, मनुष्य वगेरेके गर्भमें दाखिल होनेके योग्य होता है. संस्कारादिके अनुसार वहां जाके कर्मको भोगता है.

शरीरके काम स्वाभाविक, इच्छित और उभयथा ऐसे तीन प्रकारसे होते हैं यह उपर कहा है. इस प्रकार मनस कोष्टोमे फिरता है और इच्छा पूर्वक हाथ वगेरेको हलाता है तोभी कोनसे तंतुको पकडके हलाया यह नही जानता क्योंकि तादात्म्य है. इस प्रकार स्वाभाविक सबसे अर्थात् जिनमें काम होनेकी उसकी अपेक्षा है उनसे काम लेता है. मगजके सेंटरभी (स्मृति, इच्छा, अहंकार, विचार इत्यादिके सेंटर) उसीके संस्कारानुसारी बनते हैं. उनकाभी पूर्व कहे समान स्वाभावतः उपयोग होता है. सब अवयव (कोष्ट, सेंटर, कर्मतंतु, ज्ञानतंतु) अबुद्ध स्वाभाविक गतिवाले हैं. उनका एकीकरण मनस शक्तिका उपयोग है. अर्थात् कर्ता भोक्ता मनुष्य (विशिष्ट मनस) है. जेसे नगरमें वा सेनामें जुदा जुदा काम करनेवाले हैं. परिणाम एक भोक्तामें आता है वेसे इस शरीर नगरमे होता है. यहां तक जो कहा सो विकासवादकी थीयरीका सहायक है. इसमें कर्मफल, पुनर्जन्म, चेतन शक्तिका हाथ यह सब रहते हुये विकासवाद चलता है.

पूर्वमें जो नवीन मनसमें दो पक्ष कहे उसमें उत्तर पक्ष असिद्ध बताया है और पहेला पक्ष सिद्ध कहा है उस सिद्ध नवीन मनसकी उत्पत्तिका यह क्रम है.

अब जो मनस गर्भसे गर्भमें आने जानेके क्रममे हैं उसके वास्ते इतनाही कहना बस है कि जेसी उन्नतिमें आया हुवा है उससे आगे यथा संस्कारादि उन्नति वा अवनति, ऐसे प्रवाहमें आता जाता रहेगा. गर्भ विनाके और गर्भवाले मनसकी रीति भांतिमें अल्पभेद है अर्थात् संस्कार योग्यताकी पूर्णता, अल्प पूर्णता, अपूर्णता, उद्भवता, अनुद्भवता, इतना अंतर है. अन्यथा एक क्रम है. इसी वास्ते सब प्राणी जाति विभाग, शरीर तुलना, गर्भ शास्त्र, भूस्तर शास्त्र, और वर्तमान स्थितिमें समान जेसे हैं.

तीसरा रूपभी कहना चाहिये वोह यह है कि गर्भ या गर्भ रहितवाले प्रेट० में जो नहीं आया है. वोह बिजली वायु समान या कोई अन्य प्रकारसे जीवन (भोग)

करता हो ऐसी संभावना है जो विना परीक्षाके नहीं मान सकते. यदि ऐसे प्रकार-वाला हो तो वोह नवीन उत्पन्न मनस नहीं किंतु गर्भवालाही होगा. और प्रस्तुत विना गर्भकी स्थिति भोगने पीछे जब-तब गर्भकी शृंखलामें आवेगा.

(शं.) कंपौंड-मध्यम हुयेभी मनसका कभी नाश न हो यह सृष्टि नियमके विरुद्ध है (उ.) हां, नाश होता है अर्थात् जब कामना वासना (विल पावर) का अभाव होगा तब प्रकृतिके हमलेसे शरीरवत् शरीरके साथ उसका नाश हो जायगा. और उसके खास परमाणु दूसरे मनसोंमें मिलके उपयोगमें आवेंगे यह उपर कहा गया है.

(शं.) शरीरके असंख्य कोष्ट (सेल्स) उन हरेकमें प्रोट. तो क्या हरेकमें जुदा जुदा मनस होंगे? और शरीरमें जो क्रमी हैं उन हरेकमें वा शरीरसे बाहिर जो आते हैं उन हरेकमें मनस होगा? क्योंकि उनमें कुछ बुद्धा गतिभी होती है जैसे खटमल जूं वगैरे हैं. (उ.) स्थूल शरीरमें मनस एक है. कोष्ट वा यंत्र कामकी तार पेटी हैं उनसे दो प्रकारके काम होते हैं १ शरीर रक्षा स्वाभाविक और २ मनसद्वारा विशेष वा अस्वाभाविक. यथा लेना देना, अहारादि पहोंचाना, गर्भमें जीव क्रमीको डालना इत्यादि. उनके बननेका कारण उपर कहा गया. बीज वृक्षके कुंपल वगैरे समान बनते हैं. इन सब पेटीका ताला मनस है और कूंची चेतन शक्ति है. इसी वास्ते यह कहा जाता है कि अणु अणुमें जीव है वा जीव अणु है याने जहां जहां अदृष्ट मनस वहांही चेतनके संबंधसे जीवनशक्ति (चेतनत्व वा चेतन कण वा चेतन रस) सो प्रोटोपलाज़िम मात्रसे नहीं है, क्योंकि वोह तो मनसका पड (कोप) है. मनस इंद्रिय वा यंत्रोंका विषय नहीं है. सूक्ष्म है. कार्यसे जाना जाता है. जिसका विस्तार उपर लिख चुके हैं. जिन क्रमियोंमें बुद्धा गति है, उत्पत्ति वृद्धिकी योग्यता है- उनमें कुछ न कुछ विल पावर (इच्छा शक्ति) होती है उसमें मनस जरूर है. शरीरमें असंख्य (नाना) मनस हैं. उन समूहका तथा कोष्ट यंत्रोंका समूह यह शरीर-उसमें मुख्य कर्ता भोक्ता चेतन विशिष्ट एक मनस है जो मैं, हूं, तूं, ऐसी सामान्य सत्तासे मान सकते हैं.

उपरोक्त मनसकी मान्यता कल्पना मात्र नहीं है किंतु जो थोडाभी योग करे और विवेक (पदार्थ विद्या) जानता हो उसको किंवा चिंता रहित रोशनदिल विवेकी एका-ग्रतावालेको मनसका सामान्य स्वरूप ज्ञात हो सकता है अर्थात् अकथ्य प्रकारसे चेतन शक्तिका सामान्य ज्ञान (प्रकाश) और मनसका उससे कुछ विशेष ज्ञान हो जाता है. चेतन प्रकाशमें वोह (मनस) प्रकाशित गतिवाला, अनेक आकार धरने-

वाला, अज्ञात रूपमें संस्कार आकार होनेवाला सामान्य रूपसे मालूम हो जाता है. जिस समय वोह ज्ञानका विषय होता है उस समय अहंत्व नहीं होता यह उपर कहा है, इसलिये विशेष रूपसे ज्ञात नहीं होता. सारांश मनस भानका विषय है १, वीर परीक्षा होनेसे शरीरसे भिन्न जीव माना गया है २, और युक्ति व्यवहारसेभी सिद्ध होता है यह सब उपर कह आये हैं. भेद ग्रहणादि किंवा सर्व प्रकारका इम्प्रेशन होना और इम्प्रेशनका ग्रहण होना यह इम्प्रेशन, प्रोटोपलाज़िम और सेल्सोंका काम नहीं है, न उनमें सिद्ध होता है. जेसे किरणें कार्यके विना चक्षुका विषय नहीं होती वेसेही मनसकी दशा है जब गति वा परिणाम करता है. तब ज्ञात होता है. इस परीक्षा पीछे मालूम हो जाता है कि किरणवत् पररूप धर लेता है, बीजवत् सामग्री जेसा बना लेता है, और तद्वत् उत्पत्ति वृद्धिका उपयोग होता है. अथवा उपरोक्त सब काम स्वप्नसृष्टिवत् उसद्वारा हो जाते हैं ऐसी मनसमें योग्यता वा संस्काराभ्यास है. मनस, इम्प्रेशनके आकार होता है और तद्विशिष्ट चेतनमें ग्रहण होता है यह परीक्षा करके देख लेना चाहिये.

(शं.) मनसका और चेतनका सामान्य ज्ञान किसको? जिसको होता है वोह मगज वा प्रोट० (उ.) मगज वा प्रोट० को नहीहो सकता, इसका विस्तार उपर कहा है. और उभयके भान होनेका प्रकारभी उपर कहा है.

विकासवादके हिमायती मि. हर्बर्ट स्पेंसर साहेब किसी अगम्य चेतनशक्ति (ब्रह्म) को मानके मनको उसका सूचक चिन्ह कहके मनको विशेषरूपसे अगम्य मानते हैं. प्रोट० और सेलस गम्य हैं. अतः मनस उनसे भिन्न वस्तु है. यह उनके मंतव्यका परिणाम है.

(शं.) पुरुष स्त्री के वीर्य रजमें प्रोटो० वत् दो मनस वा एक? यदि एक तो किसमें? (उ.) प्रोट० और सेलस उभयमें हैं. मनस युक्त (स्पार्मेटोजीन–जीवन जंतु) पुरुष व्यक्तिके मेटरमें होता है संसर्ग कालमें यदि जंतु स्त्रीके गर्भमें जो अंडाशय है उसमें गया और स्त्रीके अंड कोष्टमें जो सामान्य अंश है उसमें पकडा गया तो गर्भ का आरंभ हो जाता है. उभयमें जिसका पड बलवान (माइट) होगा वेसा आकार (नर वा मादा) बनेगा और जो न पकडाया किंवा विर्यसे निकल हुवा गर्भमें न आया वोह नष्ट हो जायगा, तद्गत् मनस दूसरी जगे उपयोगमें आवेगा. (शं.) मनस कितने होंगे? (उ.) परमाणु जितने और द्विअणुक जितने तो नहीं परंतु त्रिअणुक जितने हों तो संभव है. प्रवाहिक उत्पत्ति नाशकी दृष्टिसे कुछ जवाब नहीं बनता. अर्थात् संख्या संबंधी सवाल निरर्थक है.

मुसलमान, खिस्ति, याहुदी और पारसी संसार मनुष्यसे इतर कीडे पशु पक्षीमें जीव नहीं मानते उसका कारण यही है कि वे विकासवादको नहीं अनुभवते. थीओसोफीने वनस्पति कीडे मकोडे, पशु पक्षीओंमें आत्मा बुद्धि यह दो तत्त्व माने और मनस मनुष्य जातीमेंही माना है इसका कारण यह है कि वोह विकासवादको जानती हैं. यदि मनसको तत्त्व रूप नहीं मानती, अर्थात् अनुभवमें लेती तो उपरोक्त थीयरी अवश्य लिखती अर्थात् विकासवादको पूर्ण सिद्ध कर देती.

उपर हमने जो प्रोट० सेल्स और उनका उन्नतिक्रम जनाया है अर्थात् उसमें मनसका विकास निमित्त है, यह अनुमान उसी हालतमें मानना चाहिये के नवीन जड विकासवादकी परीक्षा और कथन सत्य हो. अन्यथा उपर कहे अनुसार मनस तो परीक्षित है, परंतु उसका आवागमन कैसे होता है इस प्रसंगमें अनुमान प्रमाणसे आर्य प्रजाकी थीयरी पर विचार कर्तव्य है. ॥

मनस मध्यम संकोच विकासवाला, शरीरसे भिन्न, शरीरमें आने जानेवाला, इतने विषयको छोडके हमारे उपरके कहे हुये विषयमें कोई प्रकारका आग्रह नही है क्योंकि व्यवहारमें आनेवाले शब्दादिकोभी अभीतक कोई ठीक ठीक नहीं बता सका. मतभेद है. और भविष्यमें जान सकेंगे, यह उमेद करना मुशकिल है, क्योंकि मनुष्य अल्प और अपूर्ण है. तो फेर इंद्रिय और यंत्रोका अविषय जो मनस और चेतन इनके वास्ते तो क्या कहा जावे !

उपरके बयानसे जाना होगा कि मनसका परंपरासे अनादि अनंत प्रवाह है. अमुक मनसका अमुक समयमें आरंभ हुवा वा अमुक मनस पहेले पहल वनस्पति वा पशुपक्षी वा मनुष्य योनीमें आया, यह कहनाही नहीं बनता. किंतु पूर्व पूर्वके कर्म संस्कार योग्यता अनुसार जन्म पाता हुवा रहता है और अपने कर्मोका जवाबदार होता है. इस रीतिको खुब विचार करके देखें तो कर्म सिद्धांत, जीवकी जवाबदारी, बंध मोक्ष कायम रहके सब व्यवहार बन जाता है. जीव यह प्राकृत दृष्टिमे अव्यक्त का अणु भाग है, उपयोग दृष्टिमे मिश्रण (मध्यम) रूप है और आत्मा दृष्टिमे विभु है, भोग दृष्टिसे कर्ता भोक्ता है और संस्कारजन्य स्वत्वाभाव हुये वासनाक्षय दृष्टिमे मोक्ष होता है. ऐसा है. इसलिये जीवको अणु, मध्यम, विभु परिमाणभी कह सकते हैं. तथा उसकी बंध मोक्ष है. ऐसा मान सकते हैं.॥ मनस यह अव्यक्तका अणु विभाग है, उसकी उत्पत्ति स्थिति रूपता और उसके अनवच्छिन्न

उपयोगका अनादि अनंत प्रवाह है इत्यादि कहा गया.* ॥ ४०७-४०८ ॥

जीवनमुक्त वर्तमानमें ऐसा देखता है कि "जब दोनों (आत्मा-मनस) मिले तब अहंत्व होता है, इच्छादि स्फुरते हैं और जब वे प्रकाश्य प्रकाश, दृश्य दृष्टारूपमें जुदा होते हैं तब अहंत्वादि नहीं होते. मनस मध्यम है, चेतन नित्य कूटस्थ है. विशिष्टमें अहंत्वादि होते हैं, नहीं तो नही. वासना इच्छाके विना प्रवृत्ति नहीं होती. ऐसा अनुभव हुये पीछे अपनेमें वासना इच्छाका पूर्वजेसा रूप नही देखता. इत्यादि" अनुभवता है. इस व्याप्तिसे उत्तरका अनुमान हो जाता है, कि जीवनमुक्ति और विदेहमुक्तिमें प्रारब्धभोग मात्र अंतर है. अन्य नहीं ॥४०९॥ ॥४१०॥ वासना इच्छाका मूल उखडनेसे मनसकी पूर्व जेसी रंगत नहीं रहती (अमुक्त समान वासना इच्छा नहीं होती) इसलिये वर्तमानका प्रावाहिक अभ्यास भविष्यकी प्रवृत्तिका हेतु नही होता क्योंकि शरीर संबंधके अभाव होनेपर जीव भावकी जो उपाधि-मनस सो छिन्नभिन्न होहीगा इसलिये सर्व प्रकारसे इस जीवका भविष्य जन्म वा अन्य प्रवृत्ति नही हो सकती इसवास्ते "मतिवत् गति" यह सवालही पेदा नहीं होता. ॥ ४११ ॥ जिस जीवको ज्ञानकी प्राप्ति होकेभी इच्छाका अभाव नहीं हुवा हो अर्थात् विवेक विनाका सामान्य ज्ञान हुवा होगा तो वासनाका मूल नहीं उखडनेसे उसका पुनर्जन्मादि व्यवहार चलेगा. शरीर त्यागने पीछे अनुत्क्रमण नहीं हो सकता. और जिसको संशयभ्रांति रहित सविवेक दृढ ज्ञान (विवेकख्याति) हो गया है उसका आगे उत्क्रमण नही होता क्योंकि वासना नही होती. यद्यपि अनुत्क्रमणका साक्षात् निमित्त वासनाका अभाव है, ज्ञान नहीं तथापि उक्त ज्ञान हुये विना वासना-इच्छाका मूल नही उखडता. जेसे सुषुप्ति वा मूर्छा वा अन्य अकस्मात् प्रसंगमें जीवमें गुप्त वासना रहती है इसी प्रकार सविवेक ज्ञान होने तक गुप्तवासना रहती हैं. इसलिये उसके मूल अर्थात् चिद्ग्रंथी भंग होनेकी अपेक्षा है और यह भेदन स्वरूप ज्ञानके विना नही होता इससे यह सिद्ध हुवा के ज्ञान, यह वासना इच्छाके मूल उखडनेमें अंतरंग साधन है और वोही अर्थात् वासनाका अभाव होना बंधकी निवृत्ति है. इसलिये ज्ञानने मुक्ति और उपर कहे अनुसार निरंकुश तृप्ति मानी गई है ॥४१३॥ इसी वास्ते यहां इतना विशेष कहना पडता है कि जबतक वासना इच्छाका मूल मालूम हो तबतक वारंवार विवेकख्यातिका अभ्यास

* भ्रमनाशक उत्तरार्धके पृष्ट ७१० से ७२१ तकमें मनस-जीव विषे अनेक पक्षका विस्तार जनाया है. सजातीय विजातीय मध्यम अणु विभुको विस्तारसे बयान किया है.

करे और मनोराज्य वासना क्षयके लिये योग दर्शनानुसार अभ्यास कर्त्तव्य है. अन्यथा सामान्य ज्ञान फलीभूत नहीं हो सकता. यदि बंध (जगत-जन्म) भ्रम रूप होता तो ज्ञानसे निवृत्त होता और मुक्तिभी भ्रमरूपही मानी जाती. परंतु जगत् शून्यरूप नहीं है. इसलिये ज्ञानद्वारा वासनाका अभाव माना पडा है.

विशिष्ट-अवच्छेदका उपसंहार.

उसके अभ्यासीको उपरोक्तकी परीक्षा ॥४१४॥ स्वतः प्रमाण होनेसे ॥४१५॥ स्वप्नके अभ्यासीकोभी लक्ष्यालक्ष्य रूपमें ॥४१६॥

उपरोक्त विषय (मनस, आत्मा, विशिष्ट, चिद्ग्रंथी, जुदा होना मिलना जीवन मुक्ति, विदेह मुक्ति) की उसके अभ्यासी (जो अधिकारी इस विषयका अभ्यास करे उस) को परीक्षा हो जाती है ॥४१४॥ क्योंकि उसके ग्रहण होने वास्ते स्वतःप्रमाण है ॥ अर्थात उक्त विषय स्वयं प्रकाश आत्मामें स्वतः ग्रहण हो जाते हैं ॥४१५॥ जिसने जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिका विवेक करके स्वप्न क्या, स्वप्न जाग्रत समान, स्वप्नके कूटस्थ, द्रष्टा, शरीराभिमानी इत्यादिका अभ्यास किया हो वैसे अभ्यासीकोभी लक्ष्यालक्ष्य रूपमें परीक्षा हो जाती है ॥ (तत्त्व दर्शन अध्याय ४ अवस्था विवेकमें और भ्रमनाशकके उत्तरार्द्ध प्रकृति विवेक प्रकरणमें यह विषय लिखा है. ॥४१६॥

(शं॰१) इस विद्याके प्रकाश होने पहेले जो जीव हुये हैं वा इसको जाननेवाले जो जीव हुये वा है उनकी जैसी गति हुई वा होगी वैसे उन्नति अवनतिका प्रवाह स्वाभाविक होता रहा और रहेगा इसलिये इस विद्या वा ग्रंथमें प्रवृत्तिकी अपेक्षा न होनेसे निष्फलत्व प्राप्त होता है. (उ.)—

योग्यतादिवश इसमें प्रवृत्ति ॥४१७॥ जीवमें जो योग्यता है उसका और पूर्व संस्कार हैं उनका उपयोग होनाही चाहिये यह सृष्टि नियम है (निष्फलत्वका अभाव है) इसलिये कोई न कोई इस विद्याका अधिकारी होनेसे उसकी इस विषय (वा ग्रंथ) में प्रवृत्ति होगी इसलिये अनुपयोगी नहीं है. ॥ ४१७॥

यह विद्या किस रीतिसे प्रकाशमें आई इस विषे ३ पक्ष हैं (१) ईश्वरकी तरफसे जैसे अन्य विषय कर्मानुसार वैसे यहभी सृष्टिके आरंभमें किसी अधिकारीके हृदयमें प्रेरा जाता है. पीछे भाषामें आता है ऐसा प्रवाह है ॥ (२) सृष्टिके आरंभमें उत्पन्न होनेवाले पूर्व संस्कारी जीवोंमें इस विद्या (अन्य विद्याकेभी) के संस्कार थे वे उद्भव होके उनके उपदेश द्वारा प्रवृत्त हुई और पुनः परस्परके संस्कार मेलनसे यथा संभव पूर्ण-

ताका रूप, पकडा, ऐसे प्रवाह है जो आरंभमेंही किसीमें संपूर्ण मानें तो इस विषय प्राप्तको जन्म न होना चाहिये इस सिद्ध सिद्धांतका बाध हो जाय इसलिये संस्कारोंका मिश्रण माना जाता है (नमूनेमें ईशादि उपनिषिद हैं) (३) मानव सृष्टि आरंभमें बालक समान अज्ञ थी फेर सृष्टिमेंसेही शनैः शनैः ज्ञानकी वृद्धि होती रही अंतिम उन्नति उपनिषद है

तीसरे पक्ष वा भावनामें सिद्ध थीयरी पुनर्जन्मका निषेध हो सकता है क्योंकि जब पुनर्जन्म न मानें और जीवोंकी स्वाभाविक उत्पत्ति मानें तब, आरंभमें सब अज्ञ हो, ऐसा मान सकें, अन्यथा नहीं क्योंकि कर्म थीयरीसे तो आरंभमेंभी उत्तम मध्यम नीच सर्व प्रकारके जीव पेदा होने चाहियें, सर्व अज्ञ उत्पन्न होनेका नियम सिद्ध नही होता (देखो नूतन भावनाका अपवाद तत्त्वदर्शन अ. १). अलबत्ते आरंभमें योगभ्रष्ट जीवोंका जन्म मानके पुनः उनके संस्कार घर्षण और सृष्टिदर्शन इन उभय मिश्रणसे उन्नति मानें तो योग्यतादिका उपयोग इस नियमसे स्वयं उन्नति होनेका अनुमान ठीक पडे और सृष्टि आरंभ पीछे यथा संभव पूर्णरूप पकडा हो. ॥ पहेले पक्षमें जो ईश्वरको निराकार विभु मानें तो उसमें उपदेश और प्रेरनारूप क्रिया न हो सकनेसे वोह मंतव्य असमीचीन रहता है. हा, सगुण पक्षमें (जेसाके विशिष्ट-वादमें है) ऐसा हो सकनेकी संभावना है. दूसरा विशेषतः समीचीन जान पडता है, जेसे मनसका अनादि अनंत प्रवाह है वेसे यह ज्ञानभी प्रवाहसे अनादि अनंत है. ऐसी भावनामें दूसरे पक्षसे कम विवाद है. पहले और दूसरे पक्षमें इस विद्याके बोधक वाक्यको श्रुति कह सकते हैं. परंतु वोह श्रुति कोनसी यह सिद्ध होना कठिन है. तथापि जिनको इस विद्याका साक्षात् है वे साक्षातानुकूल बोधक वाक्योंकी परीक्षा कर सकते हैं. उनके कथनानुसार वोह श्रुति ईशादि हैं. अन्य ग्रंथोंका वेसा बोध उनका अवतरण है. ऐसा सिद्ध हो जाता है.

संक्षेपमें कुछभी मानो परंतु आर्य प्रजामें यह विद्या प्रकाशमान है, इसलिये योग्यता संस्कारका उपयोग इस नियमवश इसमें प्रवृत्ति हो सकती है. इस विद्याके सब अधिकारी नही हो सकते किंतु कर्मानुसार आवागमनादि होते हैं. इसलिये यह जिसको (पूर्व वा वर्तमानके जिन जीवोंको) प्राप्त न हुई उनको आवागमन हुवा और होगा. यह उनकी गति है. और योग्यता संस्कार होनेपर प्राप्ति होती है इसलिये स्वाभाविक शब्द नहीं कह सकते. अतः उक्त शंका व्यर्थ है ॥ ४१७ ॥

(शंका) जीव स्वरूप, मोक्ष साधन और मोक्ष इत्यादि विषयोंमें अन्य ग्रंथोमें

परस्पर और उनसे तुम्हारे कथनमें मतभेद तथा शैली भेद है (यथा जीव ब्रह्म जुदा, जीव ब्रह्म एक, अद्वैत द्वैत इत्यादि) इसलिये किसका क्या माना जाय? (उ.) इसका समाधान सू. १९९-२०१-२०२-२४८-२९१-३९१-३९२-३९३ के विवेचन विचारनेसे हो जाता है. इसलिये अधिकारभेदसे शैलीमें भेद किया जाता है सो अगले सूत्रमें कहते हैं—

यथा अधिकारादि शैली न निरर्थका ॥ ४१८ ॥ जैसा देशकाल स्थिति हो और व्यक्ति अधिकार हो उस अनुसार व्यष्टि समष्टिके सुखार्थ (प्रेयस्) और श्रेयार्थ उपदेश होता है, इसलिये (उद्देश्य दृष्टि और सारग्राही दृष्टिसे तत्त्ववेत्ताओंका) यह शैलीभेद निरर्थक नहीं है किंतु उपयोगी होता है ॥४१८॥

(१) जीव नाना अणु चेतन, यह शैली व्यवहार और कर्म उपासनाकी सिद्धि वास्ते उत्तम है, क्योंकि जवाबदारी रहती है और भेदके विना कर्म उपासना नहीं हो सकती, कर्म उपासना सिद्ध हुये मुख्य सत्यतत्त्व प्राप्तिका अधिकारी हो जायगा. कर्म उपासना और अणु चेतन माना तो मोक्षसे आवृत्ति माने विना छुटका नहीं. पारमार्थिक सत साधनका मूल होनेमें यह शैली उत्तम है. (२) जो अणुमें भोक्तृत्व नहीं हो सकता, ऐसा समझने योग्य है उसको नाना विभु जीव और मनद्वारा भोक्ता शैली उत्तम है. (३) जो विभुमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं हो सकता, इस बातके समझने योग्य है उसको विशिष्टवाद (जैसा इस उत्तरार्द्धमें है.) की शैली उत्तम है. (४) इससे आगे अनुभवने योग्य हो तो अध्यासवादकी शैली उत्तम है. इ. ॥ (५) जीव ब्रह्मकी एकता अंतःकरण भाग छोडके १ चित्त (प्रकृति) और पुरुष (आत्मा)की स्व स्वरूपमें स्थिति १ विभु.जीवके मनका उसके साथ असंबंध ३ चित्त निरोध ४ क्षणिककी स्थिरता ५ चिदग्रंथीका भंग ६ इच्छाका अभाव ७ जीवकी स्वस्वरूपमें स्थिति ८ इत्यादि भिन्न भिन्न शैलीका लक्ष्य एकही है क्योंकि इसमेंसे जो कुछ किया जाय, उसका परिणाम एकही है अर्थात् जैसा है वैसा अनुभव हो जायगा. (६) ईश्वर परोक्ष रहने और न्यायी होनेमें कर्म वादकी शैली उत्तम है (७) ज्ञान मार्गवाली अहंग्रह उपासना सूक्ष्म होनेसे भेदवाली भक्ति बताके ईश्वर विश्रामका आधार बताया, ताकि दुःखादि प्रसंगमेंभी जीवन सुख मय हो, (८) न्यून बुद्धि वालेको एक ईश्वरवाद बताके उसकी मरजीपर विश्राम दिलाया ताके जीवन सुखसे हो, (९) उन्नतिकी निराशा न हो किंतु आशा होके पुरुषार्थ करता रहे इसलिये पुनर्जन्म पर जोर दिया. (१०) दुःखमें शांति आवे इस

लिये ईश्वरेच्छा वा प्रारब्धको आगे रख दिया. (११) जीवन प्रवृत्तिसेही होता है इसलिये जडवाद पर ध्यान चला, तदाधीन उत्क्रांति और विकासक्रम पसंद पडनेसे उसका उपदेश चलाया (१२) नाना धर्म मत पंथ दुःखके हेतु हैं, भ्रांति उत्पादक हैं और उपयोग तो प्रत्यक्ष है, इसलिये अनुमान और शब्द प्रमाणको उडाया. प्रत्यक्ष परही जोर दिया. ॥

इत्यादि उद्देश वा सारग्राहि दृष्टिमे शैली भेद निरर्थक नहीं है. और पक्ष ताने विना वोह आशय सिद्ध नहीं होता इसलिये होते होते मुख्य उद्देश लुप्त हो गया और वाह्यदर्शन इत्थम रूपमें आ गया और विवाद हो पडा उसकी निवृत्ति अर्थ खंडन मंडनमें प्रवृत्ति हो पडी. अधिकारीको चाहिये के शैली भेदसे लक्ष्यमें मतभेद न मानके सार पर दृष्टि डाले. तो जो है सो ग्रहण हो जायगा. ऐसेही इस ग्रंथ वास्ते जान लेना चाहिये. व्यर्थ कुतर्क वा वहेममें पडनेकी अपेक्षा नहीं है। जो ऐसा भाव न हो तो अपने कामका न जानके हाथमें न लेना चाहिये. ॥४१८॥

(शं.) उपर विशिष्टकी जीव संज्ञा कही है उसमें मनस सादि सांत है इसलिये उसको बंध मोक्ष नहीं मान सकते और चेतनको बंध मोक्ष नही है इस वास्ते यह मंतव्य स्वछंदी बनावेगा क्योंकि नीति, व्यवहार और परलोकका उसपर अंकुश नहीं हो सकता. इससे उत्तम तो जडवाद के लोक अंकुश तो रहता है. इसलिये यह मंतव्य प्रवृत्तिके योग्य नहीं. इत्यादि शंकाके समाधानमें ७ सूत्र हैं—

यह स्वछंदीत्वकी प्रतिबंधका ॥४१९॥ उच्चाधिकार प्राप्त होनेसे ॥४२०॥ फलके प्रवाहका उच्छेद न होनेसे ॥४२१॥ शांति और स्वपर जीवन सुख फल ॥४२२॥ करणके मध्यमत्वमे अव्यवस्था नहीं ॥४२३॥ विशिष्टत्वेन होनेसे ॥४२४॥ शेष समाधान जाग्रत और स्वप्नके विवेकसे ॥४२५॥

उपरोक्त विशिष्ट चेतनवादकी शैली अधिकारीको मनमुखी (यथेष्टाचारी) बन जानेकी प्रतिबंधक है ॥ उत्तेजक नहीं है ॥४१९॥ क्योंकि इसके अनुभवीको अमुक्तोसे उपरोक्त उच्चाधिकार प्राप्त हो जाता है ॥४२०॥ जो स्वपर दुःखद स्वछंद है उनका विवेक वैराग्य और शमादि साधन प्रसंगमें त्याग हो चुका है त्यागे उच्छिष्टको ज्ञानवान ग्रहण नही करता. उच्चताप्राप्तको हीणता प्रियभी नही हो सकती, इसलिये दुःखद स्वछंदसे जुदाही रहता है. तथाहि उच्चताप्राप्त मनुष्य प्रतिष्ठित होते हैं ऐसे श्रेष्ट प्रतिष्ठित जेसे वर्तते है उस अनुसार लोक वर्तना चाहते हैं, इसलिये लोक हितार्थमी उसकी प्रवृत्ति श्रेष्टाचरणमें होती है. स्वछंद नही. तथाहि

उसको जो निरंकुश तृप्ति देनेवाला बोध प्राप्त हुवा है जिससे वोह शांत सुखी हुवा है उसका प्रत्युपकार होना चाहिये अर्थात् अपने शिक्षक समान दूसरे अधिकारीको बोध करना चाहिये. जो ऐसा न हो तो कृतघ्नताका प्रसंग आवे वा तो परंपराकी मर्यादा नष्ट हो जाय. परंतु बोध उत्तमाचरणवालेको लाभकारी होता है, यथेष्टाचारीको नहीं इसलियेभी वोह स्वछंदी नही हो सकता तथाहि जीवनमुक्त योग्य स्वतंत्र हो जाता है स्वछंद वर्तनका परिणाम परतंत्रता होता है.

इसलिये यथेच्छाचारी नहीं हो सकता जिसका परिणाम दूसरेको अथवा अपनेको दुःख हो वोह वर्तन स्वतंत्रताका बोधक नही किंतु परतंत्रता वा स्वच्छंदका बोधक है. और दूसरेको दुःख न होके अपनेको सुखप्रद जो स्वतंत्र वर्तन उसका नाम स्वतंत्रता है. ॥४२०॥ तथाहि जबतक तन मन है वहांतक भोगको प्रारब्ध-भोग कहो वा सृष्टिनियम कहो या अन्य कुछ मानो, फलके प्रवाहका उच्छेद नही होता अर्थात् कृतका फल होता ही है. ॥४२१॥ क्योंकि प्रकृति अपना नियम नहीं छोडती. विद्या और धर्म अपने प्रभावसे अनिष्टमें नही जाने देती. मनमें डंक लगाती है. राज सत्ता प्रजाके सुखार्थ दंडनीतिका त्याग नहीं करती, मंडल अर्थात् सोसाइटी अपने नियमका भंग होना नही चाहती. नीतिमर्यादाकी रक्षक रहती है इसलिये उसके प्रतिपक्षीको हानी पहोंचाती है. इन ४ प्रकारका भाव रहनेसे यथेच्छाचारी नहीं हो सकता. सारांश यदि शैलीके फलकी यथायोग्य प्राप्ति न होनेसे वा प्रारब्ध वशसे कदाचित् स्वच्छंदीपना हो जावे तो अन्य पक्ष माने समान शिक्षा मिल जायगी. सो उसकी भूल वा प्रारब्धका फल है. पुनर्जन्म वा ईश्वरका होना न होना मानो वा न मानो, कर्मानुसार फल होनेका है. इसी प्रकार मैं मुक्त हुं, मैं ब्रह्म हु, मैं स्वतंत्र हु, जगत् मिथ्या है, स्वप्नसमान भ्रमरूप है, बंध मोक्ष नही, जीव सादि सांत है वा अनादि है इत्यादि मानें वा न मानें तोभी कर्मानुसार फल होगा. इसलिये विवेकीमें स्वच्छंदता नहीं आ सकती. उसको ज्ञात है कि अनिच्छित और अनिष्टभी स्वप्न तथा संकल्प विकल्प हो जाते है सुगंध दुर्गंध और रोग पीडाका ज्ञान वा भोग होता है. षड् उर्मि (भूख, प्यास सरदी गरमी इत्यादि) अनिच्छित होते हैं तो फेर स्वच्छंदका फल क्या न होगा ? पर संबंध प्रसंगमें तन मनधारी व्यक्तिकी स्वतंत्रता होही नहीं सकती. इसलिये ऐसा स्वच्छंदपना अज्ञानी योंका है, नकि विवेकीका. जान पूछके खड्डेमें पडना तो द्वैतवादी, अद्वैतवादी, परलोकवादी, जीववादी, मायावादी, जडवादी, चेतनवादी, विद्वान, अविद्वान, और

शिक्षक ईश्वरवादीभी कर सकते हैं. और उनको उसका फल भोगना पडता है तो फिर प्रस्तुत शैलीकोही क्यों कलंकित करना चाहिये. वर्षा समान होती है. उसका फल सीपी, सर्प मुख, उसर भूमि और चाही भूमीमें जुदाजुदा होता है, यह वर्षाका दोष नहीं. पात्रका दोष है. ऐसेही प्रस्तुत विद्याके संबंधमें जान लेना चाहिये. ॥४२१॥ इस शैली (वा इस विद्या) का परिणाम तो शांति हो, जीवन सुखसे हो और अपनेको तथा दूसरोंको सुख मिले यह फल है ॥ जेसाकी उपर कहा गया है॥४२२॥ इसलोक वा परलोक संबंधी इच्छा न रहनेसे शांति हो जाती हैं. आत्मवत् सर्व भूतेषु ऐसा अभेद सिद्धांत हो जानेसे समदर्शीपना आ जाता है, इस शैलीका अनुभवी निष्काम कर्ममें प्रवृत्त होता है. इससे दूसरोंको सुख मिलता है. और यदि अधिकारी (जिज्ञासु) इससे उपदेश ले तो इसके समान सुखी हो जाता है.

(शं.) जीवन मुक्तकी शांतिमें पूर्वके संचित बाधक होना क्यों न माना जाय ? (उ.) संचितशून्य वा अल्पसंचितवाला अधिकारी होता है (सू. ४०२, ४०३) साधनमें जो कष्ट (सू. १६९) चित्तशुद्धि (१७०) सेवा उपकारजन्य सुख (१७१) प्रतिबंधरहित (२४५) इनप्रसंगोंको याद करिये. इनसे शंकाका समाधान हो जायगा ॥ ४२२ ॥ मनस मध्मय-सादि सांत है, ऐसा होनेसे कोई अव्यवस्था नही होती (४०५ का विवेचन याद करिये) ॥ ४२३ ॥ क्योंकि विशिष्टभाव होनेसे उसकी सफलता है. ॥ यहां तकके मुक्ति होने तक (मनस उत्पत्ति प्रसंगकी उसपर कठिन जवाबदारी रहती है (४०७ का विवेचन याद करिये) * ॥ ४२४ ॥ इस प्रस्तुत सूत्र २४५ से २४९ तक और २५२ से ४१६ तक) विषय (परिणामवाद-विशिष्टवाद, उच्छेदवाद, अनुभववाद) में और भी अनेक शंका हो सकती हैं. उन सबका समाधान जाग्रत स्वप्नके विवेक करनेसे हो जाता है ॥ ४२५ ॥ सू. ४४५ से ४४८ तकका और ४६८ से ४७० तकका विवेचन ध्यानमें लीजिये किंवा तत्त्वदर्शन अ. ४- में स्वप्ननिर्णयवाला प्रसंग वांचीये अथवा भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमें प्रकृतिविवेक प्रकरण विचारिये ॥ ४२५ ॥

लक्ष्यालक्ष्य परिणाम इति ४२६ ॥

सू. २५२ से लेके सू ४१६ तकमें जो कुछ कहनेमें आया है उसके अनुसार अभ्यास होनेसे आत्मा अनात्मा (याने पुरुष प्रकृति, जीव, ब्रह्म, जीवाजीव, चिदचिद, जड अजड) के स्वरूपका लक्ष्य अलक्ष्य परिणाम आता है ॥ ४२६ ॥

* इतनी ऐसी प्रकारकी जवाबदारी किसी मतंव्यमें नहीं है.

अर्थात् इस विषयको सर्वथा ज्ञात वा सर्वथा अज्ञात है, ऐसा नहीं कह सकते. जड़ चेतनकी तमाम योग्यता (शक्ति)नहीं जानी जाती, जो अनुभव होता है सो मन वाणीद्वारा नहीं कहा जाता, इसको किसने जाना तथा किसप्रकार जाना यहभी नहीं कहा जा सकता, और उपर जनाये अनुसार नहीं है, ऐसेभी नहीं कह सकते; इसलिये यह विषय अकथ्य प्रकारसे लक्ष्य होने हुयेभी अलक्ष्य होनेसे लक्ष्यालक्ष्य सिद्धांत इस संज्ञावाला कहा जाता है. सूत्रमें इति पद प्रसंग समाप्ति सूचक है. अर्थात् उक्त आत्मजिज्ञासु अधिकारी (सू. २४५, २४७) के लिये जितना चाहिये था उतना कहा गया ॥ ३२६ ॥ यहांतक अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद, परिणामवाद, चिदचिद् विवेकख्याति) समाप्त हुवा.

विवेकीका सार (आशय).

(१) आत्मा स्वप्रकाश शुद्ध ज्ञान स्वरूप कूटस्थ और अक्रिय तथा निरीह है. मनस एक वस्तु है जिसके प्रत्यय (आकार–परिणाम) हैं. उन प्रत्ययोंके प्रयोजक बाह्य पदार्थ हैं, यह सब प्रयोगद्वारा अनुभवसिद्ध है. परंतु आत्मा (ब्रह्म) असीम है वही सशक्त ईश्वर है. और बाह्य पदार्थ अमुक प्रकारके हैं इत्यादिक अनुमानके विषय हैं.

(२) क्षेत्र (प्रकृति–माया) और क्षेत्रज्ञ (कूटस्थ ब्रह्म चेतन) इन दोनों के संयोगसे तमाम त्रिपुटी (व्यष्टि समष्टि ब्रह्मांड) है. उनमें तमाम कर्तृत्वका हेतु प्रकृति है और भोक्तृत्वका हेतु पुरुष (जीव चेतन) है. और आत्मा ब्रह्म अकर्ता अभोक्ता शुद्ध अकथ्य अगम्य महिमावाला है. इस विषयका अनुभव स्थितप्रज्ञको हो जाता है (प्रयौगिक सिद्धांत है).

(३) आत्मा और मनसके विना (अंतःकरण–चित्त, बुद्धि, मन, अहंकारके विना) दुःख सुख बंध मोक्ष नहीं है और आत्मा या मनस दुःखी सुखी या बंध मोक्षका पात्र नहीं है किंतु जीवही दुःखी सुखी और बंध मोक्षका पात्र है. यह बात प्रयोगसे अनुभवसिद्ध है इसलिये जीवनमुक्तिके सुखके अभिलाषीको मनोराज्य और वासना क्षयके अर्थ चित्तनिरोध करके सुखी होना चाहिये. (उक्त सप्त भूमिका याद कीजे) और जो पूर्णकाम निर्भ्रांत और चिदग्रंथीके भंग हो जानेसे निर्वासन हो गये हैं उनको अपना जीवन सुख परहितार्थ अर्पण करना चाहिये क्योंकि कामना तो है नहीं निषिद्धका सर्वथा त्याग है, कामनाके अभावमे सकामकर्मकी अनुत्पत्ति है और कर्मविना जीवन नही होता इसलिये सार यह निकला कि निष्काम हुवा पदार्थ कर्म याने परोपकार करे. जीवनपर्यंत परोपकार करता हुवा जीवे. इस प्रवृत्ति विषयक विवेचन सू. ३०१ से ४०३ तकमें है.

विज्ञप्ति.

पाठक महाशय! यदि आपको उपरोक्त चिद्ग्रंथीका अनुभव नही हुवा है तो वक्ष्यमाण उत्तर फिलोसोफीके वांचनेमें तकलीफ न उठावें. नहीं तो आपका समय व्यर्थ जाय ऐसा में मानता हुं. (प्रयोजक)

विज्ञानयोग (उत्तर फिलोसोफी) प्रस्ताव.

अधिकारीको जिसकदर ज्ञातव्य कर्तव्य प्राप्तव्यकी आवश्यकता थी उतना शिष्यको भावना अनुकूल वा अध्यारोप अपवादकी रीतिसे उपदेश गुरुदेवने किया सो उपर कहा गया है. अर्थात् मैं क्या, कोन, केसा और मेरा संबंध इस दृश्यके साथ केसा तथा ईश्वरके साथ केसा तथा मेरा परिणाम क्या इत्यादि बातोंकी जरूरत थी अर्थात जीव और उसके मोक्षके संबंधमें यथायोग्य उपदेश हुवा और उसका अनुभव करके यथा अनुभव परीक्षा कहा गया.

परंतु सत्संग कल्पवृक्ष है इसलिये उक्त जीवन मुक्तने उक्त सत् समागममें और जो कुछ सुना और निश्चय किया वोहभी उपयोगी था अर्थात् विपरीत भावना और संशयको अवसर न मिले इसलिये उसका वोह श्रवण मननभी आगे लिखते हैं सो अध्यारोप अपवादकी रीतिसे लिखेंगे. इस वक्ष्यमाण उत्तर फिलोसोफीका संबंध आइडीयाके साथ है इतनाही नहीं किंतु जगतके स्वरूप संबंधमें तो अनुभवके साथ संबंध है जो उसके ज्ञाताको गम्य होता है. और उसका असर होता है. मानव मंडलमें मुख्य चार प्रकारकी भावना हैं:—

(१) सजातीय विजातीय स्वगतभेद रहित एक अद्वितीय ब्रह्म वस्तु है उससे इतर कुछ नहीं. (२) विभु वस्तु कोई नहीं, सब परिच्छिन्न (परमाणु) हैं. (३) विभु और परिच्छिन्न दोनों है (४) नाना विभु हैं. इन चारों पक्षोंमें अपवाद है. इनमेंसे नाना परिच्छिन्नवादका अपवाद उपर आचुका है अर्थात केवल नाना परिच्छिन्नवाद मानें तो उनको किसी व्यापक स्वयंभु आधारकी अपेक्षा है कारण के आकर्षणादि द्वारा आधारत्वकी सिद्धि नही होती और अन्योऽन्याश्रय मानना असमीचीन है (पूर्वार्द्ध याद करो). अतः परिच्छिन्नवाद सिद्ध नही होता. जो नाना विभुवाद मानें तो उनमें गति न होनेसे व्यवहारही नहीं हो सकता. तथा एकको व्यापक कहके उसीको दूसरे विभुका व्याप्य मानना होगा यह वदतोव्याघात दोष है. अब शेष दो भावना रही एक विभुवाद और विभु परिच्छिन्नवाद. इन पक्षोंके जो प्रकार हैं और अपवाद है वे आगे वांचोगे.

जितने रीफारमर वा दर्शनकार हुये हैं उनका अद्वैतपर ज्यादा लक्ष रहा है. उसमें तीन कारण जान पडते हैं (१) जबके एक वस्तु (ईश्वर परमात्मा) मानी और फेरभी उसको दूसरेकी अपेक्षा मानी या अपेक्षा है याने उपादान, जीवके कर्म, नियम, लीला, कर्तृत्वकी अपेक्षा है, तो वोह ईश्वरही क्या, कथन मात्र है, अतः जबके भावनाके आधीन मंतव्य है तो उस एकमेही सर्व व्यवस्था निभाना या मान्ना चाहिये. शिर्क (विजातीय) को मान्नाही होता है (२) जहां तक लाघव भूषण सिद्ध होता हो वोह स्वीकारना वा मान्ना ठीक है. (३) और परंपराके संस्कार ॥ यह तीन कारण है परंतु अद्वैतको जब निवाहने जाते हैं तब द्वैत आ खडा होता है यथा (१) अद्वैतका साधक दूसरा ठेरता है (२) अपनेमें अपना संयोग होना इसकी व्याप्ति नहीं मिलती और उसके विना उपयोग नहीं होता अर्थात् एकका अपनेमें अपना उपयोग नहीं हो सकता या यूं कहो कि दूसरेके विना उपयोग नही होता. और कोईभी वस्तु निष्फल अनुपयोगी हो यहभी सिद्ध नही होता. इसलिये एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, ऐसी भावनामें मान लेना तो सहेज है परंतु सिद्ध होना मुशकिल है.

अतः लाचार होके प्रत्यक्ष द्वैतवादका मथन करते हैं तो वोह प्रत्यक्ष व्याप्तिमे मान लेना तो सहेल है और सब मानतेही हैं परंतु सृष्टि नियमानुकूल सिद्ध करना मुशकिल हो पडता है. और अंतमें अद्वैत आ खडा होता है जेसे जडचेतनका बारीक झघडा है वेसाही अद्वैत द्वैतवादका सूक्ष्म झघडा है. इन दोनों विवादकी व्यवस्था जो विवेकी, विद्वान, बुद्धिमान, सदाचारी, व्यवहारज्ञ, परमार्थज्ञ, बहुश्रुत, मनोअभ्यासी और आत्मवित है वोह सहेजमें कर सकता है. अन्य शब्द जाल और पक्षपातमें वा संस्कारकी रस्सीमें बंधाके तना जाते हैं.

अब आगे चेतनवादकी रीतिसे अद्वैतसिद्धिमें जो भावना चल रही हैं उनमेसे उतनी लिखेंगे कि बाकी रही हुई उसके पेटेमें आ सकती हों. इसमेंभी दो प्रकार हैं (१) सत्य कार्यवाद (ब्रह्म परिणामी, क्षणिक परिणामी, ईश्वर रचित अभाव जन्य सृष्टि, शक्तिमानकी शक्तिका परिणाम) दूसरा अध्यस्तवाद (भ्रम, अध्यास, विलक्षण, * मायावाद (विवर्त्तोपादानवाद) दृष्टि सृष्टिवाद और बाधरूपावभासवाद) यह दोनों क्रमसे लिखेंगे. तटस्थ होके मनन करना चाहिये. इनवादोंमें अपवाद देखाया है; परंतु परस्परका खंडन मंडन नहीं किया है क्योंकि यह ग्रथ जिज्ञासु वास्ते है. अध्यस्तवादमें एक भ्रमवादको छोडके सब एक

* विलक्षणवादकी शैली ग्रथ प्रयोजककी है

जैसे है, शैली और अधिकार मात्र अंतर है और देशकाल स्थितिकाभी विचार है. अतः यथाऽधिकार जिससे शांति सुख मिले सो ग्रहण करना चाहिये अन्यथा नहीं.

वक्ष्यमाण सत्यकार्यवाद अद्वैतके आरोपका विस्तार और प्रकार तथा उसके अपवाद तत्त्वदर्शन ग्रंथ अ. १ गत आरोप अपवाद प्रसंगमें और मतांतर दर्शन प्रसंगमें तथा विदुषक पक्षमें लिखा है और इनके भूषण उसी अध्यासगत विभूषक प्रसंगमें लिखे हैं. तद्वत् वक्ष्यमाण अध्यस्तवादकेभी लिखे हैं. यहां जितना अध्यस्तवाद समझनेकी अपेक्षा थी उतने विवेकका विस्तार यहां लिखा है. विशेष कल्पना, आरोप, व्यवहार व्यवस्थाभी तर्क, शंका, समाधान सहित विस्तार मूल ग्रंथमें है. किंतु अद्वैत वक्ष्यमाण विवेचनमें पक्षवर्णन करनेसे और सूक्ष्म तथा कष्टसाध्य बोध होनेसे पुनरुक्तियोंका उपयोग लेना पडा है. उसके लिये पाठकवृंद क्षमादृष्टि रखेंगे ऐसी उमेद करता हूं. ॥

संगति—उपर जो त्रिवाद वा परिणामवादमें ईश्वर-ब्रह्मको विभु अधिष्ठान मानके प्रकृति-जगतको उसका व्याप्य वा अध्यस्त मानके याने विभु परिच्छिन्नवाद द्वैतवाद स्वीकारा है सो समीचीन नहीं है किंतु अन्यथा है सो आ (अध्यारोप) अप (अपवाद) की रीतिसे कहते हैं—

(आ॰) यह जलतरंगवत् ब्रह्मकाही परिणाम परस्वरूपका संबंध न हो सकनेसे. ॥४२७॥ (अप) नहीं, सावयवता और विरुद्ध धर्मत्वके अभावसे ॥ ४२८ ॥

अद्वैत सिद्धिके प्रकारोंमें पहला प्रकार याने अध्यारोप यह है अर्थात् यह दृश्य जैसे समुद्रका जल अनेक प्रकारके तरंगरूप होता है या धरता है वैसे यह जगत (प्रकृति-जीव-त्रिपुटी-तमाम ब्रह्मांड) ब्रह्मदेवकाही अविकारी परिणाम (फारम-नामरूप) है. इसी वास्ते "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहा जाता है. क्योंकि ब्रह्मसे इतर जो कुछ माना जाय उसका व्यापक ब्रह्मके स्वरूपमें संबंध (प्रवेश) न होनेसे उसकी सिद्धिही न हो सकेगी. और जो अन्यको मानोगे तो ब्रह्मचेतनको चालनी जैसा छिद्रवाला मानना पडेगा जोकि असंभव है और वदतोव्याघात है. क्योंकि स्वरूपप्रवेशके अभावसे व्यापक व्याप्य वा तादात्म्यभाव संबंध अलीक है और जगत दृश्य है अतः उपर जो ब्रह्मको असीम समचेतन मानके तदेतरको व्याप्य वा अध्यस्त माना है सो समीचीन नहीं है ॥४२७॥ जो परिणाम अपने पूर्वके स्वरूपमें आ जावे उसे अविकृत परिणाम कहते हैं जैसे जल तरंगरूप होके पुनः जलरूप हो

जाता है जलके बरफरूप पहाड वगेरे बनके पुनः जलरूप हो जाता है वा कनकके कुंडल वगेरे रूप बनके पुनः कनक हो जाता है. किंवा सर्प गोल त्रिकोनाकार बनके पुनः सर्परूप हो जाता है. ब्रह्मभी जगत् जीवरूप बनके पुनः ब्रह्म स्वरूप हो जाता है. (क्यों परिणाम पाता है इसके निर्णयका यहां प्रसंग नहीं है.)

इस आरोपमें कई प्रकारकी भावना हैं यथा १ ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है उसके सदंशसे जगतकी उपादान प्रकृति, चेतनांशसे नाना अणु चेतन जीव और आनंद अंश अपरिणामी महेश्वर (प्रभु) है. जगत्का व्यवस्थापक है. जीवको अविद्या दी; इसलिये अपने स्वरूप वा योग्यताको नहीं जानके कर्ता भोक्ता होता है, जन्म धारता है, ईश्वरकी भक्ति और ईश्वरकी कृपासे मोक्षको पाके स्वधामको पाता है. इत्यादि रूपसे ईश्वर लीला करता हुवा सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लय करता रहता है (२) अल्प जीव नहीं जान सकता के वोह केसे सृष्टिका रूप धारण करता है परंतु जल तरंगवत् उसीमे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी क्रमसे हुये उससे अन्न वीर्य पशु पक्षी वगेरे हुये हैं और अंतमें उसीरूप हो जायंगे, ऐसे प्रवाह है. (३) इ. ॥ ईश्वर सर्व शक्तिमान है अन्यथा, यथेच्छा करनेको शक्त है. इसलिये इस प्रसंगमे तर्क युक्ति दृश्य नियम माननेकी अपेक्षा नहीं है.

जहां एक दाना है वहां दूसरा दाना नहीं आ सकता. जहां तम है वहां प्रकाश जहां प्रकाश वहां तम नहीं आ सकता. इस प्रकार हरकोईके स्वरूपमें दूसरेका स्वरूप नहीं आ सकता. इसी प्रकार ब्रह्मके स्वरूपमें दूसरा (प्रकृति वगेरे) के स्वरूप का प्रवेश नहीं हो सकता (शेष आगे). ब्रह्म व्यापक-विभु है इसलिये दूसरे स्वरूपको रहनेका अवसर नहीं है एतदृष्टि यह सब ब्रह्म स्वरूपही है ऐसा मानना चाहिये. इसीको अद्वैत सिद्धांत * कहते हैं. और ऐसा अद्वैत मानते हुये जगत व्यवहारकी व्यवस्थाभी हो जाती है. ॥ ४२७ ॥

(अ१) उक्त आरोप ठीक नहीं है क्योंकि ब्रह्म स्वरूपतः एक है उसमें सावयवता (स्वगत भेद) नहीं है और एक स्वरूप होनेसे विरुद्ध धर्मवाला (विरुद्ध धर्माश्रय) नहीं है. ओर सावयव न होनेसे परिणामीभी नहीं कहा जा सकता. क्योंकि जो परिणामी होता है सो सावयवही होता, जो विरुद्ध धर्मी होता है वोह अनेक सजातीय विजातीयका पुंज होता है. इसलिये ब्रह्मको परिणामी माननेसे अद्वैत नहीं किंतु द्वैतकी सिद्धि होती है ॥४२८॥

* शुद्धाद्वैत.

जल, कनक, सर्प सावयव हैं अतः परिणामी हैं. निरवयवके परिणाम पानेकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती. पृथ्वी अनेक सजातीय विजातीय परमाणुका पुंज है उससे मधुर कटु दुर्गंधी सुगंधीवाले वृक्ष होते हैं. अतः उक्त पक्ष सिद्धिकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती. उंच नीच, मधुर कटु, अग्नि जल, तम प्रकाश, द्रष्टा दृश्य, ज्ञाता ज्ञेय, भोक्ता भोग्य, दुःख सुख, स्वामी सेवक, उपासक उपास्य, बंध मुक्त, रक्षक रक्ष्य, संहार संहारक इत्यादि रूप-परिणाम एक तत्त्व वस्तुके नहीं हो सकते क्योंकि यह भिन्न भिन्नही होते हैं और कितनेक परस्परमें विरोधीभी हैं. इसलिये इस पक्षको माने हुये व्यवहार व्यवस्थाभी नहीं जान पडती. यहां पक्षके मंडन वा खंडनमें प्रयोजन नहीं है किंतु अद्वैत सिद्धिका प्रकार ठीक है वा नहीं है इतनाही आशय है. परंतु सूत्रोक्त हेतुके विवेकसे इस अध्यारोपसे अद्वैतवाद सिद्ध नहीं होता.

और जो ब्रह्मको सर्व शक्तिमानके अन्यथा कर्ता मान लेना और उसकी व्याप्ति न वताना यह हठ वा विश्वास मात्र है उसके निषेधमें हमारा आग्रह नहीं है. परंतु जो ऐसा मानें तो अभावजन्य पक्ष ठीक रहेगा जिसमें ईश्वरके टुकडे तो नहीं होते (आगे वांचोगे) ॥४२८॥

अद्वैत सिद्धि अर्थ दूसरा आरोप—

(आर) एक क्षणिक विज्ञानका परिणाम वासनासे स्वप्नवत् ॥४२९॥ (अप) परिणामी सावयव और आधार सम होनेसे नहीं ॥४३०॥ और स्थायी त्रिपुटी व्यवहार दर्शनसेभी ॥४३१॥

एक क्षणिक विज्ञान नामका अनादि पदार्थ है उसके पूर्व पूर्व वासनासे उत्तर उत्तर क्षणिक परिणाम होते रहते हैं. ज्ञेय, ज्ञाता, कर्ता कर्म, द्रष्टा दृश्य, भोक्ता भोग्य इत्यादि क्रमसे क्षणक्षणमें परिणाम होते रहते हैं सो यह बाह्यमें दृश्य जान पडता है. जैसेके स्वप्न सृष्टिमें होता है. ज्ञेय, पीछे ज्ञानरूप, पीछे ज्ञातारूप इस प्रकारसे क्षण क्षणमें परिणाम होता है. उसमें हेतु पूर्व पूर्वकी वासना है. जब वासना न रहे तो निर्वाण (मोक्ष) हो जाता है. इस आरोपमें क्षणिक विज्ञान एक होनेसे अद्वैतवाद सिद्ध रहता है ॥४२९॥ यह आरोप अद्वैतका साधक नहीं है किंतु द्वैतका साधक है. क्योंकि परिणामी वस्तु सावयव होती है. निरवयव परिणामी हो एसी व्याप्ति नहीं मिलती, जब के वोह सावयव और परिणामी है. अर्थात् परिच्छिन्न है तो उसको आधारकी अपेक्षा है और जो व्यापक आधार होता है वोह सम होता है. क्षणिक वा परिणामी वा परिच्छिन्न

नहीं होता. इसलिये क्षणिक परिणामवाद द्वैतका साधक है. यद्यपि इस पक्षमें स्वरुपाप्रवेश दोष नहीं आता तथापि अपने अधिष्ठानका बोधक होनेसे द्वैतको बताता है ॥४३०॥ तथाहि जाग्रत और स्वप्नमें त्रिपुटी व्यवहार स्थायी देखने हैं क्षणिक नहीं. जो क्षणिक होता तो भोजनादि भोग्यकी व्यवस्था न होती. यह घट यह सूर्य ऐसा व्यवहार न होता क्योंकि जिस कालमें विज्ञानने घटरूप परिणाम रखा उस कालमें उसके ज्ञानरूप और इदंरूप परिणाम नहीं हैं. परंतु व्यवहारमें तो ज्ञेय और ज्ञाता समकालीन देखते हैं. एक घट को दो पुरुष पकडे वा परस्परमें शेकहेन्ड करे (हाथ मिलावें) और एक सूर्यको देखें तो पूछते हैं कि वोह घट, हाथ शरीर, और सूर्य किस विज्ञानका परिणाम है. जो कहो के दोनोंका जुदा जुदा है तो द्वैतापत्ति होगी और जो कहो कि जिसको सवाल पेदा हुवा है उसीके सब अंतरमें परिणाम हैं, घट, शरीर, हाथ, सूर्य यह सब शरीरसे बाह्य नहीं किंतु स्वप्नवत् शरीरके अंदर हैं. तो दोनो पुरुषोंको स्वत्वका बोध न होना चाहिये परंतु होता है. यथा स्वप्नके आभासरूप शरीरोंमें जीव दृष्टाकाही अहंत्व है अन्यका नहीं. परंतु यहां तो जुदा जुदा हैं. इस प्रकार स्वप्नमेंभी त्रिपुटीका स्थायी व्यवहार और जाग्रतमें उसकी वेसीही स्मृति देखने हैं. ईसलिये क्षणिकत्वकी असिद्धि है. (शेष आगे) ॥४३१॥ इस रीतिसे क्षणिक परिणामी माननेसे द्वैतकी आपत्ति और व्यवहारकी अव्यवस्था होती है. ॥४३१॥

अद्वैत सिद्धि अर्थ तीसरा आरोप

(आ.३) ईश्वर रचित अभावजन्य ॥४३२॥ (अव) नहीं, अव्याप्ति और असंभव होनेसे ॥४३३॥

ईश्वर (खुदा-गॉड) अद्वितीय था और रहेगा उसमें दूसरे स्वरूपका प्रवेश नहीं उससे इतर कुछभी दूसरा नहीं था. उसने आपनी इच्छासे सर्व शक्तिमान होनेसे अभाव (नेस्ती) में से भावरूप जगत जीव बनाये ॥४३२॥ और यथेच्छा उनको जन्म दिया और उपदेश किया. उसकी भक्ति उसकी कृपासे मुक्ति मिलेगी अन्यथा यथाकर्म नरक मिलेगा. ॥ जो कि सृष्टि उसकी और अभावसे बनाई हुई है इसलिये इमतनायत दाखुल (स्वरूपाप्रवेश) का नियम बाधक नहीं होता और वोह सर्व शक्तिमान है अतः अभावसे भाव वा अन्यथा कर सकताहै. इस प्रकार अद्वैत सिद्ध है. ॥४३१॥ यह आरोप ठीक नहीं है क्योंकि अभाव से भावरूप होनेकी कोई व्याप्ति नहीं मिलती और अभावसे भावरूप होना

असंभव है ॥४३३॥ तथाहि जीवेंको जेसी योग्यता दी, जेसे साधन दिये उस अनुसार करते हैं अर्थात् कर्मके जवाबदार नही ठेरते. परंतु जीवेंको कर्मके फलमें दुःखी सुखी तो देखते हैं इसलिये याते ईश्वर अन्यायी विषम दृष्टिवाला ठेरता है वो तो अन्यथा है ॥ सर्वशक्तिमान मानके अव्याप्तिवाला आरोप करनेसे वजूद सिद्धांत (सर्वं खल्विदं ब्रह्म) ही ठीक रहता है. क्योंकि शह्द सिद्धांत (ईश्वर जगतरूप नहीं उसका साक्षी अभावमे उत्पन्न करनेवाला) माननेंमी द्वैत और स्वरूप प्रवेशका सवाल खडाही रहता है. कारण के ईश्वरकृत कार्य मिथ्या नहीं होता इसलिये जगत सत्य है. दो समान सत्यका एक दूसरेके स्वरूपमें प्रवेश नहीं हो सकता. तो फेर व्यापक ईश्वरने वोहं सृष्टि कहां रखी ? कोई जगे नहीं मिलती. जो ईश्वरको साकार परिच्छिन्न मान लें तो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तथा जगदाधार न हो सकेगा. इस प्रकार अभाव जन्य मानते हुयेभी द्वैत और अव्यवस्थाकी सिद्धि होती है. अतः यह आरोप ठीक नहीं. ॥ ४३३ ॥

अद्वैतसिद्धिमें चोथा आरोप.

(आ ४) शक्तिमानकी अनिर्वचनीय शक्तिको परिणाम (विशिष्टवाद समान) कनककुंडळ और स्वप्नवत् ॥ ४३४ ॥ (अप) शक्तिमें सावयवता और परिणामत्वका अभाव होनेसे नहीं ॥ ४३५ ॥

जिसको अधिष्ठान पूर्ण सम चेतन ब्रह्म उपर (विशिष्टवादमें) कहा है उसकी अनिर्वचनीय (जिसके मूलस्वरूपका मनवाणीद्वारा निर्णय न करा जावे सो) शक्तिका यह ब्रह्मांड परिणाम है. (और वोह परिणाम जेसे विशिष्टवाद परिणामवादमें कहा है वेसे है). जेसे कनकका कुंडल परिणाम होता है, वेसे उस शक्तिके साधन साध्यरूप परिणाम होते हैं. अथवा जेसे स्वप्नविषे द्रष्टाचेतनके सामने शेषाके स्वप्नसृष्टिरूप परिणाम होते हैं वेसे जगतरूप परिणाम होते हैं. ऐसा मानेसे अद्वैतकी सिद्धि हो जाती है क्योंकि शक्ति शक्तिवान भिन्न नही होते एकही होते हैं. इसप्रकार शक्तिमान ब्रह्म और उसकी शक्ति मिलके जगतकी व्यवस्था और व्यवहारकी सिद्धि हो जाती है और अद्वैत सिद्ध रहता है ॥४३४॥ जो यह कहो कि शक्ति शक्तिमान हो मानेसे द्वैत हो गया तो हर कोईप्रकार मानो उसमें शक्ति माननाही पडेगा. शक्ति वा गुण रहित पदार्थ असिद्ध और निरुपयोगी-व्यर्थ ठेरता है. यथा यदि ब्रह्म है तो प्रकाशकत्व, साक्षित्व, अधिष्ठानत्व, सत्तास्फुर्णे, दातृत्वकी उसमें योग्यता

(शक्ति या गुण) मानाही होगा इसलिये सर्व पक्षमें द्वैतही सिद्ध होगा. कारण के शक्तिचेतन वा जड वा अणु वा विभु वा व्याप्य या शक्तिमानमें उसके स्वरूपका प्रवेश या नहीं, उसका भेद अभेद या क्या ? इत्यादि सवालोंका उत्तरही नहीं मिलेगा. निदान हरकोई पदार्थ मानो उसमें अनिर्वचनीय शक्ति मानाही पडेगा. अतः द्वैतभाव नहीं आता. पूर्वोक्त शक्तिमानकी शक्तिकी सत्व, रज, तम किंवा पृथ्वी आदि चार भूत और देशकाल यह विभूति हैं. उन विभूतियोंकाही सब नाम रूप है और शक्तिमान उनकी चाबी है. उसके अनादि नियमसे उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयका वा उपचयापचयका अनादि अनंत प्रवाह है. इस रीतिसे अद्वैतकी सिद्धि होती है. पूर्वोक्त विशिष्टवाद (परिणामवाद) के सिवाय अन्य (त्रिवाद, अविकृत परिणामवाद शक्तिकी अमुक गतिओंसे अमुक प्रकारके नामरूप भासना इत्यादि व्यवस्थाकारक) भी शक्तिका परिणाम मानके व्यवस्था होती हो तो कर लेना चाहिये. यथा शक्तिमानने अपनी शक्तिके नाना नामरूप बनाये इत्यादि. यथा स्वप्नमें केमामी कुछ मानके व्यवस्था कर सकते हो और अंतमें वही शक्तिकी शक्ति. इस शक्तिवाद की रीतिसे व्यवस्थापूर्वक अद्वैत मान सकते हैं. वा सिद्ध हो जाता है ॥ ४३० ॥

(अप) जिसे शक्ति कहते हैं उसमें सावयवत्व और परिणामत्व का अभाव होता है. परंतु जगत तो वैसे उभय धर्मवाला है. इसलिये शक्तिमान (ब्रह्म) की शक्ति (माया वगैरे) का परिणाम यह ब्रह्मांड हो ऐसा सिद्ध नही हो सकता ॥ ४३९ ॥

अध्यस्तवादका अद्वैत.

यहांतक सत्यकार्यवादकी रीतिसे अद्वैतका आरोप अपवाद हुवा. अब आगे अध्यस्तवादकी रीतिसे अद्वैतका अध्यारोप अपवाद कहते हैं.

(अद्वैतका पांचवां आरोप) *

(आ. ५) उक्त अध्यस्त भ्रमरूप, स्वरूप अप्रवेशसे ॥ ४३६ ॥

पूर्वार्द्ध वा विशिष्टवादमें जिसे व्याप्य (जीव प्रकृति) वा जिसे अध्यस्त (प्रकृति-त्रिगुणात्मक प्रकृति-माया) माना है किंवा व्यापक प्रकाशमें व्याप्य स्वीकारा है सो भ्रम है. अर्थशून्य अजात है, क्योंकि समविभुस्वरूपमें दूसरे स्वरूपका प्रवेश नहीं हो सकता ॥ ४३६ ॥ दृश्यको भ्रमरूप न मानके विभु (ब्रह्म) को

*नोटः- यहांसे आगे भ्रमवाद वगैरे जितने पक्ष-आरोप लिखे वे स्वरूपाप्रवेशके कारण दृश्यकी व्यवस्थाकी दृष्टिसे है ऐसा जानना चाहिये. नहीं के दृश्यमेव. क्योंकि ब्रह्मवस्तु तो एकही हो सकती है. वहां इतर कुछ नहीं हो सकता.

भ्रमरूप मानें तो दृश्य परिछिन्नका आधार न हो सकेगा. इसलिये दृश्य आधेयकोही भ्रमरूप मानना समीचीन है तथा अद्वैतका साधक है. जेसे त्रिवाद और विशिष्टवाद गत व्याप्य अव्यक्त और प्रकाश्यको भ्रम कहा इसी प्रकार सग सावयव परिणामी वा क्षणिक परिणामी वा भावरूप जगत अभावजन्य, किंवा ब्रह्मकी व्यापक शक्ति सावयव परिणामी यह मानाभी भ्रम है. उसका कारण उपर आ चुका है. एतदबुद्धि अर्थात् जो वस्तु है उसमें उसकी बुद्धि नही याने उसका ज्ञान नहीं यह भ्रमका लक्षण है. इसीको ज्ञानाध्यास कहते हैं. और स्वरूपाप्रवेश समझाने वास्ते स्वरूप के लक्षण कहते हैं.

स्वरुपा प्रवेश.

स्वरूप वा तत्त्व उसे कहते हैं कि जिसमें किंचितभी दूसरेका मिश्रण न हो. आप अपना संयोगी न हो, स्वगतभेद रहित हो, अपरिणामी हो. निरवयव, अखंड, एकरस अनादि अनंत हो. जो स्वरूपज है वे भी व्यवहारमें स्वरूप वा तत्त्व कहाते हैं. जेसेके पानी, गंधक इत्यादि. यहां उनका प्रसंग नहीं किंतु मूल स्वरूप–मूल तत्त्वका प्रसंग है. यथा हों तो शक्तिका स्वरूप, शक्तिमानका स्वरूप, द्रव्य (अणु वगेरे) स्वरूप, गुणस्वरूप इत्यादि इसीको ज़ात वा जोहरभी कहते हैं. देशकाल और वस्तु स्वरुप यह तीन अधिकरण कहाते हैं.

उक्त एक स्वरुप अधिकरणमें दूसरे स्वरुपाधिकरण (वा स्वरूपजाधिकरण) का प्रवेश नहीं होता. यह सृष्टिनियम सूक्ष्मदर्शी अनुभवी तत्त्ववेताकी बुद्धिको गम्य है. (स्वतःग्रहण प्रकारी अनुभव याद करिये सू. ३८६).

वोह स्वरूप प्राकृत (मेटीरीयल–जो स्थूलरूपमें आवे तो दृश्य हो जिससे शरीर ग्रह वगेरे बने हैं) अप्राकृत (इम्मेटीरीयल–यथा गरमी विजली आदि), अणु, विभु, वजनदार, निर्वजन, पारदर्शक, नपारदर्शक, सूक्ष्म, स्थूल, साकार, निराकार, मूर्त्त, अमूर्त्त, सजातीय, विजातीय, विरोधि- अविरोधि, सावयव, निरवयव गोचर, अगोचर, व्यक्त, अव्यक्त, सगुण, निर्गुण, गुण, गुणी, शक्ति, शक्तिमान, द्रव्य, गति, व्यक्ति, जाति, धर्म, (धर्मास्तिकायाधर्मास्तिकायादि) धर्मी, निरावरण सावरण, संबंध, असंबंधी, जड चेतन, यह, वोह, मैं तूं, का विषय इत्यादि हरकोई प्रकारका यदि वस्तुतः स्वरूप हो तो, अस्तित्व रखता हे तो उस एक स्वरूपमें दूसरे स्वरूपका प्रवेश नहीं होता यथा यदि आकाश वा ज्ञान वा शब्द स्वरूपतः वस्तु हों तो आकाशमें आकाश, ज्ञान, वा शब्द और ज्ञानमें ज्ञान, आकाश वा शब्द और शब्दमें शब्द, आकाश

वा ज्ञानके स्वरूपका प्रवेश नहीं हो सकता. यह विषय स्थूल शब्दोंमें यूं कहा जाता है कि एककालमें एक देशविषे दो वस्तु नहीं रह सकती. (यह, आंखसे देखते हैं, मुखसे खाते हैं, ऐसा प्रसिद्ध विषय है, परंतु आंख और मुख नहीं देखते, ऐसा दुर्बोध्य हो पडा है. इसलिये कुछ खोलके लिखते हैं).

जब यूं है तो उपरोक्त गुणगुणी आदि स्वरूपतः कोई वस्तु हों तो वे *नित्य साथ* रहते हों वा जुदा न हो सकते हों, तोभी वे स्वरूपतः *जुदाजुदा* और परस्परमें संयोगी हैं, एकके स्वरूपका दूसरेमें प्रवेश नहीं है, ऐसा मानना पडेगा. ऐसेही व्याप्य व्यापक, तादात्म्य, समवाय, और अभेद संबंधवाले संबंधी, और उनके संबंधवा ते ज्ञातव्य है. याने ऐसे संबंधसिद्ध नहीं होते. क्योंकि जब सूक्ष्म विचार करें *अर्थात् गुणादि गुणी आदिके और गुणी आदि गुणादिके और व्याप्यादि व्यापका-*दिके और व्यापकादि व्याप्यादिके अंदर वा बाहिर वा किसी एक प्रदेशमें हैं वा क्या ? तो, या तो उनको संयोगी मानना पडेगा वा तो स्पष्ट उत्तर न मिलेगा वा तो. उनमेंसे एक वस्तु है, दूसरी वस्तु नही है, यह कहना होगा जो यह मानें के गुणादिको गुणी आदिसे और गुणी आदिको गुणादिसे निकालें तो शेष कुछ नहीं रहेगा, तो यह सिद्ध हो गया कि गुणादि अथवा गुणी आदि स्वरूपतः जुदाजुदा वस्तु नहीं, किंतु एक स्वरूप हैं, दो नहीं. परंतु व्यवहारार्थ उपचारमें कभी गुणादि कभी गुणी आदि संज्ञा देते है जो यह सिद्ध हुवा तो यद्यपि स्वरूपाप्रवेशका सवाल तो न रहा परंतु जगतके कार्य न हो सकेंगे क्योंकि शक्ति वगैरे विना कार्य नहीं होते इसलिये यह मानना पडेगा कि गुणादि और गुण्यादि पदके जो वाच्य हैं उनका समूह होनेसे गुणादि गुणी आदिका प्रयोग होता है. (२२७, से २३० तक का विवेचन् याद करीये) परंतु उपरोक्त व्याप्य व्यापकादि संबंधमें तो यूं भी *नहीं बनता क्योंकि व्याप्य व्यापकादिमें संयोग संबंध नहीं मान सकोगे. यथा आकाश* और परमाणुका संयोग संबंध होता विगडता चलता है. यूं माने तो आकाशकी व्यापकता नहीं रहती क्योंकि शून्य (आकाश—पोल)में परमाणु वा जीव है. परंतु परमाणु वा जीव पोल—शून्य नहीं, अर्थात परमाणुमें आकाश नहीं. और व्यापकमें व्याप्य माने तो संयोग संबंध नहीं हो सकता. इसी प्रकार तादात्म्य आदि संबंधमें योज लेना चाहिये॥ अथवा यूं मानें कि जिन संबंधोंको मनुष्य नहीं जान सकता वे अनिर्वचनीय, अवाच्य वा अगम्य हैं. (ऐसा मानें) तो इत्थमभावमें स्वरूप प्रवेश न मानना चाहिये. वा अनिर्वचनीय विषय है ऐसा कहना मानना चाहिये.

क्षारजलमें पानीका और खारका स्वरूप भिन्न हैं. समीप संयोगी होनेसे एक स्वरूप जान पडता हैं. यंत्रमें खेंचें तो मीठापानी और खार जुदे हो जाते हैं. इसी प्रकार जलगत ओक्षजन हाइड्रोजनके मिश्रणमें रसायणीय संयोग है. नके वे एक स्वरूप हुये; क्योंकि पृथक्करण करनेपर वे उतनेके उतने पूर्व जेसे निकल आते हैं. सुवर्णके गोलेमें पानी डालके दाबें तो पानी बाहिर आ जायगा, लोहामें पारा डालके अगनी दें तो लोहेमेंसे निकल जायगा, काचके नीचे जो रंगदार वस्त्र है उसकी किरणें काचके छिद्रमेंसे निकलके आती हैं. यदि दस बीस काच उपर रख दें तो वस्त्र नही दीखेगा. पक्षी उडताउडता ज्यादे उपर जावे तो नजर नहीं पडता, अर्थात् सूक्ष्म परमाणुओंकी आडी टेढी आडमें आ गया.

(शं) काचमें वायु न जानेसे शब्द नहीं जाता ;परंतु प्रकाश गरमी जाती है. इस प्रकार काचमें स्वरूपप्रवेश होता है. (उ.) वायु न जा सके ऐसे, काचमें सूक्ष्म छिद्र हैं. जो दस बीस काच जोड दिये जावें तो उसमें पूर्ववत् प्रकाश नहीं आ सकेगा और गरमीका यदि प्रवाह होगा तो बहुत देरसे आवेगी अर्थात् पूर्वोक्त किरणों समान आडी टेढी होती हुई छिद्रोंमें होके चलेगी. इसलिये काचके मुख्य परमाणुके स्वरूपमें उसका प्रवेश नहीं होता यह सिद्ध हुवा.

घटके अंदर जो आकाश है वोह घटके साथ चलता जान पडता है. परंतु ऐसा नहीं है. क्योंकि प्रकाशवाला आकाश घटके साथ कमरेमें नहीं आया. घटका आकाशमें पसार हुवा है. तारोंकी किरणोंका जुत्थ किरोडों कोसमें भरे हुये परमाणुके समुद्रको चीरके आता है. दो मनुष्य परस्परमें आंखे मिलावें तो एक दूसरेके मुखकी किरणें एक दुसरेकी आंखोमें प्रतिबिंब करती हैं, परंतु परस्परमें नहीं अथडाके जाती हैं. इन उदाहरणोंसे स्वरूपकी जुदाई और आकाशकी सूक्ष्मता जानी होगी. आकाश यदि स्वरूपसे वस्तु हो तो परमाणुके स्वरूपमें उसका और परमाणुके स्वरूपका आकाश में प्रवेश नहीं है. किंतु परमाणुके स्वरूपांशको छोडके इधर उधरमें संयोगी आकाश है, मानो चालनी समान होय नहीं. नही कि एक रस घन विभु. जो आकाश वस्तु नहीं तो गति करनेको अवसर न होना चाहिये. किसी दो परमाणुके संयोग प्रदेशमें प्रकाश, तम, आकाश वा ईश्वर नही होना चाहिये और जो मानें तो कार्य न होना चाहिये. वा तो दोनोंके संयोग हुये विनाभी कार्य होना चाहिये क्योंकि दरमीयानमें प्रकाशादि हुयेभी कार्य होना मान लेते हो. बुद्धिसे, विचारके देखीये. ईश्वर अपने और गरमी वगेरेके परमाणुके स्वरूपको जुदा जुदा विषय करता हो तो यही सिद्ध

हुवा के परमाणुके स्वरूपसे ईश्वरका स्वरूप इतर है अर्थात् उभयमें परस्परका प्रवेश नहीं किंतु चालनी समान ईश्वर ठेरेगा. जगत प्रत्यक्ष है. इसलिये जहां जहां जगत या उसका मूल अव्यक्त (प्रकृति) है वहां वहां हरकोई व्यापक (आकाश, काल, ईश्वरादि) वस्तु न होना चाहिये और जहां जहां व्यापक-विभु-वस्तु हो वहां वहां प्रकृति (अेटम) न होना चाहिये. जब यूं है तो क्या तो उक्त अधिष्ठान (ममप्रकाश चेतन) को विभु (असीम निराकार अपरिछिन्न) न मान सकोगे वा तो विभुकी मान्यता भ्रमका विषय है यूं कहना पडेगा. परंतु ऐसा मानें तो अधिष्ठान आधार न होनेसे इस परिछिन्न व्याप्यका व्यवहार न होगा और गति न होगी. इस-लिये दृश्य परिछिन्नको भ्रम मानना चाहिये. जेसेके रज्जुमे सर्प, सुक्तिमें रजतदर्शन भ्रम है. ऐसे असीम चेतनमें यह दृश्य (अव्यक्त और उसका कार्य) भ्रमरूप है. ऐसा माननेसे स्वरूपाप्रवेश नियमका बाधित नहीं होता.

(शं.) आकाशमें परमाणु प्रकाश, तम, बिजली, शब्द, गरमी, और स्थूल शरीरमें मन यह सर्व एक जगे देखते हैं. आकाश, परमाणुकी गतिसे न टकराता है, न पीछे हटता है और न गतिका प्रतिबंध है. अतः विभु है, स्वरूप प्रवेश है इस सर्वमान्य व्याप्तिका निषेध नहीं हो सकता, इसका अस्वीकार हठ मात्र है. इस-लिये स्वरूप प्रवेश बनता है दोष नहीं है और न सृष्टिनियम विरुद्ध है. (उ) जो प्रतीति मात्रको आधार योग्य मानें तो पृथ्वी चलती हुई नहीं देखने उसे स्थिर मानना चाहिये परंतु पृथ्वी तो चलती है १ वस्तुतः हाथमें ली हुई कलमको हम नहीं देखते हैं. उसका बाहारूप देखना मानना पडेगा परंतु ऐसा नहीं है. किंतु कलमका फोटो मगजमें देखते हैं २, मृगतृष्णा देखके पानी लेने जाते हैं. वहां पानी मिलना चाहिये परंतु नहीं मिलता स्थाणुमें चोर देख पडता है उससे हमको हानी होनी चाहीये परंतु नहीं होती स्वप्नसृष्टिमें तादृश्यद्रव्य प्राप्ति होती है देशकाल देखते हैं परंतु जागते हैं, तो द्रव्य नहीं मिलता. वे देशकाल नहीं मिलते.

इत्यादि दृष्ट प्रसंगोंमें जेसे मूल-भ्रम है वेसेही शंकामें कहे हुये अनेक स्वरूप एक जगे मालूम होनेमें भ्रम है. ऐसा क्यों न माना जाय ? भ्रम भ्रमकालमें भ्रमरूपसे नहीं जाना जाता इसलिये आपको स्वरूपप्रवेश ठीक जान पडता है. विचारोगे तो भ्रमरूप मान सकोगे.

(शं) जो प्राकृत-वजनदार-इंद्रियगोचर पदार्थ हैं या जिनका समूह स्थूल

रूपमें आ सकता है. उनका परस्परमें स्वरूपप्रवेश नहीं होता क्योंकि वे जगे रोकते हैं. परंतु अप्राकृत–जिनमें वजन नहीं, वा जिनका जुत्थ स्थूलरूपमें नहीं आ सकता ऐसे सूक्ष्म, निरवयव, निराकार और अमूर्त्त पदार्थमें उसके बाहिर भीतरका व्यवहार न हो सकनेसे यह नियम नहीं लगता. इसलिये सूक्ष्मका स्थूलमें, निरवयवका सावयवमें, अमूर्त्तका मूर्त्तमें और ऐसेही सूक्ष्मका सूक्ष्ममें, निरवयवका निरवयवमें, निराकारका निराकारमें और अमूर्त्तका अमूर्त्तमें स्वरूपप्रवेश हो सकता है अर्थात् दो एक देशमें–एक अधिकरणमें रह सकते हैं क्योंकि वे जगेको नहीं रोकते.

(उ.) प्रथम तो आपने सूक्ष्म स्थूलादि सूक्ष्म सूक्ष्मादि ऐसे दो स्वरूप स्वीकार लिये इसलिये शामिल हुयेभी वे जुदा हैं. यह सिद्ध होनेसे अपने भ्रमको सिद्ध कर चुके. उपरांत विचारिये (१) असंख्य अमूर्त्त निरवयव सूक्ष्म पदार्थ आकाशके बिंदु प्रदेशमें रखें तो वे आकाशको नही रोकके ओतप्रोत रहेंगे. ऐसी दशामें एक मूर्त्त परमाणु वा अमूर्त्त अणु उनको स्पर्श करता जावे तो उन असंख्योंके साथ एक-साथ समान संयोग होगा. यह नहीं कहा जायगा कि किसका कहां संयोग हुवा परंतु ऐसा होना असंभव है. क्योंकि एक अधिकरणमें अनेक संयोग नहीं होते, एक ही होता है. संयोग दोकाही होता है. एक जगे अनेकोंका नहीं होता और संयोग क्रमशः और अव्याप्यवृत्ति होता है यह स्पष्ट है. जो एककी जगे दो जुडे हुये परमाणु स्पर्श करते हुये जावें तो दोनोंके संयोग देशमें वे असंख्य नही हो सकते. यदि हैं तो दोनोंके साथ संयोग हुवा और जो नही हैं तो एक परमाणुके साथ किसी एक तरफ स्पर्श होंगे इससे सिद्ध हो गया के वे साकार सीमावाले हैं इसलिये उनका परस्परमें अप्रवेश है. (२) जो उन असंख्योंको एक उपर एक ऐसे तेः करके रखें और फेर मूर्त्त वा अमूर्त्त परमाणु उनको स्पर्श करता जावे तो क्रमसे स्पर्श होंगे इसीप्रकार जब ओतप्रोत शामिल थे तबभी क्रमसे स्पर्श हुये थे. (३) जब वे जगे नही रोकते तो किसी मूर्त्त परमाणुके साथ संयोग–स्पर्शही सिद्ध न हुवा. तथाहि परमाणुके अंदर होकेभी जा सकेंगे, परंतु ऐसा मान्ना हठ मात्र है. (४) आकाशके साथ अणुका संयोग वियोग क्रमशः अनेक तरफ होता जाता है, नही के सब तरफ. एकदम–एक साथ–सब आकाशका एक परमाणुके साथ. इसीप्रकार उन असंख्योंके साथ हुवा कारण के उनको निरवयव, अमूर्त्त, सूक्ष्म कैसाभी मानो उनके चारुं तरफ आकाश है इसलिये वे परिछिन्न साकार हैं. (यहां नही वहां हैं–इधर नहीं उधर हैं ऐसे व्यवहारके योग्य हैं.) इसी वास्ते संयोग वियोग क्रमशः होगा. (५) देशको नही रोकनेवाले

अनंत पदार्थ देशकी एक बिंदुमें आ सकते हैं. जो यूं हो तो, एक दूसरा मूर्त्त वा अमूर्त्त परमाणु उनको स्पर्श करता हुवा जावे तो उनमे जुदा न होना चाहिये क्योंकि अनंत स्पर्शास्पर्श वास्ते अनंत काल होना चाहिये परंतु एक परमाणु एक क्षणमें कोसोंमें गति कर जाता है. जो ऐसा न हो तो क मनुष्यसे जो ख १० हाथ परे जा रहा है, उसको क कितनाभी भागे, नहीं पकड सकेगा क्योंकि बीचमें अनंत प्रदेश हैं. राई और परवत बराबर होंगे, क्योंकि उभयके अनंत टुकडे हैं. अनंत=अनंतके परंतु ऐसा नही है.

उपरके कथनसे जान लिया होगा कि परमाणुके अनंत टुकडे मानना भूल है. (पूर्वार्द्धका गुरुत्व प्रकरण याद कीजे) और सूक्ष्म अमूर्त्त निरवयव के स्वरूपका परस्परमें प्रवेश वा स्थूल मूर्तमें प्रवेश नहीं हो सकता क्योंकि उभयके स्वरूप जुदा जुदा हैं. एक स्थानमें सहनावस्थानरूप अविरोध तम प्रकाश समान मानें तोभी स्वरूपाधिकरणकी भिन्नता (भेद) तो रहेहीगा. नही तो स्वरूप सिद्ध न होगा.

इसी प्रकार विभु—ब्रह्म चेतनमें उससे इतरके स्वरूपका प्रवेश नहीं हो सकता. इसलिये यह दृश्य (जगत) भ्रम ज्ञानका विषय अर्थशून्य-अजात है, ऐसा मानना चाहिये.

यह स्वरूपाप्रवेश प्रसंग केवल तर्क मात्रका विषय नहीं है किंतु सूक्ष्म बुद्धि और मध्यस्थ द्वारा वारंवार विचारणीय है ॥४२६॥

भ्रमवादका अपवाद.

* (अप ९) ऐसा नहीं अशून्य होनेसे ॥४३७॥ न तिसमें तिसकी बुद्धि ऐसे उसके लक्षणके अभाव दर्शनसे ॥४३८॥ बाध अदर्शनसे ॥४३९॥ वहां अवश्य नाम कल्पा जानेसे ॥४४०॥ अन हुयेकी प्रतीति न होनेसे ॥४४१॥ साध्यसम दोषकी आपत्तिसे ॥४४२॥ साक्षीमें ग्रहण न होनेसे ॥४४३॥ भ्रांतकी असिद्धिसे ॥४४४॥ अधिष्ठान अनुपयोगी रहनेसे ॥४४५॥ और अन्यथा न होनेसे ॥४४६॥ उक्तकी व्याप्ति न मिलनेसे ॥४४७॥ और अभाव जन्य भावरूप प्रतीत न होनेसे ॥४४८॥

यह आधेय (प्रकाश्य—दृश्य) जगत भ्रमरूप नहीं है, क्योंकि अर्थ शून्य नहीं है और भ्रम अर्थ शून्य होता है ॥४३७॥ न तिसमें तिसकी बुद्धि ऐसे ज्ञानाध्यास

* जो अध्यस्तवादको उसकी शैली पूर्वक विस्तारसे लिखें तो ग्रंथ बहुत बढ जाय इसलिये संक्षेपमें ऐसे हमने लिखेंगे कि जिन्होंने ख्यातिवाद (भ्रम-अध्यास-विवर्त्त) का अभ्यास किया होगा ऐसा शोधक तटस्थ पुरुष तुरत समझ लेगा.

मात्रका नाम भ्रम हैं (सू. ८६ देखो). सो लक्षण दृश्यमें नहीं पाये जाते. इस ज्ञानका ज्ञेय नहीं होता और दृश्य जगतके ज्ञानका तो ज्ञेय है इसलिये भ्रमरूप नही है. आजतक जगतका बाध किसीने नहीं देखा. भ्रमकी सिद्धि तो बाध पीछे होती है ॥४३९॥ भ्रम नाम कल्पन मात्र होता है ॥ अर्थात् अधिष्ठान के विशेष स्वरूपके अज्ञान होनेसे सादृश्य दोषवश सादृश्य संस्कारके प्रवाहसे अधिष्ठान काही दूसरा नाम कल्पन हो जाता है, न के वहां कोई दूसरी वस्तु होती है. परंतु जगत तो नामी और अधिष्ठानसे इतर दूसरे प्रकारकी वस्तु है (ऐसा दृश्य) इसलिये भ्रमरूप नही ॥४४०॥ जो न हो उसकी प्रतीति नहीं होती और जगतकी तो प्रतीति होती है इसलिये भ्रमरूप नहीं ॥४४१॥ समचेतनसे इतर सर्व भ्रम हैं, ऐसे कथन मंतव्यमें साध्यसम दोषकी प्राप्ति होती है अतः भ्रमरूप नहीं ॥४४२॥ अर्थात् उक्त कथन मंतव्यभी भ्रम ठेरता है अतः साध्यकी सिद्धि नहीं कर सकता तथा रज्जुसर्प स्वप्नादि साध्य जो भ्रमरूप जगत उसके अंग हैं इसलिये सो उदाहरण दृष्टांत भ्रम सिद्धिमें उपयोगी नहीं. इसप्रकार साध्यसम दोषापत्तिसे जगत भ्रमरूप नहीं ॥४४२॥ भ्रम, साक्षीमें स्वतःग्रहण नहीं होता (साक्षीसे ग्राह्य नही है) अतः भ्रमरूप नहीं ॥४४३॥ अर्थात् भ्रमकालमें उसकी साक्षी नहीं मिलती, उसके बाध होने पीछे भ्रम हुवा था ऐसे ग्रहण होता है. इसीप्रकार वर्तमान जगतको वर्तमानमें भ्रमरूप नहीं कह सकते. और इसका सर्वथा अभावभी किसीने आजतक नही देखा अर्थात् तुर्या सुषुप्ति मूर्छासे उठे पीछेभी पूर्ववत् विद्यमान होता है तथा प्रलय पीछेभी पूर्ववत् उत्पत्ति मानी जाती है; परंतु अधिष्ठानके ज्ञान होनेपर अर्थात् भ्रमनाश पीछे, भ्रम पूर्ववत नही हो सकता इसलिये जगत भ्रमरूप नहीं. जो कहो के मृगजल और स्वप्न, ज्ञानवान कोभी पुनः भासते हैं वैसे जगत पुनः भासता है, सो उदाहरण साध्यसम है अतः मान्य नही. और जो ऐसेही भासता रहा तो उसको भ्रमनाम देनाभी भ्रमही है. ॥४४३॥ भ्रमवादिके भ्रमका भ्रमी सिद्ध नहीं होता इसलिये भ्रमरूप नही है ॥४४४॥ अर्थात् ब्रह्मसे इतर सर्व भ्रम तो यह भ्रम किसको ? ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है उसमें भ्रमकी सामग्री (स्वरूपाज्ञान, वस्तु संस्कार वगेरे) बने नहीं, अतः ब्रह्मको भ्रमी (अध्यासी) या भ्रांत ठेराना बने नही. उससे इतर किसी जीवको मानें तो वोह भ्रम विषयक न होनेसे स्वरूप प्रवेश दोष आवेगा. जो प्रमाताको भ्रम मानें तो उसमें अंतःकरण भाग भ्रमका विषय न होनेसे स्वरूप प्रवेश दोष आवेगा. इस प्रकार भ्रमी सिद्ध न होनेसे जगत भ्रमरूप नहीं ॥४०४॥ जो अधिष्ठानसे इतर अन्य कुछ (माया

वगैरे) नहीं तो अधिष्ठान अनुपयोगी रहेगा. क्योंकि अपना अपनेमें उपयोग नहीं होता अर्थात् दूसरेके संबंध विना उपयोग नही होता, इस नियमकी व्याप्ति स्पष्ट है. परतु दूसरेका अस्वीकार है, इसलिये अनुपयोगी रहेगा परतु निष्फलत्वका अभाव है सब सफल नहीं है (उपयोगी है) यह नैसर्गिक नियम स्पष्ट हे इसलिये ब्रह्मसे इतर शून्य-भ्रमरूप नहीं ॥४४५॥ अधिष्ठानही जगतरूप भासता है, ऐसा भ्रम माने सोभी नहीं है. क्योंकि समचेतन अधिष्ठान परिणामी नहीं इसलिये अन्यथारूप नहीं होता और दूसरा रूप नहीं होते हुये दूसरे रूपमें भासे यह असभव बात है. तथा ब्रह्मेतरका सस्कार न होनेसे अन्यथा भासनेकी अनुत्पत्ति है. उपरात अधिष्ठानको अन्यथा रूपमें देखने वाला इतर हैभी नही अतः भ्रम रूप नहीं और अधिष्ठानकोही भ्रमरूप ज्ञेय और उसीको भ्रमज्ञान रूप होना वा ज्ञाता मानें यह असभव है क्योंकि ज्ञेय ज्ञाता परस्पर भिन होते हैं. ॥४४६॥ अन हुवा प्रतीत होता हो, वा वस्तु सस्कार विना वा भ्रमी विना भ्रम होता हो, वा अधिष्ठान अन्यथा हो जाता हो, वा ब्रह्माडमें कोई वस्तु निष्फल हो, ऐसी व्याप्तिभी नही मिलती. इसलिये जगत भ्रमरूप नहीं ॥४४७॥ अनहुवा प्रतीत होता हो तो वंध्याके पुत्र, शशीके शृंगभी प्रतीत होने चाहिये, सस्कार विना भ्रम होता हो तो अधेकोभी रूपका स्वप्न होना चाहिये, भ्रमीविना भ्रम होता हो तो ज्ञाता विनाभी ज्ञेयकी सिद्धि होनी चाहिये, जो अधिष्ठान अन्यथा होता हो तो आकाशका तर्नीया हो जाना चाहिये जो निष्फल वस्तु होती तो उपयोग विनाभी जानी जाती. परतु ऐसा नहीं होता. रज्जु सर्पादि प्रसगमें डोरी तो अन्यथा रूपमें प्रतीत नहीं होती किंतु अज्ञानादिवश सर्प ऐसा नामकल्पन होता है. ॥४४७॥ भ्रम प्रायः अर्थशून्य होता हे है और जगत तो भावरूप है. अन इस भावरूपको अभावजन्य मानें तो अभावजन्य, भावरूपमें प्रतीत नहीं होता इसलिये अभावजन्य भ्रम रूप नहीं है अर्थात्, स्वाभावा-धिकरणमें अवभास होना भ्रम असिद्ध है ॥४४८॥ *

अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान, विशेष अज्ञान, वस्तु सस्कार, प्रमाता प्रमाण प्रमेय यह ३ दोष यह ६ भ्रम होनेकी सामग्री है सोभी जगत भ्रमकी सिद्धिमें नहीं है. क्योंकि अधिष्ठानसे इतर दूसरा ज्ञान या अज्ञानवाला नहीं. ब्रह्मको अपने स्वरूपका ज्ञान वा अज्ञान रहना बने नही क्योंकि ज्ञान स्वरूप है. अतः भ्रमकी कारण सामग्री न होनेसे जगत भ्रमरूप नहीं. 'अहं' ऐसा सामान्य ज्ञान और मैं कैसा ऐसा विशेषका अज्ञान जीव (प्रमाता) में मानें तो उसमें अंतःकरण भ्रमसे इतर

* अन्यथा नामकल्पनका नाम भ्रमभास नहीं है

टरनेमे स्वरूप प्रवेश दोष आवेगा. और वोह सामान्य विशेष ब्रह्ममेंही मानें तो अज्ञान अनादि होनेसे उसका बाधक ज्ञान वा उपदेशक ब्रह्मसे इतर कोई है नहीं इसलिये नित्य रहेगा. ऐसा होनेसे जगत भ्रमरूप नहीं किंतु सत्य ठेरेगा. अतः भ्रमकी कारण सामग्री नहीं होनेसे भ्रमरूप नहीं. ब्रह्मसे इतर दूसरी वस्तु नहीं तो उसके पूर्व पूर्व सत्य वा अन्यथारूप संस्कारभी कहांसे होंगे? नहीं हो सकते, इसलियेभी भ्रमरूप नहीं. पूर्व स्वप्नके संस्कारसे उत्तर स्वप्न होता है ऐसे प्रवाह वत् वस्तु संस्कार मानें तो स्वप्न भ्रमरूप नहीं है (२३२ सू. देखो) और यदि भ्रमरूप मानें तो संस्कारानुसार जो नाम रूप धरता है सो उपादान भ्रमरूप नहीं ठेरेगा. क्योंकि भ्रम याने अर्थशून्यके संस्कार नहीं होते. प्रमाता प्रमाण और प्रमेय यह तीन तो जगतके अंतरगत् होनेसे भ्रमोत्पत्तिमें कारण नहीं माने जा सकते क्योंकि भ्रमके कार्य वा भ्रमके विषय हैं. अर्थात् उत्तर भ्रम, पूर्व भ्रमका कारण नहीं हो सकता इसलिये इन तीनों दोषोंके अभावसे भ्रमकी अनुत्पत्ति ठेरी. जो ब्रह्मके अस्तित्वकोही सादृश्य दोष मान लेवें तो सादृश्य पदही दूसरी वस्तुकी सिद्धि कर देगा. जो निलतादिके समान सामग्रीके विना भ्रम होना मानें तो पुनः भ्रमीके अभाव रहेनेसे उक्त दोष आवेगा. जो ब्रह्मकोही भ्रम है ऐसा मानें तो उस अनादि भ्रमकी निवृत्तिकी सामग्री न होनेसे जिसे भ्रम कहते हो वोह सत्य सिद्ध हो जायगा. इस प्रकार अज्ञानादि सामग्री न होनेसे जगत भ्रमरूप नहीं.*

स्वप्नके सिंहसे सिंह सहित निवृत्ति होनेसे भ्रमरूप मानें तो संस्कारकी सिद्धि हो जायगी. अर्थात् वेसाही (जाग्रत) प्रपंच फेर होगा परंतु भ्रमकी निवृत्ति पीछे भ्रमकी अनुत्पत्ति है अतः भ्रमरूप नहीं. ॥४४८॥

(आ. ६) अध्यस्त अध्यासरूप ॥४४९॥ चेतन जीव और लक्षणकी अपेक्षासे ॥४५०॥ माया व्यक्त होनेसे ॥४५१॥ अनुत्तर विषय और अध्यस्त रूप अध्यास ॥४५२॥ यथा मैं तुं और स्वप्न ॥४५३॥ वेसेही अन्य सर्व, समान होनेसे ॥४५४॥ नभनीलता समान सामग्री विना ॥४५५॥

उपर विशिष्टवादमें (त्रिवादमें) ब्रह्मसे इतर जिसे व्याप्य-प्रकाश्य वा अध्यस्त माना है वोह ब्रह्मसे इतर सर्व अध्यासरूप है ॥४४९॥ क्योंकि ब्रह्मसे विषम सत्तावाला है और स्वरूपाप्रवेश हुये अध्यस्त है ऐसा जीवको विषय होता है तथा अध्यासके लक्षण उसमे घटित होते हैं इस अपेक्षासे उसे अध्यास संज्ञा दी गई है सो जीवकी

* जेसे मजजुब सूफी वा कोई मस्त अलकार रूपमें अज्ञात कहे यह दूसरी बात है

दृष्टिसे है. नहीं के सामग्रीजन्य लौकिक अध्यासका ग्रहण है ॥४९०॥ वोह अध्यस्त केसा है माया याने जो नहीं और भासने लगे मानो स्वाभाव अधिकरणमें प्रतीत रूप होता है इसलिये उसको अध्यास संज्ञा रखी है ॥४९१॥ नहीं के वेसी (नामरूप) स्वरूपतः कोई मूल वस्तु है. इसी प्रकार इस विलक्षण माया और चेतनका कोई विलक्षण संबंधमी नहीं मान सकते. क्योंकि अधिष्ठानसे विषम सत्तावाला और अन्यथा है. जेसे लकडीके सर्प और डोरीवाले अध्यासरूप सर्पके साथ वा लकडीके सर्प वा डोरीके परस्परमें कोई संबंध नहीं है वेसे चेतन और तदेतरका कोई संबंध नहीं है परंतु जो अनिर्वचनीय संबंध जान पडता है वा माना है सोभी आकाश नीलताके समान मायासेही जान पडता है याने माया मात्रही है ॥४९१॥ अध्यासके अनेक लक्षण हैं. उनमेंसे यहां यह उपयुक्त है अर्थात् जेसा पूर्वमें जान पडता था वेसा उत्तर (बाध वा परीक्षा) कालमें न जान पडे अथवा जिसके स्वरूपका बोध विद्यमान कालमें न हो किंतु बाध पीछे " ऐसा था " इस प्रकारसे हो उसको अनुत्तर कहते हैं. और अपने अधिष्ठानसे दूसरी सत्तावाला अन्यथारूप विषम (विवर्त्त) कहाता है और अधिष्ठानमें अस्पर्श रहे वोह अध्यस्त कहाता है. ऐसे लक्षणके लक्ष्यको अध्यास कहते हैं ॥४९२॥ जेसे के मैं, तू और स्वप्नसृष्टि अध्यासरूप है ॥४९३॥ क्योंकि वर्तमानमें जेसे प्रकार भाव और अस्तित्वमें मैं, तू (मैं ही तु और तुही मैंरूप) * विषय होता है वेसे प्रकारभाव और अस्तित्वमें चिदग्रंथी भंग हुये पीछे नहीं जान पडता. और आत्मासे अन्य सत्तावाला (विषम) है और यह अहंकार (मैंपना तूपना) आत्मामें अस्पर्श अध्यस्त है. + ऐसेही स्वप्न है. अर्थात् स्वप्नकालमें वहांके देशकाल त्रिपुटी व्यवहार मंतव्य अमंतव्यादि जेसे प्रकारभाव और अस्तित्वमें जान पडते हैं वेसे पीछे (जाग्रतमें) नहीं जान पडते किंतु और प्रकारके और भाववाले अनुभवगम्य होते हैं और दृष्टा चेतनसे विषम सत्तावाला है और उसमें अस्पर्श अध्यस्त हैं ॥४९३॥ जेसे उपरोक्त मैं, तू और स्वप्न अध्यासरूप हैं वेसेही समष्टि विषय–सर्व ब्रह्मांडमी–अध्यासरूप (वा अध्यास जेसा) हैं, ऐसा ज्ञातव्य है ॥ क्योंकि यह सब (मैं, तू, वोह, जाग्रत ब्रह्मांड, स्वप्न ब्रह्मांडादि सब) समान हैं अर्थात् अनिर्वचनीय मायाके परिणाम हैं वा उस करके भासते हैं ॥४९४॥ (जेसे भ्रम, उपर कहे अनुसार अज्ञानादि सामग्रीसे होता है अन्यथा नहीं वेसे यह नहीं है किंतु) जेसे आकाशगत नीलताका अध्यास सामग्री विना होता है वेसे यह मूलाध्यास अज्ञानादि सामग्रीके

* विपर्यास्त है + अयर देश रहित.

विना है ॥४९९॥ नीलता, ज्ञानी अज्ञानी, योगी अयोगी, जडवादी चेतनवादी इन सबको विषय होती है इसलिये अज्ञानादि सामग्रीके विना कहा गया है परंतु जब उसके (नीले पहाड–श्रुति स्थानके) पास जावें तब प्रतीत नहीं होती और फेर हटके पीछे आवें तो वहां पुनः जान पडती है इसलिये उसे अध्यासरूप कहा जाता है. वैसेही यह अध्यास है. ब्रह्मके ज्ञान अज्ञानादि सामग्रीको न लेके यह दृश्य प्रवाहसे अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यासरूप है. तुर्या कालमें नहीं जान पडता, पीछे जान पडता है. किंवा ज्ञान कालमें वर्तमान (अज्ञानकाल) जेसा नहीं जान पडता इसलिये अध्यासरूप है. इस प्रकार पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर होता रहता है. नीलता प्रसंगमे आकाश अधिष्ठान है उसकी अप्रतीतिमें दूर दोष निमित्त है ज्यूं ज्यूं समीपता हो त्यूं त्यूं नीलता नहीं जान पडती और आगे आगे जान पडती है, ऐसेही ज्ञान कालमेंही यह अध्यासरूप नहीं जान पडता. नहीं तो ज्ञानी अज्ञानी सबको जान पडता है, यहां तक कि आत्मचिंतकोभी भासता हैं. इतना अंतर है कि जेसे मृगजल उसके ज्ञान पूर्व जिस प्रकार जिस भावसे भासता था वेसा उसके पीछे नही भासता, परंतु भासता तो है. इस प्रकार यह दृश्याध्यास होता रहा, है, और होता रहेगा इसलिये प्रवाहसे अनादि अनंत और स्वाभाविक है. ॥४९९॥

वक्ष्यमाण, विलक्षण और अध्यासका अंतर.—(१) विलक्षणवादमें अव्यक्त उद्भव तिरोहित होता है जेसे स्वप्नका विलक्षण मूल उपादान ॥ अध्यासमें ऐसा नहीं किंतु माया परिणाम जहां जब प्रतीत हो वहां तब है, न हो तब नहीं. जेसे स्वप्नसृष्टि प्रतीत कालमें है जाग्रत कालमें वोह वा उसका मूल उपादान कहींभी नहीं॥ (२) विलक्षण भावनामें अव्यक्त विषे गति होती है व्यवहार होता है. अव्यक्तके देशकाल परिणाम और वजन विना वजनवाले पदार्थ परिणाम होते हैं (जोके एकके ऐसे परिणाम होने असिद्ध हैं).

और अध्यासमें गति नाना परिणाम तथा व्यवहार वस्तुतः नहीं है परंतु अनादि अनिर्वचनीय मायाबलसे गति और नाना परिणामरूप व्यवहार जान पडता है, ऐसा अध्यास है इसलिये जान पडता है मायाका परिणाम है यहभी अध्यासही है. (३) विलक्षणवादमें विलक्षणकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप नहीं होती बलके विलक्षण आकाशकी नीलतावत् वा स्वप्नसृष्टिवत् वा रज्जुसर्प लय वा लुप्त हो जाता है और शेष अधिष्ठान रहता है ॥ अध्यासवादमें अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप मानी जाती है. माया शून्यरूप हो जाती है. अधिष्ठान शेष रहता है. ॥ भ्रमवादमें

लुप्त वा शून्य होनेकी कोई वस्तु नहीं होती केवल कल्पनाका अभाव है इसलिये अधिष्ठान शेष है इतना भ्रम अध्यास और विलक्षणवादसे अंतर है. यह अंतर व्यवहारकी व्यवस्थाकी शैली मात्र है. सिद्धांतमें अंतर नहीं है. यह बात अनुभवी स्वयं समझ लेगा.

अज्ञान, भ्रम, अध्यास और मूलका संक्षेपमें अंतर—अज्ञान विषय होता है (यथा मैं नहीं जानता) भ्रमादि१ अनादि कालमें अनादि रूपसे विषय नहीं होने- मूल ज्ञात विषयमेंही कहाती है. भ्रम, अध्यास ज्ञात अज्ञात उभयमें होते हैं. भ्रम अर्थशून्य होता है. अध्यासमें अर्थ याने अध्यास ज्ञानका विषय अर्थ होता है. अज्ञानादिमें निश्चित एक ज्ञान होता है. संशयमें यह वा क्या वा अमुक ऐसे एकसे ज्यादा कोटीग्राही ज्ञान होता है. अज्ञानादि बाधित होते हैं. यथार्थ ज्ञान बाधित नहीं होता.

भ्रम और अध्यासका भेदः—(१) जब डोरी (वा शुक्ति) के विशेष किरण चक्षुमें जाते हैं तब वहां मन तदाकार हुवा उस सहित आत्मामें स्वतःग्रह होता है अर्थात् डोरी विषय हुई इसका नाम प्रमात्व ग्रहण है. (२) जब कोई दोषसे डोरीके विशेष नहीं किंतु सामान्य किरण चक्षुमें जावें तबभी मन तदाकार हुवा आत्मामें ग्रहण हुवा, (यथा इदं) परंतु अस्पष्ट रूप रहने और सादृश्य (लंबापन कालापन) दोष होनेसे उस समय सादृश्यवाले संस्कार फुर जाते हैं अर्थात उस सामान्य किरणके आकारका नाम सर्प रख लिया, बस. किरण तो अंतरीक्षमें चले गये, सर्प कहते वा मानते रहे. यह मनका आकार इदं रूपमें स्पष्ट नहीं होता. (इस भावनाका जो परिणाम (कंपनादि) होना चाहिये सो भी हुवा) इसका नाम भ्रम (ज्ञानाध्यास) है. जब प्रकाश हुवा और डोरीके विशेष किरण विषय हुये तब इदं डोरी नाम रखा और वोह नाम छूटा गया. (३; परंतु सामान्य किरण ग्रहण होने समय सादृश्यादि दोषवश जो मनोवृत्तिने तदाकार भावमें सर्पाकार धरा तो अधूरी सामग्री पुरी हो जाती है अर्थात् वृत्तिके परिणामानुसार शेषामें गति होके पूर्व किरण साथ मिश्रण पाने किंवा वैसी स्थिति न हो तो उसकाही सर्पाकार परिणाम होता है वोह विषय होता है ऐसी (शेषाके सर्पाकारवाली, ग्रहण हुई) वृत्तिका नाम ज्ञानाध्यास है और इस ज्ञान वृत्तिके विषयका नाम अर्थाध्यास-सर्पाध्यास है (ऐसे प्रसंगमें किरण और शेषाके भाग पहिछानना सूक्ष्मदर्शी वा योगी पुरुषका काम है). ऐसे प्रसंगोमें सूक्ष्माका ज्ञान न होनेसे उसका नाम अविद्या वा अज्ञानवृत्ति रख देते हैं. अंतःकरणकी उक्त वृत्तिका

नाम अविद्याकी वृत्ति कह देते हैं. वस्तुतः वहां कोई दूसरी वृत्ति वा अविद्या-अज्ञान वस्तु नहीं है. विशेष किरणोंके साथ जीव वृत्तिका असंबंधही अज्ञान है. उस अज्ञानावस्थामें संस्कारी वृत्ति जो सर्पाकार हुई सोही अविद्याकीवृत्ति हैं. ॥ इस प्रकार सर्पाकार विषम होनेपर उसके परिणाम जो होने चाहिये सो अर्थात् कंपनादि होते हैं. जो ऐसी स्थितिमें हम वहांसे चले जावें तो शेषाका सर्पाकार नही रहता, सर्प स्मृति उत्तेजक संस्कार रहते हैं और यदि प्रकाश आ गया तो डोरीके विशेष किरणें उठके चक्षुमें जाते हैं मन तदाकार हुवा ग्रहण होता है तब "यह डोरी है, सर्प नहीं" ऐसा होनेपर शेषाका सर्पाकार परिणाम नही रहता, ऐसा होनेमें विशेष किरण और उसका ज्ञान निमित्त हैं. डोरीके विशेष किरण, उसका शेषाके आकारसे संबंध होना शेषाके आकारका दबना, विशेष किरणका ज्ञान, और शेषाके आकारका बदलना (लुप्त होना) यह सर्व कार्य क्रमसे होते हैं, परंतु अत्यंत शिघ्र-समीप कालमें होनेसे एक साथ होनेके समान जान् पडते हैं. कभी डोरीके ज्ञान होने पहेले सर्पाध्यास बाध होके जलधारा इत्यादिका अध्यास हो जाता है, वहांभी उपर कही जो अध्यासकी रीति उस समान योज लेना चाहिये. और जहां कही संशय (यह डोरी वा सर्प, किंवा सर्प वा क्या ? किंवा डोरी वा क्या ? ऐसा) भाव हो वहां अस्पष्ट किरण होनेके कारण मनोवृत्तिके परिणाम हैं शेषाका आकार नही है, किंवा मूलकी किरणें और शेषाकी किरणोंका मिश्रण हैं. ऐसा जानके घटित योज लेना चाहिये. डोरीकी अस्पष्ट किरणें आनेपर कोईभी संस्कार उदय न हुवा और शेषाकाभी कुछ परिणाम न हुवा तो यह क्या है मैं नही जानता ऐसा भाव होता है ॥ यहां केवल भ्रम अध्यासके भेद जनानेका प्रसंग है, इसलिये पूर्व प्रसगपर आते हैं. जेसे उपर रूपाध्यासकी रीति कही वेसेही किरण शब्द बीचमें न लेके जो अन्य निमित्त हों उनको लेके रस, गंध, स्पर्श शब्दादि प्रसंगमें भ्रम और अध्यासका विवेक कर लेना चाहिये. यथा पित्त दोपवालेको मिसरीका संबंध हो तो पित्तदोष उपर होने और मधुरत्व दबे रहेनेसे पित्त विषय हुवा है इसलिये मिसरीमें कटुताका आरोप है और मिसरीमें कटुताका अध्यास है. जहां दो चंद्रमा जान पडे वहां दो चंद्रमा अध्यासरूप हैं और आकाशमें दो चंद्र यह आरोप है. क्योंकि विषयके फोटो दोनों आंखोंमें दो पडते हैं वे अंदरमें जाके एक होते है, जो किसी निमित्तसे एक न हो सके तो तदाकार मनमें क्रमशः दोनों फोटो जान पडते हैं सो अध्यास है. आकाशमें दो चंद्र नही हैं इसलिये ऐसा मानना आरोप (भ्रम) है. ईश्वर सृष्टिका कल्पित चंद्र और अध्यास

विषयक कल्पितवत् चंद्र हैं, ऐसा जाना चाहिये. इसी प्रकार श्वेत शंखमें पीतता, रेल्वे स्टीमरमें चलते वा फेरी खाते वृक्ष मकानका चलता दीखना, कनक दृष्टि न रहके कुंडल दृष्टि होना, जल न मालूम होके बरफ दृष्टि आना, दीपक दर्शनके पीछे जबतब अंदरमें दीपक जैसा दीखना, अंदरमें अनिच्छित छबी सामने देखना, यह सब अध्यास हैं क्योंकि यहां अर्थ हैं अर्थात् शेषाके परिणाम हैं परंतु शेषा रूपसे नहीं जान पडते अतः अध्यासरूप हैं.

मैं मोटा ताजा, मेरा शरीर, मेरी नाक मैं नाकवाला और मैं नकटा, मेरी आंख और मैं काना, मैं कर्ता भोक्ता और मैं ब्रह्म मैं जीव इत्यादि विरोधी होते हुये एकमें प्रतीत होना अध्यास है. अकसर विषयोंमें संसर्गाध्यास होता है याने मूलमें अर्थ हैं. बहुधा करके संसर्गमें अध्यास और असंसर्गमें विशेषतः भ्रम होता है. और कभी दोनों, दोनोंमें होते हैं. ज्ञेयाध्यासकी अपेक्षासे ज्ञानाध्यास माना जाता है. भ्रम और अध्यास दोनों अज्ञानके कार्य हैं. संस्कारादि उसमें निमित्त हैं.

भ्रम अध्यासके भेदका कोष्टक (१) भ्रम नाम कल्पन (२) अध्यास विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरूप याने माया वा शेषाकी किरणोंका आकार मात्र (३) भ= ज्ञानाध्यास. अ=ज्ञान ज्ञेयाध्यास (३) भ=अर्थ शून्य. अ=अनिर्वचनीय अर्थरूप(४) भ=ज्ञान मात्र. अ=ज्ञान ज्ञेय उभय (५) भ=नाम कल्पन मात्र. अ.=नामीके आकारका अस्तित्व. (६) भ=अर्थ शून्य होनेसे उपादान नहीं. अ=नामरूप अर्थवाला होनेसे अनिर्वचनीय माया उसका उपादान (७) भ=नाम कल्पन न होनेसे पूर्ववत् निवृत्ति शेष अधिष्ठान. अ.=माया लय हो जानेसे निवृत्ति शेष अधिष्ठान. (८) भ.=अनहुवा रज्जु सर्प. अ.=अविद्या रचित रज्जु सर्प. (९) भ=संसर्गाध्यास नहीं. अ=संसर्गाध्यासभी है (१०) भ.=काचही लाल है अ=लाल काच. (११) शेषा माया मूल होनेसे स्वप्नाध्यास है.* उसको भ्रम कहना भ्रम है. स्वप्नमें माया या शेषा पदार्थोंका पूरा स्वरूप धर लेती हैं. याने आकार मात्र नहीं है— विशेष जानना हो तो भ्रमनाशकका उत्तरार्द्ध अन्यथा प्रकरण पृष्ट ३१५ से ३६८ तक वांचो. वा ख्यातिवाद ग्रंथ देखो ॥४४९ से ४५१ तक॥ यहां सू. ४६१ की टीका ध्यानमें लीजीये. ॥

(शंका) जो इसको अध्यासरूप स्वीकारें तो प्रचलित दंत कथा और पैगंबर

* स्वप्नको संसर्गाध्यास नहीं कह सकते, किंतु जाग्रतवत् स्वप्नभी अदृष्टका परिणाम है. अतः यदि अध्यासरूप हैं तो स्वप्नभी हैं, अन्यथा नहीं.

कल्पनकोभी क्यों न माना जाय ? क्योंकि मायाके वैसे परिणाम वा माया करके वैसे भासनेकी संभावना है अघटित घटावे सो माया, ऐसा प्रसिद्ध है. (उ.)—

व्याप्तिसे इतरका स्वीकार भ्रम ॥४५६॥ परोक्षमें असत् ख्यातिकी संभावना होनेसे ॥४५७॥ यथा अज्ञान और संस्कारसे अधिष्ठानमें अन्यथा कल्पना ॥४५८॥ युक्ति युक्त और अयुक्तभी ॥४५९॥ अध्यास साक्षी भास्य ॥४६०॥

(अध्यासवादकी भावनामें) व्याप्तिसे इतरका माना भ्रम है ॥४५६॥ क्योंकि परोक्षमें जो कुछ कल्पा जाय तो वहां असत ख्यातिका ग्रहण है ॥ क्योंकि भ्रमवादमें अज्ञात सत्ता नहीं होती है ज्ञातही होती है. ॥४५७॥ जैसेके जिनको अधिष्ठान (ब्रह्म—आत्मा—समचेतन) का अनुभव नहीं है वे अज्ञानवश वा किसीके सुने हुये संस्कारवश अधिष्ठानके स्वरूपमें अन्यथा (विभु सक्रिय मूर्त्तामूर्त्तादि) आरोप कर लेते है सो भ्रम है ॥४५८॥ जो युक्त हो वा अयुक्त हो उस परोक्ष विषयमेंभी व्याप्ति विना कुछ आरोप करना भ्रम है ॥४५९॥ क्योंकि संभव है के अपरोक्ष हुये परीक्षा कालमें अन्यथा निकले. माना कि कल्पना अनुसार हो तथापि व्याप्तिका आधार न मिलनेसे मान्ने योग्य नहीं है. जो ऐसा न माने तो हरेककी कल्पना अनुमान मान्नेसे अनेकांतकी प्राप्ति होगी. व्यवहार न चलेगा. मिथ्याकोभी मान लेना पडेगा. ॥ ४५९ ॥ (भ्रम, भ्रमको विषय नहीं करता और न साक्षीभास्य होता है परंतु) अध्यास साक्षी भास्य होता है. ॥ व्यवहारमें रज्जु आदि प्रमाताके विषय कहाते हैं क्योंकि उनका ज्ञान प्रमाण जन्य है. और सर्पादि साक्षीके विषय कहाते हे क्योंकि उनका ज्ञान प्रमाण जन्य नहीं हैं. परंतु जब डोरीके किरण और शेषा तथा मनोवृत्तिके स्वरूप पर ध्यान दें तो रज्जुआदि सर्पादि साक्षी भास्यही सिद्ध होंगे.॥ यथा स्वप्न. उस कालमें अप्रमात्व रूपसे ग्रहण न होना दूसरी वात है क्योंकि प्रमात्व अप्रमात्व यह वृत्तिसापेक्षक हैं. नहीं के साक्षी की कल्पना ॥४६०॥

१ अध्यास और भ्रमके भेद जनाने वास्ते जितने उदाहरण दिये हैं वे व्यवहार दृष्टिसे दिये हैं वस्तुतः वैसे नहीं हैं क्योंकि वे सब मायाके अंतरगत् हैं. अर्थाध्यास ज्ञानाध्यासभी उसी दृष्टिसे माने जाते हैं. परंतु जिन उदाहरणोंमें चेतनकी दृष्टिसे अध्यासता सिद्ध होती है वेही ग्रहणीय हैं. क्योंकि अध्यास साक्षीभास्य होता है जैसे के स्वप्नसृष्टि, दुःख सुख रागादि हैं यह साक्षीभास्यही हैं. यद्यपि व्यवहार दृष्टिसे घटादि प्रमाता—जीवके विषय हैं तथापि वस्तुतः साक्षीभास्य हैं

क्योंकि जिस करणके सबब प्रमाताके विषय कहे जाते हैं वोहभी साक्षी भास्य हैं सारांश मायावी नाम रूप सब साक्षी चेतनमें स्वतः ग्रहण होते हैं. और जो किसी व्याप्ति विना युक्त वा अयुक्त मान लिया जाता है वोह साक्षीमें ग्रहण नहीं होता इसलिये उसके स्वीकारनेमें अध्यासवाद तैयार नही रहता. जैसे स्वप्नसृष्टिमें प्रमात्व अप्रमात्व भेद है वैसेही यहांभी है. यह सब व्यवहारिकाध्यास कहा जाता है. मुख्यतः सर्व साक्षी भास्य हैं.

अध्यासका प्रवाह अनादि अनंत है उसके नियमभी वैसेही हैं इसलिये पूर्व पूर्ववत् उत्तरोत्तर और इधर उधरके प्रवाहसे सनियम होता है. विकल्प मात्र मान लेना यह अध्यासवाद नहीं सिखाता. ॥४६५॥

(शंका) जैसे सर्व ब्रह्मांड अध्यासरूप है तो समचेतनभी अध्यासरूप क्यों न माना जाय ? (उ.)—

सबचेतन अध्यासरूप नहीं ॥४६१॥ अन्वयी होनेसे ॥४६२॥ और उसके ज्ञानसे वोह निवृत्त होनेसे ॥४६३॥ पूर्ववत् शेष निरुपाधि होनेसे ॥४६४॥

पूर्वोक्त अधिष्ठान समचेतन अध्यासरूप नही हैं ॥४६१॥ क्योंकि अध्यास बदलते रहते हैं, उन सबमें वोह सम होता है *अर्थात् अन्वयी है.* ॥४६२॥ जैसाके जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, प्रमात्व अप्रमात्वादि रूप अध्यासकी जो अवस्था उन सबमें वोह सम (निरूपाधी) होता है इसलिये अध्यासरूप नही ॥४६२॥ उस समचेतनके ज्ञान होनेपर अध्यासकी निवृत्ति हो जाती है इसलिये अध्यासरूप नहीं ४६३ और अध्यासका साक्षी अध्यास नही हो सकता परंतु वोह उसका भास्य है अर्थात् चेतनमे ग्रहण होता है अतः अध्यासरूप नही है ॥४६३॥ अध्यास पूर्ववत् रूप नहीं होता समचेतन पूर्ववत् शेष होता है क्योंकि वोह उपाधि रहित असंग–कूटस्थ है इसलिये अध्यासरूप नही ॥४६४॥

(अप ६) अध्यासीके अभावसे नहीं ॥४६५॥

ब्रह्मसे इतर सब अध्यास है यह आरोप ठीक नहीं है क्योंकि अध्यासपदकी तबही आपत्ति होगी के जब कोई अध्यासी याने भ्रांत हो. ब्रह्मको भ्रान्त या अध्यासवाला कहना नहीं बनता क्योंकि वोह ज्ञान स्वरूप है. ब्रह्मसे इतर दूसरा कोई है नही और माया अध्यासका कारण है अध्यासरूप नही और हो तोभी अध्यासको अध्यास न होनेसे उसे अध्यास होना नही मान सकते. अतः अध्यास मानके अद्वैत सिद्धि होना समी-

चीन नहीं. ॥३६९॥ निवृत्तिके विना अध्यास कल्पनाकी अनुत्पत्ति है. यह दृश्य आजतक निवृत्त न हुवा अतः अध्यास नहीं कह सकते. स्वप्न पीछे जाग्रत, जाग्रत पीछे सुषुप्ति स्वप्न वगैरेका प्रवाह. और अनादिसे उत्पत्ति प्रलयका प्रवाह है अतः अध्यासकी सिद्धि नही होती. स्वप्न, रज्जु सर्पादिके दृष्टांत द्वारा जो सिद्धि करोगे तो साध्यसम दोष होगा याने आपके माने हुये अध्यासके अंतरगत् है अर्थात् साध्यसम हैं. तथा आप जो कहते हो वोहभी अध्यासरूप (मिथ्या) ठैरेगा इसलिये अप्रमाण रहेगा. जो ब्रह्मज्ञान हुये पीछे वा तुर्याकी परीक्षा हुये पीछे इसे अध्यास कहोगे याने अज्ञानकालमें जेसा प्रतीत होता था वेसा ज्ञान हुये पीछे प्रतीत नही होता किंतु बाधितवृत्तिरूप जान पडता है ऐसा मानें तो वोह ऐसाही है—इस प्रकारकाही-था, है और रहेगा (याने अध्यास जेसा सद्विलक्षण था, है, होगा.) हमको अन्यथा (सत्) जान पडता था. ऐसा कहना चाहिये, नही के अध्यासरूप. क्योंकि अध्यास पूर्व उत्तरमें नही रहता. वर्तमान मात्र है और यह दृश्य तो पूर्ववत् चला आ रहा है. सेंकडों ब्रह्मवित हो गये और अनेक जीव मुक्त होना सुनते हैं परंतु यह दृश्य तो पूर्ववत है और आजतक अनुत्तर न हुवा तो भविष्यमें होगा इसकी साक्षी क्या और यदि न होगा तो उस समय श्रोता वक्ताभी न होगा. सब कहना सुना और अध्यास अनाध्यास पद्धी न होगा. आजतक जो उपदेशक हुये वे सब अध्यासरूप और ब्रह्म ज्ञानसे निवृत्ति मानते आये हैं परंतु आत्मा अनात्माके अन्योऽन्याध्यास—संसर्गाध्यासकी तो निवृत्ति हुई है परंतु यह दृश्य तो पूर्ववत है निवृत्त नहीं हुवा है. कदाचित् मुक्त जीवोंको नही भासता होगा परंतु अध्यासवादमें तो बंध मोक्षभी अध्यासरूप है क्योंकि ब्रह्म बंध मोक्षसे रहित नित्य शुद्ध है. जीवत्व वगेरे अध्यासके कार्य हैं अतः अध्यासकी निवृत्तिके अदर्शनसे यह अध्यासरूप नही और इसी वास्ते यह थीयरी अद्वैतकी बोधक नही॥ अपने मूल सहित दृश्य सद ब्रह्मसे विलक्षण है. इस अनात्मा और आत्माका अन्योऽन्य संसर्गाध्यास है ऐसा मानो दूसरी बात है. परंतु जो अज्ञान मायाको अध्यासका कारण मानोगे तो अध्यासरूप न होने और अनादि होनेमें सत्‌रूपसे द्वैतापत्ति होगी और जो उनको ज्ञान बाध्य होनेसे अध्यासरूप कहोगे तो अध्यासीके अभावसे न कह सकोगे अथवा जब भविष्यमें हम तुम सब न होंगे उस समय उसकी निवृत्ति होगी तब मान लेंगे. और जो अनहुवा प्रतीत होना (माया) कहा वोह अमान्य है यह भ्रमवादमें कहा है ॥४६९॥

(आ. ७) अध्यासवत् यथा प्रतिबिंब ॥४६६॥ अप गतिके अभावसे नहीं ॥ ४६७ ॥

उपरोक्त अध्यस्त (ब्रह्मसे इतर (भव) ज्ञानाध्यास वा अर्थाध्यास वा उभयाध्यास रूप नही है किंतु अध्यास जेसा है अर्थात् किसीको अध्यास वा भ्रम हुवा हो ऐसा नही है किंतु जेसे काचमें प्रतिबिंब होता है वेसा है. यहां बिंबकीदृष्टि छोडके प्रतिबिंब मात्रका ग्रहण है. ॥४६६॥ एक नाना पदार्थवाले बडे कमरेमें बड़ा काच हो; अजान आदमी वहां आवे तो दूसरा कमरा (काचमें कुल सामान सहित दूसरा कमरा) देखता है वहां जाता है काचसे टकरावे तब जान पडता है के यहां दूसरा कमरा नहीं है. जो अबभी दीख रहा है वोह कोई अनिर्वचनीय पदार्थका परिणाम है याने ऐसा रूप रख ले, ऐसा है. यहां प्रतिबिंबने काचका बाध नही किया और न काच प्रतिबिंबका बाधक हुवा है तोभी बडे बडे पदार्थ देशवाला जान पडता है बिना देश देशवाला भान होता है. इसका उपादान अनिर्वचनीय किरण (मायाका कार्य) हैं विवर्त्त उपादान काच है क्योंकि काच न हो तो कमरा न भासे और काच कमरारूप जान पडता था. तथा सो कमरा काचका विवर्त्त है परंतु वोह कमरा भ्रम वा अध्यास रूप नही है किंतु काचसे विलक्षण सत्तावाला याने विषम सत्तावाला अन्यथा रूप है. कमरारूप नहीं परंतु कमरारूप धारता है. कमरे जितना देशकाल नही परंतु उतना देशकालवाला रूप जान पडता है ऐसा अनिर्वचनीय हैं. बाजारमें बडा काच रख दें तो अदष्ट बाजार चलता मालुम होगा. रातको काच रख दें तो उसमें अदष्ट चंद्र तारा वगैरे चलते मालूम होंगे. चिडिया, बालक और कुत्ता उस प्रतिबिंबके साथ राग खेल द्वेष करते हैं. ऐसे दृष्टिको लेके विचारो कि ब्रह्ममें प्रतिबिंब जैसी मायानामा पदार्थ अनिर्वचनीय है उसके परिणाम यह नाम रूप जगत है उस संस्कारी मायामें पूर्वसे परिणाम होते बिगडते चले आ रहे हैं. इस रीतिसे ब्रह्मको बाध न करके ब्रह्माश्रित है. और ब्रह्म केवल्यद्वैत है याने उसके जेसा कोई सत्रूप सजातीय सत्रूप विजातीय नहीं है और न उसमें सतरुप स्वगत भेद हैं और न माया करके भेद है. माया उससे विलक्षण प्रकारकी प्रतीतकालमें प्रतिबिंब जेसी नाम रूपवाली होती है तब वे नाम रूप चेतनके विवर्त्त चेतन उनका विवर्त्तोपादान होता है. अप्रतीतकालमें शुद्ध चेतन रहता है इस प्रकार अद्वैतकी सिद्धि हुयेभी व्यवहारकी व्यवस्था होती है. ॥४६६॥

(अप) यह आरोपभी ठीक नहीं है क्योंकि समचेतनमें उस अनिर्वचनीयाकी गति होनेको अवसर नहीं मिलता और प्रतिबिंबको तो छिद्रवाले काचमें गतिको अवसर

मिल सकता है अथवा चक्षु मगजमें प्रतिबिंब हो तो वहांभी गतिको अवसर मिल सकता है अतः इससे अद्वैत सिद्ध नहीं होता. ॥४६७॥ (शं) जैसे व्यापक सम आकाशमें धूंवा प्रकाश बिजलिकी गति आकाशकी बाधक नहीं. वैसे उक्त मायाभी बाधक नहो ऐसा क्यों न माना जाय? (उ.) जहां धूवां वगैरेके परमाणु वे शून्यरूप न होनेसे उन स्वरूपाकाश नहीं माने वे आकाशमें हैं आकाश उनमें नहीं. ऐसेही दार्ष्टांतमें घटा लेना चाहिये अर्थात् गतिवाला परमाणु माया ब्रह्मरूप नहीं. ब्रह्ममें वोह हो, ब्रह्म उसमें नहीं इस भेदसे अद्वैत नहीं बनता ॥ ४६७ ॥

विलक्षणवाद.

(आ. ७) अधिष्ठान समचेतनमें उससे विलक्षण प्रकाश्य अध्यस्त ॥४६८॥ यथा नामरूपात्मक स्वप्नसृष्टि ॥४६९॥ अधिष्ठानसे विलक्षण सत्तावाला अन्यथा स्वरूप विवर्त्त जिसकी अध्यस्त संज्ञा ॥४७०॥ * उसकी उसमें प्रतीति और अस्पर्श होनेसे ॥४७१॥ उभयका विलक्षण संबंध विलक्षण होनेसे ॥४७२॥ तद्वत् व्यवहारभी ॥ ४७३ ॥ परस्परके बाधक नहीं सत्ताका भेद होनेसे ॥ ४७४ ॥ स्वप्नवत् ॥ ४७५ ॥

(जगत परिछिन्न गतिमान है. अतः उसका अधिष्ठानाधार विभु होना चाहिये. यह उपर सिद्ध हुवा है परंतु उसमें आधेयके स्वरूपका प्रवेश होना असंभव है. अतः आधेय भ्रमरूप वा अध्यासरूप होगा; परंतु ऐसाभी सिद्ध न हुवा यहभी उपर कहा है तो आधाराधेयकी व्यवस्था कैसे हो सकती है इस शंकाके समाधान में लक्ष्यालक्ष्य सिद्धांत याने विलक्षणवादका आरंभ करते हैं यह आरोप अपवाद सू. ४६८ से ४८२ तक है ॥).

सूत्रवृत्ति—निर्विकल्प विभु समचेतन प्रकाश अधिष्ठानमें उससे विलक्षण सत्तावाला प्रकाश्य (आधेय—देशकाल सहित ब्रह्मांड) अध्यस्त है. ॥ ४६८ ॥. जैसे के स्वप्नसृष्टिमें व्यापक जो द्रष्टा चेतन उसमें उससे विलक्षण प्रकारकी जो देशकालसहित नामरूपात्मक स्वप्नसृष्टि सो अध्यस्त है. वैसे यह ब्रह्मांड अधिष्ठानचेतनमें अध्यस्त है ॥ ४६९ ॥ अधिष्ठानसे विलक्षण (विषम) सत्तावाला (दूसरे प्रकारके अस्तित्व-

* परिणामवाद (विशिष्टवाद) में व्याप्यको अध्यस्तही बताया है परंतु यहां इस पदका गुह्याशय नहीं खोला है. व्याप्यरूपमें रख दिया है. इसी प्रकार यहां विलक्षणवादमें एक गुप्त प्रकार है. जो अध्यास विवर्त्तोपादानादि याने भ्रम इतर सब अध्यस्तवादिमें मिलता है शोधक स्वयं शोध लेगा.

वाला) अधिष्ठानसे और प्रकारका स्वरूप विवर्त कहाता है इसलिये अधिष्ठानसे विलक्षण और अधिष्ठानका अध्यस्त कहाते हैं. ॥ ४७० ॥ क्योंकि उस विवर्त (अधिष्ठानका अन्यथरूपमें दूसरेकी उपाधि–विस्तार पानेवाला अध्यस्त) की सिद्ध अधिष्ठानमें असरकी प्रतीति होती है, उसके विना उसकी प्रतीति नहीं होती है. और प्रतीत होने हुयेभी अधिष्ठानसे उसका अन्यरूप होना है इसलिये उन विवर्तको अध्यस्त (अपर) कहते हैं. ॥ ४७१ ॥ जेसे आकाशाधिष्ठानमें नीलता आकाशसे इतर प्रकारकी है और आकाशको विकारी नहीं करती हुई उसमें प्रतीत होती है तथा इस उपाधिसे आकाश नीला जान पडता है वैसे. (स्थूल दृष्टिसे बादलवाली उदाहरण दे सकते हैं) ॥ ४७१ ॥ ये अधिष्ठान अध्यस्त परस्परमें विलक्षण सत्तावाले हैं. (विषम सत्तावाले हैं) इसलिये उन दोनोंका परस्परमें संबंधभी विलक्षण है ॥४७२॥ ऐसेही उनका उपरोक्त (सू. २५२ से ४२६ तकका विशिष्टवाद) व्यवहारभी विलक्षण है ॥ ४७३ ॥ ये परस्परके बाधक नहीं हैं. अर्थात दोनों हैं तोभी एकके स्वरूपका दूसरेमें प्रवेश नहीं होता, एक दूसरेको टक्कर नहीं देते. एक दूसरेको नहीं हटाते और न विकार करते हैं क्योंकि दोनोंकी सत्ताका (अस्तित्वप्रकारमें ...) भेद है ॥४७४॥ जेसाके स्वप्नमें विभु, दृष्टाचेतन और स्वप्नसृष्टिके अस्तित्वप्रकारमें भेद है वे दोनों परस्परके बाधक नहीं होते, स्वप्नसृष्टिके स्वरूपका चेतनके स्वरूपमें प्रवेश नहीं-एक दूसरेको नहीं हटाते–विकारी नहीं करते, और स्वप्नसृष्टि चेतनमें अध्यस्त है उसमें विवर्तरूप है. वैसे ब्रह्मनामा अधिष्ठानमें अव्यक्त और उसका कार्य जगत अध्यस्त है ॥ ४७५ ॥

सत्ता और विवर्तका विवेचन (तत्त्वदर्शन अ. ३ मेंसे सार)

(१) सत्ता–योग्यता, शक्ति या अस्तित्व प्रकारको सत्ता (होना पना) कहते हैं. ॥ १ ॥ परा और अपरा दो प्रकारकी सत्ता देखते हैं. ॥ २ ॥ जो अस्तित्व विशिष्ट समान रहता हो न बदलता हो और अपनी सिद्धिमें स्वतः सिद्ध हो उसको पर किंवा परासत्ता कहते हैं. ॥ ३ ॥ जेसे के समचेतन ब्रह्म या आत्माका अस्तित्व (सत्ता) है. ॥ ४ ॥ वा स्वप्नके अधिष्ठान चेतनका अस्तित्व है ॥ ५ ॥ उससे दूसरे प्रकारके अस्तित्वको अर्थात् जो अस्तित्व समान न रहे, बदलता है और जिसकी सिद्धि परसे हो, परविना न हो उसको अपरा सत्ता कहते हैं ॥ ६ ॥ जेसे समचेतनसे इतर दूसरेकी (अव्यक्त और उसके कार्यकी) है ॥ ७ ॥ यह दोनों सत्ता अनुभवगम्य हैं, अनिर्वचनीय है, वाणीका विषय नहीं. जेसे स्वप्नके दृष्टाचेतन

और स्वप्नसृष्टि (सृष्टिका उपादान अव्यक्त, शेषा, सृष्टिके देशकाल, सूर्यचंद्र, घट, शरीर, इंद्रिय, मन, जीव, चार खान, बंध मोक्ष, मोक्षके साधन, मंतव्य, अमंतव्य, संक्षेपमें जाग्रत समान तमाम त्रिपुटि व्यवहार) की सत्ता (अस्तित्व) विलक्षण है, अनुभवते हैं परंतु कह नही सकते. दृष्टाचेतनका अस्तित्व जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिमें समान स्वतः सिद्ध है और स्वप्नसृष्टिका अस्तित्व प्रतीतकालमें है और वोहभी चेतनके अस्तित्वसे प्रतीत होता है. उस विना नही. वोह अस्तित्व जाग्रत सुषुप्तिमें नहीं होता. इस रीतिसे उभय अस्तित्वका विलक्षणत्व अनुभवमें स्पष्ट हो जाता है. ऐसेही ब्रह्मांडमें है. इसलिये ब्रह्मचेतनकी परा सत्ता और उससे इतरकी अपरा सत्ता है.

(शंका) स्वप्नगत कार्यसृष्टिका अस्तित्व चेतनसे विलक्षण हो परंतु उसके (शेषाके मूल अव्यक्त और जाग्रतवाले मनका तो अस्तित्वचेतन जेसा है क्योंकि वे स्वप्न बाधकालमेंभी होते हैं. जो ऐसा न मानोगे तो त्रिपुटीका तमाम व्यवहार (जीव ईश्वर बंधमोक्ष मोक्षसाधनादि) स्वप्न समान ठेरेंगे. (उ) उपादानकी समसत्तावाला अन्यथा रूप **परिणाम** कहाता है, उपादान, उपादेय वा परिणामी परिणाम वा अवयव अवयवी वा अंग अंगीकी समसत्ता होती है उससे इतर गुणसत्ता नहो होते. इसलिये स्वप्न-सृष्टिवत् उसके उपादानकी सत्ता स्पष्ट है. और अव्यक्तके कार्य होनेसे मन तथा शेषा समान सत्तावाले है. स्वप्नमें जेसी जाग्रत सृष्टि अर्थात् जाग्रतका मन तथा उसका व्यवहार जेसा जान पडता है वेसा उसका अस्तित्व है; इतनाही उत्तर है. तथापि मनके अस्तित्वके बोधार्थ कुछ ज्यादा विवेचन कर्तव्य जानके विशेष लिखते हैं.

(क) परा सत्तावाला एक ब्रह्म (कूटस्थ) ही है. इसलिये उसकी समसत्ता और समसत्ता साधक बाधकका उदाहरण नही मिलता इसी सत्ताको **पारमार्थिक सत्ता** कहते है. (ख) अपरा सत्तावाली एक अव्यक्त ही है. उसकी समसत्ता और समसत्ताके साधक बाधक वा उदारहरण नहीं मिलता. इस सत्ताको **प्रातिभासिक** (प्रतीत मात्र) भी कहते हैं. (ग) परा, अपरा यह दोनों विषमसत्ता हैं. इन दोनोंका वैलक्षण्य उनके मुकाबलेसेही अनुभवगम्य होता है. अन्य साधन नही है. स्वप्नसृष्टि और दृष्टाचेतनके अपरोक्ष वैलक्षण्यमे सत्ताका वैलक्षण्य अनुभवा जाता है. उसीसे यहभी जाना जाता है के परा यह अपराकी बाधक नही किंतु साधक है, जेसाके चेतन स्वप्नसृष्टिका बाधक नहीं किंतु साधक मान सकते हैं. ऐसेही ज्ञान स्वरूप, अज्ञानका बाधक नही किंतु साधक मान सकते है. जो ऐसा न हो तो अज्ञानकी सिद्धि न हो. इसी प्रकार ब्रह्म और अव्यक्त सृष्टिके लिये ज्ञातव्य है. (घ) विषमसत्ता दूसरेकी

साधक होनी चाहिये नहीं के बाधक. जेसाके सम (पोज़ीटिव) और विषम (नेगेटिव) का मेल देखते हैं. (ङ) समसत्तावाले बाधकभी हों तो आश्चर्य नहीं है, जेसाके पोज़ीटीवोंकी अथडाअथडी तम प्रकाशका बाध देखते हैं. (च) जहां समसत्तावाले अपने समके साधक किंवा जहां विषमसत्तावाले अपने समके बाधक जान पडते हैं. वहां व्यवहार दृष्टिसे फेसला होगा क्योंकि ऐसे उदाहरण मूल-परा अपरामें नहीं मिल सकने. किंतु व्यवहारीक सत्ता अर्थात् अव्यक्तके कार्योंमें मिल सकते हैं. ॥८॥ इसलिये अपरा सत्ताके अंतरगत् मूला और तूला दो सत्ता मान ली जाती हैं. उसमें मूलमूला व्यवहारीक सम, और तूलातूलावाली प्रातिभासिक सम कहाती हैं. मूला और तूला विषम कहाती हैं. दोनों अपरा सत्ताके अंतरगत् हैं. सन्मुखमें प्रतीतकालमें परावत् ज्ञात हो और पीछे (बाधके पीछे) और प्रकारकी जान पडे उसे मूला (व्यवहारीक) सत्ता कहते हैं. ॥ ९ ॥ जेसेके समष्टि जाग्रत सृष्टि और समष्टि स्वप्न सृष्टिकी है ॥ १० ॥ अर्थात् स्वप्न सृष्टि प्रतीतकालमें परासत्ता (चेतनकी सत्ता) समान जान पडती है और पीछे (जाग्रतकालमें) जेसे स्वप्नकालमें जान पडती थी वेसी उसकी सत्ता मालूम नहीं होती (स्मृतिमे नहीं आती) किंतु चेतनकी सत्ता से और प्रकारकी थी, ऐसा स्पष्ट अनुभवमें आता है. इसी प्रकार जाग्रत प्रतीतकालमें जाग्रत सृष्टिकी सत्ता परा सत्ता (चेतन-ब्रह्मकी सत्ता) समान जान पडती है. परंतु पीछे (स्वप्नकालमें) जेसी जाग्रतकाल विषे जान पडती थी वेसी मालूम नहीं होती किंतु चेतनब्रह्म (स्वप्नद्रष्टा चेतन मात्र) से भिन्न प्रकारकी (जाग्रतमें जेसे स्वप्नकी वेसी) थी ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है. क्योंकि जाग्रतका स्वप्नमें, स्वप्नका जाग्रतमें और सुषुप्तिका दोनोंमे व्यतिरेक है. परंतु चेतनका तीनोमें अन्वय है. इसी रीतिसे स्वप्न और जाग्रतके अव्यक्त और उसके कार्य (शेषा मन इंद्रिय शरीर त्रिपुटी व्यवहार) क्रमसे इतर प्रकारके अस्तित्ववाले हैं. तथाहि अज्ञानकालमें स्वप्नजाग्रतकी सत्ता परावत् जान पडती है. और पुरुष प्रकृतिके अनुभव हुये पीछे परावत् नहीं जान पडती किंतु और प्रकारकी अनुभवगम्य होती है.

(शं.) वोह प्रकार क्या ? (उ.) हमारे पास उसके लिये शब्द नहीं है. आपको जो ठीक जान पडे वोह संज्ञा रखीये. * हम तो इतनाही कहेंगे के स्वप्न जाग्रत अर्थशून्य वा अजात वा भ्रमरूप वा विकल्पादि ३३ रूप (२३१ सू. देखो)

---

* प्रकाशवत् सत् वा उससे विलक्षण अन्यथा वा ब्रह्म सदसद् नहीं कहा जाता (गीता-१३) सो जेसा है वेसा है, उससे अन्यथा अध्यस्त है, इत्यादि.

नहीं है. और उसका अस्तित्व (सत्ता) ब्रह्मचेतन-स्वप्नदृष्टाचेतन जेसा नहीं है. उससे इतर प्रकारका (प्रतीत मात्र) है. अर्थात दोनों विलक्षण सत्तावाले हैं. इसलिये इस प्रक्रिया वा शैली वा सिद्धांतका नाम विलक्षणवाद है. जेसे मृगतृष्णाका जल अज्ञानकालमें परासत्तावत् जान पडता है. उसके ज्ञान पीछे वेसा नहीं जान पडता किंतु और प्रकारका भान होता है. ऐसे ब्रह्म और अव्यक्तका अंतर है. यहांतक मूला सत्ताके उदाहरण और उसका परा सत्तासे वैलक्षण्य जनाया. ॥ १० ॥ प्रतीतकालमें मूला सत्ताके समान ज्ञात हो और बाध हुये पीछे वेसी न मालूम हो उसका नाम तूला (प्रातिभासिक) सत्ता है. ॥ ११ ॥ जेसा के मृगजलका दृष्टांत उपर कहा है. ॥ १२ ॥ उसी मृगतृष्णाके जलमें (जो वहां पशु वृक्ष हों तो) पशु और वृक्षके प्रतिबिंब देख पडते हैं. (क्योंकि रोशनीका चक्र इसी प्रकारका है) वे अज्ञानकालमें काचके प्रतिबिंब जेसे जान पडते हैं. मृगजलके ज्ञान पीछे और प्रकारके अन्यभाववाले जान पडते हैं. स्वप्नकालके रज्जु सर्प, प्रतिबिंब, मृगजल, और काचका प्रतिबिंबवाला देश इन सबका स्वप्नके पदार्थोंके साथ और जाग्रतके पदार्थोंके साथ तथा जाग्रतके रज्जु सर्प, प्रतिबिंब मृगजलादिके साथ मुकाबला करिये. ऐसेही जाग्रतके रज्जु सर्पादिका जाग्रतके घटादि और स्वप्नके पदार्थोंके साथ तथा स्वप्नके रज्जु सर्पादिके साथ मुकाबला करिये. औरभी बालक अवस्थाके वे खेल जिनको उसकालमें सत्य मानते थे. यथा जलका चंद्रमा, काचका फोटो इत्यादि. औरभी बालक वा चिडिया वा श्वान प्रतिबिंबको सत्य जानके उसकी साथ कलोल करते हैं. उस सत्तापर ध्यान दीजिये तो तूलावस्थाका ध्यान हो जायगा. ॥ १३ ॥ जेसे इस प्रस्तुत सिद्धांतका नाम विलक्षणवाद है, वेसे अध्यास (भ्रम) प्रसंगमें इसकी विलक्षण ख्याति है. इतनाही नही किंतु सब प्रसंगोमें "विलक्षण पदसे" निर्वाह होता है. ऐसी इसकी पद्धति है. +

अब आपने सत्ताका वैलक्षण्य जान लिया होगा और सत्ताकी साधकता बाधकता पहेछानी होगी. विषमसत्ता बाधक नहीभी होती इसकाभी ध्यान आया होगा तथापि अभ्यासार्थ, और स्पष्ट उदाहरण देते हैं:-

जाग्रतके भोजनसे जाग्रतकी भूख निवृत्त (बाध) होती है. जाग्रतके वाहनसे जाग्रतमे प्रदेश जा सकने हैं. (वाहन, यात्राका साधक है). स्वप्नकी भूखका बाधक, स्वप्नका भोजन और स्वप्नका वाहन स्वप्नकी-यात्राका साधक है.

+ ब्रह्मसिद्धांतका पूर्व पक्ष त्रिवाद और उत्तर पक्ष विलक्षणवाद है.

(यह मूला सत्ताके साधक बाधकपनेके उदाहरण हैं). जाग्रतका भोजन स्वप्नकी भूखका और स्वप्नका भोजन जाग्रतकी भूखका बाधक नहीं होता. स्वप्नका वाहन जाग्रत यात्राका और जाग्रतका वाहन स्वप्नयात्राका साधक नही होता. (यह विषमके उदाहरण हैं) जाग्रत (मूला) की प्यास मृगजल (तूला) से नहीं जाती. सुक्तिकी रजतसे धनाढ्य नहीं होते. (तुलाके उदाहरण). काचवाला प्रतिबिंब मुख दोषदर्शन का साधक है, बिंब उसका बाधक नहींभी है. सामान्य ज्ञान, अज्ञानका साधक है. जो साधक न हो तो अज्ञानकी सिद्धि न हो. और विशेष ज्ञान अज्ञानका बाधक है. क्योंकि विशेष ज्ञानसे अज्ञानका अभाव होना देखते हैं. जाग्रतके संस्कार स्वप्नके, स्वप्नके संस्कार जाग्रतके साधक हैं. (समसत्ताके उदाहरण). ब्रह्मचेतन न हो तो स्वप्न जाग्रतरूप सृष्टि न हो वा उसकी प्रतीति और सिद्धि न हो क्योंकि चेतनकी अस्ति भातिसेही उनका अस्तित्व प्रतीत होता है. अन्यथा नहीं. इसलिये परा सत्ता अपराकी साधक है. बाधक नही. ॥ १३ ॥-१४ ॥

जिस अभ्यासीको स्वप्नके अधिष्ठान चेतन और स्वप्नसृष्टिके उपादान सहित कार्यकी सत्ताका वैलक्षण्य अनुभवमें आया होगा. और उसकी साधकता समझी होगी वोह विवेकी सूक्ष्मदर्शी प्रस्तुत प्रसंग (स्वरूपाप्रवेश हुयेभी अधिष्ठानाध्यस्तकी सिद्धि को समझ ले उसमें क्या आश्चर्य. उपर जनाया है के आकाशकी नीलता स्वतः वस्तु नहीं किंतु इथरकी लहरका भाव है. अर्थात् नहीं और अमुक निमित्तसे है. जेसी भासती है और परीक्षामें उतरें तो जेसी भासती है वेसे है नही. इस रीतिसे जेसा आकाशका और उसका वैलक्षण्य तथा साधकता भाव है वेसे ब्रह्म और अव्यक्तका वैलक्षण्य और साहचर्यभाव है.

दृश्य परिमाण.

जिसे आंख बंध करनेपर अंदरमे विशेष नहीं तोभी सूर्य उदय प्रथमका जेसा प्रकाश मालूम होता हो वोह पुरुष जंगलमें जाके सो दोसो फुटके दूरपर एक वृक्षपर दृष्टि जमाके फेर आंख बंध कर ले तो अंदरमें दृश्य सडक देश और वृक्ष जान पडेगा फेर आंख बंध किये हुयेही वृक्षकी तरफ चले तो अंदरमें वृक्ष अपनी तरफ आता हुवा देखेगा. जब चलता हुवा नजर न पडे तब आंख खोलके देखेगा तो उस वृक्षके पास अपनेको खडा पावेगा. इस परीक्षासे नीचेकी बातोंपर ध्यान देना चाहिये (१) देशका प्रतिबिंब होता है (२) प्रतिबिंब असत्य नहीं है (३) रंगरूप मगजका इम्प्रेशन नहीं है (४) शेपाकी किरणें, दृश्यका माप छे, ऐसा यंत्र है (५) मगजमें इतने बडे देश

और वृक्षका लंबा फोटो कहां ममाया होगा अर्थात् बाधक हुये विनाभी स्वरूप रहते हैं (६) आंख बंध हुये उस अनुसार बाह्य वर्तन वोह कैसे ठीक उतरा (७) अंदरमें किरणोंने बाह्य गति ममान कैसे गतिकी होगी. ऐसी परीक्षा हो गई और यह बातें समझमें आ गई तो स्वरूपाप्रवेश हुये सहचर्य होनेका भाव समझमें आ जायगा. तीन मीलका लंबा उंचा पहाट आंखमें मालूम होता है अर्थात् उसकी किरणें उठके आंखकी कीकीमें एकत्र होके अंदर जाके पहाड जितना विस्तारवाला रूप धारती है. (शं) यह माना परंतु इतनी लंबी जगे अंदरमें नहीं है तो कैसे लंबाई ली होगी ? (उ.) जैसे वडे आदमी और वडे पहाडका फोटो ले तो छोटी प्लेट (कागज) पर वडा जान पडता है ऐसे लंबाई लेता होगा. परंतु यह उत्तर ठीक नहीं जान पडता. क्योंकि जिसने कभीभी फोटो न देखा हो उसको इतने वडेका भान नहीं होता परंतु जिसको प्रतिबिंब वा फोटोके संस्कार होंगे वोह पूर्वाभ्याससे इतना वडा मान लेता है. न के उतना लंबा कद जान पडता है. परंतु आंखमें तो अशिक्षितकोभी वडा कद मालूम होता है सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे फोटो देखें तो उसकी किरणें वडा रूप रखके जान पडती हैं इससेभी जाना गया के वोह फोटो बडा न हुवा. किरणोंने वडा रूप रखा है. इसी प्रकार अंदरके फोटो वास्ते जान लेना चाहिये. काचके प्रतिबिंबमें कितना वडा देश जान पडता हैं. मोटा काच लें तो काचवाले प्रतिबिंबकी आंखोंमें काचकी प्लेट सहित बिंबकी आंखोका फोटो मालूम होता है. सारांश किरणोंका घुसना और फेरफार होना विचित्र है.

सार यह है कि स्वप्नकी थीयरी जानके उसकी परीक्षा करें तो यह मालूम हो जायगा कि इथर (शेषा) ऐसी विलक्षण विचित्र वस्तु हैं कि देश विना देशवाला काल विना कालवाला आकार धर लेती है. उपरोक्त दोनों उदाहरण स्वरूपाप्रवेश हुये अधिष्ठानाध्यस्तका साहचर्य बताते हैं, उसमें सत्ताका वैलक्षण्य हेतु हैं.

चेतन और अव्यक्त (चेतन–स्वप्नादि) से इतर उपर जितने उदाहरण दिये हैं, वे सब सत्ताका भाव ध्यानमे आवे इसलिये दिये हैं परंतु उन्हींको मानके चुप बेठ जावें तो साध्य समदोप आ जाता है क्योंकि वे अव्यक्तके अंतरगत हैं. प्रसंग सिद्धिमें उपयोगी नही मान सकते. इसलिये जिताना पडता है कि समचेतन (ब्रह्म–आत्मा) और अध्यस्त (सकार्य अव्यक्त–प्रकृति) इन दोनोंके मुकाबलेसे उनकी सत्ताका वैलक्षण्य तथा अबाधकता (स्वरूपाप्रवेश) ग्रहण करना चाहिये. जैसे तूला तूलामें मूलावत् अपरा और मूला मूलामें अपरा सत्ता समान है. अर्थात् अव्यक्तकी सत्ताका भान

होता है और उन सबमें चेतन सत्ता समान है. पुनः इन उभयका मुकाबला करें तो उनके वैलक्षण्यका अनुभव हो जाता है जैसा के स्वप्न चेतनके उदाहरणमें जनाया है. फेर तमाम ब्रह्मांड (सकार्य अव्यक्त) और ब्रह्ममें लगा लेना चाहिये. यह संक्षेपसे सत्ताका बयान हुवा. (विशेष देखना हो तो भ्रमनाशकके उत्तरार्द्ध प्रकृति विवेकमें देखो) ॥ तत्त्व-दर्शन अ. ॥३॥

स्वप्न विवेक जाग्रतदृष्टिसे.

(१) स्वप्न सृष्टिमें दृष्टा चेतन व्यापक एक, और माया (प्रकृति) का मध्यम परिणाम पूर्व संस्कारवाला मन और शेषा (मायाका व्यक्त स्थूल भाग) जिसमेंसे सब नाम रूप बनते हैं. यह ३ वहां है. इनकी संज्ञा चेतन=सम। महत्तत्त्व=चेतन विशिष्ट संस्कारी मन.। उपादान=शेषा। शरीर इंद्रिय प्राणी=आभास.। देशकाल सूर्य चंद्रादि तथा विषय=भूत ग्राम. इन महत्तत्त्वादिमें याने सबमे चेतनका प्रवेश है याने उसमें वे अध्यस्त हैं. वहां समचेतनसे इतर कोई दृष्टा ज्ञाता नहीं है.

(२) महत्तके स्फुरणसे (संस्कारद्वारा) उपादानमेंसे पूर्व (संस्कार) वत् नाम रूप होते हैं. वे कोई स्थायी (यथा सूर्य-चंद्र पहाडादि) और कोई अस्थायी (यथा शरीरादि) होते हैं. फेर आभासोंसे नवीन आभास वृक्ष बीज वगैरे (यथा मृगजलमें सचे गाय वृक्षके फोटो होते हैं वैसे) होते हैं. और पूर्व नवीन ईन सबका त्रिपुटी व्यवहार होता है तथा तकरार और मतभेद होने लगता है और नवीनोंके नवीन संस्कारभी महत् तत्त्वमें होते हैं तथा मिश्रणजन्य जो नवीन सस्कार वेभी महत्तमें ग्रहण होते हैं.

(३) ईश्वरने अभावसे जगत जीव बनाये, वा आपही जीव जगतरूप हो गया वा ब्रह्म अपनी शक्तिसे अनेकरूप हुवा वा जीव ईश्वर प्रकृति अनादि अनंत, जीव अणु विभु वा मध्यम, बंध मोक्ष है वा नहीं, मोक्षसे आवृत्ति है वा अनावृत्ति, सृष्टिका कर्ता नहीं किंतु स्वाभावतः अनादिसे है इत्यादि अद्वैत द्वैत वा चेतन जडवाद ऐसे ऐसे उपचार आभासोंमें होते है सोभी संस्कारवश-बधिर अंध समान वा जंगलके वृक्ष समान हैं अथवा अरण्यगत् फोनोग्राफके शब्दोके समान हैं.

(४) स्वप्नमें जाग्रत समान जगत व्ययवहार जान पडता है, ईश्वर जीव, बंध पुन र्जन्म, मोक्ष मोक्षके साधन, सृष्टि उत्पत्तिके पूर्व और लय, तथा भेदग्रहणादि उपचार वा आभास जो होता है किंवा विकल्प (असत् ख्याति) परोक्ष अज्ञात सत्ता अपरोक्ष ज्ञात सत्ता जो कुछ होता है वोह सब प्रकृतिके परिणाम चेतनके विवर्त्त हैं, इतनाही कहा जा सकता है. ज्यादे कहनेकी गुंजायश नहीं होती

(५) प्रकृति जड, उसके परिणामभी जड हैं. अंध, पंगु, त्वचाशून्य, गूंगे, बहरे के समान हें उपचार वा आकार मात्र है. परंतु द्दष्टा ज्ञाता जो चेतन उसके संबंधसे सब चमत्कारी जान पडते हैं. जेसेके अज्ञातको फोनोग्राफका गायन ज्ञाताकी चेतन ज्ञान सत्ताके संबंधसे चमत्कारी जान पडता हो वेसे) सब व्यवहारका परिअवसान उस समर्मे होता है अर्थात् सब सृष्टिकी कुंची है. उसकी योग्यता महिमा उस सृष्टिके जीव नहीं जानते. महत् और उपादानके परिणाम अलिंगी समचेतनके सूचक लिंग हैं. यही केवल अद्वैत (सब वही वा सबमें वोह वा सब उसींमें सब उसीसे) वादकी भावनाका मूल है. नहीं तो चेतनको ज्ञाता द्दष्टा मंता और साक्षीभी नहीं कहा जा सकता क्योंकि अलिग है. कुछ है, ऐसा है, इस वास्ते है इत्यादि प्रयोग नही किये जा सकते.

(६) स्प्नवाले महदादि पदार्थ उस परमेश्वर (महेश्वर चेतन) को नहीं जानते और उपादान अभासादि ईश्वर (महत् विशिष्ट चेतन ईश्वर) को या महत्‌को नही जानते. सारांश फोनोग्राफके समान सब हैं. नामरूप मात्र हैं परंतु सब चेतन प्रकाशमें प्रकाशित होनेसे चमत्कारी और उनका व्यापार चमत्कारी जान पडता है और इसीवास्ते उस कालनें स्वप्न सृष्टि सत्य जान पडती है.

आत्मज्ञानभी ऐसाही है अर्थात् महत्‌का जब विवेक संम्कारसे निरुद्ध परिणाम होता है तब चेतन स्वयंज्योति स्वयंप्रकाश स्थितिमें होता है ऐसी स्थितिके संस्कार महत्‌नें हो जानेसे उसका किसीनें वा महत्‌में आत्मज्ञान व्यवहार होता है ऐसा लक्ष्यालक्ष्य अकथ्य प्रकार होता है वस्तुतः आत्मा किसीका विषय नहीं किंतु अपने आप प्रकाशता है.

(७) जब अभ्यास सस्कार वश महत्‌का स्फुर्ण बंध पडता है तब सकार्य उपादान और आभास यह सब महत्‌में और महत् समचेतनमें लय (अदृष्ट) होके बीजरूप हो जाता हें जिसे सुपुप्ति कहते हैं. इस समय अधिष्ठान और अध्यस्त दोनों अव्यवहार्य होते हैं. फेर जब अभ्यास संस्कारवश महत्ताका स्फुर्ण होता है तब पुनः उपर कहे अनुसार सृष्टि होती है. इस प्रकार प्रवाह है. इस प्रवाहमें जीवके कर्म वा ईश्वर इच्छा वगेरे साक्षात्‌मे कारण नही है बलके पूर्व पूर्व अभ्यास संस्कारही साक्षात्कारण हैं और कर्मादि परंपरासे कारण मान सकते हैं.

(८) उपर कहे अनुसार समचेतनके अस्तित्वसे विलक्षण जो माया उसका चेतनाश्रित चेतन संबंधसे विलक्षण व्यवहार होता है.

(९) उपर कहे अनुसार यह जाग्रत ब्रह्मांड है. आभास; चेतन महत् उपादान और आभासको नहीं जान सकते. किसी परोक्ष महत् उपादानसे यह सब कुछ तंत्र चल रहा है, चेतनकी सत्तासे उसमें चमत्कृति है. जो कुछ जाना माना जाता है वोह पहले शरीरगत महतके द्वाराही जाना माना जाता है. और पीछे नवीन संकल्प विकल्प भी होते हैं* आत्मज्ञान संबंधमेंभी वैसेही है निदान जैसे स्वप्नमें वैसे यहां सब प्रकार योग्य रीतिसे घट सकता है. क्योंकि स्वप्नमें जावे तब जाग्रतका ऐसाही विवेक अनुभवा जाता है.

(१०) इस विलक्षणवादमें यह जाग्रत किसीका स्वप्न है ऐसा नहीं मान लेना किंतु चेतनाश्रित नं. ४ अनुसार मायाके परिणाम चेतनके विवर्त्त हैं, ऐसा भाव लेना चाहिये.

(११) अब व्यवहार व्यवस्था अर्थ. कोई थीयरी बनाना (१४९ का विवेचन याद करीये) यह दूसरी बात है. यही मतभेद है.

स्वप्नविवेक स्वप्नदृष्टिसे.

(१) जैसे वर्तमान जाग्रतमें जान पडता है वैसेही स्वप्नदृष्टिमें जान लेना चाहिये. क्योंकि अवस्थांतरमें ऐसाही निश्चय होता है. समष्टिके स्वप्नोंको जानके ऐसा मान सकेंगे. एकके स्वप्नमें शांति नहीं होती. (विशेष तत्त्वदर्शन अ. ४ में विवेचन है.)

(२) पूर्वोक्त ईश्वरादि विषयमें अनेक रूपमें परोक्ष वा अपरोक्ष निश्चय और विवाद होते हैं. तथा आभास, रागादिवाले दुःखी सुखी होते याने जान पडते हैं.

(३) स्वप्नदृष्टि कालमें स्वयं कोई खास निश्चित यथार्थ सिद्धांत नहीं होता किंतु जैसे जैसे संस्कार वैसा वैसाही सत्य रूपमें माना जाता है या जान पडता है.

(४) जैसे उपर जाग्रत दृष्टिसे भाव और प्रकार कहा गया है वैसा स्वप्नकालमें भाव और प्रकार नहीं होता. यदि वैसा कहने सुनेमें आता है तो अन्य पक्षों समान यह भी फोनोग्राफ समान वाचारंभण मात्र है. (जाग्रतमें आके विचारो.)

---

*महत्का धर्म और योग्यता अनुसार महतद्वारा आभास यत्न चलता है इसलिये आभास ही जवाबदार ठेरता है. स्वप्नमेंभी ऐसाही होता है याने दुःख सुख आभासोंमें है, नहीं के मनमें. अभिमानी मनसके शरीरको दुःख सुखभी शरीरमें जान पडता है और सर्वंवधान सबका उपर कहे समान है

(५) अलबत्ते आत्मज्ञान प्रसगमें उपर न ६ समान रूप हो जाता है. और वोह कभी होता है क्योंकि मायाके तमाम परिणाम बदलते रहते हैं. और चेतनभम है, स्वय ज्योति है, बदलता नहीं है इसलिये जब महत् सचेत हुवा हलनेसे वर पटे याने सचेत निरुद्ध परिणाममे आने के आत्मा स्वयप्रकाशमान हो जाता है और जब अचेत सतब्ध होता है तब सुषुप्ति होती है जिसमे चित् अचिद उभय अव्यवहार्य होते हैं.

(६) व्यवहारमें स्वप्नदृष्टिवाला सिद्धात है, उसमे भी त्रिवादवाला अन्यसे उत्तम सिद्धात है. और निश्चय-नियममे जाग्रतदृष्टिवाला विलक्षण अनिर्वचनीय सिद्धातानुभवानुकूल है.

(७) विवर्त्त (अध्यस्त) अधिष्ठानसे विषमसत्तावाला अन्यथा स्वरूप विवर्त्त और उपादानसे सम सत्तावाला अन्यथारूप परिणाम ऐसा उपर कहा गया है इससे ज्ञात हुवा के विवर्त्त अधिष्ठानरूप नहीं और परिणाम उपादान वा परिणामी रूप है.

फर्नीचर लगे हुये कमरेमें बडा काच हो उसमे कमरेका फोटो होनेसे फर्नीचरवाला दूसरा मकान जान पडता है. अजान पुरुष पहेले कमरेमे आवे तो दूसरा कमरा देखके आगे जाता है और काचसे भटकता है तब जानता है के यह दूसरा मकान (प्रतिबिंब) काचका विवर्त्त था तहा काच अधिष्ठान है उससे विषम सत्तावाला अन्यथा रूप प्रतिबिंब विवर्त्त वा काचमें अध्यस्त है. किंवा मगज अधिष्ठान है प्रतिबिंब वा इम्प्रेशन अध्यस्त विवर्त्त है. जहा रज्जुमें सर्प जान पडे तहा मस्तकमे जो रज्जुका प्रतिबिंब सो अधिष्ठान है और जो रज्जुके सादृश्यसे सस्कारी मनद्वारा शेषाका सर्प परिणाम हो तो सर्प विवर्त्त है क्योंकि रज्जु विषय नही होती किंतु मगजमे उसका प्रतिबिंब विषय होता है उसके सादृश्यसे सर्प सस्कार उद्भव होनेसे शेषामे तदाकार रूप होता है. (और जो शेषाका परिणाम न हो तो सर्प कल्पन मात्र अर्थात् भ्रम ज्ञानाध्यास है)॥ मृगजल प्रसगमें प्रकाशित मरुभूमि अधिष्ठान है और जल स्वरूप रोशनी विवर्त्त है क्योंकि यह सब अपने अधिष्ठानसे विषम और अन्यथा रूप हैं. दृश्य परिमाणमें जीव अधिष्ठान है अदर दृश्य फोटो विवर्त्त है. जहा केवल भ्रम (ज्ञानाध्यास) हो वहा विवर्त्तभाव नहीं होता उपर कही रीतिसमान नामकल्पन है. प्रथम मान लो कि कनक पूर्ववत् है. उसका कुडलाकार भासना डोरीके सर्प समान है, अर्थात् माया मे कुंडलाकार भासता है ऐसी भावनामे कुंडल, कनकका विवर्त्त और कनक विवर्त्तोपादान है.

कनक उपादान (परिणामी) कुंडल परिणाम (उपादेय) है क्योंकि सम सत्तावाला

अन्यथा आकार है. वहां कनकदृष्टि नहीं रहती तद्वत् जल उपादान बरफ परिणाम है. सर्प परिणामी उसका गोलाकार होना परिणाम है. दूध जबके अन्य वस्तु मिलाये विना हवा गरमी वगेरेकी असरसे दहीरूपहो वा फट जाय तहां दूध उपादान और दही आदि परिणाम हैं. किरणें जब फोटोरूप हों तब किरणें उपादान और प्रतिबिंब वा आभास परिणाम है. शेपा (सूक्ष्मा) जब स्वप्नकालमें नामरूप (शब्दादि पंच विषय, इंद्रिय, मन, शरीर, देशकाल, सूर्यादि ग्रह उपग्रह पशु पक्षी आदि रूप) धरे तहां सूक्ष्मा उपादान है. नाम रूप परिणाम हैं. अव्यक्तका जब जड अजड और जगत् रूप हो तहां अव्यक्त (माया) उपादान है और कार्य परिणाम हैं. इत्यादि परिणामको जब चेतनके साथ लगावे तो इनका नाम विवर्त्त पड जायगा क्योंकि अधिष्ठानसे भिन्न सत्तावाले अन्यथारूप हैं. और चेतन स्व स्वरूपको न छोडते हुये अन्यथा जान पडे इसके निमित्त हैं—उपाधि हैं. इस रीतिसे अधिष्ठान चेतनसे इतर प्रकारकी अध्यस्त जो अनिर्वचनीय माया (अज्ञान-अविद्या-प्रकृति-जड-नामरूपात्मक प्रकृति) सो चेतनकी विवर्त्त है.

और किसीकी शैलीमें चेतन विवर्त्तोपादान (अपने स्वरूपको न छोडके अन्यथा जो भासे सो) कहा जाता है क्योंकि वोह न हो तो विवर्त्तकी सिद्धि न हो. जेसे के काच न हो तो कमरेका प्रतिबिंब न हो, डोरी न हो तो सर्प न भासे याने जो सर्प रूप भासता है वोह डोरीही है. अतः विवर्त्त उपादान डोरी है. सारांश चेतन किसीका उपादान वा परिणामी नहीं है परंतु परिभाषा वा व्यवहारमें विवर्त्तोपादान कहा जाता है, जेसे मकडी जालेका निमित्त और उपादान कहा जाता है. वस्तुतः शरीर उपादान है और जीव निमित्त है. ऐसे समचेतन निमित्त है और नाम रूपका अव्यक्त उपादान है. आशयको नहीं जानके अभिन्न निमित्तोपादान मानके तकरार करते हैं. अव्यक्तके स्वरूपको नहीं जानने और बाध कालमें अन्यथाभान पडता है इसलिये, उसका नाम अज्ञान-अविद्या रखा गया है. परंतु ऐसा नहीं जानके अज्ञान अविद्या शब्द तकरारका विषय हो पडा है. "मैं नहीं जानता" इस प्रतीतिके विषयको भी भावरूप पदार्थ मान लिया गया. बहा फेनन्वोदित है तदेतर उसमे, विलक्षण है, ऐसा माननेमे द्वैतापत्ति होगी. इसलिये मायाका अनादि सांत मानना चाहिये और जगतका रज्जु सर्पवत् अर्थशून्य मानना चाहिये तबही फेनन्वोदित सिद्ध होगा. ऐसा विवाद है परंतु पक्षकार यह नहीं विचारते कि संस्कारके विना अध्यास नहीं होता. चेतनसे इतर कोइ ऐसा नहीं कि जिसमें अध्यास होना माना

जाय अर्थात् चेतन (ब्रह्म वा अविद्या उपहित चेतन) संस्कारी ठेरा. संस्कारी मध्यम परिणामी होता है इस रीतिसे ब्रह्म विकारी ठेरता है. अतः चेतनको संस्कार और अध्यास कहना नहीं बनता. और चेतनको ज्ञान होने पूर्व जेसा जगतका स्वरूप (अनिर्वचनीय माया अविद्याका परिणाम रज्जु सर्पवत्) मानते हो वेसाही हमेशेके लिये मानो याने माया अनादि अनंत उसके परिणाम प्रवाहसे अनादि अनंत, ऐसा मान्नेमे केवलाद्वैतवादकी हानी नही होती क्योंकि जो चेतनको ज्ञान होने पूर्व मायाके परिणाम दृश्य होनेसे यदि द्वैत मानते हो तो केवलाद्वैत सिद्धांत का बाध होगा और जो द्वैत भाव नहीं मानते किंतु माया दृश्य हुयेभी केवलाद्वैत मानते हो तो अनिर्वचनीय ब्रह्म विलक्षण मायाको सांत न मान्नेसेभी केवलाद्वैत वाद ही रहा ऐसा स्पष्ट होगा. इसीका नाम विलक्षणवाद है. अज्ञान और अध्यासका आरोप करके जिज्ञासुको समझाना यह दुसरी बात है. याने शैली मात्र है. इसी प्रकार अन्य प्रसंगोमें वा शब्दोमें निष्फल विवाद हो रहा है

अब पूर्वप्रसंग—जेसे अधिष्ठान (प्रकाश) आधेय (प्रकाश्य) विलक्षण हैं वेसे स्वभवत् उनका व्यवहारभी अनिर्वचनीय विलक्षण है.

(शं.) यह विलक्षणता किसने जानी? (उ.) स्वतः प्रमाणवाद और अपरोक्षत्व तथा अनुभव स्वरूप याद कर लीजिये. उत्तर हो जायगा. शब्दद्वारा उत्तर नहीं हो सकता.

(शं.) उपरोक्त अधिष्ठान स्वयं आधार होनेसे आत्माश्रय दोष होगा. **(उ.) आत्माश्रय दोष नहीं ॥ ४७६ ॥ अनादि और सिद्ध होनेसे ॥ ४७७ ॥ अस्तित्ववत् ॥ ४७८ ॥ और स्वयंभ्वादि रूप होनेसे ॥ ४७९ ॥ विशेषण अपेक्षासे ॥ ४८० ॥ लक्ष्यालक्ष्य और अलक्ष्य होनेसे ॥ ४८१ ॥**

समचेतन स्वयं आधाररूप हैं, उसमें आत्माश्रय दोष नही आता ॥ ४७६ ॥ क्योंकि अधिष्ठान (आधार) अनादि है और सिद्ध है. ॥ ॥ ४७७ ॥ जेसे मूल पदार्थका अस्तित्व स्वतः है वेसे. अर्थात् जेसे अस्तित्वसिद्धिमे अन्यकी अपेक्षा नहीं होती, वेसे अनादि मूल अधिष्ठानमें किसी अन्याधारकी अपेक्षा नहीं रहती. ॥ ४७८ ॥ तथाहि अधिष्ठान सम, स्वयंभु, नित्य, निर्गुण, पर रहित, और पूर्ण है इसलिये स्वयं अधिष्ठान आधाररूप होने योग्य है. अतः आत्माश्रय दोष नही आता ॥ ४७९ ॥

(शं.) यह विशेषण कहांसे लाये ? (उ.) विशेषणोंका प्रयोग एक दूसरे पदार्थके गुण, कर्म, स्वभाव और उपयोगके वैलक्षण्यकी अपेक्षासे कहे वा माने जाते हैं. ॥ ४८० ॥

(शं.) समचेतन क्या गम्य हुवा कि जिसमे विशेषण कहने हो ? (उ.) लक्ष्या-लक्ष्य है और वाणीका विषय नहीं है. इसलिये दूसरे पदार्थोंके मुकाबलेसे उसके विशेषण मान सकनेमी हैं, और संकेत बनाके लक्षणावृत्तिसे कहे जाते हैं. यदि लक्ष्य न होता ते। चेतन वा ऐसा नामभी न कहा जाता और सर्वथा लक्ष्य होता ते। लक्षण कथनमें परकी अपेक्षा न होती ॥ ४८१ ॥ इन ६ सूत्रोक्त विषयका उपर (आधार, समचेतन, जडाजड चिदचिद्, लक्ष्यालक्ष्य, प्रसंगमें) विवेचन आ चुका है ॥ ४८१ ॥ यहांतक जो ब्रह्म सत्यं जग विलक्षणवाद याने विलक्षणवाद जो लिखा है सो तमाम व्यवहारीक विषयमेंभी अपनी सिद्धि कर बताता है और परमार्थ वादमें ते। है ही. सारांश केवलाद्वैत ब्रह्मको असंग बताके तमाम व्यवस्था कर सकता है और उत्तर फिलोसोफीमें इसका प्रवेश है. बंध मोक्ष वर्णाश्रम विधि निषेधकी व्यवस्था इसी पद्धतिसे हो जाती है. पूर्वोक्त परिणामवाद इसीके अंतरगत है उस रीतिसे सब व्यवस्था ज्ञातव्य है.

(शं.) जेसे डोरी सर्प प्रसंगमें यह सब डोरी है, डोरीसे इतर सर्प नाम और सर्प रूप कुछभी नहीं है वेसे यह सब ब्रह्म, ब्रह्मसे इतर कुछभी नहीं है ते। फेर विलक्षणत्व क्या ? (उ.) सर्प नाम और सर्पत्व क्या ? (शं.) नाम रूपका बाध करके यह सब ब्रह्म ऐसा लक्ष्यार्थ है. (उ.) नाम रूप क्या ?

(शं.) संस्कारी माया (मन) के परिणाम. (उ.) वोह माया क्या और केसी ?

(शं.) ब्रह्मसे विलक्षण प्रकारकी और अनिर्वचनीय तथा उसके नाम रूपात्मक परिणाम प्रवाहसे अनादि अनंत. (उ.) इसीका नाम विलक्षणवाद है. मैं, तू, मेरा, तेरा इत्यादि फोंनोग्राफरूप स्त्रीके समान अध्यास है.

विलक्षणवादका सिद्धांत.

(१) ब्रह्म सत्यं जगविलक्षण* चेतन एक न दूसरा. +

---

*सत् ब्रह्मसे विलक्षण=असत् कोई वस्तु नहीं होती और अन हुए प्रतीति नहीं होती अतः सत्‌से विलक्षण, अविभु, जड, प्रकाश्य, यह विलक्षण पदका आशय है

+ और ब्रह्म अद्वितीय है अर्थात् उससे इतर कोई सत् रूप सजातीय और सत् रूप विजातीय नहीं है तथा स्वगत भेद रहित है याने निरवयव सम एकरस है. यह एक चेतन पदका आशय है

(ब्रह्मसे इतर बाधरूप स्वप्नवत् विलक्षण–अनिर्वचनीय).

(२) ब्रह्मके स्वरूपका कवित–मनहरछंद.

जिसकी अरु जिसको, प्रतीति प्रतीति नाहीं;
ता विना प्रतीति नाहि, सो प्रतीत रूप है.
बोध मात्र बोध्य जाके, चेतन अलुप्त ज्योती;
त्रिपुटी प्रकाश्य जाकी, अदभूत अनूप है.
संशय प्रकाश. तम, खंडन प्रकाश्य सबे;
नित्यको है नित्य चित्त, को सो चिदभूप है.
नाही इच्छा क्रिया जामें, ता विना न तृण कामे;
मनमांही सबे और, आत्मास्वरूप है. ॥ १ ॥

(३) माया व जगतके स्वरूपका कवित–मनहरछंद.

आदिमें न अंतकाल, हालमें न जाल भान;
स्वप्न ज्यों अदेशकाल, बाधके [१] समान है.
तीन काल विद्यमान, खोजिये न लाह् आन;
जानको लगात बान, दीखती न जान है;
शश शृंग[२] नील खंग,[३] ज्यो भुजंग रज्जु[४] ढंग;
दीप ज्यों पतंग भंग, लेत जीव भान है.
सद न असद ऐसी, ख मोतीकी माल[५] जैसी;
ऐसी जगताको मोह, बाधक निर्वान है. ॥ २ ॥

शाडकी उपाधिसे शशशृंगवाला ज्ञान पडता है आकाशकी नीलता स्वाभाविक मावरूपा बाधरूप है किंवा दृष्टिकी गतिकी उपाधिसे ज्ञान पडती है परंतु है बाधरूप (प्रतियोगीके अपेक्षाविना आलात चक्रके समान भावात्मक अभावरूपा) रज्जुमें सर्प सस्कारी मन, किरण और दोष की उपाधिका परिणाम है. ख की मालामें पलक किरण और कीकी उपाधि है आकाशकी विवर्त है और आकाश विवर्तोपादान है अध्यस्तवाद के पक्षोंमें किसीका ज्ञानाध्यास (भ्रम) इतनाही मतव्य है. विलक्षणवादमें ज्ञान और अर्थ उभय प्रकारके अध्यास है. इतना समझ जानेसे विलक्षणवादका अर्थ स्पष्ट हो जाता है अर्थात् विलक्षण (अनिर्वचनीय) रूपा मायाही के उभय (अविद्या-विद्या) परिणाम हैं.

१ इसका अर्थ अवभासवादमें है. २, ३, ४, ५ इन पांचोका अर्थ और मात्र दृष्टि नियम और पदार्थ विधाके अनुकूल करना है, नहीं के शून्य मात्र अर्थ लेना है

(४) जीवका स्वरूप. कवित-मनहरछंद.

माया ब्रह्मसे न अन्य, दोनों जानेसे जनाय ;
भिन्न औ अभिन्न ऐसो, अद्‌भूत् मानिये .
अणु विभु मध्यम सो, चिद् न अजड जैसो ;
सांत औ अनंत सादि, औ अनादि जानिये .
सगुण विगुण कर्ता भोगता न भोगकर ;
अनुमंता उपदृष्टा, स्वत्व ममत्र जानिये .
खोजो तो न पनो लागे, विना शोधे है प्रसिद्ध ;
जीवको स्वरूप एक, ईश्वरज मानिये. ॥ ३ ॥

कवितोंके संक्षेपमें अर्थ.

(१) जिसकी प्रतीति होती है सो और जिसको प्रतीति होती है (मैं मानता हुं ऐसा कहनेवाला जो) सो और जिसे प्रतीति कहते हैं सो आत्माका स्वरूप नहीं है किंतु जिसके विना प्रतीति नहीं होती सो प्रतीत (ज्ञान) स्वरूप है. जितने बोध (ज्ञान वृत्ति ज्ञान) हैं वे जिसके बोध्य (ज्ञेय) हैं, जो निरावरण (अलुप्त) चेतन ज्योति स्वरूप है, तमाम त्रिपुटि जिसके प्रकाश्य (विषय) हैं वोह अद्‌भूत्-आश्चर्य रूप है उसकी उपमा नहीं मिलती. प्रकाश, नम, खंडन और संतधर्मी जिसके प्रकाश्य (ज्ञेय) हैं जिसे नित्य मानते हैं याने जो नित्यता जान पडती है सो उसमे है, जिसे चेतन मानते हैं याने जो चेतनता जान पडती है सो उसमे है. वोह सर्व उपरी है, उसमें इच्छा और क्रिया नहीं है. सम है तथापि उसकी सत्ताके विना एक तिनकाभी नहीं हलता. वोह मनके अंदर और मन तरफ बाहिर रहा हुवा है अर्थात् अंतःकरणअवछिन्न (उपहित) अंतःकरण अनवछिन्न है. ऐसा आत्माका स्वरूप है॥ १॥

(२) जो तीनों कालमें नहीं है (उत्पत्तिसे पूर्व और अंतके पीछे जो न रहे उसके स्वरूपकी हयाती वर्तमानमेंभी नहीं मान सकते) और नालके समान मानने आती है जैसे स्वप्नदृष्टि देशकाल क्रियाविनाभी देशकाल क्रियावाली प्रतीत होती है ऐसी है. जैसे स्वप्न बाधरूप है वैसे बाधरूपा है. कोई कालमें यह नहीं, ऐसा नहीं है याने भूतमें थी, वर्तमानमें है, भविष्यमें होगी. जो उसे खोजते हैं सो कुछ हासिल नहीं मिलता. जब उसे ज्ञान दृष्टिसे देखते हैं तो उसमें कुछ सार नहीं मिला-जीव नहीं पाया जाता तुच्छा है ॥ जैसे झाड मरुस्थमें मुसाफिरके मांग मान

पडते हैं, आकाशमें स्वभावतः नीलता जान पडती है, और डोरीमें सर्प जान पडता है ऐसी है. जैसे दीपक पतंगके भंग होनेमें निमित्त होता है वैसे इसका सौंदर्य जीवकी बुद्धिको हर लेता है ॥ इसको सद् नहीं कहा जाता क्योंकि सतब्रह्ममें दूसरे सतका प्रवेश नहीं हो सकता और असत् भी नहीं कहा जाता क्योंकि असत् स्वरूपसे कोई वस्तुही नहीं होती और न प्रतीत होती है परंतु जगत तो सबको भावरूप जान पडती है. सारांश जिसको सद् वा असद् नहीं कहा जाय ऐसी अनिर्वचनीया है जैसे पलक, कीकी, किरणकी उपाधिसे आकाशमें मोतीयोंकी माला जान पडती है वैसी (माया उपाधिसे ब्रह्ममें वैसी) है. इस प्रकारकी जो जगत उसका जो मोह (उसमें जो आसक्ति) सो जीवके श्रेय (मोक्ष) का बाधक याने प्रतिबंधक है.

(३) जो ब्रह्म और मायासे भिन्न वस्तु नहीं है, दोनोंके जाननेसे उसकी जान पडती है. उन दोनोंमे भिन्न योग्यतावाला और उनसे अभिन्न ऐसा अदभूत् रूप माना जाता है. ।। जिसे अणु विभु और मध्यमर्मा कह सकते हैं. चिद नही परंतु अजड (चिद्) जेसा वा जड नहीं चेतनें नहीं, ऐसा है. उसे अनादि, सादि, अनंत, और सांत कह सकते हैं ॥ वोह सगुण है, गुणरहित है, वोह कर्ता भोक्ता है और न कर्ता न भोक्ता है ऐसा कहा जा सकता है, वोह अनुमंता (पीछेसे माननेवाला) उपद्रष्टा (प्रतिनिधिवत् द्रष्टा) है. हूं (मैंपना) मात्र है. ॥ जो उसको खोजने लगें तो पता नहीं लगता (नहीं मिलता) और जो शोध न करें तो हूंपनेसे सुप्रसिद्ध है. ऐसा जीवका स्वरूप है यह एक आश्चर्यरूप बात मानी जाती है (अनुभवके विना यह कवित उन्मत्त कथनवत् है) ॥३॥

(अप) संबंध और गतिके अवसर न होनेसे नहीं. ॥४८२॥

उक्त विलक्षणवाद यद्यपि अध्यस्त व्यवहारकी व्यवस्थाके वास्ते ठीक हो जबके अधिष्ठान अध्यस्तका संबंध और अध्यस्तको गतिका अवसर मीले. परंतु उभयका अवसर नहीं * अतः अद्वैतको सिद्ध करे तो व्यवहार व्यवस्थामें और यदि संबंध गति मानके व्यवस्था करने जावे तो अद्वैतमें बाध आता है. अतः यह आरोप ठीक नही. ॥४८२॥

अधिष्ठान अध्यस्तके संबंधका निषेध अध्यासवादि कर चुका है और गतिका बयानें सू. ४६७ में आ चुका है अतः विवेचनकी अपेक्षा नहीं (इस अपवादका समाधान अंतमें हो जायगा.)

* गतिवानकी गति और अध्यस्तका संबंध यह उभय व्यवहारिक दृष्टिसे व्यवस्थार्थ हैं यथा स्वप्नमें मान सकते हैं. ॥

विलक्षणवाद समाप्त हुवा. अब आगे विवर्त्तोपादानवाद × (मायावाद) द्वारा अद्वैतकी थीयरी लिखेंगे.

अब श्री शंकराचार्य महाराजकी थीयरी (विवर्त्तवाद—मायावाद) लिखते हैं जो कि मानव मंडलमे सबसे उत्तम अनोखी है. और अद्भुत् कल्पना है. तमाम अध्यस्तवाद उसीके रूपांतर है. उनकी मान्यता इस प्रसंगसे संबंध रखती है इसलिये उनका नाम देके लिखा है.

(आ.) अधिष्ठान विवर्त्तोपादान ऐसे यति प्रवरका आदेश ॥४८३॥ अध्यस्त विवर्त्त होनेसे ॥४८४॥ स्वप्नाधिष्ठानवत् ४८५॥ और सर्प रज्जु उपहित चेतन वत् ॥४८६॥ स्वप्न प्रवाहके स्वतोग्रहण होनेसे समाधानका पर्यवसान ॥४८७॥ सामग्रीके विनाभी दर्शनकी व्याप्तिसे ॥४८८॥

उपर जिसको निर्विकल्प समचेतन कहा है, सो अर्थात् अधिष्ठान ब्रह्म, विवर्त्त उपादान है, ऐसे सन्यासियोंमें श्रेष्ठतर उनका याने श्री शङ्कराचार्यका सिद्धात है ॥४८३॥ क्योंकि अध्यस्त (अव्यक्त प्रकाश्य, माया—आधेय—नाम रूपात्मक जगत) उस अधिष्ठानका विवर्त्त है ॥४८४॥ जेसे स्वप्नसृष्टि स्वप्नके अधिष्ठान चेतनकी विवर्त्त है वेसे ॥४८५॥ और जेसे डोरी उपहित चेतनका सर्प विवर्त्त है वेसे अध्यस्त उस अधिष्ठानका विवर्त्त है ॥४८६॥ अधिष्ठान अपने स्वरूपको न छोडके अन्यथा रूपसे भासे वहां अन्यथा रूपपना विवर्त्त कहाता है और उस अधिष्ठानका स्व स्वरूप न छोडके अन्यथा प्रतीत होना यही उसमे विवर्त्तोपादानपना है. जेसे डोरीमे सर्प यह रूप नहीं है, वहा सर्प नहीं है, डोरी सर्परूप नहीं हुई है तोभी अज्ञानादि दोषसे वहा सर्प जान पडता है अर्थात् वोह डोरीही सर्परूपसे भासती है इसलिये सर्प, डोरीका विवर्त्त और डोरी सर्पका विवर्त्तोपादान है. डोरी उपहित चेतन लिखनेमें यह आशय है कि जेसे सर्प विवर्त्त है वेसे डोरी यह आकारभी ब्रह्म चेतनका विवर्त्त है. इस प्रकार तमाम आकार (नाम रूप जगत) ब्रह्मका विवर्त्त है और ब्रह्म उसका विवर्त्तोपादान है अर्थात् ब्रह्म चेतन सम (निर्विकल्प) है निरवयव अविकारी अपरिणामी अक्रिय

× अध्यासवाद, विलक्षणवाद, अध्यस्तवाद, विवर्त्तोपादान वाधवाद यह सब समान और समीप है अभिप्राय भेदसे शैलीका अंतर है

है तदाश्रित अनिर्वचनीय माया उपाधि करके ब्रह्मही नाम रूपात्मक * भासता है. जेसे कनक स्वस्वरूपको न छोडके कुंडलाकार भासता है वेसे. (शं.) डोरी सर्प प्रसंग मे तो डोरीका सामान्य ज्ञान विशेष अज्ञान, पूर्वदृष्ट सर्पके संस्कार, और प्रमाता, प्रमाण प्रमेय (सादृश्य) दोष हैं तब डोरीमें अनहुये सर्पका आरोपन हो जाता है. दार्ष्टांत प्रसंगमें ब्रह्मको ब्रह्म (अधिष्ठान) का अज्ञान कहना बने नही. ब्रह्मेतर सर्व सर्प वत् अर्थात् पूर्वमें सत् सर्पके अदर्शन और ब्रह्म चेतन तथा दृश्यका सादृश्य नहीं है तथा प्रमाण प्रमाताका अभाव है इसलिये ब्रह्ममें जगत वा ब्रह्म नाम रूपात्मक नहीं भास सकता. (उ.) जेसे घटकी उपाधिसे महाकाश घटाकाशरूप और क्रियावाला भासता है वेसे अनिर्वचनीय माया उपाधिसे ब्रह्म जगत रूप भासता है. जेसे स्वप्नदृष्ट अध्यास रूप पदार्थ उसके संस्कारसे अन्य स्वप्नमें वेसा वा उस जेसा पदार्थ देखते हैं ऐसे वर्त्तमान अध्यासरूप पदार्थ पूर्व पूर्वके संस्कारसे उत्तर उत्तरमें दृष्ट होते हैं अर्थात् सत् वस्तुही अध्यास (अन्यथा अवभास) की हेतु हो ऐसा नियम नहीं है किंतु अध्यास होनेमें वस्तुके संस्कार इतनाही हेतु है. इसलिये अनादि माया कल्पित संस्कारके प्रवाहसे नामरूप (प्रमाता प्रमाण प्रमेयादि ब्रह्मांड) का अध्यास होना बनता है. और ब्रह्म है तथा माया है, ऐसे अस्तित्व उभयमें सादृश्य है तथापि नाम रूपकी अस्ति ब्रह्मकी अस्तिसे है स्वतंत्र नही, जेसेके सर्पका अस्तित्व कुछ नहीं है किंतु डोरीकाही अस्तित्व है. इस प्रकार नाम रूपका अस्तित्व नही है किंतु ब्रह्मकाही अस्तित्व है. ब्रह्म कैवल्याद्वैत है. माया मात्र (नाम रूप मात्र) द्वैत है. क्योंकि स्वयं मायाभी डोरीके सर्प समान् दृश्य मात्र है. ॥ ४८६ ॥

इस विवर्त्तवाद (मायावाद) में जितनी शंका हो सकती हैं उन सबका पर्यवसान स्वप्न प्रवाहके स्वीग्रहसे हो जाता है. ॥ कोई शंकाका समाधान बाकी नही रहता ॥४८७॥ क्योंकि सत् सामग्रीके विनाभी विवर्त्तकी व्याप्ति देखते हैं ॥४८८॥ सू. ४२५–४५५ के विवेचन ओर ३६६ के विवेचनमे इन (४८७–४८८) का व्याख्यान हो जाता है. इसलिये इतनाही लिखना वस है कि पूर्वमें कहे हुये स्वप्न संस्कारसे स्वप्न होता है ऐसे पूर्व पूर्वसे उत्तर उत्तर इस दृश्यका अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास है. इस अध्यास होनेमें अन्य कोई सत् सामग्री नही है कैवल्य ब्रह्मही सत् है. कैवल्याद्वैत है. उसके ज्ञानसे प्रस्तुत अध्यास

* जो नाम रूप मायाके परिणाम और चेतन ब्रह्मके विवर्त्त मानें तो यह विवर्त्तवादही विलक्षणवाद कहा जा सकता है ॥

(विवर्तभाव—नाम रूप) की निवृत्ति हो जाती है अर्थात् स्वात्म स्वरूपके भानसे * नाम रुप अध्यस्तकी निवृत्ति होनेसे शेष अधिष्ठान ही रहता है. ॥४८८॥

वेदांत दर्शन (व्यास सूत्र) के अ २ पा. १ सू. १. १०, १४, २९, २७ के भाष्यमें उनका मंतव्य स्पष्ट है. । सार यह है कि ब्रह्मेतर सब (वर्णाश्रम व्यवहार, विधिनिषेध, शास्त्र, बंध, मोक्ष, सब ब्रह्मांड) माया मात्र है, और माया अनिर्वचनीय है. †

अवतरण.

श्री शंकराचार्यके सिद्धांत जानने वास्ते उनके शारीरिक भाष्यमेंसे कितनेक कोटेशन (संस्कृतका हिंदी तरजुमा)

अध्याय १ पाद १ सू. १ (एवं अयं) ऐसे यह जो अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास मिथ्या ज्ञान रूप है उस अनर्थके हेतुके नाशार्थ ब्रह्म विद्याबोधक शास्त्रका आरंभ है.

अ. २, १, १ (प्रथमे) पहेली अध्यायमें सर्वज्ञ सर्वेश्वर, जगत उत्पत्तिका कारण—मृतका घट, कनक कुंडलवत् जगतका नियंता - स्थितिका कारण मायावीव माया करके है ऐसा कहा.

अ. २—१—१४ (शं.) (कथञ्चानृतेन) अनृत मोक्ष शास्त्रसे प्रतिपादित जो जीव ब्रह्मकी एकता वोह केसे सत्य हो सकती है (उ) सब व्यवहार ब्रह्म ज्ञानमे पहेले सत्य समझे जाते हैं और वस्तुतः स्वप्न पदार्थके समान सत्य नहीं है (शं.) (नहि रज्जु सर्पेण) डोरीके सांपका डसा हुवा कोई नहीं मरता और न मृगतृष्णिकासे स्नान पान प्रयोजन सिद्ध होता है. फिर तुम्हारे मिथ्या शास्त्रसे सत्य मोक्ष रूपी प्रयोजन केसे सिद्ध हो सकेगा (उ.) जेसे विष भक्षणके संदेह होनेसे मनुष्य मर जाता है और जेसे झूठे स्वप्नसे उसका ज्ञान जाग्रतमें सच्चा देखा जाता है और जेसे स्वप्नके झूठे सिंहसे डर कर सच्ची जाग्रति हो जाती है ऐसे हमारे मिथ्या + मोक्ष शास्त्रसे सच्ची मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है.

---

* जीवचेतन (आत्मा-प्रत्यगात्मा) ब्रह्म चेतन एकही है ऐसे एकताके ज्ञानसे.

† अध्यस्तवादोमें यदि चेतनको अज्ञान भ्रांति न मानी जाय तो बाधवादको छोडके शंकराचार्यजीकी थीयरी लाघवभूषणवाली उत्तम है.

+ सद् ब्रह्मसे विलक्षण, नहीं के अर्थ शून्य. अर्थ शून्य मान हो तो प्रापक सफल प्रवृत्ति परिणाम नहीं निकलता.

अ. २-१-२९ (तस्मादेकस्यापि) इसलिये एकही ब्रह्मका विचित्र माया शक्तिके योगसे दूधसे दहीके समान यह जगतरूप विचित्र परिणाम हो जाता है.

२-१-२७ (निराकार प्रसंग) (शं.) निराकार ब्रह्म वा एक वस्तु परिणामी कैसे? (उ.) (अचिन्त्याः) जो भावमें विचारमें नहीं आ सकते उनमें तर्क नहीं करना चाहिये. जो प्रकृतिसे परे है वोह अचिंत्य है इस प्रकार ब्रह्म अचिंत्य है, इसलिये उक्त तर्क नहीं करना चाहिये (सारांश) अविद्याकृत कल्पित रूपसे वोह संकाररूप भासता है वस्तुतः ब्रह्म निराकार है.

अ. २-३-२९ ज्ञान यह आत्माका गुण नहीं. आत्मा ज्ञान स्वरूप है. उपाधिसे परिच्छन्न है वस्तुतः विभु है. अणु कथनवाले सूत्र पूर्व पक्षके हैं.

अ. २-३-४४ जीव ब्रह्मके अंश समान अंश है वास्तवमें अंश नही क्योंकि निरवयवका अंश नहीं होता.

अ. २-३-५० जेसे घटोंमें जल हो तहां उनमें एक सूर्यके जुदा जुदा प्रतिबिंब हैं तिनमें एक आभास कंपायमान होवे तो दूसरे आभास कंपायमान नहीं होता. ऐसे एक ईश्वरका जीव आभास है, अनेक अंतःकरणोंमें जुदा जुदा है. इसलिये एक जीवके धर्म अधर्मका दूसरे जीवके साथ संबंध नही होता. जीव नाना विभु हैं ऐसे पक्षमें दोष आता है.

अ. ४-१-३ (वेदा अवेदा. बृ. ४-३-२२ इति वचनात्) वेद अवेद इस कथनसे ज्ञानकाल विषे हमारे मतमे श्रुतिकामी अभाव है. इस प्रकार ज्ञान कालमें वेद अवेद है.

अ. ४-१-९ एक प्रकारके ज्ञानके प्रवाहका नाम उपासना है.

अ. ४-४-२ जिसमें संस्कार, विकार, उत्पत्ति, प्राप्ति वा नाश हो ऐसे प्रकारकी मुक्ति मुक्ति नहीं. क्रम मुक्ति है. वहांसे आवृत्ति होती है.

अ. ४-४-१६ संपत्ति यह ऐश्वर्य कैवल्य मुक्तिमें नही है किंतु ऐश्वर्यवाली मुक्ति स्वर्गादिवत् अवस्थांतर है.

अ. ४-४-२२ कैवल्य मुक्तिवालेकी अनावृत्ति है. ऐश्वर्यवाली मुक्तिसे आवृत्ति होती है. *

---

*अवतरणसे या तो अभिन्न निमित्तोपादानवाद (सब ब्रह्मका परिणाम) वा तो विवर्त्त (अपने स्वरूपको न त्यागके अन्यथा रूप) है अर्थात् माया करके ब्रह्मही जगतरूप भासता है यह सार निकलता है.

जिन श्रुतियोंसे शंकर श्री अपने आरोपकी सिद्धि करते हैं वे वक्ष्यमाण प्रमाण प्रसंगगत् (ज) में लिखी हैं. उनके अर्थमें विवादभी है जिसका यहां प्रसंग नहीं है.

(अप) प्रकरण सम दोष और अनादि, अनंत होनेसे नहीं ॥ ४८९ ॥

ब्रह्म सत् तदेतर मिथ्या वा विवर्त्त वा अध्यास मात्र ऐसा कहें तो यह कथन मंतव्यभी ऐसाही होगा. इसप्रकार जैसे मायावाद साध्य था उसके अंतरगत यह मंतव्य भी साध्य होनेसे संशय रहेगा. कुछ निर्णय न होगा. इस प्रकारका दोष आता है. और मायावादमें ब्रह्मेतर सब जीव माया वगैरे अनादि सांत मानके कैवल्याद्वैतवादका स्वीकार है परंतु अनादि कभी सांत नहीं हो सकता किंतु अनादि अनंतही होगा. इसलिये अद्वैत बोधमें संदेह होता है. याने सिद्ध नहीं होता. ॥४८९॥ कहनेवाले सांत कह गये परंतु माया तो आजतक नाश न हुई. ब्रह्मवित, मुक्त, तुर्यागलित योगीभी हुये और गये परंतु माया (प्रकृति) तो है. किसी जीवकी अविद्या-माया नाश हुई होगी परंतु अविद्या नाश हुये जीवकाही अस्तित्व नहीं रहता याने कर्ता भोक्ता बंध मोक्षपनाही नहीं रहा तो फेर किस जीवकी अविद्या नाश हुई? सार यह है के मायाकी उपाधिसे चेतनमें उपहितत्व विवर्त्तोपादानत्व, विशिष्टत्व माना जाता है, वस्तुतः चेतन शुद्ध है. वोह उपाधि अनादिसे है और रहेगी. तिरोभित उद्भव होती रहेगी. इसीलिये वेदांत भूमिकामें अयमानादिरनंतो नैसर्गिकोऽध्यास कहा है (शेष अद्वैतादर्श और तत्त्व दर्शनमें) और ज्ञान सार दृष्टिमे जहां सम ब्रह्म स्वरूपप्रवेश पर दृष्टि गई वहां कैवलाद्वैत ब्रह्म वा शुद्धाद्वैत वा अद्वैत ब्रह्म यही मानना पडेगा.

स्वप्नगत कोई स्वप्नका मिथ्यात्व कहे उससे जो मिथ्यात्वका बोध हो वोहभी मिथ्या है बोधकभी मिथ्या है इसलिये कुछ फल नहीं होता. तद्वत सत्को सत् कहे उसकाभी कुछ फल नहीं होता. एवं जगत मिथ्या ऐसा कथन व्यर्थ है क्योंकि वक्ता श्रोता मन वाणी सब मिथ्या है वे मिथ्यात्वके सत्यत्वको प्रतिपादन नहीं कर सकते. यदि उनको और मिथ्यात्वके सत्को सत्य मान लेवें तो द्वैत आपत्ति होगी. अतः जगत अध्यास-भ्रम-मिथ्या अजात् कहना नहीं बनता.

(आ. १०) नाटकवत् दृष्टि सृष्टिवाद स्वप्नवत् ॥४९०॥

(अप १०) गतिके अनवसरसे नहीं ॥४९१॥ और माया स्वयं अध्यास रूप न होनेसे ॥४९२॥

जैसे नाटकी नाटक दृष्टि मात्र होते हैं पूर्व उत्तरमें नहीं होते और न अज्ञात

होते हैं वेसे माया नामकी नाटकीद्वारा उसके स्वभाव अभ्यास और पूर्व पूर्वके संस्कारानुसार ब्रह्मनामा, दृष्टाके सामने नाम रूपात्मक नाटक दृष्टिमात्र होते हैं जेसेके उसका स्वप्नरूपी नाटक देखते हैं वेसेही यह दृश्य उसका दृष्टिमात्र नाटक है याने दृष्टि मात्रही सृष्टि है ऐसा समझना चाहिये. ॥४९०॥ स्वप्न रूपी नाटक प्रतीतकालमें तो है अप्रतीति कालमें कहींभी नही है याने वोह दृष्टिमात्रही सृष्टि है. उसकी अज्ञात सत्ता नहीं है वा हो तो विकल्प मात्र है. वोह नाटक याने स्वप्नसृष्टि देशकाल विना देशकालवाली, कारण कार्य भावके विना कारण कार्य भाववाली है और उसका तमाम त्रिपुटी समाज ज्ञात सत्तावाला दृष्ट पडता है और वहां अनादि अनंत कालकी दृष्टि होती है. जाग्रतवत् सत्यरूपसे त्रिपुटी व्यवहार होता है ऐसा अद्भुत् अनिर्णय नाटक दृष्टा चेतनके सन्मुख होता है. दृष्टा चेतनका उसमें उपयोग है उसके विना उसके अस्तित्वकी सिद्धिही नहीं होती है उसीकी अस्ति भातिसे उसमें अस्तित्व भातित्व जान पडता है. संक्षेपमें चेतनही उसकी चावी है. जब संस्कार उदासीन हों तब नाटक कहींभी गया ऐसा नहीं होता. सुषुप्ति होती है अथवा दूसरा नाटक जाग्रत नामका होता है वोहभी स्वप्न जेसा है तथापि उस समय सत्य जान पडता है. स्वप्नका नाटक मिथ्या जान पडता है. वर्तमानके नाटक पीछे दूसरा आवेगा तब पूर्वका मिथ्या, स्मृति मात्र ठेरेगा क्योंकि वोह कहींभी नही है और वर्तमानका सत्य ठेरेगा. इसी नाटकमे मत, पंथ, धर्म, ज्ञान, अज्ञान, अध्यात्म विद्या, व्यवहार, बंध, मोक्ष, मोक्षके साधन इत्यादि सब कुछ सत्यरूपसे होता है उत्तरमें अन्यथा होता हे. जेसे स्वप्नमें मुख्य जीव और आभासरूप शरीर हैं. वेसे इस महान नाटकमें है.

इस प्रकार ब्रह्मके सामने उसमें अध्यस्त व्यष्टि समष्टि रूप नाटक हैं. जब प्रतीत हों तब हैं न प्रतीत हों तो कहींभी नही. केवल अद्वैत ब्रह्मही ब्रह्म होता है. ऐसा अनादि अनंत प्रवाह है. इसमें ब्रह्मको अज्ञान, ब्रह्म अपने स्वरूपको भूल गया, ब्रह्मको भ्रम वा अध्यास हुवा हो ऐसा नहीं है, न उनको उपदेश ग्रहणकी अपेक्षा है न उसमे अहंत्व ममत्व रागद्वेष दुःख सुख प्रयत्न संस्कार है न वोह उसका कर्ता भोक्ता है (न कोई बंध मोक्ष हुवा और न होगा) किंतु साक्षी चेतन तो दृष्टा मात्र है.

परंतु कहीं कभी तो उसका उपयोग उपहित रूपमें कहीं कभी उसका उपयोग विशिष्ट रूपमें होता है. काचकी हांडीके अंदर प्रकाश उपहित हैं नीले काचके संबंधसे प्रकाश नीला भासे वा रक्त संबंधसे स्फटक लाल भासे यह विशिष्ट उपयोग है.

वोह नाटकी माया वा उसकी नाम रूपात्मक सृष्टि ब्रह्मवत् सत्य नहीं है

किंतु उससे विलक्षण है जैसेके द्रष्टा चेतनसे विलक्षण सत्तावाली स्वप्न सृष्टि है वैसी. यह सृष्टि किसीका स्वप्न नहीं किंतु मायाका नाटक याने माया रूपही है.

वोह नाटकका द्रष्टा कौन? अहं तू वोह यह विनाका रागादि रहित शब्दाभिमान रहित समचेतन जो हो सो. वा जिसको ज्ञानकी जिज्ञासा हो सो, जब अहंत्वादि रहित होवे सो. ॥४९०॥

(अप) समचेतन घनमें किसीकी गतिको अवसर नहीं हो सकता इसलिये नाटककार मायाको अवसर नहीं है ॥४९१॥ जो उस नाटकको भ्रम वा अध्यासरूप मानें तो माया स्वयं अध्यासरूप नहीं किंतु अध्यासकी कारण सामग्री है. अतः अध्यास रूप नहीं होनेसे अनहुई गति नहीं मान सकते. पुनः जो अध्यास रूप मानें तो पूर्वोक्त अध्यासवाले दोष आवेंगे. और समनें गति वा गतिवानको जबही मान सकते हैं कि जो गतिमान हो वोह वंध्या पुत्रके जैसा हो. वा शश शृंगका धनुष्य कर सके वा आकाशका तकीया करके सोवे. रज्जु सर्प, मृग जलादि प्रसंगमें तो अविद्यादि सामग्रीभी है उससे उनकी प्रतीति मान सकते हैं परंतु समचेतनमें गतिवानके माननेमें कोईभी सामग्री काममें नहीं आ सकती.

(शंका) स्वप्नमें देशकाल विना घोडे दौड रहे हैं ऐसी अनहुई गति गतिवान जान पडते हैं वैसे मान लो. (उ) तो वस्तुका स्वभाव ठेरा याने माया अध्यस्त रूपा ऐसी है कि जो नाम रूप गति वगेरे रूपमें जान पडे. नहीं के वैसे हैं. याने नाटक कर्त्ता नाटक रूपा नहीं है किंतु वैसे रूपमें भान हो ऐसा उसका स्वभावही है. इस पक्षमेंभी माया नाम तो द्वैत मानाही पडेगा. ॥४९२॥

(बाधवाद ४९३)

आर्यावर्त्तगत फिलोसोफीका अंतिमवाद.

(आ. ११) मायासे अधिष्ठानमें उसका अवभास ॥४९३॥ सस्मृति अनुभव होनेसे ॥४९४॥ और अस्ति नास्ति वा नास्ति अस्तिवत् भाव होनेसे ॥४९५॥ स्वप्नभ नीलतावत् ॥४९६॥ समचेतनमें बाधरूप अनादि अनंत व्यवहार ॥ ४९७ ॥

उपरोक्त अधिष्ठान (समचेतन ब्रह्म) में उपरोक्त अध्यस्त (सद ब्रह्मसे विलक्षण नाम रूपात्मक जो प्रकाश्य) का माया करके अवभास होता है ऐसा जानना चाहिये ॥४९३॥ क्योंकि जाग्रत स्वप्न स्मृति सहित और स्वप्न (नाम जाग्रत) जाग्रत (पूर्व

स्वप्न) की स्मृति सहित भासता है इसलिये अधिष्ठानमें दृश्यका संस्कारी माया करके अवभास होना सिद्ध होता है ॥४९४॥ औरभी यह दृश्य प्रकाश्य है. परंतु नहीं जेसा; और नहीं, परंतु है जेसा ऐसे भाव और प्रकारवाला देखते हैं. इसलियेभी उसको बाध रूप अवभासवाला माना पडता है ॥४९५॥ जेसेके आकाशकी नीलता और स्वप्नसृष्टि गति और भ्रांत भावके विना अस्ति नास्तिवत और नास्ति अस्तिवत् भासता है वेसे यह दृश्य है ॥४९६॥ समचेतनमें इस बाधरूप दृश्य अध्यस्तका बाधरूप अनादि अनंत व्यवहार है ऐसाही सिद्ध होता है ॥४९७॥ सार यह है कि निर्विकल्प समचेतन ज्ञान स्वरूपको अज्ञान वा भ्रम नहीं अतः अध्यास नहीं. स्वस्वरूपको भूला हो यहभी सिद्ध नहीं होता क्योंकि भूल सादि सांत होती है. स्वरूपके अप्रवेशसे अन्य गतिवानका प्रवेश वा संबंध नहीं मान सकते. इत्यादि पूर्वोक्त कारणोंको लेके बाधरूप स्वाभाविक अवभास ही माना पडता है. ॥४९७॥

निर्लेप अधिष्ठान चेतनमें ऐसा ब्रह्मांड प्रतीत होना और जहांका तहां प्रकाशित हुवा स्वनोग्रह होता रहना स्वाभाविक है— ऐसा स्वभावही है. इस सिद्धांतकी सिद्धिमें हेतु कहते हैं (१) परिपूर्ण ब्रह्मचेतनमें स्फुर्ण (लहेर, गति, परिणाम) होना असंभव है क्योंकि देशादिका अवसर नहीं है और (१) मूर्त्त (साकार) अमूर्त्तका स्पर्श असंभव और स्वरूप प्रवेश नहो, ऐसे विचित्र दुर्बोध्य नियमोंवश विलक्षणवादको समचेतनमें समचेतनसे विलक्षण गतिवाले अस्पर्श अध्यस्त-प्रकाश्यकी दृष्टि हुई है परंतु समचेतन एकरस हैं, इसलिये उसमे विलक्षण गतिवान (परिणामी) और उसकी गति (परिणाम) का अवसर नहीं मिल सकता. जो मिले तो समचेतन सम नहीं होना चाहिये. यह अनुभवसिद्ध बात है. तथा देशके विना गति नहीं हो सकती और देशकाल तो अव्यक्त परिणामीके कार्य स्वीकारे हैं अर्थात् पदार्थ देशकाल सहित उत्पन्न और नाश होते हैं ऐसे स्वप्न व्याप्तिसे माना है. इसलियेभी गति और गतिवानको अवसर नहीं मिलता तथाहि अव्यक्त, चेतनसे विलक्षण और समूहात्मक है तोभी उसके विभागके जड अजड, देशकाल विभु और परमाणु अणु, मूर्त्त अमूर्त्त, वजन वेवजन, तम प्रकाश, शीत गरम इत्यादि विरोधी परिणाम होना वा माना अनुभव युक्तिके विरुद्ध है. इसलियेभी ऐसे अव्यक्तका अवसर नहीं परंतु गति गतिवान, देशकाल अणु वगेरे विरोधी कार्य तो देखते हैं. ऐसी व्याप्ति और व्यतिरेकसे अध्यस्तवादको समचेतनमें उक्त विलक्षण अध्यस्त अध्यासरूप मालूम हुवा अर्थात् गतिवान और गति अध्यास मात्र हैं ऐसा जान पडा परंतु उसमेंभी अपवाद प्राप्त हुवा अर्थात् वर्त्तमानमें जिसे अध्यास

याने, अर्थशून्य भ्रम मानते हैं वैसा मानो तो पूर्वमें जो भ्रमनिषेध प्रसंगमें दोष कहे हैं वे दोष आनेसे अध्यासवाद त्याज्य होगा और जो यहां अध्यासका स्वरूप माना है याने पूर्वोत्तरमें नहीं और वर्त्तमानमें अर्थशून्य नहीं, ऐसा मानें तो माया वा अज्ञान स्वयं अध्यासरूप नहीं किंतु अध्यास उनका कार्य है. सारांश अनादि ब्रह्ममें अनादि माया वा अज्ञान मानेसे केवलाद्वैतवाद तो न रहा किंतु माया मात्र अध्यास मात्र द्वैत है, ऐसा मानना पडेगा, क्योंकि अनादि सांत न होनेसे अध्यास नैसर्गिक और प्रवाहसे अनादि अनंत ठेरेगा. किसी एक जीवका अध्यास निवृत्त होनेसे तमाम अध्यास आजतक निवृत्त नहीं हुवा इसलियेभी सर्वथा सांत नहीं. इसके सिवाय जिसको अध्यास हो सके और जिसका अध्यास निवृत्त हो सके वैसे अध्यासी (भ्रांत)की सिद्धि नहीं होती वैसे अज्ञानीका यहां अवसर नहीं है. क्योंकि ब्रह्मको अध्यास है, ऐसा कहना बने नहीं. क्योंकि ज्ञान स्वरूप है जो हठसे मान लेवें तो उसकी निवर्तक सामग्री नहीं है क्योंकि ब्रह्मसे इतर सब अध्यासरूप हैं. अतः अध्यासका निवर्तक अध्यास बने नहीं. और अध्यासकी निवृत्तिके पूर्व, अध्यासको अध्यासरूप कहना बने नहीं. इसलिये अध्यासकी मान्यता समीचीन नहीं और ब्रह्मसे इतर भ्रांत (अध्यासी) होने योग्य दूसरा कोई है नहीं अंतःकरणादि अध्यासरूप हैं अतः उनको अध्यास बने नहीं, और ब्रह्मको अज्ञान कहना बने नहीं इसलिये अध्यास होनेका जो मूल अज्ञान उसकी असिद्धिसे माया और उसके कार्य वा अज्ञानको अध्यास पदवी नहीं दे सकते. क्योंकि अध्यासीके विना अध्यास पदवीकी अनुत्पत्ति है. अध्यास माना के उपदेश मर्यादाका उत्थान होगा क्योंकि वे स्वयं अध्यासरूप हैं. जो परंपराकी मर्यादा अर्थ उपदेश होना मानें तो अध्यासकी असिद्धि होती है. (शंका) स्वप्नसृष्टिको स्वप्नका सिंह उडा देता है और आपभी उसके साथही जाता है इस प्रकार अध्याससे (उपदेशसे) अध्यास उड जाता है और सत् जाग्रत (स्वस्वरूप ज्ञान) प्राप्त हो सकता है. (उ) ज्ञान स्वरूप अज्ञान प्रकाशक ब्रह्मको तो अज्ञान कहना प्रकाशको तम कहने समान है. इसलिये यूं कहना होगा के एक अध्यास (स्वप्न रज्जु सर्प) निवृत्त होके दूसरा (जाग्रत वा लकडी) अध्यास हो गया. पुनः स्वप्नादि रूप अध्यास सबको (ज्ञानीकोभी) होता है. तथापि स्वप्नकी निवृत्ति सामान्यतः हुई है, अधिष्ठानके ज्ञानसे होती तो पुनः उत्पत्ति न होती इसलिये यह दृष्टांत इष्टकी सिद्धिमें नहीं है. और अध्यासवादकी रीतिसे तो यह मंतव्यभी अध्यासका विषय है याने प्रकरण सम दोषसे ग्रसित है. तो फिर उसका समाधान करनाही व्यर्थ है. विलक्षणवादकी रीतिसे उत्तर देंगे तो उसका अंगीकार

है अतः त्याज्य है. इस प्रकार उपदेशकोभी समान सत्तावाला अध्यासरूपही माना पडेगा और यह माना के अध्यासपद उड जायगा. अब यदि आपके पक्षको हठसे मानभी लेवें तो यह अध्यास है, ऐसा किसने जाना इसका उत्तर नहीं मिलता क्योंकि अध्यास अध्यासका ज्ञाता नहीं हो सक्ता. विशिष्ट जीवको ज्ञाता माने तो उसमें अंतःकरण (अविद्या) जड और अध्यासरूप हैं. चेतन अध्यासी है नहीं. यदि ब्रह्मकोही अध्यासी मानें तो उसकी निवृत्ति तक (तमाम ब्रह्मांड शून्य होने—निवृत्त होने तक) दृश्यको अध्यास पदवी नहीं दे सकते. इस रीतिसे अध्यासकी असिद्धि जान पडी परंतु दृश्य है तो सही. इसलिये अनिर्वचनीय विवर्त्त पर दृष्टि आई. उसमेंभी अनादि माया और उसके परिणामको अवसर नहीं मिलता. परिणाम न माने किंतु माया मात्र मानें तोभी अधिष्ठानसे विलक्षण सत्तावाला अन्यथारूप विवर्त्त, ऐसा माना पडता है इस विषम—अन्यथा शब्दसेही विलक्षण द्वैतकी आपत्ति होती है और पूर्वमें कहे अनुसार साध्य सम दोष आता है. *

अंतमे मायाके अवभासपर स्वभाव आ ठेरता है क्योंकि यह दृश्य अस्ति नास्ति वत् और नास्ति अस्तिवत् भासता है औरभी कारण है अर्थात् वर्तमान जाग्रतमें गत् स्वप्न (स्वप्नकालमें सत्य जाग्रत) की स्मृति और स्वप्न (रूप जाग्रत) में जाग्रत (जिसे स्वप्नरूपी जाग्रतमें गत् स्वप्न माना गया) की स्मृति होना सर्व कहते और मानते हैं परंतु ऐसा नहीं है किंतु जिसे अब जाग्रत कह रहे हैं सो, अन्य सूर्य देशकाल आदि पदार्थों समान स्वप्न (गत् जाग्रत) स्मृति सहित जाग्रत है. नहीं के इस जाग्रतके पूर्व कोई स्वप्न (जाग्रत) हुवा था और जिसे स्वप्न (नामकी जाग्रत) कहते हैं सो, जाग्रत (स्वप्नसृष्टि) की स्मृति सहित स्वप्न (जाग्रत) है. नहीं के कोई जाग्रत (गत् स्वप्न) हुई थी मारांश भूत वा भविष्य देशकालवाली सृष्टि नहीं है किंतु देशकाल रहित देशकालवाली अवभास होती है. यह प्रकार स्वप्न जाग्रतके विवेकसे भासता है (तत्त्व दर्शन अ ४ और भ्रमनाशकके उत्तरार्द्धमे समाधान सहित इसका विस्तार है) इसलिये मायिक स्वाभाविक अवभासपर विचार गया. साध्य समकी प्राप्ति दोष न

* अध्यासवाद, विलक्षणवाद और विवर्त्तोपादानवाद (मायावाद) और जीववाद (दृष्टि सृष्टि-वाद) का प्रस्तुत अपवाद अधिकार दृष्टिसे है वस्तुत बाधरूप अवभासवाद और अध्यासवादादि भावनो समानही हैं लक्ष्य दृष्टिसे देखिये दोष दृष्टिसे देखें तो वाद-आरोप करतेही द्वैतभाव प्राप्त होगा और प्रकाश्य प्रकाशसे इतर सब पक्षोंमें (तमाम अध्यस्तवादोंमेंभी) दोष आवेगा (त.द अ ३-५५० देखो)

आनेके लिये यूं कहा जाता है कि यह विचार कार्यद्वारा कारणपर आया है अर्थात् जेसेके नीलता और स्वप्न यह दोनो गति, अध्यासी और परिणाम भावके विना गति अध्यासी और परिणाम भाववाले तथा अस्ति नास्तिवत् भासते हैं और जेसे दोनों बाधरूप* अर्थात् प्रतियोगी पदकी अपेक्षा रहित अभाव स्वरूप अथवा न होने हुये होने समान वा होते हुये न होने जेसे हैं. और ऐसाही उनका व्यवहार है, अर्थात् बाधरूप है. वेसेही उनका मूल (अव्यक्त अध्यस्त) भी होने योग्य है अर्थात् चेतनमें अव्यक्त और उसके कार्य जो भासमान है वा माने जाते हैं सो अस्ति नास्तिवत् देशकाल विना देशकालवाले और बाधरूप हैं और चेतनमें बाधरूपसे अनादि अनंत व्यवहार है. जिसकी चावी अधिष्ठान चेतन परमात्मा है, उसीकी सब चमत्कृति है.

स्वप्नमें जितने देशकाल और जेसे पदार्थ मानते हो उतने और वेसे नहीं हैं (यह भाव जागने पीछे ज्ञात होता है) तोभी वहां सृष्टि अनादिकालकी और देश असीम और उसमें हाथी सूर्य चंद्रादि देख पडते हैं. घोडे दोड रहे हैं, तोप गोले विंदुक चलते हैं. आयुष्यक्रम हो रहा है, ईश्वर जीव बंध मोक्ष, सृष्टि और मोक्षके साधनके मंतव्य अमंतव्यादि देख रहे हैं. इस प्रकार तमाम त्रिपुटी व्यवहार (ब्रह्मांड) जान पडता है सोभी सत्य रूपमे अवभास होता है. नहीं के तमाशा वा इंद्रजाल वा भ्रम (सू. २३१ याद करें). जब जागते हैं तो जेमे देशकाल और वस्तु जाने जाते थे वेमे नहीं जान पटने किंतु "उस समयही होते हुये नहीं, जेसे थे" और इस समय "नहीं और थे जेसे" ऐसे जान पडते हैं. स्वप्नमें पदार्थोंकी गति, परिणाम वा द्रष्टा चेतनका रूपांतर नहीं थे, परंतु उम समय गति परिणामवाले जान पटने थे. द्रष्टा दृश्यकी विलक्षणता विषय नहीं होती थी और स्वप्नका अध्यासी कोई नहीं था, न तो उस समय अध्यासका अभिमान था. और न जागने पीछे वेसा है बलके अनिच्छित स्वाभाविक अवभास होता था. पीछे विलक्षण, माया वा अध्यासादिकी कल्पना करते हैं. जागने पीछे स्पष्ट जान पडता है कि स्वप्नसृष्टि स्वप्नकालमेंभी बाधरूप (अभावरूप) थी होने हुये नहीं के समान थी, वेसेही उसका तमाम व्यवहार बाधरूप था. इस कार्य व्याप्तिमे जान पडता है कि जेमे उक्त प्रकारका स्वप्न स्वाभाविक अवभास होता है वेसेही उसका मूल अव्यक्त-अध्यस्त होनेमे यह वर्तमान ब्रह्मांड है. जेसे स्वप्न और जाग्रतके पूर्व उत्तरकाल जान पडनेमें बाधरूप वर्तमान हैं वेमे सब

* दोनों किनारे जलने हुयी बनेठीको घुमावे तो अग्निका अटूट चक्र जान पडता है सो बाधरूप है नहीं है और है, जेसा भासता है इसलिये बाधरूप है.

कुछ बाधरूप है और स्वाभाविक अवभास है (विशेष वास्ते भ्रम नाशका उत्तरार्द्ध). जेसे स्वप्न वास्ते घटा है वेसेही नीलता वास्ते घटता है, 'न होके होते जेसी' वा 'होते नहीं जेसी है, अज्ञानादि दोषके विना सर्वको विषय होती है. अर्थात् अध्यासरूप नहीं, और अध्यास जेसी, देशकाल विना देशकालवाली, और गति परिणाम विना गति परिणामवाली जान पडती हैं, सू. ७९२ अनुसार अधिकारी स्वय विचार सकता है). उसका ऐसा स्वाभाविक अवभास है तो फेर उसका कारण (अव्यक्त) इससेभी ज्यादाअद्भुत् हो इसमे क्या आश्चर्य! इसलिये बाधरूप स्वाभाविक अवभास मान सकते है.

जेसे अकस्मात आकाशमे शब्द होता हो वोह ज्ञात अज्ञात है, ऐसे समचेतन कूटस्थ ज्ञान प्रकाशमे कोई गतिवानका भान होता है सो भी ज्ञात अज्ञात रूप है. और अनेक रूप धारण कर लेनेसे जान पडता है के वोह योग्यतावाली सस्कारी है तथा चेतन स्वप्रकाश स्वरूप है उसका बोह प्रकाश्य है. इतना अपरोक्ष हो जाता है. तथापि वोह गति वा गतिवान क्या? इसमें अनुभवी विद्वानोके मतभेद है, जेसाके मतभेदके हेतुमे आगे वाचोगे. सो पद्धति और कल्पना वा भावनाभी स्वाभाविक आभास है और ऐसे शका समाधान जान पडनाभी स्वाभाविक अवभास है. सक्षेपमे जितना कुछ मानना वा न मानना होना न होना सो सब स्वाभाविक अवभास है. (शं) जो स्वाभाविक है तो दो चद्र चार आखें क्यो न हो, उत्पत्ति नाश क्यो हो? दत कथा क्यो न मानें? (उ.) इस अनादि नैसर्गिक अवभासके अनादि नियम है जेसेके व्याप्ति परीक्षा विना दृत्थम भावमे न मानना ऐसा स्वाभाविक आभास है वेसे और भी स्वाभाविक नियम है (त्रिवाद याद करो) इसलिये सब व्यवस्था हो जाती है जीव इश्वर बध-मोक्ष मोक्षके साधन, धर्म, नीति, मर्यादा इत्यादि सबका अवभास स्वभावतः और स्वय होता है तथा चेतनमे स्वतोग्रह होता है उक्त स्वाभाविक अवभास (स्वभाववाद) जड स्वभाववाद, जडवाद, अभाववाद, अभिन्न निमित्त उपादान-वाद, अजातवाद, अनुपादानवाद, जेसा नहीं है किंतु स्वप्नसृष्टि वा नीलता जेसा सनियम स्वतः सिद्ध और स्वतोग्रह है अनिर्वचनीय है.

(शंका) स्वाभाविक अवभास होता है, ऐसा किसके उपदेशसे किसने जाना? (उ.) जिसमें स्वप्न स्वतोग्रह हुवा और जेसे प्रकारसे स्वतोग्रह हुवा वेसे बस और त्रिपुटी व्यवहार वास्ते नाम सज्ञाकी रीति जानेके लिये उपरोक्त अपरोक्षत्व व्यवहार याद करिये. अर्थात् ऐसा स्वाभाविक स्वय अवभास स्वतोग्रह है. इसके सिवाय

अन्यथा अन्यथा नैति नेति कहके चुप होना पडता है. ॥४८३॥

(शं.) क्या बाधवाद (अवभासवाद) सदोष नहीं? उसका खंडन नहीं हो सक्ता? (उ.) आगे जवाब बांचोगे.

मत और भेदका नमूना.

उपर उत्तर फिलोसोफीमें जितने आरोप किये हैं उनका नमूना लिखते हैं. ताके समझनेमें सुगमता हो. नीचेके दृष्टांत कल्पित हैं उनके सब भागका ग्रहण नहीं है किंतु समजोती वास्ते हैं.

(१) एक कागज (ब्रह्म वा शक्ति) को मोडमाडकरके हस्ती (जीव जगत) बनावें. फेर कागज कर लें. यह अविकृत परिणामवाद, एक ईश्वरवाद वा एक शक्तिवाद.

(२) एक कागज (विज्ञान) को मोडमाडके तीतरी रूप बनाके हवामें टांक दें तो वोह क्षण क्षणमें हवा (वासना) के बलसे फिरता उघडता रहेगा जैसेके दीपककी लो क्षण क्षणमें परिणामको पाती है. यह क्षणिकवाद.

(३) एक कागज (ब्रह्म) को सियाह (प्रकृति) करके उसको मोडमाडके हस्ती (जगत जीव) बनावे. यह अभिन्न निमित्तोपादानवाद (यथा मकडीसे जाला).

(४) कागज (ईश्वर) के एक भागमें स्याहिका सर्प (प्रकृतिजन्य सृष्टि) और उसी भागमें अनेक लालबिंदु (जीव) रख दें यह द्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत वा त्रिवाद.

(५) एक कागज (ब्रह्म) पर स्याही (शक्ति) के अनेक आकार (जगत नामरूप) बनावें तो नं. १ वाला शक्तिवाद.

(६) उदासीन (ईश्वर) बैठे हों अकस्मात अंदरमें एक तसवीर सामने हो जावे अथवा हमारे चितवन करने पर तसवीर (जीव जगत) बन जावे यह ईश्वर रचित अभाववाद. यहां यदि ईश्वरने अपनी शक्तिमेंसे बनाया तो संभव है. अन्यथा अभावसे भाव रूप होना असंभव है. व्याप्ति नही मिलती.*

अध्यस्तवाद.

(७) नाना विचित्र रंगका चश्मा लगाके एक शुद्ध कागज (ब्रह्म) को वा कांचके गोले (ब्रह्म) को देखें तो कागज वा गोला विचित्र रंगाकारवाला (संसाराकार)

* १ से ६ तक होना संभव वा असमीचीन है. इस निर्णयका यहा प्रसंग नहीं है.

ज्ञात होगा, ब्रह्म व्यापक है वहां अन्य नहीं. इसलिये वोह चशमा अज्ञान है यहां कागज वा गोला शुद्ध (ब्रह्म) है उसमें ब्रह्मकी अतद्बुद्धि भ्रम है याने ज्ञानाध्यास है, अर्थाध्यास नहीं. यह भ्रमवाद है.

(८) एक कागज पर ऐसी लकीर करें कि जिससे लकीरके अंदर वाले कागजका भाग भूरे (श्वेत) सर्प (वा हाथी वा नगर) के आकाररूप जान पडे. इस कागजको धूपमें रखके त्राटक करें पीछे तुरत किसी दूसरे सफेद कागज पर दृष्टि डालें तो उस कागज पर भूरा सर्प (वा हाथी वगेरे) ज्ञात होगा. यह विवर्त्तोपादानवाद (मायावाद) का नमूना है. (पहेले कागजको छोडके समझो.)

समझूती—दूसरा कागज ब्रह्म है, उसमें सर्पादिका आकार कुछभी नहीं है परंतु जान पडा है. जो जान पडा है वोह दर असल चक्षुमें है (किरणोंसे बना है) माया बलसे कागजमें जान पडता है. यदि उसको अंगली लगावें तो कागजको लगी है, नहीं के भूरे सर्पको. × चक्षुगत किरणें माया हैं. कागजगत् भूरा सर्प उसकी काली लकीर मायाके परिणाम हैं और कागजके विवर्त्त हैं कागज भूरे सर्प (नामरूप जगत्) का विवर्त्तोपादान कारण है कारण के वहां सर्प नहीं तो भी कागज अपने स्वरूपको न छोडके अन्यथा याने सर्परूप भासता है. कागज न होता तो सर्पाकार न होता. यहां सर्पकी अस्ति भाति कुछ जुदा नहीं है. कागजकी अस्ति भाति ही सर्प है परंतु आकार (लकीर) और सर्प यह नाम माया वृत्तिके हैं. कागजगत् जो लकीर वा जिस करके लकीरका कागजमें आभास है वोह (किरण) माया. कागज (ब्रह्म) की उपाधि है. लकीरके अंदरवाला कागज उपहित (साक्षी चेतन) है वही भूरा सर्परूप भासता है. यही जीव है. इसीमें सर्पवत् कर्तृत्व भोक्तृत्व, बंध मोक्ष माया करके भासता है. वस्तुतः सर्पवत् जीवत्वादि उसमें नहीं हैं, शुद्ध है. जो उक्त उपाधि काली लकीरकी निवृत्ति हो तो पूर्ववत् शुद्धही है वहां सर्प पहेलेभी नहीं था परंतु उपाधिसे कल्पनामात्र था जब लकीरनामा अध्यस्तकी निवृत्ति हुई तो उसका अधिष्ठानही शेष है. उस लकीरका अत्यंताभाव है.

जहां वर्णाश्रम व्यवहार वा बंध मोक्ष और शास्त्र उपदेश निवाहना होता है वहां उपहितकी जगे विलक्षणवादके समान विशिष्टवाद लेना पडता है यहां दृष्टांतमें तो चक्षुगत किरणका भेद है, परंतु दार्ष्टांतमें ब्रह्म व्यापक है अतः माया वृत्तिका भेद नहीं

× शोधक ! यह बात ध्यानमें रहे. और इस सर्पकी व्यवस्था वर्णनमें मतभेद है यहभी ध्यानमें रहे.

बनता इसलिये मायाको विशेषन और चेतनको विशेष्य कहना पडा है. अर्थात् अंतःकरण वा अविद्याविशिष्ट जो चेतन सो कर्ता भोक्ता माना पडता है. और अनिर्वचनीय तादात्म्य वश अन्यके धर्मका अन्यमे अध्यास है एवं अन्योऽन्याध्यास माना है. इस पक्षमें ज्ञान अध्यास और अर्थाध्यास दोनों हैं.

वोह काली लकीर वा किरण क्या? अधिष्ठानमे विषम सत्तावाली अनिर्वचनीय माया अविद्या. नही के किरणही, वा कुछभी नहीं ऐसाभी नही.

कागज (ब्रह्म) सर्प नही तोभी सर्पवत भासता है और उसकी निवृत्ति होती है इसलिये तथा तादात्म्य संबंधसे परस्पराध्यास है इसलिये और कागजके स्वरूपका विशेष ज्ञान न होनेसे सर्पका *अध्यास है इसलिये इसी प्रकारको अध्यासवाद कहते हैं.*

माया अनादिसे है. अतः जीवत्व सृष्टित्व-अनादिसे है. और अज्ञानकृत अध्यास अनादिसे है. ||

(९) एक कागज पर स्याहीका सर्प वा हाथी बनावें जिसके चारों तरफ कागज हो. उसको धूपमें रखके त्राटक करें और तरत दूसरे सफेद शुद्ध कागज पर दृष्टि डालें तो इस दूसरे कागज पर सर्प वा हाथी जान पडेगा. यह विलक्षणवाद. पहेले कागजको छोडके समझोति.

दूसरा कागज ब्रह्म है. उसमें सर्पका आकार नहीं है परंतु जान पडता है. जो जान पडा वोह दर असल चक्षुमें है माया बलसे कागजमें जान पडता है. जो उस सर्पको हाथ लगावें तो कागज स्पर्श होता है नहीं के कोई काला सर्प. * इस प्रकार वोह सर्प, अस्पर्श रूपसे रहता है इसलिये उतना कागज उपहित साक्षीरूप है. चक्षुगत किरणें अव्यक्त काला सर्प उसका परिणाम. कागज और सर्प उभय विशिष्ट हैं कैसे? अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध होनेसे विशिष्ट हैं. यहा कागजसे भिन्न सर्पकी अस्ति भाति नहीं है सर्पाकार और नाम यह अव्यक्त—विलक्षण वृत्तिके परिणाम हैं. अवभासरूप जो सर्प वा जिसका परिणाम सर्प है सो कागजकी उपाधिभी है और विशेषणभी है. बंध मोक्षादि इसी विलक्षणवृत्तिके परिणाम हैं. चेतनमें भासने है परंतु वस्तुतः चेतन (कागज) में नहीं है. चेतन तो पूर्ववत शुद्ध है. जब उस सर्पकी वहांसे निवृत्ति हुई तो शेष अधिष्ठान रहता है. सर्प छिन भिन्न

---

* शोधक। इस लक्षको ध्यानमें रहे और इस दृश्य सर्पको व्यवस्था वर्णनमें मतभेद है यह भी ध्यानमें रहे विलक्षणवादगत यह रहस्य है.

हुवा अपने अव्यक्त उपादानमें लय हो जाता है. दृष्टांतमें चक्षु और कागजका भेद है. परंतु दार्ष्टांतमें ऐसा नही मान सकते क्योंकि ब्रह्म सर्वत्र है. अतः सर्प और कागजका अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध है. तहां विलक्षणा वृत्ति (सर्प, अंतः करण) विशेषण है. चेतन विशेष्य है, उभय विशिष्टकी जीव संज्ञा है. यह व्यवहारदृष्टिसे है कारण के अतःकरण जहां जहां जाय वहां चेतन है परंतु प्रदेशका अंतर है, याने आकाश परमाणुवत् अंतःकरणका अनेक प्रदेशोंसे संबंध होता है अतः चेतन कर्ता भोक्ता नही किंतु कर्तृत्व भोक्तृत्वका हेतु कह सकते हैं. उभयके संबंध होनेमे अन्यके धर्मका अन्यमें अध्यास है इसलियेचेतनमें कर्तृत्व भोक्तृत्वका अध्यास होता है, जहां जहां अंतःकरण जाता है वहां वहां चेतनका उपयोग होता है. अन्योऽन्याध्यास यहभी जीववृत्तिकी मान्यता है.

वोह काला सर्प और उक्त किरण क्या? अधिष्ठानरूप सद्ब्रह्मसे विलक्षण सत्तावाली भावरूप अनिर्वचनीया कुछ है. जिसको मायाभी कहते हैं विलक्षणवाद उसको सद्ब्रह्मसे विलक्षण इतनाही कहता है, उसकी परिभाषामें अध्यस्त, विलक्षणा वा प्रकाश्य संज्ञा है. स्वप्नसृष्टिका उपादान और मनका उपादान जो है सो वही है. सो सादि सांत वा अनादि सांत वा सादि अनंत नहीं है किंतु स्वरूपसे अनादि अनंत और उसके परिणाम सादि सांत परंतु उनका प्रवाह रहनेसे वे प्रवाहसे अनादि अनंत हैं. तथापि परिणाम प्रतीतकालमें है, अप्रतीत कालमे नहीं, परंतु उनका मूल अनिर्वचनीय अव्यक्त अधिष्ठानमें लयरूप हो जाता है. जेसे स्वप्नसृष्टिकी उत्पत्ति और अभाव तथा उसके उपादानका अधिष्ठानमें लय हो जाना. इस मंतव्य वा भावनाका नाम विलक्षणवाद स्वाश्रयविषयवाद भी कहते हैं. क्योंकि अधिष्ठानसे विलक्षण होनेसे अध्यस्तका नाम विलक्षण है और जेसे धुवां आकाशके आश्रय रहके वा नीलता आकाशके आश्रय रहके आकाशकोही विषय याने आवृत्त करते हैं और तमाम व्यवहार विलक्षणासे होता है.

संसर्गाध्यास प्रसिद्ध है, सत्र अध्यस्तवादीको मानना पडता है और वोह दोके विना नहीं होता. इस दोष निवारणार्थ सर्व स्वप्नसृष्टिवत् कहा जाता है. त्रिपुटी मात्र इसमें है. ब्रह्मकी जिज्ञासा भी इसीके अंतरगत् है. साधन और मोक्षभी इसीके अंदर है. एसी सृष्टिओंका प्रवाह है. और वे संस्कारी विलक्षणाके परिणाम हैं.

(१०) विलक्षणवादमें जिसे दूसरे कागजका सर्प कहा है वैसे सर्प कागज पर इधर उधर घुमने फिरते उत्पन्न होने नष्ट होके परिवर्तनको पाते रहते हों, इस

मतव्यका नाम जीववाद है. याने विलक्षणा ब्रह्ममें अस्पर्श (अध्यस्त) ऐसी परिणामको पाती रहती है यथा स्वप्न सुषुप्ति जाग्रत स्वरूप इत्यादि याने सृष्टि प्रवाहसे अनादि अनंत है मूल व्यक्त अव्यक्तरूपा है. जैसे आकाशमें बादलोंका नाटक अनेक रूपका होना है और लय हो जाता है वैसे तमाम त्रिपुटी व्यवहार इस नाटकके अंदर है ऐसा जानना चाहिये. इसमें विवर्त्त उपादान और अध्यासवादका अस्वीकार है विलक्षणवाद इसीका रूपांतर है.

(११) एक ताव छापका फुलस्केप कागज लेके धूपमेंसे उस देखें तो उसमें छाप अक्षर जान पड़ेंगे उसपर उसी प्रकार (धूपमें चश्मे समान) नाटक करें, फेर कोई शुद्ध साफ श्वेत कागजको चश्मे समान आगे आगे रखके धूपमें देखें तो वैसे नाम छाप इस कागजमें मालुम होंगे यह बाधवाद वा स्वाभाविक अवभासका नमूना है.

यहां जैसे आकाशमें नीलताका स्वाभाविक अस्पर्श अवभास वा बाधरूप अवभास है ऐसे ही उस दूसरे कागजमें कुछभी नहीं है तोभी छाप नाम रूपसे उसमें प्रतीत हो, ऐसा स्वाभाविक है और वे प्रतीत होनेभी नहीं जैसे हैं अतः बाधवाद है. यहां कागज ब्रह्म है नाम छाप बाधरूप अवभास है. वे गति रहित हैं और कागज जैसे स्पर्श नहीं करके प्रतीत होते हैं ऐसी अद्भुतता है जैसेकि आकाशकी नीलता *

---

* दूसरा नमूना—

(१) आकाशही नीलरूप परिणाम और नाना रूप बादल परिणाम धरता है, (व्यापकमें क्षणिकत्व असंभव) (२) तद्गत अविकृत परिणामवाद असंभव. (३) आका-शमें बादलके आकारमें नीला हाथी यह अभिन्न निमित्तोपादानवाद है. (४) जो आकाशमें बादलकाही हाथी तो द्वैतवाद. (५) आकाश नील रूपमें भासता है यह नीलास उसकी शक्ति है यह शक्तिवाद (६) आकाशमें अकस्मात (न थे और हुये) बादलाकार हुये यह ईश्वर रचित अभाववाद है (परंतु असंभव है) तो ईश्वरकी शक्ति नीलताका उसमेंसे नाम रूप बने वा बनाये तो संभव है (७) आकाश नीला नहीं और नीलता नहीं तोभी आकाश नीला भासना भ्रमवाद (८) आकाशमें नीलताका दर्शन अध्यासवाद है (९) नीला आकाश याने नीलता नहीं है किंतु आकाशही है यह विवर्त्तोपादानवाद (१०) सद् आकाशमें नीलता विलक्षण यह विलक्षणवाद है (११) आकाश और नीलता दोनो लय होना दीखना न दीखना जीववाद (१२) आकाश नीला याने नीला स्वरूपतः नहीं, परंतु नीला भासे ऐसा स्वाभाविक है. यह बाधवाद है. ॥

उपर जितने अध्यस्तवादके नमूने है उनमें जरा जरा कथन मात्र भेद है. मरुमें जलभ्रान्ति और आकाशकी नीलता यह उभय उदाहरण व्यवहार परमार्थके निर्वाहक है. रज्जु सर्पादिका उदाहरण विवादित है. अधिकारीको जो अनुकूल पडे याने जिस प्रथी भंग बाद जिस थीयरीसे शांति और उत्साह (परोपकार–परमेश्वरस्मरण वा स्वानंद) मिले सोही ग्राह्य है. हमको किसी प्रकारमेंभी त्याग वा ग्रहणका आग्रह नहीं है क्योंकि लक्ष्य सबका एकही है. इन चार सिद्धांतकी एकवाक्यता जो कर लेता है वोह खरा अनुभवी है वे चार यह है (१) मरुमें बोह, (२) मन उसमें, (३) सब उसमें (४) अस्ति भातीरूप सब वही ॥

इन चारोंकी एकवाक्यताका अनुभवी अपने अंगोंका उपकारी हो जाता है और निर्भ्रांत हर्ष शोक राग द्वेष रहित आनंदी–शांत होता है.

सूचना.

अधिकारीके अधिकारानुसार कोई प्रकारका अध्यारोप करके येन केन प्रकारसे लक्ष्यपर पहोंचाना दूसरी बात है. परंतु जिस समय शोधकको अध्यस्त (अधरबंध) वादकी परीक्षा करनी पडे तो कमसे कम नीचेकी बातको सामने अवश्य रखे वरनह भूल खानेकी संभावना रहती है.

(१) स्वरूपका प्रवेश (२) परिच्छिन्न गतिमानका पर रहित पूर्ण समचेतनाधार (३) निष्फल वस्तु नहीं होती. (४) ज्ञान स्वरूप ब्रह्मको अज्ञान, मायाका आवरण, भ्रम, अध्यास और स्वरूप विस्मरण, असंभव (५) ब्रह्म सावयव सक्रिय नहीं हो सकता (६) अभावसे भावरूप नहीं होता (७) तत्त्वका अपनेमे अपना संयोग नहीं होता (८) अपना अपनेमें उपयोग नहीं होता (९) अनादि वस्तु अनंतही होती है. (१०) अवस्था सादि सांतही होती हैं. (११) अनादि सांत और सादि अनंत नहीं होता. (१२) हरकोई मूल वस्तु अणु वा विभु होगी. और मध्यम जन्य होगी. (१३) ज्ञानको ज्ञान, ज्ञानमें ज्ञान, ज्ञानका ज्ञान, अध्यासको* अध्यास, जडको अध्यास, भ्रमको भ्रम, जडको भ्रम, देशका देश, देशको देश, देशमे देश, गुणका गुण, गुणमे गुण, गुणको गुण, शक्तिकी शक्ति, शक्तिको शक्ति, शक्तिमे शक्ति, नहीं होता. (१४) द्रष्टादि दृश्यादि जुदा जुदा होते हैं. (१५) अन हुईकी प्रतीति नहा होती

*अध्यास और भ्रम प्रसंगमें इस नियमके विरुद्ध जान पडे, तो वहा विवेक कर्तव्य है

पक्षविवेक.

वेदांतके अद्वैतवादमें ४० से ज्यादा पक्ष देखनेमें आ चुके हैं, परंतु एक अंश सबका एक सिद्धांत (लक्ष्य) हैं. वोह यह के "ब्रह्म सत्यं जग विलक्षण." अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत अनिर्वचनीय है. यूं भी कहते हैं कि "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या."* और कूटस्थात्मा (प्रत्यगात्मा-जीवात्मा) तथा ब्रह्मका भेद नहीं है अर्थात् चेतन वस्तु एक अद्वितीय ब्रह्म है. उससे इतर कोई सत चित रूप नहीं है. जीव ब्रह्मकी एकता कोई समानाधिकरण, कोई बाध समानाधिकरण, कोई भाग त्याग विना, कोई भाग त्याग द्वारा करता है; कोई एकताका बोध नहीं करता. कोई एकताके ज्ञानसे मोक्ष मानता है. कोई बंध मोक्षको नहीं स्वीकारता. अज्ञान, अध्यास भ्रम प्रसंग याने जगतके स्वरूपमेंभी अनेक पक्ष हैं परंतु सद ब्रह्मसे विलक्षण (अनिर्वचनीय) ऐसा सब मानते हैं. कोई जीवको अनादि सांत, कोई सादि सांत, कोई प्रवाहसे अनादि अनंत कहके व्यवस्था करता है. कोई एक जीववाद, कोई नाना जीववाद, कोई एकेश्वरवाद कोई नाना ईश्वरवाद, कोई एक सृष्टि, कोई जीव प्रति भिन्न भिन्न सृष्टि मानता है; कोई उच्छेदवाद, कोई आभासवाद, कोई प्रतिबिंबवाद, कोई विशिष्टवाद, कोई उपहितवाद, कोई सृष्टि दृष्टिवाद, कोई स्वाश्रय विषयवाद, दृष्टि सृष्टिवाद मानता है; कोई अभिन्न निमित्तोपादान मानता है. उनकी सब प्रक्रियाओंमें विवाद खंडन मंडन है. परंतु उक्त सिद्धांत (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या) सबका समान है. सबके बयान वास्ते दूसरा ग्रंथ चाहिये. अतः यहां संक्षेपसे वोह प्रकार लिखेंगे. जिसका परिणाम उनका मुख्य सिद्धांत निकले.-

समष्टि व्यष्टि विवेक.

(१) इस प्रसंगमें वेदांत शैलीसे कितनेक पदार्थोंके लक्षण जाननेकी अपेक्षा है. उसमेंसे माया, आकार, विशिष्ट, उपहित, विशेषण विशेष्य, विवर्त्त, विवर्त्तोपादान, विलक्षण, अनिर्वचनीय, अज्ञान, भ्रम, अध्यास होनेकी सामग्री, अविद्या, अंतःकरण, आभास प्रतिबिंब इनके लक्षण जहां जहां लिखे हैं वे ध्यानमें लीजे.

(२) जितना देशकाल चाहिये उतने देशकाल विना याने योग्य सामग्री रहित जो जान पडे सो मिथ्या. वा सतसे विलक्षण सो विलक्षण.

---

*असत् कोई वस्तु नहीं होती अतः मिथ्याका अर्थ असत् नहीं किंतु स्वप्नवत् अर्थात् सतसे विलक्षण, (नहीं के झूठ वा छल) इसी वास्ते ब्रह्म सत्य जग विलक्षणकी एकवाक्यता है

(३) सजातीय विजातीय और स्वगत भेद रहित हो सो अर्थात् अद्वितीय ब्रह्म. जिसके जेसा वा उससे उत्तम कोई न हो और स्वगत भेद रहित (निरवयव) हो सो अर्थात् ब्रह्म-ईश्वर. जिसके जेसा सतरूप सजातीय, सतरूप विजातीय और जिसमें सतरूपमे स्वगत भेद न हो सो अर्थात् अद्वितीय सद ब्रह्म॥

(४) एकसे इतर अनेक सम सत्तावाले अबाधित हों ऐसा मानना द्वैतवाद. यथा प्रकृति पुरुष वा जीव प्रकृति ईश्वर वा अनेक परमाणु इत्यादि मानना.

अब आगे एक ब्रह्मवाद (समष्टि) दूसरा जीववाद (अनेक व्यष्टि) की दृष्टिसे विवेक होगा.

ब्रह्मके अज्ञानका विवेक.

'मैं नहीं जानता' इस प्रतीतिका विषय अज्ञान भावरूप वा अनिर्वचनीय वस्तु है. उसमें आवरण, विक्षेप यह दो शक्ति होते हैं (यथा ब्रह्म नहीं, नही जान पडता, जगत है, जगत जान पडता है, ऐसे उसके ४ भेद हैं) उसीको उपादान दृष्टिसे मायाभी कहते हैं. बाध हो जानेसे अविद्याभी कहते हैं॥ ऐसा मंतव्य निर्दोष नहीं होता. कारण के (१) ब्रह्म ज्ञानस्वरूप होनेसे और अज्ञानसे अलग रहके उसका प्रकाशक होनेसे उसको अपने स्वरूपका सामान्य ज्ञान और विशेष अज्ञान कहना वा मानना प्रकाशमें तम बताने वा प्रकाशको तम बताने समान है (२) अब यदि २ मिनीट वास्ते आग्रहवश मानभी लेवें तो आजतक ब्रह्मको स्वरूप ज्ञान न हुवा एसा स्वीकारना होगा. क्योंकि जो ज्ञान हो जाता तो अज्ञान, उसमें जो अनादि संस्काराभ्यास उस संस्कारानुसार उसका कार्य जो अविद्या नाम रूप परिणाम यह सब अर्थात् अज्ञान और उसका कार्य प्रपंच-बंध प्रतीत न होता. कोई विवाद, वक्ता वा मंता न होता. कारण के ब्रह्म स्वरूपसे निरवयव एक व्यक्ति मात्र है उसके अज्ञानाभावसे समष्टि प्रपंचका बाध होनाही चाहिये. जेसे एक व्यष्टिको रज्जु वा रज्जु उपहित चेतनके ज्ञानसे उसका अज्ञान और उस अज्ञानका कार्य भ्रमरूप सर्प नष्ट हो जाता है. फेर नही भासता वेसे. अथवा जेसे स्वप्नवाला सिंहके दर्शनसे उस सिंह सहित स्वप्नसृष्टि उड जाती है कहींभी नही होती वेसे, परंतु आजतक जगत तो पूर्ववत् चला आ रहा है. इसलिये यह मानना पडेगा कि यातो ब्रह्मका अज्ञान अनादि अनंत है उसकी उत्पत्ति नहीं है इसलिये उसका नाशभी नही होना चाहिये. क्योंकि अनादि वस्तु अनंतही होती है और वस्तुओंकी संबंधासंबंधरूप अवस्था सादि सांत होती है, अथवा तो यह मानना होगा कि ब्रह्मको अपने स्वरूपाज्ञान करके नाम रूप (प्रपंच) का

अध्यास नहीं है अथवा अज्ञान करके नाम रूप भासते हैं ऐसा नहीं है. किंतु अज्ञान विना अनादिसे हैं और प्रवाहमे अनंत रहेंगे. (यहां उपरोक्त भ्रमका अपवाद याद कीजिये).

अज्ञानके निषेधसे अध्यास, भ्रम और भूलकाभी निषेध हो गया. तथा भूलना उसे कहते हैं कि जिसका पूर्वमें ज्ञान हो. अतः भूलको अनादि नहीं कह सकते. अब यदि भूला हो तो पुनः भूलेगा यह सहेज सिद्ध है. इस प्रकार अज्ञानादि मान्ना समीचीन नहीं.

जीवाज्ञानका विवेक.

ब्रह्माश्रित मूल अज्ञान वा मायाके आवरण विक्षेपांशसे नाम रूप जगत बनता है. *इस माया अंश अविद्योपहित जो साक्षी चेतन (प्रत्यगात्मा) उसको स्वस्वरूप (ब्रह्मरूप)* के अज्ञानसे जगत भासता है. और ब्रह्म अन्यथा भासता है अथवा अविद्या विशिष्ट जो चेतन उसको अथवा अंतःकरण चेतन या अंतःकरण विशिष्ट चेतन जीव वा साधिष्ठान साभास अंतःकरण चेतन या अंतःकरण अवच्छिन्न चेतनको स्वस्वरूप (प्रत्यगात्मा वा जीवगत् चेतन ब्रह्म स्वरूप) के अज्ञानसे वा ब्रह्मके अज्ञानसे वा जीव ब्रह्मको भेद मान्नेसे यह जगत (बंध) भासता है, और ब्रह्म अन्यथा भासता है. जेसेके रज्जुके वा रज्जु उपहित चेतनके अज्ञानसे सर्प भासता है—रज्जु अन्यथा भासती है, वेसे. (अज्ञानादि अध्यासकी सामग्रीका बयान उपर आ चुका है उसे यहां लगा लेना चाहिये) जब पूर्वोक्त स्वस्वरूपादिका ज्ञान हो जाता है तब अज्ञान और उसके संस्कार उसका अंश संस्कारी अविद्या तथा तदजन्य नाम रूपात्मक प्रपंचाध्यास और आत्मा अनात्माका जो परस्परमें अन्योऽन्याध्यास हो रहा था यह सब निवृत्त हो जाता है. जेसे के रज्जु उपहित चेतनके ज्ञानसे रज्जु आदिके अज्ञान और संस्कारजन्य अविद्याका परिणाम जो सर्प उसकी निवृत्ति हो जाती है वेसे. इस प्रकार नाना अनादि जीव, ज्ञानसे मोक्ष पाते हैं याने उनको जो बंधादिकी भ्रांति थी सो निवृत्त हो जाती है, फेर उनको जन्म मरण न होगा, अमृतत्त्वको पाते हैं. प्राप्तकी प्राप्ति होती है. मुक्त हुवा मुक्त होता है सार यह के आत्मामे जो बंधादिकी भ्रांति सो जाती रहती है. प्रारब्ध शेष याने अविद्यालेश भोगके शुद्ध मुक्त स्वरूप हो जाते हैं. जो ऐसा मानें तोभी निर्दोष सिद्धांत नहीं होता विचारो.

(२) अविद्यादि विशिष्ट जीव एक ब्रह्म प्रदेशको छोडके दूसरे प्रदेशमें जावे तो पहेला चेतन भाग निरुपाध (विष रूपी भ्रमभावना रहित) दूसरा चेतन प्रदेश

सेोपाध (भ्रम भावनावाला विपरूप भ्रम याने अपनेको जीव कर्त्ता भोक्ता बंध मानने-वाला) होगा पुनः ग पहेले प्रदेशमे आवे तो वही पुनः सेोपाध हो जायगा. तद्वत् क मुक्त जीव जहा जहा जायगा उन प्रदेशोमे बंध मोक्ष वा उपाध निरपाधपना होता रहेगा. इस प्रकार चेतन कभीभी निरुपाध (भ्रम-अज्ञान-माया रहित) न होगा न हुवा और न है. अंत.करण आभास तो उत्तर परिणाम है अतः तद्विशिष्ट चेतन जीव तो अनादि नहीं ठेर सक्ता किंतु प्रवाहमे अनादि अनंत ठेरेगा. रहा अविद्या अंश उसके आवागमनसे पूर्वोक्त दोप. और वोह नाशमी हो तो शेप जीवोकी उपाधि रहेहीगी. जब सर्व अविद्या माया नष्ट होगी उस रोज ब्रह्म वा प्रत्यगात्मा निरुपाध होगा उस पीछे ब्रह्म निरुपयोगी हो जायगा परंतु निष्फलत्वका अभाव है. अतः साक्षीकी उपाधिको अनादि अनंत याने मायाको अनादि अनत और अविद्या वा अतःकरणको प्रवाहसे अनादि अनंत मानना पडेगा. औरभी आजतकमे कितनेही मुक्त हुये सुनते है परंतु ब्रह्मका कोई प्रदेश निरपाधि सिद्ध नही होता. तथाहि अविद्या वा अंतःकरणरूप नाम रूपकी निवृत्ति हुई है. कोई बध था सो मोक्ष हुवा, ऐसा नही मानना है; ईसलियेभी जीवकी अविद्या वा अज्ञानकी निवृत्तिसे प्रपचका बाध नही मान सकते. वर्तनमानमें क. ख. दो जीव हैं, दृश्य सूर्य और आकाश एक है. यह किसकी भ्रांतिके विषय यह नही कह सकेगे. क्योकि एक के मुक्त वा अभाव हुये सूर्य आकाशकी निवृत्ति नही होती. जो दोनोमे इतरका कल्पित है तो ज्ञानी जीवको ज्ञान होनेसे इनकी निवृत्ति नही होती और न हुई है. इसलिये जीवको ज्ञान होने पर प्रपचकी निवृत्ति न होनेमे अज्ञानजन्य वा अध्यासरूप नही मान सक्ते.

अलबत्ते ऐसा स्पष्ट देखनेमे आता है कि जिसको अध्यात्मशास्त्र (तत्त्व फिलो-सोफी) का स्पर्श (संस्कार) हुवा है जीव ब्रह्मके स्वरूपका अनुभव वा चिदचिद्के विवेक का अनुभव हो गया है उस जीव वृत्तिको जेसे ज्ञानसे पूर्व यह दृश्य जान पडता था, वेसा नही जान पडता किंतु जेसा स्वप्नसृष्टि कालमे स्वप्न प्रपच भासता है उसमे अन्य था जाग्रतमे जान पडता है. इन उभय दृष्टिमें जितना अंतर है उतना अतर ज्ञानवानकी दृष्टिमे हो जाता है अर्थात् बाधरूप जान पडता है. उसे राग द्वेप हर्ष शोकादि नही होते, क्योकि उसे कोई प्रकारकी कामना वासना नही होती. मानो एक प्रकारका नवीन जीवन प्राप्त होता है. अदृष्टोको शांतिसे काटता है क्योकि मुक्त हुवा मुक्त होता है कर्तव्य शेप नही रहता. अहता ममताका स्वप्नभी नही होता. इत्यादि फल

अवश्य मिलते हैं. और जो अभ्यासबलसे आगे (पंचमादि भूमिका) बढा तो विशेष सुखको अनुभवता है. परंतु उसके उत्तरकालमें समस्त प्रपंचकी निवृत्ति होनी हो ऐसा तो नहीं होता. सार यह आया कि उक्त जीव अनादि न होनेसे अनंतभी नहीं और इसलिये उसका अज्ञानभी अनादि अनंत नहीं अथवा प्रवाहसे अनादि अनंत हो क्योंकि अविद्याभी मायाका उत्तर अंश (परिणाम) है, अनादि नहीं और अध्यात्मविद्या सर्वोत्तम विद्या है.

(शं.) ब्रह्म वा जीवको अज्ञान है, वोह अपने स्वरूपको भूल गया है, उसे भ्रम है, जीव नाना हैं, बंध मोक्ष हैं, देश काल हैं, दृश्य गतिमान हैं. त्रिपुटीका व्यवहार है, अध्यात्म शास्त्र मुक्तिका हेतु है इत्यादि सब स्वप्न समान (विलक्षण परिणाम) कथन मात्र हैं. अनिर्वचनीय मायाके कल्पित वा उसके परिणाम वा उस करके अनहुये प्रतीत मात्र हैं. जो अज्ञानादिका आरोप किया जाता है, वोह जिज्ञासुओंके बोध करनेवास्ते शैली कल्पी गई है. सारांश परमार्थतः कुछभी नहीं है. इसलिये तुम्हारा अपवादभी वैसा होनेसे हमारे सिद्धांतकी हानी नहीं है (उ) जहां तक पक्षका आग्रह है. वहां तक आपका समाधान बूरके लड्डू समान है. जो ऐसा नहीं तो हमकोभी उपेक्षा है. चुप होके शांति और मर्यादित स्वतंत्रता भोगो. बाध रूपसे परके उपयोगमें आवो. और जो इसमें संशय वा विपरीत भावना हो तो आपका कथन कपोलकल्पना है.

ब्रह्ममायाका विवेक.

ब्रह्म निरवयव अपरिणामी समचेतन शुद्धाद्वैत वा केवल्याद्वैत रूप है उसमें इतर यहां कुछभी नहीं है. परंतु अपने स्वरूपको न छोडके अन्यथा भासता है सोही (नाम रूपात्मक) दृश्य है.* जैसे कनक कुंडलरूप, मृतिका घटरूप और रज्जु सर्परूपसे भासते हैं वैसे. (शं) ब्रह्मसे इतर कोई दृष्टा जाता ज्ञेता नहीं है तो किसको भासता है (उ.) ब्रह्मकोही. (शं.) क्यो? (उ.) स्वस्वरूपाज्ञानजन्य भ्रम वा माया उपाधि करके. अर्थात् ब्रह्मसे इतर दृश्य प्रपंच (देशकाल क्रिया त्रिपुटी) स्वरूपतः कोई वस्तु नहीं है परंतु यह अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास* है. (शं.) अध्यास किसको? (उ.) ब्रह्मको.

अधिष्ठानसे विषम सत्तावाला अन्यथा स्वरूप विवर्त्त (भ्रम अध्यास) कहाता है (यथा रज्जुका जो सर्प है सो) और स्वस्वरूपको न छोडके जो अन्यथा भासे सो विवर्त्त

* शारीरिक भूमिका

उपादान रहता है (जैसे सोना कुण्डलका, रज्जु सर्पका). उक्त उपाधि याने माया वा अज्ञान अधिष्ठानके ज्ञानसे निवृत्त (बाध) हो जाती है इसलिये अनादि सांत है क्योंकि उसकी अनुत्पत्ति है इस वास्ते अनादि और ज्ञान होनेसे निवृत्ति शेष अधिष्ठान होता है इसलिये उसे सांत कहते हैं.

जैसे रज्जुसर्पमें अस्ति भाति रज्जुकीही है (रज्जुके बिना वहां अन्य क्या है? कुछ नहीं) और रज्जुके बिना सर्प भाव वा सर्पाकारकी अनुत्पत्ति है इसलिये रज्जु विवर्त्तोपादान है. और सर्प नाम और आकार (सर्पाकार) यह नाम रूप अविद्या (मायारा) के है याने अविद्या मात्र है, ऐसेही यह तमाम प्रपंच ब्रह्म स्वरूप है और ब्रह्मका विवर्त्त है. तहां अस्ति भाति ब्रह्मका स्वरूप है, और नाम रूप विवर्त्त मात्र है.

(शं.) वोह उपाधि याने माया क्या? (उ.) अनिर्वचनीया (सदसदसे विलक्षण) भावरूपा बाधरूपा, ब्रह्मसे विलक्षण, मन बुद्धि उसके कार्य होनेसे उसके स्वरूप संबंधमें कुछ नही कह सकते. हां, कार्यदृष्टिसे उसके अनेक नाम बुद्धिवृत्तिने कल्प लिये है यथा अज्ञान, माया, अव्यक्त, मूला, प्रकृति, परिणामनि, योनी, तला, तुच्छा, सत्ता, शक्ति, अव्याकृत इत्यादि.

(शं.) अध्यास होनेकी सामग्री क्या? (उ.) अध्यास प्रवाहतः अनादिरूप होनेसे यह शंका व्यर्थ है. यथा नभ नीलरूपसे भासता है इसमें कोई सामग्री नही. (शं.) माया माया रूपसे भासती है वा अन्यथा? (उ.) अन्यथा रूपसे. यथा सत् नहीं और सत् रूपसे, परिणामी नहीं और परिणाम रूपसे नाम रूप देशकालवाली नहीं और नाम रूप देशकाल रूपमे. (शं.) माया अध्यास रूप वा अध्यासका कारण? (उ.) अध्यासका कारण वा उपाधि. (शं.) उसका बाध होता है वा नही? (उ.) ब्रह्म ज्ञान (स्वरूप ज्ञान) मे उसका बाध हो जाता है. ॥

अब इस मंतव्यको समष्टि याने ब्रह्म दृष्टिसे विचारनेका है के ज्ञान स्वरूप ब्रह्म, माया बलसे अपने स्वरूपको अन्यथा याने जगत–नाम रूप आत्मक देखे यह कैसा आश्चर्य? ज्ञान स्वरूपको अज्ञान कहना कल्पना मात्र है और मान लो याने ऐसाही है तोभी दोष आता है. अर्थात् आजतक ब्रह्मको स्वरूप ज्ञान न होनेसे उपरोक्त "ब्रह्म अज्ञानका विवेक" इस प्रसंग गत न. २ वाले दोष आवेंगे. उसका परिणाम यह आवेगा कि माया अनादि अनंत है, संस्कारी न होनेसे ब्रह्मको अध्यास नही हो सकता, अध्यासी–भ्रांतका अभाव होनेसे माया अध्यासरूप नही इसलिये उसके परिणाम नाम रूपभी अध्यासरूप नहीं किंतु आकार (नाम रूप) प्रवाहसे अनादि

अनंत हैं और माया स्वरूपसे अनादि अनंत है. क्योंकि अध्यास वा भ्रम जो है सो अध्यास वा भ्रम कालमें अध्यास वा भ्रम रूपसे विषय नहीं होता अतः निवृत्ति पूर्व उसको अध्यास नहीं कहा जाता. आजतक माया और उसके नाम रूप ब्रह्मरूप अधिष्ठानमेंसे निवृत्त नहीं हुई अतः अध्यास रूप नहीं. अनात्मा (माया और उसके परिणाम अंतःकरणादि) और आत्माका अन्योऽन्य अध्यास होना यह दूसरी बात है. सारांश माया और उसके नाम रूप अध्यासरूप नहीं हैं और माया और उसके नाम रूप अध्यास रूप हैं ऐसा मानो तोभी अर्थात् उभय पक्षमें उक्त परिणाम आवेगा.

आकाशमें धूम वा बादलकी ऐसी लकीर बने के आकाशही नीला हाथी ऐसा जान पडे. वा जैसे चक्षुमें आकाश विषे माला जान पडती है याने आकाशही मनके रूप भासता है. इन प्रसंगोमें बादल और भासपणा उपाधि हैं. अब यदि तमाम ब्रह्मांटमेंसे बादल नष्ट हो जावें तो आकाश हाथी रूपसे ज्ञात न हो. नहीं तो जहा तहां वैसे रूपसे ज्ञात होगाही. इसी प्रकार यदि ब्रह्ममेंसे संस्कारी माया और तदनुसार जो उसके परिणाम होते हैं वा नाम रूप भासते हैं, सो याने अनिर्वचनीय माया सर्वथा निवृत्त हो तबही ब्रह्म निरूपाधि हो. परंतु आजतक ऐसा हुवा नही इसलिये माया प्रपंचको भ्रम वा अध्यास नाम नहीं दे सकते.

जो ऐसा मान लें कि "एक अद्वितीय ब्रह्मका विचित्र माया शक्तिके योगसे दूधसे दहीके समान यह जगतरूप विचित्र परिणाम हो जाता है" तो ब्रह्म विकारी नहीं तोभी सावयव ठेरेगा परंतु अध्यस्तवादमें समचेतनको निरवयवही माना है. अंतमें यूं कहना पडेगा कि माया करके नाना रूपवाला भासता है. उसका परिणाम नही हुवा किंतु वोही जगतरूप परिणामको पाया होय नहीं, वा त्रिपुटी रूप आपही हुवा होय नहीं; ऐसा भासता है. जब यह माना तो उपरोक्त परिणाम आवेगा याने माया प्रपंच अध्यासरूप नहीं. माया अनादि अनंत और उसके परिणाम प्रवाहसे अनादि अनंत हैं. तथा स्वरूपाप्रवेश होनेसे माया ब्रह्मसे विलक्षण सत्तावाली अनिर्वचनीय है. तद्वत् उभयका संबंध और व्यवहार है. जैसाके स्वप्नमें देखते हैं.

जीव और मायाका अंश जो अविद्या उसका विवेक.

ब्रह्मको अज्ञान वा अध्यास नहीं किंतु यह माया प्रपंच जीवको बंध है उसकी निवृत्तिकी अपेक्षा है. तहां मायाके अविद्या अंश विशिष्ट जो चेतन सो जीव वा अविद्या उपहित चेतन सो जीव साक्षी उसको ब्रह्म, ब्रह्म रूपसे नहीं भासता किंवा

अपना शुद्ध स्वरूप जो ब्रह्म रूप सो उस रूपसे नहीं भासता किंतु माया (अविद्या–भ्रम) वलसे अन्यथा (मैं कर्ता भोक्ता वा मैं परिच्छिन्न प्रत्यगात्मा) भासता है. यही अध्यास है (विष खानेके भ्रम समान दुःखका हेतु है). तथाहि मायाके नाम रूप (अनात्मा) और चेतनके अनिर्वचनीय तादात्म्य होनेसे अन्योऽन्य अध्यास हो गया है. उसके धर्म तिसमें और तिसके धर्म उसमें भासने हैं यह अध्यास है सो जीवको अनर्थको हेतु है उसकी निवृत्तिकी अपेक्षा है. अविद्या अंश नाना होनेसे जीवभी नाना हैं और माया अनादि होनेसे वे जीवभी अनादि हैं, और जीवकी उपाधि जो अविद्या सो ज्ञानकर बाध्य होनेसे अनादि सांत है.

उक्त पक्ष मानें तो "जीव अज्ञानका विवेक" इस प्रसंगमें जो दोष कहे सो दोष आवेंगे. परिणाम यह आवेगा कि माया अनादि अनंत है उसके अंश वा परिणाम भाव प्रवाहसे अनादि अनंत हैं इसलिये जीवभी प्रवाहसे अनादि अनंत हैं. ब्रह्म निरुपाधि कभी हुवा नहीं, और होगा नहीं. किंतु नाम रूपात्मक प्रतीत हो यह उसका स्वभावही है वा माया शक्ति साथ रहनेसे एसा प्रतीत ही होना चाहिये, याने जगत अध्यासरूप नहीं ऐसा मान्ना पडेगा. और अंतमें उसी प्रकरणगत् कहे अनुसार यूं कहना पडेगा कि अध्यास जीव अनादि और अनादि सांत इत्यादि आरोप यह सब बुद्धिविलास है. जिज्ञासुको येन केन प्रकारेण इष्टका बोध हो जाय इसलिये यह शैली कल्पी हैं. और इसी वास्ते ब्रह्म विद्याकी महिमा है इ. ॥ जब यूं है तो पर पक्षके खंडन मंडन वा अनादर करनेकी अपेक्षा नहीं रहती. चुप शांत और मर्यादित स्वतंत्रताको प्राप्त रहके निष्काम परार्थ उपयोगमें आता है.

(शं.) तुमने खंडन मंडन क्यों लिखा है ? (उ.) परंपरासे सबका संबंध है. त्रिवाद बहिरंग साधन है वहांसे विशिष्टवादमें लाया गया कि चिदचिद्के विवेककी ख्याति हो. फेर उत्तर फिलोसोफीकी कल्पना दिखाई उनमेंसे अध्यस्तवाद निकला अध्यस्तवादमे अनेक आरोप हुये हैं उन सबकी एकवाक्यता करनेके लिये आरोप अपवाद किये गये, खंडन मंडनकी दृष्टि नहीं है. अध्यस्तवादका हरकोई पक्ष माने, हमको जराभी आग्रह नहीं है (तद्वत् अन्य वास्तेभी). (शं.) उपरोक्त प्रसंगमें ब्रह्म और जीवकी दृष्टि लेके विवेक किया है ईश्वरका प्रसंगभी लेना चाहिये था. (उ.) ईश्वरवाला विषय जीवकी अपेक्षासे पर है बुद्धि उसके अपरोक्ष करनेमें अशक्त है. पिंडे ब्रह्मांडे की समझनसे बुद्धिमान अधिकारी स्वयं निश्चय कर सकता है. अर्थ वा अनृतकी अपेक्षा तो जीव और उसका बंध मोक्ष इन शब्दोमें है. इसलिये इनकीही चर्चा की गई है ॥

अध्यस्तवादगत शंका समाधान.

दो. बाध, विवर्त्त, अध्यास वा, जीव विलक्षणवाद ;
आशय पंच समान हे, शैली बुद्धि विवाद. ॥१॥

उपर अध्यस्तवादमें ७ पक्ष लिखे हैं. उपर उपरकी दृष्टिसे देखें तो उनमें (पांचोंमें) अंतर है परंतु आशय सबका समान है. शैलीमें बुद्धिका विवाद है, भ्रम वा अध्यासवत् आरोपका समावेश विलक्षण वा अध्यासवादमें हो जाता है. विवर्त्त याने मायावाद और अध्यासका कथन मात्र अंतर हैं विलक्षण और बाधरूप अवभास व्यवहारको विशेप निबाहते हैं. वस्तुतः समानही हैं. सारग्राही सबका एक परिणाम् स्वयं निकाल लेगा क्योंकि व्यवस्था करनेको बेठे तो माया वगेरे कुछ न कुछ आरोप करनाही पडेगा. यथा "ब्रह्म सत्यं जग विलक्षण चेतन एक न दूसरा."

हां जो इस देशके स्वतंत्र अनुभवी नहीं हैं और हर कोई पक्षका आग्रह रखते हैं, वा शब्द मात्रके भगत हैं तो उसको यातो संशय होगा वा तो खंडन मंडनमें प्रवृत्त होगा. यही उसके अनुभवकी परीक्षा है इन सबकी समानताका विशेप व्याख्यान मूलमें है.

विवर्त्तवादके कई प्रकार हैं. (१) परमाणुवाद, (२) परिणामवाद, इन दोनोंमें विवर्त्त और विवर्त्तोपादानकी समान सत्ता है यथा मृत्तिका घट, दूध दही, जल बरफ, कनक कुंडल. (३) अध्यासवाद, मायावाद, और विलक्षणवाद, इन तीनोंका विवर्त्तवाद समान है. याने अधिष्ठानसे विपम सत्तावाला अन्यथारूप किंवा अधिष्ठानमे विलक्षण सत्तावाला विवर्त्त यह विवर्त्तका लक्षण मानते हैं. परंतु निवृत्ति शेप प्रसंगमें शैली मात्र अंतरभी है याने विलक्षणवादमें अध्यस्तको स्वप्नसृष्टि समान लय होना याने नभकी नीलता समान प्रतीतिकाल (दूरकाली) में प्रतीतरूप (नीलाकाश) और अप्रतीतिकाल (समीपकाली) में अप्रतीतरूप (केवलाकाश) इस प्रकार प्रवाहसे अनादि अनंत (स्वप्नसृष्टिवत् सादि सांत) माना है. नहीं के अनादि और सर्वथा मांत याने सांत हुये पुनः अप्रतीत रूप. (शं.) इसका सार-भाव क्या ? (उ.) ब्रह्म सत्यं जग विलक्षण* (सत्से विलक्षण) चेतन एक न दूसरा.

---

* इसके लक्षण क्या करना ? हमारे पास वेसे शब्द नहीं हैं. -इसलिये अनिर्वचनीय कहते हैं, और सत् ब्रह्मसे अन्य प्रकारकी है इसलिये सद्विलक्षण कह सक्ते हैं.

जो विवर्त्तको समान सत्तावाला मानते है वे इन पांचो पक्षके परस्परकी तकरारका उत्थान करके विवाद दिखाते हैं उसका विस्तार और समाधान मूलमें हैं. यहां इस वास्ते नहीं लिखा के जिस जिज्ञासुको जो शैली अनुकूल हो वोही ग्रहण कर ले और पांचोका जो समान एक लक्ष्य है उस पर येन केन प्रकारेण पहोंच जाय. परंतु इस उपरांत समानवादी विषमवाद (अध्यस्तवाद) पर जो शंका करते हैं वे यहां लिखते हैं.

सवाल.

(१) चेतन ज्ञान स्वरूप है. निर्विकल्प है, अवाचा है, अक्रिय है. ज्ञाता द्रष्टापना उपाधिसे मानते हो और तदेतर जड है उसमें ज्ञातृत्वादि नही हैं तो फेर ज्ञातृत्वादि किसमें ? (२) दुःख सुख किसको, जड चेतनके भेदका और उनके संबंधका ज्ञान किसको ? (३) रागद्वेषादि किसको ? असत कोन बोलता है, भेद कोन ग्रहण करता है, नियम कोन बांधता है, वर्गीकरण कोन करता है. मैं कर्ता भोक्ता यह किसने जाना, (४) मैं ब्रह्म वा मैं ब्रह्म नहीं यह किसने जाना माना वा कोन कहता है, जीव ब्रह्म एक, वा जुदा जुदा यह किसने जाना, आत्मा या स्व स्वरूपका साक्षात्कार किसने किया और किस प्रकार किया और उसका बोध क्यों कर करता है ? (५) बंध किसको, मोक्ष किसका ? (६) जीव अंतःकरणविशिष्ट वा अविद्याविशिष्ट चेतन वा इन उपहित चेतन है यह किसने जाना ? अध्यस्तकी निवृत्ति अधिष्ठान स्वरूप यह किसने जाना? अद्वैत वा द्वैत है यह किसने जाना ? संक्षेपमे ब्रह्मसे इतर कोई ज्ञाता द्रष्टा मंता नही परंतु उसके वाणी नहीं वोह नहीं कह सकता और उसमें शब्द संज्ञा नहीं इसलिये अध्यास है इत्यादि कल्पना उसमें नहीं और चेतन है उससे इतर सब याने माया अविद्या अज्ञान अंतःकरणादि जड हैं तथा ब्रह्मेतर सब भ्रमरूप विवर्त्तरूप हैं इसलिये मायादि जानेके योग्य नहीं तथा दुःख सुखके भोक्ता नहीं तो फेर पूर्वोक्त ओर वक्ष्यमाण ज्ञान विषय किसने जाने माने और कहे इसका यथावत उत्तर नहीं मिलता. ब्रह्मेतर भ्रम वा अध्यास कहना वा मानाही नहीं बनता. अतः अध्यस्तवादियोंका कथन मंतव्य सत्य नहीं क्योंकि सो अध्यस्त (अध्यास भ्रम) के अंतरगत है. अतः व्यर्थ है. वदतोव्याघात दोषवाला है. यह छटा अंक उपरोक्त और वक्ष्यमाण अनेक आरोपोंमें लगता है. सो यथायोग्य लगा लेना.

(७) जिसको अध्यास, जिस करके (अज्ञान, माया, संस्कारादि) अध्यास,

जिसमें अध्यास और जिसका परिणाम अध्यास से अध्यासरूप वा भ्रमरूप नहीं होता अतः ब्रह्म, अध्यासरूप नहीं तथा माया अज्ञान अध्यासरूप नहीं जो माया वा अज्ञानको अध्यासरूप मानें तो उस अध्यासके कारण बतानेमें अनवस्था चलेगी. अतः माया अज्ञान् अध्यासरूप न होनेसे उसके परिणाम (नामरूप-ब्रह्मके विवर्त्त) अध्यासरूप नहीं. अध्यासको अध्यास और जडको अध्यास नहीं होता और ब्रह्मको अध्यास होनेकी सामग्री (स्वरूप अज्ञान वस्तुके पूर्व पूर्व संस्कार सादृश्य दोष) ब्रह्ममें होना नहीं मान सक्ते, न सिद्ध होती है और न है. इसलिये अध्यास होनेकी असिद्धि है याने मायाकृत जीव वा ईश्वरको अध्यास होना असंभव है- ब्रह्म चेतन और माया (और मायाके कार्य अंतःकरणादि) का अन्योऽन्याध्यास हो *जाना अर्थात् कोई अन्य चेतन (जीव) को हो जाना दूसरी बात है. संभव है.* यह अध्यास है इसलिये अध्यास है, यह किसने जाना क्योंकि भ्रम वा अध्यास वा अप्रमात्व साक्षी चेतनमें ग्रहण नहीं होता अध्यासकी निवृत्ति पीछे कहनेवालेका अभाव और आज तक अध्यास (प्रपंच नामरूप) निवृत्तभी न हुवा अतः प्रपंच अध्यास (भ्रम) रूप नहीं. किसको किसका अध्यास है, अध्यास है ऐसा कोन कहता है उसे अध्याससे इतर सिद्ध करना चाहिये. अध्यासकी उत्पत्ति क्या है यदि अनादि अनंत तो अध्यास नहीं. क्योंकि जिसका बाध नहीं वोह अध्यासरूप नहीं जो अनादि सांत तो सांत होने पीछे उसका सिद्ध कर्ता वा साक्षी कोइ नहीं होनेसे अध्यासकी असिद्धि है. क्योंकि अध्यास साक्षी चेतनका विषय नहीं होता. जो अध्यास सादि सांत तो अज्ञान माया सादि सांत ठेरेंगे. अध्यास, भ्रम, माया, अज्ञान, या मिथ्या वा विवर्त्त, अधिष्ठानको विषय नहीं कर सकते तो फेर ब्रह्म है उसकी जिज्ञासा कर्तव्य है. यह भावना कैसे हुई? किसीसे सुनी तो वोहभी अध्यासरूप होने से मान्य नहीं. इसलिये यातो ब्रह्मभी अध्यासरूप याने कल्पित वा तो ब्रह्मका अभाव. ब्रह्म अध्यासका अधिष्ठान है यह किसने जाना? अध्यासकी सर्वथा निवृत्ति, तो ब्रह्म अनुपयोगी रहेगा. ब्रह्मसे इतर किसको ज्ञानाध्यास? जडको असंभव. यदि कार्यसहित माया कुछ है तो द्वैतापत्ति और यदि कुछभी नहीं तो असत्‌की प्रतीति मात्र हास्यास्पद है. *यदि सत्से विलक्षण मिथ्या मानोगे तोभी केवलाद्वैत वा शुद्धाद्वैतकी* अप्राप्ति. उक्त शंकाओंका उत्तर जो यद्यपि तद्यपि करके करोगे या किसीकी साक्षी देोगे तो वक्ता और ग्रंथ अध्यासरूप होनेसे मानने योग्य नहीं. अथवा द्वैतकी आपत्ति हो जायगी. इन सवालोंका अद्वैतबोधक उत्तर नहीं हो सक्ता. इसलिये ब्रह्म सत्यं

जगत् मिथ्या यह कथन मंतव्य मिथ्याही है.

(८) ब्रह्म विवर्तोपादान है और माया करके जो नामरूप सो वा मायाके परिणाम जो नामरूप सो विवर्त्त हैं तथा माया उपाधि है मिथ्या है भ्रम मात्र है यह ज्ञान किसको हुवा? ब्रह्मको अज्ञान है वा अपना स्वरूप भूला है यह किसने जाना? यदि अज्ञान अनादि तो निवृत्ति न संभव. स्वभावतः निवृत्ति मानो तो साधन उपदेश निकाम. एकको ज्ञान होनेसे आजतक अज्ञानकी निवृत्ति क्यों न हुई? क्योंकि ब्रह्म एक, जीव ब्रह्म एक तो एकका ज्ञान ब्रह्मका ज्ञान. अतः निवृत्ति होतव्य. परंतु अद्यापि नहीं. अतः जगत् जीव यह अज्ञान वा मायाका कार्य नहीं. विरोधी धर्म होनेसे ब्रह्म जगत्रूप नहीं धर सकता और न वैसा प्रतीत हो सकता है. जो ब्रह्मको ब्रह्म अन्यथारूप (विवर्त्तरूप) भासे तो द्रष्टा दृश्य भिन्न होनेसे ब्रह्म सावयव होगा. प्रमात्व अप्रमात्व यह वृत्तिके परिणाम हैं. अतः जो कुछ कहोगे वा मानोगे सो मिथ्या माया वृत्तिके परिणाम होनेसे त्याज्य रहेंगे. अविद्या वा माया क्या? यदि कुछ हैं तो निवृत्ति असंभव क्योंकि मूलका नाश वा उत्पत्ति नहीं होती. यदि कुछ नहीं है तो उसकी निवृत्तिही क्या? यदि भ्रांति-अध्यासरूप हैं तो अध्यासवाले तमाम दोषोंकी आपत्ति होगी और बंध मोक्ष और तमाम कथन मंतव्य मिथ्या ठेरेगा. माया ब्रह्मका भेद, संबंध, किसने जाना? और ब्रह्मज्ञान किसको हुवा? उपदेष्टा श्रोता मिथ्या होनेसे मंतव्यभी. त्याज्य रहेगा. लक्षणाद्वारा लक्ष्यका साक्षात्कार किसको हुवा? जबके ब्रह्मसे इतर कुछ नहीं है किंवा माया मात्र है, तो ब्रह्मकी जिज्ञासा कर्तव्य है यहभी व्यर्थ ठेरेगा.

जो शंकाके उत्तरमें जीवके व्यवहारकी व्याप्ति कहोगे तो जीवका एक भाग जड मानते हो उसकी व्याप्ति नहीं दे सकते. क्योंकि मायाका भाग है और दूसरा भाग ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है. उसमें उपर कहे अनुसार अवाच आदि होनेसे व्याप्ति न दे सकोगे जो उभयको लेके कहोगे तो उभय दोष आवेंगे क्योंकि उभय मिलके अभाव जन्य नवीन चेतन वा जीव शक्ति नहीं हो सकती. जो यह कहोगे के स्वप्नवत् याने तमाम शंका समाधान स्वप्नवत् हैं, परंतु जिस समय स्वप्नका मिथ्या हाथी आता है तब अपने सहित स्वप्नका बाधक है ऐसे यद्यपि अध्यात्मविद्या स्वप्नवत् है तथापि अध्यासको उडाके आपभी शांत हो जाती है यह उत्तर है. तो हम यह कहेंगे कि पहिले स्वप्ननामका अध्यास हुवा पीछे हस्ती नामका, पीछे दोनों

निवृत्त होके जाग्रत नामका हुवा वा अध्यात्मविद्या नामका हुवा. परंतु अध्यासकी शृंखला नहीं टूटी. अतः आपका उत्तर शांतिप्रद संतोषकारक (जवाब) नहीं है. असंस्कारियोंको कहने योग्य है तथाहि आपके मंतव्यमें अध्यासवाले दोषभी आते हैं क्योंकि 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' यह आपका मंतव्य हैं. इसलिये भी स्वीकारने योग्य नहीं रहता.

(९) अध्यासको अनादि अनंत पुनः नैसर्गिक माना और फेर उसे अनादि सांत कहना यह असमीचीन हैं. तथाहि जबके अध्यास अनादि अनंत है तो उसके कारण माया (वा अज्ञान) को सांत कैसे कह सकते हैं.

(१०) जबके डोरीके सर्पवत् जगत जीव कोई वस्तु नहीं तो उसका और ब्रह्मका संबंधही क्या? तद्वत् माया अविद्या यदि वस्तु नहीं तो उसका अनिर्वचनीय संबंधभी क्या? ब्रह्मेतर वस्तु नहीं तो वोह सत्ता स्फुरणा किसको दे?

(११) जब अविद्या वा अंतःकरण अन्यत्र गया तो जो पूर्व दृष्टके संस्कार चेतन (अंतःकरणावच्छिन्न चेतन या अविद्या अवच्छिन्न चेतन या ब्रह्मचेतन) को तो चेतन विकारी परिणामी ठेरेगा और जो अंतःकरण वा अविद्याको तो कर्ता भोक्ता ज्ञाता अंतःकरण ठेरेगा परंतु अविद्या—अंतःकरण तो जड है.

(१२) ब्रह्मसे इतरका अभाव है तो अध्यास किसको? ब्रह्मको वा अविद्या अवच्छिन्न चेतनको माना होगा. परंतु वस्तुके संस्कार विना अध्यास नहीं होता.* जिसको वस्तुका ज्ञान उसीको संस्कार होते हैं. जिसको संस्कार उसीको अध्यास होता है. सार यह आया कि ब्रह्म चेतनको या अविद्या उपहित चेतन (जीव) को संस्कार हैं. परंतु संस्कारी मध्यम परिणामी और विकारी होता है. इस रीतिसे जो ब्रह्मचेतन या जीव चेतनको अध्यास मानें तो वे विकारी ठेरेंगे परंतु वे तो शुद्ध हैं, निर्विकल्प अविकारी हैं, अतः अध्यासकी कल्पना दूषित है.

(१३) ब्रह्म और अध्यस्त उभय विलक्षण सत्तावाले हैं और उनका विलक्षण संबंध है, यह किसने जाना? उभयका भेद किसने जाना? चिद्ग्रंथीका भंग किसने जाना? उभयका साक्षात्कार किसको हुवा? मनस और आत्माका भेद किसने जाना? मनोवृत्ति आत्मामें स्वतः ग्रहण होती है यह किसने जाना? प्रकाश प्रकाश्यमें इतर

---

* जिसका अध्यास होता है उसके संस्कार पूर्व क्षणमें अवश्य होंगे उस विना अध्यासकी अनुत्पत्ति है तद. अ ३ सू. ५०१, ५०२ के विवेचनमें इसका विस्तार है.

मंतव्य असमीचीन यह किसने जाना ? सदब्रह्म और तद्विलक्षणका संबंध असंभव है इसलिये उभयमे व्यवहार नहीं हो सकता. अपरोक्षत्व किसने जाना ? वृत्तिके नाना परिणाम होते हैं यह किसने जाना? समचेतनमें विलक्षणका प्रवेश और क्रिया असंभव है इनका समाधान न होनेसे विलक्षणवाद समीचीन नहीं जान पडता.

(१४) दृश्य बाधरूप है यह, दृश्य और ब्रह्मका संबंध है यह किसने जाना ? स्वाभाविक है यह कैसें जाना ? ब्रह्म समचेतन है तो उसमें स्वाभाविक ऐसी प्रतीति नहीं हो सकती. दृश्य चेतनका स्वभाव यह नहीं बनता क्योंकि जड और विरोधी धर्मवाला है और यदि उसका स्वभाव नहीं अर्थात् चेतनही जगतरूप प्रतीत हो ऐसा उसका स्वभाव है, इस प्रकार नहीं है तो स्वाभाविक अवभासका उपादान क्या ? और उसका ब्रह्मके स्वरूपमें प्रवेश कैसे ?

(१५) जबके ब्रह्मचेतन केवलाद्वैत (एकमद्वितीयं ब्रह्म नेहनानास्ति किंचन) है तो माया नामकी उपाधि या अज्ञान अविद्या कहांसे आ गये ? उनको अनादि कहके केवलाद्वैत मान्ना हास्यास्पद है.

(१६) दृष्टि सृष्टिवादमें जो ब्रह्मको भ्रांति तो उपरोक्त अध्यासवाले दोष होंगे. जो नाना जीवोंको नाटकका दर्शन तो उपरोक्त जीवके अज्ञान और अविद्याके विवेक वाले दोष आवेंगे और यदि एक प्रकाश स्वरूप साक्षी उसमे इतर विलक्षण प्रकाश्य (-दृश्य नाटक) इतना मानें तो उभयका भेद और उभयकी विलक्षणता और इस सिद्धांतका ज्ञान किसको हुवा और कोन किस प्रकार बोध करता है इसका उत्तर नही मिलेगा.

(१७) अध्यस्तवादमें जीवके स्वरूपमें और उनके मंतव्योंमें मतभेद है इसलिये भी ऐसा जान पडता है के वे सत्य पर नहीं. अतः उनका मंतव्य मान्य नहीं.

(१८) ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या. बंध मोक्ष भ्रांति मात्र. ऐसे जान्नेवाले दूसरोंके उपदेशक क्यों हुये ? उनके मनमे द्वैतभाव होना चाहिये. सो द्वैत मिथ्या था तोभी कुछ था.

(१९) अध्यस्तवादमें निराशावाद परिणाम आता है अतः अग्राह्य है.

(२०) अज्ञान वा माया अनादिमे भावरूप पदार्थ मान्नेसे द्वैत अनादि ठेरा. उसके सांत होनेपर अद्वैतवाद होगा. यह कल्पना हास्यजनक नही तो क्या ?

(विवादित सवालोंका खंडन मंडन सहित विस्तार मूलमें है, और अद्वैतादर्श

ग्रंथमें विशेष विस्तार लिख आये हैं. यह ग्रंथ हिंदी भाषामें सं. १९९६ में छपवाया है. सो प्रसिद्ध है. इस ग्रंथके पेज ३७१ में से १ से २७५ पेज मानो इस प्रसंगका जुदा बयान किया है ऐसा बोलीयम है. शोधकको वोह अवश्य वांचना चाहिये).

समाधान.

उपरोक्त सवालोंमें कितनेक ऐसे सवाल हैं कि जिनका उत्तर यथाप्रसंग लिखा गया है और मूलमें है. कोईक ऐसे हैं, कि उनका समाधान जिज्ञासुको विवेकख्याति होनेपर स्वयंही हो सकता है, मन वाणीका विषय नहीं है. यथा चिदचिदका भेद वा अभेद किसने और कैसे जाना और कौन कहता है क्योंकि बुद्धि जड और चेतन, वाणी रहित निर्विकल्प. अतः उभयका विषय नहीं. यहां विस्तारसे उपेक्षा है. संक्षेपमें उक्त सवालोंका एकंदर—समूह रूपमें उत्तर लिखते हैं.

(१) सब सवाल जवाब प्रमात्वाप्रमात्व संस्कारी जीव वृत्तिके परिणाम है जिसको अविद्या और विद्या वृत्तिभी कहते हैं और वे उभय उपयोगी हैं. परंतु कब! जबके उपरोक्त अपरोक्षत्व और स्वतःग्रहकी रीतिसे ग्रहण होती हैं यही उत्तर है.

(२) मानो स्वप्नमेंही शंका समाधान सहित ग्रंथोक्त पक्षोंका सत् रूपमें श्रवण हुवा है और जागने पीछे सब अन्यथा ऐसा स्वतोग्रह हुवा है इसी प्रकार जाग्रतका स्वप्नकालमें होता है. इसके विचारसे स्वतोग्रहकी सिद्धि हो जाती है. और स्वतः सिद्ध स्वतःप्रमाणरूप अनुभवगम्य हो जाता है. उसमें तमाम सवालोंका जवाब स्वतोग्रह है क्योंकि अविद्या विद्या यह उभय वृत्ति अनिर्वचनीया विलक्षणाकी हैं, उनमें स्वतःग्रहण हो जाती है.

(३) अपरोक्षत्व और स्वतोग्रह प्रसगमे जनाया है कि वृत्ति और चेतन उभय तादात्म्य होनेसे स्वप्रकाश चेतन मानो आपही त्रिपुटी रूप हुवा होय नहीं, ऐसा प्रकार होता है इस रीतिसे विशिष्ट जीवमें स्वतोग्रह हुवा है जैसा के स्वप्न स्मृति सहित स्वतोग्रह होता है.

(४) विषयभोग और मिरचीकी तिक्ष्णताके संबंधमें यदि अमानके सामने कुछ बयान किया जाय तो प्रथम तो शब्दका विषय नहीं याने वाणीसे बयानही नहीं हो सकता. यदि कुछ टूटा फूटा बयानभी करें तो श्रोताको अनुपयोगी है क्योंकि स्वरूप लक्षण अनुभवकाही विषय होता है, मन वाणीका नहीं, यह पूर्वमें कहा है. यदि श्रोताको

उनका अनुभव है तो उसके सामने व्याख्यानकी अपेक्षा नहीं. हां, यदि उस अनुभव में कोई संशय रह जाय तो उसका समाधान वहांकी अनुभव भाषा (लक्ष्यार्थ) द्वारा हो सकता है अन्यथा नहीं. इसी प्रकार यहां यदि कुछ युक्ति प्रयुक्ति करके उत्तर दें तो अनुपयोगी होगा. ख्यालमें न आवेगा. यदि अनुभव करोगे तो शंकाओंका समाधान स्वयं हो जायगा. उत्तरकी अपेक्षा न रहेगी. इस अनुभव करनेमें तन धनकी हानी नहीं होती. हां, अधिकार याने योग्यता प्राप्ति तो करनी पडती है. उक्त विषय सर्वथा (सर्वांगमें) परोक्ष नहीं है किंतु अपरोक्षभी है; अतः परीक्षा कीजिये. परंतु परीक्षा होने तक स्वीकारना वा निषेध करनाभी भूल है.

(५) संगीत सुनेपर खरजादि स्वर कानमें सुने जाते हैं तथापि उन्हें नहीं जानते और जानते हों तोभी वार्णाद्वारा बयान नहीं कर सकते. परंतु जब उसके अनुभवकी रीतिसे प्रेक्टीस करके अनुभव करेंगे तब उनका स्वरूप, उनका भेद स्वतोग्रह हो जाता है. इसी प्रकार यहां है याने श्रवण मात्रसे फल नहीं होता किंतु जब अनुभव भाषाद्वारा सुनके मनन करोगे तब आपही भान हो जायगा और शंकाओंका समाधान हो जायगा.

(६) आप प्रस्तुत विषयको यदि जानते हो और पूछते हो तो आप प्रति उत्तर करना व्यर्थ है. और जो सुन सुनके सवाल कर रहे हो तोभी जवाब देना व्यर्थ है. क्योंकि जैसे कोई वैद्यकके ग्रंथ सुनके वा वांचके वा डोक्टरोंकी बातें सुनके निदान वा दवाई वास्ते शंका करे तो कितनी भूल है, क्योंकि उसका अजाना विषय है. और उसको जवाब देने वास्ने डाक्टर, फिजिकल सायंसका आरंभ करने लगे यह उससेभी ज्यादा भूल है. यही प्रकार यहां है. अध्यात्म विद्याके तरीके सीखने पीछे सवाल करो तो ठीक है, अन्यथा उत्तर व्यर्थ है. जो कहो के हम जानके पूछते हैं तो आपसे सवाल करता हूं कि दुःख क्या, कौन और कैसे भोक्ता है, वोह दुःख हमको इंद्रियोंमे बताईये—अनुभव कराईये; क्योंकि दुःखका तो आपकोभी साक्षात्कार है. वहां तक 'मैं दुःखी मुझे दुःख' यह आपका कथन शब्द मात्र माना जायगा. अब आप यदि इस विद्यासे वाकिफ होगे तोही टूटा फूटा उत्तर दे सकोगे और यही कहोगे कि अनुभवका विषय है, वार्णाका विषय नहीं. जो अजान होगे तो कुछभी जवाब न मिलेगा. यदि आप जिज्ञासु शोधककी रीतिसे पूछते तो हो उपरोक्त अभ्यास करिये. स्वयं उत्तर हो जायगा. यदि कोई संशय रह जायगा तो उक्त अभ्यासवश उक्त समाधानभी समझ सकोगे.

(७) आपका व्यर्थ आग्रह देखके हमभी निष्फल प्रवृत्तिके मार्गमें दोडें तो कुछ टूटा फूटा इतनाही कहेंगे कि विशिष्ट याने उक्त जीव वृत्तिमें योग्यता हैं एकमें संस्काराकार होने और अपरोक्षत्व स्वतोग्रहकी छाप लेनेकी और दूसरेमें उसके ग्रहण होनेकी योग्यता है. दोनों मिलके अद्भूत अकथ्य रीतिसे व्यवहार होता है. यदि आप उस विशिष्टको लक्षणा और योगद्वारा-जुदा जुदा रूपमें अनुभव (विवेक ख्याति) कर लें तो आपके सवालोंका उत्तर हो जायगा और अनुभव होने हुयेभी मैंने अनुभव नहीं किया वा मैंने अनुभव किया, यह उभय पद मनमेंभी नहीं बोल सकोगे; तो वैखरी की तो बातही क्या करना.

(९) संक्षेपमें ग्रंथके उपांत वाक्यमें लिखा है "यहां जेसा वहां, वहां जेसा यहां," ऐसा कुछ स्वतोग्रह है. आपके तमाम सवालोंका यह खास उत्तर है. कुदरतने मानो तमाम सवालोंके उत्तर होने वास्तेही स्वप्नसृष्टिका सांचा ढाला होय नहीं! वस्तुतः अनुभवगम्य विषय है, मन वाणीका विषय नहीं है. इसलिये उत्तर कथन श्रवणसे उभयको चुप रहनाही पडता है.

(१०) अध्यस्तवादमें जो पक्षकारोंका मतभेद जान पडता है वोह पक्षरूप नहीं है किंतु शैली मात्र भेद है अर्थात येन केन प्रकारेण लक्ष्यपर पहोंचानेमें आशय है. सिद्धांत लक्ष्यमें भेद नहीं है, इसलिये इस (नं. १३ के) सवालकी अनुत्पत्ति है.

(११) अध्यस्तवाद गत् निराशाका उद्भव जो मानते हैं वे विषयासक्त केवल आपस्वार्थी भाई है क्योंकि इस विषयका अनुभवी परार्थ उपयोगी हो पडता है उसका स्वार्थ न रहनेसे निराशावाद नहीं कहा जा सकता (यह उपर जीवनमुक्ति प्रसंगमें कह आये हैं). पामर विषयी पुरुषको अहंता ममता छूटना वा स्वात्मभोग करना विछुने काटा वा मोत आई, इस समान भय होता है, अतः वे अपने विरोधी पक्षोंका अनादर वा तिरस्कार करते हैं.

(शं.) जेसेके अहंग्रह उपासना करनेसे वा भावना करनेसे वा अन्यकी उपासना भावना करनेसे कुछका कुछ या वेसाही भासने लगता और कहने लगता है और मगजकी अशक्ति हो जानेसे जगत मिथ्या वगेरे उच्चारता है, ऐसेही इस काल्पनिक विषयमें मगज खराब करनेवालेका मगज खाली होनेसे वा भावना दृढ हो जानेसे उसे एसा भासने लगता है कि जेसा उत्तर फिलोसोफीमें उटपटांग कहा है. वस्तुतः ऐसा नहीं है. अन्यथा है. इसलिये योग्य पुरुषको चाहिये के अपने तन मनको यथा प्राप्त जो समष्टिरूप ईश्वर उसकी सेवाके उपयोगमें लगावे. क्योंकि उसका उसपर उपकार

है (उ.) हम समष्टिके अंग हैं वा समष्टि हमारा अंगी है, अतः उसको उपयोगी होना चाहिये इतना मंतव्य उभयको संमत होनेसे मान्य ठेरा* वाकी जिस भावसे जेसा आपका कथन औरोंप्रति है वेसा आपके वास्तेभी क्यों न माना जाय? क्योंकि कुछ न कुछ देवानापन सबमें होता है. और यह स्वतोग्रह है. जिसमें ग्रहण होता है वोह आपको मुबारक हो.

(शं.) दूसरे पक्षकार (सत्य कार्यवादि-जडवादि) भी अपने माने हुये सिद्धांतके वास्ते ऐसाही कह सकते हैं. जेसाके तुमने कहा है याने स्वप्न जाग्रतमें ऐसाही (स्वमंतव्यही) देखते हैं और वोह स्वतोग्रह है जब यूं हो तो अनेकांतकी प्राप्ति होगी. परंतु अनेकांतका अभाव है क्योंकि सत्य एकही होता है. (उ.) इसका उत्तर सू. ३९१, ३९२ में आ चुका है. तथापि सारदृष्टिसे कहते हैं कि जब पक्षकार 'स्वप्न जाग्रत सम' और स्वमंतव्य उन गत् वृत्तिओंका परिणाम मान लेता है तो फेर जेसे अध्यस्तवादमें ७ पक्ष कहे वेसेही उसकाभी एक पक्ष मान लेंगे और वस्तुतः नेति नेति, अन्यथा अन्यथा, उसकोभी श्रीमुखसे कहना पडेगा. और यदि स्वप्न जाग्रतका व्यतिरेक न माने और उभयको जुदा जुदा सत्तावाला मानके स्वपक्षको इत्थमेवही कहे तो हमको निषेधमें आग्रह नहीं; कारण के यहां पक्षस्थापना वा संप्रदाय दृष्टि नहीं है किंतु समझते हैं कि जो कोई शोधक जिज्ञासु परीक्षक है वोह हमारे आपके कथन मात्रसे वा विश्वास मात्रसे नहीं मान लेता किंतु परीक्षा किये विना हरगिज़ नहीं मानेगा. और परीक्षामें यही रूप (अध्यस्तवादका हरकोई प्रकार) आ खडा होगा इस लिये परीक्षा न होने तक आपकी इच्छामें आवे सो मानो इतना कहके इस प्रसंगको समाप्त करते हैं. ॥

अध्यस्तवादोंकी समानता.

(१) जो शक्तिवादमें नामरूपात्मक प्रतीत होना शक्तिका स्वभाव है न कि परिणाम, ऐसा मानें तो केवलाद्वैत ठेरता है. वा शक्तिको विलक्षण मानके उसका भाग त्याग करके मानें तो केवल्याद्वैतवाद ठेरता है.

(२) भ्रम पदको निकाल डालें तो केवलाद्वैत रहता है.

(३) अध्यासवादमें वा अध्यासवतवादमेंसे वा विलक्षणवादमेंसे अध्यासरूप जो नामरूप वा अध्यासवत, जो नामरूप वा विलक्षणरूप जो आकार (नामरूप) का भाग त्याग करके ग्रहण करें तो केवल्याद्वैत है.

*आगे नोधा भक्तिमें बांचेगे.

(४) विवर्त्तरूप जो नामरूप उनका त्याग करें तो केवलाद्वैत है.

(५) नाटकी मायाके नामरूपका भाग त्यागें तो केवलाद्वैत रहता है.

(६) अवभासरूप नीलतावत् जो नामरूप उनका त्याग करें तो केवल्याद्वैत ठेरता है.

(७) जो भाग त्याग किये विना कुछ कहोगे तोभी माया मात्र द्वैत कहनाही पडेगा. (विशेष विवेचन त. अ. ३ में है.)

(८) इस प्रकार सब अध्यस्तवाद समान हैं. शैली मात्र अंतर हैं.

(९) भ्रम, अध्यास, अध्यासवत्, विलक्षण, विवर्त्तोपादान, दृष्टिसृष्टि यह सब वाद ब्रह्मेतरको अस्पर्श अध्यस्त मानते है. इसलिये इनका लक्ष्य समान हैं. व्यवस्थार्थ मायोपहित अध्यास विशिष्ट माया विशिष्ट वा विलक्षण विशिष्ट और गति, परिणाम, उपाधि वगैरे मान्नाही पडता है. ऐसाही बाधरूप स्वाभाविक अवभास है. इस प्रकार सबकी एक्य वाक्यता जान पडती है.

(१०) (शं.) वस्तु (ब्रह्म) में अवस्तु (अज्ञान, अविद्या, माया, भ्रम, अध्यास) की आरोप करें और उसे अनादि सांत वा सादि सांत वा अनात मानें तो केवल्याद्वैत वा शुद्धाद्वैतमें समानता आवे, जो ब्रह्मेतरको अनादि अनंत मानो तो अद्वैतभाव न आवे. (उ.) अनादि अनंत अध्यास वा अनादि सांत वगैरे यह सब शैली मात्र है-जिज्ञासुओंके लिये कल्पी गई हैं. मुख्यतः नं. १० अनुसार है. जो ऐसा नहीं मानोगे तो सम सत्तावाले विवर्त्तवादीके शंकाओंका उत्तरही नहीं मिलेगा. अतः अध्यारोप तो मान्नाही पडेगा. इसलिये बाधवादको उत्तम शैली मानने हैं. उसमें अद्वैत सिद्धि रहते हुये सब पक्ष निभ जाते हैं.

भ्रमवादमें नामरूप अनहुये प्रतीत होना माना जाता है. अध्यासवादमें माया वा अज्ञान करके संस्कारद्वारा नामरूप भावना माना है. विलक्षणवादमें नामरूप मायाके परिणाम हैं और तादात्म्य संबंध होनेसे ब्रह्ममें उनका और उनमें आत्माके धर्मका अध्यास है ऐसा माना है. और विवर्त्तवादमें माया करके ब्रह्मही अपने स्वरूपको न छोडके नाम रूपात्मक भासता है, इसलिये नामरूप विवर्त्त और ब्रह्म विवर्त्तोपादान माना है. बाध वादमेंभी नामरूप नीलतावत् स्वभावतः प्रतीत होते हैं परंतु नीलतावत् बाधरूप हैं. ऐसा माना है. इतना शैली मात्र भेद है. परंतु सब पक्षमें अनादि अनिर्वचनीय मायाका स्वीकार है. विलक्षणवाद, बाधवाद

मायाको सांत नहीं कहता. दूसरे पक्ष मायाको अनादि सांत कहते हैं. भ्रमवाद, अध्यासवादमें ब्रह्मको अज्ञानी मानना पडता है. दूसरे वाद ब्रह्मको प्रकाशक मानते हैं, अज्ञानी नहीं मानते इतना अंतर है.

मतभेद होनेका अनुमान.

जिस समय विवेकी योगी धर्ममेघ समाधि (विवेकख्याति) को प्राप्त हो जाता है और चिदचिद्का विवेक होके याने चिदग्रंथीका भंग होके उभय पृथक स्थित होते हैं और चिद, वृत्ति (अंतः करण—जड) का साक्षी हो जाता है, मैंपना उड जाता है, और जीवपना नहीं रहता, तथा इस अभ्याससे तुर्या (जड-वृत्ति रहित-वृत्तिका लय) अवस्था होती है उसमें अनुभव स्वरूप चेतनके सिवाय कुछ नहीं होता. फेर थोडी समयके पीछे एक गतिवाली लहेर प्रकाश्य होती है. इसके अपरोक्ष होने पर वही वस्तु (संस्कारी अंतःकरणकी सुरती परिणामको छोडके जो वृत्तिरूप हुई है) अनेक आकारवाली होके भासने लगती है याने आत्माके प्रकाशमें ग्रहण होती है. फेर अदृष्ट—लुप्त लय हो जाती है, चेतन मात्र रहता है ऐसा वहां नाटक होता है. इस नाटकका अनुभव कथनमें नहीं आ सकता. इस नाटकका रूप वृत्तिमें केसे उतरता है वह बात आश्चर्यरूपही है. जिनको पदार्थ विद्या और सृष्टि नियमोंका विवेक ज्ञान नहीं है, अथवा उतावलीये हैं अथवा जिनको अकस्मात इस स्थितिकी प्राप्ति होती है अथवा जिनके यहां भावनासे इतर का प्रवेश नहीं है, उनकी भावना जो बंधाती है उसमें और इस प्रकारसे जो रहित स्वतंत्र शोधक योगी हैं, उनकी भावनामें फर्क पड जाता है. यद्यपि वे है ठिकाने और उनका लक्ष्यभी ठीक है परंतु कोइ न कोइ कारणसे शैलीमें अंतर पड जाता है. यानो जानते हुये किसी कारणसे दूसरी शैलीमें कहते हैं. उसका संक्षेपमें नमूना—

(१) ज्ञान प्रकाशसे इतर कुछ नहीं था सक्रिय आकार कहांसे आ गये ? भावना कहती है कि दृश्य जड है, अपने आप उत्पन्न हो और नाना विचित्र अदृष्टाकार रख ले यह असंभव. इसलिये चेतनकी अगम्य सत्तासे अभावमेंसे भावरूप होती है और अभावरूप हो जाती है ऐसीही यह जगत है.

(२) दूसरी भावना कहती है के अभावसे भाव असंभव और चेतनसे इतर वहां कुछ है नहीं. इसलिये अगम्य महिमावाले चेतनकीही यह लहेर है. जैसे दरियामें प्रथम सामान्य तरंग होता है. फेर विचित्र रूप धारता है. ऐसे चेतनरूप अब्धिकी

लहेर क्रिया मात्र है फेर नाम रूपात्मक हुई है. ऐसेही यह तमाम जगत् ब्रह्मका ही परिणाम वा स्वरूप है अनित्य होनेमे ब्रह्म स्वरूप हो जायगी.

(३) तीसरी भावना कहती है कि जो पहेली लहेर हुई वोह उसी विज्ञान स्वरूपकी है क्योंकि ज्ञान प्रकाश भाव उस लहेरसे और लहेर उससे जुदा नहीं होते उभय एक स्वरूप हैं. वोह लहेर क्षण क्षणमें उत्पन्न लय होती है, उसीतरही ज्ञाता ज्ञेय इत्यादि क्रमशः परिणाम है ऐसी यह जगत् है वोह लहेर जावे उसीका नाम निर्वाण है.

(४) चोथी भावना कहती है कि सम चेतन निरवयव एक रस है उसका परिणाम होना वा उसमे क्रिया होना असम्भव है इसलिये पहेली लहेर तदंतरगत् रही हुई मायाकी है वोह माया अव्यक्त थी, व्यक्त हुई बीज रूपम (सम्कारी) थी, अंकुर फुटा फेर नाम रूप उसीका परिणाम हुवा यह दृश्य ब्रह्माड (वृक्ष) उसी प्रकारका है ब्रह्ममें अन्यके स्वरूपका अप्रवेश न होनेसे मायाको अधिष्ठानसे विलक्षण सत्तावाली अन्यथारूप याने विवर्त्त है ऐसा मानते हैं अपने स्वरूपको न छोडके दूसरे प्रकारमें भासे सो विवर्त्तोपादान है यथा रज्जु सर्प प्रसगमें सर्प विवर्त्त और रज्जु विवर्त्तोपादान और सर्पका उपादान मायाका कार्य अविद्या है किंवा स्वप्नसृष्टि दृष्टाकी विवर्त्त, दृष्टा विवर्त्त उपादान और स्वप्नसृष्टिका उपादान अनिर्वचनीय माया है ऐसा यह दृश्य है. वहा प्रथम चेतन इतर कुछ नहीं था पीछे लहेर और नामरूप बने फेर उसीमें लय हो गये. अव्यक्तरूप हो गये, मध्यकालमेंही भासे थे, आदातमें चेतनही रहता है. इसलिये भावना कहती है कि वोह प्रतीत कालमें प्रतीतरूप है, अप्रतीत कालमें नहीं है अव्यक्तरूप है, दरमीयानमे जो भासता है वोह माया मात्र है.

(५) पाचमी भावना यह कहती है, कि वोह लहेर रज्जु सर्पवत् भ्राति मात्र (अर्थशून्य प्रतीत मात्र) है. परन्तु भ्रातकी और भ्रमकी सामग्रीकी वहा असिद्धि है इसलिये वोह भ्रम (अध्यास) नहीं, किन्तु उसका चेतनके साथ सबध हुये पाछे अन्योऽन्याध्यासकी उत्पत्ति होती है.

(६) एक भावना यूं कहती है कि वोह लहेर चेतन ब्रह्मका स्फुरण है, सो दृश्यरूप हुवा (परन्तु निर्विकल्प निरवयवमें इच्छा) स्फुरण नहीं बनता अतः—

(७) वोह चेतनकीही शक्ति है जो जगत्रूप हुई

(८) वोह लहेर सम्कारी मन है, उसका परिणाम यह दृश्य है जो के अधिष्ठानकी सत्तासे विलक्षण सत्तावाला है

(९) अधिष्ठान अगम्य चेतन है उसमेंसे उस लहरका आविर्भाव है. और उसका रूपांतर होते होते यह दृश्य हुवा है. वोह लहेर अगम्यका सूचक चिन्ह है.

(१०) यह लहेरही जीव (सोल) है जो चेतनकी सत्तासे कर्ता भोक्ता है. और समष्टि दृश्य उसका भोग्य है.

(११) और कोई भावना कहती है कि चेतनमें एक वस्तु रही हुई है. उसीकी पहेली दूसरी लहेर है. जो चेतनकी इच्छासे प्रकट होनेमें आई उसीकी सत्तासे नाम रूपात्मक हुई उसीमें लय हो जायगी. ऐसा प्रवाह है. इस भावनाकी दृष्टिमें स्वरूपा प्रवेशका भाव नही माना जाता. नहीं तो और कल्पना होती. इत्यादि द्वैत भावना होती है.

(१२) जो अभी अभ्यास कर रहे हैं चिद्ग्रंथी तक नहीं पहोंचे, तुर्याका लेश भी नही है, उनकी भावना औरही प्रकारकी हो जाती है. अर्थात् प्राणनिरोध द्वारा मनका निरोध करके शून्यताको प्राप्त होते हैं, किंवा मन निरोध द्वारा प्राणका भाव नहीं रहता तब कोई विश्वासी संस्कारी संत ज्योति प्रकाश (विद्युत-स्टरिल लाइट) नाना प्रकारके शब्द (इथर-हिरण्यगर्भकी गतिके वा मगज तंतुकी गतिके) यथा संस्कार सिद्धोंके दर्शन, और नाना प्रकारकी विचित्र सृष्टिको देख पाते हैं, और ज्योतिको ब्रह्म स्वरूप मानते हैं. उनको किसी ग्रंथ वा व्यक्ति वा सृष्टि नियमों पर विश्वास नहीं होता किंतु जिसने मार्ग बताया उस गुरु पर पूर्ण श्रद्धा होती है. तथा स्वानुभवानुसार भावनामें तना जाते हैं क्योंकि उनके अनुभूतिके लेख वांचो तो सबमें कुछ न कुछ अंतर निकलता है. इनके अनुभव वा भावनाकी चर्चाका यह प्रसंग नही है. तत्व दर्शन अ. १ गत् संत मतमें लिखा है. उनका सार यह है कि सब ब्रह्मांड उस निरंकार ज्योतिकाही परिणाम है. स्वेडनबर्ग ख्रिस्ति धर्मका संत इस भावनासे जुदा पडता है.

(१३) संभव है कि किसी शोधक जडवादिकोभी इसी मार्गमेंसे भावना मिली हो अर्थात् लौकिक लाभार्थ वा विचारार्थ एकाग्रचित्त हो गया हो और इस गति तथा उसके नामरूप धारण पर विचार आ गया हो तो उसको ऐसी भावना हो सकती है कि वोह लहेर शरीरके सत्व वा मगजका एक प्रकारका परिणाम है. जो गति करती है और यथा संस्कार अनेक आकारवाली बन जाती है जिसे इम्प्रेशन वा स्मृतिभी कहते हैं. वेसेही यह दृश्य मूल तत्त्वोंका परिणाम है.

यह पिंड*(शरीर) ब्रह्मांडका एक प्रकारका केंद्र है जिसके शोधमें सैंकडों प्रकारके संचे और रसायणीय संयोगोंका ध्यान आया है, और 'पिंडे ब्रह्मांडे' इस उपमाके योग्य हुवा है. जब कोइ एक प्रकारकी सहेतुक भावना दृढ हो जाती है तो उस अनुसार इमारत बनानेकी कोशिश होती है, और हुई है. मतभेद वा शैली भेदका यही कारण जान पडता है.

उपरोक्त दशा जाननेका यदि आपको शौक हो तो आपभी शुद्ध चित्त होके उस स्थितिको प्राप्त होके सृष्टि नियममें तोलिये. तो दृश्य अधिष्ठानसे विलक्षण जान पडेगा और बाधवाद सहायक होगा. उसे दूसरे पक्षोंसे न्यून दोषवाला मान सकोगे.

उपर जो भावना भेदके निमित्तका उदाहरण दिया है वो हमारा अनुमान है, नहीं के इत्थम्भाव. अर्थात इसके विषे आग्रह नहीं है.

किसिके वाक्य विश्वाससे अद्वैत वा द्वैत मानना दूसरी बात है. यथा 'एकमेवा द्वितिय ब्रह्म' । 'नेहनानास्तिकिंचनः' । 'हुवलाव्वल.हुव्वल आखिर.' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि वाक्योंसे अद्वेत मान लेना 'द्वासुपर्णा सयुजासखाया' ।। 'अजामेका लोहित,' इत्यादि वाक्योंसे द्वैत माना जाता है.

उपयोग (व्यवहार).

ब्रह्म वा उसका उपहित अंश प्रत्यगात्मा वा अविद्या अंतःकरणविशिष्ट आत्मा वा साभास अंतःकरणविशिष्ट चेतनको (समष्टि वा व्यष्टिचेतनको) अपने स्वरूपका अनादिसे अज्ञान है वा वोह अपने स्वरूपको भूल गया वा उसको भ्रम हो गया वा उसको अध्यास है, वा कुछ संशय है वा उसे विपरीत भावना है वा दृश्य अव्यक्त के धर्म (कर्ता भोक्तापना) अपनेमें मान लेता है, वा उसको अविवेकसे अन्यथा जान पडता है वा दृश्यके धर्म उसमें आ गये हो इसलिये उक्त अज्ञानादिकी निवृत्ति करके वा होके ब्रह्म वा प्रत्यगात्माका मोक्ष होना है (अनृतकी निवृत्ति–परमानंदकी प्राप्ति करना है) ऐसा कुछभी नहीं है किंतु कुछ औरही अदभुत अकथ्य प्रकार है. अफसोस है कि वोह प्रकार चिदचिद् विवेककी ख्याति हुये* विना अनुभवगम्य नहीं होता. जितना कुछ कहा वा कल्पा जाय उसमें शंकाही रहती है. तथापि जिज्ञासु शोधकको उस प्रकार जाननेमें मदद मिले इस दृष्टिसे कुछ प्रयास सामने करते हैः—

*प्रत्यगात्मा (ब्रह्म) और अंतःकरणके भागत्याग विना.

क पुरुष नाटकस्थानमें गया है परंतु उस नाटकको नाटकरूपमें नहीं जानता था किंतु कुछ हो रहा है ऐसा समझके देख रहा है. उसका ज्ञान तदाकार है याने उसके ज्ञानभावका उपयोग नाटकाकार हो रहा है. ऐसी विशिष्ट स्थितिमें उसको अहंत्व नहीं है, ममत्व नहीं है. वर्णाश्रमाकारता वा उसका अभिमान नहीं है यहां तकके कोई भंगीभी बराबरमें आके बेठा हो तो उसको ग्लानि नहीं है. कंधेपरसे कोई रुमाल उडा ले तो उसकीभी खबर नहीं है. और सम आवे तो आपही गरदनभी हिल जाती है ऐसा विशिष्ट भाव हो रहा है. ऐसी स्थितिमें यह नहीं कहा जा सकता कि क को अपने स्वरूप (अहंत्व-मनुष्यत्व) का अज्ञान है (ज्ञान हो वा न हो परंतु अज्ञान तो नहीं है) वा अपने स्वरूपको भूल गया या उसे भ्रम वा अध्यास हो गया है या दृश्य नाटकके धर्म अपनेमें मान लिये हैं वा नाटकके धर्म उसमें आ गये या उनकी निवृत्ति करना है. अब वोह तमाशा समाप्त हो जाय तब या उस तमाशेके पूरे हुये पूर्व उस तमाशेको स्मरण करता हुवा अपनी दुकानपर आकार व्यापार करे तब उसके ज्ञानका उपयोग उसमें और जब स्वप्नसृष्टिमें जीवे तब उसमें उसका उपयोग हो रहा है. जब विषय भोगोंमें हो तब उनमें, जब वर्णाश्रमके अभिमान और कर्ममें हो तब उनमें जब पोज़ीशन हो तब उसमें जब राग, द्वेष, दुःख, सुखादिरूप वृत्तिका नाटक हो तब उसके ज्ञानाकार उसका जब उपयोग होता है, जब अध्यात्म शास्त्र सामने हो तब उसमें उसका उपयोग होता है; इस प्रकार वृतिके साथ यथा नाटक उसका उपयोग होता है. यह वृत्ति अनेक प्रकारकी होती हैं. सबका समावेश अविद्या और विद्या या अज्ञानवृत्ति ज्ञानवृत्तिमें हो जाता है. जब बाहिर वा अंदरमें (मानसिक नाटक संस्कार विचार) नाटक न हो तब उदासीन वा शयनमें उपयोग होता है. वहांभी उसमें अज्ञानादि भावका आरोप नहीं हो सकता. जहां अज्ञान भ्रम अध्यास वा भूलरूप नाटक होता है वहां उसका उस आकार उपयोग होता है. जहां प्रमात्व अप्रमात्वाकार वृत्ति धरती है वहां उस आकार उपयोग होता है.

सूर्यके प्रकाशको व्यापक निरवयव मान लो. प्रकाश आकाशमें है तोभी ज्ञात नहीं होता परंतु जब किसीके साथ संबंध पाता है तब कहीं तो अपने स्वरूपसे ज्ञात होता है जेसेके काचकी हांडीमें उपहित रूप हुवा स्वयंप्रकाश है. कहीं जेसा काच (लीला पीला) हो वेसा जान पडता है. याने विशिष्ट (रंग विशिष्ट पीला वा लीला प्रकाश) जान पडता है. कहीं सूर्य मणिके संबंधसे दाहक मालूम होता है. कहीं प्रकाश

विशिष्ट रंग रोगनिवारक हो जाता है, इसी प्रकार पत्थर, वृक्ष, प्राणी, विशिष्ट प्रकाश अनेक रूपमें जान पडता है. परंतु प्रकाशके स्वरूपमें विकार नहीं होता.

दृष्टांत एक देशमेंभी ग्रहण होता है इसको ध्यानमें रखके सारग्राही दृष्टिसे दार्ष्टांतमें लगाना.

जैसे क के ज्ञानशक्तिका उपयोग और प्रकाशकी स्थिति कही, वैसेही ब्रह्मचेतन देवके सामने वा उसमें अनादिसे माया नामका नामरूप आत्मक समष्टिरूप नाटक हो रहा है ज्ञान स्वरूप परमात्माका उपयोग उसमें हो रहा है. जैसे जहां तहां प्रकाशमें जैसे काच वगैरे उपाधि है वैसाही प्रकाशका भाव वा उपयोग होता है, ऐसेही जहां तहां ब्रह्ममें अंतःकरण, शरीर, वृक्ष, प्राणी पत्थर वगैरे जैसी उपाधि हैं वैसाही चेतन-का भाव वा उपयोग होता है. कहीं तो उपहित रूपमें होता है जैसे के अविद्या वा अंतःकरण उपहित परमात्माका साक्षी, दृष्टा मात्र रूपमें उपयोग है; और कहीं तो विशिष्ट रूपमें उपयोग होता है, जैसे के अंतःकरणके साथ होता है याने चेतन विशिष्ट अंतःकरणके राग, द्वेष, दुःख, सुख, मैंपना मेरापना इत्यादि परिणाम होते हैं; तद्विशिष्ट चेतन तैसा जान पडता है परंतु चेतनको रागादि नहीं हैं वा चेतन रागादि रूप नहीं होता तथापि उसके स्वरूपका उसके ज्ञानमें उपयोग है. मोटे शब्दोंमें यूं कह दें कि रागादिमें तदाकारता तद् प्रकाशता वा तद् उपयोगता है. इस प्रकार शरीरसे बाह्य और अंतरमें शरीर सहित जाग्रतनामा और स्वप्ननामा तथा सुषुप्ति नामके नाटक होते रहते हैं उनमें चेतन—ज्ञान स्वरूपका उभयथा (उपहित—रूप) उपयोग होता रहता है. उस समय ब्रह्म वा प्रत्यगात्माको अज्ञान, भ्रम, भूल, अध्यास है वा नाटकके धर्म उसमें आ गये वा उसने अपनेमें माने हों ऐसा नहीं होता, किंतु उसका उपयोग उसमें होता है जैसाके स्वतोग्रह और अपरोक्षत्व प्रसंगमें कहा गया है. होते होते कारण वशात् याने संस्कारी अधिकारी वृत्ति होने पर दूसरा नाटक जिसे अध्यात्म शास्त्र कहते हैं सो नाटक वृत्ति उसके सामने करे तो उसका उपयोग तदाकार होगा. यह नाटक ऐसा है कि जिसमें पूर्व देखे हुयेको और अपने व्यापारको नाटक (कल्पित वा मायावी नाटक) नाम स्पष्ट रूपमें दिया जाता है, तब उसका उपयोग तदाकार होता है. जब वृत्ति इस नाटकके प्रभावसे शांत नाटकी रूप विना होती है, (तुर्या अवस्था) तब वोह ज्ञान स्वरूप पूर्ववत अपने स्वरूपमें स्थित रहता है. प्रपंच उपशम अव्यवहार्य और उपयोग रहित रहता है. उपर कहे हुये पहेले प्रकारका नाम याने स्वरूपोपयोग स्थितिका नाम बंध, दूसरे

स्वरूप उपयोगका नाम साधन और तीसरे स्वरूप उपयोगका नाम मोक्ष ऐसे विदुषक वृत्ति (नाटकका मेनेजर) ने नाम रख लिये हैं. परंतु वस्तुतः आद्य मध्य और उत्तर इन तीनों नाटकोंमें आत्मा जेसाका तेसा रहा है. फक्त उसके उपयोग दृष्टिमे नाम भेद हैं. जब वोह शांत नाटकी संस्काराभ्यास वश उठती है और फेर नाटक करती है तब उसी कूटस्थका उसमें उपयोग होता है. परंतु अब उस नाटकीके अभ्यासमें अंतर पड गया है. वोह यह के अध्यात्म नाटकके पूर्व उसका ऐसा नाटक था कि पहेले जो क पुरुष नाटकमें गया सो नाटक भावसे अजान था और पीछे उसको नाटक जाने लगा तो उसमें अहंत्व ममत्व राग द्वेषादि नहीं होते थे. इसी प्रकार नाटककी वृत्तिमें पूर्वसे यह अंतर हो गया है के वोह बाह्यमें और अपने अंतर नाटकमें अहंत्व ममत्व रागादिरूप नाटक नहीं करती. और यदि ऐसा होता है तोभी बाधित वृत्तिसे होता है वेसाही साक्षीमें ग्रहण होता है, याने साक्षीका उसमें उपयोग होता है यह उपयोग उपहित रूप होता है. ऐसा होते होते नाटकी वृत्तिकी समाप्ति हो जाती है क्योंकि उसको नाटकाकार होनेका अभाव संस्कार हो गया है. अंतमें शरीरके साथ क्षीण हो जाती है ओर उसके भाग दूसरे नाटकों विषे उपयोगमें आते हैं. जिस नाटकी वृत्तिको अध्यातम नाटकके संस्कार नहीं पडे हैं, उसको नाटकाकार होना वा नाटक करनाही पडता है. इसलिये वर्तमान शरीर न रहनेपर दूसरे शरीरमें नाटक करती है. यही नाटकी वृत्ति अपनेमेंसे दूसरी नाटकीभी पेदा होनेकी निमित्त हो जाती है.

इस प्रकार बाह्य समष्टि और आंतरीय व्यष्टि नाटक होता रहता है. समष्टि नाटक याने सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति और लय. सोभी व्यष्टि नाटक समान होता रहता है. जेसे स्वप्नसृष्टि समष्टि है, और तदंतरगत शरीर शरीर व्यष्टि है. स्वप्नगत् स्वप्न व्यष्टि नाटक है और समग्र स्वप्नसृष्टिका द्रष्टा चेतन है वही व्यष्टि प्रति है. इसलिये यथा नाटक वहां वहां उसका उपयोग होता है. इस कथनमेंसे यहभी सार निकल आता है कि अणु अणुमें चेतन है. यदि वृत्ति जेसे अणु हों तो वहांभी जीव उपाधि है. अर्थात् जीव (चेतनविशिष्ट वृत्ति वा वृत्तिविशिष्ट चेतन) अणु चेतन है. जो वृत्ति रूप न हो तो अन्यथा उपयोग है. इस प्रकार अनादिसे व्यष्टि समष्टि नाटककी उत्पत्ति स्थिति लयका प्रवाह है तत् तत् अनुसार चेतनका जहां तहाँ उपयोग है.

(नोट) जिस पक्षमें ब्रह्म चेतन वा उपहित चेतन (प्रत्यगात्मा) को अज्ञान, भ्रम, अध्यास, भ्रल, वा, अविवेक वा मायावश मानके व्यवस्था करते हैं उस पक्षमें ब्रह्मको

किस न किसी रूपमें कलंकित किया जाता है. परंतु त्रिलक्षण वा बाधवादमें इस शैलीको मान नहीं देके ब्रह्मको सर्वथा शुद्ध रखते हुये व्यवस्था होती है, यह दूसरोंसे बडा अंतर है; और विचारणीय है. प्रस्तुत उपयोग थीयरी इस भेदको बता रही है ॥

(शं.) जब यूं है अर्थात् ब्रह्म आत्मा अस्पर्श है तो उसको नाटक वर्णनमें क्यों लेते हो? (उ.) उसके विना यह नाटक नहीं हो सकता और हो तोभी उसकी साक्षी और उसका ज्ञान नहीं होता. चेतनकी अस्ति भाति विना उसमें अस्ति भातिही नहीं जान पडती जैसाके स्वप्नमें अनुभवते है इतनाही नहीं बल्के जैसे लोहेमें चुंबकके विना गति न हो वैसे नाटकी माया अविद्या वृत्तिमें गति न हो सकनेसे नाटकही न हो, तथाहि इस चावीसेही कर्तृत्वका हेतु प्रकृति (सत्व रज तम नाटकके पात्र) है और भोक्तृत्व (उस नाटकका ज्ञान, उजालेमें आना, प्रकाश्य होना, फलकी सिद्धि होना) का हेतु चेतन है. इसलिये उसको नाटकमें लेना पडता है. जैसे दीपकके प्रकाश विना नाटक नहीं हो सक्ता, और प्रकाश किसीको नाटक करने वास्ते नहीं कहता. और अपने स्वरूपको नहीं छोडता तोभी उसके विना नाटककी रचना वा सिद्धि नहीं होती. इसी प्रकार परमात्मा देवके विना समष्टि किंवा व्यष्टि नाटक नहीं हो सकता. तोभी वोह शुद्ध स्वरूपही था, है और रहेगा. इसी वास्ते उसे अन्यथा निमित्त (अन्यथा कर्ता) कहते हैं. सब नाटककी चावी वही है, उसकी सत्ताके विना तृणभी नहीं हिल्ता.

दुःख सुख याने तमाम त्रिपुटी व्यवहार चेतनके विना सिद्ध नहीं होते. अहंत्व ममत्वमेंभी उसका तादात्म्य है इसलिये जिज्ञासुओंके बोध वास्ते ब्रह्मात्माको अनादि अज्ञान, अध्यास भ्रम वा भूल है किंवा संशय विपरीत भावना है अथवा अविवेकसे चित्त (प्रकृति) के धर्म अपनेमें मान लिये हैं वा उसके धर्म उसमें आते हैं वा संसर्गाध्यास होनेसे बंध मोक्ष जान पडता है और उसकी निवृत्तिकी अपेक्षा है, इसलिये शास्त्र हैं; इत्यादि शैली कल्पी हैं; नहीं के परमात्मा वा आत्माको बंध था, है, होगा वा मोक्ष थी, है, वा होगी. अज्ञान मंडल, उनकी भिन्न भिन्न रुची और जिज्ञासुओंके जुदा जुदा अधिकार इन शैली आरोपनमें निमित्त हैं. अतः अनादरणीय नहीं हैं. किंतु उतनी दृष्टिमें ठीक हैं. जो एसा न करें तो अधिकारी जीवोंको परम शांति प्राप्तिका लाभ नहीं मिले. या मिलना कष्टसाध्य हो जाय.

(शं.) उस मायाका व्यष्टि भाग (अविद्या-अंतःकरण-प्रकृति) महेंद्रगढ स्थानमें यथा संस्कार नाटक कर रहा है वोह जब खेराड देशमें जावें तो उसका वहां नाटक

होगा और महेंद्रगढ देश विशिष्टचेतन दूसरे वी अंतःकरण :नाटकी विशिष्ट होगा. उस नाटकमें उसका उपयोग होगा. खेराड देश विशिष्ट चेतन अध्यात्म नाटकमें उपयोगी हो रहा है. जब उस खेराड देशसे गिरनारमें गया तो खेराड देशवाला चेतन शुद्ध रहेगा, और गिरनार विशिष्ट चेतन दूसरे नाटकमें उपयोगमें आवेगा. गिरनारसे घा में गया. गिरनार देशमें दूसरा नाटकी (अंतःकरण) आया. इस प्रकार व्यापक चेतन बंध मुक्त होताही रहेगा वा उपयोगी होताही रहेगा, क्योंकि विभु है. परमात्माही उपहित होनेसे प्रत्यगात्मा है.

(उ.) आत्मा बंध मोक्षका पात्र नहीं है. तुम्हारी शंकामें तो उपयोगका भेद है. इसलिये कोई शंका नहीं; कारण के इस प्रकारका उपयोग अनादिसे चला आ रहा है, चल रहा है और चलेगा. क्योंकि प्रकाश्य (नाटक) और प्रकाशक (ज्ञान प्रकाश स्वरूप) अनादि अनंत हैं. प्रकाश्यरूप नाटक प्रवाहसे अनादि अनंत है अर्थात् होता है, बिगडता है, बदलता है, और लय होता है: अर्थात् प्रतीतकालमें प्रतीतिका विषय होता है. अप्रतीति कालमें नहीं होता. इस नाटक होनेका कारण क्या? इसका उत्तर उपर आ चुका है.

(शंका) यदि अंतःकरणके गमनसे वा चेतन प्रदेशके संबंधका भेद है तो वीरपुर देश गत् स. १९५२ में जो देखा सो जेतपुर देश सं. १९९९ में याद न होगा याने स्मृति न होगी. क्योंकि द्रष्टाका वही प्रदेश नहीं है. इसलिये चेतनके आभास या चेतनके प्रतिबिंबवाले अंतःकरणको जीव मानना चाहिये सो आभास वा प्रतिबिंब नामा जीव अंतःकरण वा अविद्याके साथ जाता है इसलिये स्मृति होती है. (उ.) जो प्रकाशविद्याको नहीं जानते उनकी समझ वास्ते यह थीयरी है. वस्तुतः ठीक नहीं है, क्योंकि यदि एक काचमें वीरपुरवाले देशका प्रतिबिंब है जब वोह जेतपुरमें जावे तो पूर्व आकाशका नहीं किंतु जेतपुरवाले आकाशका होगा. यदि काच एकही जगे स्थिर हो तोभी जो वर्त्तमान क्षणमें फोटो है वोह उत्तर क्षणमें नहीं होता अर्थात् काचमें जब मुख देखते हैं तो दीपककी लो समान क्षण क्षणमें प्रतिबिंब बदलता रहता है. सूक्ष्म और गतिका वेग होनेसे दीपककी लो "वही वही", ऐसे स्थायी जान पडता है. वस्तुतः आभास और प्रतिबिंब तथा दीपककी लो क्षण क्षणमें बदलते हैं. इसलिये यदि बिंब और प्रतिबिंब (आभास) का अधिष्ठान उभय स्थिर हों या उनमेंसे एक गतिवाला हो तोभी प्रतिबिंब क्षणिकही होता है. अब जो चेतन (चिदाकाश) का आभास वा प्रतिबिंब माने तोभी क्षणिक होनेसे उसमें स्मृति नहीं हो

समष्टी तथा प्रकृतिका कार्य होनेसे जड है तो फेर स्मृति कैसे होती है ? तहा स्मृति यह वृत्तिका परिणाम है याने संस्काररूप स्फुरण. सो चेतन प्रकाशमे ग्रहण होता है. चित प्रकाश सर्वत्र सम है. इसलिये पूर्ववत् ग्रहण होने (प्रकाश्य होने) से स्मृति व्यवहार बनता है (स्वतोग्रह याद करो). अतः प्रतिबिंबवाद–आभासवादवाद–एक काल्पनिक शैली है ऐसा जानना चाहिये

(शं) उस नाटकी मायाका स्वरूप कैसा है ? अणु मध्यम विभु वा अन्य ? (उ.) मन बुद्धि उसके कार्य होनेसे अपने उपादान (नाटकी) का स्वरूप नही जान सकते. चेतनकी अपेक्षासे और उसके कार्यसे उसके स्वरूपका अकथ्य रीतिसे अनुभव मात्र हो जाता है. उपर जो चेतन और दृश्यकी सत्ता और उसका भेद दरसाया है वोह अनुभवमें ले. सदवत् जैसी नहीं किंतु उससे विलक्षण सत्तावाली है अनिर्वचनीय है. उसका कार्य मन तथा स्वप्नसृष्टि उसके स्वरूपका नमुना है. इनका जो उपादान वा जिसके यह परिणाम है सो मायाका स्वरूप है. वोह कुछभी नही, शून्यरूप है, ऐसाभी नहीं है, और अणु मध्यम वा विभुरूप है ऐसाभी नहीं कह सकते "मैं नही जानता" इस प्रतीतिका जो विषय (अज्ञान) इस जैसी है. उसके परिणाम जो नाम रूप (नाटक) वे चेतनके विवर्त्त है. उभयका तादात्म्य होनेसे अन्योऽन्याध्यास है याने आत्मामे उसके और उसमें आत्माके धर्मका अध्यास हो जाता है. अनादिकालकी होनेसे तुच्छ होने हुयेभी महान स्थूल रूपसे विषय होती है. उसका स्वरूप अनुभवसेही लीजिये मन वाणीका विषय नहीं है.

चेतनके धर्मोका अन्योऽन्याध्यास है. अर्थात् जीवसृष्टिही जैसे फोनोग्राफमे अजान पुरुष मनमे धारता है कि जब यह गानेवाली स्त्री मकानसे बाहिर जायगी तब इसके साथ संबंध बांधूगा, यथेच्छा लाभ लुंगा, परंतु अंतमें अन्यथा जान पडने पर मनमें लज्जित होता है. इस प्रकार मैं, तु, मेरा, तेरा यह (जीव सृष्टिही) कल्पित वा भ्रमरूप वा मिथ्या है वोही दुःखप्रद है. (श) दुःख और अध्यास किसको ? (उ) जो कोई दुःख सुख मानता है या जिसको होते है उसको (श) वोह कोन ? (उ) इसका स्वरूप और प्रकार उपर कहा गया है, याद कीजिये.

चार पाच वर्षका बालक जन्मसेही आकाशमें नीली चादर वा आकाश नीला है ऐसा मालूम करता है तहा नीलताका संस्कार कारण नहीं है. वोह नीलताही कारण है. और आकाशका ज्ञान हुये पीछेभी नीलताका दर्शन होता है. इसलिये आकाशका अज्ञानभी नीलताके दर्शनमे कारण नहीं और ज्ञान हुये पीछे आकाश नीलताका अन्य

दृश्य जान पडता है, इसलिये नीलताके दर्शनमें सादृश्य दोषभी कारण नहीं. समीपमें प्रतीत नहो होती, दूरमें प्रतीत होती है. इसलिये दूर दोषको कारण मानें परंतु अनहुई वस्तु प्रतीत नही होती यह नियम है; इसलिये नीलताको प्रवाहसे अनादि अनंत कहना पडता है. अंतर इतनाही है के आकाशके ज्ञानके पूर्व अन्यथा (आकाश नीला) अवभास होता था अर्थात् नीलताका आकाशमें वा आकाशका नीलतामें अवभास था. आकाशके ज्ञान हुये पीछे उस संसर्गाध्यासकी निवृत्ति हुई. नहीं के नीलताकी. और समीपमें नहीं जान पडती इसलिये उसका बाध हुवा मानते हैं और अध्यासरूप कह देते हैं. परंतु आत्यंतिक निवृत्ति हुये विना भ्रम वा अध्यास पद कहना बने नहीं. कारणके कुशल आरोग्य योगी ज्ञानवानकोभी प्रतीत होती हैं, प्रतीत होती आई है और प्रतीत होगी. अतः अध्यासरूप नहीं किंतु स्वाभाविक बाधरूप अवभास है ऐसाही कहना पडता है और उसके स्वरूप संबंधमें अनिर्वचनीय पद देना पडता है.

(शं.) व्यापक सूक्ष्म ईथरकी मंदगति होनेसे नीलता भासती है समीपमें हलकी गति होनेसे नीलताका अवभास नहीं होता. अतः नीलता अनहुई अध्यासरूप नही किंतु है. (उ.) यदि इथरमें नील रंग नहीं और मंद गतिसे वैसा भाव जान पडता है ऐसा मानें तो अनहुयी प्रतीति, ऐसा मानना होगा, परंतु सो वार्ता असंभव है. और यदि इथरमें नीलता है सो भासती हो तो हैही. अतः अध्यासरूप नही, परंतु इथरमें नीलता है नहीं. ऐसा नवीन सायंस कहती है तो फेर नीलता क्या, इसका खुलासा नहीं होता. किंतु जैसे आलातका चक्कर होता है वैसे माया करके भासती है याने ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है ऐसा मानना पडता है.

इसी प्रकार ब्रह्म चेतनाश्रित दृश्य प्रपंचका स्वाभाविक अवभास है. सोह ब्रह्मसे विलक्षण सत्तावाला प्रवाहसे अनादि अनंत अवभास है और नीलतावत् बाध रूप है उसके स्वरूप संबंधमे अनिर्वचनीय पद आगे किया जाता है. तद्वत् उसके अन्य रूपों वास्तेभी यही पद है अर्थात् अणु विभु मध्यम परिमाण, नाना गति, अनेक प्रकारके परिणाम, वे कैसे, वे किस प्रकार, वे हैं वा अन्यथा भासते हैं, इत्यादिके निर्णयमें वही पद आगे आ खडा होता है. उसकी प्रतीतिमें ब्रह्मका अज्ञान, या वस्तु संस्कार, वा सादृश्य दोष हेतु नही हैं. किंतु अधिष्ठानाश्रित ऐसा नैसर्गिक अनादि अनंत प्रवाहिक अवभास है. इसीको **बाधवाद अवभासवाद** कहते हैं. जीवको अधिष्ठानाध्यस्तके धर्मोका अन्योऽन्य अध्यास है. उसकी निवृत्ति पूर्व कहे हुये

उपयोगानुसार मानी जाती है. और वोह अवभास चेतन अधिष्ठानके विना नहीं होता, और चेतनके विना उसका उपयोग भाव नहीं होता, इसलिये अधिष्ठानाध्यस्त (प्रकाश प्रकाश्य) इन उभयकी सफलता है. निरुपयोगी कोईभी नहीं.

जैसे फोनोग्राफसे अजान पुरुष गायन सुनके उसे सुंदर स्त्री मानके मनमें धारता है के अब यह मकानसे बाहिर चलेगी तब इसके साथ संबंध बांधके यथेच्छा लाभ (सुख) लुंगा. परंतु अंतमें उसको ज्ञान हुये अपने अज्ञानसे मनमें खेद पाता हुवा लज्जित होता है और आंखें उघड जाती हैं. इसी प्रकार जो दुःखी मुर्खा है उसको संसर्गाध्यास होनेसे उसका अन्यथा उपयोग होता है. जब अधिष्ठानाध्यस्तके भाववाली वृत्ति उदय होती है तब वोह अध्यास, वोह भाव, वोह-प्रकार नहीं होता, नहीं भासता, वैसा उपयोग नहीं होता किंतु अन्यभाव अन्य प्रकारका उपयोग होता है.

आफरीका और मारवाडके मरुस्थल जंगलमें पानी नहीं है. वहां अथवा रणमें हों, पानीकी तृषा हो, मृगजल सामने हो, उसको पानी जानके वहां जावें तो ज्यों ज्यों आगे जावें त्यों त्यों पानी आगे आगे जान पडता है. अंतको थकके पीछे आते हैं तो पुनः ज्ञात स्थानमें पूर्ववत् भासती है. रोशनी आकाशके सिवाय अन्य नहीं ऐसा सायंससे जानने लगते हैं. तोभी पूर्ववत् दृष्ट होता है इतनाही नहीं किंतु वहां जो वृक्ष वा जानवर फिरते हैं उनके फोटो उस जलमें देखते हैं. ज्ञानके पीछे इतनाही अंतर पडता है कि हमको अन्यथा प्रतीति थी सो और उसकी तृष्णा न रही उसमें से मोह जाता रहा. शांत हो गये. परंतु दर्शन तो वैसेही है. नभकी नीलत दूसरा नमुना है. शोधो तो कुछ नहीं और अन्यथा सतरूपसे समक्षमें है.

इसी प्रकारकी यह अनिर्वचनीय विलक्षण अव्यक्त (माया) है. हम इस स्थूल दृश्यको अन्यथा जानके उसमें मोह आसक्ति रखते हैं उसमे दुःखका अनुभव करते हैं. इसलिये उसकी हकीकत जाने वास्ते उसको खोजने लगे. पंच विषय, विजली, आकर्षण, प्रकाश, तम, गुरुत्व, देश, काल, जाति, अभाव, प्रतिबिंब, आभास, कारण, स्फटिक लाट्ट, ईश्वर, हिरण्यगर्भ (शेषा), पर वृत्ति, बाह्य गमनागमन, संयोगमें अन्य (देश, ईश्वरादि) हैं वा नहीं, बीजकी उत्पादक वर्धक शक्ति, परमाणु, मन और पदार्थोंकी शक्ति तक मथन किया परंतु उनके मूलका तो क्या ? उनकी शक्तिको भी न जान सके. ज्यों ज्यो आगे दोडे त्यो त्यों नभकी नीलता समान आगे आगेही

समझ पडा. अंतको अध्यात्मविद्या द्वारा कुछ उसका भान हुवा तो इतनाही "कि जहां तक और जेसी मानो सो नहीं किंतु और प्रकारकी, और उसका अधिष्ठानभी जो जो वा जेसा जेसा मानो सो नहीं किंतु नेतिका शेष, प्रकाश स्वरूप, अधिष्ठानाश्रित प्रकाश्य, अधिष्ठानसे विलक्षण, अधिष्ठानमें अध्यस्त, अधिष्ठानकी विवर्त्त और अनिर्वचनीय स्वरुप और प्रकाश प्रकाश्य लक्ष्यालक्ष्य हैं. इतना अनुभव हुवा." इतना मिलनेसे शांति हो गई. इसके उदाहरणमें वे आपही हैं. अर्थात व्यवहारमें स्वप्नसृष्टि और उसका द्रष्टा चेतन या आकाश और नभ नीलता. इससे बढ कर दूसरी व्याप्ति नहीं मिलती. यह व्याप्तिभी परस्परकी (प्रकाश प्रकाश्यकी) विलक्षणता और अन्वय व्यतिरेक होनेसेही शांतिप्रद निवडती है अन्यथा कोई व्याप्ति संशय रहित नहीं मिलती (विवेचन त. अ. ३, ४ में है). चूंकि प्रतीत कालमें प्रतीतरूप और अप्रतीतकालमें अप्रतीतरूप होती है. इसलिये अध्यास नाम डाला. वस्तुतः वेसा नहीं है. क्योंकि नभनीलता समान प्रवाहसे अनादि अनंत है. इतना जरूर है कि आत्मा (अधिष्ठान) और अनात्मा याने प्रस्तुत विलक्षणा इन उभयका अन्योऽन्याध्यास है, याने अनिर्वचनीय तादात्म्यभाव होनेसे एक दूसरेके धर्म एक दूसरेमें जान पडते हैं. यहभी उनका उपयोग है. प्रकाशका उपयोग प्रकाश्यमें होता रहता है. उससे प्रकाश्य उपयोगी होता रहता है. जेसे स्वप्नवाले सिंहसे स्वप्नसृष्टिका सिंह सहित अभाव हो जाता है इसी प्रकार इस विलक्षणाकी अध्यात्मवादरूपी विद्यावृत्तिसे अन्यथारूपी अवभास उड जाता है. मायाके उभय अंशोंकी लडाइका यह परिणाम आता है और फेर जेसाका तेसा पाते हैं. पुनः जब संस्कारी मनरूपी लहेर उठती है तो सब त्रिपुटी ठाठ सामने हो जाता है. और जब वोह लुप्त तब कुछभी नहीं है ऐसा भाव वा प्रकार होता है. ऐसा प्रवाह है.

इसलिये यूं कहना पडता है कि जहां तक अभेद (अद्वैत) वा भेद (द्वैत) का धिक्कार वहां तक द्वैतका सत्कार और स्वीकार है. और जब तक भेदका आदर और अभेदका धिक्कार है वहां तक अद्वैतका सत्कार वा स्वीकार है. यह स्पष्टही है. और जब मनसरूपी लहेर शांत हो गई तो न द्वैतकी वहार और न अद्वैतकी तकरार है. जो है सो स्वयं प्रकाश है *

*** द्वैत अद्वैतवादगत् दो योग्य पुरुषोंकी समझने योग्य रमूज.**

अद्वैतवादि अनेक प्रकारसे द्वैतका निषेध करता हुवा कहने लगा कि यदि ब्रह्ममें अन्यका (द्वैत) मानो तो पुछते हैं कि (१) भेद सहित भेद है ? (२) वा भेद रहित

लाली और स्फटिक मणि अर्थ शून्य नहीं है. लाल मणि इतना अवभास वा मान्यता अध्यास-प्रतीति मात्र वा भ्रम है. तद्वत् माया और ब्रह्म अर्थशून्य नहीं है किंतु विलक्षण सत्तावाले हैं.

संक्षेपमें सार यह है कि यदि चिदग्रंथीका अनुभव हो के उसका भेद न हो गया है और स्वरूपाप्रवेशका सिद्धांत संशय रहित यथातथ्य अनुभवमें आ गया है तो फेर कुछ कहने वा विवाद करनेसेही निर्विकल्प शुद्धाद्वैत वा केवल्याद्वैत नहीं होता अर्थात् थीयरी बांधने, वा आरोप करके शंका समाधानमें उतरनेकी अपेक्षा नहीं रहती. संकल्प विकल्प रहित हुये चुप रहो, शांति सुखमें मग्न रहो. अथवा अपनी मर्यादित

भेद है ? आद्य पक्षमें अनवस्थादि दोष, उत्तर पक्षमें अभेद (अद्वैत) का स्वीकार हो गया. इतना कहके बोले के अब तो आप (द्वैतवादि) समझे ? द्वैतवादि बोला के हां, जेसे मेरे मुखमें जिव्हा नहीं ऐसे कहनेवाला जिव्हाको बताता है. वेसे अद्वैत उपदेशक आप दूसरे विद्यमान हो तो फेर कैसे न समझे. यह सुनके अद्वैत वादि मनमें लजाके चुप हो गया.

द्वैतवादि अनेक प्रकारसे अद्वैतका निषेध करता हुवा कहने लगा कि यदि ब्रह्ममें अपना अभेद (अद्वैतपना) है तो वोह (१) अभेद सहित है ? (२) वा अभेद रहित है ? आद्य पक्षमें अनवस्थादि दोष और उत्तर पक्ष हो तो अभेदकी असिद्धि है. इतना कहके बोला के अब तो (अद्वैतवादि) समझे ? अद्वैतवादि बोला के हां. मेरे मुखमें जिव्हा नहीं ऐसा कहेना यह आप अद्वितीयकाही काम है. यह सुनके इस वाक्यकी अदभूत् रमूज समझके द्वैतवादि मनमें लजाके चुप हो गया.

चिदचिद्वादकी रमूज.

(१) चेतनवादि जडवादका निषेध करते करते बोला कि जडवाद (प्रकृतिवाद) का ग्रहण (स्वीकार) करना जड पुरुषकाही काम है. समझे (जडवादि)! हां साहेब. जडको ग्रहण करनेवाला जडही होना चाहिये यह आपका कहना ठीक है. चेतनवादि सुनके मनमें लजाके चुप हो गया.

(२) अचिद्वादि (प्रकृतिवादि) चिदवादका निषेध करते करते अंतमें बोला कि जड पुरुष प्रकृतिवादको नहीं ग्रहण कर सकता (नहीं समझ सकता) समझे (चेतनवादि)! हां साहेब, एक आपही चेतन पुरुष हो जो प्रकृतिवाद (जड) जानते हो (समझ सकते हो)! जडवादि यह सुनके मनमें लजाके चुप हो गया.

व्यवहारिक स्वतंत्रताको भोगने हुये जिज्ञासु अधिकारीके हित प्रत्युपकारी और परके उपयोगार्थ उद्यत रहो क्योंकि कर्म विना जीवन नहीं होता. अथवा तो साक्षी मात्र रहना बस है. और उपरोक्त सत्यकार्यवाद तथा अनेक प्रकारके अध्यस्तवाद (भ्रमवाद. अव्यस्तवाद, विलक्षणवाद, दृष्टिसृष्टिवाद (एक जीववाद) सृष्टि दृष्टिवाद (नाना जीववाद) विशिष्टवाद, अवच्छेदवाद, आभासवाद, अनवच्छेदवाद, प्रतिबिंबवाद, विवर्त्तवाद, स्वाभाविक अवभासवाद) वगेरे पंडिताचार्योंको भेट कर दीजिये. वे जगत व्यवहारकी व्यवस्था अर्थ बुद्धि विलास किया करेंगे. क्योंकि यह विषय उनकेही योग्य है. हमारे जैसे अल्पमतिवाले जिज्ञासुओंके योग्य यह अनिर्वचनीय विषय नहीं है. तथाहि बुद्धिकी कल्पना और तर्ककी सीमा नहीं बांध सकते तो फेर माया और उसके कार्य विचित्र प्रपंचके निर्णयकी तो बातही क्या करना—अर्थात् शंका समाधानोंका अंत आवे ऐसा नहीं मान सकते इसलियेभी यह विषय पंडितोंके लिये अर्पण कर दीजे. इसीमें हित लाभ है।

(शं.) तुमने उपर अध्यस्तवादोंके संबंधमें अनाग्रह दरसाया है, अर्थात कोई प्रकारभी मान लो, ऐसा कहा है. तो माया (प्रकृति) और उसके कार्य नाम रूपात्मक जगतको सत्य (सत्य कार्यवाद) कहने वा मनानेमें तुमको क्या विक्षेप होता है? (उ) विभु चेतनमें अन्यके अप्रवेश होनेसे बलात, जगतको ब्रह्मसे विलक्षण वा जगत उसका विवर्त्त, इत्यादि उपर कहा है. और शुद्ध ब्रह्मचेतनमें किंचित् विकार नहीं है किंतु सो समचेतन है, यह युक्ति अनुभवसे सिद्ध है; इसलिये आत्माको कूटस्थ कहना और मानाही पडता है. इस प्रकार "ब्रह्म सत्यं जग विलक्षण चेतन एक न दूसरा" किंवा "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" ऐसा कहा है वा माना है. तथापि आपको माया और उसका कार्य जगत सत्य है, ऐसा द्वैतवादकी रीति (न्याय, सांख्य, त्रिवाद वगेरेकी रीति) मे आप मानना चाहते हो तो भलेही मानो. हमको उसमें आग्रह नहीं है; कारणके अद्वैतवादि वा द्वैतवादि वा जडवादि वा हरकोई पक्षकार हो, उसको प्रकृति—मायाका व्यवहार तो करनाही पडता है. अंतर इतना है कि ज्ञानवान स्वप्नवत् और क्षणभंगुर परिवर्तन पानेवाला मानके उसमें आसक्त नहीं होता. दूसरे पक्षकारकी यह वृत्ति नहीं होती. हमारा आशय तो ब्रह्म चेतन सम और कूटस्थ है याने प्रत्यगात्मा—परमात्मा शुद्धही था, है और रहेगा, इसमें है. तथा स्वरूपप्रवेश न हो सकने में है. अब उपरोक्त संयुक्त अनुभवसिद्ध सिद्धांतको आप न मानें तो भलेही आप सत्य कार्यवाद मानिये, विलक्षणवाद न मानिये, क्योंकि आप अपने अधिकारके

आधीन हैं, इसलिये यदि हम आपको मनानेमें आग्रह करें तो हम भूल वा हठ पर हैं; ऐसा हमको माना पडेगा. इसलिये हमारा यह निश्चय है कि जैसे आप जैसे सत्कर्मवादि और ईश्वरके भक्त, अंतमें जब तब मुख्य लक्षपर पहोंचे हैं वैसे आपभी पहोंच जाओगे. ॥४९७॥

अब पूर्व प्रसंग पर आते हैं:—

सार.

स्वरूपावेश यह बताता है के ब्रह्मसे इतर अन्य नहीं है. विलक्षण अध्यस्त वगैरेकी कल्पना जिज्ञासुके बोध और तीक्षण वृत्ति होनेके लिये है. बात यह है.

जैसे स्वप्नमें जीवसे इतर नहीं है, अपनी संस्कारी मन शक्तिके द्वारा सो चेतन अपनेको नाना रूपमें (रज्जु सर्पवत्) देखता है. कारणके वहां अन्य कुछभी नहीं था, नहीं है.

जीव वा नामरूप जगत है वोह उसकी अचिंत्य शक्तिसे रज्जु सर्पवत् कल्पित है. जैसे सर्प कल्पनामें है और रज्जुही सर्परूप भासती है, ऐसे अपनी अचित्य शक्ति करके जीतना यह दृश्य है सो उसीकाही रूप है. याने जैसे डोरीही मर्प रूपसे भासी है वहां सर्प नहीं है. ऐसे वोह परमात्मा देवही नाम रूपात्मक भासता है. यहां नाम रूप वस्तु कुछ नहीं है. अचिंत्य शक्तिकी कल्पना मात्र है. और ऐसा कल्पित उत्पत्ति स्थिति लय भेद अभेद उच नीच बंध मोक्षादिकी प्रतीति होती रही रहेगी. जैसेके स्वप्नसृष्टि है. परंतु परमार्थतः न उत्पत्ति है, न लय है, न बंध है, न मोक्ष है. केवल स्वरूप है. (१) अज्ञान कालमें सत्य (२) विचार कालमें विलक्षण (मत हो, विलक्षण) (३) विवेक कालमें रज्जु सर्पवत् सब ब्रह्मरूप (४) और अनुभव काल—परीक्षा कालमें सब अनात याने *ब्रह्मसे इतर अनात ऐसे तत्त्वविचारकी चार श्रेणी* हैं. तत्त्व दर्शनके अंतमें जनाई है यथा अविकार ग्राह्य हैं. शैलीओके खंडन मंडन में कुछ नहीं रहता है. व्यर्थ है. आत्मानुभव करो. सब आपही फैसला हो जायगा.

(शं) जैसे ऊपर स्मृति सहित स्वप्न जाग्रतकी सृष्टि मानी अर्थात् विना देश कालवाली देशकाल सहित क्षणिक स्वाभाविक अवभासरूप मानी वैसे समचेतनभी क्षणिक क्यों न माना जाय? (उ.)—

समक्षणिक नहा सम होनेसे ॥४९८॥ दृश्यभी हेतु फलकी अव्यवस्था होनेसे ॥४९९॥ और भोग व्यवस्थाका अभाव होनेसे ॥५००॥ अन्यथा

निर्वाणादि स्वसिद्धांतका त्याग ॥५०१॥ अंततः समचेतन प्रकाशमें प्रकाश्य ॥५०२॥

समचेतन क्षणिक नहीं है क्योंकि प्रसंग कहे अनुसार वोह नित्य, अचल, एक समान अनुभवाता है ॥ उस चेतनको क्षणिक मानें तो जड परिणामकी आपत्ति होनेसे पहेले जड वा पहेले चेतन परिणाम ऐसे किस परिणामको हेतु, किसको फल माना जाय यह व्यवस्था नहीं होगी ॥४९८॥ तैसेही यह दृश्य–प्रकाश्यभी क्षणिक नहीं है क्योंकि क्षणिक मानें तो पहेले बीज वा वृक्ष परिणाम, इस हेतु फलकी व्यवस्था नहीं हो सकेगी परतु जो उत्पत्ति नाशवाले है उनके हेतु फल (उपादान, निमित्त, उत्पत्ति, स्थिति, नाशके क्रमका काल इत्यादि) की सनियम व्यवस्था देखते है. अतः क्षणिकत्व नहीं है ॥४९९॥ जो क्षणिकत्व मानें तो भोग परिणाम कालमे भोग्य और भोक्ता भोग्य परिणाम कालमे भोग भोक्ता और भोक्ता परिणाम कालमे भोग्य भोग विद्यमान् न होनेसे भोगकी व्यवस्था नहो हो सकती परतु भोग भोग्य और भोक्तृत्व तो सम कालमें देखते है. अतः क्षणिकत्व नहीं ॥ इसी प्रकार दृष्टादि, कर्तृत्वादि त्रिपुटीमे लगा लेना चाहिये ॥५००॥ जो अक्षणिकत्व नहीं मानोगे, और क्षणिकत्व नही मानोगे तो क्षणिकवादमें जो निर्वाण और व्यवहार व्यवस्था मानी जाती है वोह त्यागना पडेगा याने स्व सिद्धांत त्याग होगा ॥५०१॥ क्योंकि जो स्वभावतः अनादिसे क्षणिक है, वोह स्थिर नहीं हो सकता इसलिये स्थितिरूप निर्वाणका अभाव रहेगा क्षणिकत्व स्थिर होने वा उसके अभाव होनेका साधन–बीज नहीं जान पडता. जो सुषुप्तिके सस्कारको साधन मानें तो सुषुप्तिसे पीछे पुनः प्रवृत्ति होती है, ऐसे निर्वाण पीछे पुनः क्षणिक प्रवाह चलेगा. क्षणिक प्रवाहमें जो पूर्व पूर्व वासना हेतु और उसका अभाव निर्वाण मानें तो फेर हेतु फलवाला दोष आता है. जिसको वासना है वोह तो दूसरे परिणाम समय नष्ट हो गया तो वासना किसको ? इसका उत्तर नहीं. वासना और विषयके अधिकरण भिन्न होते है. जब क्षणिक विषय परिणाम हुवा उस समय वासनाका अधिकरण नही रहा. तथा वासनाके नष्ट होनेका कोई हेतु नहीं मिलता तो उसका फल मोक्ष कैसे होगा ? इस रीतिसे निर्वाण और जगत व्यवहारकी अव्यवस्था होती है ॥५०१॥ और जो अक्षणिकत्व माना वा क्षणिकत्व न माना तो एक कालमेंही दृश्य, समचेतनका दृश्य प्रकाश्य है, यह स्वयं सिद्ध हो जायगा. ॥५०२॥ क्षणिकत्वका भाव किसमें ग्रहण हुवा ? ग्रहण कालमें विषयी तो है नहीं, इसलिये क्षणिकत्व प्रकाशक दूसरा मानोगे तो ग्रहणरूप

कार्य वास्ते क्षणिकत्वका अभाव मानना पडेगा. जब यूं है तो क्षणिकत्वाभाव हुये शून्यता आवेगी. इस शून्यत्व और क्षणिकाभावत्वका साक्षी कौन ? इनका किसमें ग्रहण हुवा? जवाब न दारद. जो विज्ञानकाही क्षणिकाभाव, ऐसा परिणाम मानें तो यह प्रकाश्य और जिसमें ग्रहण हुवा वोह समचेतन ठेरेगा. इसी प्रकार क्षणिकत्व परिणामकी उत्पत्ति नाश और परिणामोंके भेद जो किसीमें ग्रहण होना मानोगे तो क्षणिकत्वका प्रयोगही नहीं कर सकोगे. और जो परतः प्रमाण (अनुमानादि) से मानोगे तो उपरोक्त परतः वादवाले दोष आवेंगे. तथा क्षणिकवादमें तो अनुमानकीभी असिद्धि है. क्योंकि व्याप्तिके पूर्व संस्कार स्मृति, लिंग ओर साध्य यह सब समकालीन हों तब अनुमान हो, उस विना नहीं, परंतु क्षणिकवादमें सब क्षणिक अतः परतःवादभी नहीं. अंतमें स्वसिद्धांत जिसमें ग्रहण हो उसे अक्षणिक मानना होगा. जो स्वप्न समान क्षणिकपना कहैं अर्थात् एक मिनिटमें हजारों काम होते हैं. ऐसे क्षणिक मानें तो स्वप्नमें त्रिपुटी व्यवहार स्थायी होता है; स्मृति प्रतिभिज्ञा, कारण कार्य भाव होते हैं. वहां समूह परिणामी है. एक नहीं. दृष्टा, भोक्ता दृश्य भोग्यसे जुदा समकालीन होता है अतः क्षणिकसे विषम है. जो जाग्रत पीछेके भाव समान स्वप्नको क्षणिक कहैं तो उसकी स्मृति होती है. दृष्टा चेतन और मन स्वप्नवाले स्थायी वे के वे हैं. दीपक, शरीर, प्रतिबिंब समान क्षणिक वा नवीन नहीं इसलिये स्वप्न समान कहना असमीचीन है. बाह्य पदार्थकी सिद्धि उपर देखाई गई है, और वे आत्मामें ग्रहण होते हैं. यहभी उपर कहा गया है. इत्यादि रीतिसे समचेतन क्षणिक नही और प्रकाश्य, क्षणिक नहीं, अर्थात् त्रिपुटी व्यवहारभी क्षणिक नहीं और क्षणिक सिद्धांतभी क्षणिक नहीं ॥५०२॥ क्षणिक सिद्धांत लिखनेकी अपेक्षा नहीं है. विशेष खंडन मंडन देखना हो तो न्याय और वेदांत भाष्य, तत्त्वदर्शन अ. १ में बौद्ध मतका अपवाद देखो. बात यह है कि संसार क्षणभंगुर है. इसलिये क्षणिक शब्दका प्रयोग था. जिसका बतकड बनके खंडन मंडन चले. किंवा स्वरूपा प्रवेशके नियमके भयसे एक और कार्य व्यवस्था अर्थ क्षणिक परिणामी और ज्ञानव्यवहार होनेसे उसकी विज्ञान संज्ञा रख दी, ऐसा जान पडता है. अस्तु. ॥५०३॥

प्रस्तुत बाधवाद (स्वाभाविक अग्रभासवाद) मात्रके कारण कहे गये हैं कि जो अज्ञान वा माया उपाधि यदि अध्यासरूप नहीं किंतु जैसे रज्जु सर्पमें अविद्या उपादान है, सर्पका अध्यास है. ऐसे अज्ञान वा अध्यास होनेमें निमित्त है. तो उनका अद्यापि नाश न होने और अनादि माननेसे ब्रह्मवत् सत् ठेरेंगे. अतः स्वरूपा

प्रवेश नियम आडमें आवेगा. और जो बाधरूप होनेसे उनको अध्यासरूप मानें तो भ्रांतकी अपेक्षा. परंतु उसकी असिद्धि है तथा जब तक सर्वथा निवृत्त न हो जावे वहां तक अध्यासपदकी अनुत्पत्ति है. इसलिये नीलतावत् स्वाभाविक बाधरूप मानके व्यवस्था कर्तव्य है.

माया अज्ञान अध्यास विलक्षण उपाधि इत्यादि कल्पना जिज्ञासुओंके बोधार्थ मानी गइ हैं. किंवा पांडित्य मात्र है, ऐसा जानना चाहिये.

(शं.) क्या स्वाभाविक अवभासवाद (बाधवाद) सदोष नहीं, इसका खंडन नहीं ? स्वाभाविक शब्द कहतेही इस पक्षका खंडन हो जाता है. अतः यह पक्ष मान्य नहीं. (उ.) इस पक्षमें स्वाभाविकका आशय दूसरा है, सो उपर कह आये हैं. जो मन वाणीसे कल्पा जाय वा उसका विषय हो उन सबका खंडन हो जाता है. तो इसको तो क्या कहना है ? प्रकाश, प्रकाश्य, इस भावनासे इतर सबका निषेध हो सकता हैं. (तद. ३ सू. ९९० देखो). और भी "जिसने देखा नहीं है उसके जुवां; नहीं देखे जुवां करे है बयां"॥ इसलिये इस विषे ज्यादा कहना व्यर्थ है.

सारग्राही अनुभवदृष्टिको लें तो अध्यस्तवादवाले सब पक्ष समान हैं. और इस दृष्टिको छोडके वाद पर उतरें तो सबमें दोष आता है. थोडा दोषवाला उत्तर पक्ष है एसी मेरी मान्यता है. सोही इस प्रसंगका विषय है.*

जेसे स्वप्नमें जीवसे इतर वस्तु नहीं, तहां चेतनाश्रित शक्ति (माया संस्कारी मनस) अनेक नामरूप वाली भासती है, अर्थात् देशकाल विषय और गति विना, देशकाल विषय ओर गतिरूप सृष्टि भासमान होती है. सो चेतन दृष्टाके अनिर्वचनीय संबंधसे चमत्काररूप जान पडती है. मानो चेतन दृष्टाके ही परिणाम वा रूपांतर होय नहीं. वा जलतरंगवत् उसकाही स्फुर्ण होय नहीं, वा आपही त्रिपुटीरूप होय नहीं ऐसा भासता है. परंतु वस्तुतः वेसा नहीं है, किंतु मायाका स्वभाव है. सो दृश्य होता है. इसी प्रकार ब्रह्म चेतनमें बाधरूपसे स्वाभाविक प्रतीति होती है.

---

* ब्रह्मेतर जो माया वा दृश्य सो कल्पित नहीं पर कल्पितवत्, अकल्पित नहीं परंतु अकल्पितवत्, अध्यास नहीं पर अध्यासवत्, सत् नहीं पर सत्वत्, असत् नही पर असत्वत्, अर्थशून्य नहीं पर अर्थशून्यवत, अशून्य नहीं पर अशून्यवत्. अभावरूप नहीं पर अभाववत्, भाव रूप, नहीं पर भाववंत्. बाधरूप. इन सबमें स्वप्नसृष्टि उदाहरण है. वाह ! आश्चर्यरूपा अनिर्वचनीया, विलक्षणा, वाह !

जिसके संबंधमें मन वाणी कुछ नहीं कह सकते. और उभयके उपयोगका अध्यारोप उपर कहा गया है. इति.

(शंका) उपर त्रिवाद, परिणामवाद, सत्यकार्यवाद, अध्यस्तवाद ऐसे अनेक मत वा नाना शैली लिखी हैं. इसमें किसका स्वीकार करे?

(उत्तर.) श्रेयार्थ यथा अधिकार कर्तव्य ॥५०३॥ यथापरंपरासे साधनरूप त्रिवाद् वा जीवनमत ॥५०४॥ और इतरको इतर ॥५०५॥

जैसा और जिसमें अपना अधिकार हो वैसे और उस *विषयको ले के अपनाश्रय* करना चाहिये ॥ नहीं के सबको सब ॥५०३॥ जैसाके परपरामें साधनरूप उक्त त्रिवाद और जीवनमत देखते हैं. ॥५०४॥ इस समाप्ति प्रसगमें त्रिवाद जीवनमत स्मरणका हेतु *यथा अधिकार* शब्द है ॥ अर्थात् जबतक चिद ग्रंथीका मान और भंग और आत्मा मनका ठीक ठीक परीक्षापूर्वक अनुभव न हो वहा तक अपनी योग्यता (देशकाल स्थिति) का खूब विचार करना चाहिये हमारी मान्यतामें वहातक पूर्वार्द्धमें जो त्रिवाद कहा है उसको वा जीवनमतको पालना चाहिये बलके जीवन पर्यंत उसके सहायक होना चाहिये. क्योंकि उसके बिना जीवन नहीं होता, उससे जीवन अच्छा होता है, दूसरेको उपकार होता है, धर्म नीति मर्यादाको मदद मिलती है. और अंतिम फल मिलनेका परंपरासे साधन है, इत्यादि अनेक लाभ है इसलिये व्यवहारसे संबंध रखनेवाले जितने तत्त्ववेत्ता हुये है वे ज्ञानवान होने पीछेभी परार्थ उसको पालने और इसीका उपदेश करते आये है. इसका साधक, जब विशेष अधिकारको प्राप्त होगा तब आपही आगे चलनेके मार्ग शोधेगा यथा अधिकार शब्द कुछ त्रिवाद-काही आग्रह नहीं करता किंतु यथायोग्यता करना सूचता है उसके दृष्टांतमें त्रिवाद जीवनमत है. अतः अपने अधिकारानुसार प्रवृत्तिकांड, कर्मकांड, भक्ति, उपासना, क्रियायोग, वा सांख्ययोग इत्यादि करना चाहिये. ॥५०४॥ उससे इतर प्रकारके अधिकारीको इतर प्रकार ग्राह्य (कर्तव्य) है. ॥५०५॥

जीवनमतका सार.

(५०४) जिस वर्तनमें जीवन सुखेन हो उसे किवा योग्य जीवन करने-वालोंका जो मत है, उसे जीवनमत कहते हैं (विस्तार तत्त्वदर्शन अ. ४ में है) यहां संक्षेपमें नाम मात्र जनाते हैं:—

(१) जीवन पर्यंत अपने तन मनको अयोग्य दुःख न हो इस प्रकार वर्तता

हुवा सुखमे जीना और दूसरेके तन मनका सुख भंग न करना याने दूसरेको अपनेसे अनुचित दुःख न हो ऐसे वर्तना. (२) यह वा जो जो सर्वतंत्र सिद्धांत हैं याने सबको स्वीकारित हैं उनको यथा देशकाल स्थिति अधिकार यथाशक्ति मानना और पालना. जैसे के सत्य, अस्तेय (परका न हरण) तन मन वाणीकी पवित्रता, इंद्रियों पर काबु, मन पर काबु, धिवृद्धि, विद्यावृद्धि, धृति (धारना-धीरज), योग्य क्षमा, अक्रोध यह १० याने सबको मान्य हैं और सुखकारी हैं. क्योंकि जबतब (युद्धकाल पीछे वा अन्यकालमें) न्याय नीति मर्यादाकाही बल होता है (३) सृष्टि नियमानुकूल वर्तन और ब्रह्मचर्य* पालनसे तन सुख फल होता है (४) तन सुख और विद्या विवेक संपादनसे मानसिक सुख फल होता है अथवा विद्या विवेक संपादनसे तन और मन सुखभी फल होता है (५) उद्योग (धंधा) करनेसे धन सुख फल होता है (६) तन मन और धन यह तीनों सुख हुये पति पत्निको परस्परका और संतानका सुख फल होता है (७) बुद्धि, तन, मन, धन, धर्म, विद्या, उद्योग, हुनरकला और संप इन नो ९ बल करके सत्ता सुख फल होता है. अर्थात् जिस राजाकी प्रजामें बुद्धि आदि हो उस राजाको सत्ताका सुख होता है. (८) अनासुरी भाव रहित जो दैवी संपत्ति (गीता. अ. १६ देखो) उससे सिद्धिफल होता है. (सच्चा अच्छा विचार, सच्चा अच्छा उच्चार और सच्चा अच्छा आचार यह उसकी पहेली सीढी है) (९) प्रेम, आरोग्यता, संप, विद्या, समानभाव, परस्परकी रक्षा, दूसरेमें अतिरस्कार, स्वसंबंधमें स्वतंत्र, पर संबंधमें परतंत्रता, स्वत्व, उद्योग, नीति, सदाचार, संग्रह सभा, ऐक्यता (उद्देश, धर्म, विचार, भाषा, लीपी, संवत, मास, सिक्का, मापतोल, सामान्य रीति रिवाज, न्याय कानून) इन तेरा सामग्रीसे सामाजिक सुख (उन्नति) फल होता है इसलिये राजाको जो सामाजिक याने प्रजाके सुखकी इच्छा हो तो इनका प्रचार करे. (१०) विवेक (सृष्टि नियमानुकूल सदसद्का निर्णय) सहित जो योग (शुद्ध चितका निरोध) उससे इस लोकका सुख (प्रेयस्) और परलोकका सुख (श्रेयस्) यह दोनों सुख प्राप्त हो सकते हैं (पातंजल योगदर्शन वांचो). (११) हरेक प्रकारकी स्थिति प्राप्त होने पर संतोष रहेनेसे और समदर्शीपनेसे परम सुख फल होता है. (१२) और योग्य निष्कामता हुए निर्लेपपना (आज़ादि)

---

* गृहस्थ हो तो गृहस्थ ब्रह्मचर्य पाले और व्यायामभी करे.

सुख फल होता है तथा इस निष्कामी पुरुषमे उपदेशका परिणाम (ग्रहण फल) होता है (१३) उपरोक्त बातें यथा अधिकार यथा शक्ति कर्तव्य भावमे करने योग्य है (१४) विशेष मूलमें. ॥ ज्ञानी, अज्ञानी, विषयी, पामर, जिज्ञासु अतर्या हरकोइको जीवन मतके कोई न कोई अथका धारनाही पडेगा क्योंकी तन मनकी रक्षा विना जीवन वा ज्ञान विज्ञान, नहीं हो सकता, (त्रिवाद पूर्वार्द्धमे कहा है)

(नोट)—(शंका) जब कि अनिर्वचनीय तब जीवन मतही वा त्रिवाद ही क्यो? (उ) अनिश्चित नहीं किंतु निश्चित है. नहीं तो जीवन न चले. शरीर यात्रार्थ वा अन्य कर्म ज्ञानीकोभी करनाही पडता है तो फेर अन्योंमे उत्तम व्यवहारमभी और परमार्थमेंभी उपयोगी उसपर कुदृष्टि क्यो? मानो के कल्पित है तो क्या दूसरे कल्पित नही? जैसाके पहले भागमे दिखाया है, औरभी विचारिये—अमुक त्रि अमुककी, अमुककी अमुक कीमत, यह सिक्का, इत्यादि व्यवहार कल्पित नही तो क्या? परतु इनका परिणाम जो होता है वोह उत्तम है ओर कल्पित नहा जैसे यह बातें (व्यवहार) लोकके सुखार्थ कल्पी गई वैसे तथा जिसका परिणाम विशेष सुख हो ओर यदि दुःख वा दोष हो तोभी दूसरेसे कम हो ऐसा कल्पित व्यवहार लोकम मान्य हो जाता है वैसे, अन्य कल्पित मत पथोमे उक्त त्रिवाद (जीव ईश्वर प्रकृति जुदा जुदा) लोकिक सुख वास्ते उत्तम जान पडता है, जथवा अन्योंसे न्यून दोषवाला है ऐसा मैं मानता हूं तथाहि जिससे मनको शाति मिले—रिके—सुखी रहे वा निश्चाम पसद होता है परतु उसके साथही यहभी विचार रखना पडता है कि उसका अपने पर और सोमायटी (लोकिक समाज) पर क्या असर होगा? यदि अनुत्तम असर हो तो वैसा विश्रामग्राह्य नहीं है, ओर उत्तम असर हो तो ग्राह्य है त्रिवादका विश्राम स्व पर उपर उत्तम असर करे, ऐसी मेरी मान्यतामें है. तथाहि जो नॉवल कल्पित हो परन्तु उत्तम गुण कर्म स्वभावका बोधक हो ओर लोकोपयोगी हो तो क्या वोह सस्कार जनक होनेमे उपयोगी न होगा? गेचक नॉवल न के जान पूर्वक ऐसे उत्तम नॉवल गत, भावना विश्वास हुये उस अनुसार वर्तनमे उत्तम फल होता है, यह सुप्रसिद्ध है. तो फेर सम सत्तावाले त्रिवादरूप लकडीके जीनेपर भावना विश्वासवश चढनेसे सुख मंजिल (मुक्ति) प्राप्त न होगा क्या? होनाही चाहिये जैसाके पूर्वार्द्धम जनाया है इसी वास्ते जिससे नीच आचार विचार उत्पन्नका सस्कार मिले वैसे नॉवलका रचना निषेध माना गया है कुरेवी, रनावटी, कुलसी ओर विपयासा अनेक रखने

मिल जाते है उसमे ढलीले करता हे. क्या उसकी वृत्तिपर जाके त्रिवादके उत्तम जीनेपर चढनेमे वर्जित रहना उचित समझेंगे ? नही जगे जगे कहा गया है कि त्रिवाद परपरासे श्रेयका ओर साक्षातमे धर्म, अर्थ, काम और श्रेय साधनका साधन है इसलिये उसको मान देना उचित है, यह मेरा खयाल है क्योकि आत्म अनुभव पीछेभी आपभी इसको स्वीकारेगे. त्रिवादमे कर्म योग, क्रियायोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, उपासनायोग, ऐसे नाम देके उनकी एकता बनाई है, वैसेही साख्ययोगके वास्ते जान सकोगे आशयपर न पहोचनेवाले एक दूसरेका निषेध करते है वस्तुतः अधिकार दृष्टिमे जिसको सो उपयोगी है. यह मतमें जीवन, देशहित मुख्य उद्देश और अन्य विषय गौण है ओर त्रिवादमे धर्म नीति और मोक्ष प्राप्ति मुख्य उद्देश और अन्य विषय गौण है. अतः उनमेंमे अपने अधिकार अनुसार ग्रहण करना उचित हे. आगे आपकी जैसी इच्छा क्योंकि इस स्वाभाविक अवभासवाद (अतिमवाद) का किसी धर्म मत पथके साथ विरोध नहीं हे जिसको जिसमे दु ख रहित सुख शाति मिले, जिसम श्रेय हो वोह उसको ग्रहण करो और आनदमें रहो, इतनाही उद्गार है. क्योकि—मृ ४९१

+ यथा जब मुमुक्षु हो याने आत्मानुभव करनेका अधिकारी हो तब विशिष्टवादमें कहे अनुसार मनका अभ्यास करके गुरुद्वारा आत्मानुभव करे. आरण्यम जाके अभ्यास करे तो शीघ्र उत्तम फल होगा. यदि गृहस्थाश्रममें अनुकूलता हो और साधन सपन्न हो तो वहा करे. उस पीछे जैसे अदृष्ट होगे वैसे प्रवृत्ति होगी यदि सत्कार्यवादमें फिरता हो तो सर्वात्मा जानके परार्थ जीवन करे जो स्वार्थमे प्रवृत्ति हो तो ससार क्षणिक जानके स्वरूपमे रत रहे जो अदृष्ट निवृत्तिके हो तो मनोराज्य वासना क्षय वास्ते अध्यासवाद ठीक होगा जो त्रिगुणातीत होके विचरना हो तो दृष्टि सृष्टिवाद ठीक होगा जो परोपकारार्थ जीवन करना हो तो विलक्षणवाद वा बाधवाद स्वाभाविक अवभासवाद) ठीक होगा जो प्रेममय जीवन करना हो तो विवर्तोपादान ठीक होगा. इत्यादि यथा रुचि यथा अधिकार ग्रहण करना चाहिये. तमाम अध्यस्तवादोका लक्ष्य एकही है (ब्रह्म सत्य जग विलक्षण). सक्षेपमे हमारी दृष्टिमे कोई आरोप प्रतिकूल नहीं है. ॥६०६॥

+ गत पृष्ठ ४३० की २३ वीं लकीर पिछे यह अनुसधान बराबर शुरु होता है ऐसा पृष्ठमें ' जाव्रामतका सार म ऐसे इस पृष्ठका ऊपरतफका बाचवाला भाग विस्तृत नोट रूप है उसका पाठक यथाक्रम बांचे

उपसंहार.

वस्तुतः नेति और अन्यथेति ॥५०६॥ अत्रवत् तत्र तत्रवत् अत्र ॥५०७॥ वर्तमाने वर्तमानवत् वर्तमाने वर्तमानवत् ॥५०८॥ वृत्ति.

समचेतन प्रकाश (अधिष्ठान, ब्रह्म, आत्मा) और प्रकाश्य (अध्यस्त-माया-आधेय-अव्यक्त) इन उभयके स्वरूप संबंधमें वस्तुतः नेति नेति और अन्यथा अन्यथाका प्रयोग है ॥५०६॥ अर्थात् स्वप्रकाश चेतनको जेसा मानने कहते हैं वेसा नहीं वेसा नहीं किंतु उससे अन्य प्रकारका है (याने नेति नेति कहते जो शेष रहे सो है) और प्रकाश्यको, जेसा मानते वा कहते हैं उससे और प्रकारका है. (दो वारके उच्चारणका रहस्य स्पष्ट है) कारणके स्वप्रकाश तो सबसे पर है उसका कोई प्रकाशक नहीं है. और नियोपयोगी जो शब्दादि विषय हैं उनके स्वरूप लक्षणभी वाणीके विषय नहीं हैं, और कितनेक मन बुद्धिकेभी विषय नहीं हैं तो उसके मूलके स्वरूप वास्ते अन्यथा शब्द कहें और प्रकाश वास्ते नेति शब्द कहें तो इसमें क्या आश्चर्य करना ! लक्ष्यालक्ष्य सिद्धांत होने तक तो (चिदग्रंथी भंग-तुर्या होने तक तो) कुछभी कहनेका अधिकार नहीं है ॥५०६॥ जेसा यहां (जाग्रतमें) वेसा वहां (स्वप्नमें) और जेसा वहां वेसा यहां है ऐसा जान लेना चाहिये ॥५०७॥ स्वप्नसृष्टि (वहांकी जायत) में जेसा देखा सुना माना गया कहा लिखा गया, वेसाही यहां जाग्रतमें देखा सुना माना या कहा लिखा गया. किंवा जेसा जाग्रतमें देखना वगेरे हुवा वेसे स्वप्नमें देखना वगेरे हुवा होय नहीं, ऐसा कुछ है. और जेसा कुछ है वोह अकथ्य रीति-अवर्णनीय प्रकारसे स्वतः अपरोक्ष स्वतोग्रह होता है इसलिये इससे विशेष और कुछ हम नहीं कह सकते ॥ जेसे यहां नेति अन्यथा वेसे वहां नेति अन्यथा, और जेसे वहां नेति अन्यथा वेसे यहां. उभयके व्यतिरेकसे निश्चय कर सकते हैं कि किसी अचिंत्य शक्ति (अगम्य ताकत) वद्ध अव्यक्तमेंसे इस वायरूप प्रतीति होने रहनेका प्रवाह है. और (१) उसमें सब (२) वोह सबमें (३) उससे सब (४) अस्ति भाति रूप वही सब है. इन चारोंकी एक वास्यता है. तथापि प्रकाश नेतिका और प्रकाश्य अन्यथाका शेष है याने उनका ऐसा स्वरूप है. ॥५०७॥

---

५०७ जेसे परखंडमें गये हुये मित्रको स्वप्नमें घर ही है ऐसा मानके मनमें निश्चय करते हैं कि उसे सोमवारको मिलेंगे. फेर जागने बाद स्वप्नकी स्मृतिभी नहीं और मित्र परखंडमेंही है. कई जाग्रत पीछे पुनः स्वप्नमें उसी स्मृतिवश मित्रसे मंगलवारको मिलना है और कहता है कि मैंने गई काल (सोमवार) को आनेका निश्चय किया था.

परंतु न आ सका. जेसे यह स्मृति हुई ऐसेही जाग्रतका व्यवहार है. ऐसाक कुछ है.

यहां तक आरण्यक प्रकरण (उत्तरार्द्ध) समाप्त हुवा. अब आगे ज्ञानवान जीवन-मुक्त पुरुषकी प्रवृत्ति कहते हुये ग्रंथका उपसंहार करते हैं :—

वर्तमानमें (अदृष्ट भोग कालमें वा वर्तमान दृश्य स्थिति कालमें) यथा वर्तमान (*याने यथा देशकाल स्थिति अधिकार परिस्थिति*) वर्तना और उपदेश करना योग्य है ॥१०८॥ अर्थात् जिममें लोकहित (व्यष्टि समष्टिकी उन्नति-प्रेयस्-श्रेयस्) होता हो, प्रेम नीति मर्यादा, समानता और भ्रातृभावका प्रचार होता हो वेसा उपाय लेना चाहिये. और सफल प्रवृति होना चाहिये. निराशाबोधक वा निष्फल प्रवृत्ति न होना चाहिये. और जिसके मंद प्रारब्ध हों किंवा निवृत्तिके अदृष्ट हों ते उसको चाहिये के किसीके बादगिरां न होके अपने पुरुषार्थसे जीवन करे. और जीवनमुक्त हो ते जीवनमुक्तिके भोगार्थ मनोराज्य वासना क्षयके वास्ते एकांत निवास करे और जो वोह अभी प्यासा हो ते अध्यात्म विद्याका अभ्यास करे. परंतु मिथ्या न होना चाहिये.

किसी सचेत अभ्यासीको कभी स्वप्न, स्वप्न रूपमेंभी भास जाता है. किसीको स्वप्नका भोग उदासीन प्रवाह रूपमें होता है. जिसको सत्‌रूप भासता है वोह सतरूपसे भोगता है. इसी प्रकारसे जाग्रतका वर्तन है. कोई मायाका स्वाभाविक क्षणभंगुर प्रवाह मानता है; किसीको यह दृश्य उपरामता योग्य (उदासीन) भासता है, किसीको दुःखरूप और किसीको सुखरूप भासता है. कोई यहां निष्काम तो कोई यहां सकाम होता है और वेसेही वर्तता है. परंतु विवेकी ज्ञानवानका वर्तन तो बाधित वृत्तिसे निष्काम प्रवाह रूपमे होता है. उसकी भावना ईश्वरादि विषयमें (पारमार्थिक विषयमें) संशय विपरीत भावना रहित होती है और इच्छित अनेच्छित परेच्छित योग्य वर्तन होता है. इसीको उसके लिये वर्तमाने वर्तमानवतका प्रयोग है ॥ इसी वाक्यका दूसरीवार उच्चारण ग्रंथ समाप्ति सूचनार्थ है. ॥१०८॥

इति आरण्यकाधिकारी मंडलार्थि प्रकाश्य प्रकाशबोधक **उत्तरार्द्ध समाप्त हुवा.**

इति पूज्य स्वामीश्री ब्रह्मानंदजीके शिष्य स्वामीश्री भास्करानंदजी

प्रयोजित ब्रह्मसिद्धांत

ग्रंथ समाप्त हुवा.

ॐ

नोट :—१

जगद्विलक्षणं ब्रह्मसत्यमेकाचितिर्मतः ।

नद्वितीयेति सिद्धांतोऽनुभूतेर्युक्तितः श्रुतेः ॥ १ ॥

जगतमे विलक्षण ब्रह्म है, वोह सत्य है, एक है, चेतन है, द्वितीय चेतन नहीं है, ऐसा मत है. यह सिद्धांत है, सो अनुभव युक्ति और श्रुतिसे सिद्ध है ॥ १ ॥

दोहा :—

नेति नेति और अन्यथा, अन्यथेतिका शेष;
सो प्रकाश प्रकाश्यका, मान स्वरूप अवशेष. ॥ १ ॥
ब्रह्म इतर नहीं सत कछु, और न असत् यह दृश्य;
चावरूप अवभास हैं, इचरज वात अकथ्य. ॥ २ ॥
॥ ब्रह्मसत्यं जगविलक्षण चेतन एक न दूसरा ॥
पडे भटकते हैं लाखों पंडित, किरोडों दाना हजारों स्याने. ।
नही किसीकी है ऐसी ताकत, यह राज मखफी कोई बखाने. ॥

गुप्तभेद :—

मैं नहीं कुछ जानता इस बातको हूं जानता;
इसलिये जो माना कैसे हो उसकी मान्यता.

कृपीके घर रत्न — नहीं, जीवन सुख पावे;
भाग्यहीन को ईश मिले तो शांति न आवे.

नोट :—२

इससे पूर्वलिखित मसोदेमें यदि कोई लेख इसके विरुद्ध निकले तो वोह ..... है और अनुकूल हो सो ग्राह्य है, ऐसा जानना चाहिये. और इस ग्रंथ लिखितसे उत्तर सत्य मिले तो उसको लेना चाहिये. हमेशे असत्य त्याग और सत्य ग्रहणमें उद्यत रहना चाहिये यह आर्य पुरुषोंका धर्म है. यह आशय भूमिकामें कहा गया है (ग्रंथकर्ता).

परिशिष्ट.

(शं) नाना धर्म मतपंथ प्रजाके हानीकारक हैं सो देख रहे हैं. अतः तुम्हारा नवीन वा प्राचीन उक्त अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद) वा विलक्षणवाद वा बाधवादभी एक प्रकारका मत है सोभी जनमंडलको हानीकारक हो, वा हानीकारकका उत्तेजक होना चाहिये क्योंकि १०० के बदले १०१ हुवा. (उ.) आपके लिये आपका मंतव्य स्वीकारते हैं. क्योंकि आप यथा अधिकार कहते हो. हमारा प्राचीन मंतव्य आप मानो एसा आग्रह नहीं है. आपको योग्य न मालूम हो तो ग्रहण मत करो, प्रत्युत खंडन कीजिये. परंतु जब के आप जनमंडलका लाभ चाहते हैं, उसकी उन्नति मनसे इच्छते हैं तो आपके लिये वक्ष्यमाण नोधाभक्ति कर्तव्य है. सो महेरबानी करके स्वीकारिये. नहींतो आपका कथन मिथ्यालाप है.

शब्दप्रमाण.

ग्रंथोक्त अनुशासनपद तथा शैल्यंतरकी सार्थकता.

(१) ग्रंथमें शब्दसे उपेक्षा रखी है, अतः ग्रंथोक्त विषयार्थ शब्दप्रमाण बतानेकी अपेक्षा नहीं है. तथापि आरंभमें अनुशासनपद लिखा है वोह सार्थ है, इसका बोध हो जाय, जिज्ञासुको शांति हो, और शैलीयोंमें अंतर होता है यह स्पष्ट हो जाय, इसलिये ग्रंथोक्त विषयके लिये प्रमाण लिखते हैं. यद्यपि शैलीका प्रमाण नहीं है इसलियें तत्संबंधी कोई कोई प्रकारका प्रमाण नहीं दिया है तथापि मुख्य विषय जीव, ईश्वर, प्रकृति, बंध, मोक्ष, मोक्षके साधन और सृष्टि उत्पत्ति स्थिति लय संबंधके प्रमाण दिये जावेंगे.

(२) प्रमाण देनेवाले बहुधा अपने आशयबोधक पद लेते हैं. पूर्व उत्तरकी संगतिको नहीं दरसाते. यथा जेसे के " न जायते म्रियते. " इस कठ श्रुति १८ को जीव नहीं मरता इस प्रसंगमें लगा देते हैं और इस बलसे जीवको नित्य अणु सिद्ध करते हैं. परंतु जो मूलमें प्रसंग देखोगे तो यह प्रत्यगात्मा ब्रह्मचेतनबोधक श्रुति है. क्योंकि वहां नं. १८ से पूर्व निरुपाधि अक्षरब्रह्मका वर्णन है. नं. १८ से प्रत्यगात्मा (शरीरावच्छिन्नात्मा) का वर्णन है.

यथा 'न जायते म्रियते न हन्यते हन्यमाने शरीरे ' १८ ॥ ' हन्ताचेत ' १९, ' अणोरणीयान् महतो महीयान् ' २० । ' आसीनो दूर व्रजति. ' २१ इस प्रकारसे श्रुति हैं. शरीरका संबंध लिया है और राग द्वेषवाले परिछिन्नको महतो महीयान्

नहीं कहा जा सकता तथा वोह महतो महीयान् अचल और दूर है जिसके ज्ञानसे शोक रहित होता है, यह जीवके लिये नहीं कह सकते किंतु ज्ञेय ब्रह्मके विशेषण हो सकते हैं. अतः प्रत्यागात्मबोधक श्रुति है प्रत्यागात्मा (शरीरस्थात्मा) ब्रह्म है.

इस उदाहरण देनेका आशय यह है कि दिये हुये प्रमाणके अंधपरंपरावत मानके संतुष्ट न होना चाहिये. किंतु मूल वाक्य और पूर्वोत्तर प्रसंग तथा उस विषे वृत्तिकारोंके जो अर्थ वा आशय हैं उनको विचारके निश्चय करना चाहिये. इत्यादि दृष्टिसे प्रमाण लिखनेकी आवश्यकता न थी परंतु पाठककी शांति अर्थ लिखे हैं. नहीं तो लक्ष्यात्मा प्रसंगमें जेसे अनावश्यकता लिख आये हैं वेसा है.

(२) प्रस्तुत विषयके ..ति प्रमाणोंका समूह शारीरिक शंकर भाष्य, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, वेदांत आर्यभाष्यमें है. यह प्रसिद्ध ग्रंथ हैं. हमने तो बहोत थोडे लिखे हैं. उसमेंभी द्वैताद्वैतके झपडेवाले प्रमाणोंकी आवश्यकता न जानके वे नहीं लिखे हैं, (तत्त्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, इत्यादि तकरारी वाक्य कहाते हैं) किंतु ज. संज्ञामे जुदा टांके हैं.

(३) प्रसिद्ध द्वैतमें प्रमाणकी आवश्यकता नहीं. ब्रह्मकी जिज्ञासा बंध और मोक्ष होना, यह दे। वाक्यही द्वैतकी सिद्धि कर देते हैं. इसलिये अद्वैतसिद्धिकी तरफ दोडें तो साधकताही उसकी विरोधी हो जाती है. तथा एक निरवयव तत्त्वका अपनेमें आप उपयोग न होनेमे अद्वैतमें निष्फलत्वकी आपत्ति हो जाती है और अद्वैतबोधक श्रुति तो हैं. यथा " न किंचिन मासीत " " नेहनानास्तिकिंचन " इसलिये उभयवादसूचक शास्त्र वचनकी व्यवस्था कर्तव्य है. जेसे के उत्तर फिलोसोफी और अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद) मे हो जाती है.

४—आगे जो प्रमाण, लिखें हैं उनमें त्रिवाद (पुर्वार्द्ध) प्रसंगके हैं और अवच्छेदवाद (उतरार्द्ध) प्रसंगके हैं. उनमें भी संहिता श्रुति और उपनिषद् श्रुतिके भिन्न २ लिखे हैं इनमें परस्परमें बहुत विरोध है. यह स्वयं जान लोगे. यथा " ब्रह्म निष्क्रिय निर्गुण अकर्ता " और " सक्रिय सगुण और कर्ता. " " जीव अणु, " और " मध्यम. " " एक अद्वैत अन्य किंचित नहीं और प्रकृति (माया) अजा–अनादि. " "आत्मा कर्ता भोक्ता और न कर्ता न भोक्ता" "मोक्षमे आवृत्ति और अनावृत्ति" इत्यादि

रूपका विरोधाभास है. ऐसा क्यों? याते श्रुतिभ्रांत, या वक्ता भिन्न भिन्न हैं. इसलिये मतभेद वा तो गुप्त रहस्य रखा हो. प्रथमके दो विकल्प मानना सूर्य आकाशपर थूकने समान है. तीसरा ठीक जान पडता है, जेसे के आचार्योंने विरोधका निवारण किया है. उसका स्पष्टिकरण अवच्छेदवाद और उत्तर फिलोसोफीसे हो जाता है. चोथा विकल्प यह मानें के श्रुतिके अर्थ अज्ञात वा उसमें सेलभेल. तो शब्द प्रमाण लेने वा पूछनेकी ही आवश्यकता न रही.

५—प्रलयके प्रमाण दिये हैं परंतु अप्रलय अर्थात् अनादिसे उपचय अपचयका प्रवाह, इस नवीन थीयरीका प्रमाण नहीं दिया जा सकता, इसलिये न पावोगे.

६—वेद श्रुतिसे इतर भगवद्गीता व्याससूत्रके प्रमाणभी दिये हैं क्योंकि उसने प्राचीन उपनिषदोंके रहस्यको व्यवहार, नीति, लोकमर्यादा, धर्म और परमार्थरूपमें स्पष्ट किया है. यद्यपि गीतामें ब्रह्मसूत्रसे अनेक प्रसंगमें विरोधाभास है (आगे वांचोगे) इसका कारणका क्या? याते वक्ता (श्री कृष्ण महाराज, वा योजक वेदव्यास, वा अन्य) भ्रांत वा तो गीतामें व्यासवचनमें अनेकोंके वाक्य शामिल हो गये हैं वा तो अन्य रहस्य है. इन तीन विकल्पों विषे अन्यत्र बयान हो चुका है. तथापि जब कि विशिष्टवाद (अवच्छेदवाद) और उत्तर फिलोसोफीकी दृष्टिसे देखोगे तो विरोधोंकी व्यवस्था हो सकती हैं. इसलिये पहेले दो विकल्पके लिये समय गुमानेकी जरुरत नहीं क्योंकि गीताजी व्यवहार, नीति, धर्म और परमार्थबोधक होनेसे मानवमंडलके अधिक भागको प्रिय है और शेषको यदि प्रिय नहीं तो अप्रियभी नहीं है. उसके प्रतिपक्षी तो धर्म हठीले वा उसके बोधसे अनभिज्ञ जो हों सो हैं.

जेसे गीता उपनिषदका वेसे उपनिषद वेदका व्याख्यान है, और पूर्वार्द्ध तथा अद्वैतादर्शमें, उपनिषदमे वेद मुख्य है ऐसा दरसाया है, इसलिये इस ग्रंथोक्त विषयोंमे वेदकाही प्रमाण देना चाहिये. ऐसी शंकाके समाधानमें कहनेका यह है : (१) शब्दको बीचमे न लेनेका कारण उपर कहा है (२) अद्वैतादर्श विषे अमुक अंशमें उभयकी समानताभी दिखाई है. (३) उपनिषदकार ऋषिओं, वेदको अपरा विद्या मानते हैं, परा उसमे अन्य (ईशादि उपनिषद) बताते हैं (४) उपनिषदों समान उसमें साक्षीभी पाई जाती है (५) उसकी प्रमाणता और उपयोग उपर कहा है (६) जीव अणु वा विभु, ऐसा स्पष्टीकरण वेदमंत्रों विषे देखनेमें नहीं आया. तथाहि जीवके स्वरुपका स्पष्टीकरण. यदि कुछ

स्पष्टीकरण करते हैं तो उपनिषद. सारांश ऐसे प्रसंगोमें क्या प्रमाण देना? इत्यादि कारणसे एककी नहीं किंतु उभयके प्रमाणकी अपेक्षा रहती है. और इसी प्रकार दोनोंको मानते मनाने चले आ रहे हैं (हमको शब्दका आग्रह नहीं है इसलिये उक्त शंका व्यर्थ है).

(७) हमको खुले मनसे कहना पडता है कि श्रुतियोंमें, गीताके वाक्योंमें और वेदांत सूत्रोंमें जहां जहां विरोधाभास जान पडता है उनका निवारण यदि हो सकता है तो शंकराचार्यजी महाराजकी थीयरीसेही हो सकता है. अर्थात् माया अविद्याकृत अध्यास, मायाविशिष्ट चेतन, अविद्योपहित वा विशिष्ट चेतन जीव, अनादि अनंत अध्यास, विवर्त्तवाद—मायावाद इस थीअरीसे ही विरोध निवारण हो सकता है. अन्य प्रकार नहीं जान पडता. द्वैतवादि सत्कार्यवादि उन विरोधोंका निवारण नहीं कर सकते. इसलिये शंकरश्रीके विवर्त शब्दका उल्लेख श्रुति, गीता, ब्रह्मसूत्रमें नहीं भी हो तोभी शंकर थीयरी ग्राह्य है. ऐसा है.

(क) पूर्वोद्धोक्त विवाद संबंधमें संहिता श्रुतिप्रमाण.

१ ईशावास्यं ** तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः य. अ. ४०—१ ।
(ईश्वर और निष्काम भोग)

२ कुर्वन्नेवेह कर्माणि. * न लिप्यते नरो य. ४० — २ ॥ (निष्कामकर्म)

३ सपर्यगाच्छुक्र. य. अ. ४० मं. ८ (ईश्वर अकाय शुद्ध पाप अवध सर्वज्ञ)

४ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे * पतिरेक आसीत्. ॥ ऋ अ ८ + अ. ७ व. ३ मं. १ सृष्टिके पूर्व परमेश्वरही वर्तमान था. वोह इस जगतका स्वामी है. वोही सब जगतको रचके धारण कर रहा है. वोही उपास्य है.

५ तम आसीत् तमसा गूढमग्रे ० ॥ ऋ. अ ८ * ७ व. १७ मं. ३ (सृष्टि पूर्व तम था)

६ ऋतंचसत्यं ** सूर्याचंद्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्. ऋ. अ. ८ अ. ८ व. ४८ मं १, २, ३ ॥ धाता परमेश्वरने पूर्व समान सूर्य चंद्रादि लोक रचे. रात दिन, वेद (ऋतं) प्रकृति (सत्यं) पृथ्वी समुद्र इत्यादि रचे हैं ॥ (सृष्टि उत्पत्ति स्थिति प्रलय सूचक) यथेच्छा यथा पूर्वम् किंवा यथा कर्म (कोई प्रकारका भी) यथा पूर्वम् किंवा यथा कर्म यथा पूर्वम् सूर्यादि सृष्टि यह २ भाव हैं पहला नहीं बनता.

७ देवा : पितरो० अथर्व. कां. ११-प्र. २४-अनु. ८ - मं. २७ (देव, पितर, मनुष्य, गंधर्व, अपसरा, सूर्यादि प्रकाशलोक और प्रकाश रहित लोक ईश्वरके सामर्थसे पेदा हुये हैं, अमैथुनी सृष्टि).

८ सहस्र शीर्षा. यजु. पुरुष सुक्त. (इसमें वेद सूर्य चंद्र विराट अश्व विजली, पशु गाय बकरी, पृथ्वी, इंद्रिय, सप्त परिधि, ब्राह्मणादि, पृथ्व्यादि तत्त्व ईश्वरकी शक्तिसे रचें गये, ऐसा वर्णन है.)

९ पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि. य. पुरुष सुक्त (तमाम जगत परमेश्वरके एक भाग जगतमें है. प्रकाश गुणवाला उससे तीनगुना है. मोक्ष सुख उसी ज्ञान प्रकाशमें है.

१० द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानंवृक्षं परिषस्वजाते ० ऋ. अ. २ अ ३. वर्ग ७ ॥ (जीव ईश्वरका भेद सूचक जीव कर्ता भोक्ता और इश्वर कर्म कर्ता भोक्ता नहीं ऐसा बोधक) शब्दार्थ. दोपक्षी साथ मिले हुये, सखा जेसे हैं और अपने समान वृक्ष (सृष्टि-संसार-जगत) के सब औरसे संग हैं उन दोनोंमेंसे एक तो फलको स्वादु मानके खाता है और दूसरा न खाता हुवा साक्षी मात्र है. ॥

११ नमः शंभवाय. यजु १६-४ (ब्रह्म आनंद स्वरुप है)

१२ कस्यनूनं कतमस्यामृतानां *** पुनर्दात् पितरंच दृशेयं मातरंच ॥ (उ.) अग्नेर्वयं ++ ॥ ऋ. मं. १, सू. २० मंत्र १-२ ॥ (पुनर्जन्म सूचक. मुक्तिसे आवृत्ति बोधक) इसके अर्थमें इतना विवाद है अर्थात अमृताना पदका एक अर्थ मुक्तोमें. दूसरा अर्थ देवोंमें ॥ मुक्त अर्थ करें तो मोक्षसे आवृत्ति स्पष्ट हो जाती है. त्रिवादमें आवृत्ति अनावृत्ति उभय मानी है)

१३ तद्विष्णोः परमंपदं सदापश्यन्ति सूरय : ० ॥ ऋ. १-२-७-९ परमात्माके तिस परमपद (मोक्ष) को मुक्तात्मा सर्वदा अनुभव करते हैं. (मुक्तिमे अनावृत्ति.)

१४ यज्ञेनयज्ञमय जन्त ** यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिदेवा : यजु. पुरुषसुक्त. ईश्वरके उपासक सब दुःखोंसे छूटके अत्यंत पूज्य होते हैं. जहां पुरुषार्थसे प्राप्त हुये विद्वान सदा आनंदमें रहते हैं उसे मोक्ष कहते हैं, उसमे निवृत्त हो के संसार दुःखमें कभी नही गिरते. उनको अज्ञानरूपांधकार कभी नहीं होता. (अनावृत्ति)

१५ यत्रदेवा अमृत मानशाना य ३२-१० येयज्ञेन दक्षणया. ॐ यजु. अ. ३२. मं. १० (परमेश्वरमें देव, मोक्षको प्राप्त होके सदा आनंदमें रहेते हे. और वे तिसरे धाम (उत्तम सुख) मे हमेशा स्वच्छदतामें रमण करते है.

१६ द्वितीयायांसृतौ पुनः नजायते न म्रियतेच द्वेसृती अशृणवं० । यजु १९-४७ ॥ पितृयान मार्गमे जानेवाला पुनः जन्मता हे मरता है और देव यानमे जाने वाला पुनः जन्मता मरता नही हे (अनावृत्ति है).

१७ युक्तेन मनसावयं० यजु. ११-२ ॥ मनको एकाग्र करके कर्म वा उपासना कर्तव्य हे)

१८ प्रातः प्रातः ॥ सायं सायं. अथर्व का. १९ अ. ७ सू. ५९ मं. ३-४ (नित्यकर्म संध्योपासना विधान तथा हवन (नित्ययज्ञ) विधान. इन मंत्रोमे अग्निका अर्थ ईश्वरादि होते हे)

१९ ऋचो अक्षरे ** यस्मिन्देवा अधि । । ॥ ऋ. अ. २ अ ३ व. २१ जिसमे सब देवता निवास करते हे उस अविनाशी रक्षकमें ऋचायें (वेद) निवास करती हे. अतः जो उसको नहीं जानता वोह ऋचाओंसे क्या करेगा और जो उसे (परमात्माको) जानते हे वोह मोक्ष धाममें विराजते हे ॥ (यहां देवताओंका ग्रहण हे. और वेदके ज्ञान विज्ञानमें आशय हे)

२० आत्मानाऽऽत्मानमभिसंविवेश ॥ य ३२-११ ॥ मुक्त, आत्मा करके आत्मामें प्रवेश करता हे (सायुज्य).

२१ अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं० ऋ. मं १० सू. ४८ मं. १-५॥ मैं ईश्वर सबके पूर्व विद्यमान था. सब जगतका पति हूं.

२२ अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभि० । ऋ. ८-७-११-५ अहं (मैं) स्वयमेव (आपही) देवेभिः उतजुष्टं इद वदामि (विद्वान और विचार करने योग्यको यह बात कहता हु) यं कामये (जिसको मै चाहता हु) तंतं (उस उसको) उग्र[1] (उग्र) त (और) ब्रह्माणं[2] (ज्ञानवान) त (और) ऋषिं (वेदार्थ द्रष्टा) तं (और) सुमेधा (वैज्ञानिक) कृणोमि (करता हु) (सृष्टिके आरंभमें यथेच्छा) ॥

२३ विजानीह्यार्यान्येच दस्य वो० ऋ मं. १ सू ५१ मं ८॥ आर्य धार्मिक आप्त. उससे उलटे दस्यु. दुष्ट.

---

१ अथर्वांगिरा द्वारा देनेवाला.- वैदिक धर्म उपदेष्टा ॥

२४ यथेमां वाचं कल्याणीं० । यजु. २६–२ जेमे में इस वेदवाणीका उपदेश करता हुं.

(ख) पूर्वार्द्ध त्रिवाद संबधमें उपनिषद श्रुतिप्रमाण.

१–असदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत

**कथम सतः सञ्जयितेति । सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमे वा द्वितीयम् ॥ तदैक्षत वहुस्यां प्रजायेयेति । तत्तेजोऽसृजते । छां. ६–२ ॥

एक कहता है के पहेले असदही था उस अद्वितीय असदसे यह सत जगत हुवा है. असतसे सत केसे हो सकता है? नहीं. हे सोम्य! सबसे पूर्व एक सतही था. वोह एक अद्वितीय था. उसने ज्ञानरूपसे संकल्प किया के वहुत सामर्थवाला हुं. जगत सरजुं. यह संकल्प करके उसने तेजको सृजा (पेदा किया) इत्यादि. इस प्रसंगमें सत अर्थात् प्रकृति वा ब्रह्म? अद्वितीय शब्द प्रकृतिके वास्ते नहीं आता.

२–उद्गीथ ** तस्मिस्त्रयं ** अत्रान्तरं ब्रह्म विदो** लीना ब्रह्मणि तत्परायोनि मुक्ताः ॥ श्वे. अ. १ मं. ७ ॥ पूर्वोक्त उद्गीथमें तीनका समुदाय है. १ परब्रह्म, २ प्रकृति और ३ अक्षर अर्थात् जीव इन ३ के भेदको ब्रह्म ज्ञानी जानके ब्रह्ममें लीन हुये योनी (जन्म मरण) से छूट जाते हैं ॥

(अक्षर जीव ब्रह्म और प्रकृति अनादि अनंत उनका भेद)

३–संयुक्तमे तत्क्षरमक्षरंच**विश्वमीशः । ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः श्वे. अ. १ मं. ८ ॥ क्षर (प्रकृति) अक्षर (जीव) मिले हुये और व्यक्ताव्यक्तको परमेश्वर धारण करता है. आत्मा भोक्ता होनेसे बंधनमें पडता है. देव (परमेश्वर) को जानके सब बंधनोंसे छूट जाता है. (ईश्वर जीव प्रकृति जुदा. जीव अक्षर)

४ ज्ञाज्ञौद्वावजौ ॥ श्वे. १–९ ॥ समर्थ, असमर्थ, ज्ञाता, अज्ञ और अजन्मा दो हैं. एक अजा (प्रकृति) है भोक्ता भोग और अर्थोंसे युक्त है और अनंत आत्मा विश्वका कर्ता परंतु अकर्ता है ×

× एक वृत्तिकार यूं लिखता है-मूलपाठ 'विश्वरूपोस कर्ता" अर्थ-विश्व कर्ता तोभी (तथापि) अकर्ता. सहेज स्वाभाव अर्थात् ईश्वरके सन्निधानसे जगत बनता है उस बिना नहीं अतः कर्ता. जीव समान राग द्वेषसे कर्ता नहीं उसकी क्रिया एक रस समान है अतः अकर्ता. परंतु जो मायोपहित-

५ यथोर्णनाभिः मु. १–७। मकडीका शरीर, जालेका उपादान जीव निमित्त. जाला रचती है, ग्रहण करती है. ईश्वर निमित्त प्रकृति उपादान.

५ क्षरं प्रधानममृताऽक्षरं हरः **देव एकः ॥ श्वे. १–१० ॥ क्षर प्रधान (प्रकृति) अमृत अक्षर (जीव) इन दोनोंपर संहारकर्ता देव (परमात्मा) अधिकार भावसे रहता है (तीनों जुदा).

६ य एकोवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् ॥ श्वे. ४–१ ॥ जो अपनी शक्तिसे उत्पत्ति स्थिति लय करता है. ॥

७ अजामेकां++बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोऽन्यः ॥ श्वे. ४–५

एक अपनीसी बहुत प्रजा उत्पन्न करती हुई रज सत्व तमवाली अजा (अनादि प्रकृति) को एक अजन्मा (जीव) सेवता हुवा लिपटता है. दूसरा अजन्मा (परमात्मा) जीवसे भोगी हुई इस (प्रकृति) को नहीं लिपटता ॥ (द्वा सुपर्णा जैसा बोधक है. ईश्वर जीव प्रकृति अनादि सूचक).

८ दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः * * अक्षरात्परतः परः मु २ खं. १. मं. २ ॥ ईश्वर अमूर्त्त है. अक्षर (अविनाशी) सो प्रकृति उससे पर जो जीव उससे भी परे है.

९ प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म. (ब्रह्म आनंद स्वरूप है).

१० सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म. तैत्ति. २–२.

१० रसो वै सः० तै ।२–७। ब्रह्म रस है.....उसकी प्राप्तिसे आनंदी होता है.

११ सद्वृक्ष * * विश्वधाम ॥ श्वे. ६–६ (ईश्वर विश्वका अधिष्ठानाधार है).

१२ न तस्य कार्यं करणं च विद्यते * * परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रियाच ॥ श्वे. ६–८ उसका कार्य और साधन नहीं है, न उसके समान और उससे अधिक है, उसकी बडी शक्ति और स्वाभाविक ज्ञान बल तथा क्रिया श्रुति (वेद) में कही है (अभिन्न निमित्तोपादान और साकार इंद्रियवालेका निषेध है).

मायाविशिष्ट ईश्वरको कर्ता अकर्ता कहा जाय तो आशय सरल हो जाता है. अवच्छेदवाद (विशिष्टवाद) देखो. क्रिया भाग प्रकृतिमें सत्ता स्फुर्णा परमात्मामें उभय मिलके ईश्वर शक्ति संज्ञा. (ब्रह्मसिद्धांत उत्तरार्द्ध).

१३ सविश्वकृद्विश्वविदा ॥ ॥ गुणी सर्व विद्यः प्रधान क्षेत्रज्ञ पति गुणेशः ॥ श्वे. ६–१६ ॥ जो प्रधान (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (जीव) का स्वामी, संसारके मोक्ष, रक्षा और बंधका हेतु है, सो जगतका रचनेवाला है, जगतको जाने वाला है. स्वयंभु चेतन है सर्वज्ञ है और काल विभाग कर्ता, सद्गुणोंमे युक्त है.

१४ बालाग्रशतभागस्य ॥ श्वे. ५–९ ॥ जीव बालके अग्र भागके सोवें भागकाभी कोई सो वाँ भाग प्रकाशमान है. (छ. २६ देखो).

१५ जीवापेतं वावकिलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति. छां. ६–११–३ निश्चित यह शरीर जीव रहित होने पर मर जाता है, नही के जीव मरता है॥

१६ * एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो ॥मुंडक ३–१–९॥ अस्मात शरीरात लोकात उत्क्रामति ॥ कौषीतकि बृहतपष्ट गत ॥ शरीर और लोकमें गति करनेवाला होनेसे जीव अणु है ॥ चित करके ज्ञातव्य है (ज्ञेय है).

१७ नैव स्त्री न पुमानेष. श्वे. ५–१० ॥ जीव स्त्री पुरुष वा नपुंसक नहीं है. किंतु यथा शरीर कहाता है.

१८ तमेतं वेदानुवचनेन विविदिषंति ॥ बृ. ४–४–२२ ॥
परमात्माको ब्राह्मण लोक यज्ञ, दान, तप व्रतोंसे जाननेकी इच्छा करते हैं (कर्मसे मोक्ष)

१९ दर्श पूर्ण मासाभ्यां—
स्वर्ग कामो यजेत—
ज्योतिष्टो मेन स्वर्ग कामो यजेत
} नैमित्तककर्म. स्वर्गप्राप्ति.

२० प्राणान्प्रपीड्येह. श्वे. २–९ ॥ प्राणायाम विधान ॥ लघुत्वमारोग्य श्वे. १–१३ (सिद्धिप्राप्ति.)

२१ मनो ब्रह्मेत्ति उपासीत. बृ. ब्रह्मोपासीत ॥

२२ ऋचो अक्षेर ॥ ॥ ॥ यस्मिन्देवा अधि. श्वे. ४–८॥ ऋग्वेदमंत्र

२३ सएव ॥ ॥ ब्रह्मर्षयो देवताश्च. श्वे. ४–१९ ॥ (९, १० से देवताकी सिद्धि होती है.)

---

१६ * मूलके पूर्व प्रसंगमें सूक्ष्म, ऐसा अर्थ है, अणु परिमाण अर्थ नहीं लगता. क्योंकि ज्ञेय एक ब्रह्म है. यहां अणुको ज्ञेय कहा है अतः सूक्ष्म अर्थ है. ब्रह्मका वाचक है. कोई जीवमें ही अर्थ करता है क्योंकि ब्रह्म अक्रिय है. ॥

२३ तत्कर्म कृत्वा ※ श्वे. ६–३॥ आरभ्य कर्माणि ※ ※ श्वे. ६-४॥ कर्म करके और सूक्ष्म गुणोंसे कर्मका आरंभ करके जो गुणोंसे युक्त होते हैं उन्हींको फिर त्यागके सर्व भक्तियोंको करें वा लगावें. वोह ईश्वरसे मिलके उन कर्मोंके न होने पर किये कर्मोंका नाश हो जाता है. और कर्म क्षय होने पर ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है (कर्मयोगी, भक्तियोगीके संचितका प्रभाव).

२५ तत्सुकृत दुष्कृते विधुनुतेतमास्यमिया ज्ञातयः कौ. १–१४ मुक्तके पाप पुण्य नाश और जातिवाले उसके पुण्य और अप्रिय शत्रु उसके पाप लेते हैं.

२६ तस्य तावेदेव चिरंयावन्न। ॥ छां. ६–१४–२॥ उसकी मुक्तिमें इतनी देर है कि उसके प्रारब्धका क्षय न हो.

२७ आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्. तै. ९–३॥ मुक्त ब्रह्मानंदका भोग करता हुवा किसीसे भय नहीं करता.

२८ स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः सवा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसै तान्कामान्पश्यन् रमते. छां. ८–१२–५॥ सो आत्मा है. इस आत्माका मनही देव चक्षु है. देव इंद्रिय है, वोह यह मुक्तात्मा इस मनसेही इन कामनाओंको पूर्ण देखता हुवा क्रीडा करता है.

२९ स एकधा भवति द्विधा भवति छां. ७–२६–२॥ (मुक्तिमें मन).

३० मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते ॥ छां. ८–१२–५ (मुक्तिमें मन) वैभव प्रसंगमें वेदांतदर्शन अ. ४ पा. ४ सू. १२–१३ तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्ते १३॥ भावे जाग्रद्वत् ॥१४॥ शरीर न धारण करे तब स्वप्नवत् और शरीर धारण करे तब जाग्रद्वत् वैभव भोगता है.

३१ यदा पंचाव कठ अ. २। व. ६ मं १०॥ जब शुद्ध मनयुक्त ५ ज्ञानेंद्रिय जीवके साथ रहती है और बुद्धिका निश्चय दृढ होता है उसको परमगति मोक्ष कहते हैं॥

३२ सयदि पितृलोक कामो भवति ※ अथयदि स्त्रीलोक कामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति यं. यं. इ. छां. ८–२–१७–९ उपासक मुक्त जब पितृ लोककी कामनावाला होता है तब पितृ, स्त्री की कामनावाला होता है तब स्त्री, ये सब सन्मुखमें आ खडे होते हैं. ऐसे जैसी जैसी कामनावाला होता है वैसा संकल्प मात्रसे हो जाता है.

३३ एवमेष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात समुत्थाय परंज्योतिरुप सम्पद्यस्वेन रूपेणाभि निष्पद्यते स उत्तम पुरुषः। सतत्र पर्येति जक्षन क्रीडान रममाणः स्त्रीभिर्वायानैर्वा ज्ञातिभिर्वा । छा ८–१२–३८ शरीर त्याग ब्रह्मको प्राप्त होके स्व स्वरूपमें स्थित होता है सो उत्तम पुरुष है वहा चारु तरफ फिरता हसता खेलता रमन करता है इ.

३४ पुण्यो वै पुण्यन कर्मणा भवति. ॥ कौषीतकि श्रुति जीवोके कर्मानुसार सृष्टिकी उत्पति स्थिति लय ईश्वर करता है वैषम्य नैघृण्येन वे. २–१–३४ (इसलिये ईश्वरमे अन्याय निर्दयता दोष नहीं)

३४ एत्य ब्रह्मलोकान गमयति. तेषु ब्रह्म लोकेषु परोः परावतो वसन्ति । तेषा न पुनरावृत्तिः । बृ अ ८॥ शरीर त्याग पीछे उपासक अर्ची (देव) मार्ग द्वारा अमुक अमुक लोकमे जाता हुवा अतमे ब्रह्म लोक (सालोक्य) को प्राप्त होता है वहासे अनावृत्ति है ऐसेही छा. ४–१५–५॥ और को. १–३॥ मे लिखा है.

३५ परमं साम्यमुपैतिः मु ३–१–३ पुण्य पापको दूर करके सिद्ध हुवा ब्रह्मके साथ परम साम्य (अत्यत अविभाग–सामीप्य) को पाता है (सामीप्य मुक्ति).

३६ सविशत्यात्मना आत्मानं मा. १२ ॥ मुक्त आत्मासे आत्मामें प्रवेश करता है (सायुज्य मुक्ति)

३७ यथानद्यः++ पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥मु ३–२–८॥ मुक्त नदी समुद्र लीन समान ब्रह्मको प्राप्त होता है (सायुज्य मुक्ति)

३८ य आत्मनितिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो० बृ. अन्तर्यामि ब्राह्मण (जो आत्मामे तिष्ठित–रहता है, आत्मा जिसको नही जानता, आत्मा जिसका शरीर है जो आत्मा का नियता–नियममे रखनेवाला है) जीव ईश्वरका भेद

३९ वेदात विज्ञान+++ ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ तैति प्र. १० अ १० प्र ९॥ और मु ३ ख म ६ और कैवल्य ६

शंकराचार्यजीका अर्थ—पूर्वार्द्धवाले सर्व परातकाले (शरीर त्याग पीछे) ब्रह्म रूप लोकमे परामृत हुये सब तरफसे मुक्त होते है.

स्वामी दयानंदजीका अर्थ—पूर्वार्द्धवाले (ब्रह्मज्ञानी) सर्वे परातकाले (कल्पके अतमे) परामृतात (मुक्तिसे) परिमुच्यन्ति (पुनरावृत्तिको प्राप्त होते है) तीसरे महाशयका

अर्थ—वे सर्व ब्रह्मके बनाये हुये पृथ्व्यादि लोकोमें परामृत (परमानंदित हुये) परांत काल (प्रारब्ध भोग पीछे—शरीर त्याग पीछे) परिमुच्यन्ति (मुक्त हो जाते हैं) परामृताः (मरण धर्म रहित हुये). ब्रह्म नारदादि मुक्तोने जगतके भलाई वास्ते जन्म लिया, ऐसे आवृत्ति मान सकते हैं.

४० तद्वैतद्+++ ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते । न च पुनरावर्तते. छां प्र. ८। खं १५। मं. १

ब्रह्माने कश्यपको, कश्यपने मनुको, मनुने अन्य प्रजाओंको इस उपनिषद (ब्रह्मज्ञान) का उपदेश किया. ॥ गुरू परंपरा आचार्य कुलसे सविधि वेद पढके, गुरु आज्ञासे समावर्तनकर, कुटुंबमें रहता हुवा, मनुष्योंको धार्मिक करता हुवा, आत्मामें सब इंद्रिये स्थापित कर हिंसा वर्जित जो वर्तता है सो पुरुष ब्रह्मको पाता है उसको पुनर्जन्म नहीं होता. उसकी अनावृत्ति है.

(सगुण उपासककी यह मुक्ति है तो निर्गुणके वास्ते तो क्या कहना है)

स्वामी दयानंदजी 'न च' 'अनावृत्ति शब्दात्' वाक्यको वेद विरुद्ध कहते हैं. उनके शिष्य आर्यमुनि श्री यह अर्थ करते हैं कि मुक्तको वारंवार साधन अभ्यासकी आवृत्ति नहीं करनी पडती, ब्रह्मानंद भोगता है. (परंतु मोक्षमें आवृत्ति होती है)

(ग) प्रचूर्ण.

१ अपां समीपे नियतोनैत्यकं—मनु. अ, २-१४॥ संध्या सावित्रिजप नित्यकर्म.

२ इच्छा ज्ञानान्यात्मनोलिंगम् । न्याय १-१०॥ इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख, दुःख, ज्ञान यह जीवके लिंग हैं.

३ यज्ञदत्त इति ॥ वै. ३-२-६-७॥ आत्माका प्रत्यक्ष नहीं होता. सामान्य तो दृष्टानुमानसे (ज्ञानादि गुणोंके आश्रय होनेसे) उसकी सिद्धि होती है.

४ विषयवती वा यो. १-३५ ⎫ मनकी एकाग्रता और उपासना
५ विशोका वा ज्योतिष्मती यो. १-३६ ⎭ करनेका साधन.

६ धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं ॥ मनु ॥ ६-९२

(५) उक्त विवाद प्रसंगमें गीताप्रमाण.

(१) श्रेयान्स्वधर्मो।+परधर्मो भयावहः ॥३-३५॥ स्वधर्म गुणहीनभी श्रेष्ठ. पराया धर्म भयप्रद होता है ॥ नित्य, नैमित्तिक वा प्रायश्चित कर्म (विधि निषिद्ध कर्म) स्वस्व धर्मानुसार कर्तव्य हैं. तद्वत वर्णाश्रमके कर्म. जो परधर्मके करता है वा ब्राह्मण शूद्र कर्म, शूद्र ब्राह्मण कर्म करने जावे तो उससे वे नहीं होने और दुःखी होता है.

(२) कर्मणैव हिसंसिद्धि० ॥३-२०॥ कर्म करकेही जनकादि उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुये. इस लोक मर्यादाकोभी देखता हुवा तु कर्म करने योग्य है ॥

(३) बहूनिमेव्यतीतानि++अहंवेद+नत्वं ॥४-५॥ मेरे तेरे अनेक जन्म हुये उन सबको मैं जानता हुं तु नहीं जानता.

(४) गहना कर्मणोगतिः ॥४-१७॥कर्म (विहित) विकर्म (निषिद्ध रहित, वा कर्मसे मुक्त रहना) जाने योग्य है. कर्मकी गति गहन है.

(५) नासिकाग्रं। अवलोकयन ॥६-१३॥ शरीर मस्तक और ग्रीवा इनको सूधा, निश्चल करके इधर उधर न देखता अपनी नासिकाके अग्र भागमें दृष्टि दे. अंतःकरणको शांतकर ब्रह्मचर्यमें टिक मनको रोके इ. १३-१४॥ युञ्जन्नेवं १५ इस प्रकार जो आत्माको समाधिमे युक्त करता हुवा चित्तको स्वाधिन करता है वोह मेरे स्वरूप (ब्रह्मचेतन) में सायुज्य पाकर मोक्षरूप शांतिको प्राप्त होता है॥

(६) शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोभिजायते ॥६-४१॥ यहां वा परलोकमें योगभ्रष्ट (योग पूरा न हो और मर जावे) पुण्य लोकमें अनेक काल निवासकर पवित्र लक्ष्मीवानके घरमें जन्म लेता है ॥ ४१ ॥ अथवा योगीके गृहमें जन्म पाता है ॥४२॥ फेर योगको पूरा करता है ॥४३॥

(७) मनुष्याणां सहस्रेषु ॥७-३॥ हजारोंमेंसे कोई सिद्धि (कर्मयोगादि) के लिये प्रयत्न करता है ऐसे हजारोंमेंसे कोई परमेश्वरको प्राप्त होता (जानता) है.

(८) पुनरावर्तिनः पुनर्जन्म न विद्यते ८-१६ ॥ क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं ॥९, २१॥ ब्रह्मलोकसे और स्वर्गसे पुनरावृत्ति होती है. ईश्वरको प्राप्त होके पुनरावृत्ति नहीं होती. ॥

(९) कर्माणिसंगंत्यक्त्वा करोतियः। न स पाप न लिप्यते ॥५-१०॥ सर्व कर्मफल त्यागं ॥ ११ ॥ कर्माणिसंगंत्यक्त्वा. मेनिश्चितं मतमुत्तमम् ++ १८, ६॥

कर्मफलको त्यागके (निष्काम हुवा) जो कर्म करता है वोह लिपायमान नहीं होता ॥१०, ११॥ निष्काम कर्म करना मेरा निश्चय है और वोह उत्तम है.

(१०) श्रेयोहिज्ञानमभ्यासात् ॥१२, १३॥ अभ्याससे ज्ञान, ज्ञानसे ध्यान, और ध्यानसे कर्मफल त्याग, उत्तम है त्यागसे जलदी शांति हो जाती है ॥

(११) द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षर एवच क्षरः सर्वाणिभूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेति ॥ ईश्वरः ॥१५, १६, १७॥ इस लोकमें क्षर (नाशवान) अक्षर (अविनाशी) यह दो पुरुष हैं संपूर्ण चराचर क्षर और उसमें कूटस्थ (स्थिर-अचल-निष्क्रिय) अक्षर कहाता है (अथवा क्षर प्रकृति और अक्षर जीव ऐसाभी कोई अर्थ करता है) ॥१६॥ इससे. अन्य उत्तम पुरुष परमात्मा कहा गया है जो अविनाशी ईश्वर लोकमें व्यापक उनका धारण पोषण कर रहा है ॥१७॥×

(१२) ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशे॥१८-६१॥ तमेव शरणं गच्छ ॥६२॥ मामेकं शरणं व्रज॥ अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥+

(१३) न चैव न भविष्यामः ॥२-१२॥ पुनर्जन्म न विद्यते ८-१६॥ ÷

× जीव, ईश्वर, प्रकृति (क्षर) ३ हुये. आत्मा (जीव) को कूटस्थ कहा है. (याने निर्विकार स्थित) जबके वोह अक्रिय है, तो कर्म कोन करता है ? असंग, कर्म कर, निष्काम कर्म कर, कर्म योगसे मुक्ति इत्यादि बोध निष्फल हो जाता है. स्वर्ग नरक गमनागमन नहीं बनता. ज्ञ १-७४ (अ १३) प्रसंगोंको मिलाके देखो. कर्तृत्व भोक्तृत्व सिद्ध नहीं होता. उत्तरार्द्धका विशिष्टवाद (उच्छेदवाद) इसकी व्यवस्था कर सकता है. अथवा इस अक्षर देही क्षेत्रज्ञको परिच्छिन्न मध्यम मानें तब व्यवस्था होती है + नं. ६१, ६६ काभी विरोध है. कृष्णके कहे हुये मैं पदकी व्याख्या जाने विना व्यवस्था नहीं हो सकती. (१) शरीरवाला बोलता कृष्ण (२) मैंका वाच्य जीव (३) लक्ष्य कूटस्थ. (४) ईश्वरका वाच्य मायावी (५) लक्ष्य ब्रह्म चेतन (६) जीव ईश्वरका लक्ष्य ब्रह्म॥ इस प्रकार यथा प्रसंग अर्थ लगाना चाहिये. जीव पद वाच्य विशिष्टमें तद्धर्मापत्तिवाला अर्थ कर्तव्य है इस प्रकार भाव लेनेसे गीताके मैं पदका अर्थ सार्थ होता है. अन्यथा योग्य व्यवस्था नहीं होती. ÷ अमुक्तको बोध और मुक्त दशा अधिकारसे इस विरोधका निवारण हो सकता है.

(१४) शरीरं यदवा प्नोति×× गृहीत्वैतानि संयाति ॥गी. १५, ८॥ जेसे वायु पुष्पमे गंध लेके अन्य स्थानको जाता है तद्वत् जीवरूपी ईश्वर (देहका स्वामी) जब शरीरका त्याग करता है वा प्राप्त करता है तब इंद्रिय और मनको साथही ले जाता है ॥ अर्थात् ब्रह्मसे भिन्न मन (अंतःकरण) और इंद्रियसे भिन्न सक्रिय तत्त्व है.

(१५) न तदस्ति * * दिवि देवेषु * * त्रिभिर्गुणैः। १८-४०॥ ब्राह्मण ४१ शमो दमः ॥४२॥ शौर्यं तेजो ॥ ४३ ॥ कृषि गोरक्ष्य ॥ ४४ ॥ परिचर्या ॥४५॥

(१६) भूमि, आकाश, देवलोकमें ऐसा कोई प्राणि नही है कि जो प्रकृति जन्य गुणोसे जुदा हो ॥ ४० ॥ ब्राह्मणादिमें इनके स्वभावसिद्ध गुणानुसार कर्म लगाये गये हैं. ॥४१॥ शम, दम, तप, शौच (बाह्यांतर तन मन वाणी) क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य यह ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं. ॥४२॥ शौर्य, तेज, धैर्य, निपुणता, बुद्धिमें स्थिरता, औदार्य, साहस और सामर्थ्य यह क्षत्रीका स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४३ ॥ खेति, गोरक्षा, व्यापार यह वैश्यका स्वाभाविक कर्म है. ॥४४॥ भलिभांति सेवा करना यह शूद्रका स्वाभाविक कर्म हैं.

वेदांतशास्त्र (त्रिवाद द्वैतबोधक वाक्य.)

(१) अथातो ब्रह्म जिज्ञासा अ. १ पा. १. ब्रह्मको ब्रह्म ज्ञानकी जिज्ञासा हास्योपजीवक. ब्रह्मेतर कुछ नही तो जिज्ञासा किसको. ब्रह्मेतर स्वप्नवत् और यह वाक्यभी स्वप्नसृष्टिके सिद्ध समान मानें तो त्रिवादकोभी वेसाही मानके इस वाक्य समान व्यवस्था कर लेना. क्योंकि जीवको ब्रह्मकी जिज्ञासा जब हो कि उससे भिन्न कोई सत् चित् वस्तु हो. इ.

(२) इक्षेत. १-५. (ब्रह्ममें इच्छा होना बताता है.) ॥ गति सामान्यतः १-१० (चेतनमें गति बोधक) ॥

(३) इतर. १-१६ (जीव आनंद स्वरूप नही)॥

(४) भेद व्यपदेशाच्च १-१७ ब्रह्म-ईश्वरका भेद बोधक.

(५) कर्म कर्तु । १-२-४ जीव कर्म कर्ता है ब्रह्म नहीं॥

(६) संभोग + + न विशेष्यान १-२-८ ॥ (ब्रह्म भोक्ता नही है क्योंकि जीवसे विशेष है).

(७) अदृश्यत्व ।१-२-२१ (ईश्वर अदृश्यत्वादि गुणवाला है),

(८) भेदव्यपदेशात् ॥ १-३-४ ॥ (प्रकृति और जीवका ईश्वरसे भेद कथन)

(९) अत एवचनित्यत्वम् ॥ २-३-२८ (भेद नित्य हैं) नित्यको भ्रम वा अध्यास नहीं कह सकते ॥

(१०) जगद्वाचित्वात २-४-१६ (जगत्‌का कर्ता ब्रह्म है).

(११) प्रकृतिश्च ॥१-४-२३॥ (और प्रकृति इस जगत्‌का कारण है).

(१२) असदति चेतन प्रतिषेध मात्रत्व सू. ॥२-१-७॥ (जगत् पूर्वमें शून्य रूप जो कहा है वोह प्रतिषेध मात्र है याने कार्यरूप न था) जगत् प्रवाहसे अनादि अनंत है).

(१३) वैषम्य ॥२-१-३४॥ जीवोंके पूर्व कर्मोंकी अपेक्षा सृष्टि रचता है. अतः ईश्वरमें वैषम्य दोष नहीं आता.

(१४) न कर्म + + अनादित्वात् ॥२-१-३५॥ जीवोंके कर्म अनादिसे हैं. (पूर्वमें ब्रह्मसे इतर कुछभी नहीं था इसका निषेध).

(१५) नात्मा ॥२-३-१७॥ न जीवो म्रियते. छां ६-११-३॥ जीव अविनाशी है याने अनादि अनंत है.

(१६) उत्क्रांति गत्यागती नाम् ॥२-३-१९॥ जीव शरीरसे जुदा होता है आना जाना रूप गति करता है (जीव विभु नही).

(१७) कर्ता शास्त्र ॥२-३-३३॥ जीवात्मा कर्ता भोक्ता है शास्त्र तबही अर्थ वाला होनेसे.

(१८) सूचकश्च ॥३-२-४॥ स्वप्न शुभाशुभका सूचक है श्रुतिसे और स्वप्न ज्ञातासे सुनते हैं। (स्वप्न मिथ्या हो तो शुभाशुभका सूचक न हो).

(१९) अपि सं. ॥३-२-२४॥ समाधि कालमें योगी लोक उस ब्रह्मको प्रत्यक्ष करते हैं.

(२०) फल मत. ॥३-२-३८॥ परमात्मासेही (शुभाशुभ कर्मोंका) फल होता है.

(२१) अनावृत्ति. ४-४-२२ मुक्तिसे पीछे जन्म मरणरूप बंध याने संसारको प्राप्त नहीं होता.*

* तमाम व्यास सूत्रमें अविद्या वा माया उपाधिकृत भेद कहीं नहीं लिखा है एक जगे ३ २-३ स्वप्नको मायावी कहा है. तो फेर ब्रह्मको वा तदंशको अविद्या-माया कहासे लगा दे?

(च) उत्तरार्द्ध प्रसंगार्थ संहिता श्रुतिप्रमाण.

१ न द्वितीयो न तृतीयो.... एक एव. अथ. का. १३। अ ४ मं. १६
(ईश्वर चेतन दो तीन चारादि नहीं हैं किंतु एक है).

२ ईशा वास्यं० यजु. अ. ४०—१ यह सब जगत ओर उसका कारण ईश्वरसे आच्छादित ईश्वरमें व्याप्य है ॥

३ तदंतरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्य बाह्यतः यजु. ४०—५ (ब्रह्म व्यापक है)

४ अनेजदेकं० य. अ. ४०—४ तदेजतितन्नैजति ॥ य. अ. ४०—५
(ब्रह्म चलता है. नही चलता है. याने मन जहां जहां जाय वहां वहां प्रथमही मोजूद पाता है)

५ ना सदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजोनो व्योमापरोयत् ॥ १ ॥ न मृत्युरासीदमृतं न तर्हिरात्र्या अन्हआसीत प्रकेतः आनीद्वातं स्वधया। तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ॥ २ ऋ. अ. ८ अ. ७ व. १७ पूर्वमें असत्, सत्, परमाणु, आकाश,—वैराट नहीं था॥ तब न मृत्यु था, रात न थी, दिन न था, वोह एकही था. उससे अन्य किंचितभी नहीं था. सकारण जगतका अभाव बोधक मंत्र है असत्से उत्पत्ति नही हो सकती. इसलिये एक ब्रह्मही सत् कहा है उससे अन्य कुछभी नहीं था.*

६ तमसा गूढ मग्रे ॥३॥ (पूर्वमें तम था.)

७ ततो विराड जायत. ॥ यजु. पुरुष सूक्त ॥ उस ब्रह्ममे विराट पेदा हुवा.
मं. नं. ५ अनुसार ईश्वर अभिन्न निमित्तोपादान ठेरता है)

८ पुनर्मनः पुनरायुर्मआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मामआगनपुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रंमआगन् ॥ यजु. अ ४ मं १५

९ पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा. अथर्व कां. ७ अनु ६ व. ६७ मं. १
जब जब जन्म लेवें तब तब शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आत्मा, उत्तम चक्षु श्रोत्र प्राप्त हो. १५॥ पुनर्जन्ममे ११ इंद्रिय और आत्मा प्राप्त हो (विशिष्ट वृत्ति बोधक वाक्य)

१० वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं ॥ तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेयनाय ॥१८॥ यजु. पुरुषसुक्त ॥

*जो अपनी शक्ति (प्रकृति उपादान) सहित पूर्वमे था ऐसा अर्थ करें तो जीव पूर्व सिद्धि न होनेसे जीव सादि वा उभय मिश्रित ठेरेगा.

पूर्वोक्त पुरुषको जानके जन्म मरणको तिरके (छूटके) परमानंद स्वरूप मोक्षको प्राप्त होता है. इससे इतर मोक्ष सुखका मार्ग नहीं है. (पुरुष-आत्म ज्ञानसे मोक्ष और अनावृत्ति)

११ इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप इयते. ऋ. अ. ४ अ. ७ व. ३२ मं. १८॥ जीव [वा ईश्वर] अपनी ज्ञान शक्तिसे बहुत रूप धारण कर लेता है. [तदाकारतादि शक्ति का और जीव परिणाम अर्थात् परिणामी है ऐसा बोधक] .

१२ युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः ॥ यजु. ११-२-३-४. जीव प्रथम मनको ठीक युक्त करता हुवा बुद्धिको फैलाके प्रकाशक ज्योतिका निश्चय करके हृदयमें धारण करे ॥ ऐसे २, ३, ४, तीन मंत्र साधन सूचक मंत्र हैं

१३ नैनमूर्ध्व** न तस्य प्रतिमा अस्ति---यजु अ. ३२-२ न इसको उपरसे तिरछा वा बीचमें पकड सक्ते हैं. क्योंकि उसके प्रतिमा नहीं है जिसका यश बडा प्रसिद्ध है ॥

१४ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥ यजु. पुरुष सुक्त. । जो हुवा है और होगा सो यह सब पुरुषही है. ॥

१५ परिद्यावा--- तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्. य. अ. २-१२ यज्ञ कर्ता (यजमान) जीवात्मा ब्रह्मको देखता है. वोह हो जाता है. वह रहता है. (अज्ञान निवृत्ति विवेक कर देखनेसे ऐसा होता है) ॥ स्वा. दयानंद कृतार्थ. सो सुखको देखता है. जिस करके वोहं सुख हुवा, उसकी उपासना करो ॥ (वाक्यमें तो नहीं है.)

(छ) उत्तरार्द्ध प्रसंगार्थ उपनिषद् श्रुति.

१ यस्मात्परं नापरमस्ति---स्तब्धो-श्वे. ३-९॥ जिससे परे समीप कुछ नहीं है.--वृक्षवत् स्थिर (अक्रिय) है (ब्रह्म निष्कंप है)

२-सर्वतः पाणिपादं ॥ श्वे. ३-१६ ॥ वोह सर्वत्र हाथ पांव आंख शिर मुख कानवाला है सर्वको घेरकर स्थिर है.

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता. श्वे. ३-१९॥ पांव विना हाथ विनाका पांव हाथका काम करता है. कान विना सुनता है आंख नहीं और देखता है मन विना का जानता है उसको मुख्य वडा पुरुष (महेश्वर) कहते हैं ॥

४ अथयोवेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा. बृ ४-७ यह घ्राण जो जानता है सो आत्मा है.

५ सआत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽदृष्टोद्रष्टाश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ताऽविज्ञातोविज्ञाता॥ नान्योऽत्तोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽनोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातेषः बृ. ३-८-११ ॥

न्यान्योतोऽस्ति द्रष्टा ज्ञाता श्रोता मंता बृ. ३-७-२३ ॥ यह आत्मा अंतरजामी अमृत है, अदृष्ट है, द्रष्टा है, अश्रुत है, श्रोता है, अमत है, मंता है, अविज्ञात है, विज्ञाता है, उससे अन्य कोई द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता नहीं है. सो येही आत्मा अंतरयामी अमृत है.

६ एको द्रष्टाऽद्वैतो. बृ. एक द्रष्टा अद्वैत है.

७ अस्थूल मनणु ह्रस्वम दीर्घेव लोहीतम स्नेहमच्छायं बृ. ३-७-८

वोह अस्थूल अणु ह्रस्व वा दीर्घ नहीं है.

(निराकार है अतः उपादान नहीं).

८ एतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्माचतुष्पात् मां. २ ॥ यह ब्रह्मपद आत्मा (प्रत्यगात्मा अंतःकरणावच्छिन्न आत्मा) ब्रह्म है सो आत्मा चार पादवाला है. (आगे उसके जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाका और चोथा पाद अवस्था रहित तुर्यातीतका बयान है. इस उपनिषदमें अर्थका विवाद है परंतु मूल शब्दका अर्थ करें तो उपर अनुसार है. उत्तरार्द्धके अनुभव प्रसंगमें यह प्रमाण है

९ सद्ब्रह्म.. विश्वधाम ॥ श्वे. ६-६ ॥ ईश्वर विश्वका अधिष्ठानाधार है.

१० साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च श्वे. ६-११॥ देव अकेला सर्वमें गूढ सर्व व्यापक अंतरयामी कर्माध्यक्ष सर्वमें अधिकारी होके बसनेवाला द्रष्टा चेतन है ओर गुणोंसे रहित है

११ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्...तत्कारणं सांख्य योगाधिगम्यं ज्ञात्वादेव मुच्यते सर्वपाशैः श्वे ६-१३॥ जो नित्योंमें नित्य, चेतनोमें चेतन है उस कारण देवको सांख्य और योगसे जानके सब फांसि (बंध)से छूट जाता है.

१२ निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनम् ॥ श्वे. ६-१९ ॥ जो कला रहित शांत निरवद्य और माया रहित है.

१३ ब्रह्म निष्कलं मुं ३-९॥ एकोवशी निष्क्रियाणाम् ॥ श्वे ६-१५॥ (ब्रह्म निष्कल और क्रिया रहित है).

१४ श्रोत्रस्य श्रोत्रं के. २॥ श्रोत्रका श्रोत्र, मनका मन, वाणीका वाणी, प्राणका प्राण, चक्षुका चक्षु है (प्रत्यागात्मा प्रसंगी).

१५ यद्वाचा॰ के. ४ से तदेव ब्रह्मत्वं विद्धीनेदंयदियमुपासते. ८॥ इन ९ मंत्रोंका सार ॥ जो वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र, प्राणका विषय नहीं ओरं जिसके वाणी आदि विषय हैं सो ब्रह्म है. जिसको लोक उपासते हैं सो ब्रह्म नहीं है (यहां प्रत्यगात्माका ब्रह्म रूपसे बोध हैं क्योंकि प्राण, वाणी और इन्द्रियोंको लेके कथन है.

१६ अदृश्यमग्राह्य ॥ मुं. १-१-६॥ ब्रह्म अदृश्य अग्राह्य है..मन वाणी चक्षुसे पर है,

१७ असंगोऽयं पुरुषः ॥ वृ. ६-३-२१ यह पुरुष असंग (संबंध रहित है)

१८ निरीहः ॥ परमात्मामें इच्छा नहीं है.

१९ अथात आदेशो नेति नेति एतस्मात् इति न इति अन्यत् परंसत्य अस्ति अथवा मेथयं सत्यस्य मिति वृ. म. ४ इस वास्ते इति न, इति न, किंतु इससे पर मूर्त, अमूर्त प्रपंचका निषेध करके नेति नेति कहा है

२० आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य ज्ञाता कठ २.७

२१ आत्मावारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः वृ. ॥ मे. आत्माही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, निदिध्यासतव्य है.

२२ संकल्पन स्पर्शन. श्वे ५-२२ ॥ देही (जीव) संकल्प, स्पर्श, दर्शन, और मोहसे देहोमें कर्मानुसारी रूपोंकों प्राप्त होता है. क्रम पूर्वक अन्नपानके सेवनसे वृद्धि और जन्मकोमी प्राप्त होता है. (जीव मध्यम)

२३ सएष इह प्रविष्ट आलोमभ्यः आनखेभ्यः वृ. छां (जीव मध्यम, उपाधि मानें तो विभु)

सएष इह प्रविष्ट आनग्रेभ्यो यथाक्षरः वृ. २-३ मं. ७॥ (जीव मध्यम वा गुण मध्यम, वा प्रत्यगात्मा अंतःकरण विशिष्ट वा अंतःकरणावच्छिन्न) प्रज्ञया शरीरं समारूढ्यः श्रुति.

२४ गुणान्वयो यःफल कर्म कर्ता कृतस्य तस्यैव सचोपभोक्ता. श्वे. ५—७ जीव सगुण कर्ता भोक्ता है अनेक रूप धारता है. त्रिगुणोंको धारता प्राणोंका स्वामी यथा कर्म घूमता फिरता है.

२५ अंगुष्ठ मात्रो ** बुद्धेर्गुणेन ॥ श्वे ५ * ८ ॥ जो बुद्धिके गुणसे, अंगुष्ट मात्र है. आत्म गुणसे आराके अग्र भाग (अणु) परिमाण है. संकल्प और अहंकार वाला है.

२६ बालाग्रशत भागस्य ।-।-। सचानंत्याय कल्पते. ॥ श्वे : ५-९ ॥ वालकी नाकके सोवें भागका भी सोवें भाग जितना हो उतना जीव है. परंतु वोह अनंत (असीम) होनेके लिये समर्थ है (आत्मा व्यापक वा असंभव दोष).

२७ ज्ञाज्ञौद्वाव श्वे १ ॥ ८ ॥ (नं ४ख) ब्रह्म ज्ञाता, और जीव प्राज्ञ है. ज्ञोऽत एव वे. २-३-१८ ॥जानाति इतिज्ञ जो जानता है वोह ज्ञ. जीव जानता है ज्ञानस्वरूप नहीं.

२८ छाया तपौ ब्रह्मविदो वदन्ति । कठ १-३-१ ॥ ब्रह्म और जीव सूर्यकी धूप और छाया समान हैं ॥ छाया स्वयं वस्तु नहीं शरीरादि उपाधिसे प्रकाशका अदर्शन छाया है)

२९ नैवस्त्रीनपुमानेष० श्वे. ५-१० ॥ (नं. १७ ख) जीव स्त्री पुरुष वा नपुंसक नही है किंतु यथा शरीर संज्ञा पाता है.

३० क्षीणैः क्लेशैर्जन्म मृत्यु प्रहाणिः श्वे. १-११ ॥ जीवको पंच क्लेश है.

३१ आत्मनिखल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्व विदितं ॥ बृ. ॥ आत्माको देखने सुनने माने और भलि भांति जाननेसे सब जाना जाता है.

३२ येनेदं सर्व विजानातितं केन विजानीयात् बृ. ६-४ ॥ जिससे सब जाना जाता है उसको किससे जाने.

३३ विज्ञातारमरे केन विजानीयात् बृ. (पूर्ववत्)

३४ यतो वाचे निवर्तते अप्राप्य मनसासह. तैति. २-४ ॥ उसे मन वाणी नहीं पहोंचती

३५ मनसै वेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन. क. २-११ ॥ जो मन करके ही जाना जाता है अन्य कोई साधन नहीं है.

---

२६ किसिने अनंत सामर्थवाला एसा अर्थ करके जीवको अणु माना है परंतु यह असंभव है क्योंकि अणुमें अनंत सामर्थ्य नहीं हो सकता और अणु अनन्त (विभु) भी नहीं हो सकता इस लिये अणुका सूक्ष्म अर्थ कहना पडता है, नहीं तो नं. २३ से विरोध आवेगा.

३६ एषदेवो श्वे. ४-१७ ॥ आत्मा हृदय बुद्धि और मनसे जाना जाता है. शांतो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मन्येव आत्मान मनुपश्यति. बृ. ६-७-२३ (आत्मासे आत्माको देखता है)

३७ एवमात्माऽऽत्मनिगृह्यते. श्वे. १-१५ आत्मासे आत्मा ग्राह्य (साक्षात)है.

३७/१ ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति मु ३-२९ ॥ ब्रह्म ज्ञाता ब्रह्म होता है (शुद्ध हो जानेसे वा ब्रह्म स्वरूप होनेसे)

३८ यदाचर्मवदाकाशं ÷÷ तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति. श्वे. ६-२० ॥ जब त्वचा समान आकाशको लपेटे तब परमात्मा देवके विना जाने दुःखका अंत होगा (ब्रह्म के ज्ञान विना मुक्ति नहीं होती)

३९ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा ÷÷ ब्रह्मसमश्नुते कठ ६-१४ ॥ जब विषय वासना छूट जाती है तब मुक्त हो जाता है और यहां ही ब्रह्मको प्राप्त होता है.'

४० सो अविद्या ग्रंथिं विकिरतीह सोम्य मु. २-१-१० ॥ जो ब्रह्मको साक्षात करता है वोह अविद्या ग्रंथिको यहां ही काट डालता है.

४१ एतज्ज्ञेयं ÷ नातः परंवेदितव्यंहि किंचित्. श्वे. १-१२ यही जानने योग्य है जो नित्य अपनेमें स्थित है भोक्ता, भोग्य और प्रेरितारम्को जानके इससे आगे कुछ जानने योग्य नही रहता

४२ नैनं कृताकृते तपतः । बृ. अ ६ ॥ ज्ञानीको पापके संबंध समान धर्मका भी असंबंध है.

४३ तदा विद्वान् पुण्य पापेव धूय ॥ मुं ३-१-३ ॥ ब्रह्मदर्शी पुरुष पाप पुण्यको दूर करके सिद्ध हुवा ब्रह्मको पाता है (मुक्तिमें पाप पुण्य रहित अतः पुनरावृत्ति नहीं हो सकती)

४४ भिद्यते हृदय ग्रंथिच्छिद्यन्ते सर्व संशयाः । क्षीय न्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ मु. २-२-८ ॥ अवरसे जो पर अर्थात् ब्रह्मके ज्ञान होने पर उस ज्ञानीकी चिद्ग्रंथी भिदा (जुदाहो) जाती है सर्व संशय नाश हो जाते हैं और उसके कृत कर्मका क्षय हो जाता हैं (इसके विवादकोभी विशिष्टवाद निवृत्त करता है).

४५ नामुक्तं क्षीयते कर्म ॥ भोगके विना कर्मका क्षय नही होता.

४६ तस्यतावदेव छा. ६-१४-२ ॥ मुक्ति होनेमें प्रारब्ध क्षय होनेकी देर है.

४७ नतस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मै वसन् * ब्रह्माप्येति बृ ४-४-६ ॥

---

* न २२ । ५३ अनुसार मुक्त हुवा (ब्रह्म हुवा हुवा) मुक्त (ब्रह्म) होता है.

ब्रह्मज्ञानीके प्राण मनादि लोकांतरमें नहीं जाते, ब्रह्म हुवा ब्रह्ममें लीन होता है.

४८ नतस्मात् प्राणा उत्क्रामन्ति अत्रैव समवनीयन्ते· कण्व शाखा. नं ४७ (अनुत्क्रांति)

४९ गताकला पंचदश .... मुं ३-२-७॥ मुक्तिमें प्राणादि कला अपने २ कारणमें लय. इंद्रियभी, बुद्धिभी, ब्रह्ममें लय हो जाती है.

५० यदाऽतमः श्वे ४-१८॥ मुक्तावस्थामें तम, दिन, रात, सत् और असत् नही होता किंतु केवल शिवही होता है·

५१ यस्मात् भूयो न जायते कठ ३-८ ॥ निरुद्ध चित्त पवित्र स्वभाववाले ब्रह्मज्ञानी उस पदको पाते है कि जहांसे फेर जन्म नहीं होता·

५२ विमुक्तश्च विमुच्यते कठ ५-१ ॥ मुक्त हुवा मुक्त होता है ॥ (प्रत्यगात्मा विशिष्टबोधक)

५३ विमुक्तोऽमृतो भवति मुं· ३-२-९ ॥ (५२ वत्)

५४ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्किंचनमिषत् ॥ ऐत १ ॥ (पूर्वे आत्मासे इतर दूसरा कुछ भी नहीं था) सइक्षत लोकान्न सृजाइति । १ ॥ ज्ञानरूप संकल्प किया के लोकोंको (जगतको) सरजन करूं· (जगतका उपादान ब्रह्म वा अभाव)

५५ आत्मैवेदं सर्वं नेहनानास्तिकिंचन यह श्रुति शंकर शारीरक भाष्य ३-२-२६ के भाष्यमें है ॥

५६ अशब्दमस्पर्श । कठ ब्रह्म अशब्द अस्पर्श है अध्यस्त (प्रकृति माया-जगत) उसे स्पर्श नही कर सकता.

५७ मायांतु प्रकृतिं विद्यान्मायिनंतुमहेश्वरम् श्वे ४-१० ॥
मायाको प्रकृति जानो और माया वालेको महेश्वर जानो· उस (एसे) के एक देशस्थ महाभूतोंसे यह सब जगत् व्याप्त है

५८ छंदांसि....मायी सृजते...अन्योमायया + श्वे. ४-९ ॥ छंद यज्ञ पंच महा यज्ञ वृत भूत भविष्य और जो वेद कहते हैं इन सबको और हमको माया वाला ईश्वर रचता है और उसमें दूसरा (जीव) मायासे बंधाता है.

५९ एष आत्मा अपहतपाप्मा विजेरा छं. ८-१-२ ॥ यह आत्मा ब्रह्म ऐसा

है कि जिसका पाप दूर हो गया है और जरा मृत्यु शोक रहित है (॥)
अपहत पाप्मा (छां. ८-१-५ ॥ विनिष्ट व्यपगत है पाप जिसका अर्थात् विशुद्ध.
सत्य कामः (जिसकी कामना असत न हो. ऐसा ईश्वर है (माया विशिष्टके
विना ऐसा ईश्वर नहीं हो सकता).

६० योदेवानां ** हिरण्यगर्भं जनया माम पूर्वं श्वे. ३-४ ॥ देवोकों उत्पत्ति स्थिति लयके स्थान सबके स्वामी रुद्रमहर्षिने प्रथम हिरण्यगर्भ (शेषा) को पेदा किया.

६१ आत्मन आकाश संभूतः तै. २-१-१ ॥ आकाशादि पंच भूतकी उत्पत्ति और ब्रह्म उनका उपादान. यदि तीसरी विभक्ति लो तोभी आकाशादिका उपादान कोई बताना चाहिये. वोह अणु और विभु न होगा क्योंकि अणुसे आकाश और विभुसे वायु आदिके अणु उत्पन्न नहीं हो सकते. ब्रह्मको उपादान मानें तो भी यह दोष आता है. इस लिये श्री शंकरकी माया लेनी पडती है.

६२ एतस्मात् जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणिच ॥ खंवायुर्ज्योति ** मुं. २-१-३ ॥ परमात्मासे प्राण, मन, इंद्रिय आकाशादि पंच भूत उत्पन्न हुये हैं.

६३ अन्नमयंहि सोम्यमनः छां. ६-५-४

६४ अन्नात् प्राणो मनः ॥ मुं. १-८ ॥ अन्नसे प्राण मन होते हैं.

६५ द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तंचैवाऽमूर्तंच ॥ बृ. २-३-१ ॥ इस श्रुतिका समाधान प्रधान विशिष्ट चेतन प्रसंग कर सकता है. अन्यथा एक विभू चेतनको मूर्त अमूर्त कहना हासी उपजाता है. दिव्योह्य मूर्त पुरुषः । मुं. २-१-२ ॥

६६ सएषोऽन्तर्हृदय आकाशः तस्मिन्न यं पुरुषो मनोमय तैति. ॥ १-६-२ ॥ उक्त ब्रह्म हृदयाकाशमे यह पुरुष मनोमय (विशिष्ट बोधक)

६७ यत्रासौकेशान्तो विवर्तते. तै' १-६-२० ॥ (विशिष्ट जीव मध्यम और जो विभु तो, शरीर उपाधि अवच्छिन्न है. दोनोमे शरीर परिमाण ऐसा आशय निकल आता है छ. २३ वत्)

६८ स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौयेनानुपश्यति । महान्तं विभुमात्मानं मत्वा. क. २-१-४ ॥ स्वप्नका जो अंत और जाग्रतका अंत जिस करके जाना है देखा जाता है सो विभू आत्मा ॥

६९ न तत्र रथान रथयोगान पन्थानो भवन्ति अथ रथान् रथयोगान्पथः सृजते ॥ बृ. प्र. ६ म. ३ ॥ स्वप्नमें रथ, योग, और पंथको जीव नवीन रचता है (स्वप्न नवीन सृष्टि).

७० अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः बृ. (स्वप्नमें आत्मा स्वयं ज्योति होता है)

७१ यदा *** स्त्रियं स्वप्ने पश्यति समृद्धिं तत्र जानियात् छां. ५-२-८ ॥ (स्वप्नकुछ है तो उसका फल कहा है)

७२ सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपितो भवति छां. ६-८-१ ॥ सुषुप्तिमें आत्मामे मिलता है.

७३ सब नं लिखके इतनाही लिखते हैं कि ईश, केन, मांडुक्य, यह तीन उपनिषद् ब्रह्म सिद्धांतमेंके रहस्यमें प्रमाण हैं तहां कर्म प्रसंगमें ईश, आत्मानुभवमें केन और मांडुक्य तथा अवस्था विवेकमें मांडुक्य प्रमाण है.

७३-क. तंत्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि बृ. ५-९-२६ ॥ जो उपनिषदसे जाना जाता है सो पूछता हुं. ॥
ब्रह्मोपनिषद वेद. छां. ५-३ ख. ११-३ ॥

७४ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदाः सामवेदः इ. (मुं. १-१-५१ ॥ विद्या दो प्रकारकी. ऋगादि चार वेद, और शिक्षादि उसके ६ अंग अपरा विद्या. ॥ अथ परा ययातदक्षरमधिगम्यते ॥ मु. १-१-५ ॥ जिस करके ब्रह्म (अक्षर) प्राप्त होता है सो परा विद्या है.

७५ *उपनिषदोंकी* पराविद्या कहते है. *(उप+नि+पद=अनेक अर्थ यथा (१)* ब्रह्मविद्या जिससे प्राप्त हो सो (शब्दास्तोम महानिधि) (२) उप=समीप, नि=अत्यंत, पद=नाश-शिथल-गति. (३) उपनिषद अर्थात् ब्रह्मविद्या (शंकराचार्य) (४) जिस (ब्रह्मविद्या) के पठन पाठनसे ब्रह्मके अत्यंत समीप (सद=बैठना) बैठनेके योग्य हों उसका नाम उपनिषद (५) इ इसलिये उपनिषद पराविद्या है. *

---

* उपरोक्त नं. ९ ऋग् श्रुति और नं. ५४ ते श्रुति वक्ष्यमाण नं. १४-१९ उपनिषद श्रुति ब्रह्मसे इतरका निषेध करती है और दूसरी श्रुति द्वैतभी बताती हैं. इस विरोधका निवारण तथा दृश्य समक्ष है. इसकी व्यवस्था जब ही हो सकती है कि उत्तर फिलोसोफीमें जो अध्यस्तवाद (अध्यास, विलक्षण विवर्त बाध)

(ग) अद्वैतबोधक श्रुति.

१ सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जल निनिशांत उपासीत ॥ यजो वाजि०यह सब ब्रह्म है ॥ उस ब्रह्मसे सब पदार्थ उत्पन्न होते उसमें चेष्टा करते उसमें लय होते हैं. उसकी उपासना कर.

२ अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नाम रूपे व्याकरवाणि. छां. ६-३-२ ॥ उस जीवात्माके साथ अपनेको स्वयंभी पीछे प्रविष्ट होके नाम रूपको विस्तार पूर्वक प्रकाशित करूं.

३ एकत्वमनुपश्यति । यजु. ४-७ ॥ जो एकत्व देखता है उसको मोह शोक कहां ?

४ । अहंब्रह्म १-४-१० । मैं ब्रह्म हूं (लक्षणावृत्तिसे).

५ यत्राहिद्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति. बृ. ४-५-१६ यत्रत्वस्य सर्वात्मैवा भूतत्तत्केन कपश्यत ॥ बृ. ३-५-१५.

६ यद्वैतन्नपश्यति ॥ बृ. जो द्वैतको नहीं देखता, द्रष्टाकी दृष्टिका लोप नहीं होता क्योंकि वोह अविनाशी है, द्वितीय नहीं है. उससे इतर दूसरा पृथकभूत नहीं है. जिसको देखे.

७ नतुतद्वितीयमस्तिततोऽन्यद्विभक्तंयत्पश्येत्. बृ. ॥ वोह द्वितीय नही है. उससे दूसरा प्रथकभूत नहीं है जिसे देखे (इसी प्रकार घ्राण, वाणी, श्रवण, स्पर्श, रसन, मन, और ज्ञान इनके वास्ते कहा है).

८ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत्किंचनमिषत ॥ ऐत १.

८–क. सदेव सोम्येदमग्र आसीत एकमेवाद्वितीयं छा. ६-२-१ सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित=अद्वितीय ॥

९ आत्मैवेदं सर्वं. छा. ७-२५-२ ॥ यह सब आत्माही है.

१० ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्. मुं. २-२-११ ॥ यह सब अत्यंत श्रेष्ट ब्रह्मही है.

लिखा है उसको रद्द किया जाय. यही विलक्षण वाद या अध्यासवादमें प्रमाण है. और विशिष्टवाद व्यवस्था रूप होता है, अन्यथा कोइ सर्वोपकारक शांतिप्रद पद्धति नहीं मिलती.–(प्रयोजक)

११ इदं सर्वं यदयमात्मा. बृ. २-४-६ ॥ यह सब आत्माही है.

१२ मृत्योः समृत्युमाप्नोति यइहनानेव पश्यति बृ ४-४-१९ जो इसमें नानात्व देखता हे वोह मरकर मरता रहता है. ॥

१३ एपमग्रानात्मा ऽजरोऽमरोऽमृतोऽभयो ब्रह्म बृ. ४-४-१९ येह-आत्मा ..ब्रह्म है.

१४ नान्यतोस्ति द्रष्टा ज्ञाता श्रोता मंता. बृ. ३-७-२३ ब्रह्मसे इतर अन्य द्रष्टा, ज्ञाता, श्रोता, मंता नही है

१५ आत्मैवेदं सर्वं नेहनानास्तिकिंचन ॥ ब्र. सु. ३-२-२६ में शङ्कर भाष्यमेही हे (यह सब ब्रह्मही है, यहां अन्य किंचितभी नहीं है)

१६ यथा पृथिव्यां ओपधयः संभवन्ति. मुं १-१-७ ॥ जैसे पृथ्वीमे ओपधि, पुरुषमे केश वेसे ब्रह्ममे यह विश्व निकलता हे औपधिमें उपादान निमित्त अभिन्न और केशोत्पत्तिमें भिन्न है.

१७ यतोवाइमानीभूतानि जायन्ते ॥ जिससे यह सब भूत पेदा होते हैं. उपादानमें पंचमी होती है परंतु उपादान विनाभी होती है. यथा आदित्याद जायते वृष्टि.

१८ तत्सत्यंस आत्मा तत्त्वमसि छां ६-८-७-९-११-३ और ६-१६-३ तीनोंका एक साथ अर्थ करो तो "सो तू" ही अर्थ होगा (उपनिषदोमे प्रथमकी जगे उत्तम वा मध्यम पुरुषका प्रत्यय आ जाता है इसलिये सो आत्मा तत्त्व स्वरूप है, ऐसा अर्थभी हो जाता है, तत्त्वमस्ति पदकी अपेक्षा नही है. किंवा तस्यत्वमभव श्वतकेतोः ऐसाभी अर्थ करते हे तिसका तु दास हे वा वोह स्वयं आप हैं, एसाभी अर्थ करते है.× और अस्य यदेकां शाखां जीवो * * * शुष्यति सर्वं जहाति *** जीवापेतं वावकिलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इतिस एषोणिमै तदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यँ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति.

यहां तमाम मंत्रका अर्थ करके देखो. श्वतकेतु पूछता है के जो जीव कभी नही मरता और जिसके जानेसे शरीर शुष्क होके मर जाता है सो (जीव) क्या है ? उसका पिता उद्दालक कहता है कि (सःएषः) जो यह जीवात्मा है (इस अणिमा) सो अति सूक्ष्म हैं, (एतदात्म्यमिदं सर्वम्) जो सबका (जातित्वेन)

× यदि जीववाचक है तो सतत्वमसि होता

आत्मा जो है सो सत्य है सो आत्मा कहाता है सो तू (जीवात्मा) है. हे श्वेतकेतो! जीव प्रसंगमे पसामी अर्थ करते हैं.

१९ पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥ यजु. पु. सु.
जो हो गया है और जो होगा वोह सब पुरुष ही है.

२० मुक्त हुवा मुक्त होता है.

(झ) उत्तरार्द्ध प्रसंगार्थ गीताप्रमाण.

(१) देहिनोऽस्मिः २-१३ न जायते म्रियते अजोनित्यः २-२०। वेदाविनाशिनं. ॥२१॥ वासांसि जीर्णानि।२२। नैनं छिन्दंति।२३। अच्छेद्यो।नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।२४। अव्यक्तः।२५॥ इनका अर्थः—

यह (उक्त देही) आत्मा न जन्मता न मरता है. न जन्म लेता है, अज है, नित्य है, शाश्वत है, पुरातन है, देहको मार डालनेसे वोह नहीं मरता. २०। जो इसको अविनाशी, नित्य, अनादि, विकारशून्य जानता है वोह न किसीको मरवाता और न मारता है.।२१। नवीन वस्त्र धारण समान पुराने शरीरको छोडके नये शरीरको प्राप्त होता है।२२। इसको शस्त्र नहीं काट सकते, अग्नि नहीं जलाता, जल नहीं भिगोता, वायु नहीं सुकाता. ॥२३॥ ऐसा उक्तात्मा नित्य सर्वव्यापी, स्थिर, अक्रिय और सनातन है।२४। अव्यक्त, अचिन्त्य, अविकारी है. ॥२५॥ (जन्मका निषेध और देह बदलना, व्यापक और अक्रिय इन पदोंका विचार तो अवच्छेदवादसेही खुलासा होता है.)

(२) आश्चर्यवत्पश्यति २-२९॥ कोई इस आत्मको आश्चर्यवत् देखता, वा कहता वा सुनता है. परंतु देखके कहके और सुनकेभी इसको कोई नहीं जानता।२९।

(३) त्यक्त्वा कर्म फलासंगम्.॥४-२०॥ कर्माणिसंगत्यक्त्वा १८-६ जो कर्मके फलमें असक्त, नित्यतृप्त (कामना रहित संतुष्ट) निराश्रयः कर्म करता है, वोह कुछ नहीं करता. (अकर्ता समान निर्लेप है.) ॥ २० ॥

४. प्रकृतेः** कर्ताहमिति मन्यते ॥३-२७॥ गुणा गुणेषु वर्तन्त ॥२८॥ निग्रहः किं करिष्यति ॥३-३३.। इंद्रियाणीन्द्रियार्थेषु ॥५-९॥ संगंत्यक्त्वा।

---

१ देही-जीवात्मा-प्रत्यगात्मा.

करोति यः लिप्यतेन. ॥५–१०॥ अर्थः—

प्रकृतिके गुणों करके किये जाते सब कर्मोको अहंकारसे मूढ मनुष्य 'मैं कर्ता हुं' एसा मानता है. ।३-२७। तत्त्ववेत्ता गुण कर्मसे आत्माको भिन्न जाननेवाला पुरुष, गुण अर्थात् इंद्रिय स्वभावसे विषयोमें प्रवृत्त होते हैं यह मानके आसक्त नहीं होता ।२८। ज्ञानवानभी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करता है तो साधारण वास्ते तो क्या कहना है! वहां इंद्रियोंका निग्रह क्या करेगा! ।३३। योग युक्त, तत्त्व ज्ञाता पुरुष ११ इंद्रियोंवाले तमामकाम करता हुवाभी इंद्रिय अपने अपने विषयमें प्रवृत्त होते हैं, ऐसा निश्चय करके मैं कुछ नहीं करता हुं ऐसा मानता है. ।३–९। जो निष्काम (फलकी इच्छा रहित) कर्म करता है ब्रह्मके अर्पण करता है वोह पापसे लिपायमान नहीं होता.

६ ज्ञानाग्निदग्ध ॥४–१९॥ नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं ॥३८॥

ज्ञानाग्निसे कर्म दग्ध हो जाते है, ज्ञान योगके समान अन्य पवित्र नहीं होता।

सांख्य योगो पृथक् बालाः ५–४॥ सांख्य (ज्ञान) योग और कर्मयोग अलग हैं ऐसा अज्ञानी कहते हैं. नहीं के विवेकी. दोनोंमेंसे एककोभी भली भांति करनेवाला दोनोंके फलको पाता है ॥ योंऽतः ॥५–२४॥ वोह ब्रह्म स्वरूप योगी ब्रह्ममें लय होता है. ॥

(७) मम माया दुरत्यया ७–१३ ॥ माया दुस्तर है ॥

(८) आब्रह्म भुवनाल्लोका पुनरावर्ति××मामुपेत्य×× पुनर्जन्म न विद्यते ॥८–१६॥ यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम । ।८–२१॥ भुक्त्वा स्वर्गलोकं×क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥९–२१॥

ब्रह्मलोक और स्वर्गलोक तकसे पुनरावृत्ति होती है. ब्रह्मकी प्राप्ति (ब्रह्म ज्ञान हुये) पीछे पुनरावृत्ति (संसारमें जन्म) नहीं होती (मोक्षमे अनावृत्ति है).

(९) क्षेत्र (शरीर) क्षेत्रज्ञ (जीव-आत्मा). गी॰ अ. १३ श्लो. ॥१, २॥ क्षेत्र क्षेत्रज्ञका ज्ञान+++मेरा मत है. ॥२॥ पंचभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, मन, इंद्रिय १०, शब्दादि विषय ५, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, शरीर, चेतना, और धृति, यह संक्षेपमे क्षेत्र और क्षेत्रके विकार कहे जाते है ॥५७६॥ (अहंकार, बुद्धि, इच्छादि प्रकृतिके विकार, तो अब कर्ता कोन रहा? जो कर्ता होगा वोही भोक्ता होगा. किंवा अहंकार बुद्धिके विना भोक्तृत्व नहीं. इसलिये जो भोक्ता सो कर्ता होगा).

॥६॥ अमानित्वादि ७ से ११ तक ज्ञेय (क्षेत्रज्ञ) जानेके साधन ॥११॥ जिसके जानेसे मोक्ष प्राप्त हो सो ज्ञेय ब्रह्म अनादि सदसद् नहीं कहा जा सकता. ॥१२॥ सो ब्रह्म निर्गुण है. और गुणोंका भोक्ता सर्व व्यापक है ॥१४॥.

१० प्रकृति और पुरुष यह दो अनादि हैं. विकार (इंद्रिय शरीरादि, गुणादि, सुख दुःखादि) प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं ॥१९॥ कार्य (शरीर) कारण (सुख दुःखादिके साधन इंद्रिय) कर्तृत्वका हेतु (परिणाम) प्रकृति है. और पुरुष सुख दुःखके भोक्तृत्वका हेतु (अनुभव करनेवाला) है ॥२०॥ प्रकृतिस्थ, पुरुष प्रकृतिजन्य गुणोंको भोक्ता है, और इसके उत्तम अधम योनीमें जन्म लेनेका हेतु गुण संग है ॥२१॥ सो उपद्रष्टा (समीपसे द्रष्टा) अनुमंता (अनुमोदन करनेवाला) भर्ता, भोक्ता, महेश्वर, परमात्मा, और परम पुरुष ऐसा कहा गया है ॥२२॥ यहां झ. १ का विरोध न आये इसलिये विशिष्टवाद अवच्छेदवादका स्वीकार करना पडेगा. ॥ ध्यानयोग, सांख्ययोग, या कर्मयोग द्वारा मनसे अपनेमें इस आत्माको देखते हैं ॥२४॥ जितना स्थावर जंगम है सो सब क्षेत्र (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (ब्रह्म पुरुष) के संयोगसे पैदा होता है ॥२६॥ प्रकृति करके सब कर्म किये जाते हैं. आत्मा अकर्ता है ॥२९॥ आत्मा सब शरीरोंमें टिका हुवाभी आकाश समान शरीरके दोषसे लिप्त नहीं होता ॥३२॥ जो ज्ञान दृष्टिसे क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ के अंतरको और भूत प्रकृतिसे छूटनेके उपायोंको जानते हैं वे परमपद (मोक्ष) को पाते हैं ॥३४॥

(११) ममैवांशोजीव ॥१५।७॥ मेरा सनातन अंश जीव स्वरूप इंद्रिय और मनको खेंचता है. (इस कथनकी व्यवस्थाभी अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन (अंश) मानकेही हो सकती है. जीवको ईश्वरकी विभुती मानके नहीं हो सकती) अंशके आशयमें अर्थकारोंमें मत भेद है. (आभास, घटाकाश, महताकाश, वन व्याप्य होनेसे, चेतन होनेसे, इत्यादि अंशका भाव लेते हैं. क्योंकि ईश्वर तो निरवयव है).

(१२) सत्वं रजः १४।५॥ प्रकृतिजन्य सत्व रज तम यह अव्यय (निर्विकार) देही (१३।८ से २९ तक) को बांधते हैं ॥ सत्व, सुख और ज्ञानके संगसे, रज, कर्मोंके संगसे और तम, प्रमाद निद्रा द्वारा, देहीको बांधता है. १४। ५, ६, ७॥

(ञ) ब्रह्म सूत्र, अद्वैतवाद (उत्तरार्द्ध वास्ते)

(१) तदधीनत्वात् अर्थवत् ॥१-४-३ (परमात्माके आधीन होनेसे जीव अर्थवाला होता है)॥

(२) आत्मकृतेः परिणामात् ॥१-४-२६॥ (परमात्माके प्रयत्नसे परिणाम होनेसे) इसका भाव कोई अभिन्न निमित्तोपादानसे कोई ईश्वर द्वारा प्रकृतिका परिणाम बताता है.

(३) उपसंहार + + क्षीरवद्धि ॥२-१-२४॥ उपसंहार-सामग्री-दर्शनसे नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं. दूध रूप ही. अर्थात् ब्रह्म दूसरेकी अपेक्षा विना जैसे दूध अपने आप दही बन जाता है वैसे अपनी शक्तिसे जगत् रूप बन जाता है. द्वैतवादि यह अर्थ करता है. कि दूसरेकी अपेक्षा विना निमित्त कारण है (परंतु यह दृष्टांत निमित्तका बोध नही जान पडता).

(४) न प्रयोजन २-१-३३॥ लोकवत्तु लीला ॥२-१-३४॥ सृष्टि रचनेमें ब्रह्मका प्रयोजन नही है. लोक समान लीला मात्रसे रचता है.

(५) अंशोनाना ॥२-३-४३॥ जीव ब्रह्मके अंश हैं॥ (अंशके समान अंश है. शा.) आभास एवच ॥२-३-५०॥ और जीव ब्रह्मका आभासही. (अंश और आभास उभय कथनमे अंतर है).

(६) सूचकश्च ॥३-२-४॥ स्वप्न शुभाशुभका सूचक है ऐसा श्रुतिसे और स्वप्न ज्ञातासे सुनते हैं. (स्वप्न जाग्रतके अस्तित्वकी समानता).

(७) दर्शयति ॥३-२-१७॥ अर्थात् आदेशो नेति नेति. वृ. २-३-६ ब्रह्म नेति नेति. याने ब्रह्म मन वाणीका विषय नही.

(८) अन्तराभूत ॥ ३-३-३५ ॥ स्वात्मा सर्वके अंतरगत् है. भूत ग्रामवत्।

(९) अनावृत्ति ॥ ४-४-२२ ॥ मुक्त हुये पीछे जन्म मरण रूप संसार बंध को प्राप्त नही होता.

(ट) प्रचूर्ण.

(१) पूर्व सिद्ध तमसोहि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापिगोचरः (संक्षेप-शारीरिक सर्वज्ञमुनि) इश्वर जीव और उनका भेद अज्ञान (अविद्या–माया) के उत्तर भावि होनेसे अनादि नही है.

(२) अथमनादिरनन्तो नैसर्गिकोऽध्यासः शारीरिक भाष्यभूमिका ॥ यह (दृश्य) अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास रूप है. जब के शंकर श्री इस दृश्यको अध्यास रूप कहके उसको नैसर्गिक अनादि अनंत 'मानते हैं तो उसके मूल माया (अविद्या–अज्ञान) को अनादि अनंत कैसे नहीं माना जावे ? मायाही घटना है अर्थात् दृश्य स्वाभाविक अध्यास रूप है, यह परिणाम आता है. मूलको स्वरूपसे या प्रवाहसे अनादि अनंत मानो. उभय पक्षमें वही परिणाम निकलता है, और तबही मायावाद सिद्ध होता है.

श्रुति विरोध और आचार्यमत.

उपर त्रिवाद (' पूर्वार्द्ध) और अध्यस्तवाद (उत्तरार्द्ध) के संबंधमें जो श्रुति (वेद, उपनिषदके मंत्र) लिखे हैं उनमें परस्परमें विरोध है. तद्वत् ब्रह्म सूत्र और गीताके वाक्योंमें भी है. वेदांतके तीनों प्रस्थानोंकी यह दशा है. विरोधोंकी संक्षेपमें गणना. (विस्तार मूलमें है. उपरोक्त श्रुति विचारो)

श्रुति विरोध–(१) ब्रह्म विभु अक्रिय निरीह, निर्गुण निष्कलंक कैवल्याद्वैत. नित्य शुद्ध अबद्ध इ. (२) पूर्वमें ब्रह्मसे इतर परमाणु देशकाल इत्यादि जराभी कुछ नहीं था (३) सबसे पूर्व जगतका स्वामी था. (४) उसने इच्छासे जगत सरजा. आत्मासे आकाश वायु आदि हुये (५) यथा पूर्व रचना (६) यह सब ब्रह्म स्वरूप उससे इतर कुछभी नहीं है (७) ब्रह्म अभिन्ननिमित्त उपादान (८) ब्रह्मही स्वामी सेवक (९) ब्रह्म निरवयव अपरिणामी चेतनका चेतन (१०) वही ज्ञेय (११) मन वाणीका विषय नहीं (१२) मन करके ज्ञेय (१३) जीव इश्वर और प्रकृति अनादि अनंत (१४) ब्रह्म ज्ञानसे मोक्ष (१५) जीव ब्रह्मका अभेद (१६) जीव ब्रह्मका भेद. जीव अविनाशी परिच्छिन्न गतिमान कर्ता भोक्ता (१७) जीव इश्वरका अंश (१८) जीव अणु, जीवात्मा व्यापक जीव मध्यम परिमाण वाला (१९) मुक्तिसे आवृत्ति अनावृत्ति (२०) मुक्त हुवा मुक्त होता है (२१) मायाको प्रकृति जानो (२१) एक ब्रह्मचेतनसे इतर अन्य ज्ञाता द्रष्टा मंता नहीं (ब्रह्मज्ञेयभी !)

गीता विरोध (१) ब्रह्म माया क्षेत्रज्ञ क्षेत्र यह दो. (२) जीव, ईश्वरका अंश (३) जीवात्मा व्यापक (४) जीवात्मा परिछिन्न गति कर्ता भोक्ता (५) आत्मा बंध मोक्ष रहित (६) आत्मा बंध मोक्ष (७) जीव इश्वर और माया (प्रकृति) अनादि अनंत (८) मोक्षमे अनावृत्ति (९) इच्छा दुःख सुख यह प्रकृतिके कार्य विकार (तो फेर जीव कर्ता नहीं.)

व्यास सूत्रमें विरोध (१) ब्रह्म क्षीरवत परिणामी, (२) ब्रह्म निर्विकार जगतका निमित्तकारण (३) यथा कर्म सृष्टि कर्ता (४) जीव अणु (५) जीव ब्रह्मका अंश (६) जीव आभास (७) ईश्वर जीव प्रकृति अनादि अनंत (८) जीवके कर्म अनादि (९) मोक्षसे अनावृत्ति. इ.

उपरोक्त विरोध निवारणार्थ सत्यकार्यवादि जो द्वैत अद्वैतवादि हैं उन्होंने अपने भाष्योंमें बहुत जोर मारा है. यह श्रुति मुख्य, यह गौण, इसका यह अर्थ नहीं, यह है इत्यादि प्रकारकी विद्वता बताई है परंतु पक्षपात छोडके देखें तो विरोध निवारण नहीं कर सके. (१) ब्रह्मके स्वरूपमें दूसरे स्वरूपका अप्रवेश है (२) ब्रह्म विभु निरवयव होनेसे अक्रिय अपरिणामी है तो जगतरूप नही हो सकता वा जगतका कर्ता व्यवस्थापक नही हो सकता. (३) जब सब ब्रह्म तो बंध मोक्षादिका उच्छेद हुवा. (४) मुक्तिसे अनावृत्ति तो जगतका उच्छेद. परंतु यह असंभव. (५) मोक्षसे आवृत्ति तो श्रुतिका विरोध (६) जीवात्मा विभु तो कर्ता भोक्ता नही हो सकता. (७) जो अणु तो उसकी दुःख सुख रागद्वेषादि रूप अवस्था नहीं हो सकती. और न यह उसको अनित्य गुण मान सकते हैं क्योंकि नित्यके नित्य गुण होते हैं. रागादि दुःख सुख अनित्य हैं. (८) ब्रह्मसे इतर ज्ञाता दृष्टा मंता नहीं तो जीव कर्ता भोक्ता न ठेरा परंतु श्रुतिमें कर्ता भोक्ता माना है इन विरोधोंका निवारण सत्यकार्यवादि यथावत् नही कर सके हैं.

उपरोक्त विरोध दर्शनमें कितनेही विकल्प उठ रहे हैं. (१) श्रुतिओके वक्ता जुदा जुदा हैं उन्होंने यथाबुद्धि लिखा है. (२) यथा देशकाल स्थिति अधिकार बोध है (३) किसीने क्षेपक भाग मिलाया है (४) वक्ता भ्रांत होने चाहिये. इसलिये विरोध है. उसके निवारणार्थ प्रयत्न व्यर्थ है. (५) या तो वक्ताका अर्थ (आशय) नही जाना गया. अतः विरोधाभास है.

आर्य प्रजा श्रुति (वेद उपनिषद) और व्याससूत्र तथा गीताको भ्रांत नहीं मानती किंतु वेदांत संप्रदाय उनको निर्भ्रांत सर्वज्ञके वाक्य मानते हैं इसलिये आद्य ४ विकल्प माननेकी अपेक्षा नही रही. पांचवे विकल्पकी संभावना है तथापि व्याकरण कोश संगति वगैरेसे कुछ जान सकते हैं. अतः विरोध निवारणार्थ प्रयत्न सभ्य है.

जो यूं है तो श्रीमाउशार श्री शंकर मदाभमती शीयरी (आभास-मायावाद उपाधिवाद) का मान देके उसका आश्रय लेना पड़ता है. तब विरोध-निवारण पूर्वक पर्णाश्रम त्रिपुटी व्यवहारकी व्यवस्था होती है. जैसेके स्वप्नसृष्टिमें होती है.×

अकेला योगी या अकेला विवेकी विद्वान ब्रह्म विद्या बोधक श्रुतियोंका गुप्त कटाक्ष समझ ले यह मुशकिल है. किंतु विवेकख्यातिवाला ही जान सकता है इसीलिये ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रियका ग्रहण करा है.

जबके ब्रह्म अद्वितीय कैवल्याद्वैत-शुद्धाद्वैत रूप है तो दृश्य जगत क्या? ब्रह्ममें नैसर्गिक अनादि अनंत अध्यासवत् बाधरूपा सद ब्रह्मसे विषय याने विलक्षण अनिर्वचनीय. (शं.) इतना कहनेसे लाभ क्या? (उ.) ब्रह्मका उपयोग-बाधरूपा विलक्षणाका उपयोग जगत व्यवहार बंध मोक्ष कर्म उपासना ज्ञान और त्रिपुटी व्यवहारकी व्यवस्था. क्योंकि तमाम नाम रूप ब्रह्मके विवर्त हैं. दृश्य (मायीक) *ब्रह्मका अन्योऽन्याध्यास है. (१) मायोपहित चेतन, मायाविशिष्ट चेतन, वा चेतन* विशिष्ट माया (२) अविद्या उपहित चेतन, अविद्या विशिष्ट चेतन, या अतःकरण उपहित चेतन अंतःकरण विशिष्ट चेतन या चेतन विशिष्ट अंतःकरण वा अवच्छिन्न चेतन. (३) और सर्व स्वप्न समान इन तीन प्रकारका आश्रय करके कर्म उपासना ज्ञान बंध मोक्षकी व्यवस्था हो जाती है. और श्रुतियोंका तमाम विरोध निवारण हो जाता है. इस थीयरीमें सगुणता, क्रिया, परिणाम, आकार, अवस्था, उपादानता, यह सब माया अविद्याका भाग. और सत्ता स्फुर्णता, व्यवस्था, अस्ति भाति और निमित्तता अद्वितीय चेतन ब्रह्मका भाग. ज्ञाता ज्ञातृत्व, द्रष्टा द्रष्टत्व, कर्ता कर्तृत्व भोक्ता भोक्तृत्व इत्यादि क्षेत्र क्षेत्रज्ञ इन उभयके संबंधसे होता है और चिदात्मा कूटस्थ है, व्यष्टि शरीर सृष्टि समान समष्टि ब्रह्मांडमें यथायोग्य घट जाता है याने सब क्षेत्र क्षेत्रज्ञ इन उभयके संबंधसे यह सर्व है.

श्रुति (वेदोपनिषद) माताका उपकार मान्ना तो माताके उपकार मान्ने समान है

× मेरे विचारमें तो इतना जान पड़ता है कि इन थीयरीको अच्छी प्रकार अनुभवमें ले तो छ शास्त्र और अन्य धर्म मत पंथोंमेंभी विरोध नहीं जान पड़ेगा. सब विरोधदोषका निवारण हो सकता है सबमें समान भाव आ जाता है क्योंकि अन्य मत पंथ मनव्यभी अध्यस्तवार समान *मायीक या मायाके परिणाम वा स्वप्नवत् बाध रूप ठेरते हैं तो फेर किसको ठीक* किसको अठीक कहा जाय? किसमें हर्ष शोक माना जाय? अर्थात् सब समान है ॥

याने मानेके योग्य बुद्धिही नहीं रखते और न उसका प्रत्युपकार हो सकता है तथापि जिसने उसके उपकारका भान कराया उसके अर्थात महोदय व्यास ऋषि, श्री कृष्णचंद्र महाराज, गोडपादाचार्य, श्री शंकर महाराजका उपकार भूलने योग्य नहीं है क्योंकि उन्होंने जिज्ञासु–अधिकारी जीवोंके लिये श्रुतिओंके गुप्त रहस्य खोजके अनुभव कर ले ऐसे साधन बना दिये हें इसलिये शोधक जिज्ञासुको उचित है कि चिद चिद्के अनुभव याने विवेकख्याति होनेतक द्वैत अद्वैतके झघडेमें न पडे. और अमुक वक्ता वा भाष्य सत् पर है अमुक सत्य पर नहीं इस गंभीर प्रकरणमें न डूबे.

माना के गोडपादश्री और शंकरश्रीकी थीयरीके पद मूल वाक्योंमें हों वा नहींभी हों और इन पदके अनुकूल मूल वाक्य हो वा नहींभी हों तथापि हमारी अल्प मतिमें श्रुतियोंके विरोध निवारण वास्ते इनकी अद्भूत थीयरी प्रशंसनीय हे. भविष्यमें कोई उत्तम पद्धति निकले तो जुदी बात है. नहीं तो वर्तमान तक तो इन थीयरी जेसी अन्य जानेमें नहीं आती. धर्म नीति मर्यादा बंध मोक्ष कर्म उपासना ज्ञान यह सब कायम रहे और सिद्धांतका त्याग न हो, ऐसी शैलीमें वर्णन करना उपनिषद और गीता तथा ब्रह्म सूत्रकाही काम है. वर्तमान जेसे मिथ्यावादि काम वोह पूरा नहीं कर सकते.

ब्रह्मसिद्धांतमें ऋद्यस्तवादगत् जितनी पद्धति-शैली लिखी हैं वे सब इन थीयरी ओंके अनुकूल हैं फक्त व्यवस्थाकारक शैलीमें उन विषे भेद (तारत्म्यता) है. यथा ब्रह्मको अध्यास, भ्रम, मूल, अज्ञान, ब्रह्मका क्षीरवत परिणाम, माया जीव अनादि सांत, जीव ब्रह्मकी एकता. इत्यादि शैलीका किसी पक्षमें ग्रहण नहीं है. परंतु सद ब्रह्म एक और जगत उससे विलक्षण अनिर्वचनीय, यह सब पक्षोंमें समान सिद्धांत है.

प्रमाणोपसंहार.

उचित तो यह था कि जेसे उपरु वेदोपनिषद, व्यास सूत्र और गीताके प्रमाण दिये वेसे अन्य शास्त्र ग्रंथ (अवस्ता, तोरेत, इंजील, कुरान, बौद्धदर्शन, जैन दर्शन, न्यायदर्शन, वैशेषिकदर्शन, योगदर्शन, कर्ममीमांसा, सांख्यदर्शन, योरोपीयदर्शन, पुराण, स्मृति, रामायण–महाभारत, चीनदर्शन, सूफीदर्शन इत्यादि) केभी प्रमाण देते. क्योंकि ब्रह्म सिद्धांतने शब्दको बीचमें नहीं लिया है. अतः या तो सबसे उपेक्षा वा

तो अन्यकर्ता ग्रहण चाहिये था परंतु जिस संप्रदायसे प्राप्त हुवा है उसके प्रत्युपकारमें पुष्टी करना पड़ा है. क्योंकि उस संप्रदाय (वेदोपनिषद्) से पूर्वकी संप्रदाय नहीं है. और जो है वे उसकी संतान हैं. (इसका विस्तार तत्त्वदर्शनमें किया है) इसलिये अन्यके प्रमाण नहीं लिये हैं यद्यपि उस संप्रदायमें न्यायादि दर्शन और अनेक पुराण स्मृति हैं तथा उनमें परस्परमें मतभेद हैं इसलिये उपेक्षा रखी है. तथाहिः—

(१) व्यास सूत्र (उत्तरमीमांसा) के, क्षीरवद्धि । २–२५ ॥ ऐसे ऐसे एक दो सूत्रको बीचमें न लें और व्यतिरेको गंधवत् २–३–२६ ऐसे ऐसेके दो सूत्र विश्रामसे मान लेवें तो वोह उक्त जीवादि प्रसंगमें पूर्वार्द्ध वास्ते तमाम प्रमाण है. और जो श्रुतियोंका विरोध निवारण करके व्यवस्थाकी दृष्टिसे देखें तो उत्तरार्द्ध वास्ते वेदांत दर्शन प्रमाण है. वेदांत शास्त्रके सूत्रोंके विषयवाक्य–जो श्रुति हैं वे उपर लिखीं हैं. अतः वेदांत दर्शनके विशेष प्रमाण देनेकी आवश्यकता न रही, थोडे वाक्य दिये हैं.

(२) सांख्यदर्शन, ईश्वरको दरमीयानमें नहींभी लेता और भोक्ता जीवोंको नाना विभु मानता है, ऐसी उसकी शैली है ब्रह्म सिद्धांत जीवको कर्ता भोक्ता परिच्छिन्न नाना मानता है. ईश्वरको बीचमें लेता है इतना शैलीका फर्क है. बाकी तमाम सांख्य शास्त्रके अनुकूल है. सद और विलक्षणका भेद स्वयं निकल जाता है.

(३) योग शास्त्र जीव नाना कर्ता भोक्ता विभु मानता है और ब्रह्म सिद्धांत कर्ता भोक्ता परिच्छिन्न नाना मानता है इतना शैलीका अंतर है. बाकी तमाम योग शास्त्रके अनुकूल है विलक्षण और सदका भेद स्वयं निकल आता है.

(४) सांख्य और योगमें आत्माका प्रतिबिंब मानके निर्वाह किया है और ब्रह्म सिद्धांतमें संस्कृत वृत्ति मानके व्यवस्था की है, इतना शैली मात्र अंतर है.

(५) कर्मयोग अंशमें मिमांसासे प्रतिकूल नहीं. जबके पशु हिंसाका प्रसंग न हो तो. क्योंकि ईश्वरादि इस शास्त्रका विषय नहीं है.

(६) न्याय और वैशेषिक मनको नित्य, जीवको रागादि लिंगवान् और विभु मानते हैं. इतने अंशमें पूर्वार्द्ध उसके साथ नहीं मिलता. मोक्ष साधन (मन आत्माका असंबंध होना) और ईश्वर प्रसंगमें मिलताही है. पदार्थोंकी संख्या और स्वतः परतः यह शैली मात्र भेद हैं.

(७) उत्तर फिलोसोफी मांडुक्यके सारसे मिलती है और वोह स्वतंत्रतासे बोधक है. याने शब्दको बीचमें नहीं लेती.

(८) जीव ब्रह्मकी एकताकी शैलीमें इसमें उपेक्षा है. किंतु आत्मानुभव होने पश्चात्भी कर्म, उपासना और योग वा धर्म नीति, प्रेम, निष्कामताके प्रचारमें आशय है.

(९) आत्मा परमात्मा और बाह्य वस्तु इन उभयका संबंध अनिर्वचनीय है. संसार दृश्य स्वप्नवत् आभास है, यह जर्मनी कान्ट फिलोसोफरका मंतव्य है सो ब्रह्म सिद्धांतके प्रतिकूल नहीं है. और ब्रह्मही जडचेतन रूप जगत है, यह हेगल फिलोसोफरका मंतव्य है ब्रह्म सिद्धांतका विलक्षणवाद प्रकाश्य-अध्यस्त भागमें मिलता है. अधिष्ठानको उससे भिन्न मानता है.

सांख्य शास्त्र.

१-पुरुष (जीवात्मा) असंग है सांख्य अ. १ सु. १५॥ पुरुष अकर्ता है. अक्रिय है. अ. १। सू. १६, ४८, ५१, ५२, ५३ और अ. ५ सू. ७६ और अ. ९ सू. १०॥ पुरुष निर्गुण है अ. १ सू. १४७, १४६ और अ. ६ सू. १०॥ पुरुष ज्ञान स्वरूप है अ. १ सू. १४९, १५० ॥ पुरुष विभु है अ. ५ सु. ११६ अ. ६ सू. ३६, ५९॥

बंधका हेतु अविवेक है. अ १। सू. १९, ५५, ५८। और अ. ३ सू. ७१, ७२॥ बंध निवृत्तिका साधन विवेक ख्याति. अ. १ सू. ५६-५८-८६ और अ. ३ सु. २३, ७३, ८०॥ दुःख-विघ्नाभाव मुक्ति. अ. १ सु. ३। और अ, ६ सु. २०॥

मोक्षमे अनावृत्ति-अ. १ सु. ८३। अ. ६ सु. १७+१८ ॥

आकाश इंद्रियोत्पत्ति चित्त परिणाम. अ. २ सु. १२, ७१॥

मन व्यापक नहीं निरवयव नही अ, ५ सु. ६९, ७०॥

अहंकार विशिष्ट जीवके कर्मसे भोग होता है, न के पुरुषको ६-५९

---

*नोट (वस. विशिष्ट तंत्री.)
और तत्वदर्शन अ. ४-२७७

उपरके बोध (विशिष्टवाद) से आपको ज्ञात हो गया होगा कि उपरोक्त बोध

*इस नोटको कोई एकदेशी भाई वा ज्ञान मस्त भाई अप्रासंगिक माने तो भलेही माने. हमने तो अमुक उद्देशसे परवशात् लिखी है (वह अ. ४-२०८ विशिष्ट यंत्री) सो व्यर्थ हो ऐसा मैं नहीं धार सकता.

उस व्यक्तिके लिये है कि जिसको रागादि पंचक्लेश सताते हों अथवा जो ३ तापसे ग्रस्त हो. वोह कौन? मैं मेरा ऐसा अभिमानी दुःख सुखका भोक्ता जो जीव (वस. २९४-२९७ और तद. ७-२२३ का विवेचन वांचो) इसलिये जिसको रागादि ८ हैं उसको कहे हुवे साधन कर्तव्य है. इतनाही नही किंतु यथाशक्ति वक्ष्यमाण नोधाभक्ति करते रहना चाहिये इसीसे उसका कल्याण होनेवाला है.

कोई दुःख ऐसा होता है कि दुःखी व्यक्ति अपना आपभी निवृत्त कर सके. यथा ज्वरादिकी पीडा. तथापि उस दुःख निवृत्ति (वा सुख प्राप्ति) के साधन जन समाजद्वाराही प्राप्त हुये वा होंगे यथा वैद्यद्वारा औषधि मिलनेसे ज्वरादिकी पीडा निवृत्त होती है. बहुतसे दुःख ऐसे हैं कि समष्टि समाजकी उन्नति हुये बिना वा उसकी सहायता मिले बिना एक व्यक्तिके वा समष्टिके वे दुःख निवृत्त नहीं हो सकते. यथा अविद्या, कुरीत रिवाज, नाना विरोधी धर्म और तद्जन्य जो जो दुःख हैं वे समष्टिकी सहायता मिले बिना दूर नहीं हो सकते इसी प्रकार व्यवहारिक सुख प्राप्ति वास्ते ज्ञातव्य है.

वर्तमान समष्टि समाज रूपी शरीर स्वयं रोगी वा दुःखी है तो वोह दूसरे वा अपने अंग एक व्यक्तिके दुःख काटने सुख प्राप्ति करानेमें कैसे मददगार हो सकता है? याने नही हो सकता. जबके व्यष्टि समष्टिके श्रेयस् (व्यावहारिक दुःख निवृत्ति सुख प्राप्ति) के संबंधमें ऐसा है तो वर्तमानमें श्रेयस् प्राप्तिके मुख्य साधनका तो स्वप्नभी आना दुर्लभ है यह स्पष्टही है.

जीवनका गोल (ध्येय) इस लोकमें वा पर लोकमें वा उभय लोकमें "दुःख रहित सुखका भोग होना" ऐसा माना जाता है. सब प्रकारकी प्रवृत्ति वा जीवन संग्राम उस गोलके लिये है. इसलिये मेरे हृदयमें ऐसा स्फुरण होता रहता है कि उद्देशकी दृष्टिसे ज्ञानी वा अन्य हरकोईको उचित है कि यथा देशकाल स्थिति परिस्थिति, जीवन पर्यंत जीवन मतका प्रचार करे और समन्वयवाद (तद. अ. ४-सू. ४९) करके मत मतांतरोंके झगडोंसे उपेक्षा करावे, द्वेष, असत्, कुसम्पवर्धक सामग्रीसे जुदा पडते जावें बल्के कोई योग्य युक्तिसे (शिष्यके शिक्षणसे इ.) उसके अभाव होनेका उपाव करें. इसी वास्ते भूमिकामें और ग्रंथके अंतमें उसका स्मरण कराया है. सब जड, सब चेतन, मैं ईश्वर, जगत मिथ्या, जगत स्वप्नवत्, अर्थ शून्य वा जगत स्वप्न, जगत क्षण भंगुर, जीव शरीरसे भिन्न नहीं, ईश्वरादिके विवाद, द्वैत, अद्वैत, दूसरेको दुःख हो तो भले हो परंतु आप सुखसे जीवन करना. मरने पीछे कुछ

(परलोक–पुनर्जन्म ईश्वरादि) नहीं है और यदि हो तोभी हमको अज्ञात होनेसे हमको उसका विचार करना उचित नहीं क्योंकि व्यर्थ है. इत्यादि बातोंको मानके वा उनमें तनाके व्यवहार पक्षमें शुष्क बन जाना वा पतित हो जाना वा दुःखमें पड जाना और दूसरेंकी पडतीका निमित्त बन जाना ऐसा नहीं होना चाहिये इसलिये ग्रंथके अंतमें वर्तमाने वर्तमानवत् (यथायोग्य कर्तव्य) कहा है.

प्राचीन अनुभवी महात्माभी लिख गये हैं कि सुज्ञोंको तन, धन, स्त्री, पुत्र आदि संसारिक विषयभी परंपरासे मोक्षके बहिरंग साधन हैं और विवेकशून्य भोक्ता वा आसक्तोंको दुःख (बंध) के साधन हैं. सारांश धर्म, तदजन्य अर्थ और वैसे अर्थोंका भोग याने काम, यह व्यवहारिक उन्नतिभी मोक्षका बहिरंग साधन है और यह स्पष्टही है क्योंकि तन मनकी उन्नति विना मोक्ष वा जीवन सुख नहीं प्राप्त हो सकता. और तन मनकी आरोग्यता तथा उनकी शक्तिकी उन्नति होना यह वर्तमान दशामें सामाजिक उन्नति हुये विना असंभव है. यदि कदाचित् किसी एक आधी व्यक्तिको सामाजिक उन्नति विना तन, मन, धनका सुख प्राप्त होभी जाय तो क्या हुवा? असाधारण दृष्टांत दृष्टांत नहीं. अब आपको हिंद निवासी जन मंडलकी वर्तमान दशा पर ध्यान देना चाहिये अर्थात् रोगी है, पडतीमे है. ऐसे समाजके मेंबरको (कोई व्यक्तिको) धर्म अर्थ कामकीही प्राप्ति होना कठिन है तो मोक्ष प्राप्ति और उस प्राप्तिके साधन मिलनेकी तो बातही क्या करना!

मेरी अल्पमतिकी यह मान्यता है कि यदि कर्म (नीति, सदाचार, धार्मिक कृति विद्यादि गुण संपादनार्थ कृति) और उपासना (भक्ति अर्थात् मनका इष्टाकार होना) का प्रचार हो तो उक्त दुर्दशाका अभाव होके उन्नति हो और यह उन्नति मोक्ष प्राप्तिकाही बहिरंग साधन बन जाय.

सत्य (तन मन और वाणिसे सचाई पालना) अस्तेय (अयोग्य रीतिसे किसीके तन, मन, धनका सुख न लेना याने किसीका हक न डुबाना) अपरिग्रह (जीवनकी जरुरते जहांतक बन सके कम रखना. और जरुरतसे ज्यादे अपनी जातके वास्ते तृष्णा नहीं करना. जैसेके आजकाल जापानी वर्तते हैं वैसे वर्तना) ब्रह्मचर्य (तंदुरस्ती तथा विद्या प्राप्तिके लिये पूर्ण ब्रह्मचर्य पालना और २९ वर्षकी उमर पीछे गृहस्थि ग्रहस्थ ब्रह्मचर्य पाले, आर्य कर्तव्य देखो) अहिंसा (बलवान हो तोभी किसीके साथ वैरभाव न करना) अतिरस्कार–सन्मान रूपी शरीरके अंगोंको याने किसीको तिरस्कार दृष्टिसे

न देखना और मैत्रका अभ्यास और अनुकरण करना.* इस प्रकार सच्चे अच्छे आचार सच्चे अच्छे विचार और सच्चा अच्छा उचार सत्य कर्म कहाते हैं.

उपासना अर्थात् भक्तिका संक्षेपमें यह वर्णन है.—

नवधा भक्ति—भक्त लक्षण.

श्रवणादि नोधा भक्तिके यथा रुची यथा दृष्ट अनेक प्रकारके लक्षण × किये गये हैं. यहां वर्तमानमें जो लक्षण लाभकारी हैं उनको संक्षेपमें नीचे लिखेंगे. इस प्रसंगमें इतना जनाना जरूर है अर्थात् जो विशेष अज्ञानी हैं वा अशक्त हैं उनपर भार देना नहीं चाहते और न वे यह भार उठा सकते हैं और जो विवेकख्यातिवाले (आत्मवित) हैं वे अपना गोल पुरा कर चुके हैं इसलिये उनको बोध लेनेकी आवश्यकता नहीं है और केवल आपस्वार्थी भाई इस बोधके अधिकारी नहीं हैं इसलिये अर्थात् अधिकारीके अभाव होनेसे निम्न लिखित विषय निरर्थक ठेरता है. तथापि जिन्होंने अपनी जिंदगीका गोल पूरा कर लिया है (पेनशनर जैसे हैं) वे महानुभाव महात्मा निम्न लिखित विषयको और उसके उद्देशको मनमें जानते हैं, उनका जीवन भक्तिके अंतिम जीने (आत्मसमर्पण वा आत्म निवेदन) पर है. योग्य व्यक्ति उनका अनुकरण करे, इसलिये उनका उपदेश, उनका आशय और उनका परोपकारी जीवन जैसा है उसको संक्षेपमें दिखाते हैं. जन समाजका जो हितैषी है अर्थात इरानी, याहुदि, किरानी, कुरानी, चीनी, जापानि, पौराणी, जैनी, बोद्धि, थिओसोफी, वेदी (सनातनी समाजी) वगेरे ऐसी भेद दृष्टिके विनाका समष्टि जन मंडलका जो हित होना चाहता है वोह निम्न लिखित भक्ति करनेका अधिकारी है.

इस (ब्रह्मसिद्धांत) ग्रंथका सार यह है कि लक्ष्यालक्ष्य रूप अचिंत्य, अबद्ध, असंग, निरीह (इच्छा रागादि रहित) निर्विकल्प, सम (एक रस) चेतनद्वारा यथा संस्कार सब प्राणी मात्र चेष्टा कर रहे हैं वा यूं कहो कि उसी सत्ताके द्वारा सब नाम रूपात्मक जगत् और उसका व्यवहार सजीवन हो रहा है यानें वर्तमान है. जल (सम) मछली (प्राणी—दृश्य) समान उसी सममेंसे सब उद्भव (प्रादुर्भाव) होते हैं

---

* जो समान दर्जेवाले हों और उत्तम गुण कर्मवाले हो उनमें मित्रभाव होना १ जो ऊंचे दर्जेवाले उत्तम गुण कर्म स्थितिवाले हो उनको देखके आनंद होना २ जो दुःखी गरीब हो उन पर करुणा आना ३ जो दुष्ट प्रकृतिवाले हो उनसे उपेक्षा ऊदासीन होना. ४.

× प्रकृतिवादि, जडवादि, चेतनवादि, ईश्वरवादि, अनात्मवादि, जीववादि वगेरेकी दृष्टिसे जुदा जुदा प्रकारके लक्षण हैं॥

उसीमें जीते हैं और उसीमें लय होते हैं. इस प्रकार पूर्व उत्तरमें अव्यक्त और मध्यमें व्यक्त रूप होते हैं, उसकी सत्ता विना न दर्शन है, न जीवन है, न चमत्कृति है ' सारांश समष्टिमें उसीकी विभूती है. इसलिये समष्टि (शरीर) की सेवा वा भक्ति उसी (जीव-शरीरी) की भक्ति है ऐसा सिद्ध हो जाता है. और यदि सर्वात्म भावके विना देखें तोभी यह भक्ति अपनेको और दूसरेंको हितकारी सुखप्रद है ऐसा स्पष्ट है. इन दोनों हेतुओं लेके निम्न लिखित नोधा भक्ति यथाशक्ति सब योग्योंको कर्तव्य है उस भक्तिका प्रकार यह है:—

(१) श्रवण भक्ति (क) जो उत्तम गुण, कर्म, विद्या, बुद्धिका कौशल्य, धंधा, हुनर, कला, ऐश्वर्यतादि वर्तमान समष्टिमें हो उनका तथा पूर्वीय ऋषि मुनि पराक्रमीयोमें जो वे थे उनका याने उभयकी योग्यताका श्रवण करना. (ख) गरीब, निर्धन, अशक्त, इंद्रियहीन, अनाथ बालक, अनाथ विधवा, निर्धन विद्यार्थी, साधनहीन विद्वान सदाचारी, इन सर्वके दुःख अर्थात् उनकी अयोग्यताका श्रवण करना. (ग) दुःख अशक्तिके निमित्त कुरीत रिवाजोंका श्रवण करना. (घ) पूर्वोक्त अयोग्यताके कुरीत रिवाज निवारण करनेके उपायोंका श्रवण करना यथा अंत्यज तकको तालीम देना अनाथालय, औषधालय, विद्यालय, सडक, नहेर, कुवा, तालाव, बाग, हुनरालय, धंधालय, विज्ञानालय, प्रजारक्षक राज्यकी रक्षा और उसको उन्नति अर्थ राज्यभक्ति, राज्यभक्ति और प्रजाभक्ति (देशोन्नति) के प्रचारक तथा राजा प्रजामें पिता पुत्र रूप संबंध * सूचक और प्रदर्शक उपदेशक तथा धर्म नीति संपके बोधक उपदेशक, अत्यज पर्यंत यथा गुण कर्म वर्तन प्रदेश गमनद्वारा अनेक प्रकारके ज्ञान हुनर कलाकी प्राप्ति, प्राचीनोंके उत्तमाचार विचारका प्रचार, सभायें स्थापन करके उनकी संमति अनुसार वर्तना, विद्याका प्रचार होना, इत्यादि होनेकी रीति और युक्ति उक्त अयोग्यता व कुरीति रिवाजके निवारणके उपाय हैं उनका श्रवण करना (ङ) उन अयोग्यता व कुरीति रिवाजके निवारण हुये उन अयोग्यतावालोंको और सर्व साधारण मंडलको जिससे योग्यता और सुख प्राप्त हो ऐसे उपायोंका श्रवण करना (त. अ. ४। सू. २३—२९ भी देखो).

इस प्रकार इन पांच प्रकारके श्रवणका नाम **श्रवण भक्ति** है.

(२) कीर्तन—पूर्वोक्त पांचो विषयका वारंवार अभ्यास करना और दूसरेको

---

१ इसका विस्तार अन्यत्र है. *वर्तमान कालवश राज्य प्रजाका मित्रभाव संबंध.

कहना सुनाना सो कीर्तन भक्ति है. यह कीर्तन प्रत्येक भाषाके गद्यपद्यमें होना चाहिये.

(३) स्मरण-पूर्वोक्त पांचोका युक्ति पूर्वक वारंवार मनन करना और यथा प्रसंग उद्धत हो जाना सो स्मरण भक्ति है.

(४) पादसेवन-देश हितैषि निष्कामिओंकी यथाशक्ति सेवा करना, उनका संग करना, उनके अनुकरणकी टेव डालना और पूर्वोक्त अयोग्यता वालोंकी यथा शक्ति सेवा करना सो पादसेवन भक्ति है

(५) अर्चन-जन समाजकी उन्नति याने सेवाके वास्ते जिन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण किया हो उनका लोक समक्ष हरेक प्रकारसे सत्कार करना अथवा तन, मन, धनसे जन मंडलका सत्कार करना किंवा उक्त अयोग्यतावालोंकी शांति अर्थ उनका सत्कार करना अर्चन भक्ति है.

(६) वंदन—देशहितैषि परोपकारीको उच्च मानके लोक समक्ष निरभिमानता पूर्वक उनको नमना-नमस्कार करना. किंवा उक्त अयोग्यता विशिष्टोंको करुणापात्र जानके उनको अपनी निर्मानिता दरसाके उनका आदर करना वंदन भक्ति है.

(७) दास्य—जन समाजकी उन्नतिके वास्ते किंवा उक्त अयोग्यता विशिष्टोंके दुःख कटने और सुख मिलने वास्ते तन, मन, धनसे तैयार होके सेवक समान यथा शक्ति सेवा और प्रयत्न करना यह दास भक्ति है.

८ सख्य—जैसे अपने शरीके अंग (हाथ पांव इंद्रिय वगैरे) अपने सहायक मित्र (सखा) हैं. इसी प्रकार जन समाजरूपी शरीरका अपनेको अंग जानके यथा शक्ति जन समाजका सहायक होना किंवा पूर्वोक्त अयोग्यता विशिष्टोंका दुःख अपने दुःख समान जानके उसके *निवारण करनेमें यथाशक्ति सहायक होना सो सखा* भक्ति है.

(९) आत्म निवेदन (आत्मसमर्पण) जन मंडलकी उन्नति (देशोन्नति) के लिये अपना भोग देना अर्थात् यथा शक्ति तन, मन, धन उसके अर्पण कर देना (उपयोगमें लाना) अथवा उक्त अयोग्यता विशिष्टोंके दुःख निवृत्ति और सुख प्राप्तिके लिये यथाशक्ति अपना तन, मन, धन अर्पण कर देना, (उपयोगमें लेना) सो मसमर्पण भक्ति है.

(१०) पराभक्ति—पराभक्ति-वासुदेवं सर्वमिति ऐसा हो जाना यह नोधा

भक्तिका फल हैं. इसके वर्णनकी आवश्यकता नहीं है. क्योंकि जिसने उक्त नोधा भक्तिको यथायोग्य प्राप्त किया है सो स्वयं इनको पालेगा. उसको परम उपासनाकी सिद्धि हो जायगी.

उपरोक्त नोधा भक्तिको ज्ञानवान पुरुष निष्काम हुवा करता है क्योंकि वोह उसके फलको पाया हुवा है. कर्म विना जीवन नहीं होता, उस पूर्णकाम निस्पृहिका जीवन परार्थ होता है, और ज्ञानवान पर सृष्टिके प्रत्युपकारका अन्योंसे विशेष भार होता है इसलिये वोह इस भक्तिको अन्य कर्मोंसे उत्तम समझता है इस वास्ते उसको करता है और अन्योंको यथाशक्ति इस वास्ते कर्तव्य होती है कि (१) कर्ताका अंतःकरण शुद्ध होता जाता है जोके मोक्षका परंपरासे साधन है (२) यदि न्यूनता रहनेसे वर्तमानमें नही तो उत्तर जन्ममें मोक्ष प्राप्तिका अधिकारी होके परंपद पानेके योग्य होता है. क्योंकि भक्तिका बीज नष्ट नही होता, उत्तरमें फलीभूत होगा. (३) ऐसे भक्त पुरुषका सांसारिक व्यवहार अन्य स्वार्थीओंकी अपेक्षा अच्छे रूपमें चलता है उसे अन्य सहकारी मददगार मिल जाते हैं. (४) तथाहि जो इस जीवनमें कर्ताको पूर्ण फल नही मिल सका तोभी इस भक्तिका उसकी संतानको धर्म अर्थ काम और मोक्षकी प्राप्ति यह चारों फल अवश्य हो सकेंगे. यह स्पष्टही है. जेसे महनत करके जायदाद पेदा करके संतानके उपयोग वास्ते छोड जाते हैं उसका फल संतानको मिलता है वेसेही सामाजिक उन्नति वा उस उन्नतिका अमुक अंश कर्ताकी संतानके लिये निर्जोखम धन है. ॥

इस प्रकार ज्ञानी (विद्वान विवेकी आत्मवित्) और अन्य (योग्य व्यक्ति–श्रीमंत वगेरे) योग्योंको आलस्य और उद्धतपना छोडके सामाजिक उन्नति (देशोन्नति) करनेमें यथाशक्ति प्रयत्नशील और सहायक होना चाहिये. क्योंकि इतिहास और उन्नति अवनतिके उदय अस्तका क्रम यह बता रहा है कि जो योग्य समाज (वा योग्य व्यक्ति) है उसीका जीवन होता है जो अयोग्य है उसको पराधीन होके उसे अपना नाश करना पडता है याने नष्ट हो जाती है. जरा पक्षपात और स्वार्थबाजीको छोडके कान विना सुनिये आंखे बंध करके देखिये (१) सृष्टि उपकारका प्रत्युपकार. (२) विद्वान सदाचारीका कर्तव्य परोपकार (३) केवल आप स्वार्थीओंका प्राप्त तिरस्कार. (४) कर्म बिन न जीवन याने कर्म जीवनका आधार. (५) पवित्र वंश दुःखी हिंदनिवासी प्रजाका पुकार. (६) दूसरी उन्नत प्रजाका प्रचार (७) अपनी जननीके ऋणका भार (८) मानव मंडलका अधिकार (९) जीवन मुक्तोंपर गुरु ऋणका उधार. यह नोका

यंत्र अर्थात् (९) सत्र किंवा यह ९ कारण हम तुम सब पर उक्त नोधा भक्ति करनेका फर्ज डालता है अर्थात् सबको यथा शक्ति कर्तव्य है.

यहां तक समष्टिरूप ईश्वरकी नोधा भक्ति प्रकरण समाप्त हुवा.

व्यष्टि प्रति नोधा भक्ति—देव-ऋण निर्जीव पदार्थोंमें चेतनकी क्रिया शक्ति, (देवका उपकार) पितृ-ऋण (पूर्वजोंका उपकार) और लोक-ऋण (जिनकी मददसे योग्यताको प्राप्त हुये उनका उपकार) इस प्रकारसे ३ ऋण हैं. उनका यथा शक्ति अदा करना (प्रत्युपकार करना) मनुष्यका कर्तव्य है. जो इन ३ ऋणोंमे मुक्त हुवा पुरुष इष्ट प्राप्तिके लिये वक्ष्यमाण नोधा भक्ति करता है उसको उस भक्तिका फल होता है. वर्तमानमें सांगोपांग प्रभुकी भक्ति नहीं कर सकने किंवा करनेवालेको उसका यथावत् फल नहीं होता उसका कारण यही है कि कर्ता उक्त ऋणसे मुक्त नही है, इसलिये उसका स्वीकार याने फल नहीं होता. उक्त ३ ऋणोंमे जबही मुक्त होनेको समर्थ हो सकते हैं कि पूर्वोक्त नोधा भक्तिका स्वराज्य हो जावे. अर्थात् उक्त भक्ति पूरी हुये ऋण दूर करके इष्ट भक्तिके पात्र बन जावेंगे. अमुक व्यक्ति इष्ट प्राप्तिके लिये जो भक्ति करे उसके संक्षेपमें यह लक्षण हैं. (ग्रंथमें भक्ति प्रसंग विषे लिखे हैं).

(१) श्रवण—इष्टकी योग्यता * का सद्ग्रंथ वा सद्गुरुद्वारा श्रवण करना (२) कीर्तन—उसकी योग्यताका रटन-अभ्यास करना कराना (३) स्मरण—उसकी योग्यताको बारंबार याद करना-जप करना, समय समय पर स्फुरना (४) पादसेवन—तिस (इष्ट) की प्राप्ति अर्थ सदाचारी विद्वान ज्ञानी तद्धर्मापतिवाले भक्तोंको उसका (प्रतिनिधि) रूप मानके उनकी सेवा करना. (५) अर्चन—ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्म प्रापक होनेसे उसे ईश्वर समान (तद्धर्मापतिवाला) मानके ऐसे भक्तका सत्कार-पूजन करना. (६) वंदन—शरीर पर्यंतकी ममता छोडके अहंपना (अभिमान) त्यागके परमात्मा और सद्गुरुको नमस्कार करना (७) दास्य—परमात्माको सृष्टिकी चाबी किंवा स्वामी मानके अपनेको उसका दास जानके उसकी आज्ञा † का पालन

---

* पृष्ठ ८८ अ. ४-१६८ से १९३ तकमें है.

† सृष्टि नियमनुसार वर्तन किंवा ज्ञानी विद्वानोंके या जिनमें श्रद्धा हो ऐसे सद्वेत्तापानु.

करना और सदगुरुकी आज्ञा + पालना (८) सख्य—हमारी वृत्तिओंके साथ रहा हुवा अंतरजामी हमारा सहायक है × ऐसी दृढता हो जाना. (९) आत्मनिवेदन—विवेक पूर्वक अहंत्व ममत्वका त्याग होके चित्तका इष्ट (परमात्मा) में लगा रहना. सब विचार आत्मामेंही देखना. जहां जहां मनोवृत्ति जावे तहां तहां उसीको खोजना वा पाना.

इस प्रकारसे ९ प्रकारकी अपरा भक्ति है. इन एक एकका जुदा जुदा फल है उन सबका परिणाम अंतःकरणकी शुद्धि होके परमात्माको प्राप्त होके निष्काम और जीवन मुक्त हो जाना है.

(१०) परा (प्रेमा) भक्ति—आत्मामें आत्मा करके संतुष्ट और आत्मामें वृत्तिका लीन होना. यहां तकके ध्याता, ध्यान, धेय, में, तु, यह, वोह, अहंत्व, ममत्व, इत्यादि कोई प्रकारकाभी भाव न रहे. द्वैत, अद्वैत, मैं तु, तु मैं, इत्यादिकी भी भावना न होा. इस प्रेम रूप स्थितिका नाम पराभक्ति है. यहां ज्ञानयोग, ध्यान योग, क्रियायोग, और भक्तियोग इन सबके परिणामोंका ऐक्य हो जाता है.

यह नोधा भक्ति पूर्वोक्त ३ ऋण विनावाले अधिकारीको सेवनीय है जिसका फल पराभक्ति है.

लौकिकी भक्ति—इवोल्युशन (विकास) थीयरी (वाद) की भक्ति वा यूं कहो कि लौकिक देवों (इंद्र, वरुण, विद्युत, उमा, सरस्वति, मरुत, इत्यादि देव) की भक्ति लौकिकि भक्ति कहाती है. (यह उक्त समष्टि भक्तिका एक भाग है) इस भक्तिके अभ्यासी योरोपीयन और एमरीकन हैं. उन्होंने इस भक्तिका फलभी उठाया है. अतः यह जो सीखना हो तो उनसे सीखना चाहिये.

संक्षेपमें जो करना हो वोह वर्तमानवत् अर्थात देशकाल स्थिति परिस्थिति और स्वाधिकार विचारके कर्तव्य होता है ॥५०८॥ १९१० वि.

७॥ वर्तन + जिसमे शंका भय लज्जा प्राप्त होती हो उनसे रहित जो सद्गुरुका बोध. क्योंकि सद्गुरुकी आज्ञा वा बोध इन तीन दोष रहितही होता है × शंका, भय, लज्जा पेदा होनेके द्वारा अनिष्टसे बचनेका बोधक हैं आत्मबल प्राप्ति द्वारा यथा कर्म सहायक है.

यह पुस्तक

मिलनेका ठिकाना—

दादाभाई जे. दरोगा,

न. १९, पारसी कोलोनी,

न्यु बंदर रोड,—कराची

अथवा,

गौरीशंकर झ अंजारिया,

न. ८, स्वामीनारायण चाल,—कराची

प्रमाणपत्र.

स्व० स्वामीजी श्री आत्मानंदजीके हिंदीमें हुये हुवे विध व्याख्यान, अंग्रेजी और हिंदी लेखमाळा और छोटेबडे पुस्तकोंके उपर अनेक वर्तमानपत्र और विद्वान् साक्षरवर्ग तरफसे प्रसन्नतादर्शक अभिप्राय मिले हैं. उसमेंसे थोडासा निदर्शनमात्र इधर अवतीर्ण करते हैं:—

Sir T. P. Morland I. C. S Lahore writes:— " It is a handy compendium of all the beauties with which the Hindu religious Lore abounds. As I was going through its pages, many of my doubts disappeared like the mist before the rising sun: and now that I have begun to steadily ruminate over all that I had vociferously devoured from that hidden store of wisdom. I find myself a happier and wiser man.

Sjt. Harbilas Sarda B A. Author of " The superiority of the Hindoos "..." It is an interesting booklet & give an instructive insight into Hindoo Philosophy. The editorial notes add to the value of the brochure ".

Sjt Ramanbhai Mahipatram Nilkantha the well known writer of Ahmedabed writes:- .., " The publication is very valuable and very useful and the public must be grateful for this synopsis of Indian Philosophy ".

Prof: R. C. Mukerji M A. B. L (Prof of Philosophy and English literature Meerut college) writes :-..." I believe it to be very thoughtful & instructive. It has struck me in some places to be very original and independent, though it has in the main kept to the traditions of Hindoo philosophy.

आपका संपादित " व्यवहार दर्शन " नामक पुस्तक मेरेको मिला. उस लिये आपका उपकृत हूं. शास्त्र, बुद्धि और अनुभव इस त्रिपुटीका उपयोग करते अतिश्रमसे प्रसिद्ध कीया हुवा यह ग्रन्थ देशीय वाचकोंको उपयोगमें आवे ऐसा है, उससे योग्य ग्राहकोंको आनंद और लाभ पहुंचेगा और आपका श्रम सफल होगा.

(सही.) गोवर्धनराम माधवराम (त्रिपाठी) का नमस्कार.

मुंबई, श्रावण वद ९–१९६१.

"व्यवहार दर्शन" अथवा " सुबोध संग्रह " नामक पुस्तक मि. * भानुशंकर वि. रणछोडजी शुकने प्रसिद्ध कीया है सो मैंने आनंदसे वाचा है. संसार व्यवहारमें उपयोगी अनेक विषयोंके संबंधमें उसमें अति कीमती सूचनाएं दिखनेमें आती है. पुस्तक लक्षपूर्वक वाचने योग्य है. मेरेको आशा है कि सद्‌गृहस्थो और राजा रजवाडे तरफसे पुस्तकको अच्छा आश्रय मिलेगा.

(सही) विठलजी केशवजी दवे

भुज ता. ११-५-१८९७. एज्युकेशनल इन्स्पेकटर कच्छ.

पोरबंदरसे गोविंदजी डाह्याभाइ कारखाणी का प्रणाम. विशेष, आपके तरफसे पूज्यपाद महात्मा श्री नथ्थुराम शर्मापर व्यवहारदर्शन नामका लोकोपयोगी ग्रन्थ आया सो पहुंचा जनसमूहकी अधम स्थिति सुधारनेके लिये जनतामें ऐसा ग्रंथोंका वाचन होनेकी आवश्यकता है. सारग्राही बुद्धि रखके और दुराग्रह त्यजके जो यह ग्रन्थ वाचेंगे उसको अधिकारानुसार इसमेंसे बहुत जानने योग्य मिलेगा. आपका यह प्रयत्न प्रशंसापात्र है. बहुपरिश्रम होके ऐसा लोकोपयोगी कार्यमें प्रवृत्त रहियेगा, पूज्य महात्माजीने आशिष कहा है. और आज्ञासे यह पहुंच लिखी है.

" व्यवहार दर्शन " नामका ग्रन्थ वाचके मैं बहुत आनंदित हुआ. यह ग्रन्थमें वर्ण और आश्रमके धर्मोका श्रुति, युक्ति और अनुभवसे प्रमाणपूर्वक अच्छा विवेचन कीया गया है. इस लिये व्यवहार मार्गमें प्रवृत्ति करनेवाले जनोंको अत्यंत श्रेयकारक होनेकी उत्कंठा रहती है. ग्रन्थमें रचयीताकी जन कल्याणकर अभिलाषा स्थल स्थल प्रदर्शित होती है. ऐसा श्रेयसपादक ग्रन्थको छपाके प्रसिद्ध करने वाले महाशय भानुशंकर रणछोडजी धन्यवादके पात्र है यह महाशय स्वल्प मूल्य रखके ऐसे जनमंडळ के बोधदायक ग्रन्थोका विशेष प्रचार करेंगे तो जन समाजको अत्यंत लाभदाइ होगा.

धनजी रत्नेश्वर भट्ट

कच्छ भुज १-८-१८९७. भुज तालुका स्कूल मास्तर.

---

* स्व. स्वामी श्री भास्करानंदजीका पूर्वाश्रमका नामाभिधान

कठिन शब्दोंका कोष.

विज्ञप्तिः—वाचकोंको स्मरणमे रहे कि ऐसा सभव है कि कोई कोई शब्द कहीं कहीं प्राथमिक वाचनमें अर्थ जाननेमे अस्पष्ट दिखेगा सो आगल वाचते २ विवरणमें वा पुनरुक्तिमें अर्थ सहित स्पष्ट मालुम हो जायगा. दुसरा वाचनमे तो बहुत सुगमता होगी. कोई कोई विषय गूढ होनेसे अधिकार अनुसार धैर्यसे वांचने की आवश्यक्ताभी अनिवार्य है.

—(प्रयोजक.)

अर्थाअर्थिभाव=मौलिक अमौलिक

अभ्यास=आदत.

अनवस्था=स्थितिभंगता

अनावृत्ति=पीछा नहि आना.

अनुव्यवसाय=कार्यपरायण वृत्ति

अनुयोगी=अनुसरे ऐसा

अनुशासन=शिक्षा. समजुति.

अपरत्व=अभिन्नत्व.

अलीक=मिथ्या

अव्याप्ति=मवृतिकी अपूर्णता.

अवच्छेदवाद=परिणामवाद वा विशिष्टवाद अभिन्ननिमित्तोपादानवाद, इत्यादि वाद.

अवस्तु=अज्ञान. अविद्या

अस्मिता=आत्मा बुद्धिका भेद प्रतीत न होना.

आनतर्य=अतराय रहित

इत्थम्=यही

इष्टाकार=इच्छितमे तद्रूप

उपचयापचयरुप=बनना विगडना=कमज्यादे होना.

उपरति=(देखो पृष्ट १९८)

उपरामता=अटकना. शांति

उपशम=शान्ति

उपादान=प्राप्ति, ग्रहण, बयान, कथन हेतु.

उपादेय=प्राप्य वस्तु

ऐतिह्य=परपरासे चलता हुवा

कूटस्थात्मा=शाश्वत, अचल. विशेष परिभाषा दी हुइ है.

चक्रिकादोष=अनवस्था दोष.

चरम स्मृति=स्मृतिकी स्मृति.

चिद अचिद=चेतन-जड

चिद्ग्रंथी=(नोट-पृष्ट २१०)

त्रिवादवाद=जीव, इश्वर और जगत विषय विविध मान्यता

तज्ज=जीवनमुक्त.

तादात्म्य=दो चीजोका ओतप्रोत रहेना.

तितीक्षा=आपत्कालमें सहनशीलता होना.

तुर्यावस्था=भावभाव रहित स्थिति.

तूला सत्ता=प्रातिभासिक सत्ता, (स्वप्न)

तैजसविद्या=मेस्मेरिझम.

द्रवत्व=झरना, टपकनापणा, प्रवाहीपणा.

दम=इंद्रियो पर काबू रखना

निरपाध=भ्रमभावना रहित

निरोध=रोकना

प्रतियोगी=अनुसरे नहि ऐसा

प्रमाता=प्रमाण दर्शक

परत्व=एक दुसरेकी भिन्नता

परामर्शात्मक ज्ञान=तात्पर्य निकले ऐसा ज्ञान.

महत्=मोटा

मूला सत्ता=व्यावहारिक सत्ता (जाग्रत)

व्यवधान=आवरण

व्यष्टिकर्म=जो कार्यका फल एक आदमीको मीले सो

व्याप्तिग्रह=सार्वत्रिक भावसे ग्रहण

वदतोव्याघात=वाणीमें विरुद्ध वर्तन

क्रियमाण=आगे जो करेंगे.

विवर्तवाद=मायावाद

लिंग=सूक्ष्म शरीर

वैलक्षण्य=भेद विलक्षणता

शम=मन पर काबू रखना

शिर्क-विजातीय

स्वबोध=भाति बुद्धिमें निश्चयपर रहेना

समवाय=दो चीजो साथमें रहना

समष्टिकर्म=जो कार्यका फल सब आदमीको मिले

सामान्यतोदृष्ट=सबको समजनेमें आवे ऐसा

सूर्यमणि=सूक्ष्मदर्शक यंत्र

सूक्ष्मा=इथर. ऐसा

संवित्=स्वप्रकाशरुप अनुभव